प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ Of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

भाग—१५

मेष—कन्या १९७९

April 1922 – September 1922

प्रकाशक

विज्ञान-परिषत् प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

विषयानुक्रमणिका

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १५ } मेष, संवत् १९७९ । अप्रेल, सन् १९२२ { संख्या १

पतंग

[ले०—श्री० शंकरराव जोशी]

ह प्राणी वल्कपत्त (Lepidoptera) वर्गका है । इस वर्गके अधिकांश प्राणी चित्र विचित्र रङ्गके होते हैं । इस वर्गमें सब प्रकारके पतङ्गोंका समावेश होता है । पतङ्गके पङ्ख अति मनोहर होते हैं । संस्कृतके कवियोंने मूर्ख मनुष्य की पतङ्गसे उपमा* दी है । तथापि हमें पूर्ण विश्वास है कि विज्ञानके पाठक इस लेखको पढ़कर पतङ्गको बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा किये बिना न रहेंगे ।

पतङ्गकी कीटावस्था

पतझड़ होते ही पतङ्ग अन्तर्धान हो जाते हैं । वृक्षों पर कोमल पत्ते निकल आने पर वह पुनः इधर उधर उड़ते हुए नज़र आने लगते हैं ।

मादा अण्डे देती है । अण्डोंमेंसे इल्ली निकलती है । इल्लीका शरीर अति मृदु होता है । इसका शरीर बारह मणियोंसे बना होता है । किसी वर्गके कीड़ेकी इल्ली क्यों न हो, उसका शरीर बारह मणियोंसे ही बना होता है । कुछ जातिकी इल्लियोंमें मणि साफ़ साफ़ नज़र आती हैं और कुछमें नज़र नहीं आतीं तथापि वह होती ज़रूर हैं । इल्लीके शरीरकी इन मणियोंकी गणना हमेशा सरकी तरफसे ही की जाती है । इस लेखमें यदि कहीं पांचवीं मणिका उल्लेख किया गया हो, तो यही समझना चाहिये कि सरकी ओरसे पांचवीं मणि अभीष्ट है ।

इल्लीका सिर उसके शरीरकी अपेक्षा ज्यादा मज़बूत होता है । इल्लीका मुख मनुष्य आदि प्राणि-

* पतंगवत् वन्हिमुखं विविक्षुः—कुमारसंभव, सर्ग ३, श्लोक ६४ । व्यक्तं प्रणाशोहि पतंगवृत्तेः—पंचतंत्र, तंत्र ३, श्लोक १२६

योंके मुखकी तरह आड़ा नहीं होता—खड़ा होता है अर्थात् मनुष्यके मुखका चीरा दहिनेसे बाएँ जाता है और इल्लीके मुखका चीरा सरसे ठुड्डीकी ओरको। इल्लीके दांत हड्डीसे नहीं बने होते, परन्तु वह बड़े मज़बूत होते हैं। मुखके नीचेके भागमें एक महीन छेद होता है, जिसमेंसे इल्ली, जब चाहे तब, महीन धागा निकाल सकती है।

इल्लीके पैरोंकी संख्या आठसे लगाकर दस तक होती है। प्रथम तीन मणियोंमें एक एक जोड़ा पांव होते हैं। इन छहों पांवोंके सिरे पतले होते हैं। पतङ्गावस्था प्राप्त होने पर भी यह पांव बने रहते हैं अतएव इन्हें 'असली पांव' (true legs) कहते हैं। इन छः पांवोंको छोड़कर शेष सब पांव 'नकली पांव' (false legs)) कहाते हैं। नकली पांवोंकी संख्या दोसे लगाकर दस तक होती है। इन पांवोंके सिरे मोटे और गोल होते हैं। सिरोंपर छोटी अँकुड़ियां भी होती हैं। नकली पांव कीटावस्थामें ही रहते हैं। पूर्ण बाढ़को पहुंचे हुए कीड़ेके यह पांव नहीं होते। इसीलिए इन्हें 'नक़ली पांव' नाम दिया गया है। नक़ली पांवोंकी सहायतासे इल्ली जम कर वृक्ष पर बैठ सकती है।

इल्लीके 'असली पांवों' की संख्या छःसे अधिक नहीं होती और न कम ही होती है। नक़ली पांवोंकी संख्या कभी दस, कभी छः, कभी चार और कभी दो होती है। जब खोटे पांवोंकी संख्या दस होती है, तो छठी, सातवीं, आठवीं, नवीं और बारहवीं मणि पर दो दो पांव लगे रहते हैं। इस सम्बन्धमें यहां अधिक लिखनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

चलते समय, अन्य प्राणियोंकी तरह, इल्ली पहले अपने आगेके पांव नहीं उठाती। वह पहले बारहवीं मणिके पांव उठाकर नवीं मणिके पास रखती है। इसके बाद नवीं मणिके पांव आठवीं मणिके पांवोंके पास लाती है और इस प्रकार आगे पांव बढ़ाती जाती है। परन्तु जिस इल्लीके नक़ली पांवोंकी संख्या दो ही होती है उसके चलनेका ढंग बड़ा विचित्र है। यह नकली पांव बारहवीं मणिपर होते हैं। इल्ली बारहवीं मणिके पांव उठाकर तीसरी मणिके पांवोंके पास रखती है। तदनन्तर असली पांवोंको आगे बढ़ाकर वह अपने शरीरका सारा बोझ बारहवीं मणिके पांवों पर डालकर अपना सारा शरीर एक दम आगे फेंकती है। इस जातिकी इल्लीके चलनेके ढंगसे ऐसा मालूम होता है, मानों वह ज़मीन नाप रही है और इसीलिए इस जातिकी इल्लीको भूमापक (Geomete) संज्ञा दी गई है।

जिन इल्लियोंके नकली पांवोंकी संख्या दो या चार ही होती है, उनके शरीरका रंग वृक्षकी छालके रङ्गका होता है। न इनका शरीर ही उतना नाज़ुक होता है। पेट भर जानेपर इल्ली अपने खोटे पांवोंसे छालको मज़बूत पकड़ कर खड़ी हो जाती है और वह इस अवस्थामें घंटों खड़ी रहती है।

अधिकांश इल्लियां पत्तों पर ही जीवन निर्वाह करती हैं। कुछ इल्लियां वृक्षकी जड़ें भी खाती हैं, किन्तु उनकी संख्या बहुत ही कम है। पत्ते न मिलने पर इल्ली फूल पर भी हमला करती है। इल्लियां खाती भी खूब हैं। प्रयोगों द्वारा पता चला है कि एक इल्ली २४ घन्टेमें अपने शरीरके वज़नका दूना भोजन करती है। यदि घोड़ा इतना खाना खाने लगे, तो उसे प्रतिदिन २७०० पौंड घास चन्दीकी ज़रूरत होगी और उसका वज़न प्रतिदिन १५५ पौंडके हिसाबसे बढ़ने लगेगा।

इल्लियां अकसर रातको ही पत्ते खाती हैं। वह पत्तेको अपने आगेके पांवोंसे मज़बूत पकड़ लेती हैं और तब अपना सर ऊपर नीचे कर पत्ता कुतर कुतर कर खाती हैं। खाते समय वह अपना सर वर्तुलाकार हिलाती हैं, अतएव पत्ता भी उसी आकारका कटता जाता है।

भिन्न भिन्न जातिकी इल्ली भिन्न भिन्न जातिके वृक्षोंके पत्ते खाती हैं। स्पर्ज जातिके वृक्षके पत्ते इतने अरुचिकर होते हैं कि मानव प्राणीके लिए उसका एक छोटा सा टुकड़ा खाना संभव नहीं, परन्तु इल्लियां इन्हें भी खा जाती हैं। नेटल नामक

वृक्षके पत्तेके स्पर्श मात्रसे बदन पर फुडिया उठ आती है, परन्तु इल्लियां इन्हें बड़ी रुचिसे खाती हैं।

इल्लियां पूर्ण बाढ़को पहुँचनेके पहले त्वचा बदलती हैं। इसे त्वक् परिवर्तन (मोल्टिंग moulting) कहते हैं। पूर्ण बाढ़को पहुंचने पर वह कोश बनाती हैं। पतंगकी कोशावस्था—पूर्ण बाढ़को पहुंचने पर इल्ली भोजन करना बंद कर देती है। अपने शरीरमेंका सब मल बाहर फेंकने पर वह एक ओर जाकर स्वस्थ बैठ रहती है और तब धीरे धीरे उसके शरीरकी त्वचाका रंग बदलने लगता है।

कुछ जातिकी इल्लियां अपने शरीरके चारों ओर कोश बनाती हैं। इससे शत्रुसे उनकी रक्षा होती है।

कोशावस्था निकट आने पर इल्ली सुरक्षित स्थानका पता लगाती है। सुरक्षित स्थान मिल जाने पर वह अपने मुंहमेंसे धागा निकाल कर कोश बनाती है। कोश तैयार हो जाने पर वह उसमें निश्चेष्ट पड़ी रहती है।

भिन्न भिन्न प्रकार की इल्लियां अपने कोश भिन्न भिन्न पदार्थोंसे बनाती हैं। कुछ इल्लियां अपने मुंहमेंसे धागा निकाल कर कोश बनाती हैं और कुछके कोश कांटे, पत्ते घासके तिनके बाल आदि पदार्थोंसे बने होते हैं। एकानिक्का आसेरिस जातिकी इल्ली अपने शरीर परके बाल उखाड़ कर कोश बनाती हैं। पिरालिस कार्टिकैलिस नामक जातिकी इल्ली वृक्षकी छालके छोटे छोटे टुकड़ोंसे कोश बनाती है। इल्ली छालके टुकड़े, अपने मुंहमेंसे एक चिकना पदार्थ निकाल कर उससे चिपकाती है। कोश चार पांच घंटेमें तय्यार हो जाता है।

पस माथ नामक इल्ली भी वृक्षकी छालसे ही कोश बनाती है। वृक्षकी छालका महीन चूर्ण कर वह उसमें गोंदके समान एक पदार्थ मिलाती है और तब इससे कोश बनाया जाता है। सूखने पर यह कोश इतना कड़ा हो जाता है कि चाकूसे भी नहीं कटता।

इल्ली, कोशमेंके प्राणी और पतङ्गके स्वरूपमें जमीन आसमानका अन्तर होता है। बाह्य स्वरूपको देखकर यह नहीं कहा जासकता कि यह तीनों अवस्थाएं एक ही प्राणीकी हैं। इतना ही नहीं, कोशको देखकर इस बात पर भी विश्वास नहीं आता कि उसके अन्दर एक आध सजीव प्राणी है। कोशावस्थामें प्राणी न तो खाता ही है और न हिलता डोलता ही है।

भिन्न भिन्न जातिके कीड़ेके कोश भी भिन्न भिन्न रङ्गके होते हैं। जब तक प्राणी कोशमें रहता है तब तक ही यह रङ्ग बना रहता है। कोशमेंसे प्राणीके निकल आनेपर रंग भी उड़ जाता है।

यह बात निश्चय पूर्वक नहीं कही जा सकती कि प्राणी कितने समय तक कोशके अन्दर रहता है। प्रत्येक जातिके प्राणीकी कोशावस्थाका समय भी निश्चित नहीं है। भिन्न भिन्न स्थानकी परिस्थिति, आबहवा और तापक्रम पर ही कोशावस्थाकी अवधि निर्भर होती है। शीत प्रधान देशोंमें कभी कभी कीड़ा एक वर्ष तक कोशावस्था में रहता है। उष्ण देशोंमें एक ही मासमें इसमेंसे पतंग निकल आता है।

पूर्ण बाढ़को पहुंचा हुआ पतंग कोश तोड़ कर बाहर निकल आता है। उसके पंख समेटे हुए होते हैं अतएव कीड़ेको कुछ समय पंख फैलानेमें लगता है। पंखोंके फैलते ही पतंग स्वच्छन्दता पूर्वक हवामें विहार करने लगता है। पतंगकी पूर्णावस्था, पतंगकी चपलता एवं उसके पंखोंकी अद्भुत छटा अपूर्व आनन्द देती है। प्रसिद्ध कीटक शास्त्र वेत्ता रूमर एक स्थान पर लिखता है कि, पतंगके पंख कीमतीसे कीमती हीरेकी शोभाको भी मात करते हैं।

पतंगके चार पंख होते हैं। पतंगके पंखोंके सम्बंधमें बर्नार्ड नामक एक महाशय लिखते हैं, "हज़ारों प्रकारके रंग क्यों न इकट्ठे कर लिये जायं किन्तु सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे पतंगके पंखोंकी जैसी अद्वितीय शोभा दीखती है वैसी शोभा उन रंगोंमें कदापि न होगी।"

पतंगके पंख बड़े और शरीर हलका होता है। अतएव वह हवामें बहुत समय तक उड़ता रहता है। पतंग सरल रेखामें ही नहीं उड़ता, सर्प गतिसे भी उड़ता है; अतः उसका पीछा करनेवाला शत्रु उसे पकड़ नहीं सकता। पतङ्गकी छाती (thorax) मज़बूत होती है। उसके छः पांव होते हैं। छहों पांवोंकी लम्बाई बराबर होती है। कुछ पतंगोंके आगेके पांव छोटे होते हैं जिससे वह चल नहीं सकते। पतंगका सर गोल और आगेसे कुछ चपटा होता है। उसकी पहलूदार आंखें हीरेके समान चमकती हैं। एक महाशयने एक बार पतङ्गके आंखोंके पहलू गिने थे। उनकी संख्या १७५६५ थी। आंखोंके आस पास बाल होते हैं; इसलिए उनका अधिकांश भाग ढका रहता है पतङ्गको स्पर्शेन्द्रियका आकार भिन्न भिन्न प्रकारका होता है।

पतङ्गके सूंड होती है। यह मुखमें घड़ीकी बालकमानीके समान सिमटी रहती है। फूल पर बैठने पर पतङ्ग अपनी सूंड फूलके मधु युक्त भागमें डाल कर मधु प्राशन करता है। पतङ्गकी सूंड नलिकाके समान पोली होती है। जिस रीतिसे मक्खी तरल और घन पदार्थ भक्षण करती है, उसी रीतिसे पतङ्ग भी उन पदार्थोंको खाता है। परन्तु मक्खी और पतङ्गकी सूंडकी रचना भिन्न भिन्न है। पतङ्गावस्थामें प्राणी बहुत कम समय तक जीवित रहता है। नर मादाका संयोग होते ही नर मर जाता है। अण्डे रखने तक मादा जीवित रहती है। वह वहीं अण्डे रखती है जहां खाद्य पदार्थ विपुल होते हैं। जुदी जुदी जातिके पतङ्गके अण्डोंका आकार और रङ्ग जुदा जुदा होता है। अण्डे रखने पर मादा उन पर गोंदके समान एक पदार्थ चुपड़ देती है, जिससे पानीसे उनकी रक्षा होती है। कुछ जातिके पतङ्ग अण्डों पर पङ्ख, बाल आदि ढक देते हैं। एक मादा सौसे लगाकर दो हज़ार तक अण्डे देती है।

पतङ्गकी जातियां

प्राचीन ग्रन्थकारोंने पतङ्गको तीन वर्गोंमें बांटा है—नक्तंचर (रातको उड़ने वाले), दिवाचर (दिनको उड़ने वाले) और सायंचर (शामको उड़ने वाले); परन्तु यह वर्गीकरण ठीक नहीं है। कारण कि नक्तंचर वर्गके पतङ्ग दिनको उड़ते हुए भी देखे गये हैं। अर्वाचीन कीटक शास्त्रज्ञोंने स्पर्शेन्द्रियके आकारके आधार पर पतङ्गोंका वर्गीकरण किया है। कुछ जातिके पतङ्गकी स्पर्शेन्द्रिय मूलके पास तो पतली होती है, परन्तु सिरेकी ओर वह, पहलवानोंके मुगदलकी जोड़ीकी तरह, मोटी होती जाती हैं। इन सब पतङ्गोंका समावेश एक ही वर्गमें किया गया है। इस वर्गको अङ्गरेज़ीमें होपालो सेरा (Rhopalocera) कहते हैं। हम इस वर्गको मुद्गर शृङ्ग नाम देते हैं। मुद्गर शृङ्ग वर्गके पतङ्ग बहुधा दिनको ही उड़ते हैं। बैठने पर उनके पङ्ख पीठ पर सीधे खड़े रहते हैं। इस नियमके अपवाद भी पाये जाते हैं। इस वर्गके पुष्कल उपवर्ग भी हैं। दूसरे वर्गकी पतङ्गोंकी स्पर्शेन्द्रियका आकार भिन्न भिन्न प्रकारका होता है, अतएव उसे 'हेटरो सेरा' (Heterocera) नाम दिया गया है। हम इसे 'चित्र शृङ्ग' नाम देते हैं। इस वर्गके पतङ्ग मुद्गर शृङ्ग वर्गके पतङ्गके समान चपल नहीं होते। उनका शरीर भी मोटा और भारी होता है। फूल पर बैठने पर इनके पङ्ख फैले हुए रहते हैं जिससे शरीर ढक जाता है। अङ्गरेज़ीमें इस वर्गके पतङ्ग को माथ (moth) संज्ञा दी गई है। मुद्गर शृङ्ग वर्गके पूर्ण बाढ़को पहुंचे हुए प्राणीको भाषामें पतङ्ग (Butterfly) और चित्र शृङ्ग वर्गके पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुए कीड़ेको तितली (moth) कहते हैं।

चित्र शृङ्ग वर्ग आठ उपवर्गोंमें विभक्त किया गया है। उन सब उपवर्गों पर यहां कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं। केवल उक्त दोनों वर्गोंके कुछ प्राणियोंका वर्णन करना ही पर्याप्त होगा।

मुद्गर शृंग वर्ग

गोबीका पतङ्ग (cabbage butterfly)—कभी कभी गोबी पर कीड़े हो जाते हैं। प्रारम्भमें छोटी छोटी इल्लियां नज़र आती हैं। यह मैले हरे रङ्गकी

होती हैं और उनकी पीठ पर सफेद रङ्गके खड़े पट्टे होते हैं। यह अपने शरीरके वज़नसे दूना भोजन करती हैं। इल्ली फसलका सत्यानाश कर डालती है। इल्ली त्वचा बदलती हुई धीरे धीरे पतङ्गमें बदल जाती है।

शिखि-पतङ्ग (Peacock Butterfly)—इस पतङ्ग के पङ्ख पर मोरके पङ्खके समान चार आंखें होती हैं। यह पतङ्ग बहुत ही चित्ताकर्षक होता है। इङ्गलैंडमें इसका एक दम अभाव है। फ्रांसमें यह कहीं कहीं पाया जाता है। भारतवर्षमें यह पतङ्ग सर्वत्र देखा जाता है। मुद्गर श्रृङ्ग वर्गके उपवर्गोंमें वैनेसा (Vanessa) नामक एक उपवर्ग है। शिखि पतङ्ग इसी उपवर्गका है। वैनेसा उपवर्गका पतङ्ग जब कोशमेंसे बाहर निकलता है, तब उसमेंसे एक प्रकारका प्रवाही पदार्थ बाहर निकलता है। इस पदार्थका रङ्ग रक्तके रङ्गका होता है। कभी कभी दो दो तीन तीन मील तककी भूमि कोशसे व्याप्त हो जाती है। कोशमेंसे पतङ्गके निकलने पर सारी भूमि रक्त रंजित सी दृष्टिगोचर होती है। ऐसा दीख पड़ता है मानों अभी ही रक्तकी वर्षा हुई है।

सन् १६०८ के जुलाई मासमें प्रह्वांस प्रान्तके एक्स नगरके आस पासका दो मील तकका सब प्रदेश रक्त मय दिखाई देने लगा था। भोले भाले लोग यह देख कर भयभीत हो गये। वह समझने लगे कि ईश्वरीय कोपके कारण ही रक्तकी वर्षा हुई है। लोगोंको भयभीत देख कर एम. डी. पीयर्स नामक एक कीटक शास्त्रज्ञने एक कोश लाकर लोगोंको दिखाया और सब बातें भले प्रकार समझा दीं। किन्तु फिर भी लोगोंका समाधान नहीं हुआ। रूमर वैनेसा उपवर्गके पतङ्गके सम्बन्धमें लिखता है।

"मई मासके अन्तमें या जूनके प्रारंभमें वैनेसा जातिके हज़ारों पतङ्गोंकी कीटावस्था समाप्त हो कोशावस्था प्रारंभ होती है। इल्ली मकानोंकी दीवारें दरवाजोंकी चौखट, छप्पर आदि पर बैठकर कोश बनाती है। पतङ्ग जूनके अन्तमें या जुलाईके प्रारंभमें कोशमेंसे बाहर निकलता है। कीड़ेके निकल आने पर, जिस स्थान पर कोश चिपका होता है, उस स्थान पर रक्त बिन्दुसे नज़र आने लगते हैं। अंध विश्वासी लोग इन्हें देखकर भयभीत हो जाते हैं। वह समझने लगते हैं कि ईश्वरीय कोपसे ही रक्तकी वर्षा हुई है।"

ऊपर मुद्गर श्रृङ्ग वर्गके एक ही दो पतङ्गोंपर विचार किया गया है। इनके अलावा इस वर्गमें और भी कई प्रकारके पतङ्ग हैं किन्तु स्थानाभावके कारण उन सब पर यहां विचार नहीं किया जाता है।

(असमाप्त)

मिट्टी चिकित्सा

कूने महोदय ने जिस तरह जल चिकित्सासे रोगोंके शान्त करनेके उपाय बताये हैं उसी तरह मिट्टी चिकित्सा से भी अनेक रोगोंका नाश होता है।

मिट्टी चिकित्साकी उपयोगिता जाननेके पहिले रोगों के मूल कारणका ज्ञान हो जाना बहुत ज़रूरी है। मूल कारण जान लेनेपर उसका उपाय सुगमता से समझमें आ जाता है और भविष्यमें उससे बचनेके लिए मनुष्य सावधान हो सकता है।

"षट् धातुजः पुरुषः" इस चरकके वचनानुसार पुरुष पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, और आत्मा इन छः धातुओंके एक विशेष संयोग से पैदा होता है और "एषामेव हि भावानां सम्पत्सञ्जनयेन्नरम् तेषामेव विपद्व्याधीन्विविधान्समुदीरयेत्"—जो द्रव्योंका संयोग मनुष्यको उत्पन्न करता है उसी संयोगकी मात्रामें घटती बढ़ती होने से रोग उत्पन्न होते हैं। अर्थात् जिस समा-

नतासे इन द्रव्योंका मेल इस शरीरमें है उसीके अनुसार यदि शुद्ध रूप से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और आत्माका संयोग होता गया तो मनुष्यकी सुखात्मक वृद्धि होती है, अन्यथा किसी द्रव्यके अधिक अथवा कम हो जानेसे विषमता उत्पन्न होती है, या यों कहिये कि विषमता ही रोग है। इस विषमताको दूर करनेके लिए अनावश्यक द्रव्यको शरीरसे बाहर निकालने और क्षतिको पूरा करनेमें ही चिकित्साकी उपयोगिता है। कूने महोदयका भी यही मत है कि बाह्य अनावश्यक द्रव्योंके आजानेसे शरीरमें अनेक रोग उत्पन्न होते हैं और सब रोगोंका मुख्य इलाज भी वही है जिससे यह अनावश्यक बाह्य द्रव्य निकल जायं और शरीरमें असली द्रव्य रह जायं। इस जगह यह भी जान लेना चाहिये कि तीव्र औषधियोंके सेवन से लाभके बदले अधिकतर हानि ही होती है। रोगसे औषध भयङ्कर हो जाती है और औषध से जो रोग उत्पन्न होते हैं उनका निवारण करना कठिन हो जाता है।

जहाँ तक देखा गया है जब कोई औषध काम नहीं देती तो जलवायु बदलने से ही लाभ होता है। सारांश यह कि जिन धातुओंसे मनुष्य शरीर बना है उन्हीं धातुओंके सेवनसे रोग समूल नष्ट हो सकता है। औषधियाँ केवल सहायक मात्र होनी चाहिएँ और प्रकृतिको अपना इलाज स्वयं करने देना चाहिये।

मनुष्यकी त्वचा चलनीकी भांति छिद्रमय है। इन छिद्रोंकी राहसे प्रकृति शरीरके दूषित पदार्थ, यदि कोई रुकावट न आपड़े तो, बराबर बाहर निकाला करती है। मिट्टीमें एक खास गुण यह है कि वह दूषित द्रव्योंको चूस लेती है। गंदी चीज़पर मिट्टी डाल देने से दुर्गन्ध नहीं फैलती और कुछ समयमें मिट भी जाती है। मिट्टीके घड़ेमें पानी रखने से पानीके अनेक दोष घड़ेमें जज़्ब हो जाते हैं। घड़ेके भीतर बालूमेंसे टपका हुआ जल अत्यन्त शुद्ध और लाभकारी होता है। शास्त्रों में मिट्टीकी बड़ी महिमा है। मिट्टी लगानेसे हाथ पैर और गुह्य स्थान पवित्र हो जाते हैं। घर स्वच्छ हो जाता है। रसोई घर तो मिट्टी से ही पवित्र किया जाता है। जितनी हानिकारक, रोग फैलाने वाली, दुर्गन्धित चीज़ें होती हैं वह सभी जमीनमें गाड़ देने से कालान्तरमें दोष रहित हो जाती हैं। मनुष्य तो मिट्टीका पुतला ही है यदि मिट्टी रोगोंके विषको हरण करले तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

बिना पैसा कौड़ीके मिट्टी चिकित्सा होसकती है और उसकी रीति भी बहुत सरल है। अच्छी, साफ, सुथरी मिट्टी जो बहुत चिकनी न हो, उसमें कुछ बालूका अंश मिला हो, शुद्ध स्थानसे खोदकर महीन पीसले और ठंढे जलमें रोटीके आटेके समान कठोर सानले; फिर एक साफ महीन झझरे कपड़ेमें उसे पुलटिसकी तरह रखकर जिस जगह जरूरत हो बांध दे। दो तीन घंटेमें दूसरी मिट्टी बदल दे। वही मिट्टी फिर न लगानी चाहिये और न मिट्टी को शरीर पर सूखने देना चाहिये। जिस स्थानमें पीड़ा हो, जहांपर चोट लगी हो अथवा सूजन हो उस स्थानपर पुलटिस बांधनी चाहिये। पेटकी बीमारीमें नाभिके नीचे पेड़ूपर पुलटिस बांधे। यदि एक गरम कपड़ा ऊपर से बांध दिया जाय तो अच्छा रहता है। इस तरह करने से मिट्टी दूषित द्रव्योंको चूस लेती है और रोग शान्त हो जाता है, सूजन मिट जाती है। चोट लगने पर घाव सूख जाता है और सूजन नहीं आने पाती।

महात्मा गांधी ने "आरोग्य साधन" नामक पुस्तकमें अपना अनुभव लिखा है कि शिर दर्दमें शिरपर; आंख उठनेपर आंख पर; मरोड़, कोष्ठ बद्धता, अतीसारमें पेड़ूपर; चोट और दर्द पर, जली जगह पर; फोड़ा फुन्सी दाद और खुजली पर, दुखते हुए जोड़ोंपर, बवासीरमें और तेज़ बुखारमें पेड़ू और माथेपर मिट्टीकी पुलटिस बांधने से आशातीत लाभ हुआ है। पेचिशमें भी इसने

लाभ किया है। विषैले जीवोंके काटनेपर तो मिट्टीसे प्रत्यक्ष लाभ देखा गया है। मक्खीके काटनेपर, वर्र और बिच्छूके डंक मारने पर और उन विषों में जिनमें जलन पैदा होती है, जैसे केवाच, कमरा (खजोहरा) इत्यादिमें, तो बहुत से मनुष्य मिट्टीका प्रयोग करते हैं। "आरोग्य साधन" में जस्ट साहब का अनुभव भी दिया है। उनका कथन है कि उनकी सलाहसे एक सांपका काटा हुआ आदमी जिसको लोग मरा समझते थे गाड़ देनेसे, थोड़ी देरमें होश हो आया और वह अच्छा हो गया। चरकमें तो यहां तक लिखा है कि पेटमें गये हुए विषके लिए, रोगी को ततकाल मिट्टी खिला देनी चाहिये, इससे बड़ा लाभ होता है।

ऐसी उपयोगी और सुलभ औषधका प्रचार सर्व साधारणमें अवश्य होना चाहिये। मिट्टी चिकित्सा सनियम करनेसे जल चिकित्सा से भी अधिक उपकार कर सकती है। लेखककी धारणा है कि यदि जल चिकित्साके साथ साथ मिट्टीका भी उपचार किया जाय तो विशेष लाभ की सम्भावना है। यदि मिट्टीमें अनावश्यक विदेशी द्रव्योंके चूस लेनेकी शक्ति है तो रोगके समूल नष्ट होनेमें कोई सन्देह नहीं हो सकता। गङ्गा जी की रेणुकाने पद्माकर जी का कोढ़ तक अच्छा कर दिया। किन्तु एक बातका हमेशा ध्यान रखना चाहिये। मिट्टी रोगोंसे लड़नेमें केवल सहायक मात्र है और एक बड़ी भारी सहायक है, किन्तु प्रकृतिको सबल करनेके लिए प्राकृतिक नियमोंका पालन करना, आहार विहारमें सावधान और संयम नियमसे रहना चाहिये। इस विषयमें बहुत सी बातें जानने लायक हैं, किन्तु लेखके बढ़ जाने के भयसे एक और बात लिखकर यह लेख समाप्त किया जाता है।

अनेक प्रकारकी मिट्टियोंका प्रयोग करके जो मिट्टी अधिक लाभदायक साबित हो उसे सज्जनों को प्रकाशित करा देना चाहिये। शास्त्रोंमें हिमालयकी मिट्टी, वेमौरकी मिट्टी, बनशूकरकी खोदी हुई मिट्टी और गङ्गाजीकी रेणुकाकी बड़ी बड़ाई की गई है। इनका भी प्रयोग करना चाहिये और प्रयोगके नियम और सिद्धान्त स्थिर कर लेने चाहियें।

सत्यनारायण अवस्थी,
बी. ए., एल-एल. बी.

खेतीके प्राण और उसकी रक्षा
खेतीके काम और यंत्र*

(ले०—एल. ए-जी.)

निकाई और गुड़ाई

खर पतवार

प्रायः ऐसा होता है कि जो फ़सल बोई जाती है उसके अतिरिक्त अन्य प्रकारके पौदे भी खेतमें उग आया करते हैं। इस प्रकारके पौदोंको खर पतवार कहते हैं। यदि आलूके खेतमें गेहूँका पौदा उग आवे तो वह खरपतवार ही कहलावेगा।

एक प्रकारके खर पतवार ख़रीफ़में उगा करते हैं और दूसरी प्रकारके रबीमें। ख़रीफ़के खरपतवार नमी अधिक चाहते हैं और उनके बीज मुलायम और नर्म छालवाले होते हैं। वह नम गरम जल
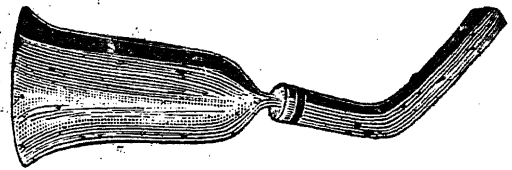
चित्र १—खुर्पी

---

* विज्ञान भाग १३ संख्या ५ पृष्ठ २३० से सम्मिलित।

वायुमें फूलते फलते हैं। रबीके खरपतवारके बीज सख़्त और कड़ी छालवाले होते हैं। ऐसा होनेसे उनपर वर्षा ऋतुका प्रभाव नहीं पड़ता और वह शरद ऋतुमें जा कर उगते हैं। खुश्क और ठंडा जल वायु उनके उपयुक्त होता है।

खरपतवारसे निम्न लिखित रूपमें हानि पहुँचती है:—

(१) यह जल और खाद्को अपने उपयोगमें लाते हैं। यदि यह न होते तो यह चीज़ें फ़स्लके काम-में आतीं।

(२) इनके रहनेसे फ़स्ल घनी हो जाती है, जिससे कि रोशनी अच्छी तरहसे पौदों तक नहीं पहुँचती।

(३) बहुत से खर पतवार फ़स्लके पौदोंके साथ लिपट जाते हैं, जिससे कि उनकी बाढ़ रुक जाती है और पकनेके बाद कटाईमें अड़चन डालते हैं।
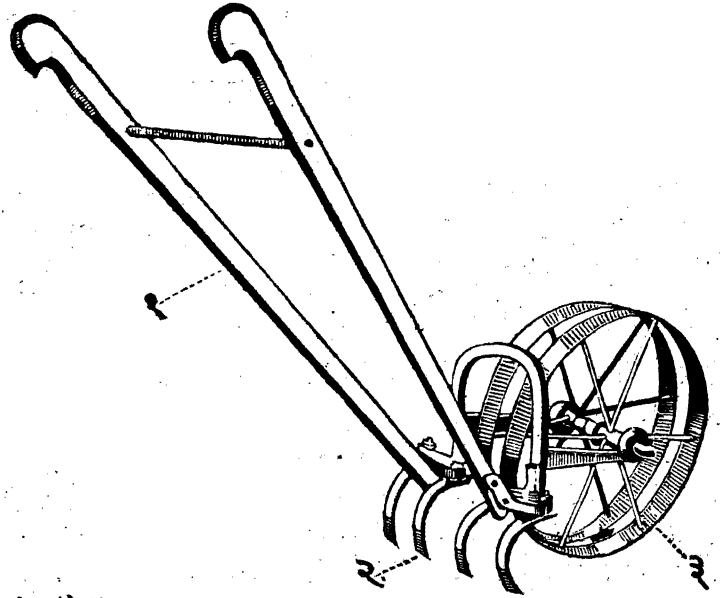
चित्र ३—हैंड हो १ हैंडिल, २ शौवेल (खुर्पी), ३ पतिये।
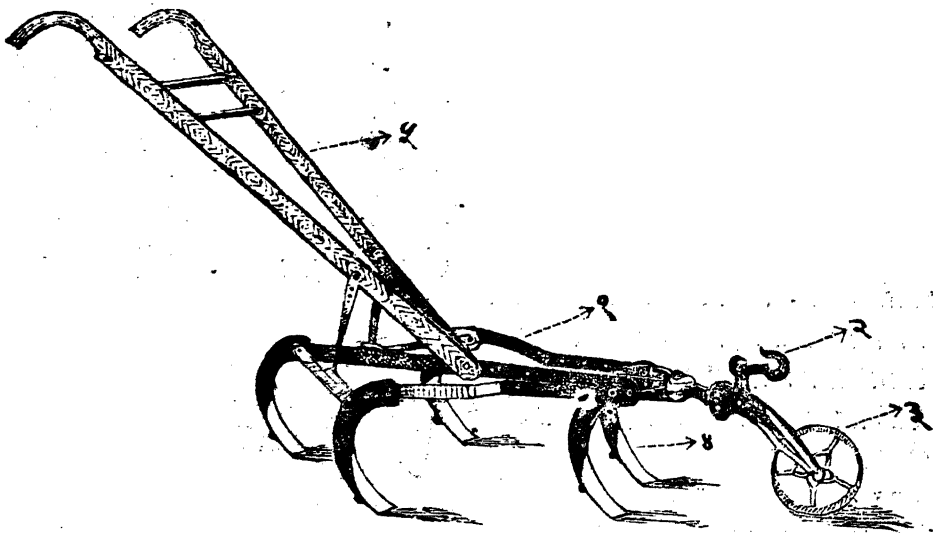
चित्र—२। १—ढांचा। २—आंकड़ा। ३—पहिया। ४—खुर्पी। ५—मुठिया।

(४) कीड़े और गिरवी आदिकी बीमारियों-के फैलाने और क़ायम रखनेमें मदद देते हैं।

(५) इनके बीजके मौजूद रहनेसे फ़स्लके ग़ल्लेकी अच्छी कीमत नहीं लगती।

(६) कुछ खर पतवार ऐसे होते हैं कि यदि उन्हें गाय भैंस खा लें तो उनके दूधका स्वाद ख़राब हो जाता है। कुछ ज़हरीले भी होते हैं।

खेतोंमें वह कैसे पहुँचते हैं?

(१) वायु द्वारा।

(२) बोये जानेवाले बीजके साथ।

(३) खादके साथ।

(४) खेतमें पड़े रह जानेवाले बीज द्वारा।

उनके दूर करनेके उपाय

(१) उनके फलनेको रोकना।

इस कार्यमें तभी सफलता हो सकती है जब कि आस पासके खेतोंके भी खर पतवार फूलनेसे पहिले काट लिये जांय।

चित्र ४—फावड़ा।

(२) खरपतवार-के बीजवाले कूड़े-को खादमें न मिलने देना।

(३) बीजको बोनेसे पहिले साफ़ कर लेना।
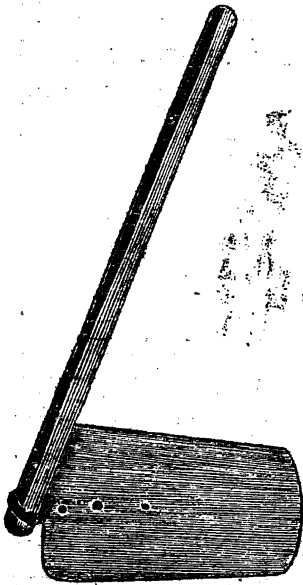
(४) उथली जुताई करना। ऐसा करनेसे खर पतवारोंके बीजोंको उगनेका मौक़ा मिलता है। उग आने पर वह दूर किये जा सकते हैं। लगातार ऐसा करनेसे खेत साफ़ हो जाता है।

(५) खुर्पी, फावड़े या हलसे खोदकर निकाल देना और सावधानीके साथ नष्ट कर देना।

(६) दलदली जगहके खर पतवार पानीका निकास ठीक करनेसे दूर किये जा सकते हैं।

(७) पशुओं द्वारा चरवा देना।

(८) जो खर पतवार जड़ तने या पत्तियोंमें स्थिति रहनेवाली कलियों द्वारा उग आते हैं, उनको खोदने पर हर एक भागको खेतमेंसे निकाल कर नष्ट कर देना चाहिये।

निराई

खेतमेंसे खर पतवारके दूर करनेके कार्यको निकाई या नलाई कहते हैं। इस कामको करनेके लिए सबसे अच्छा यंत्र खुरपी (चित्र १) है। इससे फ़स्लके पौदों-को छोड़कर बाकी अन्य प्रकारके सब पौदोंको खोद-कर निकाल देते हैं। मनुष्य द्वारा इस यन्त्रसे बहुत कम काम होता है। इसलिए अधिक क्षेत्र फल पर कृषि करनेवाले कृषक इससे लाभ नहीं उठा सकते, क्योंकि इसका उपयोग करते समय अधिक मनुष्य दरकार होंगे जो वर्तमान कालमें पर्याप्त संख्यामें कठिनतासे मिल सकेंगे। इस कठिनाईको दूर करनेके लिए आजकल फ़स्लोंको पंक्तियोंमें बोनेका प्रयत्न किया जा रहा है, क्योंकि ऐसा करनेसे बैलों द्वारा खींचे जानेवाले निकाईके यन्त्र पंक्तियोंके बीचमें चलाये जा सकते हैं। इस प्रकारके यन्त्र कल्टीवेटर या हो (cultivator or hoe)—(देखो चित्र २) कहलाते हैं। हाथसे चलाये जानेवाले ऐसे यन्त्रोंको हैंड हो (Hand hoe)—(चित्र ३) कहते हैं। यह यन्त्र खुर्पीकी अपेक्षा दुगना तिगुना काम करते हैं। विशेष लाभ यह है कि थोड़े मनुष्यों से अधिक काम लिया जा सकता है।
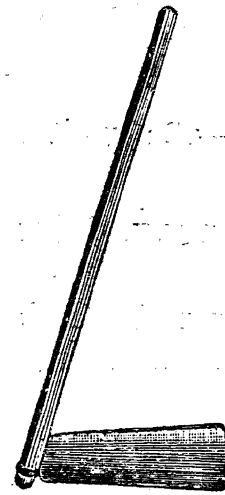
चित्र ५—रुखानी।
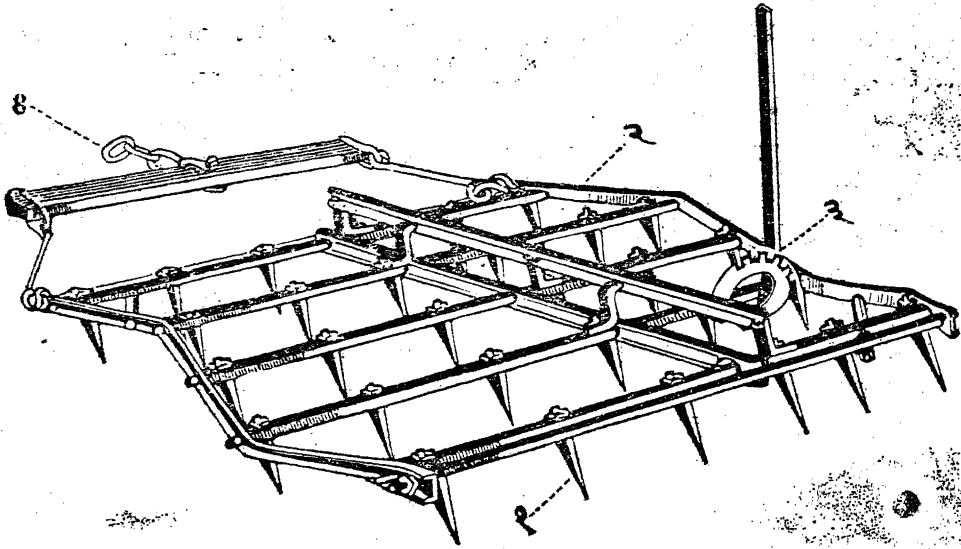
चित्र ६—हैरो। १—कांटे। ३—लीवर। २—चौखटा। ४—बैलोंमें लगानेकी चैन।

गुड़ाई

उपरोक्त कार्यके साथ साथ यह काम भी होता जाता है। इसके करनेसे

(१) ज़मीनकी पपड़ी टूट जाती है जिससे कि खेतकी नमी नहीं उड़ने पाती और सिंचाईमें बचत होती है।

(२) जड़ें गहरी जाती हैं।

(३) खर पतवार उखड़ जाते हैं।

(४) जड़ोंको सांस लेनेको पर्याप्त वायु मिल जाती है।

(५) मिट्टीमें पानी अधिक सोखता है।

इस कार्यको करनेके लिए उपरोक्त यन्त्रोंको काममें लाते हैं। बहुत गहरी गुड़ाई (खुदाई) करनेके लिए कस्सी या फावड़े (चित्र ४-५) को काममें लाते हैं। छिटकवां बोई हुई फ़स्लोंपर आरम्भमें हैरो (चित्र ६) चला देते हैं।

फ्रांसीसी समाजकी क्रान्तिकारी तरङ्ग

१—फ्रांसीसी क्रान्तिका वास्तविक ध्येय
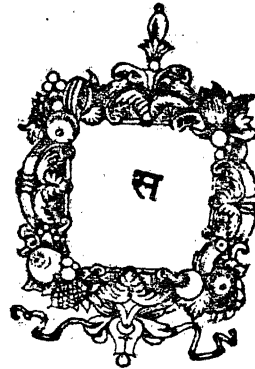
संवत् १८४६ वि० में फ्रांसीसी जातिने स्वतन्त्रता की ऊँची कल्पना करके भविष्यको भूतसे पूर्णतया विलग कर देनेका वह घोर प्रयत्न किया, जिसके गौरव एवं भीषणताको देख कर एकबार संसारकी आंखें चौंधिया गयीं। किन्तु तमाम भूतकालीन संस्थाओंको सूँघ सूँघ कर फेंकनेकी चेष्टा होते हुए भी उनके विचार, स्वभाव एवं धारणाओंमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। पूर्वस्थितिके ही आधार पर नवीन संगठनका स्रोत भी परिचालित हुआ—यहां तक कि फ्रांसीसी क्रान्ति एवं उसके परिणामोंको समझनेके लिए हमें थोड़ी देरके वास्ते वर्तमान फ्रांसको भूल कर उस

फ्रांसकी परीक्षा करनी चाहिये, जिसे क्रान्तिने रण-नाद द्वारा समाधिस्थ करनेकी चेष्टा की थी।

बहुतेरे आचार विचार जिनका प्रादुर्भाव साधारणतः क्रान्तिके द्वारा ही होना मानते हैं, वस्तुतः उनका आधार क्रान्तिके पहलेकी स्थितिमें विद्यमान था। फ्रांसीसी समाजकी वर्तमान अवस्थाका मूल क्रान्तिके पूर्ववाली भूमिमें जकड़ा हुआ मिलेगा। फ्रांसीसी क्रान्तिकी स्थिति भी दो प्रकारकी थी। एक तो वह जब कि फ्रांसीसी लोग भूतकालकी सभी वस्तुओंको समाधिस्थ कर देनेको उत्सुक थे और दूसरी वह जब कि वह अपनी त्यागी हुई भावनाओंके कुछ भागको पुनः हृद्गत करनेके प्रयासमें लग गये थे। प्राचीन शासनके बहुतेरे नियम और राजनीतिक व्यवहार १८४६ वि० में एकाएक नष्ट हो गये थे, किन्तु उसके कुछ ही साल बाद वह पुनः दृष्टिगोचर होने लगे।

यह जाननेकी बात है कि ठीक उसी समय तमाम यूरोपमें क्रान्तिकी तरङ्गें जड़ पकड़ रही थीं। फ्रांसमें इतना ही था कि क्रान्तिकारी लहर वहां और देशोंसे पहले अपने गहरे छींटे मारनेमें लग गयी। इसका आरम्भ आपसे आप उसी समाजमेंसे हुआ जिसे नष्ट करना इस महान् आन्दोलनका उद्देश्य था। १८४६ के पहले खण्डमें समानता और स्वाधीनताका भाव मनुष्योंके हृदयों पर अधिकार जमा रहा था। उस समय फ्रांसीसी लोग प्रजातंत्रके ही नहीं, वरन् स्वाधीनताकी संस्थायें जमानेके प्रयासमें थे। उनका ध्येय विशेषाधिकारोंको नष्ट कर देना ही नहीं था वरन् समान स्वत्वोंका समर्थन भी उनका लक्ष्य था। वह उत्साह पूर्ण, गर्वसे भरा हुआ समय भ्रान्तियुक्त होनेपर भी मानव समाजके हृदयमें सदा वर्तमान रहेगा और चिरकाल तक उनकी निद्राको भङ्ग करता रहेगा, जो मनुष्य जातिको कलुषित करने एवं दासताबद्ध बनानेकी चेष्टा करेंगे। वास्तवमें यह सच है कि फ्रांसीसी राज्यक्रान्तिमें अनेक भ्रान्तिपूर्ण त्रुटियाँ थीं, जिनके कारण अंतमें फ्रांसीसी जातिने अपना पहला उद्देश्य छोड़ कर, स्वाधीनताको भूल कर, एक ऐसा शासन स्वीकार किया जो पहलेसे अधिक स्वापत्त और प्रौढ़ था। राष्ट्रकी समस्त शक्तियाँ एक केन्द्रमें जुटने लगीं और इतनी कठिनाईसे प्राप्त स्वाधीनताके स्थानपर स्वाधीनताका एक ढाँचा मात्र खड़ा कर दिया गया। आत्मशासनके अधिकार,—विचार, भाषण, और लेखनके स्वातन्त्र्य इत्यादि–जो १८४६ के महान् एवं बहुमूल्य प्रतिफल थे नष्ट हो गये तथापि इस स्थितिको भी स्वाधीनताके बड़े नामसे सम्बोधन करनेका साहस लोगोंने किया। अस्तु, चाहे जो हो इतना तो अवश्य है कि फ्रांसकी राज्यक्रान्तिने फ्रांसपर ही नहीं वरन् समस्त यूरोप पर अपना गहरा प्रभाव डाला। प्रस्तुत निबन्धमें उसी क्रान्तिके पूर्व फ्रांसकी सामाजिक स्थिति पर, एवं क्रान्तिके कारणों और परिणामोंपर विचार करना अभीष्ट है।

जिस समय फ्रांसीसी क्रान्तिका आरम्भ हुआ उस समय उसके विषयमें देश और विदेशमें विभिन्न धारणायें प्रचलित हो रही थीं, किन्तु प्रायः किसीने भी इसके वास्तविक रूपको नहीं पहचान पाया। फ्रेडरिक सा प्रतिभाशाली व्यक्ति इस घटनाके सम्पर्कमें होते हुए भी उसके रूपको नहीं जान सका। इतना अवश्य था कि सभी राष्ट्रोंमें कुतूहल पैदा हो गया और सर्वत्र बड़े बड़े परिवर्तनों और सुधारोंकी आशङ्का होने लगी। पर राजाओं और राजमन्त्रियोंकी तो यह धारणा थी कि यह केवल उन सामयिक राजद्रोहोंकी सी कोई घटना होगी जैसी कि सभी देशोंमें कभी कभी हो जाया करती है। १८४८ में पिलनिज़ स्थानमें जर्मनीके मुख्य राजाओंने एकत्र हो कर कुछ सच्चा अनुमान भी जो प्रकट किया वह उनके असली धारणाका द्योतक नहीं था वरन् यह अनुमान कूटनीतिके कारण कपटपूर्ण था। सच तो यह है कि वास्तवमें वह फ्रांसीसी क्रान्तिको केवल स्थानीय एवं अल्प

स्थायी घटना समझते थे और तदनुसार उन्होंने बर्तना भी शुरू कर दिया।

अंग्रेज़ोंको अवश्य अपने इतिहास एवं राजनीतिक स्वाधीनताके चिर अभ्यासके कारण यह अवश्य भासित होता था कि यह घटना एक बड़े क्रान्तिके रूपमें उपस्थित होगी; परन्तु वह भी इसके असली रूप एवं गौरवको समझनेमें असमर्थ थे। आर्थर यङ्ग ने जो क्रान्तिके ठीक पहले फ्रांसमें घूम चुका था इसके वास्तविक रूपको बिल्कुल ही ग़लत समझा। उसे यह भय था कि कहीं यह क्रान्ति तत्कालीन विशेषाधिकार को और भी न बढ़ा दे। बर्क भी जिसके हृदयमें आरम्भमें ही क्रान्ति ने जुगुप्सा उत्पन्न कर दी थोड़े समयके लिए अनिश्चित रूपमें सोचने लगा। उसकी पहली भविष्यद्वाणी यही थी कि यह घटना फ्रांसको निर्बल और नष्टप्राय कर देगी। बाहरके लोगोंको जाने दीजिये। घटनास्थलके ही लोगोंका अनुमान कुछ कम भ्रान्तिमय नहीं था। स्टेट्स जेनरलकी शक्तिहीनता और अल्पस्थायिताके कारण लोग चिन्तित थे और उनको डर था कि कहीं उनका सामना शस्त्रसे न किया जाय। इन भयोंसे बड़े लोग तो विशेष कर घबड़ा रहे थे। उनके आदेशोंमें यह भी था कि 'स्विस सिपाहियोंको यह शपथ करनी होगी कि वह बलवा हो जाने पर भी नागरिकों पर अस्त्र न छोड़ेंगे। लोग समझते थे कि यदि स्टेट्स जेनरल अपने मनका करने पावे तो सब दोष दूर हो जायँगे और बड़े बड़े सुधारोंका मार्ग आसान हो जायगा। पर धीरे धीरे क्रान्ति ने अपना वास्तविक रूप प्रकट करना शुरू किया। राजनैतिक संस्थाओंको नष्ट करके इसने प्रबन्ध सम्बन्धी (civil) संस्थाओं पर हाथ फेरा, कानूनको बदल करके फ्रांसके आचार व्यवहार और भाषा तकको परिवर्तित कर दिया। शासन व्यवस्थाको नष्ट करके समाजकी नींवको भी हिला दिया और सर्वशक्ति सम्पन्नके विरुद्ध भी अपना सुर अलापा। शीघ्र ही इस क्रान्तिने फ्रांसकी सीमा पार करके बड़ी प्रचण्डता लिए हुए रूक्ष सिक्त सिद्धान्तों एवं "अप्रबद्ध विचारों"के साथ राज्य की सीमाओंको गिरा दिया, यूरोपके सिंहासनोंको हिला दिया और जनताको कुचल डाला; यद्यपि, आश्चर्य है कि, जनता इसपर भी क्रान्तिकारियोंके साथ थी। जो घटना यूरोपके राजाओं और राजनीतिज्ञोंको साधारण सी जान पड़ती थी वह इतनी अपूर्व, असाधारण, व्यापक एवं अज्ञेय सिद्ध हुई कि उसे देखकर लोगोंकी आंखें आश्चर्यसे चकित हो गयीं। कुछ लोग इस बड़ी शक्तिको समाजके लिए कृतान्त सा समझने लगे और बहुतोंको इसमें * राक्षसी भावका समावेश दृष्टिगोचर हुआ। किन्तु औरोंको इस क्रान्तिमें नवयुगका अरुणोदय देख पड़ा तथा उनकी आंखों के सामने इस क्रान्तिकी लाभकारी चमक देख पड़ी। सच पूछिये तो संसारके अर्वाचीन इतिहासमें फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण घटना थी। एक विद्वानने ट्रायके अवरोध और फ्रांसीसी राज्य क्रान्तिको भूमण्डलकी दोसबसे बड़ी घटनायें माना है।

अट्ठारहवीं शताब्दीकी प्रचलित धारणायें भी क्रान्तिके प्रधान कारणोंमें गिनी गयी हैं और यह धारणायें प्रायः नास्तिकतासे पूर्ण थीं। पुनः यह दो प्रचार की थीं। एक तरफ तो समस्त नवीन सामाजिक और राजनीतिक विचारोंका समावेश था; जैसे मनुष्योंकी प्राकृतिक समानता, जाति एवं श्रेणीके विशेषाधिकारोंका लोप, जनताका आधिपत्य, समाजकी अखिल शक्ति सम्पन्नता, नियमों की समानता आदि। यह सब सिद्धान्त फ्रांसीसी क्रान्तिके कारण ही न थे वरन् यही उस क्रान्ति का सार था। उसके परिणामोंमेंसे यह ही प्रधान, स्थायी एवं तथ्य पूर्ण (समयकी दृष्टिसे) थे। दूसरी तरफ उस शताब्दीके विचारज्ञ लोग बड़े आवेशके साथ प्रचलित धर्म (Religion) पर आक-

* १७९७ एम० डी० मेस्टर

मण करने लगे। उन्हें उस धर्मके महन्तों संस्थाओं और सिद्धान्तोंसे चिढ़ थी। इसीका विनाश करने के लिए वह ईसाई धर्मके मूलोच्छेदनका ही प्रयत्न करने लगे। यदि इस धार्मिक आयोजनमें परलोक का ही ध्यान रखा जाता तो इसके मूलोच्छेदनके उपाय शायद न किये जाते। किन्तु वास्तवमें यह एक महत्वपूर्ण राजनीतिक संस्थाके रूपमें था और विशेषकर इसी कारण इसके प्रति भीषण घृणाओंका प्रादुर्भाव हुआ। महन्त और पुजारी गण परलोककी सामग्रियों पर शासन करनेके अतिरिक्त बड़े बड़े ज़मींदार, अधिकारी, और राज्य प्रबन्धक थे। धर्मके प्रति इस घृणाका यह कारण नहीं था कि समाजके नये सङ्गठनमें वह अपना स्थान पानेमें असमर्थ था, प्रत्युत इसका कारण यह था कि पुराने सामाजिक सङ्गठनमें, जिसका विनाश निश्चित था इस संस्थाने सबसे प्रबल एवं सर्वाधिक विशेषाधिकारसम्पन्न स्थान ग्रहण कर लिया था। क्रान्तिके परिणामोंपर विचार करनेसे तथ्य विदित हो जायगा। ज्यों ज्यों क्रान्ति के राजनीतिक परिणाम दृढ होते गये, ज्यों ज्यों पुरानी राजनीतिक संस्थाओंकी पूर्णाहुति होती गयी त्यों त्यों शक्ति, विशेषाधिकार और श्रेणियों के अन्तके साथ साथ इस नास्तिकताका भी अन्त होता गया और धीरे धीरे मनुष्योंके हृदयों पर धर्मने पुनः अपना स्थान जमा लिया।

यह दशा फ्रांसकी ही नहीं थी वरन् यूरोपमें शायद ही कोई ईसाई सम्प्रदाय ऐसा हो जिसे फ्रांसीसीक्रान्तिसे नवजीवन लाभ न हुआ हो। यह सोचना बड़ी भारी भूल है कि जनसत्ताक समाज धर्मके विरुद्ध ही सम्भव है। चिरकालके अनुभवने यही शिक्षा दी है कि धार्मिक विश्वासका जीवन मूल जनताके हृदयोंपर अधिकार रखता है। वास्तवमें धर्मकी अनेक बातें जनसत्ताके पक्षमें हैं। जो बातें धार्मिक संस्थाओंके विषयमें कही गयी हैं वही सामाजिक संस्थाओंके विषयमें भी कही जा सकती हैं। जब क्रान्तिने उस समय तककी प्रचलित संस्थाओं और रीतियोंका दमन कर दिया तब ऐसा विदित होता था कि क्रान्तिके द्वारा किसी विशेष सामाजिक सङ्गठनका ही अन्त न होगा प्रत्युत यह क्रान्ति सब प्रकारके सङ्गठनका ही विनाश कर डालेगी। किन्तु इसमें भी ऊपरी तथ्यके अतिरिक्त कोई वास्तविक सच्चाई नहीं है। फ्रांसीसी क्रान्तिका ध्येय प्राचीन शासन पद्धति का ही परिवर्तन करना न था वरन् उसका तो उद्देश्य ही यह था कि प्राचीन समाज सङ्गठनका अन्त कर दिया जाय। इसीसे क्रान्तिने सब प्रकारके स्थिर अधिकारों, मान्य प्रभावों, और व्यवहारोंको नष्ट करके नये आचार विचार एवं, रीति नीति प्रचलित करनेकी ठान ली। ऐसा मालूम होता था कि क्रान्ति मनुष्योंके हृदयोंसे उन सभी भावोंको दूर कर देगी जिनपर सम्मान और आज्ञापालनका आधार खड़ा है। सम्प्रति यह क्रान्ति आदर और स्पर्धाकी वस्तु हो रही है। सभी शासक अपने अपने राज्योंमें विशेषाधिकारीं को मिटानेमें योग देने लगे हैं। वह इस क्रान्तिकारी कार्यको श्रमके साथ अपनी दूरदर्शिताके कारण उठाते हैं। सर्वत्र दीन धनाढ्योंके विरुद्ध, मध्यम श्रेणीके लोग उच्च पदवालोंके विरुद्ध, किसान जमींदारोंके विरुद्ध उठ पड़े हैं। और अधिकारी वर्गको अपनी रक्षा एवं स्थिरताके लिए उदार नीतिका अवलम्बन करना पड़ा है। फ्रांसीसी क्रान्तिने उनके हृदयोंमें भय और शिक्षाका एक साथ ही समावेश कर दिया।

सभी शासन सम्बन्धी अथवा राजनीतिक क्रान्तियाँ किसी देश विशेषमें प्रादुर्भूत हुई हैं और उसी सीमाके भीतर उनका विकास होता रहा है, परन्तु फ्रांसीसी क्रान्ति सीमाबद्ध कभी नहीं हुई। प्रत्युत इसने यूरोपके धरातलसे सभी पुरानी सीमाओंको मिटा दिया। नियम, व्यवहार, रीति नीति और भाषा आदिके भेदोंके रहते हुए भी इस क्रान्तिने विदेशियोंमें भ्रातृ प्रेमका समावेश कर दिया एवं अपने ही देश बन्धुओंके बीचमें

शत्रुताके बीजका आरोपण कर दिया। अथवा इस क्रान्ति ने विभिन्न राष्ट्रोंका ध्यान छोड़कर सभी राष्ट्रोंके मनुष्योंका एक विद्वत्समाज सा खड़ा कर दिया। इतिहासमें फ्रांसीसी क्रान्ति जैसा कोई भी राजनीतिक आन्दोलन नहीं हुआ। हां, इसकी तुलना कुछ धार्मिक क्रान्तियोंसे की जा सकती है। रूसकी राज्यक्रान्ति बिल्कुल नयी चीज़ है। अतएव उससे फ्रांसीसी क्रान्तिकी तुलना करना कठिन है। सोलहवीं शताब्दीके धर्म सुधार आन्दोलनने (Reformation) विभिन्न राष्ट्रोंके व्यक्तियोंको एक सूत्रमें परिबद्ध कर दिया एवं एकही राष्ट्रके लोगोंको एक दूसरेसे बिलग भी कर दिया। अन्तर्राष्ट्रीय युद्धोंने आन्तरिक समरका रूप धारण कर लिया। एवं प्रत्येक आन्तरिक (civil) युद्धमें विदेशी लोग भी मिले जुले थे। राष्ट्रोंकी पुरानी भावनाओंके स्थानपर नवीन भावनाओंका समावेश हुआ तथा देश भेदके विचार परिवर्तित होकर सिद्धान्तोंके ही विचार होने लगे। ठीक यही सब बातें १८४६ वि० की क्रान्तिमें भी दुहराई गयीं।

फ्रांसीसी क्रान्ति एक ऐसी राजनीतिक क्रान्ति थी जिसने धार्मिक क्रांतियोंकी पद्धतिका अनुसरण विशेष रूपसे किया। इसमें धार्मिक आन्दोलनोंके प्रत्येक मुख्य लक्षण विद्यमान थे। इसका विस्तार तो विदेशोंमें हुआ ही, किन्तु इसका प्रचार भी उन उन देशोंमें उपदेशकों और प्रचारकों द्वारा हुआ। जिस उत्साहके साथ इस क्रान्तिके उद्देश्योंका प्रचार विदेशोंमें किया गया उसे देख कर बड़ा आश्चर्य होता है। राजनीतिक आन्दोलनोंकी अपेक्षा धार्मिक आन्दोलनोंका प्रचार बड़े विस्तृत क्षेत्रमें होता है। इसका कारण यह है कि धार्मिक आन्दोलनोंमें देश भेदका विचार न करके सम्पूर्ण मानव समाजको ईश्वरके प्रति कर्तव्य, कुटुम्ब और समाजके प्रति कर्तव्य आदिकी शिक्षा दी जाती है। जिस आन्दोलनने देशभेद श्रेणीभेद और शासनभेद आदिका ध्यान न करके सम्पूर्ण मानव समाजको एक सूत्रमें बाँधनेकी चेष्टा की है उसीको सर्वाधिक व्यापक सफलता भी प्राप्त हुई है।

फ्रांसीसी क्रान्ति भी धार्मिक आन्दोलनोंकी भांति व्यापक थी। इसने केवल फ्रेंच नागरिकके ही अधिकारों पर ध्यान नहीं दिया वरन् इस क्रान्तिने मनुष्य मात्रके राजनीतिक कर्तव्यों और अधिकारोंका निर्देश किया। इसे सभी लोग समझ सकते थे और सभी स्थानों पर इसका अनुकरण भी हो सकता था। इसने फ्रांसके सुधारसे भी अधिक समस्त मानव जातिकी उन्नति पर लक्ष्य किया—वह घोर सार्वजनिक उत्साह और प्रचार इसीका प्रतिफल था। वास्तवमें फ्रांसीसी क्रान्तिने ईश्वर विहीन, उपासना रहित, भविष्य जीवन (future life) शून्य एक उत्साहमय धर्म ही प्रकट कर दिया। लेकिन यह कभी न सोचना चाहिये कि फ्रांसीसी क्रान्ति बिल्कुल ही नयी चीज़ थी। प्रत्येक युगमें—माध्यमिक कालमें भी—ऐसे आन्दोलक थे जिन्होंने प्राकृतिक अधिकारों एवं सार्वजनिक नियमोंका आदर्श रख कर मनुष्योंकी रीति व्यवहार एवं शासन प्रणाली तकको परवर्तित करनेकी चेष्टा की थी; किन्तु उस समय भूमि तैय्यार न थी। अट्ठारहवीं शताब्दीके यूरोपमें जिस चिनगारीने आग लगा दी वही पन्द्रहवीं शताब्दीमें बड़ी आसानीसे बुझ गयी थी और उसका कोई विशेष असर न पड़ा। क्रान्तियां तब तक सफल नहीं हो सकतीं जब तक कि राष्ट्रकी स्थिति, प्रकृति और रीतिमें आवश्यक परिवर्तन न हो चुके हों। ऐसे ऐसे समय होते हैं जब कि लाख यत्न करने पर भी समाज सुधारोंको समझ भी नहीं सकता लेकिन वही समाज उपयुक्त समय आने पर ज़रासे इशारे पर उन्हीं सुधारोंको पूर्णतः अपना लेता है। फ्रांसीसी क्रान्तिने जिस रीतिका अनुसरण किया और जो उसके परिणाम हुए उन पर कुछ भी आश्चर्य्य न करना चाहिये। प्रत्युत आश्चर्य्य तो यह है कि इतने विभिन्न देशों

एवम् राष्ट्रोंमें एक ही समय इन परिवर्तनों और सुधारोंके लिए क्षेत्र बिल्कुल तैय्यार मिला।

जिन जातियोंने रोमन साम्राज्यको नष्ट किया और अंतमें जिनके द्वारा यूरोपके वर्तमान राष्ट्रोंका निम्मार्ण हुआ उनकी जाति, देश और भाषा भिन्न भिन्न थीं। यदि समानता थी तो केवल बर्बरतामें ही। तथापि इस असमान समूहसे एकाएक कुछ एक समान नियमोंका प्रादुर्भाव हुआ। यह नियम और संस्थायें रोमन कानूनके अनुकरण मात्र न थे। दोनोंमें महान् अन्तर था। इनके उद्भव, प्रचार आदिका विवरण यहां देनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि प्रत्येक यूरोपीय राष्ट्रमें माध्यमिक कालमें इनका विशेष प्रचार था। फ्रांस इङ्गलेंड और जर्मनी तीनोंके तत्कालीन नियमों और संस्थाओंकी ध्यानपूर्वक परीक्षा करने पर बड़ी समानता देख पड़ेगी। तीनोंमें शासनका कार्य एकसे सिद्धान्तोंके अनुकूल था; राजनीतिक संस्थायें एकसे तत्वोंकी बनी थीं, उनके अधिकार एकसे थे, समाजका विभाग एक ही रीतिसे हुआ था। तीनोंमें रईसोंके पद, अधिकार, स्वभाव आदि समान थे। नागरिक संस्थायें एक समान थीं, ग्रामीण मण्डलोंका भी शासन एक ही रीतिसे होता था। कृषकोंकी दशामें बहुत थोड़ा अन्तर था। भूमिका आधिपत्य, अधिकार और कर्षण आदि एक ही रीति पर था। पोलैंडसे आयरिश चैनेल तक कोई विशेष भेद था ही नहीं। अथवा यहां तक कहा जा सकता है कि चौदहवीं सदीकी सामाजिक, राजनीतिक, शासन सम्बन्धी, न्याय सम्बन्धी, आर्थिक एवं साहित्यिक संस्थायें तमाम यूरोपमें वर्तमान समयसे अधिक एक सी थीं।

प्रकृति के रहस्य

(गतांक से सम्मिलित)

रंग और डील डौलमें वह अत्यन्त सुन्दर और मनोहर होते हैं। फूलों की भांति यह भी लाल, पीले, नीले, आदि कई रङ्गके होते हैं। सामान्यतः छुए बड़ी जल्दी उगते और बढ़ते हैं और इसी शीघ्रतासे जीवन समाप्त भी करते हैं। एक प्रकारके काले काले गोबर छत्ते जो बरसातमें बहुत उगते हैं, जिन्हें कोपरीनस (cop inus) कहते हैं एक ही रातमें उग कर पूरे बढ़ जाते हैं और थोड़े घंटों पश्चात् गल कर समाप्त हो जाते हैं। पहाड़ोंमें ठंडी जगहोंमें एक प्रकारका तुंबीके आकारका फफोला फंगस होता है जो एक ही रातमें बड़े कुम्हड़ेके बराबर बढ़ जाता है। विलायतमें वृक्षों पर उगनेवाला कानके आकारका एक कठफूला पाया गया है जिसकी परिधि ७½ साढ़े सात फुट और तौल १७ सेर तक होती है और उगनेके चार सप्ताहके भीतर इतने डीलका हो जाता है।

गोबर छत्ते बहुधा बड़े कोमल होते हैं, यहां तक कि कई तो हाथसे दब जाने पर गल कर चूर हो जाते हैं। पर यह अत्यन्त आश्चर्य जनक है कि भूमिसे उगता हुआ छुआ ऊपरके बड़े भारी बोझको हटा सकता है। डाक्टर कारपेन्टर लिखते हैं कि एक बार वासिंगस्टोक शहरमें ऐसी घटना हुई कि फर्श पर बिछे हुए हमवार पत्थर एकाएक उठ गये। देखने पर मालूम हुआ कि नीचेसे गोबर छत्ते निकल रहे हैं। उखड़े हुए पत्थरोंमें कुछ बहुत भारी थे, एक २२ इञ्च लम्बा और २० इञ्च चौड़ा था जिसकी तौल एक मनसे कुछ ऊंची थी। यह पत्थर सीमेन्टसे जुड़े हुए थे।

इससे पाठक स्वयं इन पौधोंकी शक्तिका अनुमान कर सकते हैं।

घुत्रोंकी गन्ध भी अनेक प्रकारकी होती है। कोई तो सोंधी सुगन्ध वाले होते हैं; किसीमें गन्ध नहीं रहती। थोड़ेसे ऐसी दुर्गन्ध वाले होते हैं कि उनके पास मनुष्यका ठहरना कठिन है।

यह हर स्थलमें हर मौसम और जलवायुमें पाये जाते हैं। यद्यपि थोड़े ही लोग इनके हालसे परिचित हैं तथापि इनकी जाति साधारण फूलनेवाली वनस्पतिकी जातियोंसे किसी प्रकार कम नहीं हैं।

अन्य वृक्षादिकी भांति प्रकाश वाले खुले स्थलोंको वह पसन्द नहीं करते वरन् अंधेरी गुफाओंमें, दलदलोंमें, पेड़ोंके खोखलों इत्यादि जगहोंमें, जहां अन्य पौधों का रहना कठिन है यह बहुतायतसे मिलते हैं। कोई कोई तो बिलकुल भूमिके गर्भमें छिपे रहते हैं।

(क्लोरोफिल) हरित राग हीन होनेसे यह हवासे अपने खानेके आङ्गरक (organic) पदार्थ नहीं बना सकते। अतएव इन्हें पशुओं अथवा पौधोंके जीवित या मृत शरीरसे इन पदार्थोंको प्राप्त करना पड़ता है। फलतः जिस जगह यह वस्तुएं नहीं हैं वहां फंगसका जीवन असम्भव है।

वृक्षादिकी भांति फंगस भी बीजसे पैदा होते हैं और बढ़नेके अनन्तर फल फूल देकर मर जाते हैं। बहुधा उनके बीज जिन्हें दाने स्पोर (spores) कहते हैं इतने छोटे होते हैं कि बिना अणुवीक्षणके उनकी बनावट नहीं देखी जा सकती। कुछ जीवाणुओं (Bacteria) की भांति छोटे होते हैं और लाखों की संख्यामें हवामें उड़ते रहते हैं, पर दिखलाई नहीं पड़ते। समझनेके लिए किसी गोबरछत्तेको लीजिये। उसमें छातेके नीचेकी सतह पर पतली पतली परतें जड़ी होती हैं जो केन्द्रसे परिधि तक अर्धव्यास बनाती हुई होती हैं। इन्हीं परतोंके भीतर बीज (spores) बनते हैं। एक छत्तेसे लाखों बीजोंकी उत्पत्ति होती है। (चित्र ७)
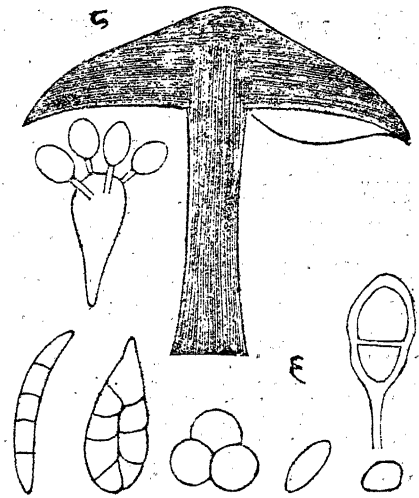
चित्र ७ तथा ८

यदि किसी छत्तेकी डंडी काटकर उसे कागज़ पर बिठा दिया जाय तो कुछ समयके पीछे स्पोर कागज पर झड़ जायँगे और छतेके आकारका अक्स पड़ जायगा। यदि स्पोर सफेद हों तो अक्स लेनेके लिए काला कागज लेना चाहिये।

स्पोर भी छुत्रोंकी जातियोंके अनुसार अनेक प्रकारके होते हैं। वह भी बीजकी भांति उचित वस्तुपर पड़नेसे जम जाते हैं और नये फंगसको पैदा करते हैं, जिससे फिर यह स्पोर पैदा होते हैं। (चित्र ८)

बहुधा स्पोर तीव्र गतिसे फैंके जाते हैं जिससे हवामें उड़ जायं। तुम्बीके आकारके फफोलेकी जातिके छुत्र जिन्हें लाईकोपर्डन (Lycoperdons) कहते हैं कभी कभी बड़ी आवाज़के साथ बीजोंकी भरी काली बुकनीको हवामें छोड़ते हैं, मानों बन्दूक बाज़ी कर रहे हों। यह अद्भुत दृश्य बरसातके अन्तमें पहाड़ोंमें देखनेमें आता है। (चित्र ९)

सब जानते हैं कि कई पेड़ पौधे बीजके अतिरिक्त कलम से भी उगाये जाते हैं यहां तक कि कई पेड़ोंमें बीज निरर्थक हो जाता है जैसे केला आलू इत्यादिमें। यह तरु मूलों से उगाये जाते हैं। फंसगमें यह शक्ति बहुत बढ़ी हुई है। उसके शरीर

के सूतोंका एक छोटा टुकड़ा भी फिरसे नया पौधा पैदा कर सकता है। तथापि इनमें भी कुछ जातियां

चित्र ९—लाइको पर न

ऐसी हैं, जिनमें स्पोर (बीज) होते ही नहीं; उनके सूतोंके गुथ जानेसे कड़े दानेसे बन जाते हैं, जो पौधेके मरजाने पर मूलका काम देते हैं। (चित्र १०)

घुए पानीमें भी रहते हैं। पानीमें रहनेवाले पौधों या मछलियोंपर वह उग जाते हैं। जंगलोंमें पेड़ोंके नीचे और अन्य खादवाली मट्टीमें छत्तेकी जातिवाले घुए बहुतायतसे उगते हैं; परन्तु जिस भूमिमें जीव जन्तु वनस्पति आदिके कण न हों उसमें नहीं उगते। बहुधा घुओंके रहनेकी जगहें निश्चित होती हैं। एक प्रकारके घुए जानवरोंके गोबर मैले आदिमें उगते हैं। कभी कभी विशेष विशेष जातिके विशेष जानवरोंके गोबरमें मिलते हैं। कुछ काष्ठमें रहनेवाले हैं। आपने देखा होगा कि कोई लकड़ी जमीनमें बाहर पड़ी रहने से सड़ने लगती है। इसका कारण अधिकतर वही घुए होते हैं जो उसमें घुसकर उसका चूर्ण कर सड़ा देते हैं। कई समय सूखे वृक्षों या खम्भोंके ऊपर फंगसके कई पौधे लगे हुए दिखलाई पड़ते हैं, जिनसे उनके भीतरका भाग खोखला हो जाता है। कुछ जातियां झड़े हुए सूखे पत्तोंपर निवास करती हैं। बहुत से हरी वनस्पति पर जीवन निर्वाह करते हैं। एक जातिका फंगस दूसरी जाति पर आक्रमण करता और उसे खा जाता है। अन्तमें कुछ ऐसे हैं जो जानवरों तक पर धावा कर देते हैं। छोटे छोटे कीड़े मकोड़ोंके शरीरमें घुस कर बढ़ते जाते हैं और कभी कभी उन्हें मार भी डालते हैं। मक्खीके शरीरमें एक प्रकारका फंगस उगता है जो उस पर सफेद जालेकी तरह फैल जाता है। यह रेशमके कीड़ेमें एक बीमारी पैदा कर देते हैं। घुए मनुष्यके शरीर तकमें घुस जाते हैं और रोग उत्पन्न कर देते हैं। केप्टेन डिसैलो कहते हैं कि कुछ घुए दाद उत्पन्न करते हैं; शरीरके बाह्य अथवा आन्तरिक अंगोंमें भांति भांतिके रोग इनके कारण हो जाते हैं; कभी कभी घाव बना देते हैं या सूजाक और राजयक्ष्मा (tuberculosis) की सी बीमारी पैदा कर देते हैं। उनकी राय है कि हिन्दुस्तानमें इनकी बीमारी बहुत फैली है। उन्होंने एक गोआनीको देखा जिसे फंगसके कारण दमेका रोग हो गया था। साधारण वनस्पति—वृक्षों, पौधों, फलों फूलों—से घुओंका जो पारस्परिक संबन्ध है वह

बड़े महत्वका है। उसका विस्तार पूर्वक वर्णन किसी दूसरे लेखमें देनेका प्रयत्न किया जायगा।

अब यह भी देखना चाहिये कि रोगादि उत्पन्न करनेके अतिरिक्त घुए और किस काममें आते हैं। थोड़ी जातियां इनकी ऐसी हैं जो खानेके काममें आती हैं। एक प्रकारका गोबरछत्ता पश्चिमी मुल्कोंमें तरकारीकी तरह बाग़में उगाया जाता है और बड़े चावसे खाया जाता है। गोबरछत्तोंके खानेके उपयोगके विषयमें पाठकोंने विज्ञान भाग १४ संख्या ३ दिसम्बर १९२१ के अंकमें पृष्ठ १०९ में पढ़ा होगा। पर यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि जितने गोबरछत्ते भूमिमें निकलते हैं वह सब खानेके योग्य नहीं, बरन् अधिकतर महान विषैले होते हैं, जिनके खा जानेसे कई बार दुर्घटनायें हो चुकी हैं। इसलिए किसी प्रकारके गोबरछत्तेको खानेसे प्रथम यह निश्चय करलेना चाहिये कि वह खाद्य है अथवा विषाक्त। यूरोप अमेरिका आदि देशोंमें फंगस शास्त्रवेत्ता (Mycologists) पहिले इस बातका पता लगा लेते हैं तब सर्व साधारण उनकी सम्मतिके अनुसार कार्य करते हैं।

काश्मीर और हिमालयकी तथा अन्य पर्वत श्रेणियोंमें एक फंगस होता है, जिसे गुच्छी कहते हैं। गुच्छियां सुखाकर कश्मीर व पंजाबके बाज़ारोंमें बिकती हैं। इनकी तरकारी बड़ी स्वादिष्ट होती है। भूमिके भीतर होने वाली जातियोंमें भी कुछ खानेमें बहुत अच्छी होती हैं। इस जातिका एक फंगस नीलगिरी पहाड़में मिलता है, जिसे वहांके लोग
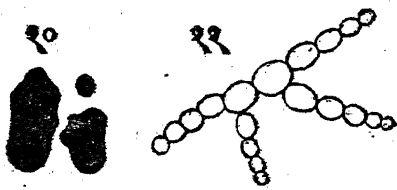
चित्र १० तथा ११

खाते हैं। आस्ट्रेलियामें इस जातिका खाद्य फंगस फुट बौलके बराबर होता है।

आटा आदिमें खमीर उठानेकी वस्तु भी एक प्रकारका फंगस है। इसके पौधे अत्यन्त सूक्ष्म एककोषीय होते हैं, जो अणुवीक्षण यन्त्रसे चित्र ११ के आकारके दिखाई देते हैं। (चित्र ११)

इरगौट (Ergot) के नामसे, जो प्रसूतावस्थामें दवामें स्त्रियोंको दिया जाता है, बहुत लोग परिचित होंगे। यह फंगस राई (rye), गेहूं या और बहुत सी घासोंपर विलायतमें उगता है; पर हिन्दुस्तानमें नहीं पाया गया है। कुछ घुए जुल्लाबके काममें आते हैं। हिमालयके पहाड़ोंके जङ्गलोंमें फफोलेकी जातिके तुम्बी वा सुपारीके आकारके घुए बरसातमें अधिकतासे उगते हैं। इनके सिरे पर एक छेद होता है और भीतर काली काली बुकनी भरी रहती है। थोड़ा दबाने पर यह बुकनी फव्वारेकी तरह बाहरको निकलती है। इस जातिके फंगसको अङ्गरेजीमें लाईकोपर्दन (Lycoperdon) कहते हैं। इसकी बुकनीको जले हुए छालों पर लगाते हैं। अन्य अनेकों छोटे मोटे काम घुओंसे लिये जाते हैं। लोग इनके दीवारों पर लगानेके चौखटे बनाते हैं। किसी प्रदेशमें इनकी गरम टोपियां बनाई जाती हैं। यूरोपमें कहीं कहीं उनसे रङ्ग निकाला जाता है।

घुओंकी एक विलक्षणता यह है कि बहुतोंमें फास फोरसकी भांति चमक होती है। कुछ गोबर छत्तोंमें यह चमक पाई जाती है। बाहरी छत्ता और भीतरी सूत, चाहे यह मट्टीमें हों चाहे लकड़ीके भीतर दोनों चमकदार होते हैं। यह प्रकाश जुगनूकी ज्योतिकी भाँति होता है और कई वैज्ञानिकोंका, जिन्हें इसे ध्यानपूर्वक देखनेका अवसर मिला है, कथन है कि इस प्रकाशसे काग़ज़ पर लिखे अक्षरोंको पास ले जाकर देख सकते हैं। एक बार मेरे एक मित्रने बड़े आश्चर्यके साथ कहा कि मैंने एक लकड़ीका टुकड़ा पाया है जो अन्धेरे में चमकता है। उसमेंसे एक छोटा सा टुकड़ा काट कर उन्होंने मुझे दिया ताकि मैं पता लगाऊं कि वह क्या बहुमूल्य पदार्थ है। यह टुकड़ा कई दिन तक चमकदेता रहा; तदनन्तर यह चमक

जाती रही। कुछ समयके पीछे उपरोक्त बातका पता लगने पर मैंने अनुमान किया कि उस टुकड़ेकी चमक फङ्गसके सूतोंके कारण थी और पीछे उसके मर जाने पर नष्ट हो गई।

सम्भव है कि बहुत सी ज्योतियां जो अन्धेरी रातोंमें पहाड़ी जङ्गलोंमें दिखाई पड़ती हैं किसी फङ्गसकी चमकसे होती हों।

—सुरेन्द्रदत्त जोशी, बी. एस-सी.

हमारी सहज क्रियाएँ और शिक्षा

मनुष्यमें बहुत सी क्रियाएँ स्वाभाविक होती हैं, जो भिन्न भिन्न अवस्थाओंपर उदय होती हैं। जैसे चिल्लानेकी क्रिया जन्मसे ही साथ रहती है, प्रेमकी क्रियाका विकास कुछ समय पीछे होता है और सन्तानोत्पादन क्रिया कई वर्ष पीछे उत्पन्न होती है। बिना कुछ सहज क्रियाओंके शिक्षा असम्भव है, चाहे वह क्रियाएँ अच्छी हों या बुरी। बुरी प्रकृतियोंका होना भी उनके बिल्कुल अभावसे अच्छा है। क्योंकि अगर यह क्रियाएँ बुरी भी होंगी तो क्या, उनके आधारपर हम अच्छी प्रकृतियाँ बना तो सकते हैं। परन्तु कल्पना कीजिये कि एक बालक ऐसा है जिसमें नैसर्गिक बुद्धि है ही नहीं अर्थात् जो सहज क्रियाओंसे बिल्कुल विहीन है। जो बात हम उसे बतलाते हैं उसका उसके हृदयपर कुछ प्रभाव ही नहीं पड़ता। ऐसी दशामें हम उससे कोई निश्चित कार्य नहीं करा सकते। दूसरे शब्दोंमें यों कहना चाहिये कि ऐसा बालक शिक्षित बनाया ही नहीं जा सकता।

सहज क्रियाओंपर ही शिक्षा अवलम्बित है। इसलिए आवश्यक है कि शिक्षकको शिक्षाके स्तम्भोंका पूर्ण ज्ञान होना चाहिये, जिसमें वह इन सहज क्रियाओंके विकासकी भली भांति देख रेख कर सके, आवश्यकतानुसार एकके स्थानपर दूसरी आरोपण कर सके और उनकी नींवपर शिक्षा रूपी इमारत को खड़ा कर सके। माता पिताओंको भी ऐसा ज्ञान बहुत ज़रूरी है, क्योंकि बच्चा आरम्भमें घरमें ही शिक्षा प्राप्त करता है। बल्कि माता पिताओंको अध्यापकोंकी अपेक्षा ऐसे ज्ञानकी आवश्यकता किसी प्रकार कम नहीं, प्रत्युत अधिक ही है। कारण स्पष्ट है; ६–७ वर्षकी अवस्था तक तो बच्चेके शिक्षक माता पिता ही रहते हैं। कुछ लोगों का तो यह कहना है कि जो शिक्षा जीवनके प्रथम ४–५ वर्षोंमें मिलती है वह उम्र भरमें नहीं दी जा सकती। वास्तवमें भावी (स्कूलकी) शिक्षाका आधार तो यही शिक्षा है जो बालक बचपनमें मिलती है।

जन्मके समय चिल्लाना, हाथ से पकड़ना और मुँहसे चूसना, यह तीन सहज क्रियाएँ प्रत्येक बच्चे में होती है। फिर समय समय पर नई प्रकृतियाँ जन्म लेती रहती हैं और इन्हीं प्रकृतियोंकी नींव पर अन्य प्रकृतियाँ बनती हैं जो बार बारके प्रयोग द्वारा कालान्तरमें आदतोंका रूप धारण कर लेती हैं। शिक्षाका उद्देश्य यह है कि यह प्राप्त प्रकृतियाँ उत्तम और उत्कृष्ट बनें। अब हम कुछ आवश्यक प्रकृतियोंपर विचार करते हैं—

भय—यह सहज क्रिया समस्त जीवोंमें अत्यन्त प्राचीन कालसे पाई जाती है। आत्म-रक्षा बिल्कुल स्वभाविक है। हमारे अस्तित्वका कारण यही है। यदि आत्म-रक्षाकी नैसर्गिक क्रिया जीवोंमें इतनी प्रबल न होती तो जीवोंकी बहुत सी जातियाँ अब तक कभीकी नष्ट भ्रष्ट हो गई होतीं और आज दिन उनका नाम तक न सुनाई देता। मनुष्य का प्राचीन कालमें गुफाओंमें रहना तथा वर्तमान समयमें घरोंमें निवास करना, पशुओंका भिटों तथा गुफाओंमें आश्रय लेना, पक्षियोंका घोंसलोंमें बसेरा लेना और कीड़ों मकोड़ोंका बिलों तथा अन्य ऐसे ही स्थानोंपर छिपकर वास करना आदि

बातें हमको यही बतलाती हैं कि आत्म-रक्षा सभी प्रकारके जीवोंका अत्यन्त प्राचीन कालसे मूल-मंत्र रहा है।

बच्चेको दो बातोंसे स्वभावतः भय लगता है। प्रथम तो अन्धकार और दूसरे अकेलापन। मनुष्य जब असभ्य दशामें रहता था तब उसको अंधेरेमें बहुधा जंगली पशुओंका सामना करना पड़ता था। यह क्रिया हमारे पुरखोंकी दाय है। अकेलापन भी बच्चेको नहीं भाता, कारण यह है कि असभ्य दशामें जब कोई मनुष्य अकेला रह जाता था तो हिंस्र पशुओंका मुकाबला हो जानेपर उसकी रक्षा असम्भव हो जाती थी। धीरे धीरे मनुष्यको समाजमें रहनेके लाभ ज्ञात हुए और अब वह सामाजिक जीव है।

युवाओं तथा वृद्धोंमें से भी बहुतेरे ऐसे हैं कि जिनको यह मालूम होते हुए भी कि अमुक स्थानमें किसी प्रकारका भी डर नहीं है, वहां जानेका उन्हें साहस नहीं होता। बड़े होने पर यह भय स्वभावतः कम होता जाता है, क्योंकि बुद्धिके विकासके साथ साथ हमें यह बात भी मालूम होती जाती है कि अँधेरे तथा अकेलेमें जितना डर बचपनमें माना जाता था, वास्तवमें उसका शतांश क्या सहस्रांश भी नहीं है। इस प्रकारके भयका अधिक मात्रामें होना बहुत हानिकारक है। यत्न द्वारा यह थोड़ा बहुत अवश्य कम किया जा सकता है। वह माताएँ सचमुच बड़ी मूर्खता करती हैं जो बच्चोंको 'हौआ' आदि कह कर डराया करती हैं। इस प्रकार पाले हुए बच्चोंको अन्धकार क्या प्रकाशमें भी भय मालूम हुआ करता है। इसका प्रभाव उन बच्चोंके कोमल हृदय तथा शरीर-पर भी बुरा पड़ता है। वह बड़े होनेपर बहुधा भयभीत, कायर, निर्बल तथा उत्साहहीन हुआ करते हैं।

बड़ोंकी ओरसे बच्चोंको सबसे बड़ा भय 'मार' का होता है। वास्तवमें मार हमारे हाथमें एक अत्यन्त तीव्र हथियार है, जिसके द्वारा हम, युवा तथा वृद्ध, बच्चों पर बहुधा प्रहार किया करते हैं। यह अस्त्र ऐसा है जिसका असर बड़ा ही प्रखर तथा तीखा होता है। कहा भी है 'मारके आगे भूत भागता है'। अतएव इसका प्रयोग जहाँ तक हो सके नहीं करना चाहिये। इसका अवलम्बन नियम नहीं वरन् अपवाद होना चाहिये। जब सारे उपाय निष्फल होजाँय, तब इस अस्त्रका सहारा टटोलना चाहिये। हर एक साधारणसे साधारण भूलके लिए भी बच्चोंको मार बैठना नितान्त मूर्खता है। ऐसे बच्चे भी पिटते पिटते ढीठ हो जाते हैं और फिर उन पर मार भी बेकार हो जाती है। चरित्र-भ्रष्टता आदि दोषोंके लिए ही बच्चोंको शारीरिक दंड देना उचित है अन्यथा नहीं। बच्चे बच्चे ही हैं, भूल किया करते हैं और बिना दंड दिये भूलें सुधर भी नहीं सकतीं; परन्तु दंड देनेका एक मात्र रूप 'मार' ही नहीं है, अन्य रूप भी हैं। क्या हमारे देशके माता पिता तथा अध्यापकगण इस ओर ध्यान देंगे?

प्रीति

हममें यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि जिनसे हम प्रीति करते हैं उनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया करते हैं। किसी गृहस्थीमें जो मनुष्य अपने गुणों द्वारा उस गृहस्थीके सभी व्यक्तियोंका प्रेम-भाजन होजाता है वह उन लोगोंसे अपने आधिपत्यमें सब कुछ करा लेता है। उनके चरित्रका भी प्रभाव अन्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा उन पर अधिक पड़ता है। कुछ मनुष्योंमें बच्चोंके प्रति प्रेम और सहानुभूति स्वाभाविक होती है। ऐसे मनुष्य ही बच्चोंके सर्वोत्तम शिक्षक हो सकते हैं। बच्चे भी उनसे विशेष प्रेम रखते हैं। बहुतसे काम प्रीति द्वारा शीघ्रतासे, रुचिपूर्वक और भली भाँति कराये जा सकते हैं। हमको ऐसे उदाहरण दैनिक जीवनमें सैकड़ों ही मिलेंगे। किसी बच्चेसे कोई काम प्रेम द्वारा कराइये। वह काम उत्तमता पूर्वक, प्रसन्नता सहित और जल्दी होगा। फिर वही काम दूसरे बच्चेसे भय दिखा कर कराइये। वह काम

उतनी अच्छी तरह कदापि न हो सकेगा। जब बच्चोंकी आदतें बिगड़ जाती हैं तभी इस बातकी भी आवश्यकता पड़ती है कि कभी कभी भय द्वारा भी काम कराया जाय।

अध्यापकका स्कूलमें सर्व प्रिय होना तभी सम्भव है जब उसमें वह गुण हों जिनके द्वारा वह अपने विद्यार्थियोंके हृदयोंमें अपने प्रति-प्रेम मिश्रित आदर पैदा कर सके।

जिज्ञासा

इसका प्रतिफल आश्चर्य है। वस्तु ऐसी न हों, जो बिल्कुल ज्ञात हों, अथवा जो बिलकुल अज्ञात हों, जिससे भय उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो। किसने नहीं देखा कि घोड़ा पुराने फटे कपड़ेको सड़क पर पड़ा देख कर उस पर कभी आश्चर्य करता है और फिर दूसरे क्षण उससे डरता है? 'यह क्या चीज़ है?' 'इसका क्या नाम है?' 'यह किस काम आता है?' आदि बालकोंके प्रश्न जिज्ञासाके अस्तित्वके सबूत हैं। चमकीली चीज़ें जैसे चन्द्रमा, दियेकी लौ, आग आदि और गतिवान वस्तुएँ जैसे चिड़िया, चुहिया चींटा आदि शिशुओंका ध्यान अपनी ओर बहुत जल्दी आकर्षित करती हैं। बालक भी मोटर, रेलगाड़ी, घड़ी, घंटा, दर्पण आदि चीज़ोंको बड़े चाव से देखते हैं। उनको व्याख्यान अरुचिकर होता है, परन्तु कहानियोंको बड़े प्रेमसे सुनते हैं। धार्मिक उपदेशमें बैठे बैठे बहुत शीघ्र ऊँघने लगते हैं। परन्तु किसी बरातका बाजा, मंदिरमें घंटे बजनेके शब्द, विचित्र आवाज़ें और खेल तमाशे शीघ्र उनके ध्यानको आकर्षित कर लेते हैं। युवाओंमें भी जिज्ञासाका अभाव नहीं है। उनकी रुचि किसी ऐसी वस्तुकी ओर बराबर रहती है, जब तक कि उसके विषयमें उनके कुछ अधिक जाननेकी इच्छा पूरी नहीं होती। यह क्रिया उच्च दशामें वैज्ञानिक या दार्शनिक जिज्ञासाके रूपमें रहती है। परन्तु वृद्धावस्थाकी अपेक्षा बचपन तथा युवावस्थामें जिज्ञासा अधिक प्रबल होती है। स्कूलका औसत विद्यार्थी संस्कृत पढ़नेमें आनाकानी कभी न करेगा। परन्तु युवावस्था बीत जानेपर किसी नई भाषाका अध्ययन करना ९९ प्रतिशत मनुष्योंके लिए असम्भव हो जाता है। वह तो अपने दैनिक ढर्रेमें ही मस्त रहते हैं।

माता पिताओंको चाहिये कि बालकोंको ऐसी ही खेलकी चीज़ें दें, ऐसी बातें ही सुनाएँ जिनसे उन्हें विशेष प्रेम हो, परन्तु साथ ही हानिकर न हों। बालकोंको पढ़ाते समय भी इस बातका ध्यान रखना चाहिये। पुस्तकें सुन्दर तथा चित्रोंसे विभूषित हों। ऐसे विषय अधिक पढ़ाये जायँ, जिनमें कुछ अपने हाथसे करना पड़े जैसे पदार्थ दर्शक, ड्राइंग, चित्रकारी, दस्तकारी इत्यादि। गणित जैसा रूखा विषय भी बाल फ्रेम (ball-frame) कागजके टुकड़े, बनावटी सिक्के, इमलीके बीज आदि वस्तुओं द्वारा रुचि र बनाया जा सकता है। 'किंडरगार्टन' आदि शिक्षा-प्रणालियोंकी उत्पत्ति इसीलिए हुई है। ऐसी शिक्षाका व्यवहारिक मूल्य भी अधिक होता है। अतएव शिक्षकको आवश्यक है कि वह बच्चोंकी शिक्षामें इन बातों पर विशेष ध्यान रखें।

अनुकरण

किसीने सच कहा है कि 'मनुष्य अनुगामी जीव है'। वास्तवमें हममेंसे प्रत्येक जैसा है वह अनुकरण द्वारा ही वैसा बना है। मनुष्य-जातिकी सारी एकत्रित पूँजी—कला-कौशल, भाषाएं और विज्ञान—एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ी तक अनुकरण द्वारा ही चली आ रही है। मनुष्यकी उन्नति इसी पर अवलम्बित है। बच्चा आरम्भसे ही अपने बराबरवाले तथा बड़ोंका अनुकरण करता है। जैसा वह और लोगोंको करते देखता है वैसा ही करना वह सीख जाता है। आरम्भमें घरवालोंका उसपर विशेष प्रभाव पड़ता है, क्योंकि उनका अधिकांश समय उन्हींकी संगतिमें बीतता है। इसलिए हमें उचित यह है कि जो बातें हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे न सीखें वह बातें हम कदापि उनके सामने न करें।

जिस सांचेमें हम उनको ढालना चाहते हैं, उसीके अनरूप उदाहरण हम उनके सामने रखें। संगतिका प्रभाव सचमुच बड़ा प्रबल होता है, परन्तु बचपनमें और भी अधिक। कारण यह है कि छोटी अवस्थामें बच्चेका हृदय कच्चे घड़ेके समान होता है। उसके हृदय-पटलपर हम जो कुछ अंकित करना चाहते हैं, कर सकते हैं, और वह चिन्ह मृत्यु पर्यन्त उसका साथ नहीं छोड़ते।

शुरू शुरूमें जो ध्वनि बच्चेके कानोंमें पड़ती है उसकी नकल करनेका वह प्रयत्न करता है। यह यत्न आरम्भमें कुछ भद्देसे होते हैं, जैसे पानीको 'पापा' रोटीको 'हप्पा' या 'अट्टी' आदि कहना। पानी रोटी आदि शब्दोंका ठीक ठीक उच्चारण बच्चा आरम्भमें कदापि नहीं कर सकता। फिर धीरे धीरे जब बार बार यह शब्द उसके कानोंमें पड़ते हैं तो उनका शुद्ध उच्चारण भी वह सीख जाता है। इस समय शब्दोंके उच्चारण सिखानेमें बड़ी सावधानी चाहिये, क्योंकि वैसा ही उच्चारण करना—चाहे शुद्ध हो या अशुद्ध—उसे सदाके लिए याद रहता है। शुरूमें बच्चे उन शब्दोंका प्रयोग कदापि नहीं करते जो उनके कानोंमें बहुधा नहीं पड़ते। भाषा भी बच्चा अनुकरण द्वारा ही सीखता है, जो घरमें बोली जाती है। अङ्गरेज़का बच्चा अङ्गरेज़ी, हिन्दूका बच्चा हिन्दी और जर्मनका बच्चा जर्मन सीखता है। यदि हिन्दू बच्चेको शुरूमें अङ्गरेज़ी सुननेका अवसर पड़े तो वह उसी भाषाको सीख जाता है। सभी जानते हैं कि भेड़ियेकी मांदमें पाया हुआ बालक सिवाय भेड़ियेके गुर्रानेकी आवाज़के किसी भी भाषाके शब्द नहीं बोल सकता। और यदि उसकी अवस्था ९-१० वर्ष की हो गई हो तो किसी भाषाको भली भाँति सीखना उसके लिए नितान्त दुष्कर हो जाता है।

अनुकरणसे अगली सीढ़ी यह है कि हम दूसरोंका अनुकरण इसलिए करें कि उनसे किसी प्रकार पीछे न दिखलाई दें। इस प्रकारकी होड़ या स्पर्द्धा समाज रूपी प्रासादकी नींव है। शिक्षामें यह दोनों ही बड़े कामकी चीज़ें हैं। विद्यार्थियोंसे समूह रूपमें किसी कामको करानेके लाभ प्रत्येक शिक्षक जानता है। सबसे अधिक सफलता उस शिक्षककी होती है, जिसका चरित्र और आचरण सबसे अधिक अनुकरण योग्य हैं। शिक्षक अपने विद्यार्थियोंसे वह काम करनेको कदापि न कहे जो वह स्वयं नहीं कर सकता है। 'जैसा किताबमें लिखा है, करो' की अपेक्षा 'चलो आओ, अमुक काम करें' कहीं अधिक प्रभावशाली है। योग्य शिक्षककी बालक सदा प्रशंसा करते हैं। जो कुछ वह करता है सरल मालूम होता है और बालक उसे करनेके लिए शीघ्र ही तैयार हो जाते हैं। असफल अध्यापक का बार बार विद्यार्थियोंसे अपने पाठमें ध्यान देनेके लिए कहना बिल्कुल व्यर्थ है। पहले स्वयं उसको पाठमें रुचि होनी चाहिये और पाठको रोचक बनाना चाहिये, फिर उसके उदाहरण द्वारा बालकोंको भी अपने आप रुचि होने लगेगी।

प्रत्येक स्कूलका विद्यार्थी-समूह एक ख़ास ढाँचेका होता है। प्रथम तो शिक्षकका प्रभाव बड़े विद्यार्थियों पर पड़ता है और फिर उनका असर छोटे छात्रोंपर पड़ता है। नये विद्यार्थी जो स्कूलमें समय समय पर प्रवेश करते रहते हैं शीघ्र ही उसी ढाँचेमें पड़ कर मंज जाते हैं। इस प्रकार एक वर्ष से दूसरे वर्ष तक बराबर स्कूलकी एक विशेष हवा (tone) रहती है। यह हवा तब तक नहीं बदलती जबतक कि कोई विशेष प्रभावशाली अध्यापक या छात्र स्कूलके सामने दूसरा आदर्श न रखे। धन्य है वह विद्यालय जहांके विद्यार्थी सदाचार, लोक-सेवा, सचाई, आज्ञापालन आदि सद्गुणोंको अपना आदर्श माने हुए हैं। ऐसे समूहमें जो भ्रष्ट विचारोंके विद्यार्थी भी पड़ जाते हैं वह भी सुधर जाते हैं। परन्तु जहांपर दुराचार, असद्व्यवहार, असत्य, उद्दंडता, आलस्य आदि दुर्गुणोंका दौर दौरा है वहांकी दुर्गन्धसे अच्छे चरित्रवाले छात्र भी भ्रष्ट चरित्र बन जाते हैं। सभी अध्यापकोंका और विशेषतः प्रधान-अध्यापकका धर्म है कि

वह देखें कि उनके विद्यार्थी उत्तम आदर्शोंके अनुगामी हैं और बुरी बातोंसे कोसों दूर भागते हैं। यही बात एक गृहस्थीमें भी लागू है। जैसा गृहस्थीका नेता होता है वैसे ही बच्चे उस गृहस्थीमें पलते हैं। बच्चोंके सामने उच्च आदर्श रखनेकी आवश्यकता इससे और भी पुष्ट होती है।

'अनुकरण' और 'स्पर्द्धा'की पराकाष्ठा 'एषणा' (ambition) है। अभ्युदयेच्छा बुरी वस्तु नहीं है, यदि लक्ष्य उत्तम हो और उसके प्राप्त करनेके साधन पवित्र हों। इन तीनोंके प्रतिफल 'स्वाभिमान' और 'आत्म-गौरव' हैं। इन सहज क्रियाओंका छोटी अवस्थामें मर्यादामें रखना कुछ कठिन सा होता है, परन्तु बड़े होने पर यह बड़े काममें आती हैं। इन्हींके द्वारा सैकड़ों मनुष्योंने संसारमें महान कार्य कर डाले हैं।

निर्मित शीलता वह स्वभाविक क्रिया है जिसके द्वारा हमारे हाथ पैर निश्चल नहीं रहते। बच्चा जबसे पैदा होता है, हाथ पैर चलाता है। बिना हाथ पैर हिलाये चैन नहीं पड़ता। चुपचाप वह तभी रहता है जब या तो वह बीमार हो या सो रहा हो। हाथ पैरोंका हिलाना डुलाना स्वस्थताका चिन्ह है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। ज्यों ज्यों शिशु बड़ा होता जाता है पहले बैठना शुरू करता है; उस दशामें भी उससे चुपचाप नहीं बैठा जाता। धीरे धीरे घुटनों चलना, तत्पश्चात् खड़ा होना और फिर पैरोंसे चलना सीखता है। प्रत्येक दशामें वह कुछ न कुछ करता ही रहता है। ज्यों ज्यों वह घुटनों चलना सीखता है जो उसकी बड़ी होशियारी देखरेख पड़ती है। चीज़ उसको दिखलाई देती है उसीकी ओर झपटता है, उसको लेनेका प्रयत्न करता है, हाथमें पकड़ता है, हटाता है, उठाता है, रखता है, फेंकता है, तोड़ता है, फोड़ता है, मुहमें दबाता है और चीज़के छुड़ा लेनेपर रोने लगता है। वह चुपचाप कदापि नहीं बैठ सकता। चुपचाप बैठना प्रकृतिके विरुद्ध है। मनोविज्ञानमें बनाना और बिगाड़ना दोनों एक ही प्रकारकी क्रियाके दो रूप हैं। दोनोंमें परिवर्तन होता है और उस परिवर्तनका कुछ फल होता है। परन्तु इन सब क्रियाओंका उपयोग यह है कि बालकको वस्तुओंके भौतिक गुणोंका ज्ञान होता है। सच पूछो तो बुद्धिके विकासकी नींव यही बाल-क्रीड़ा है। जो बच्चे बचपनमें नहीं खेलते वह बहुधा बड़े होनेपर बुद्धिहीन या 'बुद्धू' होते हैं। ८ या ९ वर्ष तक बालक मुख्यतः यही काम करता है। यह बाल-क्रीड़ा शिक्षाका बड़ा उपयोगी अंग है। जिसने इसकी अवहेलना की उसने बाल शिक्षाके मर्मको नहीं समझा। वह माता पिता बड़ी भूल करते हैं, जो अपने बालकोंको घरमें चीज़ें नहीं छूने देते। जो वस्तुएँ तुम चाहते हो कि बच्चा न छुए, उनको पहुंचके परे रखो। मृत्यु पर्यन्त हममेंसे बहुतेरोंको बहुधा वस्तुओंका उतना ही ज्ञान होता है जितना कि हम उनसे काम लेते हैं। 'छड़ी' सहारा लेनेकी चीज़ होती है या किसीको मारनेकी; 'आग' पकानेकी या तापनेकी या जलानेकी वस्तु होती है; 'डोरा' सीनेकी या बांधनेकी चीज़ होती है। बहुधा मनुष्योंको इन वस्तुओंका ज्ञान इससे परे और कुछ नहीं होता।

इसलिए बालकको ज्यों ज्यों अनेक प्रकारकी वस्तुओंका ज्ञान उनको हाथमें लेनेसे होता है त्यों त्यों यह संसार उसके लिए अधिक परिचित होता जाता है। एक हृदय विहीन युवाको बालकका इस प्रकार घंटों तक क्रीड़ा करना कुछ आश्चर्य जनक प्रतीत होगा। परन्तु योग्य शिक्षकको इससे पूरा लाभ उठाना चाहिये। प्रारम्भिक शिक्षा जहां तक हो ऐसी हो जिसमें इस स्वाभाविक प्रेरणा का पूर्ण उपयोग किया जाय। "किंडरगार्टन' शिक्षा प्रणालीमें इस बातपर विशेष ध्यान दिया गया है। वह विद्यार्थी जिनको इन सिद्धान्तोंके अनुसार शिक्षा नहीं मिलती और जो केवल किताबी कीड़े होते हैं वस्तुओंकी वास्तविकतासे वास्तवमें बहुत दूर रहते हैं। इसी बातपर हम पहले भी ज़ोर दे आये

हैं। कुछ लोगोंकी राय तो यह है कि वर्तमान स्कूलों की यदि १० वीं कक्षा तक नहीं तो ८ वीं कक्षा तक तो अवश्यमेव बढ़ईका काम, ड्राइङ्ग और प्रकृति-विज्ञान (Nature Study) यह तीनों विषय अनिवार्य कर दिये जायँ, वैकल्पिक न रहें। साहित्य, अंक गणित, भूगोल आदि सभी विषय नीचेकी कक्षाओंमें जहां तक हो खेल द्वारा, तथा इस प्रकार सिखलाये जांय कि जिससे इस सहज क्रियाका पूरा तथा स्वतंत्रता पूर्वक उपयोग किया जाय। ड्राइङ्ग, मिट्टीकी चीज़ोंका बनाना, लकड़ी का काम, ब्रुशका काम, चित्रकारी, सीना पिरोना बुनना आदि इस दृष्टिसे बड़े उपयोगी विषय हैं।

'मेरापन' यह सहज क्रिया है जिसके द्वारा हम कुछ वस्तुओंको अपनी पुकारने लगते हैं। प्रत्येक मनुष्यके पास कुछ न कुछ अपना अवश्य होता है। संसारसे विरक्त साधुके पास भी कमंडल, कोपीन और दो एक धर्म ग्रंथ होते हैं। जीवनके दूसरे वर्षमें यह भाव उत्पन्न होता है। 'मेरा' 'मेरी' यह शब्द बच्चा बहुत जल्दी कहना सीखता है। वह माता पिता दयाके पात्र हैं जो अपने दो बच्चोंके लिए प्रत्येक वस्तु, खिलौना आदि, दोहरी नहीं ला सकते।

शिक्षामें इस सहज क्रियाका महत्व कुछ कम नहीं है। हमारी शक्तियाँ पूर्णतया तथा सर्वोत्तम प्रकारसे बहुधा किसी काममें तभी लगती हैं जब हम समझते हैं कि अमुक कार्य हम अपने लिए कर रहे हैं, या उस मनुष्य समूह (जैसे अपनी गृहस्थी, अपनी जाति, अपना देश-सारी मनुष्य जाति या जीवमात्रका समूह जिसमें हम स्वयं भी शामिल हैं) के लिए जिसे वह 'अपना' समझ रहा है। घरमें बच्चेको सफ़ाई, तरतीब आदि बातोंमें शिक्षा बहुत शीघ्र मिलती है जब उससे अपनी चीज़ोंको ठीक ठीक रखनेको कहा जाता है। बालकसे कहा जाय कि 'यह पुस्तक तुम्हारी है' निस्संदेह वह उसकी विशेष सावधानी रखेगा। स्कूलमें यह भाव 'संग्रह' के रूपमें भी आ जाता है। अरोचक वस्तुएँ जैसे शंख, सीप, डाकखानेके टिकट, भिन्न भिन्न देशोंके सिक्के, नकशे आदि भी रोचक बनाई जा सकती हैं, यदि यह किसी विशेष ढंगसे इकट्ठी की जायँ। प्रकृति-विज्ञान (Nature Study या Compulsory Science) नामक विषय, जो आज कल हमारे देशके स्कूलोंमें पाठ्य-क्रममें रखा गया है, इस दृष्टिसे भी बड़ा उपयोगी है।

अरुचि

यह भाव भी बचपनमें पैदा हो जाता है। बच्चा कुछ वस्तुओंको बड़े प्रेमसे देखता है और कुछ वस्तुओंकी ओर उसकी अरुचि होती है। अरोचकताकी तीव्र दशा घृणा है। बच्चा उन वस्तुओंसे घृणा करता है जो स्वादमें उसको अप्रिय मालूम होती हैं। घृणाके भावका सर्वोत्तम उपयोग चरित्र संगठनकी शिक्षामें किया जा सकता है। माता पिताओंको चाहिये कि वह अपने बच्चोंके हृदयोंमें बुरी संगतिसे घृणा पैदा करा दे। शिक्षकोंको चाहिये कि साहित्य या इतिहास पढ़ते समय बालकोंके कोमल हृदयोंमें उन वीरोंके प्रति घृणा वा तिरस्कार पैदा करा दें जो निकृष्ट हों। ऐसा करनेसे उन छात्रोंके चरित्र-संगठनमें बड़ी सहायता मिलेगी। उनकी आकांक्षाएँ महान, आदर्श उच्च और लक्ष्य उत्तम होंगे।

हमने यहां पर कुछ मुख्य सहज-क्रियाओंका वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी हैं, जो भिन्न भिन्न अवस्थाओंपर उदय होती हैं।

—मदनलाल जैन, बी. ए., एल. टी.

फंगस-रोग.

ड़ोंके सिवा फंगस नामके एक और जातिके शत्रु हैं, जिनसे फसलको बहुत नुक़सान पहुँचता है। फंगसकी भी कई जातियां हैं, किन्तु विस्तार भयके कारण हम उनके वर्गीकरणके झंझटमें न पड़ेंगे। और न साधारण किसानों और ज़िमीदारोंको फंगसकी भिन्न भिन्न जातियों और उपजातियोंके नाम आदि जाननेकी उतनी जरूरत है।

हम इस लेखमें केवल उन्हीं फंगस रोगोंका वर्णन करेंगे जो गेहूं ज्वार, कपास आदि साधारण भांतिकी फसलों पर पाये जाते हैं और जिनका जानना साधारणतः किसानोंके लिए ज़रूरी है।

फंगस किसे कहते हैं ?

'पौदे' शब्दका उच्चारण करते ही शाखा और पत्तोंवाले झाड़ झंखाड़ हमारी आंखोंके सामने आ खड़े होते हैं। परन्तु बहुत सी ऐसी वनस्पतियाँ भी हैं जिनकी डालियां और पत्ते हम नग्न आंखोंसे देख नहीं सकते। काई, कुकुरमुत्ता, फफूंद आदि इस प्रकारकी वनस्पतियाँ हैं। पुरानी लकड़ी, खादके गढ़ों और अचार रोटी आदि पर जमनेवाले सफेद सफेद पदार्थ एक प्रकारके फंगस ही है।

फंगस भी एक प्रकारका पौदा है, यह बात मान लेने पर हमें यह देखना है कि फंगस किसे कहते हैं ? इस प्रश्नका सरल और समाधानकारक उत्तर देना अति कठिन है। ज्यों ज्यों हम नीची जातिकी वनस्पतियोंकी ओर बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों भिन्न भिन्न जातिकी वनस्पतियोंको पहचानना ज़्यादा कठिन होता जाता है।

दूसरी वनस्पतियों और फंगसमें ज़मीन आसमानका फर्क है। पौदोंके पत्ते हरे रंगके होते हैं और यही कारण है कि वह हवामेंसे अपनी ख़ुराक ले सकते हैं। परन्तु फंगसका रंग हरा नहीं होता। इसलिए उन्हें प्राणियोंकी तरह बना बनाया भोजन ही दरकार होता है और यही कारण है कि वह दूसरे पौदोंपर एवं सड़े पदार्थों पर जीवन निर्वाह करते हैं। पौदोंपर लगनेवाला फंगस परोपजीवी फंगस कहाता है। कारण कि वह उन पौदोंका रस पीकर बढ़ता रहता है, जिनपर कि वह रहता है और अन्तमें वह अपने पालनकर्ता पौदेको मार ही डालता है।

फंगसकी ख़ुराक.

दूसरी वनस्पतियोंकी तरह फंगसको भी लवणों की (Salts) जरूरत होती है। पोटासियम, मेगनेसियम और संभवतः लोहेके साथ ही साथ नत्रजन, फासफोरस और गंधक भी उनकी खुराक है। फंगसको यह पदार्थ बहुत कम चाहियें। और यह पदार्थ उन्हें अपने पालक (Host Plant) पौदे मेंसे काफी परिमाणमें मिल जाते हैं।

हम पहले लिख चुके हैं कि फंगस दो प्रकारके होते हैं। पहले प्रकारका फंगस तो मृत पदार्थोंमेंसे भोजन ग्रहण करता है और दूसरे प्रकारका फंगस सजीव पदार्थों पर रहता है। इस दूसरी जातिके फंगसको परोपजीवी फंगस कहते हैं। कुकुरमुत्ता पहले प्रकारके फंगसका उदाहरण है और काणी (smut) दूसरी जातिके फंगसका।

परोपजीवी फंगस ही फसलका शत्रु है। इसलिए हम उसी पर विचार करेंगे।

फंगस रोग

यह बात अच्छी तरह मालूम होगई है कि वाह्य कारणोंका इस रोगकी वृद्धि पर खूब असर पड़ता है। तापक्रम, वायुमें तरीका परिमाण (Humidity) आदिका उसकी वृद्धि पर असर पड़ता है।

रोगकी उत्पत्ति—हर एक आदमी यह बात जानता है कि ज़मीनमें तरी न होने पर पौदा आप ही आप सूख जाता है, परन्तु ज़मीनमें काफ़ी तरी होने पर भी यदि पौदा खड़ाका खड़ा सूख

जाय तो समझ लेना चाहिये कि यह फंगसकी करतूत है। परोपजीवी फंगसके कारण जड़ोंके सेल (cell) मर जाते हैं, जिससे पौदा सूख जाता है। फंगस पत्तों पर भी हमला करता है। पत्तों पर फंगस लग जानेसे स्टार्च बनानेवाले सेल मर जाते हैं। फल यह होता है कि काफी भोजन न मिलनेके कारण पौदेकी बाढ़ रुक जाती है, जिससे वह फलता फूलता नहीं। यदि फूलता भी है तो फल अच्छी तरह पकने नहीं पाते। फंगस कई प्रकारसे पौदेको नुकसान पहुँचाते हैं। एक प्रकारका फंगस विष तैयार कर सेलको मार डालता है, जिससे पौदा सड़ जाता है। दूसरी प्रकारका फंगस पौदेकी खुराक हज़म कर जाता है, जिससे काफी खुराक न मिलनेके कारण पौदेकी बाढ़ रुक जाती है और तब वह धीरे धीरे सूखने लगता है। एक और जातिका फंगस फूल और फलोंको नष्ट कर डालता है। एक प्रकारका फंगस पौदेके किसी मुख्य भाग पर—जड़, तना आदि, हमला कर उसे नष्ट कर डालता है। पौदेका एक भी भाग ऐसा नहीं, जिसपर फंगस हमला न करता हो और फंगसका एक भी काम ऐसा नहीं जिससे पौदेको नुकसान न पहुँचता हो।

रोगके लक्षण—जमीनमें काफ़ी तरीके होनेपर भी यदि खड़ाका खड़ा पौदा सूख जाय या पौदेकी एक आध शाखा या भाग सूख जाय तो समझ लेना चाहिये कि यह फंगसकी करामात है। फंगसने जड़ें या पौदेके निचले भागको नष्ट कर डाला है। यदि पाला या अन्य कारणोंके अभावमें पत्ते पीले हो जायँ, गिरने लगें या उनपर पीले, काले या भूरे दाग़ पड़ जायं तो मान लेना चाहिये उन पर फंगसने हमला किया है।

फङ्गस तना, फूल और फल तथा कंद पर भी हमला करता है। डालियों पर छोटी छोटी गांठोंका बंध जाना भी फंगस रोगके लग जानेका चिन्ह है।

फसलकी रक्षाके उपाय

१—फंगस रोगसे फसलकी रक्षा करनेके लिए सबसे पहला उपाय यह है कि एक ही खेतमें लगातार कई वर्षों तक एक ही फसल कदापि न बोई
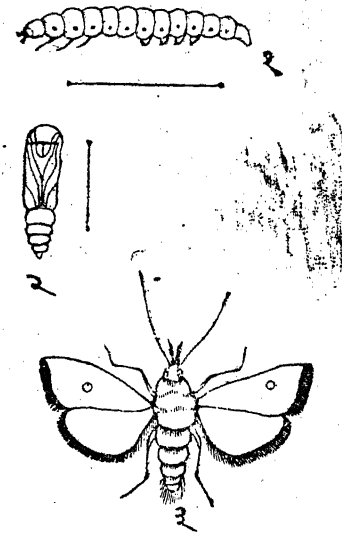
चित्र १२—धानके तनेमें छेद करनेवाला कीड़ा
१—इल्ली २—कोष, ३—पतंग

जाय। प्रति चौथे वर्ष उसी खेतमें वही फसल बोना फायदेमन्द है। फंगसकी वृद्धिको रोकनेके लिए फसलका हेर फेर करना बहुत ज़रूरी है। यह उपाय तभी काममें लाया जाता है जब कि खेतकी मट्टीमें फंगसका बीज वर्तमान हो।

२—खेतको साफ रखना भी बहुत ज़रूरी है। खेतमें सड़े हुए घास पात और पत्तोंके ढेर पड़े रहने देनेसे भी फंगसकी वृद्धिमें सहायता पहुंचती है; कारण कि कुछ जातिके फंगस सड़े पदार्थोंपर ज़ोरोंसे बढ़ते हैं और तब फसल पर हमला करते हैं। अरहर, भिंडी, अम्बाड़ी, चना, कपास आदिके डंठल, फसल निकाल लेनेपर इकट्ठे करके जला देने चाहियें।

३—गहरी जुताईसे भी यह रोग घट जाता है।

४—कुछ जातिके फंगस पौदेके सड़े हुए भागों या घावोंमें अपना घर बना लेते हैं। इस लिए जहां तक हो सके डाली काट लेनेके बाद घावपर डामर पोत दिया जाय।

५—रोगी बीज या रोगी पौदेकी क़लमें कदापि बोनेके काममें न लाई जायँ। फंगस लगे हुए कंद, पौदेकी डालियां, सांठेके टुकड़े, कदापि बोये न जायँ। रोगी पौदेके बीज बोना भी अच्छा नहीं।

६—खेतोंमें ताज़े गोबरका खाद डालनेसे भी फंगसकी वृद्धिमें सहायता पहुंचती है।

७—खेतमें खूब खाद डालनेसे फसलकी रक्षा होती है; कारण कि खादवाले खेतमें बोई हुई फसल बलवान होती है; उसपर रोगका प्रभाव कम होता है। फंगस ज़्यादातर कमज़ोर पौदोंपर ही हमला करता है और वही उसकी मार न सहकर जल्दी मर जाते हैं।

८—इंगलैण्डके राथमस्टेडकी प्रयोगशालामें यह बात भले प्रकार सिद्ध हो गई है कि पोटाश नामक खाद फंगसकी वृद्धि रोकता है।
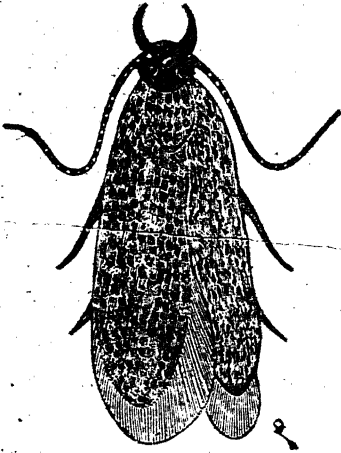
चित्र १३—गुलाबी फरा—(१) तितली

औषधोपचार

ऊपर लिखी हुई हिदायतें रोग पैदा न होनेके लिए ही हैं; परन्तु एक बार रोग पैदा हो जानेपर दवाइयों द्वारा उसके हटानेकी कोशिश करना ज़रूरी है। संसारमें एक भी देश ऐसा नहीं जहां फंगस न पाया जाता हो। भारतवर्ष भी इस रोग से बचा नहीं है। तथापि अब तक इस रोगसे फसलको उतनी हानि नहीं पहुँची है जितनी कि पाश्चात्य देशोंको। यूरोप और अमेरिकामें तो फंगसके मारे किसानोंका दिवाला तक निकल जाता है। इस रोगके कारण हजारों एकड़ जमीनमें पावभर अनाज भी नहीं हो पाता और इसी लिए उन देशोंमें इस रोगको नष्ट करनेके लिए भांति भांतिके उपायोंका पता लगाया गया। परन्तु भारतवर्षमें अभी फंगस सम्बंधी छान बीन बहुत ही कम हुई है। और यही कारण है कि इस रोग की रामबाण दवाइयोंका अब तक पता ही नहीं चला है।

नीचे लिखी हुई दवाइयां केवल क़ीमती फसलों और बगीचोंके लिए काममें लाना ही फायदेमंद है। तथापि बहुत सी साधारण प्रकारकी फसलों-के लिए भी इन दवाइयोंका उपयोग किया जा सकता है।

फंगसकी दो उपजातियां हैं। पहली उपजाति-का फंगस पौदेके भीतर ही भीतर बढ़ता रहता है और तब पौदेके भुट्टे या फलमें प्रकट होकर पकता है। परन्तु दूसरी उपजातिका फंगस पत्ता, तना आदि पर ही हमला करता है।

फंगस नष्ट करनेके लिए काममें लाई जाने वाली औषधिमें नीचे लिखे हुए गुणोंका होना बहुत ज़रूरी है।

अ—दवाई ऐसी हो, जिससे फंगस नष्ट किया जा सके या उसका हमला रोका जा सके। तथापि उस औषधिसे पौदेको किसी प्रकारकी हानि न पहुँचने पावे।

इ—औषधि सस्ती और सुविधाजनक हो और उसके तैयार करनेकी रीति सरल हो।

दवाइयोंको काममें लाते समय नीचे लिखी हुई बातोंपर ज़्यादा ध्यान दिया जाय।

क—ओषधि अच्छी तरह तैयार की जाय।

ख—दवाई ठीक समय और उपयुक्त मौसममें छिड़की जाय।

ग—फल झाड़ोंपर 'बहार' के मौसममें दवाई न छिड़की जाय।

घ—दवाई रोगी भाग पर या जिस भागपर रोगके होनेका संशय हो उसी भागपर छिड़की जाय।

फंगस रोगपर दो प्रकारकी दवाई छिड़की जाती हैं—१ चूर्ण और २ द्रव।

गंधकका चूर्ण या अन्य इसी प्रकारकी दवाइयां एक विशेष प्रकारकी मशीन द्वारा पौदोंके पत्तोंपर डाली जाती हैं। द्रव दवाई भी एक विशेष प्रकारकी मशीन द्वारा पौदोंपर छिड़की जाती है।

पौदेके भीतर रहनेवाले फंगसकी दवाई

बीज पर ओषधिका प्रयोग—पौदेके भीतर बढ़नेवाले फंगसके नष्ट करनेका सबसे अच्छा उपाय बीजोंको दवाईसे धोकर बोना ही है। इस जातिके फंगसके बीज फसलके बीजोंमें ही रहते हैं। इसलिए बीज ऐसी ओषधिसे धोये जाँय कि जिससे बीजोंकी उगनेकी शक्ति नष्ट न होने पावे। बहुत सी ऐसी दवाइयां हैं भी; किन्तु नीला थोथा की दवाई ही सबसे अच्छी है और साधारण किसानोंके लिए सरल भी है। नीले थोथेके काममें लानेकी तरकीब हरएक रोगके साथ दी गई है।

खेतकी मट्टी पर ओषधिका प्रयोग—खेतमें के फंगस रोगको नष्ट करनेके लिए भिन्न भिन्न पदार्थोंके प्रयोग किये जा चुके हैं और अब जारी भी हैं तथापि अब तक समाधान कारक फल नहीं निकला है। परन्तु चाय और काफीके खेतोंमें चूना डालनेसे इन फसलोंकी जड़ोंको लगनेवाला फंगस नष्ट हो जाता है।

पौदेके बाहरी भागों पर पाये जानेवाले फंगसकी दवाई

पौदे पर ओषधि छिड़कना—भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न प्रकारकी दवाइयां छिड़की जाती हैं। और भिन्न भिन्न फसलोंके लिए भिन्न भिन्न दवाइयां काममें लाई जाती हैं। तथापि प्रयोगों द्वारा कुछ दवाइयां ऐसी भी पाई गई हैं जो सब प्रकारकी फसलों पर काममें लाई जा सकती हैं।

१—बोर्डो मिश्रण (Bordeaux-Mixture)

(१)	नीला थोथा	..	२ सेर
	कलीका चूना	...	२ "
	पानी	...	२५० "
(२)	नीला थोथा	...	२½ सेर
	कलीका चूना	...	२½ "
	पानी	...	२५० "

पहले नम्बरका बोर्डो मिश्रण फल झाड़ोंके लिए अच्छा है और दूसरे नम्बरकी ओषधि साधारणतया सब प्रकारकी फसलोंके लिए काममें लाई जा
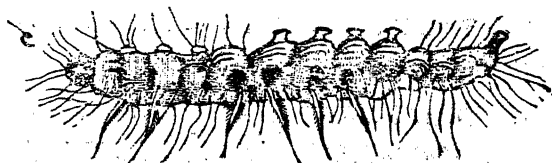
चित्र १४—गुलाबी करा—(१) इल्ली

सकती है। ५ सेर नीला थोथा और ढाई सेर कलीके चूनेको पानीमें मिलाकर मिश्रण बनाते हैं। यह मिश्रण आलूके पत्तोंपर लगनेवाले फंगसके लिए बहुत अच्छा है।

मिश्रण तैयार करनेकी विधि—एक थैलेके टुकड़ेमें नीला थोथा बांधकर उसे आधे पानीमें डाल दो और उसे रात भर पड़ा रहने दो। इसके बाद थोड़े पानीमें चूना गलाओ और बुदबुदाना बंद हो जाने पर शेष पानी मिलादो। पहले चूनेके मिश्रणको मोटे कपड़ेमें छान लो और तब दोनों मिश्रणको मिलादो।

इस मिश्रणमें चाकू डुबो दो। यदि उस पर दाग़ पड़ जाय तो समझ लो कि नीला थोथा ज्यादा है और इसलिए उसमें थोड़ा चूना और मिला दो। परन्तु स्मरण रखो कि चूना छान कर ही मिलाओ।

२—रालका मिश्रण

पांच सेर उबलते हुए पानीमें आधा सेर कपड़े धोनेका सोड़ा मिलाओ और तदनन्तर एक सेर राल का चूर्ण मिलाकर आधे घंटे तक गरम करो, परन्तु जब तक मिश्रण आग पर रहे उसे चलाते रहो।
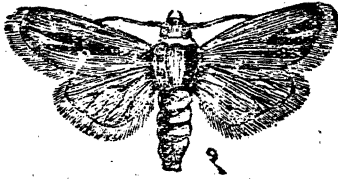
चित्र १४—चितकबरा करा

एक सेर रालके मिश्रणमें बारह सेर बोर्डो मिश्रण मिलाकर काममें लाते हैं।

खाशियाकी पहाड़ियोंमें आलूके पत्तों पर लगे हुए फंगसके लिए रालका मिश्रण ही काममें आता है और बोर्डो मिश्रणकी अपेक्षा यह मिश्रण फायदा भी ज़्यादा पहुँचाता है।

परन्तु पत्तों पर छिड़की जानेवाली दवाइयां उसी समय छिड़की जायँ जब कि ज़्यादा पानी बरसनेकी संभावना कम हो।

३—बरगंडी मिश्रण.

बरगंडी मिश्रणको सोड़ा-बोर्डो-मिश्रण भी कहते हैं। यह दवाई ज़्यादातर उन्हीं प्रदेशोंमें काममें लाई जाती है जहां कलीका चूना कठिनाईसे मिलता है। इस मिश्रणमें तीन गुण हैं। प्रथम गुण तो यह है कि यह पानीसे जलदी नहीं धुल जाता। दूसरे, यह जलदी तैयार किया जा सकता है और तीसरे, पत्तों पर छिड़कते समय इससे मशीनकी नली बंद होनेका डर नहीं रहता। परन्तु यह बोर्डो मिश्रणकी अपेक्षा कुछ महँगा पड़ता है।

नीला थोथा	...	५ सेर
सोडा	...	६½ सेर
पानी	...	२५० सेर

इस मिश्रणको भी बोर्डो मिश्रणकी तरह ही तैयार करते हैं। फर्क इतना ही है कि चूनेकी तरह कपड़ा धोनेका सोडा काममें लाया जाता है।

यह मिश्रण फ्रांसमें आलूके पत्तों पर लगे हुए फंगस पर काममें लाया जाता है और उससे लाभ भी खूब हुआ है।

४—चूना और गंधकका मिश्रण.

५०० सेर पानीको टीनके बरतनमें गरम करो और जब उबलने लगे तो उसमें थोड़ा थोड़ा चूना मिलाते जाओ, यहां तक कि २५ सेर चूना पूरा हो जाय। परन्तु चूना मिलाते समय मिश्रणको चलाते रहो और तब गंधक मिलाओ। इस मिश्रणको तब ५० मिनिट और गरम करो। इस मिश्रणको थैलेके टुकड़ेसे छानलो।

पांच सेर मिश्रणमें ५ सेरसे ६ सेर तक पानी मिलाकर काममें लाते हैं।

कुछ रोगोंका वर्णन

कपासके रोग—कपासकी फसल पर दो तीन तरहका फंगस हमला करता है, किन्तु उससे ज़्यादा हानि नहीं पहुँचती। एक प्रकारका फंगस है जो ब्रह्म देशमें इस फसलको बहुत नुक़सान पहुँचाता है। यह रोग मिश्र, आफ्रीका, बलगेरिया आदि देशोंमें भी पाया जाता है।

यह रोग ज़्यादातर ढेंढुई पर ही हमला करता है। ढेंढुई पर शुरूमें लाल भूरे दाग़ पड़ जाते हैं। ज्यों ज्यों यह दाग़ फैलते जाते हैं इनका मध्य भाग काला होता जाता है। इस रोगके लग जानेसे ढेंढुईका छिलका कड़ा हो जाता है। उसका आकार बिगड़ जाता और वह पूर्ण बाढ़ तक पहुँचनेके पहले ही फट जाती है।

कभी कभी यह रोग तने पर भी हमला करता है। तनेके सड़ जानेसे पौदा ज़मीनपर गिर पड़ता है।

सबसे उत्तम उपाय यही है कि रोग लगी हुई ढेंढुई और पौदे खेतमेंसे अलग कर जला दिये जायँ। यदि पौदे उखाड़नेको काफी समय न हो,

तो फसल निकाल लेने पर बनस्टी जला दी जायँ। रोग नाशक दवाई छिड़कनेसे ज्यादा फायदा होनेकी आशा नहीं।

यह रोग दूसरे किसी पौदे पर नहीं पाया जाता।

गेहूंके रोग—गेहूंको तीन प्रकारका गेरूआ (Rust) लगता है। इस रोगको महाराष्ट्रमें तांबड़ा, गुजरातमें गेरू और कानड़ी भाषामें कुकुम रोग कहते हैं।

बंगाल, बिहार, संयुक्त प्रान्त, पंजाब आदि प्रदेशोंमें तीनों प्रकारका गेरूआ हर साल पाया जाता है; परन्तु उससे उतनी हानि नहीं पहुँचती।

गेरूका अबतक कोई रामबाण उपाय नहीं पाया गया है। संसारके दूसरे देशोंमें यह कोशिश की जा रही है कि गेहूंकी कोई ऐसी जाति ढूंढ निकाली जाय; जिसपर गेरू रोग बिलकुल न लगता हो और आस्ट्रेलियामें यह प्रयत्न सफल भी होगया है।

चित्र १६—आलू का चक्की रोग

कजलिया रोग (Smut)—इसे गुजरातमें अंगारियो और महाराष्ट्रमें काणी कहते हैं। जब तक बालियां नहीं निकल आतीं, इस रोगके अस्तित्वका पता नहीं चलता। जिन पौदोंको यह रोग लग जाता है, उनकी बालियां दूसरे पौदोंकी बालियोंसे कुछ पहले निकल आती हैं। बालियोंमें दानोंके स्थान पर काणीके बीज निकल आते हैं। पक जाने पर इनमेंसे एक प्रकारका काजल सा काला पदार्थ निकलता है। यह पदार्थ हवामें उड़कर सारे खेतमें फैल जाता है। (चित्र १७)

मिश्रमें यह रोग पत्तों तथा तने पर भी हमला करता है। कानपुर, सूरत, मध्यप्रदेश, मध्यभारत आदि प्रदेशोंमें यह रोग देशी गेहूं पर भी पाया जाता है।

गरम पानीमें धोये हुए बीज बोनेसे यह रोग कम हो जाता है। गेहूंके सिवा दूसरी किसी फसलपर यह रोग नहीं पाया जाता।

बालियोंपर हमला करनेवाला रोग

एक प्रकारका फंगस और है जो बालियोंपर हमला करता है। भारतवर्षमें यह रोग पश्चिमोत्तर देश, काशमीर और पंजाबमें ज़्यादा पाया जाता है। भारतवर्षके अन्य प्रान्तोंमें, जहां बोनेके वक्त गरमी अधिक पड़ती है। यह रोग नहीं होता।

रोग लगे हुए पौदे नीरोग पौदेकी अपेक्षा जलदी पक जाते हैं। पका हुआ दाना कुछ काले रंगका होता है और दानेकी रक्षा करने वाले छिलकेमें काले रंगका पदार्थ लगा रहता है। रोगी बाली सीधी खड़ी रहती है।

इस रोगका उपाय यह है कि २५ सेर पानीमें ½ सेर नीला थोथा डाल कर खूब चलाओ। जब नीला थोथा पानीमें अच्छी तरह मिल जाय तब उससे बीज गीला कर लो। गेहूंको पांच मिनट तक पानीमें डुबाये रखकर निकाल लो। यही बीज तब खेतमें बोदो। नीलेथोथेसे गीले किये हुए बीज २४ घंटेसे पहले बो दिये जायँ। कुछ लोगोंका मत है कि नीलेथोथेसे गेहूंके उगनेकी शक्ति घट जाती है। इसलिए नीलेथोथेसे भिगानेके बाद बीजको १०० सेर पानी और ½ सेर कलीके चूनेके मिश्रणमें तीन मिनिट तक डूबोये रखते हैं। उनका

कहना है कि ऐसा करनेसे नीलेथोथेका ज़हर घुल जाता है, जिससे बीजके उगनेकी शक्ति नष्ट होनेका डर नहीं रहता।

जौ, मक्का आदि फसलों पर पाये जानेवाले फंगससे इन फसलोंको उतना नुकसान नहीं पहुँचता, अतएव हम उनपर विचार नहीं करते।

ज्वारके रोग—ज्वारके पत्तोंपर तीन जातिका फंगस हमला करता है। परन्तु उनसे फसलको ज्यादा नुकसान नहीं पहुँचता। और नाइनके लिए कोई रामबाण ओषधिका ही पता लगा है।

चित्र १७—गेहूं की बाली पर कजज़िया रोग

काणी (Smut)—यह फंगस संसारके उन सब देशोंमें पाया जाता है जहां ज्वार बोई जाती है। मद्रास, मध्यप्रदेश, बम्बई और ब्रह्मदेशमें इस रोगसे फसलको ज़्यादा नुकसान पहुँचता है। यह रोग देहरादूनमें भी पाया जाता है।

फंगस ज्वारके दानेके स्थानमें उग आता है और भुट्टेमें दानोंके स्थान पर एक प्रकारका काला पदार्थ नज़र आने लगता है। इस रोगके कारण भारतवर्षको प्रति वर्ष लाखों रुपयेका नुकसान उठाना पड़ता है।

यह फङ्गस ज्वारके बीजके साथ ही खेतमें बोया जाता है। फङ्गसके बीज ज्वारके कणपर लगे रहते हैं। फङ्गस पौदेके भीतर ही भीतर बढ़ता रहता है और भुट्टा निकलते ही उसमें प्रकट हो जाता है। इसलिए ज्वारके बीज नीलेथोथेसे धोकर बोने चाहियें।

२५० सेर पानीमें १½ सेर नीलाथोथा डालकर उसे खूब चलाओ। और मिश्रणके तैयार हो जाने पर उसमें ज्वारके बीज ८-१० मिनट तक डुबो रखो। तदनन्तर बीजको निकालकर छायामें सुखाकर बो दो।

झंडा काणी—यह फङ्गस मक्कापर भी पाया जाता है। पंजाब, संयुक्त प्रदेश, मध्य प्रदेश, मद्रास आदि प्रान्तोंमें यह रोग ज़्यादा पाया जाता है। अमेरिका, दक्षिणी यूरोप, आफ्रिका और एशियाके पूरबके देशोंमें भी यह रोग देखा जाता है। इससे आधा और कभी कभी सारेका सारे भुट्टा काला हो जाता है। अभी तक इस रोगकी कोई ओषधि नहीं पाई गई है। अतएव जहां तक हो सके रोगी पौदोंको उखाड़ कर जला डालना ही एक मात्र उपाय है।

छिपका—(Red leaf spot) यह फङ्गस ज्वार बोये जानेवाले सब प्रदेशोंमें पाया जाता है। परन्तु इससे फसलको ज़्यादा नुकसान नहीं पहुंचता। इस रोगके कारण ज्वारके पत्तों पर छोटे छोटे लाल धब्बे पड़ जाते हैं। अभी तक इस रोगकी कोई उत्तम दवाई नहीं पाई गई है तथापि सौभाग्यसे इस रोगसे ज़्यादा नुकसान भी नहीं पहुँचता।

धानके रोग—भारतवर्षमें धानपर कोई ऐसा फङ्गस नहीं पाया जाता जिससे फसलको ज़्यादा नुकसान पहुँचता हो और इसीलिए हमने धानपर पाये जानेवाले फङ्गसपर विचार नहीं किया है।

अरहर—अरहर पर एक प्रकारका फङ्गस पाया जाता है जिसे गुजरातमें चिटलो (wilt) महाराष्ट्रमें मर और कानड़ी भाषामें सिदिहियोना कहते हैं। यह रोग सब प्रकारके द्विदल जातिके पौदों पर पाया जाता है। इस रोगके लग जाने पर धीरे धीरे या एक दम साराका सारा पौदा या उसका एक आध भाग आप ही आप सूख जाता है। यदि

तना या शाखा चीरकर देखा जाय तो उसमें काले धब्बे या धारियां नज़र आवेंगी।

इस जातिके फंगसके बीज खेतकी मट्टीमें ही छिपे रहते हैं। और वह वहां बहुत समय तक पड़े रहते हैं और तब योग्य पौदा पाते ही उस पर हमला कर देता है। यह रोग बम्बई, मध्यप्रान्त, संयुक्त प्रान्त और बिहारमें ज्यादा पाया जाता है।

इस रोगकी वृद्धि रोकनेके लिए फसलका हेर फेर ही एक मात्र उपाय है। यह रोग भारतके सिवा अन्य देशोंमें नहीं पाया जाता।

जिन पौदों पर यह रोग भयंकर रूप धारण नहीं करता वह अधमरे हो जाते हैं और तब उनकी बाढ़ रुक जाती है और वह फलते भी नहीं।

यह रोग जड़ों द्वारा ही पौदे पर असर करता है। इसलिए इस रोगको नष्ट करना सरल नहीं। खेतोंमें कई प्रकार की दवाइयां छिड़की गईं थीं, परन्तु एक भी दवाई ऐसी न पाई गई जो सस्ती और अच्छी हो।

अरहर पर लगनेवाले फङ्गस रोगके समान इनफ्यूसेरिया जातिके दूसरे रोग कपास, चना, तिल, सन आदि फसलों पर भी पाये जाते हैं। इन रोगोंके लक्षण चिटली रोगसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं और उनके नष्ट करनेका एक मात्र उपाय रोगी पौदेको जला डालना और फसलका हेर फेर ही है।

आलूके रोग—आलूमें एक प्रकारका रोग लगता है जिसे चक्री कहते हैं। इस रोगको महाराष्ट्रमें बांगड़ी और कानड़ी भाषामें चक्र रोग कहते हैं। यह रोग बम्बई, मैसूर, संयुक्त प्रदेश, बंगाल, नीलगिरी आदि उन सब प्रान्तोंमें पाया जाता है, जहां आलू बोया जाता है। (चित्र १६)

पहले यह रोग पत्तों पर हमला करता है। परन्तु शीघ्र ही साराका सारा पौदा सूख जाता है। यदि आलू काट कर देखो जाय तो उसमें भूरे रंगकी चक्रीसी नज़र आयेगी और आलूको थोड़ा सा दबानेसे उसमें से पानीकी बूँदें निकल आयेंगी।

रोग कई प्रकारसे फैलता है। रोग लगे हुए आलूके टुकड़े बोनेसे रोग फैल जाता है। कम रोग लगे हुए आलूको काटनेसे भीतर रोगका चिन्ह बिलकुल नज़र नहीं आता। यह बीज उग तो आते हैं, परन्तु इन्हींमें से रोग फैलता है। सिंचाईके पानीके साथ ही साथ रोग भी फैलता है।

इस रोगका अंश खेतमें भी रह जाता है। इसलिए नीरोग बीज बोने पर भी फसलमें रोग लग जाता है। अमेरिकामें इस बातका भी पता लगा है कि रोगी पत्ते खानेवाले कीड़े भी रोग फैलाते हैं, परन्तु भारतवर्षमें अभीतक यह बात सिद्ध नहीं हुई है।

रोगी आलू कदापि न बोये जायँ और न रोगी फसलवाले खेतमें ही आलू बोये जायँ। जिस खेतमें एक बार आलूको रोग हो जाय उसमें तीन चार वर्ष तक आलू कदापि न बोये जाँय और न ऐसे खेतमें तम्बाकू, बैंगन, टमाटर आदि ही बोये जायँ। यदि इन बातों पर ध्यान दिया जायगा तो संभव है रोगकी मात्रा बहुत ही घट जायगी।

गरमीके मौसममें गहरी जुताई करनेसे भी रोग कम हो जाता है। खेतमें पोटाश, चूना, राख आदि डालनेसे भी रोगका ज़ोर घट जाता है।

ब्लाइट (Potato blight)—आलू पैदा होनेवाले सब देशोंमें यह रोग पाया जाता है। इस रोगके कारण पत्तों पर भूरे दाग़ पड़ जाते हैं। अनुकूल आब हवामें यह धब्बे बढ़ते जाते हैं और धीरे धीरे सारे पत्तों पर फैल जाते हैं। यह रोग तने पर भी हमला करता है और एक ही दो दिनमें वह सड़ जाता है। सूखे मौसममें यह रोग बहुत कम फैलता है। परन्तु बरसात, कुहरा और बदलीके दिनोंमें यह रोग ज़्यादा ज़ोर पकड़ लेता है और पौदेके सड़नेसे दुर्गंध आने लगती है।

यह रोग बटाटे पर भी हमला करता है। खेतकी सतहके पासवाले आलू पर यह रोग चट लग जाता है।

पत्तोंपर राल और बोर्डो मिश्रणको मिलाकर छिड़कनेसे फसलकी रक्षा की जा सकती है तथापि इसकी अपेक्षा बरगण्डी मिश्रणसे ज्यादा फायदा पहुँचता है।

यदि पौदेके आस पास ४-५ इंच मट्टी चढ़ा दी जाय तो इस रोगसे बटाटोंकी रक्षा की जा सकती है।
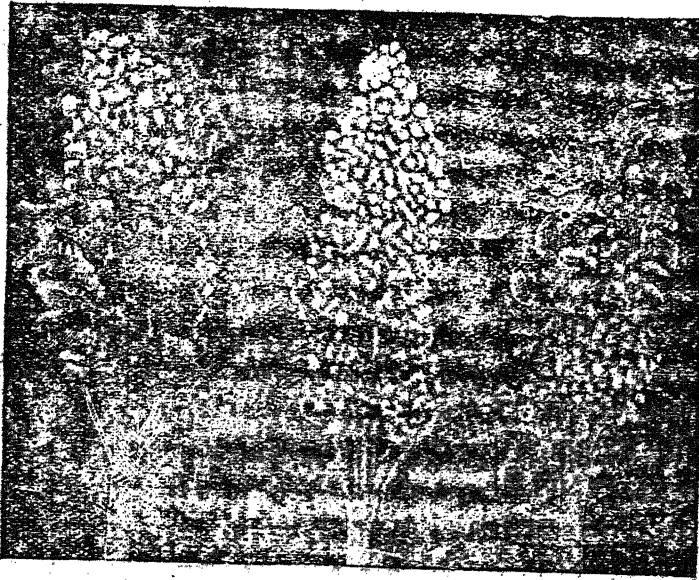
चित्र १८—ज्वार के भुट्टे पर झंडा काणी रोग

बैंगनके फलको कई प्रकारके फंगससे नुकसान पहुँचता है।

एक और प्रकारका फंगस है जो लाल मिर्च पर भी हमला करता है। इस रोगके कारण धीरे धीरे फूल कुम्हलाने और सूखने लगते हैं। तना और डालियां भी सड़ जाती हैं। ज़्यादातर पौदेके ऊपरी भाग पर ही यह रोग फैलता है, जिससे वह सूख जाता है। बोर्डो मिश्रण छिड़कनेसे फसल बाल बाल बच जाती है। यह रोग टमाटर, बैंगला आदि दूसरी फसलों पर भी पाया जाता है। रोगी पौदे और फलोंको जला डालना ही इसका उत्तम उपाय है।

कर, ककड़ी आदिके रोग

भूरी—(Powdery mildew) इस रोगको गुजरातमें 'छारो' कहते हैं। यह भिंडी पर भी पाया जाता है। मिश्र और दक्षिणी यूरोपके देशोंमें यह रोग कई जंगली पौदों पर भी हमला करता है।

पत्तोंकी ऊपरी सतह पर भूरे रंगकी धूल सी जम जाती है। रोग लगे हुए पत्तोंका हरा रंग नष्ट हो जाता है और वह सूखकर ज़मीनपर गिर पड़ते हैं। इस रोगके कारण फलोंका आकार और संख्या कम हो जाती है।

एक और जातिका फंगस है जो संसारके सब देशोंमें पाया जाता है। पंजाबमें यही रोग तरबूज़पर भी हमला करता है। इस रोगके कारण पत्तों पर पीले दाग़ पड़ जाते हैं। ज्यों ज्यों यह दाग़ बढ़ते जाते हैं उनका रंग भी भूरा होता जाता है। इस रोगके कारण पत्ते गिर पड़ते हैं, जिससे फल खराब और कम आते हैं। परन्तु फल पर यह रोग नहीं पाया जाता।

बोर्डो मिश्रण छिड़कनेसे पौदोंको नुकसान पहुंचता है। अतएव एक सेर नीलाथोथा, एकसेर कलीका चूना और २५० सेर पानी मिला कर तैयार किये हुए मिश्रणको छिड़कनेसे फायदा होता है। परन्तु यह मिश्रण प्रति १४वें दिन छिड़का जाना चाहिये।

मूङ्गफलीके रोग—मूंगफलीके पत्तोंपर एक प्रकार का फंगस रोग लगता है, जिसे 'टीका' कहते हैं। इस रोगसे फसलको बहुत नुकसान पहुंचता है। यह रोग अमेरिका, अफ्रीका, जावा, मलाया,

चीन, फिलीपाइन और आस्ट्रेलियामें भी पाया जाता है।

फसलके एक दो महीनेके हो जानेपर रोग पत्तोंपर हमला करता है, जिससे पत्तोंपर काले दाग पड़ जाते हैं। तने पर भी यह रोग हमला करता है। इस रोग के कारण पत्ते गिरने लगते हैं। सारा खेत पत्तोंके छोटे छोटे ढेरों से भर जाता है।

मूंगफलीके सघन पत्ते होते हैं। इसलिए रोग नासक दवाई छिड़कनेसे कुछ भी फायदा नहीं होता, क्योंकि दवाई सब पत्तों तक नहीं पहुंच पाती। नीचेके पत्ते कोरे ही रह जाते हैं।

बीजोंको नीलेथोथेमें धोकर बोना फायदेमन्द है। १½ सेर नीलेथोथेको २५० सेर पानीमें डालकर खूब चलाओ और तब इसमें मूंगफली के दाने भिगोकर बो दो।

अरण्डीके रोग—अरण्डीकी फसलको एक प्रकारके फंगससे बहुत ही ज़्यादा नुकसान पहुँचता है। इस रोगके कारण छोटे छोटे पौदे नष्ट हो जाते हैं। यह रोग बड़े पौदोंके पत्तोंपर भी हमला करता है। भारतवर्षके सिवा अन्य देशोंमें यह रोग बिलकुल नहीं पाया जाता।

पौदेके ६ से ७ इंच तक ऊंचा होनेपर ही यह रोग फैलता है। बरसातकी फसलपर ही यह रोग होता है। जिन खेतोंमें पानीका निकास अच्छा न हो और पौदोंकी जड़ोंको काफी हवा न मिलती हो, उन्हीं खेतोंमें यह रोग ज़्यादा होता है। कभी कभी इस रोग से प्रति सैकड़ा ३०-४० पौदे मर जाते हैं।

पत्तोंपर हलके हरे रंगके धब्बे पड़ जाते हैं। धीरे धीरे पत्ते पौदेसे गिर पड़ते हैं। छः महीनेकी उम्र हो जानेपर यह रोग अंडीके पौदोंपर हमला नहीं करता। यह रोग पत्तोंपर ही पाया जाता है। इसलिए अंडीके पत्तोंपर पाले जानेवाले रेशमके कीड़ोंको रोगी पत्ते खिलानेसे बहुत नुकसान होता है। अतः कीड़ोंको ऐसे पत्ते कदापि न खिलाये जावें।

एक और प्रकारका फंगस है जो पत्तोंपर हमला करता है। रोगी पत्ते रेशमके कीड़ोंको कदापि न खिलाए जावें।

तम्बाकूके रोग—तम्बाकूको भी भूरी रोग होता है। यह रोग यूरोप, सीलोन, आस्ट्रेलिया और अफ्रीकामें भी पाया जाता है।

इस रोगके कारण पत्तोंपर दाग़ पड़ जाते हैं। यह दाग़ तब धीरे धीरे बढ़ने लगते हैं और शीघ्र ही पत्ते कुम्हला जाते हैं। रोग प्रारंभमें पौदेके ज़मीनके पासके पत्तों पर ही होता है और बादमें धीरे धीरे ऊपरकी ओर बढ़ता जाता है।

जिन खेतोंमें पानीका निकास (Drainage) अच्छा न हो और पौदोंको काफी हवा न मिलती हो, उन्हीं खेतोंमें यह रोग ज़्यादा होता है।

इस रोगके लिए रामबाण उपाय यही है कि खेतमें पौदे एक कतारमें दूर दूर बोये जायं और नीची जमीनमें तम्बाकू न बोई जाय।

अफीमके पत्ते पर भूरी रोग।

अफीमके पत्तोंपर भी भूरी रोग पाया जाता है। इस रोगको गुजरातमें 'छारो' और मालवेमें 'भूरिया' कहते हैं।

यह रोग पत्तोंपर हमला करता है और कलियां निकलते ही उनको भी अपनी शिकार बना लेता है। इस रोगके कारण पत्तों पर भूरे दाग़ पड़ जाते हैं। अनुकूल समयमें यह रोग सारे फूल पर फैल जाता है और तब तने पर भी जा पहुंचता है। इस रोगके कारण पत्ते तथा पौदा सूख जाता है।

बोर्डो मिश्रण छिड़कनेसे फसलकी रक्षा की जा सकती है, परन्तु खर्च ज्यादा बैठता है। इसलिए सरल और सस्ता उपाय तो यही है कि रोगी पौदे और पत्ते जलाकर नष्ट कर दिये जायँ और फसल निकाल लेने पर पौदेका शेष सब भाग आगमें जला दिया जाय।

गन्नेके रो —गन्नेपर भी एक प्रकारका फङ्गस (Smut) लगता है। यह रोग गन्ना बोये जानेवाले सब देशोंमें पाया जाता है।

पौदेके बढ़नेवाले भागपर (यानी) अंकुर के स्थान पर एक काले पदार्थ युत बहुत लम्बा पत्तासा निकल आता है। इसकी लम्बाई कई फुट होती है। यह रोग कभी कभी फूलकी जगह-पर भी निकल आता है।

रोगी सांठोंके टुकड़े बोनेसे ही यह रोग खेतों में घुस आता है। और एकबार खेतमें घुस आने पर नीरोग पौदे भी रोगी होजाते हैं।

इस रोगसे ज्यादा नुकसान तो नहीं होता परन्तु दो तीन वर्ष तक लगातार रोगी बीज बोते रहनेसे सारे खेतकी फसल मारी जाती है। इस लिए जहां तक हो सके रोगी गन्नेके टुकड़े बोने-के काममें न लाये जायँ। बस, फसलकी रक्षाका यही एक मात्र उपाय है।

गन्नेका रातड़िया रोग।

रातडियो—(Redrot) यह रोग सब देशोंमें पाया जाता है। मालवामें इस रोगको रातड़ो कहते हैं। इस रोगके कारण कभी कभी साराका सारा खेत सूख जाता है।

रोगकी प्रथमावस्थामें गन्नेको चीर कर सूंघनेसे खट्टी दुर्गंध आती है और भीतर लाल रंग की झाई दीख पड़ती है। ज्यों ज्यों रोग बढ़ने लगता है, यह लाल रंग वाले भागका रंग भूरा या मट्टीके रंगका सा हो जाता है। प्रारंभिक अवस्थामें नग्न आंखोंसे रातड़ियो रोगको पह-चानना ज़रा कठिन है, कारण कि दूसरे कईरोगों के कारण भी गन्नेका भीतरका भाग लाल हो जाता है। रोगी सांठा कभी कभी फट जाता है, एवं ज़रा सा झुकाते ही चट टूट जाता है।

इस रोगसे फसलकी रक्षा करनेके लिए यह जरूरी है कि रोगी गन्नेके टुकड़े खेतमें न बोये जायं। गन्नेके टुकड़े करते समय लाल रंग-का भास होते ही सारा गन्ना अलग फेंक दिया जाय। जहां तक हो सके नीरोग बीज लाकर ही खेत में बोया जाय।

गन्नेके पत्तोंपर भी कई प्रकारके फङ्गस रोग पाये जाते हैं। परन्तु इन रोगोंसे ज़्यादा नुकसान नहीं होता और न इनकी रामबाण ओष-धिका पता लगा है। यही कारण है कि हमने उनपर विचार नहीं किया है।

वैदिक-स्वर

अंग्रेज़ी भाषाकी वर्णमाला अधूरी है, इसी कारण उसमें एक ही स्वरसे कई स्वरोंका काम लिया जाता है। परन्तु केवल ज़ुबानी जमाखर्चसे काम नहीं चलता था। इस कारण वहांके विद्वा-नोंने अपनी भाषाके कोष बनाये, जिनमें उच्चारणोंकी शुद्धता भी नाना प्रकारके संकेतोंसे दर्शायी जाती है।

क्या इस आविष्कारका प्रथम प्रयोग वैदिक ऋषियोंने नहीं किया। वेदके मन्त्रों पर खड़ी पड़ी लकीरोंका चिन्ह देकर उन्होंने ठीक ठीक स्वर नियत कर दिया है, जिससे कोई सन्देह ही नहीं रह जाता। तिस पर भी उन्होंने वर्णमाला ऐसी सरल और पूर्ण बनायी जिससे वर्ण सङ्कर न करना पड़े। जैसा लिखो वैसा पढ़ लो। तो क्या यह सचमुच सोनेमें सुगन्ध नहीं है?

परन्तु पहचाने कौन? हमारे दिमाग़ तो नयी रोशनीके गुलाम हैं।

—जयदेव शर्मा

कहां है ?

[ले०—अध्या० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव]

जब किसीको किसी गांव, घर या और स्थानका पता बतलाना होता है तब किसी ऐसी विशेष बातका सम्बन्ध बतलाना पड़ता है जो बहुतोंको मालूम हो या जो सहज ही मालूम हो सके। यदि ऐसे गांवमें जाना हो जो रेलकी लैनके पास हो तो कहा जाता है कि अमुक स्टेशन पर उतरके लैनके दाहिने या बायें अथवा उत्तर या दक्खिन मील या दो मील तक चले जाओ। फिर घरका पता बतलानेके लिए कोई गली बतलानी पड़ती है और यदि घर किसी कुएं, मंदिर अथवा किसी पेड़ विशेषके पास हो तो वह भी बतलाना पड़ता है। यदि यह बातें बतला दी जायं तो पता खोजनेमें ज़रा भी कठिनाई नहीं पड़ती।

जैसे गांव या घरका पता किसी सड़कका नाम लेकर दहिने बायें, उत्तर दक्खिन इत्यादि दिशाओंका नाम लेना पड़ता है उसी तरह पृथ्वी और आकाशके बड़े बड़े स्थानोंका भी पता बतलाया जाता है। पृथ्वीपर जल, थल, बन, पर्वत इत्यादि इतने ऊंचे नीचे स्थान हैं कि इसपर कोई ऐसा राज मार्ग नहीं बनाया जा सकता जो पता बतलानेका काम दे सके, परन्तु मनुष्यने अपनी बुद्धिके बलसे और आकाशके तारोंकी सहायतासे ऐसी रेखाओंकी कल्पना करली है जो सार्वभौम हैं और जिनपर किसीका इजारा नहीं हो सकता। आज इन्हीं काल्पनिक रेखाओंका वर्णन किया जायगा।

पृथ्वी नारंगीकी तरह गोल है और आकाशमें सूर्यकी आकर्षण शक्तिके सहारे स्थित है। इसमें दो गतियां हैं। एक गति से यह दिन रातमें अपने ही एक व्यासके गिर्द घूमती है, जिस प्रकार कुम्हार का चाक कीलपर घूमता है। चाकके घूमनेमें भेद केवल इतना है कि चाक चपटा होता है और पृथ्वी गोल है। यदि नारंगी अमरूद या कोई फल बीचों बीच किसी लोहेकी छड़में खुभोकर घुमाया जाय तो इसकी या लट्टूके घूमनेकी तुलना पृथ्वीकी दैनिक घूर्णन गतिसे की जा सकती है। पृथ्वी जिस व्यासके गिर्द घूमती है उसको इसका अक्ष कहते हैं। जिन विन्दुओंपर यह अक्ष भूतलपर मिलता है उनको ध्रुव कहते हैं। जो ध्रुव उत्तर दिशामें है उसको उत्तर ध्रुव या सुमेरु कहते हैं और जो दक्षिण दिशामें है उसको दक्षिण ध्रुव या कुमेरु कहते हैं। यह अक्ष यदि आकाशमें दोनों ओर बढ़ाया जाय तो अनन्त आकाशमें जिन विन्दुओंपर इसके सिरे पहुंचते हैं उनको आकाशीय ध्रुव या केवल ध्रुव कहते हैं। उत्तर ध्रुवके पास ही एक चमकीला तारा है, जिससे उत्तर ध्रुवका पता सहज ही लगाया जा सकता है। इसलिए इस तारेको भी ध्रुव कहने लगे। ज्यों ज्यों उत्तर जाइये त्यों त्यों यह तारा ऊपर उठता जाता है यहां तक कि सुमेरु पर यह ठीक सिरके ऊपर दिखाई पड़ता है। यदि सुमेरुसे भी आगे बढ़िये तो आप उत्तर न जा कर दक्खिन जाने लगेंगे, यद्यपि आपने पीछे लौटनेका नाम तक नहीं लिया। इस स्थान पर (सुमेरु पर) आपको उत्तर दिशा नहीं मिलेगी और न पूरब पच्छिमका ही ज्ञान होगा। यहांके निवासियोंको सूर्य सिद्धान्तमें देवता कहा गया है। इस जगहसे सूर्य सुमेरुकी परिक्रमा करता हुआ दिखाई पड़ता है। यहां सूर्योदयसे सूर्यास्त तकका समय हमारे ६ मासके समान होता है। रात भी इतनी ही बड़ी होती है। इस विन्दुसे जिधर जाइये सब दक्खिन है। अब यदि आप दक्खिनकी ओर बढ़िये तो ध्रुव तारा नीचे होता जायगा और एक स्थान ऐसा आयगा जहांसे आकाशीय ध्रुव (स्थूल रूपसे ध्रुव तारा) ठीक क्षितिजमें

लगा हुआ देख पड़ेगा और इससे भी दक्खिन बढ़िये तो उत्तर ध्रुव हो ओझल हो जायगा और दक्खिन ध्रुव सिर पर आ जायगा; परन्तु इसके पास कोई चमकीला तारा न होनेसे इसका पता सहज ही नहीं लगाया जा सकता ! जहां दक्षिण ध्रुव ठीक सिरके ऊपर हो जाता है उसको कुमेरु कहते हैं। यही राक्षसोंके रहनेकी जगह मानी गयी है। यहांसे जिधर बढ़िये सब ओर उत्तर होगा। पूरब, पच्छिम या दक्खिन दिशाएं यहां लुप्त हो जाती हैं। जहांसे उत्तर और दक्षिण ध्रुव ठीक क्षितिजपर लगे हुए दिखाई पड़ते हैं। इन सबको मिलानेवाली रेखा एक विशेष रेखा है जो पृथ्वी परका स्थान बतलानेके लिए बहुत काममें आती है। इस रेखा पर दिन रात सदा समान होते हैं। बारह घंटे तक सूरज आंखोंके सामने रहता है और १२ घंटे तक आड़में; यद्यपि देखनेमें वह तीन चार मिनट और सामने जान पड़ता है। इस रेखाको भूमध्य रेखा या विषुवत् रेखा कहते हैं।

भूमध्य रेखासे सुमेरु या कुमेरुकी दूरी पृथ्वीकी कुल परिधिका चौथा भाग है और परिधिके ३६० वें भागको अंश कहते हैं। इसलिए अंशोंमें भूमध्य रेखासे सुमेरु या कुमेरु दूरी ९० हुई। जब आप भूमध्य रेखासे उत्तर इतना चलें कि उत्तर ध्रुव क्षितिजसे १ अंश ऊपर आ जाय तब आप ७० मीलके लगभग चल चुकते हैं। जिन स्थानोंसे उत्तर ध्रुव १° ऊपर दिखाई पड़ता है उन स्थानोंको एक अक्षांश स्थान कहते हैं। इन स्थानोंको मिलानेवाली रेखा भी गोल होती है और भूमध्य रेखासे समान अन्तर पर होती है। जिन स्थानोंसे उत्तर ध्रुव दो अंश ऊपर दीखता है उन स्थानोंका अक्षांश दो कहलाता है। इस प्रकार किसी स्थानका अक्षांश जानकर हम यह बतला सकते हैं कि वह स्थान ध्रुवसे या भूमध्यरेखासे कितनी दूर है। अक्षांश बतलाते समय यह बतलाना भी आवश्यक है कि भूमध्य रेखासे उत्तर या दक्खिन। भूमध्य रेखा ही ऐसी रेखा है जहां उत्तर दक्खिन अक्षांश शून्य है; इसीलिए इस रेखाको निरक्ष रेखा और इस पर स्थित स्थानोंको निरक्ष देश कहते हैं। निरक्ष देशके उत्तर भागवाले पृथ्वीके गोलार्द्धको उत्तर गोल तथा दक्षिण भागवाले गोलार्द्धको दक्षिण गोल कहते हैं। जब कहा जाता है कि प्रयाग २५° उत्तर अक्षांश पर है या प्रयागका अक्षांश २५° उत्तर है तब यह समझना चाहिये कि प्रयाग भूमध्यरेखासे उत्तर २५×७० मील अथवा १७५० मीलके लगभग उत्तर हैं। इससे अधिक और कुछ नहीं जाना जा सकता। प्रयागकी तरह काशी, मिरजापुर, मुंगेर इत्यादि नगर भी प्रायः इसी अक्षांश पर हैं। इसलिए प्रयागका ठीक ठीक पता बतलानेके लिए एक दूसरी बात भी बतलानेकी आवश्यकता पड़ती है, जिससे और किसी स्थानका भ्रम न हो।

उत्तर दक्षिण ध्रुवोंको मिलानेवाली रेखा, भूमध्यरेखाको समकोण पर काटती है। यह पृथ्वी की परिधि भी है। इस रेखासे भी पृथ्वी परके स्थानोंका पता सहज ही लगाया जा सकता है। परन्तु ऐसी हजारों रेखाएं पृथ्वी पर खींची जा सकती हैं। इसलिए इनमें से किसी एकको निश्चय कर लेना चाहिये। भारतवर्षमें जो रेखा कुरुक्षेत्र, उज्जैन * नगरों परसे होकर जाती है वही मध्यरेखा समझी गयी है, क्योंकि कुरुक्षेत्र बहुत प्राचीन कालसे भारतवर्षमें एक बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है और उज्जैन भी दो हजार वर्ष पहले राजधानी थी। इसके सिवा इस रेखासे ९०° पूरब, और ९०° पच्छिमके स्थानोंको लीजिये तो इसमें पुरानी दुनिया (पूर्वी गोलार्द्ध) सब आ जाती है

* राक्षसालय देवौकः शैलयोर्मध्यसूत्रगः।
रोहीतकमवन्ती च यथा सन्निहितं सरः ॥ ६२ ॥
सूर्य सिद्धान्त मध्यमाधिकारे।

यल्लङ्कोज्जयिनी पुरोपरि कुरुक्षेत्रादि देशान् स्पृशत्।
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः ॥
सिद्धान्त शिरोमणि।

और भारतवर्ष स्थल भागके केन्द्रमें हो जाता है। यह मध्य रेखा भूमध्य रेखासे जहां मिलती है वहीं (ज्योतिष गणनाके लिए) लंका मानी गयी है। यह एक काल्पनिक स्थान है। रावण वाली लंका वर्तमान सिंहल द्वीप है या और कोई द्वीप। इसका अभी तक निश्चय पूर्वक कुछ पता नहीं है। आज कल भी भारतवर्षके पंचांगोंमें इसीको मध्य-रेखा मानते हैं और ज्योतिषकी सारी गणनाएं की जाती हैं। उत्तर दक्खिन ध्रुवोंको मिलाने-वाली अन्य रेखाएं देशान्तर रेखाएं कहलाती हैं। जैसे भारतवर्षमें रोहतक, कुरुक्षेत्र और उज्जैनको मिलानेवाली उत्तर दक्षिण रेखा मध्यरेखा मानी गयी है वैसे ही इंगलैंडमें ग्रीनिच पर जानेवाली उत्तर दक्षिण रेखा प्रधान मानी गयी है। इस-लिए नकशोंमें इसी रेखाको शून्य देशान्तर मान कर पूरब या पच्छिमके स्थानोंका विभाग किया गया है। (असमाप्त)

भोजन किसे कहते हैं ?

भोजन सभी करते हैं; किन्तु भोजन कहते किसे हैं, इस प्रश्नका उत्तर बहुत कम मनुष्य दे सकते हैं। आप किसी व्यक्ति-से उपर्युक्त प्रश्न पूछें तो आपको तुरंत यही उत्तर मिलेगा कि—"जो कुछ हम खाते हैं वही हमारा भोजन है।" किन्तु ज़रा ग़ौर कर विचार करनेसे आपको पता लग जायगा कि उनका यह उत्तर ठीक नहीं। हम लोग जो कुछ खाते हैं या हमारे मुंहकी राहसे शरीरमें जो चीज़ जाती है उसे भोजन कदापि नहीं कह सकते। हमारे देशमें पान खानेकी प्रथा प्रचलित है, इस लिए पान हमारी भोजन सामग्री नहीं कही जा सकती। बहुत सी स्त्रियां ठीकड़ा खाती हैं, किन्तु ठीकड़ेको भोजनका नाम नहीं दिया जा सकता। लड़कोंको मिट्टी कोयला आदि खाते देख उसको ऐसा करनेसे रोकते हैं, क्योंकि यह वस्तु हमारे भोजन नहीं है।

यदि हम कुछ देरके लिए भोजनकी उपर्युक्त परिभाषाको मान लें तो बड़ी गड़बड़ी उपस्थित होगी। अफीमची कहेगा कि अफीम हम खाते हैं, इस लिए इसका उपयोग सभी मनुष्योंको करना चाहिये। कीड़े, मकोड़े और चूहे खाने वाले चीन-वासी कहेंगे कि कीड़े, मकोड़े आदि मनुष्योंके भोजन हैं। अफ्रीकाके मनुष्य-भक्षी जंगली मनुष्य-को ही अपनी खाद्य-सामग्री बतावेंगे। इस प्रकार संसारकी शायद ही कोई वस्तु ऐसी बचेगी जो मनुष्यका भोजन न ठहरे। किन्तु क्या ईश्वर ने संसार में जितनी वस्तुएं पैदा की हैं वह सब एक मात्र मनुष्यके खाने के ही लिए हैं ?

अच्छा तो भोजन कहते किसे हैं ? इस प्रश्नका उत्तर देनेके पहिले हमें यह देखना होगा कि हम अपने शरीरके अन्दर भोजन किन किन मार्गोंसे पहुंचाते हैं। पेटमें भोजन पहुंचानेके दो मार्ग हैं। पहला मुंह और दूसरा नाक। जब कैदी भोजन करना छोड़ देते हैं; या किसी मुख-रोगके कारण कोई मनुष्य मुंह द्वारा भोजन नहीं कर सकता तब उसे नाकके मार्ग भोजन कराया जाता है * सभी जानते हैं कि नाक से हम लोग सांस लेते हैं; इस-लिए हवा हमारा भोजन है। हवा हमारा सबसे पहला और ज़रूरी भोजन है; इसके बिना एक क्षण भी काम नहीं चल सकता, किन्तु इस आव-श्यक भोजनको हम लोग बिना जाने, या बिना परीक्षा किये खाया करते हैं।

हवा के बाद और मुंहसे खाने वाले पदार्थोंमें सबसे पहला स्थान शुद्ध पानीका है। हमारे शरीर-का प्रायः आधेसे अधिक भाग पानी है। प्रकृति-ने हमारे इन दो—हवा और पानी—ज़रूरी खुराकों-को प्रचुर परिमाणमें जुटा रखा है। वह हमें प्रायः मुफ़्त में ही मिलते हैं।

---

* यह संदिग्ध प्रतीत होता है। —सं०

यदि केवल हवा और पानीके व्यवहारसे ही मनुष्यका शरीर पोषण हो जाता तो कोई मनुष्य इतना कष्ट उठाकर अन्नादि उत्पन्न नहीं करता, किन्तु बिना अन्नके हमारा शरीर कोई काम नहीं कर सकता। इसका प्रमाण देना अनावश्यक है। जिन्हें कभी उपवास करनेका मौका मिला है उन्हें अनुभव हुआ होगा कि अन्नके बिना उनका शरीर शिथिल पड़ जाता है; काम करनेकी शक्ति जाती रहती है और हृदय उत्साहहीन हो जाता है। इसलिए अन्न शरीरके लिए बहुत जरूरी है। इसी स्थान पर यह भी विचार कर लेना आवश्यक है कि हमारे भोजन करनेका उद्देश्य क्या है, क्योंकि इस बातको जान लेनेसे भोजन किसे कहते हैं— इस प्रश्नका उत्तर स्वतः निकल आवेगा।

आजकल लोग भोजन केवल स्वादके लिए करते हैं। खानेके पहले वह कभी यह नहीं सोचते कि कौन सा पदार्थ खानेसे क्या फल होगा। उन्हें तो केवल स्वाद चाहिये; चाहे कैसी ही सड़ी गली हुई वस्तुमें आप मसाला आदि डालकर उनके सामने रख दीजिये वह बिना कुछ सोच विचार किये सब हड़प जायंगे। अधिकांश लोग इन्द्रियों-के वशमें होकर स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन कर जाते हैं। जो पदार्थ खाने चाहियें और जिस रीतिसे खाने चाहियें उन्हें उस रीतिसे न खाकर अनेक हानिकारक पदार्थ खाने लग गये हैं। हमने सुना है कि लोग कंकड़ोंमें नमक मिर्च आदि मसाले डालकर उसकी तर-कारी बनाते हैं और बड़े आनन्दके साथ खाते हैं। यह सोचनेकी बात है कि जो इञ्जिन कोयले या लकड़ी द्वारा चलाया जाता है उसमें धूल, मिट्टी पत्थर, कंकड़ आदि अलाय बलाय झोंक देनेसे क्या फल होगा? इञ्जिन ठीक ठीक काम नहीं कर सकेगा और व्यर्थका धुँआ निकाल अपने अन्य हिस्सोंको मैला और बेकाम कर देगा। मनुष्यका पेट भी एक इञ्जिनके सदृश है। इस इञ्जिनमें सुग-मतासे पच सकनेवाले और शरीरको बल-देनेवाले भोजनको न पहुंचा कूड़ा कर्कट भर देनेसे परिणाम यही होना है कि पेटकी क्रिया बिगड़ जाती है और शरीरको नाना प्रकारके रोग आ घेरते हैं।

पशु—पक्षियोंसे हमें इस विषयमें शिक्षा लेनी चाहिये। वह प्रकृति द्वारा तैयार किया हुआ भोजन व्यवहारमें लाते हैं। उन्हें मसाला नमक डला हुआ भोजन अच्छा नहीं लगता। प्राकृतिक भोजन-को खाकर वह हृष्ट-पुष्ट बने रहते हैं। किन्तु मनुष्य— जो अपनेको इन पशु-पक्षियोंसे श्रेष्ठ मानता है— स्वादके लिए हानिकारक पदार्थोंको खाकर हमेशा रोगी बना रहता है। यदि हम पेट को ही अपना सब कुछ समझ कर उसकी पूजामें—रोगी बनने के लिए—अपना दिन बितावें तो हमसा मूर्ख और कौन होगा?

हम भोजन रोगी बननेके लिए नहीं करना चाहते। भोजन शरीरको पुष्ट, नीरोग तथा बल-वान बनाने वाला होना चाहिये। इसलिए जिस पदार्थमें हमारे शरीरको पुष्ट बनानेकी शक्ति हो तथा जिसके व्यवहारसे हमारे स्वास्थ्यमें किसी प्रकारका खलल न पहुँचे वही हमारा भोजन है। एक वस्तु उचित मात्रामें खानेसे हमारे शरीर-को पुष्ट बनाती है; वह हमारा भोजन है; किन्तु यदि वही वस्तु मात्रासे अधिक व्यवहार की जाय और हमारे शरीरको रोगग्रस्त करे तो वह हमारा भोजन कदापि नहीं हो सकती। सभी जानते हैं कि घी पुष्टिकारक पदार्थ है। जब तक वह हमारे शरीरको पुष्ट करता है तभी तक वह हमारा भोजन है, किन्तु जहां वह हमारे शरीरको हानि पहुंचाने लगा कि वह हमारा भोजन नहीं रहा। हवा, पानी और अन्न—यह हमारे शरीरको पुष्ट बनाते हैं; इस लिए यह तीनों हमारे भोजन हैं। जो पदार्थ शरीरके अन्दर पहुंच कर उसे पुष्ट नहीं करते वह निरे निकम्मे हैं। उनके व्यवहारसे शरीर कदापि नीरोग नहीं रह सकता। वह नाना प्रकारके रोग उत्पन्न करनेके कारण होते हैं। धूल, मिट्टी आदि शरीरका पोषण नहीं कर सकते, इससे उनकी

गिनती खानेकी चीज़ोंमें नहीं होती। यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं रही कि शराब, भांग, अफीम, कहवा, चाह, मसाला आदि हमारे भोजन नहीं हैं।

हवा, पानी और अन्न हमारे भोजन होने पर भी साधारणतः अन्न ही को हम लोग भोजन मानते हैं, किन्तु वह दरअसल हवा और पानीसे श्रेष्ठ कर है। फलाहार अन्नसे श्रेष्ठ माना जाता है; क्योंकि यह प्राकृतिक अवस्थामें शरीर पोषणमें उपयोगी होता है। पके हुए फल, अपनी साधारण अवस्थामें, हमारे शरीरको लाभ पहुँचाते हैं। हमारे निर्वाहके लिए जितने तत्वोंकी आवश्यकता होती है वह सब फलोंमें पाये जाते हैं। वैज्ञानिकोंने बहुत खोज पड़ताल कर यह सिद्ध किया है कि मनुष्योंको खाना पकानेकी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि सूरज अपनी गरमीसे हमारे लिए आहार पका देता है। जैसे दूसरे जीव प्राकृतिक भोजन द्वारा अपनी उदरपूर्ति कर लेते हैं तथा स्वस्थ बने रहते हैं वैसे ही हम भी पके फल आदिके व्यवहारसे तन्दुरुस्त रह सकते हैं। पकानेसे वनस्पतिका उपयोगी तत्व नष्ट हो जाता है और उसकी पोषक शक्ति कम हो जाती है।

फलाहारके बाद अन्नका नम्बर आता है। इसी श्रेणीमें हमने तरकारी, दूध, अनाज आदिकी गणना की है। इन पदार्थोंमें मनुष्य शरीरोपयोगी सभी तत्व मौजूद हैं, किन्तु उन्हें पकानेसे वह अपनी असली अवस्थामें नहीं रहते, उनका असर कुछ कम हो जाता है। किन्तु साथ साथ यह बात भी है कि हम उन्हें बिना पकाये, सिझाये या उबाले नहीं व्यवहार कर सकते। ऐसे पदार्थोंका कच्ची या अधकच्ची अवस्थामें व्यवहार करनेसे लाभसे अधिक हानि ही होनेकी सम्भावना रहती है। अन्नको पचने तथा शरीर पोषणोपयोगी बनानेके लिए पकाना या उबालना ही काफी है। गेहूंकी रोटी जितनी जल्दी पचने और लाभ पहुंचानेवाली होती है उतनी घीकी तली हुई पूड़ी या कचौड़ी नहीं होती। केवल पानीमेंका उबला हुआ आलू जितना फायदेमन्द होता है उतना तेल मसाला डाल कर बनाई हुई आलूकी तरकारी नहीं होती।

यहां पर एक और बात कह देना आवश्यक जान पड़ता है। हमें ठोस (Solid) भोजनकी ओर अधिक ध्यान देना चाहिये। जो चीज़ें निगलनेके पहले खूब चबानी पड़ती हैं वह तरल या मुलायम भोजनसे सदा शीघ्र और आसानी से पचती हैं। खूब चबानेसे ही भोजनमें मुंहकी लार उचित परिमाणमें मिलती है और वही भोजन पचने योग्य बनाती है।*

—रमेश प्रसाद, बी. एस-सी.

एक अनोखी समस्या

एक बार एक मनुष्य घोड़ा खरीदने गया। घोड़ेवाला मसखरा था। दाम पूछनेपर उसने कहा कि घोड़ेके दाम उसके नालोंमें जड़ी कीलोंके हिसाबसे लूँगा। पहली कीलका एक आना, दूसरीका दो आना तीसरीका चार आना आदि; इसी प्रकार चौबीसों कीलका हिसाब लगाकर दाम चुकता कर दीजिये।

उक्त मनुष्य सीधा सादा था; अतएव उसने स्वीकार कर लिया। जब हिसाब लगाने बैठे तो पता चला कि चौबीसवीं कीलका मूल्य ८३८८६०८ आना अर्थात् ५२४२८८) है। कुल कीलोंका मूल्य इस प्रकार १०४८ ५७५) निकला।

---

* मेरी "भोजन" नामक पुस्तकसे। —लेखक

रौब गाठना

एक दिन एक वृद्ध महोदय अपने अनेक अनुभवोंका वर्णन कर रहे थे। जब वह १८ वर्षके थे तो नौकरीकी तलाशमें वह एक स्थानको गये। वहां एक अफसर था, जिसके पास लेखक न ठहरते थे। कारण यह था कि जहां कोई लेखक मिसल पढ़ते पढ़ते रुका कि अफसर महोदय ने डंडा जमाया। उक्त महाशय जब उनके पास गये तो बहुत डरते हुए। उसने एक मिसिल उठाकर दे दी। इन्होंने भी उसे पढ़ना शुरू कर दिया, कुछ पढ़ा और कुछ अपनी तरफसे मिलाया। अफसर महोदय प्रसन्न होगये और उनकी नियुक्ति करदी। इसी प्रकार संयुक्त प्रान्तके एक विख्यात शिल्प विद्यालयमें एकबार एक गणितके अध्यापक पढ़ा रहे थे। वहांके प्रिंसिपेल उनकी कक्षामें निरीक्षणार्थ चले आये। अध्यापक महोदयने उन्हें देख एक परिभाषा देनी शुरू कर दी, जिसमें उन्होंने गणितके जितने कठिन कठिन शब्द मालूम थे सभीका प्रयोग कर डाला।

ऐसी घटनायें प्रायः सुननेमें आती हैं, पर धुरन्धर विद्वानोंके शास्त्रार्थमें ऐसा होता कभी नहीं देखा गया, तथापि एक घटना बड़ी मनोरंजक है, जिसका यहां उल्लेख किया जाता है। डिडेरो (Diderot) नामक एक बड़े योग्य और प्रतिभा शाली गणितज्ञ होगये हैं। यह गणित पढ़ाया करते थे और गणितकी विविध शाखाओं पर उन्होंने पुस्तकें भी लिखी थीं। विख्यात गणितज्ञ डा० एलम्बर्टके साथ काम करके इन्होंने ली एंसाइक्लोपिडिई (L, Encyclopædie) नामक ग्रन्थ निर्माण किया था।

इन्हीं महाशयको एक बार रूसकी महारानी कैथेरीन द्वितीय ने अपने दरबारमें बुलाया। डिडेरो प्रतिभावान बात करने वाले थे, दूसरे वह अपने विचारोंको छिपाना भी नहीं चाहते थे। अतएव वह नास्तिकता पर युवक दरबारियोंसे बातें करने लगे। महारानीको भी उनकी बातें विनोद जनक मालूम होती थीं। परन्तु कुछ मंत्रियोंकी सम्मति यह हुई कि ऐसे अद्भुत सिद्धान्तोंको चर्चा दरबार में नहीं होनी चाहिये। महारानी स्वयं अपने अथितिको रोकना चाहती न थी, अतएव मंत्रियोंने एक चाल चली। उन्होंने डिडेरोसे कहा कि एक धुरन्धर गणितज्ञने बीज गणितकी विधिसे ईश्वरका होना सिद्ध कर दिया है, यदि आप चाहें तो वह भरे दरबारमें सिद्ध करके दिखादें। डिडेरो ने सहर्ष इस बातको स्वीकार कर लिया। यह सुनकर ओयलर (Euler) महोदय (यद्यपि ठीक ठीक नामका पता नहीं, तथापि अनुमानतः ओयलर ही वहां थे) डिडेरोकी तरफ बढ़े और बड़े गम्भीर भावसे फ्रांसीसीमें कहा—"महोदय

$$\frac{अ + इ^{स}}{स} = य$$ इसलिए ईश्वरकी सत्ता सिद्ध हुई।

उत्तर दीजिये।" डिडेरो सुनकर बड़े घबड़ाये और चक्करमें आये। उधर चारों तरफसे बड़े ज़ोरका कहकहा लगाना शुरू किया। उसी समय डिडेरो महोदयने फ्रांसको लौट आनेकी आज्ञा मांगी, जो उन्हें दे दी गयी।

बात यह थी कि डिडेरो यद्यपि गणितकी अन्य शाखाओंमें पारंगत थे, परन्तु बीज गणित बिल्कुल नहीं जानते थे; इसीलिए एक निरर्थक बात भी सुनकर घबड़ा गये।

चींटियोंसे मीठे पदार्थोंकी रक्षा

जहां चींटियां अधिकतासे होती हैं वहां उनसे मीठी चीजोंको बचाना बड़ा ही कठिन कार्य है। यदि ढक्कनदार बरतनोंके ढक्कन कुछ भी ढीले हुए तो इनके पहुंचनेमें देर नहीं लगती। यदि कभी किसी बरतनका ढक्कन भूलसे खुला रह जाय तो एक चींटीके पहुँचनेकी देर है; फिर तो दलके दल पहुंच कर साफ करने लगते हैं और खानेके साथ साथ उसपर मैल भी जमा करते जाते हैं, जिससे रहा सहा पदार्थ भी गन्दा हो जाता है।

चींटियोंका यह कार्य दिनरात समान रूपसे चलता रहता है। प्रतीत होता है इन्हें देखनेके लिए प्रकाशकी आवश्यकता नहीं है। चींटियां खाद्यकी खोजमें निरन्तर घूमा करती हैं, फर्श,
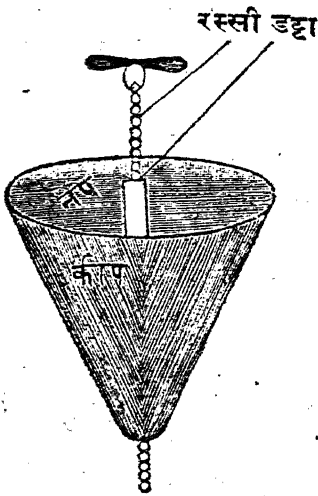
चित्र—१६

दीवार, छत, कोई भी जगह ऐसी नहीं बचती जहां इनकी पहुंच नहीं होती। आप केवल एक तार छत में कड़ेसे बांधकर उसके सहारे चीनी आदि लटका दीजिये। कुछ देर बाद आपको क्रम बद्ध चींटियों की कतार आती जाती दिखलाई देगी। यह वही मार्ग होता है जिसके द्वारा पहली चींटी वहां पहुंचती है, चाहे यह मार्ग टेढ़ा ही क्यों न हो; पर यह उसीको पसन्द कर लेती हैं। इस खोजके कार्यमें जहां तक मालूम पड़ता है यह दृष्टिके साथ साथ घ्राण शक्तिसे भी कम काम नहीं लेतीं। इनकी घ्राण शक्तिका परिचय आगे लिखी बातमें स्पष्ट मिलता है। बहुधा लोग भेलियोंको इनसे बचानेके लिए गेहूंमें दबाते हैं। यदि ऊपर वाली भेलीके ऊपर केवल तीन या चार इंच गेहूं ढके हों तो यह सुगमतासे उसका पता पा लेती हैं। और दाना दाना गेहूंका उठाकर फेंकना आरम्भ करती हैं। जहां चींटियां अधिक होती हैं मिश्री चीनी आदि बोरियोंमें भर कर भी नहीं बचाई जा सकती। क्योंकि यह बोरियों और बारीक कपड़ेके थैलोंको काटकर उनमें प्रवेश कर जाती हैं। हां यदि थैले मोटे दृढ़ और घनी बुनावटके हों तो हर्ज नहीं।

छीकेमें लटकाने योग्य सामानको लटका कर बहुधा रस्सीमें तेलसे भीगा कपड़ा लपेट देते हैं, पर इससे भी पूरी रक्षा नहीं हो पाती है। कपड़ेका तेल या तो टपक जाता है या कुछ रस्सीमें लग जाता है; उसे बार बार तेलमें डुबोकर लपेटना पड़ता है। इसके लिए चित्रके अनुसार बनी हुई कीप बहुत उत्तम है। एक बार मीठे तेलसे भर दीजिये फिर चींटियां नहीं चढ़ सकती हैं। जब अधिक सामान बचाना होता है तब बहुधा तख़्तके पाये पानी भरे तसलोंमें रख दिये जाते हैं। उसपर चींटियां नहीं चढ़ सकतीं; पर बार बार पानी बदलना पड़ता है, नहीं तो गन्दा हो जाता है। सूख जाने पर चींटियां भी हमला कर देती हैं। उनमें भी यदि तेलका उपयोग किया जाय तो अधिक अच्छा हो।

—गोपाल साह

सर्व घोलक (Alkahest)

जब कोई चीज़ किसी अन्य चीज़में घुलाई जाती है तो पहला पदार्थ घुलनशील और दूसरा घोलक कहलाता है। यह दोनों शब्द भी आपेक्षिक हैं। नमक पानीमें तो घुल जाता है, परन्तु मट्टीके तेलमें नहीं घुलता; अतएव पानीके सम्बन्धमें नमक घुलनशील और मट्टीके तेलके खयालसे अघुलनशील है। इसी प्रकार पानी नमकके लिए घोलक है, न कि मट्टीका तेल। कीमियागरोंकी धुन थी कि ऐसा घोलक निकालें जो सब पदार्थोंको घुला सके। अतएव साधारण पदार्थोंको उसमें डाल देनेसे उनमेंका अपवित्र अंश तो घुल जायगा और पवित्र अंश अर्थात् सोना रह जायगा। ऐसे सर्व घोलककी तलाशमें न जाने कितने कीमियागर कितने समय तक कितना रुपया खर्च करके परिश्रम करते रहे, परन्तु उन्हें सफलता न हुई।

इस खोजकी निरर्थकता प्रकट करनेके लिए एक विरोधी ने एक बार कीमियागरोंसे प्रश्न किया कि ऐसे घोलकको रखनेके लिए वह बरतन काहेका बनायेंगे। स्पष्ट है कि यदि वह पदार्थ सभी पदार्थोंको घुला लेता है तो बरतनोंके पदार्थको भी बातकी बातमें घुला लेगा और बिखर जायगा।

जब हैड्रोफ्लोरिक अम्लका पता चला तो मालूम हुआ कि उसके लक्षण सर्व घोलकसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। उसके रखने तथा उससे फ्लोरीन बनानेके लिए उपयुक्त बरतनोंका मिलना क़ठिन हो गया। इस अम्लमें चीनी और काँच घुल जाता है; फ्लोरीन तो और भी गजब ढाती है; वह तो प्लाटीनमको भी चट कर जाती है। अम्ल के रखनेके लिए शुद्ध चान्दी और सीसेके बर्तन अथवा गटा पर्चाकी कुप्पियां काम दे जाती हैं; परन्तु फ्लोरीनको रखना बड़ा कठिन है। तथापि प्लाटीनम और इरीडियमके बरतन काम दे ही जाते हैं।

देखें सर्व घोलककी खोज कब सफल होती है?

तम्बाकू

[ले०—पं० लक्ष्मण प्रसाद भार्गव]

ज़रा कहिये तो आपकी पान तम्बाकूसे ख़ातिर कहाँ कहाँ होती है! अपने रिश्तेदारोंमें, अपने दोस्तके मकान पर कहीं भी मिलने जाइये पान हाज़िर हैं, हुक्का मौजूद है। अगर हुक्का न हुआ तो दो चार सिगरेट ही आपकी नज़र होते हैं। रास्तेमें अगर कोई जानकार साहब मिल गये तो फ़ौरन ही पान और सिगरेट पेश किये जाते हैं। किसी जलसे या महफ़िलमें जाइये आपकी अव्वल ख़ातिर पान तम्बाकूसे ही होती है। कहाँ तक कहें, दिनमें बहुत कम मौके ऐसे आते हैं जब पान तम्बाकूके दर्शन करनेको न मिलते हों, सभ्य लोगोंमें पान तम्बाकूसे पहले ख़ातिर होती है। बिला इसके कहीं आओभगत ही पूरी नहीं होती। मुझे तो अक्सर यह सुननेका भी अवसर प्राप्त होता है "कि पान तम्बाकूसे तो आपको नफ़रत है, आपकी और ख़ातिर ही क्या की जाय"।

यह तो रही ऊँचे दर्जेकी बात। नीचे दर्जेमें भी जाइये। बात बातमें हुक्केका ज़िक्र आता है। वहाँ भी हुक्केसे ही ख़ातिर होती है—हुक्का ही देनेमें एक दूसरा दोस्ती निभाना समझता है और किसीसे नाता तोड़नेमें भी इन्हीं हुक्के महाशयका सिलसिला बन्द किया जाता है। मेरा मतलब उनमें हुक्का पानी बन्द कर देनेसे है। भारतवर्षके सिवाय और सब मुलकोंमें भी सिगरेट और तम्बाकू से ही ख़ातिर होती है।

अब यहां पर यह सवाल होता है कि यह पान तम्बाकू है क्या बला। अमीर ग़रीब छोटे बड़े, विद्वान और जाहिल, शरीफ़ और रज़ील सब इसके गुलाम बने हैं। इसमें ऐसी ख़ूबी क्या है, जिसने सबको फन्देमें फांस रखा है। इनमें कौन सा ऐसा जादू है जो सबको नचा रहा है। इन्हीं सब बातोंकी छान बीन करनेका आज यहां इरादा है। और इन दोनोंमेंसे भी सिर्फ़ तम्बाकूको ही देखना है, क्योंकि समस्त संसारमें इसका ही ज़्यादा दौरदौरा है। हम भी इसीकी ही अच्छी खातिर करना अपना पहला कर्तव्य समझते हैं।

अच्छा, तो अब यह देखना चाहिये कि तम्बाकू महाशयाका घराना कौनसा है और कैसे उस घरानेसे निकलकर आज यह अपना सिक्का दुनियामें जमाये हुए हैं। सुनिये पन्द्रहवीं सदीसे पहले इनका नामों-निशान सभ्य दुनियामें बिलकुल था ही नहीं। कोलम्बसने जब नई दुनिया ढूँढ़ निकाली तब ही इनका पता भी चला था। अमेरिकाके जंगली आदमियोंसे ही इनकी जान पहचान थी। उन्हींसे इनका सदाका ताअल्लुक़ चला आता था। इससे पता चलता है इनके घराने का; लेकिन नहीं किसीके घरानेको ही देख कर यह कह देना कि उसमें कोई ख़ूबी नहीं है, उसपर ज़ुल्म करता है; क्योंकि न मालूम कितने नीचे दर्जेसे निकलकर भी यह साबित कर देते हैं कि उनमें जौहर पूरा पूरा है। कितने अनमोलरत्न कूड़े करकटके ढेरमें छिपे रहते हैं। भला कौन कह सकता था कि एक ग़रीब बढ़ईके घरमें ईसाकासा मनुष्य पैदा होगा? कौन जानता था कि अरबके कुपढ़ भेड़ चराने-वालोंमें मुहम्मद साहबका जन्म होगा। किसको भला यह खबर थी कि वृन्दाबनके ग्वालोंमें दुनियाको मोक्षका रास्ता बतानेवाला कृष्ण भी होगा। ख़ैर, तो इसको भी लगे हाथों लेनेसे पहले यह देख लेना ठीक है कि इसमें कोई गुण भी है या नहीं। इसके लिए किसी तम्बाकू पीने खाने या सूँघनेवालेको सामने लाकर देख लीजिये। आपको मालूम हो जायगा कि एक अन्दर बाहर दोनों तरफ़से जला भुना आदमी आपके सामने है। तम्बाकूने उसमें कोई विशेष तरक्की करनेके अलावा उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियों-को भी तबाह कर दिया है और वह अपनी मौत-को अपने पास खींच रहा है।

इतना ही इस मौक़ेके लिए काफ़ी है। हम कुछ आगे चलकर इसके अवगुणोंकी तरफ ध्यान देंगे। इस क़दर तो पता हमको चल ही गया कि यह तम्बाकू महाशया कोई जौहर नहीं रखतीं। हां, नीच घरानेकी हैं और खुद भी नीच हैं। अब हम यह और देखलें कि यह उस घरानेसे निकल कर संसारमें कैसे फैलीं। जब सन् १४९२ ई० के नवम्बर मासमें कोलम्बसने क्यूबा टापू ढूँढ़ निकाला तो उसने अपने साथियोंको वहाँका हाल मालूम करनेको भेजा। उन्होंने लौट कर कोलम्बससे कहा कि "यह काले रंगके आदमी नंगे रहते हैं और शैतानोंकी तरह एक प्रकारके पत्रोंको लपेट कर और उनका सिरा जलाकर मुहँ और नाकसे धुआँ निकालते हैं।"

अफ़सोस, दुनियाका कैसा उलट फेर है। आज वही आदमी, जिन्हें उन जंगली शैतानोंने जहाज़ोंसे उतरते देखकर यह ख़याल किया था कि यह आकाशी देवता हैं और आकाशसे इन अद्भुत जानवरों (जहाज़ों) पर चढ़कर उतर आये हैं, उन्हीं शैतानोंके बाबा बने बैठे हैं।

कोलम्बस उन जंगली आदमियोंसे कुछ पत्ते अजायब घरमें रखनेके लिए ले आया था। स्पेनमें पहुँच कर वहाँके अमीरोंको कुछ शौक़ उन जंग-लियोंकी नक़लका हुआ। फिर क्या था बड़े और छोटे भी शैतानोंकी तरह धुआं निकालने लगे। सं० १५५१ वि०में जब कोलम्बस फिर अमेरिका गया तो इस दफ़ा उसने वहाँ वालोंको तम्बाकू सूँघते देखा। इसकी ख़बर भी यूरोपमें फैल गयी। पहले अमीरों-की औरतों ने इसका सूँघना शुरू किया और बड़े बड़े जलसोंमें जब वह ऐसा करती थीं और यह छीं वह छीं चारों तरफ़ छीं ही छीं होती थी लाग

हँसते थे तो वह और भी ज़्यादा इसको काममें लाती थीं। यह आदत भी यहींसे ज़ोर पकड़ गई और सूँघना एक फैशन हो गया।

सं० १५६० वि० में जब स्पेनवाले पैरागुआ जीतने गये तब वहाँके जंगली आदमी शोर करते ढोल बजाते इनका मुक़ाबला करते थे और द्वन्द्व युद्धमें स्पेन वालोंकी आखोंमें इसीका रस थूक कर इनको अन्धा कर देते थे। यह रहस्य भी जब स्पेन-वालोंको मालूम हो गया तो खुद इसका इस्तेमाल करने लगे और तम्बाकू खाना भी बस यहींसे शुरू हो गया।

यूरोपमें इसके पीने, सूंघने और खानेका प्रचार दिन दूना रात चौगुना उन्नति करता गया। इसका व्यापार बढ़ गया। नये नये ढङ्गके हुक्के* बनने लगे। खुशबू भी इसमें मिलाई जाने लगीं। कवि-जन इसपर कविता भी लिखने लगे। लालचका भूत यूरोपवालों पर जब सवार हुआ तब इसकी तिजारत एशियावालों से भी करने लगे और धीरे धीरे सब संसारको इसका आदी बना दिया। यह इसके फैलनेका इतिहास है।

आज एक भारतमें ही क्या चीन जापान रूस सभी मुलकोंमें इसका रिवाज है। जहाँ जाइये तम्बाकू ही तम्बाकू है। भारतमें तो अगर गाँयगे भी तो इस तरह "तम्बाकू नहीं है कैसे कटेगी काली रात"। बाज़ारोंमें जितनी भरमार इसकी है और किसी दूसरी चीज़की नहीं। दूकान दूकानपर नये नये रंगीन, तरह तरहकी तसवीरोंसे सजे सजाये दिल लुभानेवाले बक्स रखे होते हैं। इनके अन्दरकी बलाकी पोल आप नीचे सुनेंगे। कुछ समय हुआ यह सुननेमें आया था कि जापानने मनों घोड़ोंकी लीद इन डिबियोंमें भर कर भारतको पिला दी। रास्तों परसे सिगरटोंके छोटे छोटे बचे हुए टुकड़े तो आपने बीनते हुये लोगोंको देखा ही होगा। यह सब इन्हीं कारखानोंमें चले जाते हैं। या ईश्वर, कैसी गंदगी इन प्यारी प्यारी डिबियोंमें बन्द है!

तम्बाकूमें जो विष मौजूद है उसका भी हाल सुनिये। एक आध सेर तम्बाकूमें इतना ज़हर है कि तीन सौ आदमियोंको ज़िन्दा न रखे। अगर एक सिगरेटकी तम्बाकू अपना पूरा असर दिखादे तो दो आदमियोंको चट कर जाय। आप ही इस-को बाहरी तौरपर आजमा लीजिये। एक सिगरेट-के पत्रोंको खोल कर पेट पर रखकर बाँध लीजिये और कुछ देर बाद मज़ा देखिये। इसके ज़हरमें इतना ज़ोर है कि उसकी एक बूँदसे काला नाग मर सकता है। अफ़रीकाके हाब्शी इसका प्रयोग साँप मारनेमें ही करते हैं। माली लोग फलोंके ऊपरके कीड़े मारनेमें इसका इस्तेमाल करते हैं। आप भी इसके धुयेंका एक दम बर्रों या मक्खियों पर मार कर देख लीजिये और इसके ज़हरका पता चला लीजिये। छोटे छोटे जानवर मेंढ़क और चूहे भी इससे फ़ौरन ही मर जाते हैं।

कुछ पाठक इस वक्त यह पूछेंगे कि जब इसमें इतना ज़हर है तो पीने या खानेवाले स्वयं क्यों नहीं मर जाते। यह ठीक है, अगर शुरूमें ही इतना पीने लग जायँ तो मरनेमें कुछ कसर न रहे। लेकिन वह उस ज़हरको भी उसी तरह पान करनेकी बान डालते हैं जिस तरह संखिया, अफ़यून, गांजा और भंग वगैरा खानेवाले अभ्यास बढ़ाते हैं। जिस तरह संखिया खानेवाला पहले एक लकीर ही स्लेट पर खींचकर उसे चाटकर खाना शुरू करता है, उसी तरहसे तम्बाकू पीनेवाला भी पहिले एक आध ही दम लगाता है। लेकिन उससे पहिले ही घूंटका मज़ा पूछिये। कहेगा सिर घूमने लगा था, जी मतलाता था और तबीयत घबराती थी। मैं तो यह कहूंगा कि आख़िरको यह तम्बाकू ही उस-को ले डूबती है। जहां उसकी उम्र ५० वर्ष की होती अब २५ ही की रह जाती है।

इतना होनेपर भी यह ताअज्जुब है कि यह ऐसी ख़तरनाक चीज़का क्यों पान करता है। शायद

* हुक्का हिन्दुस्तानकी ईजाद है। दवाओंका धूम्रपान करनेके काममें यहां आता था। —सं०

इस वजहसे कि एक फ़ैशन है। ठीक है यह सब फ़ैशनही करवाता है। यह फ़ैशन ही चीनी औरतों के पैर लोहेके शिकंजोंमें बरसों जकड़वाये रहता है। यह फ़ैशनही मुअर्समें महा तकलीफ़से बदनका इंच इंच गुदवा डालता है। गली कूचोंमें भी छोटे छोटे बच्चे जिनकी उम्र अक्सर सात आठ सालसे भी कम होती है बड़े अकड़कर एक सिगरेटको मुंहमें दबाये धुआं निकालते फैशनेबिल बाबू पनका दम भरते दिखाई देते हैं। तम्बाकू पान करनेवालोंमेंसे ९५ फ़ी सदी तो ऐसे हैं जिन्होंने फ़ैशनकी आड़में इसका प्रयोग करना सीखा है। बाकी ५ आदमी किसीके ऐसा बहकानेसे पीने लगे हैं कि इससे फ़लाँ बीमारी दूर हो जाती है। लेकिन यह सब झूठ है। अब इनसे आप यह पूछिये कि क्या आपकी वह बीमारी जाती रही। बहुत मुमकिन है कि जवाब नहींमें ही मिलेगा।

तम्बाकू पीनेवालोंकी मुखकी आभा देखिये। जवानीमें ही बुढ़ापा दीख पड़ेगा। क़द भी उनका छोटा ही रह जाता है। आंखोंका ज़ोर तो कम हो ही जाता है। दम, कफ, खांसी और तपेदिक़ जैसी बीमारियां लग जाना तो उसके लिए बहुत आसान है। तम्बाकू पीनेवालोंके हाथों पर अक्सर कभी न छुट सकनेवाले दाग़ पड़ जाते हैं। जब हाथकी जैसी कड़ी खाल पर यह इतना असर डालती है तो न मालूम बदनके अन्दरूनी नाज़ुक हिस्सों पर क्या क्या ग़ज़ब ढाती होगी। एक हलका तम्बाकूका दम कैसेही सफ़ेद कपड़े पर काला दाग़ डाल देता है। तम्बाकू पीने वालोंकी डाढ़ी मूछोंको भी देख लीजिये, धुएँकेरङ्गमें रङ्गी होती हैं। इस बातके कहनेमें कि ऐसे लोगोंके दिल भी काले हो जाते हैं हमें कुछ संकोच नहीं होता है।

पाठको, अगर आपमेंसे कोई भी तम्बाकू पीता खाता या सूंघता हो तो इन सब बातों पर विचार करे। शराबकी तरह इसके विरुद्ध भी अबतक क्यों आन्दोलन नहीं हुआ, यही हमें आश्चर्य है। शायद इसकी वजह यह हो कि इसके पान करने वाले शान्ति भंग नहीं करते, हत्यामें हाथ नहीं डालते; लेकिन यह कोई वजह नहीं। तम्बाकू दिमाग़ और वात संस्थान (Nervous system) तक अपना असर पहुंचाने से नहीं चूकती। एक अंग्रेज़ डाक्टरका कहना है "It depresses all the vital energies, paralyses the organic instincts and lowers the tone of whole moral nature." तम्बाकू पीनेवालेका सांस ज़हरीला और वबा फैलानेवाला होता है। जहां तम्बाकू पी जा रही हो एक न पीनेवालेको वहां बैठा दीजिये! उसको दम घुटता मालूम होगा।

प्राप्ति स्वीकार

निम्न लिखित सज्जनों से धन प्राप्ति सहर्ष स्वीकृत है:—

अक्तूबर २१

श्री० प्यारे लाल गर्ग, एल. ए-जी., कृषि विद्यालय, कानपुर	४)
डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., बनारस ...	१२)
श्री० श्रीप्रकाश जी, एम. ए., बार-एट-ला., सम्पादक "आज", बनारस ...	१२)
प्रोफ़ेसर परमानन्द, एम. ए., म्योर सेंट्रल कालेज, प्रयाग	४)
श्री० शारदाप्रसाद जी, सतना ...	१२)
प्रो० ज्योती प्रसाद, एम. ए., मेरठ कालेज, मेरठ	१५)

नवम्बर २१

राय बहादुर ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, एम. ए. वाइस चेन्सलर, लखनऊ विश्वविद्यालय	१२)
सर राजा रामपाल सिंह, कुर्री सुदौली राज,	१२)
पं० यागेश्वर जोशी, राजवैद्य, कंखल, हरिद्वार	२४)
श्री० जलपाप्रसाद, बी. एस-सी., कायस्थ पाठशाला कालेज, प्रयाग ...	२)
लाला सीताराम, बी. ए. मुट्ठीगंज, प्रयाग	२४)
श्री० प्यारेलाल गर्ग, एल. ए. जी., कृषि विद्यालय, कानपुर	४)

प्रो० हरि रामचन्द्र दिवेकर, एम. ए., महिला विश्व विद्यालय, हिंगने बुद्रुक, पूना... १२)
प्रो० निहालकरण सेठी, डी. एस-सी., हिन्दू विश्व विद्यालय, काशी ... ... २४)
श्री० ए. जी. शिरेफ, रायबरेली ... १२)

दिसम्बर २१

श्री० गंगासहाय जी, रमा निवास, लुधियाना १२)
श्री० श्रीनाथ मिश्र, बड़ी महारानी का दफतर, दर्भङ्गा ... ... १२)
श्री० प्यारेलाल गर्ग, एल. ए. जी. कृषि विद्यालय, कानपुर ... ... ४)
श्री० राधाचरण साह, बनारस ... २४)
श्री० गोकरणनाथ मिश्र, एडवोकेट, लखनऊ २४)

जनवरी २२

प्रो० एन. एम. अठावले, एम. ए., महिला विश्व विद्यालय, पूना ... ... ३६)
प्रो० नन्दकुमार तिवारी, एम. एस-सी., हि० वि० वि०, बनारस ... ... २४)
श्रीमान् राव कृष्णपाल सिंह जी, आवागढ़ २४)
श्री० जल्पा प्रसाद, बी. एस-सी, के. पी. कालेज, प्रयाग ... ... २)

फरवरी २२

श्री० जल्पा प्रसाद जी, प्रयाग ... १)
प्रो० जे. पी. बैजल, एम. ए. मेरठ कालेज, मेरठ १०)

मार्च २२

श्री० जल्पाप्रसाद जी, ... २)
श्री० चुन्नीलाल साहनी, एम. एस सी., प्रिंसिपेल, इन्टरमीडियेट कालेज, झांसी २२)

हिसाब विज्ञान परिषत्

अक्तूबर २१—दिसम्बर १९२१

आय

अक्तूबर २१

सभ्योंका चन्दा ...	५६)	
पुस्तकोंकी बिक्री ...	४१≡)॥	
मुत्फर्रिक ...	३)	
		१०२≡)॥

नवम्बर १९२१

सभ्योंका चन्दा ...	१२६)	
डा० गणेश प्रसाद (दान)	१०)	
खातोंमें ...	२४५॥-)	
पुस्तक बिक्री ...	५४)	
		४३५॥-)

दिसम्बर १९२१

सभ्योंका चन्दा ...	८८)	
ब्याजका ...	३॥)	
खातोंमें ...	५२१॥)	
पुस्तकोंकी बिक्री ...	१९=)॥	
		६३२।=)॥।
		११७१≡)॥
रोकड़ बाकी ३० सितम्बर २१—		३२५।=)॥.
		१४९६॥-)॥।.

व्यय

अक्तूबर १९२१

क्लर्ककी तनखाह ...	२५॥≡)॥	
मुत्फर्रिक (पेशगी क्लर्क)	२०)	
डाकव्यय ...	१)	
		४६॥≡)॥

नवम्बर १९२१

डाकव्यय ...	४।-)॥	
मुत्फर्रिक ...	१३॥=)	
खातोंमें ...	१०३-)	
		१२१)॥

दिसम्बर १९२१

किराया मकान (अक्तू०-दि०)	१३॥)
पुस्तकें भेंट कीं ...	४)
फर्निचर ...	२२॥)
छपाई नोटिस ...	३॥)
मुत्फर्रिक ...	१)

खातोंमें ...	८०७।≡)
डाकव्यय ...	।।।−)।।।
	८५७।।1) ।।
	१०२५।।)।।।
रोकड़ वाकी ३१ दिसम्बरके दिन	४७१−).
	१४८६।।−)।।.

जनवरी २२—अप्रेल १९२२

आय

जनवरी २२

सभ्योंका चन्दा ...	८६)	
खातोंमें ...	७२)	
पुस्तकोंकी विक्री ...	३)।।	
		१६१)।।.

फरवरी १९२२

चन्दा सभ्योंका ...	११)	
खातोंमें ...	२३२।।।≡)	
पुस्तकोंकी विक्री ...	२२।।−)।	
		२६६।≡)।।

मार्च १९२२

सभ्योंका चन्दा ...	१)	
खातोंमें ...	४१६−)।।।	
पुस्तकोंकी विक्री ...	१०९≡)	
		५२६≡)।।

अप्रेल १९२२

सभ्योंका चन्दा ...	२३)	
खातोंमें ...	३०)	
पुस्तक विक्री ...	३५−)।।	
		८८−)।।
		१०४२)।।।
३१ दिसम्बर २१ को रोकड़ बाकी		४७१−)
		१५४३−)।।।

व्यय

जनवरी १९२२

क्लर्ककी तंखाह ...	३८।।1)	
खरीद पुस्तक ...	३।।)	
मुत्फर्रिक ...	१०≡)	
डाकव्यय ...	२)	
		५४।।≡)

फरवरी १९२२

क्लर्ककी तनखाह ...	२०)	
किराया मकान (दि०—जन०) ...	६)	
खरीद पुस्तक ...	१८।।)	
छपाई केला ...	१७)	
छपाई नोटिस ...	२।।≡)	
मुत्फर्रिक ...	२।।−)।।	
खातों में ...	२००)	
डाकव्यय ...	६)	
		२७५।।।≡)।।

मार्च १९२२

क्लर्ककी तनखाह ...	२०)	
विज्ञानको सभ्योंका चन्दा	३००)	
सेविंग वैंक में जमा किये	५२४।।)	
खातों में ...	४२५≡)	
मुत्फर्रिक ...	१।−)।	
डाकव्यय ...	१)	
		९७२)।..

अप्रेल १९२२

क्लर्ककी तनखाह ...	२०)	
मकान का किराया	६)	
मुत्फर्रिक ...	१≡)।	
खातों में ...	१४४।≡)।	
		१७४।।−)।।
		१४७७≡)।..
३० अप्रेल को रोकड़ बाकी		३५।।≡)।..
		१५४३−)।।।.

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १५ | वृष, संवत् १९७९ । मई, सन् १९२२ | संख्या २

फोटोग्राफ खींचनेके लिए तैयारी*

[ले०—श्री "सिद्ध हस्त"]

१—कैमरे का चुनाव

ही कोई फोटोग्राफी आरम्भ करने पर उद्यत होता है उसके सन्मुख यह प्रश्न उपस्थित होता है कि हम कौनसा कैमरा मोल लें। एक कैमरेका मूल्य केवल दस रुपया होता है और उसी नापके दूसरे कैमरेका मूल्य दो हज़ार रुपये तक होता है। केवल कैमरोंके मूल्यमें ही भेद नहीं होता है, परन्तु उनके रूपमें भी बड़ा अन्तर होता है। ऊपरके प्रश्नका उत्तर देना सरल नहीं है। साधारणतः जितना ही रुपया लगाया जायगा उतना ही अच्छा माल मिलेगा, पर इस प्रश्नके यथार्थ उत्तर पानेके लिए प्रत्येक प्रकारके कैमरोंके गुण दोषका ज्ञान परम आवश्यक है। इस पर भी कैमरोंके गुणदोषका ब्यौरा यहां पर नहीं दिया जा सकता; क्योंकि पहिले तो इन बातोंके समझनेके लिए फोटोग्राफीकी कई एक क्रियाओंका ज्ञान होना चाहिये। दूसरे, इन सब बातोंको आरम्भ में ही लिखनेसे नौसिखोंका जी ऊब जायगा। फिर, प्रति सैकड़े पाँच भी

* इस लेखके प्रकमोंकी पूरी सूची पृष्ठ ५८ पर दी है।

ऐसे लोग न होंगे जो कैमरा मोल लेनेके पहिले ही फोटोग्राफीके विषय पर कोई पुस्तक या लेख पढ़ते हों। अधिकांश लोग तो कई एक बक्स प्लेट ख़राब करने पर ही पुस्तकों पर दृष्टि डालनेका कष्ट उठाते हैं। इसलिए यहां पर केवल एक ऐसे कैमरेका वर्णन दिया जाता है जो तीव्र-गति (High-speed) फोटोग्राफीको छोड़ फोटोग्राफीके और सभी विभागोंमें काम आ सकता है। कार्टर प्लेट* (quarter-plate) नापका इस प्रकारका कैमरा सौ डेढ़ सौ रुपयेमें आता है। उन लोगोंके लिए जिनका लक्ष्य केवल मनुष्योंके चित्र उतारनेका व्यवसाय ही नहीं है, इस प्रकारका कैमरा बहुत उपयोगी होगा।

२—प्लेट या फिल्म और कैमरे की नाप

दूसरा प्रश्न यह उठता है कि कौन सा मोल लेना अच्छा होगा, प्लेट या फिल्म कैमरा, इस विषय पर भी बहुत कुछ लिखा जा सकता है, परन्तु यहां पर समर्थन करनेवाले कारणोंको न दिखला कर केवल हम अपनी सम्मति प्रकट करते हैं। बहुत छोटी नापवाले कैमरोंको छोड़ सब फिल्म कैमरोंमें ऐसा प्रवन्ध रहना चाहिये कि इच्छानुसार प्लेटका भी प्रयोग कर सकें। कमसे कम कार्टर प्लेट या इससे बड़े कैमरोंमें ऐसा प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये। नहीं तो बहुत असुविधा और पैसेका नुकसान होता है। कैमरोंको किसी प्रकारसे बदले बिना ही प्रायः सभी भांतिके प्लेट कैमरों में फिल्म लगाया जा सकता है। इसके लिए केवल एक फिल्म-पैक-अडैपूर (Film-pack adapter) या रोल-होल्डर (Roll-holder) की आवश्यकता पड़ती है। सारांश यह है कि हम प्लेट कैमरेको ही पसन्द करते हैं। कैमरा किस नापका होना चाहिये, इस विशय पर भी मुझे बहुत कुछ कहना है। इस प्रश्नके उत्तरका प्लेट या फिल्मवाले प्रश्नके उत्तरसे घना सम्बन्ध है। यहां पर हम इतना ही लिखते हैं कि यदि आप कार्टर प्लेट नापका कैमेरा लें तो आप निम्न लिखित सुभीतोंसे लाभ उठा सकेंगे। (१) इस नापका कैमरा बहुतोंके पास होता है और इस कारण जितने प्लेट इस नापके बिकते हैं उतने प्लेट और किसी नापके नहीं बिकते। फल यह होता है कि इस नापके प्लेट प्रायः सभी दूकानोंपर मिलते हैं और इनकी बिक्री अधिक होनेके कारण यह सदा ताज़ा मिलते हैं। यह विशेषता हाफ-प्लेट *नापमें भी पाई जाती है, पर यदि आप किसी बेढ़ब नापका कैमरा लेंगे तो उस नापके प्लेटके लिए आप बड़े बखेड़ेमें पड़ेंगे। ५ × ४ इंच या ४½ × ६ सेन्टीमीटर नापके प्लेट ऐसे ही किसी दूकान पर मिलेंगे, मिलने पर भी उनके ताज़ा होनेमें सदा ही सन्देह रहेगा। (२) कार्टर-प्लेटके नापकी फोटो इतनी छोटी नहीं होती कि अलबम (Album) अर्थात् चित्र-पुस्तकमें अच्छी न लगे। (३) समय पड़ने पर इस नापके नेगेटिव (negative) से बड़ी सरलतासे १५ × १२ इंचकी फोटो तैयार कर सकते हैं और सावधानीसे काम करने पर इस बड़े फोटोको चौखटेमें जड़ कर दीवार पर लटका देनेसे, कोई भी पता न चला सकेगा कि यह १५ × १२ इंचके कैमरेसे न खींचा जा कर केवल कार्टर प्लेट नापके कैमरेसे खींचा गया है। अवश्य ही, यदि इस बड़े फोटोके बहुत निकट जा कर इसकी जांच करेंगे तो पता चल जायगा कि यह छोटे नेगेटिवसे बनाया गया है, पर स्मरण रखना चाहिये कि इतने बड़े नापकी फोटो या दिवाल पर टँगी हुई फोटो निकट जाकर देखे जानेके अभिप्रायसे नहीं बनाई जाती। वेस्ट-पाकेट† इत्यादि नापके कैमरेसे बनाये गये फोटो इतने छोटे होते हैं कि बिना बड़ा किये वह बहुत कामके नहीं होते। पोस्ट कार्ड‡ की नाप तक तो उन्हें सुगमतासे बड़ा

* इसकी नाप है ४¼ × ३¼ इंच।

* ६½ × ४¾ इंच।

† १⅝ × २½ इंच ‡ ३½ × ५½ इंच।

कर सकते हैं, पर यदि हम उनको इतना बड़ा करना चाहें कि उन्हें दीवार पर लगा कर कोठरीको सुशोभित करें तो अधिकतर वह भद्दे हो जाते हैं। (४) कार्टर-प्लेट नापका कैमरा इतना बड़ा नहीं होता कि कोटके पाकेटमें न जा सके, परन्तु हाफ-प्लेट इत्यादि नापके कैमरोंमें यह गुण नहीं पाया जाता। (५) जितनी ही छोटी नापका प्लेट होता है उतने ही दाम कम लगते हैं, इस लिए कार्टर प्लेट इस बातमें हाफ-प्लेट इत्यादि से अच्छा रहता है। दूसरी ओर यह भी है कि यदि प्लेटके दाम बहुत कम हुए तो लोग असावधानीसे काम करने लगते हैं, जिसका कि प्लेट बिगड़नेके सिवा और कोई दूसरा परिणाम नहीं हो सकता। आप अपने लिए कदाचित कहें कि मैं एक पैसा भी ख़राब न होने दूँगा, पर न जाने क्यों मैंने कई एक नौसिखों को कहते सुना है; "ऊँह ! दो आने पैसे खराब ही हो जायगे तो क्या ?" आज कल इन महंगीके दिनोंमें कार्टर प्लेट इतना सस्ता नहीं है कि दो चार प्लेट ख़राब होनेसे अपने को न अखरे। दो चार प्लेट ही क्यों दस बीस रुपयेका ख़राब हो जाना उतना बुरा नहीं है जितना कि असावधानीसे काम करनेकी बान है। केवल फोटोग्राफी में ही नहीं, परन्तु जीवनके सभी कामोंमें यह बान हानिकारक है। (५) इस नापका फ़िल्म भी बहुत मिलता है।

३—चेतावनी

स्मरण रखना चाहिये कि फोटोकी उत्तमता खींचनेवाले कैमरे पर निर्भर नहीं है। बहुत सस्ते कैमरे से भी इतनी अच्छी फ़ोटो ली जा सकती है कि वह बहुमूल्य कैमरोंसे खींची गई फोटोग्राफोंको लज्जित कर दे। वास्तवमें, आठ आनेमें बनाये गये कैमरेसे भी ऐसे फोटो लिये जा सकते हैं जो चित्तको प्रसन्न कर सकें। आपको इस बातका विश्वास मार्च मासके विज्ञानमें छपे हुए हमारे लेखसे हो जायगा। स्वभावतः आप पूछेंगे कि यदि ऐसा ही है तो फ़िर क्यों कैमरेके पीछे सौ डेढ़ सौ या हज़ार दो हज़ार रुपया व्यय करें। उत्तर सरल है। अधिक मूल्यके कैमरेसे सुभीता अधिक होता है। फिर, अधिक मूल्यके कैमरेसे कई एक ऐसे फोटोग्राफ लिये जा सकते हैं जो कि सस्ते कैमरेसे नहीं लिये जा सकते। इसके अतिरिक्त अधिक मूल्यवाला कैमरा अधिक सुन्दर होता है। सच पूछिये तो दो हजार रुपयेवाले कैमरेके साथ जो कैमरा रखनेकी थैली होती है वही केवल एक सौ रुपयेकी होती है*। आप ही समझ सकते हैं कि फोटोकी उत्तमता पर इस थैलीका क्या प्रभाव पड़ता होगा। बात तो यह है कि यदि इस स्थानसे मुझे दो मील दूर किसी दूसरे स्थान पर जाना है तो पैदल भी जा सकते हैं, खड़खड़ाते इक्के पर भी जा सकते हैं और अव्वल नम्बरके मोटरकार पर भी जा सकते हैं। जेबमें जितना रुपया होगा उसके अनुसार काम करेंगे। ठिकानेपर पहुँच कर जब हाथ मुंह धो अच्छे कपड़े पहन कर बैठेंगे तब बिना पूछताछ किये हमारी सूरत देख कौन बतला सकेगा कि हम वहां पैदल गये थे या मोटर पर। पैसा कम है और बहुत दूर जाना है तो लाचार हो कर या तो जायंगे ही नहीं, या इक्केकी शरण लेंगे। जहां इक्केकी भी पहुँच नहीं है वहां या तो जायँगे ही नहीं या विवश हो कर मोटरकी सहायता लेंगे। ठीक ऐसी ही कैमरोंकी भी दशा है। तीव्रगति फोटोग्राफीके लिए सस्तेसे सस्ता कैमरा भी ५००) से कम पर नहीं बिकता है। केवल लेन्स ही डेढ़ सौ दो सौ रुपयेमें मिलता है। परन्तु कई एक विषय ऐसे हैं जो सस्ते कैमरेसे भी उसी खूबीसे खींचे जा सकते हैं जैसे कि अधिकसे अधिक दामवाले कैमरोंसे। इस लिए चाहे कोई भी कैमरा आपके पास हो आप उससे सरल विषयोंका शुद्ध, स्वच्छ और मनोरंजक चित्र बनानेकी चेष्टा कीजिये और जब तक आप इसमें सफलता न प्राप्त कर लें तब तक

* The British Journal Almanac, 1921, p. 152 देखिये।

आपको कैमरा बदलनेकी सम्मति हम कभी न देंगे। यदि आपने सस्ते कैमरेसे अच्छी फोटो खींचनेकी शक्ति प्राप्त कर ली है तो निश्चय ही जानिये कि जब कभी आप बढ़िया कैमरेका प्रयोग करेंगे आप उससे पूरा लाभ उठा सकेंगे। अवश्य ही, यदि आपके कैमरेमें, चाहे वह सस्ता हो, चाहे महँगा, कोई ऐसी त्रुटि है जिससे अच्छी फोटो आ ही नहीं सकती तो उस त्रुटिकी पूरी जांच करके उसे दूर करना चाहिये; अन्यथा आपको अपने कैमरे पर दोषारोपण नहीं करना चाहिये। जैसा कि एक प्रसिद्ध अँग्रेजी कहावत बतलाती है केवल मूर्ख कारीगर अपने यंत्रोंकी शिकायत करते हैं।

४—कैमरा और लेन्स

कैमरेका प्रधान भाग है एक बक्स या भाथी जिसके एक ओर लेन्स या केवल सुई-छिद्र लगा रहता है और दूसरी ओर प्लेट या फिल्म लगाया जाता है। लेन्स या सुई-छिद्र द्वारा आये हुए प्रकाशको छोड़ और सब प्रकाशको प्लेट तक पहुँचनेसे रोकना ही इस बक्स या भाथीका काम है। लेन्स या सुई-छिद्रको इच्छानुसार खोलने या बंद करनेके लिए एक ढकना, टोपी (cap) या शटर (shutter) भी अवश्य रहता है। केवल इसी सरल यंत्रसे उत्तम फोटो खींचा जा सकता है। इसीको कैमरा (camera) कहते हैं। अंग्रेज़ी शब्द कैमरेकी उत्पत्ति एक ऐसे शब्दसे हुई है जिसका अर्थ है "कोठरी" या "कमरा" और पहिले समयके कैमरोंका आकार और आज कलके सस्ते कैमरोंका आकार भी एक बहुत छोटी कोठरी के ही समान होता है। परन्तु अच्छे कैमरोंमें सब भाग इस प्रकार नहीं जड़े रहते कि वह अपने स्थानसे हटाये न जा सकें। दृष्टान्तके लिए पहिले लेन्सकी चालों पर ध्यान दीजिये। नीचे दिये हुए चित्रमें भाग नम्बर २० ही लेन्स है। यह एक या अधिक (कभी कभी इनकी गिनती दस तक पहुँच जाती है) शीशेके टुकड़ोंसे बना रहता है। आकारमें प्रत्येक टुकड़ा गोल होता है; पर इन सबकी सतह समथर (plane) नहीं होती। कई एक या सभी सतह या तो नतोदर (concave) या उभड़े हुए, उन्नतोदर, (convex) होती हैं एकके पीछे एक यह टुकड़े अपने घर (mount) नम्बर २५ में उचित क्रमसे बैठाये रहते हैं। कभी कभी दो या अधिक टुकड़े एक दूसरेसे चिपकाये हुए (cemented) रहते हैं। लेन्स अपने सामनेके वस्तुओंकी मूर्ति (image) अपने पीछे बनाता है बस। यही इसका काम है। आगे चलकर हम इस मूर्तिकी जांच करेंगे। लेन्स द्वारा कैमरेके भीतर जानेवाले प्रकाशको घटाने बढ़ानेके निमित्त दो या अधिक टुकड़ोंसे बने लेन्सोंके बीचमें और इकहरे लेन्सोंके
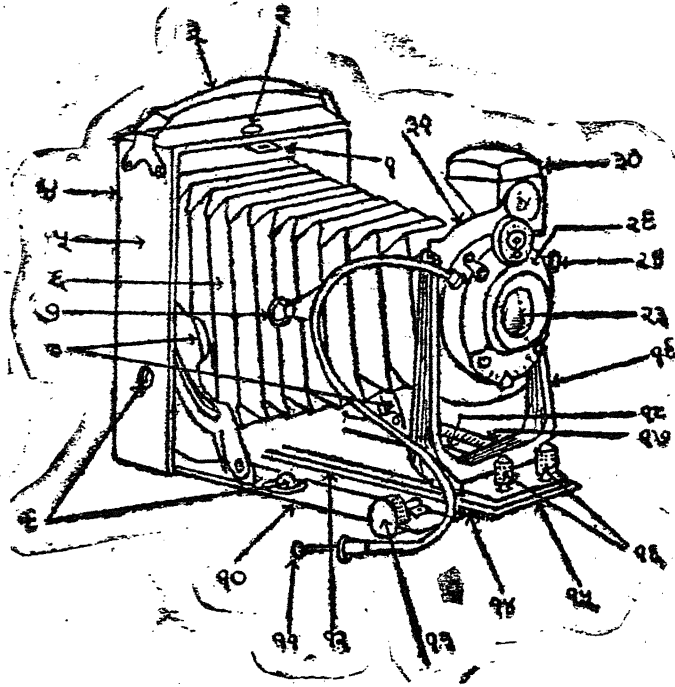
चित्र २०—प्लेट-हैण्ड-कैमेरा

बाहर एक छेद (Diaphragm या stop) नम्बर २२ (चित्र २१) रहता है। कांटा (pointer) नम्बर २० को इधर उधर चलानेसे इस छेदको छोटा या बड़ा कर सकते हैं। जैसे मनुष्यके आँख-में पुतली होती है और जिस प्रकार पुतली छोटी बड़ी होती रहती है उसी प्रकार यह छेद भी छोटा बड़ा किया जा सकता है। इसलिए इसको पुतलीवत छेद (irisdiaphragm) कहते हैं। इस छेदकी नाप बतलानेके लिए एक मान (scale) नम्बर २१ लेन्स-के घर (mount) या शटर पर जड़ा रहता है। इस मानको हम सुभीतेके लिए छेद-मान (diaphr-agm-scale) कहेंगे । सस्ते कैमरोंमें पुतलीनुमा छेद नहीं होता। इसके बदलेमें एक खिसकने वाला या घूमनेवाला पीतल या और किसी धातुका बना पत्र रहता है। इसमें कई एक भिन्न भिन्न नापके छेद कटे रहते हैं। पत्र को खिसकाने या घुमानेसे जिस छेदको चाहें लेन्सके सामने या बीचमें ला सकते हैं।

४—शटर

लेन्सके छेद द्वारा प्रकाशको इच्छानुसार भीतर जाने या न जाने देनेके लिए एक यंत्र नम्बर २६ लगा रहता है। इसको अंग्रेज़ीमें शटर (shutter) कहते हैं। इस शब्दका अर्थ है "बन्द करनेवाला", इसलिए इसको "मूंदक" भी कह सकते हैं। परन्तु शटर शब्दके बहुत प्रचलित होनेके कारण और उच्चारण करनेमें भी बहुत सुगम होनेके कारण इसको हम इस लेखमें शटर ही कहेंगे। भाग नम्बर २७ शटर-गति-मान (shutter-scale) है। इसके कांटे नम्बर २६ को यदि अंग्रेज़ी अक्षर "T" के सामने करदें और घोड़ा (trigger) नम्बर २८ को दवा दें तो शटर खुल जायगा और प्रकाश कैमरेके भीतर जा सकेगा। जब तक फिर घोड़ेको न दबा-एँगे तब तक शटर खुला रहेगा, पर यदि घोड़ेको फिर दबा दें तो शटर बन्द हो जायगा और प्रकाश भीतर न जा सकेगा। एक बार फिर घोड़ेको दबायें तो फिर शटर खुल जायगा और बिना घोड़ेको फिर दबाये शटर आपसे आप बन्द नहीं होगा। पर यदि कांटेको अंग्रेजी अक्षर "B" के सामने करदें तो शटर दूसरे ही प्रकारसे काम करेगा। घोड़ेको दबाने से शटर तो खुल जाता है, पर ज्योंही घोड़ेको छोड़ देते हैं त्योंहीं शटर आपसे आप बंद हो जाता है। जितनी देर तक घोड़ेको दबाये रखेंगे उतनेही देर तक शटर खुला रहेगा। यदि कांटेको अब १ के सामने करदें और घोड़ेको दबावें तो शटर खटसे खुल जायगा, परन्तु आपसे
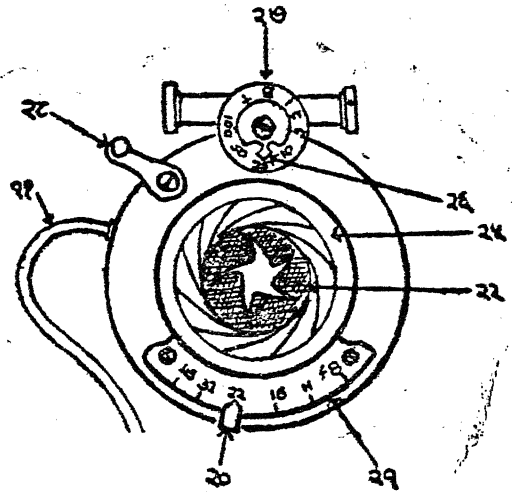
चित्र २१—लेन्स और शटर

आप ही एक सेकंडके बाद बंद हो जायगा। कांटा यदि २ के सामने किया जाय और घोड़ा दबाया जाय तो शटर खुलके $\frac{१}{२}$ सेकंड बाद स्वयं बन्द हो जायगा, अर्थात् घोड़ेको केवल एक बार दबानेसे आधे सेकंडके लिए बाहरका प्रकाश कैमरेके भीतर जा सकेगा। इसी बातको यों भी कहते हैं कि शटरने आधे सेकंड का प्रकाश-दर्शन या एक्सपोज़र (exposure) दिया। इसी प्रकार कांटेको ५, १०, २५, ५०, या १०० के सामने करनेसे प्रकाश-दर्शनको केवल $\frac{१}{५}$, $\frac{१}{१०}$, $\frac{१}{२५}$, $\frac{१}{५०}$ या $\frac{१}{१००}$ सेकंडके बराबर घटा सकते हैं। यदि कांटा १० के सामने है तो जितनी बार घोड़ेको दबायेंगे उतनी

बार शटर $\frac{1}{10}$ सेकंडके लिए खुल जायगा । कई एक शटरोंमें कांटा नहीं घूमता वल्कि जिस चक्र पर कि हम १, २, ५,...इत्यादि अङ्कोंको लिखा देखते हैं वही घूमता है, लेकिन इससे यहां पर कुछ प्रयोजन नहीं । ऊपर वर्णन किये गये शटरको लेन्ज-मध्यस्थ-शटर (between lens shutter) कहते हैं, क्योंकि इस शटरको बन्द करने या खोलने-वाली पत्तियां (blades) दो या अधिक भागोंसे बने हुए लेन्सके बीच काम करती हैं । सुभीतेके लिए शटरमें प्रायः एक शटर-मोचक तार नम्बर ११ भी लगा रहता है । इसके सिरेको चित्र २३ में दिखलाई गई रीतिसे पकड़ कर खिसकानेवाले भागको दबानेसे वही काम होता है जो घोड़ेके दबानेसे होता है । इसको अंग्रेजीमें ऐण्टीनस (Antinous) या वायर रिलीज़ (wire Release) कहते हैं । अँग्रेजीका अक्षर T "टी" टाइम (time) शब्दका पहिला अक्षर है और शटर पर T इसी शब्दको सूचित करनेके लिए लिखा रहता है । जब कांटा T पर रहता है तब किस प्रकारसे शटर काम करता है इसको हम ऊपर देख चुके हैं । इस प्रकारसे दिये गये एक्सपोज़रको समय-प्रकाश दर्शन (time exposure) कहते हैं । अक्षर B "बी" शब्द बल्ब (Bulb) को जताता है और जब कांटा इस पर रहता है तब कहा जाता है कि बल्ब प्रकाश-दर्शन (bulb exposure) दिया गया । जब कांटा १, २, ५, १०, इत्यादिमें से किसी अङ्क पर रहता है तब कहा जाता है कि क्षणिक प्रकाश-दर्शन (instantaneous exposure) दिया गया । किसी किसी सस्ते शटरमें १, $\frac{1}{2}$, $\frac{1}{5}$, सेकंडका क्षणिक प्रकाश-दर्शन देनेका प्रबन्ध नहीं रहता । तब कांटेको B "बी" अक्षर पर लगा कर ही इतने समयका प्रकाश-दर्शन दिया जा सकता है । ऊपर वर्णन किया गया शटर बहुत अच्छे मेलका है । सस्ते कैमरोंमें इस प्रकारका शटर नहीं पाया जाता । बहुत मूल्यके कैमेरोंमें इससे भी अधिक अच्छा शटर लगा रहता है जिसके द्वारा $\frac{1}{1000}$ सेकंड तकका प्रकाश-दर्शन दिया जा सकता है । सस्ते कैमरोंमें शटरकी गतिको घटा बढ़ा नहीं सकते । यह शटर अधिकतर लगभग $\frac{1}{30}$ सेकंड या $\frac{1}{50}$ सेकंडका क्षणिक प्रकाश-दर्शन देते हैं । चाहे किसी भी मेलका शटर हो
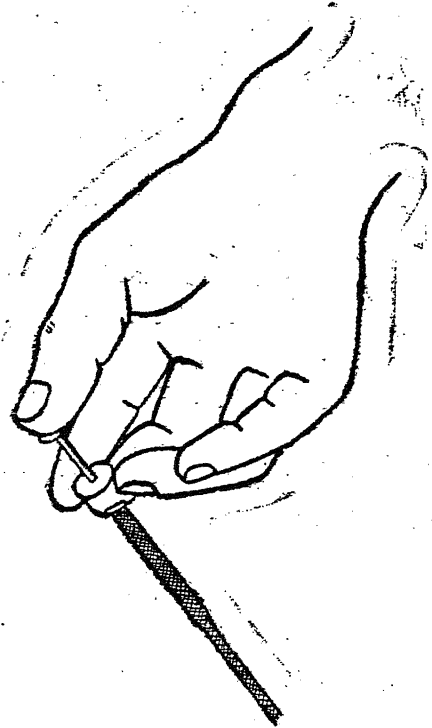
चित्र २३—शटर हटानेकी विधि

आपको चाहिये कि उसकी प्रत्येक चालको भली भांति समझ लें, जिसमें काम करते समय भूल हो जानेकी शङ्का न रह जाय ।

६—लेन्सकी चाल

प्लेटके हिसाबसे लेन्स अचल नहीं है । पहिले तो प्लेट और लेन्सके बीचके दूरीको इच्छानुसार घटा बढ़ा सकते हैं । लेन्सकी यह चाल फोकस (Focus) करनेके क्रियाके लिए परमावश्यक है । फोकस करनेकी रीतिका पूरा ब्यौरा नीचे दिया जायगा । इससे यह स्पष्ट हो जायगा कि यदि बहुत दूरपर स्थित किसी विषयका फोटो लेना हो तो

लेन्सको प्लेटसे एक विशेष दूरी पर रखना पड़ता है। इस दूरीको उस लेन्सकी फोकल-लम्बाई (focallength) कहते हैं। यदि प्लेटसे लेन्सकी दूरी इस फोकल-लम्बाईसे बहुत अधिक नहीं कर सकते तो कहते हैं कि कैमरा इकहरे विस्तार (single extension) का है। अच्छे कैमेरोंमें और चित्रमें दिखलाये गये कैमरेमें भी प्लेटसे लेन्सकी दूरी फोकल-लम्बाईके दुगनेके बराबर या इससे भी कुछ अधिक कर सकते हैं। ऐसा होनेसे कहते हैं कि कैमरा दोहरे विस्तार (double extension) का है। दोहरे विस्तारसे बहुत काम निकलता है, परन्तु सभी कैमरोंमें यह नहीं रहता। किसी किसी कैमरेमें तो लेन्स और प्लेटके बीचकी दूरीको या तो घटा और बढ़ा सकते ही नहीं, या इस दूरीको फोकल-लम्बाईसे अधिक नहीं कर सकते। इस कारण ऐसे कैमरोंको स्थिर फोकस (fixed focus) कैमरा कहते हैं। इस प्रकारके कैमरेसे इतना काम नहीं कर सकते जितना कि फोकस करनेवाले कैमरोंसे कर सकते हैं। अच्छे कैमरोंमें लेन्सको आगे पीछे करनेके लिए जिस पटरी (नम्बर १५) पर लेन्सवाले रकाब (stirrup) नम्बर १६ को लगाते हैं (पटरीको हम बढ़ने वाली पटरी (extending base board) कहेंगे) उस पटरीके नीचे धातुकी एक दांतीदार पट्टी (rack) नम्बर १४ जड़ी रहती है। घुंडी नम्बर १३ को घुमानेसे एक दांतीदार चक्र (pinion) जो ठीक दांतीदार पट्टीके नीचे रहता है घूमता है और अपने घूमनेसे अपने दांतियोंमें इस पट्टीके दांतियोंको फँसा कर पट्टीको, और इस प्रकार लेन्सको, आगे पीछे खिसकाता है। घुंडीको घुमा कर लेन्सको जितनी दूरीपर चाहें कर सकते हैं और जहां पर इसको छोड़ देंगे वहीं पड़ा रहेगा, क्योंकि घुंडी ढीली नहीं रहती और इसके इधर उधर घुमानेमें कुछ शक्ति लगानेकी आवश्यकता पड़ती है। इसका काम ठीक उसी प्रकारसे होता है जैसा कि लालटेनमें बत्तीको ऊपर नीचे करनेवाली छड़का। जिस कैमरेमें दांतीदार चक्र और पट्टी नहीं लगे रहते हैं उस कैमरेमें लेन्सको किसी विशेष स्थान पर टिकानेके लिए कुछ दूसरा ही प्रबन्ध रहता है जिसको, हमें आशा है, चतुर पाठक गण देखते ही स्वयं समझ जायँगे। सुभीतेके लिए प्लेटसे लेन्सकी उचित दूरी जाननेके वास्ते एक फोकस-मान (focussing scale) नम्बर १७ कैमरेके पेंदेकी पटरी (base board) नम्बर १० पर जड़ा रहता है। इस पर दूरी इत्यादि खुदे रहते हैं। कैमरा जब बंद रहता है तो लेन्स कैमरेके उदर (body) नम्बर ५ के भीतर रहता है और पेंदेकी पटरी इसको ढके रहती है। कैमरा खोलने पर लेन्सको आगे खींचना पड़ता है। इस कामके लिए दो अंगुष्ठथाम (thumb-grips) नम्बर १६ रकाबके जड़के पास लगे रहते हैं। इन्हींको पकड़ कर खींचते हैं। अच्छे कैमेरोंमें एक ऐसा प्रबन्ध रहता है जिससे जब लेन्स और प्लेटके बीचकी दूरी लेन्सकी फोकल-लबाईके बराबर हो जाती है तब रकाब रुक जाती है और एक कमानी इसको इस प्रकार पकड़ लेती है कि यह आगे पीछे नहीं जा सकता है। लेन्सके इस जगहमें आ जानेसे, जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं, दूर पर स्थित विषयकी फोटो लेनेके लिए कैमरा तैयार हो जाता है। यहां विषयकी दूरीको हम एक प्रकारसे अनन्त कह सकते हैं और इसी कारण हम इस कमानी नम्बर १६ को (चित्रमें यह स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ती है क्योंकि यह रकाबकी आड़में है) "अनन्त-पकड़" कहेंगे। इसके अँग्रेज़ीमें इनफिनिटी-कैच (Infinity-catch) कहते हैं और इन दो शब्दोंका अर्थ है "अनन्त-पकड़"। ऊपर लिखी गई लेन्सकी चाल सबसे प्रधान चाल है, लेकिन लेन्सके दो एक चाल और भी हैं। साधारणतः प्लेटके केन्द्रके ठीक सामने ही लेन्स लगाया जाता है, परन्तु कभी कभी, विशेष करके ऊँचे मकानोंकी फोटो खींचते समय लेन्सको प्लेटके केन्द्रके सामने न रख कर कुछ ऊपर उठानेकी आवश्यकता पड़ती है, इसलिए अच्छे कैमरोंमें

लेन्स अपनी रकाबमें उठाया जा सकता है और आवश्यकतानुसार जिस स्थान पर चाहें उस स्थान पर लेन्सको पेंच नम्बर २४ को कसनेसे रोक सकते हैं। इस प्रबन्धके रहने पर कहा जाता है कि कैमरेमें "उठनाग्र" (rising front), नम्बर ३१, है। रकाबको बढ़नेवाली पटरी नम्बर १५ पर अगल बगल खिसका सकनेका प्रबन्ध रहनेपर कहते हैं कि कैमरेमें "पार्श्व-चलाग्र" (Cross front) भी है। जब कैमरेको बेंड़े बल रखकर ऐसी फोटो
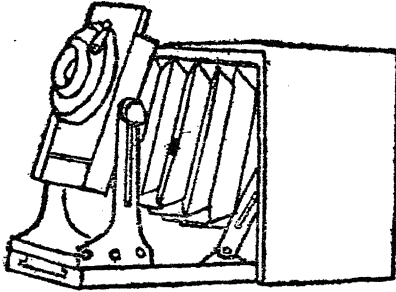
चित्र २३—उठनाग्र और मुड़नाग्र सहित हैण्ड कैमरा

खींचते हैं जिसकी चौड़ाई ऊँचाईसे अधिक है तब यही उठनाग्रका काम देता है। ऐसी स्थितिको छोड़ इसका काम शायद ही कभी पड़ता है। इसके सिवा किसी किसी कैमरोंमें लेन्सको प्लेटके हिसाब से सीधा न रख कर इसको तिरछे करनेका भी उपाय रहता है। तब कहते हैं कि कैमरेमें "मुड़नाग्र" (Swing-front) भी है। इसका चित्र अलग यहां दिया जाता है। इस चालको हम अनावश्यक समझते हैं क्योंकि इसका काम बहुत ही कम पड़ता है, यों भी कह सकते हैं कि कभी भी नहीं पड़ता।

७—अन्य भाग

कैमरा जब मोड़कर बन्द किया जाता है तब, जैसा ऊपर लिख आये है, कैमरेका और सब भाग उदर (५) के भीतर रहता है और पेंदेकी पटरी इसके ऊपरसे ढकनेकी भांति लगी रहती है। इसको रोकनेके लिए एक कमानीदार खटका (Catch) नम्बर १ लगा रहता है। कैमरेको खोलने के लिए बटन (press button) नम्बर २ को दबाते हैं। यह बटन कभी कभी कैमरेके बग़ल में लगा रहता है। अधिकांश कैमरे खूबसूरतीके ख़यालसे चमड़ेसे मढ़े रहते हैं और उनमें यह बटन दिखलाई नहीं पड़ता, परन्तु टटोलनेसे इसकी स्थितिका शीघ्र पता लग जाता है। इस बटनको दबानेसे कमानीदार खटका नीचे झुक जाता है और पेंदेकी पटरी छुटकारा पा जाती है। पेंदेकी पटरी उदरसे कब्ज़े (hinges) द्वारा जुड़ी रहती है और यहीं पर एक कमानी लगी रहती है, जिससे छुटकारा पाते ही पेंदेकी पटरी कुछ खुल जाती है। इसको तब यहां तक नीचे झुकाते हैं कि दोनों कमानीदार अड़कन (springstruts) नम्बर ८ 'खट' शब्द करके अपने स्थानमें बैठ जाते हैं। ऐसा हो जाने पर बिना इन अड़कनोंको नीचे दबाये पेंदेकी पटरी स्वयं ऊपरकी ओर न मुड़ सकेगी। अब अंगुष्ठयामोंको पकड़ अग्र भागको आगे खींचेंगे, इत्यादि। इस क्रियामें खाँचे (१२) से सहायता मिलती है; जब कैमरा बंद रहता है तब उसे हाथमें लेनेके लिए एक हैन्डल (Handle) नम्बर ३ लगा रहता है। उदरके पिछले भागको पीठ (Back) नम्बर ४ कहते हैं। इस पर भी दोनों बगल खांचा बना रहता है, जिसमें कि प्लेट-घर (plate helder) खिसकाकर लगाया जाता है। प्रकाशको पीठ और प्लेट-घरके बीचसे होकर भीतर तक पहुंचनेसे रोकनेके लिए ऊपर और नीचे मोटे मखमल (plush) की पट्टी लगी रहती है। प्लेट-घरको अंग्रेजीमें प्लेट-होल्डर (plate holder), डार्क स्लाइड (dark slide) या केवल स्लाइड (slide) ही कहते हैं। यह तीन प्रकारके होते हैं:—(१) धातु पत्रका बना इकहरा (अर्थात् एक प्लेटके लिए) प्लेटघर (single metal dark slide या plate holder) चित्र २४ (२) दोहरा (अर्थात् दो प्लेटके लिए) सादा प्लेट घर (Double solid plate-holder) चित्र २५ और (३) दोहरा पुस्त-

काकार प्लेट घर (double look from dark slide) चित्र २६। यहां पर इनके विस्तारपूर्वक वर्णन
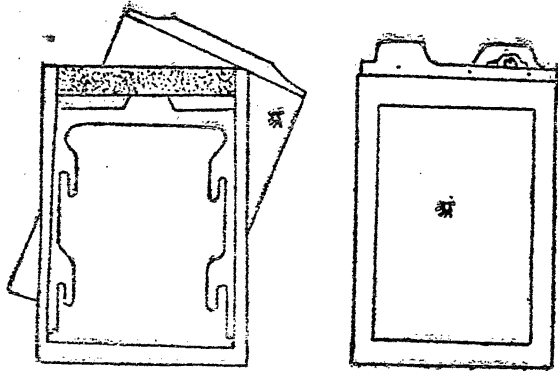
चित्र २४—धातुका इकहरा प्लेटघर चित्र २५—दोहरा सादा प्लेटघर

करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इन तीनों में "अ" चिन्ह युक्त भागको हम ढकना (shutter) कहेंगे। प्लेटघरके भीतर उचित रीतिसे प्लेट लगा दिये जाते हैं और ढकनोंको खिसका कर इसको बन्द कर देते हैं, जिसमें प्लेट पर किसी प्रकार प्रकाश न पहुंच सके। समय आने पर कैमरेके पीठ पर बने खांचोंमें खिसकाकर प्लेट-घर को लगा देते हैं। जहां यह खटके या सिटकनी द्वारा टिका दिया जाता है। तब एक ढकनेको खींच देते हैं, जिसमें कि लेन्सके शटर या टोपीको खोलने पर प्लेटको प्रकाश-दर्शन मिल सके। जिन खांचोंमें प्लेट खिसकता है उन्हीं खांचोंमें लगानेके लिए एक चौखटा बना रहता है। इसमें एक शीशा जड़ा रहता है, जिसकी एक सतह बारीक बालू या कुरण्ड पत्थरके चूरसे रगड़कर धुन्धला किया रहता है। इसको फोकस-पर्दा (focussing screen) कहते हैं। पीठ पर इसको लगानेसे धुन्धली की हुई सतह लेन्सकी ओर पड़ती है। दूसरी ओर प्रकाशसे कुछ आड़ करनेके लिए काले कपड़े या दफ़्तीका एक घूंघट (hood) बनाया रहता है। बहुत से कैमरोंके फोकस-पर्दे पर यह घूंघट नहीं रहता। ऐसी दशामें काले कपड़े (focussing cloth) की एक ओढ़नी कैमरेके ऊपर छोड़नी पड़ती है। नम्बर ६ भाथी (bellows) है, जिसका काम ऊपर ही कैमरे की परिभाषामें लिख आये हैं। जब कैमरा बन्द किया जाता है तब यह सिमट कर
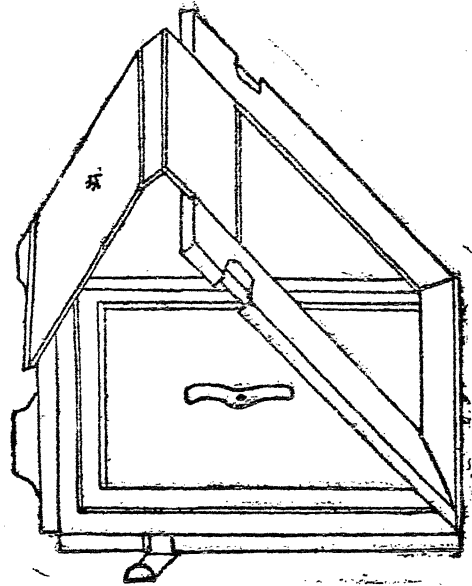
चित्र २६—दोहरा पुस्तकाकार प्लेटघर।

बिलकुल चपटा हो जाता है। दोहरे विस्तारके कैमेरोंकी भाथी स्वभावतः लम्बी होती है और भाथीके वह भाग जो प्लेटसे नापमें छोटे हैं प्लेटके पास पहुँच कर चित्रके कुछ भागको काट न डाले इस दुर्घटनासे बचावके लिए भाथीमें एक जगह एक छल्ला (ring) नम्बर ७ लगा रहता है। इसको लेन्स वाली रकाबमें लगे हुए खूँटीमें अटका देते हैं। इस बातको दिखलानेके लिये कि कैमेराके किसी विशेष स्थितिमें कितनी वस्तुओंकी फोटो प्लेट पर आवेंगी, एक दृश्य-बोधक (viewfinder) नम्बर ३० लगा रहता है। देखनेमें यह एक बहुत छोटे कैमरेके समान होता है। इसके सामनेके विषयकी मूर्ति इसके ऊपरी भागमें दिखलाई पड़ती है। सामनेके दृश्यका जितना भाग इसमें दिख-

लाई देता है लगभग उतना ही फोटोमें भी आता है।

ऊपर वर्णन किये गये कैमरेको हैन्ड-कैमेरा (hand-camera) कहते हैं, क्योंकि इसको किसी तिपाई (tripod) या अन्य लाग पर रखे बिना भी इससे फोटो खींच सकते हैं। ऐसे कैमरेको कभी कभी हैन्ड ऐन्ड-स्टैंड कैमरा (hand and stand camera) भी कहते हैं; क्योंकि इसको हैन्ड अर्थात् हाथमें ले कर भी काम कर सकते हैं और स्टैंड अर्थात् तिपाई पर रख कर भी काम कर सकते हैं। ऊपरके कैमरेके योग्य तिपाईका चित्र नीचे दिया जाता है। इसकी टांगोंको छोटी बड़ी भी कर सकते हैं। कैमरेको इस पर लगानेके लिए
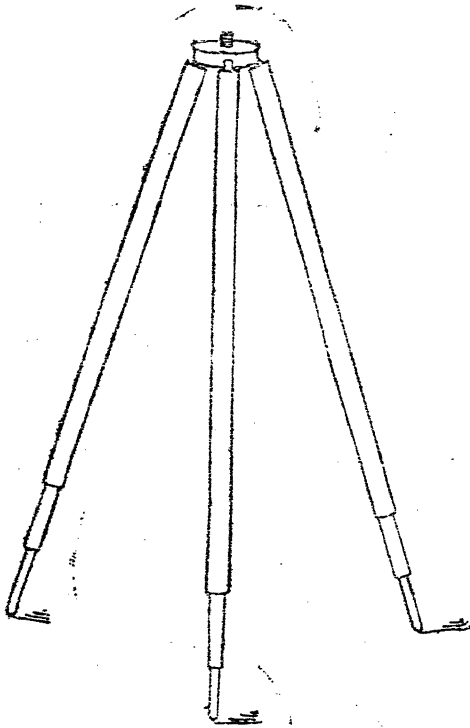
चित्र २७—हैण्ड कैमरेके लिए तिपाई।

इसके सिरेके केन्द्रसे एक पेंच उभड़ा रहता है। इस पेंच (screw) को कैमरेमें लगी हुई दो ढिबरी (push) नम्बर ६ में से आवश्यकतानुसार किसी एकमें कस देते हैं। हाथमें ले चलनेके लिए तिपाई की टांगोंको मोड़ कर या इनके भागोंको एकके भीतर एक खिसका कर छोटा कर सकते हैं। बांधने-के लिए चमड़ेका तस्मा और एक हैन्डल भी बाज़ तिपाईमें लगा रहता है।

इस प्रकारके कैमरेको मोड़नेके सबके पहिले उठनाग्र इत्यादि जो जो भाग अपने स्थानसे हटाये गये हैं उन सबको अपने पुराने स्थानों पर पहुँचा देना चाहिये। फिर अङ्कुश थामोंको पकड़ कर पीछे ढकेलना चाहिये। जब अग्र भाग उदरके भीतर हो जाय तब अड़कनोंको नीचे दबाना चाहिये। ऐसा करनेसे वह अपनी जगहोंको छोड़ देंगे, जिससे कि हम पेंदेकी पटरीको मोड़ सकेंगे। फिर इस पटरी-को मोड़ कर कैमरेको बन्द कर देना चाहिये। कमानीदार खटका स्वयं इसको पकड़ लेगा। ऐसा हो जाने पर समझना चाहिये कि कैमरा उचित रीतिसे बन्द हो गया है।

८—फिल्म कैमरा

फिल्म कैमरा और ऊपर वर्णन किये गये प्लेट कैमरेमें अन्तर केवल इतना ही होता है कि फिल्म
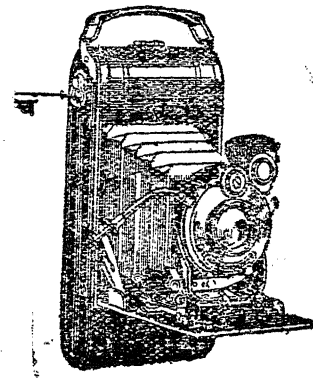
चित्र २८—हैण्ड कैमरा।

कैमरेका उदर कुछ अधिक लम्बा होता है और पीठ एक दम बन्द रहती है। प्लेट-घर या

फोकस-पर्देके लिए खांचा इत्यादि नहीं रहता। इसके बदलेमें उदरके भीतर ही एक ओर फिल्म-का पुलंदा लगानेके लिए दो कीलें होती हैं, और दूसरी ओर फिल्म लपेटनेके लिए एक छड़ रहता है। कैमरेके बाहरसे फिल्म लपेटनीकी चाभी, च चित्र २८ (winding-key) को घुमानेसे इस छड़को भी घुमा सकते हैं और इस प्रकार ऊपरके पुलंदे-से खुल कर फिल्म इस छड़ पर लिपट जाता है। फिल्म ऐसे कागज़के साथ लपेटा रहता है जो फिल्मकी ओर काला और बाहरकी ओर लाल होता है। यह बतलानेके लिए कि कितने फोटो लिये जा चुके हैं इस कागज़ पर अङ्क छपे रहते हैं। इन अङ्कों-को बाहरसे पढ़नेके लिए केमरेकी पीठमें एक छोटा सा छेद रहता है, जिसमें कि गाढ़े लाल रंगका शीशा लगा रहता है। और सब बातोंमें फिल्म केमरा प्लेट केमरेकी तरह होता है। किसी किसी फिल्म केमरेमें पीठवाले ढक्कनेको निकाल कर दूसरे ढकनेके लगानेका प्रबन्ध रहता है। इस दूसरे ढक्कनेमें प्लेटघर और फोकस पर्देके लगानेके लिए खांचा इत्यादि रहता है। इस रीतिसे इच्छानुसार प्लेट या फिल्म दोनों ही का प्रयोग कर सकते हैं। ऐसे केमरोंको हम बहुत पसंद करते हैं, पर इनके दाम अधिक होते हैं*।

(असमाप्त)

* इस लेखमें इतने प्रक्रम रहेंगे

१—कैमरेका चुनाव; २—प्लेट या फिल्म और कैमरेकी नाप; ३—चेतावनी; ४—कैमरा और लेन्स; ५—शटर; ६—लेन्स की चाल ७—अन्य भाग; ८—फील्ड कैमरा; ९—स्टेण्ड या फील्ड कैमरा; १०—विविध विषय; ११—निवेदन, १२—कैमरेकी हिफाज़त; १३—शटर और लेन्सकी हिफाज़त; १४—फोकस करना, १५—सर नीचा और पैर ऊपर; १६—एक सरल प्रयोग; १७—लेन्स-छिद्रका काम; १८—फोकस करनेके नियम; १९—फोकस करनेके कुछ चुटकिले; २०—फोकसकी गहराई; २१—लेन्स छेद-नम्बर; २२—फोकसकी गहराई पर लेन्स छेदका प्रभाव; २३—फोकस रहित कैमरा; २४—फिल्म कैमरे में फोकस करना; फोकस-मापक; २५—प्लेट कैमरे में फोकस मापक; २६—विषय; २७—फोटो खींचना।

सिरकी पोशाक

[ले०—श्री० पं० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार]

भारतवर्षकी सभ्यता किसी समय संसार भरके लिए अनुकरणीय थी, परन्तु अब भारतके लिए दासताके युगमें वह मानका कारण नहीं। दासको जो कुछ भी स्वामी पहरनेको दे या वह स्वयं भी लाद ले तो भी उसकी शोभा स्वामीके समान नहीं होगी। इसी प्रकार भारतवर्षीय लोग गुलामीके युगमें चाहे यूरोपकी पोशाकोंका कितना ही अनुकरण करें तो भी वह यूरोपवासियोंके समान नहीं हो सकते। यूरोपवासियोंके सामने उनकी वेश भूषा सभी तुच्छ होगी। फलतः जो राष्ट्र स्वतन्त्र हैं उनके फैशन उनके चाल चलन सभी जगह अपना सिक्का जमाये रहते हैं और गुलाम जातियोंकी उत्तमसे उत्तम बात भी घृणाके योग्य हो जाती है।

यदि आज यूरोप अपने सब प्रकारके वेश बदल कर नीचे पहननेके कपड़े ऊपर और ऊपरके कपड़े नीचे पहनने शुरु कर दे तो गुलाम जातियां बिना किसी तर्क वितर्कके उसीमें सौन्दर्यका साक्षात्कार देखने लग जावें।

इसलिए पोशाककी सुन्दरता और भद्दापन मनुष्यकी अपनी अपनी अवस्थितिके अनुसार है। परन्तु इस अवसर पर हमें यही विचार करना है कि भारतकी-प्रचलित पोशाकों में क्या गुण और क्या दोष हैं।

स्त्रियों और पुरुषोंकी पोशाकोंमें सर्वत्र ही भेद है। इससे आलोचना भी पृथग् पृथग् होगी। हम प्रथम सिरकी पोशाक पर ही विचार करेंगे। भारत-

वर्षमें पुरुषोंकी पोशाकोंमें सिर पर पगड़ी, टोपी, और कुलाह पहना जाता है; अनुकरणमें हैट भी चल पड़ा है।

पगड़ी—पगड़ी १ बालिश्त चौड़ी और २५, ३० हाथ लम्बी होती है। उसको विशेष ढंगसे लपेट लिया जाता है। जयपुरी पगड़ी बांधने के लिए खास हुनरकी आवश्यकता होती है। पहननेमें हलकी होती है। एक बार बांधकर साधारणतः ६,७ दिनों तक वैसी बंधीकी बंधी रहने दी जाती है और जरूरतके समय पर सिर पर उठा कर रख ली जाती है। इसी प्रकार काशीकी तरफकी पगड़ी और मराठी पगड़ी बीकानेरी पगड़ी भी हैं। उनके आकारमें थोड़ा थोड़ा भेद है। परन्तु बांधनेकी इल्लत सबमें बराबर है। इस कारण बहुत से लोग स्थिर रूपमें उनको पुख्ता तौर पर बांध देनेका पेशा करते हैं।

ऐसी पगड़ी पहनना केवल शोभा मात्रके लिए है।

पंजाबमें फेंटा पहना जाता है। राजपूत, सिक्ख और मद्रासी प्रायः सभी लोग इसका उपयोग करते हैं। नौ दस हाथका थानका थान सिरपर लपेटा जाता है। वैद्यकके अनुसार केशोंके लिए यह बड़ा हितकर है। निःसन्देह कसकर बांध लेने पर सिर जकड़ जाता है। जिनको इसका अभ्यास नहीं उनको प्रथम प्रथम बांधने पर सिर पर बड़ा भार सा मालूम होता है। जाड़ेमें इससे बहुत ही आराम मिलता है। सिर दर्दके समय बांधनेसे सिर दर्दको कुछ आराम हो जाता है। यदि सिर पहले ही कुछ भारी हो तो फेंटा बांध लेना सिर पर पहाड़ रख लेनेके समान हो जाता है। कपड़ा इतना अधिक व्यय हो जाता है कि उसमेंसे ४० कुपल्ली टोपियां निकल सकती हैं। फेंटेके पीछे थोड़ा हाथ दो हाथ पुंछल्ला छोड़ा जाता है, जो पोछे पीठ पर लटका रहता है। यदि इसको पकड़ कर खींच लिया जाय तो फेंटे या मुंडासेका मज़ा मारा जाता है। कोई लोग इसको शानसे सिर पर ही ठूँस लेते हैं। उसका परिणाम भी कोई हाथ, कोई दो हाथ और कोई इससे भी लम्बा रखते हैं। कोई इतना लम्बा रखते हैं कि उसको गुलूबन्दके समान गलेमें भी लपेट लिया जाता है।

इसको जितनी बार उतारो उतनी बार ही बांधना पड़ता है। रेशम और सूतमें, रेशमी फेंटा बहुत गुणकारी है। मैला भी देरमें होता है। सूतका बार बार मैला हो जाता है।

बाबू लोग फैल्ट कैपोंका प्रयोग करते हैं। यह वस्तु स्वास्थ्यके लिए बड़ी हानिकारक है। जो लोग बचपनसे ऐसी टोपी पहननेके आदी हैं उनके सिर पर बड़े होने पर गोल चक्करका सा निशान पड़ जाता है। फलतः दिमागकी जिस स्वाभाविक रीति पर उन्नति और पुष्टि होनी चाहिये वह नहीं होती। फैल्ट कैप इटालियन आविष्कार है। उसी पर सुन्दर सुन्दर सलमेकी कारीगरी करवा कर माताएँ अपने बच्चोंको पहनाती हैं और बड़ी प्रसन्न होती हैं। वह नहीं जानतीं कि यह फैशनकी गुलामी उनके पुत्रोंके दिमागोंको पूरा नहीं बढ़ने देती। यह टोपी बार बार जल्द जल्द धुल नहीं सकती; दो चार सालमें एक बार कभी धुलवा ली जाती है। इसलिए सिरका मैल बराबर सिर पर वर्षों उठाना पड़ता है। बच्चोंमें एक की टोपी दूसरेके सिर पर चला जाना असम्भव नहीं होता। परस्पर बच्चे एक दूसरेसे टोपियां अदलतेब दलते रहते हैं। इससे एक दूसरेके सिरकी जूंएं और दाद आदि रोग बड़ी भयंकरता से फैलते हैं। पसीनेके कारण टोपीका अन्दरका भाग बड़ा बदबूदार हो जाता है। सब रोगकारी जीवाणु टोपीके साथ सदा भारतवासी बच्चोंके सिर पर चढ़े रहते हैं।

इसलिए बच्चोंके सिर या तो खुले रखने चाहियें या ऐसी वस्तु पहनानी चाहिये जो जल्दी जल्दी धुल सके। यही विवेक युवा बाबू लोगोंको भी रखना चाहिये।

यू. पी. के प्रान्तोंमें दुपल्ली टोपीका रिवाज है। यह बहुत हलकी तथा स्वच्छ रहती है और नित्यप्रति धुल सकती है।

वर्तमानमें गान्धी टोपी और भी उत्तम है। उसमें बाबुओंका सजनेका शौक भी पूरा हो सकता है और राष्ट्रीयताकी टेक भी पूरी होती है। पहाड़के लोग भी कपड़ेकी ही टोपी सिलवा कर पहनते हैं, परन्तु मैली जल्दी न हो इसलिए प्रायः काले कपड़े-की बनवाते हैं। फलतः धोनेके श्रमसे बचना अपनेको दुःखदायी रोगोंका शिकार बनानेके बराबर है। क्या काला कपड़ा देरमें मैला होता है? कदापि नहीं। कपड़ा अपने स्वभावके अनुसार मैलको पकड़ ही लेता है। परन्तु कपड़ा काला होनेके कारण साधारण चक्षुको मैल जल्दी दीख नहीं पड़ता, यद्यपि मैलका प्रभाव तो उसमें भी समान रूपसे हानिकारक है।

बहुत से लोग बालोंकी टोपियोंका प्रयोग करते हैं। उनको चाहिये कि वह अपनी टोपी नित्यप्रति साफ़ कर लिया करें, जैसे सिरके बालोंमें जूंएं तथा अन्य रोगकारक जीवाणु अपना निवास बना लेते हैं उसी प्रकार वह बालोंवाली टोपियों में भी बना लेते हैं। बालचर जन्तु प्रायः उनके कपड़ों में लग जाता है, जो उनके बालोंको सर्वथा खा जाता है। यदि वह टोपीसे सिरके बालोंमें आजाय तो बिना हजामतके सिर मूंडने लगता है और एक आधमास-में सर्वथा सिर साफ़ हो जाता है। परन्तु ऐसी टोपियां भी प्रायः फैल्टकैपके फैशनकी होती हैं। इसलिए उनमें पूर्वोक्त दूषण ज्योंका त्यों बना रहता है।

कनटोप या खालिस ऊनी टोपी या बुनी हुई टोपी प्रायः सर्दीमें उपयोगी होती हैं।

बहुत से लोग घासकी बनी टोपियोंका प्रयोग करते हैं। बहुत अंशोंमें यह बड़ा लाभदायक है। परन्तु ऐसी टोपी धुलनेके योग्य नहीं होती। वास्तव-में टोप, टोपी, दुपल्ली आदिकी सिरको आवश्यकता है नहीं, खुले सिर रहना बहुत अधिक उत्तम है। शरद्कालमें ठण्डसे बचनेके लिए टोपा, मुण्डासा, फेंटा पहनना उत्तम है। इन सब सिरकी वस्तुओंका उद्गम देखें तो बड़ा रहस्य स्पष्ट होता है।

मानव बुद्धिने सिर बचानेके लिए इसका आविष्कार किया था। शिरस्त्राण लोहे पीतल या किसी और कठिन पदार्थका बनाया जाता था। जंगली लोग मट्टीका, सींगका, चमड़ेका और कुछुए की पीठका भी टोप पहनते हैं। राजा लोग सोनेका मुकुट पहनते थे। यही सर्दारपनेका चिन्ह समझा जाता था। क्षत्रियोंको इसकी सबसे प्रथम आवश्यकता हुई। यही बादमें मानका चिन्ह बन-गया। घरके मुख्य व्यक्तिके सिरपर पगड़ीका बंधना लोकोक्ति बन गया है। पगड़ीका सिरपरसे उतारकर दूसरेके पैरों पर रखना उसके आगे अपना सवर्स्व मान समर्पणके समान समझा जाता था। राजाका मुकुट उतार लेना उसके सिर-के लेनेके बराबर था।

श्री बाल्मीकि ने अयोध्याके वर्णनमें लिखा है कि कोई नागरिक विना मुकुटके नहीं था। अर्थात् नागरिकताका चिन्ह मुकुट था। भारतवर्षमें तभीसे यह सामाजिक फैशन पहना जाता था।

सिक्ख लोगोंका फेंटा भी सिरको तलवारकी चोटसे बचानेका उत्तम साधन है। सिर पर बालों-का रखना भी इसीका इलाज है।

सिर पर कुलाह पहनना काबुल कंधार के निवासियोंमें अधिक प्रचलित है। उनका भी यह वेश शिरकी युद्ध कालमें रक्षाके निमित्त ही था। वस्तुतः जिनको इसकी आवश्यकता नहीं हुई उन्होंने सिर पर कोई भी वस्तु नहीं पहनी, जैसे स्त्रियां सिर पर कुछ नहीं पहनती थीं और न अब ही पहनती हैं।

यूरोपमें स्त्रियोंके हैट केवल शोभाके निमित्त होते हैं।

पतंग

(गतांकसे आगे)

[ले०—श्री० शङ्करराव जोषी]

चित्रश्रृंगवर्ग

मिंग बर्ड स्फिक्स (humming bird sphinx) संध्याके समय बगीचेमें टहलते समय नज़र आता है। फ्रांस देशमें यह पतंग बर्ड फ्लाइ (Birdfly) के नामसे पुकारा जाता है। मधुप्राशन करनेके लिए यह पतंग फूल पर नहीं बैठता। यह उड़ता रहता है और उड़ते उड़ते ही अपनी सूंड लम्बी कर फूलमें से मधुप्राशन करता है। कभी कभी यह पतंग दिनको घरोंमें भी आजाया करता है। इसके चार पंख होते हैं। आगेके पंख कपूर रंगके होते हैं। इन-पर काले रंगके आड़े टेढ़े पट्टे होते हैं। पीछेके पंख मैले पीले रंगके होते हैं। और कुछ छोटे होते हैं। चारों पंख मूलके पास ज़्यादा पीले होते हैं और उनके किनारे गहरे ऊदी होते हैं।

यम तितली (Death's headmoth)—यह प्राणी सब प्रकारके पतंगोंसे बड़ा होता है। इसकी पीठ काले रंगकी होती है, जिस पर पीले रंगकी नर मुंडकी आकृति नज़र आती है। हाथ लगानेसे यह प्राणी ऐसी आवाज़ निकालता है, मानों दुख-से चिल्ला रहा है। नर मुंडकी आकृति और इस आवाज़के कारण यूरोपके लोग इस प्राणीसे बहुत डरते हैं। एक साल यूरोपमें यह पतंग खूब हो गया; इसके कुछ दिन बाद ही महामारीका प्रकोप बढ़ा। तभीसे वहाँके लोगोंको विश्वास हो गया कि यह प्राणी मौतका दूत है। इंगलैंडके कुछ अज्ञानी लोगोंका दृढ विश्वास है कि जारण मार-णादि प्रयोग करने वाले लोगोंके वशवर्ती हो यह प्राणी उनके कानमें भविष्यकथन किया करता है। जिस प्रकार भारतवर्षमें उल्लूका शब्द अशुभ सूचक माना जाता है उसी प्रकार यूरोपमें यम तितलीका शब्द अशुभ सूचक माना जाता है।

तितलीका रंग मैला पीला होता है, एवं उस-पर काले रंगकी आड़ी टेढ़ी रेखाएँ होती हैं। पेट-कारंग भी पीला होता है किन्तु उस पर पांच छह आड़े पट्टे होते हैं। यह पतंग शीतकालमें ही पाया जाता है। अन्य ऋतुओंमें बिलकुल नहीं पाया जाता। तितली ज़्यादा उड़ नहीं सकती; अतएव वह दिन भर कहीं छिपी बैठी रहती है और रातको बाहर निकलती है। कीटावस्थामें यह शहदकी मक्खीके छत्ते पर हमला कर शहदलूट खाती है। इल्लीको छत्तेके पास देखते ही मक्खियां एक दम आक्रमण करती हैं। किन्तु ईश्वरने इस इल्लीकी त्वचा इतनी मोटी बनाई है कि मधुमक्षिकाके दंश से उसको बिलकुल तकलीफ नहीं होती। इसलिए वह मक्खीके डंककी परवाह न कर छत्तेमें घुस जाती है।

यम तितलीकी इल्ली साढ़ेचार इंच लम्बी होती है; एवं उसकी मोटाई हाथके अंगूठेकी मोटाईके बराबर होती है। इल्लीका रंग नीबूके रंगके समान पीला होता है। पेटका रंग नीला होता है। इल्लीके शरीर पर आड़े टेढ़े नीले पट्टे होते हैं और पीछेके भागपर पूँछके समान एक लम्बा बाल होता है। बालके सिरे पर एक अंकुड़ी होती है, जिस पर महीन कांटे होते हैं। इस जातिके पतंग भारतवर्ष-में बहुत कम पाये जाते हैं।

प्रोसेशन माथ (Procession moth)—यह तितली कुछ छोटी होती है। कीटावस्थामें इल्ली ओक वृक्ष पर रहती है। एक स्थानसे दूसरे स्थानको जाते समय इल्लियां एक के पीछे एक दो दो, तीन तीन, चार चारकी कतारमें चलती हैं और इसीलिए इन्हें यह संज्ञा दी गई है।

सायकी (Psyche)—चित्रश्रृंग वर्गमें सायकी एक उपवर्ग है। इस वर्गके प्राणी कीटावस्थामें

अपने रहनेके लिए घासके तिनके, पत्ते, कांटे आदि का घर बनाते हैं। कुछ प्राणी तो छोटे छोटे कंकड़ोंको एक दूसरेसे चिपका कर घर बनाते हैं। यूरोपके अज्ञानी लोगोंका विश्वास है कि पूर्व जन्ममें लकड़ी चुरानेवालेको ईश्वरने इस जन्ममें लकड़ीके पिंजरे में कैद कर रखा है। इस जातिकी मादाके पंख, पांव और स्पर्शेन्द्रिय नहीं होते; एवं कीड़ा कीटावस्था और कोशावस्था खतम होने तक अपने घर में से बाहर नहीं निकलता।

चीता पतङ्ग (woodleopard moth)—यह तितली सफेद रंगकी होती है; एवं उसके शरीरपर चीतेके समान काले धब्बे होते हैं। कई लोग इसके शरीर परके चित्र विचित्र रंगको देखकर इसे चंचला (Coquette) कहते हैं। इस जातिके पतंग भारतवर्षमें बहुत पाये जाते हैं।

भूमापक तितली (geometer)—इस तितलीको यह नाम देनेका कारण पहले बता आये हैं। तितली मध्यम आकारकी होती है और वह अकसर रातको ही बाहर निकलती है। इस तितलीके शत्रु भी बहुत हैं।

पूर्ण बाढ़ को पहुंचे हुए प्राणीके सम्बन्धमें तो अधिक कुछ नहीं कहना है, किन्तु इल्लीके सम्बन्ध कुछ ज्ञातव्य बातें नीचे दी जाती हैं।

इल्लीके नीचेके ओठमें एक महीन छेद होता है, जिसमेंसे रेशमका धागा बाहर निकला रहता है। शत्रुके आने या हवा या अन्य किसी कारणसे पौदेके हिलते ही इल्ली यह धागा पकड़ कर एक दम नीचे कूद पड़ती है। किन्तु वह जमीन पर नहीं गिरती, अधर लटकी रहती है। भयका कारण नष्ट हो जाने पर इल्ली इस धागेके सहारे पुनः ऊपर चढ़ जाती है। धागेको पकड़ कर ऊपर चढ़ते समय वह एक युक्ति काममें लाती है।

ऊपर चढ़ते समय इल्ली पहले धागेको मुंहसे मज़बूत पकड़ लेती है और तब धीरे धीरे अपने शरीरको ऊपर खींचती है, यहां तक कि तीसरा मणि उस स्थानसे कुछ ऊपर तक पहुँच जाता है, जहां कि वह धागा मुंहसे पकड़े रहती है। इसके बाद वह, जहां कि तीसरा मणि लगा होता है उसके सामनेके बाजू पर, धागेको मुंहमें पकड़ कर नीचे लटक जाती है, जिससे कुछ धागा उसके शरीरको लिपट जाता है। बादमें वह पुनः अपने शरीरको ऊपर खींचती हैं। अपने पत्तेके स्थान पर पहुंचने तक यह क्रिया जारी रहती है। ऊपर पहुंचने पर लिपटा हुआ धागा निकालकर अलग कर देती है।

अन्य जातिकी तितलियां भी ऐसा करते देखी गई हैं। गोवीं पर पाई जानेवाली एक प्रकारकी इल्ली भी ऐसा ही करती है। किन्तु उसको सोलह पांव होते हैं, अतएव वह भूमापकवर्ग की नहीं है।

पिरालिना (Pyralina)—इस उपवर्गके पतंग रातको ही बाहर निकलते हैं। दीपककी लौमें कूद कर मरने वाले प्राणियोंमें अधिकांश इसी वर्गके हैं। इस वर्गकी पुष्कल उपजातियां हैं। कीटावस्थामें कीड़ा पत्तों पर ही जीवन निर्वाह करता है। इल्लियां अकसर पत्तोंको लपेट कर उसके अन्दर रहती हैं और भीतर बैठ कर ही वह पत्ते खाती हैं। एक ओरसे शत्रुके प्रवेश करने पर वह दूसरे बाजूसे रफूचक्कर हो जाती हैं। और भूमापक तितलीकी तरह रेशमके धागेके सहारे लटकती रहती हैं। शत्रुका भय मिट जाने पर वह पुनः ऊपर चढ़ जाती हैं।

इस जातिके कुछ पतंग पत्तोंके भीतर घुस कर उन्हें खाते हैं। वह पत्तेके भीतर सुरंग सी बना लेते हैं। उस जगदीश्वरकी लीलामयी सृष्टि का यह एक चमत्कार कितना विलक्षण है! एक तो पत्तेकी मोटाई ही बहुत कम होती है। फिर इस मोटाईके अन्दर प्रवेश कर पत्तेका भीतरी भाग खाकर सुरंग तैयार करने वाला प्राणी कितना बड़ा होगा! एवं उसके औज़ार कितने छोटे होंगे!! अकसर पत्तों पर आड़ी टेढ़ी रेखाएं नज़र आती हैं। यह रेखाएँ और कुछ नहीं इल्लीकी बनाई हुई सुरंग ही हैं। इन पत्तों को धूपकी ओर रख कर

देखनेसे इन सुरंगोंका भाग अर्धपार दर्शक नज़र आता है।

कभी कभी दाखकी बेल पर भी एक जातिकी इल्ली पाई जाती है जो पत्तोंको लपेट कर उनके अन्दर रहती है।

किसारी—यह नाम भिन्न भिन्न प्राणियोंको दिया गया है। पुस्तक, कागज, कपड़े और ऊनी वस्त्र खाने वाले कीड़ों को भी किसारी ही कहते हैं; तथापि यह सब प्राणी एक ही जातिके नहीं हैं। यहां हम कपड़े खानेवाली किसारीके सम्बन्ध में ही संक्षेपमें लिखेंगे।

चित्रशृंग वर्गमें टिनी (Teneae) नामक एक उपवर्ग है। इस वर्गके पतंगका आकार बहुत छोटा होता है। अतएव हम इसे 'क्षुद्रपतंग' नाम देते हैं। सूती कपड़े खानेवाला प्राणी क्षुद्रपतंग वर्गका ही है। भिन्न भिन्न चार जातिकी किसारी कपड़े खाती हैं। इन चारों जातियों पर यहां विस्तार पूर्वक लिखने की ज़रूरत नहीं। कारण उन सबका जीवनक्रम करीब करीब एकसा है।

पूर्णावस्था प्राप्त किसारीका पतंग, जिसे T. Pellionella कहते हैं, बहुत छोटा होता है। पतंग के चार पंख होते हैं। पंख हलके पीले रंगके होते हैं, जिन पर चार ऊदी रङ्गके टिपके होते हैं पंखोंके किनारे मैले सफेद होते हैं। जनवरीसे अक्तूबर तक यह प्राणी अधिक होते हैं। पर अप्रेल और मईमें तो यह बहुत ही ज्यादा होते हैं। पूर्णावस्था प्राप्त पतंग कुछ भी नुकसान नहीं करता। कीटावस्थामें ही इल्ली कपड़ोंका सत्यानाश कर डालती है। इल्ली सफेद होती है और उसका सर कुछ लाल होता है। इल्ली अपने रहनेके लिए नलीके आकारका घर बनाती है। जहां वह जाती है, यह घर भी उसके साथ ही रहता है। वह हमेशा घरमें ही रहती है बाहर नहीं निकलती। भयके चिन्ह नज़र आते ही वह अपना सर घर अन्दर खींच लेती है। घरका रङ्ग, जिस कपड़े पर इल्ली रहती है उसीके रङ्गका होता है, कारण कि वह कपड़ेको कुतर कर उसे घरके ऊपर चिपका देती है।

किसारीका घर नलीके समान पोला होता है। घरके दोनों छोरकी मोटाई तो एक सी होती है, किन्तु उसका बीचका भाग ज़्यादा मोटा होता है। घर भीतरकी तरफसे रेशमसे मढ़ा रहता है। इल्ली ज्यों ज्यों बड़ी होती जाती है वह अपने घर का विस्तार भी करती है। वह घरके दोनों सिरोंको थोड़ा थोड़ा करके बढ़ाती रहती है।

कीटावस्थामें यह प्राणी घर बनाने, घरकी दुरुस्ती करने, शत्रुसे अपनी रक्षा करने आदि व्यवसायोंमें निमग्न रहता है। अन्तिमवार त्वचा बदलने पर इल्ली घरके दोनों दरवाज़े बन्द कर कोशवासी बन जाती है। परन्तु घरके दरवाज़े बन्द करनेके पहले इल्ली अपना घर कपड़ा आदि पदार्थोंको चिपका देती है। कुछ ही अठवाड़ोंमें कोशावस्था समाप्त हो जाती है और तब तितली कोश तोड़कर बाहर निकल आती है। पूर्णावस्था प्राप्त कीड़ा, तितली, कुछ नहीं खाता। प्रजोत्पादन कार्य ही उसे करना होता है और यह कार्य समाप्त होते ही तितली मर जाती है।

किसारीकी एक जाति और है, जिसे T. Tapetzella (टी. टैपेट्ज़ेला) कहते हैं। यह कीड़ा गालीचे, घोड़ेके खोगीर, आदि सामानमें पाया जाता है। इल्ली मोटे कपड़ोंमें छेद कर भीतर घुस जाती है और तब अन्दर ही अन्दर उन्हें खाती रहती है। अतएव उसे अपने रहनेके लिए अलग घर बनानेकी ज़रूरत नहीं पड़ती।

आटा, चावल, दाल आदिमें पाई जानेवाली इल्ली भी एक जातिकी तितलीकी कीटावस्था ही है। ग्रीज़ माथ (greasemoth) नामक तितलीको एक और जाति है जो चर्बी, मक्खन आदि स्निग्ध पदार्थोंमें रहती है। पर यह प्राणी इन पदार्थोंको नहीं खाते।

ऊपर भिन्न भिन्न जातिके पतंगों पर विचार कर आये हैं। अब चित्र शृंग वर्गके एक ही पतंग-

का वर्णन करना शेष है। इस प्राणीको 'रेशमका कीड़ा' कहते हैं। इल्ली अपने शरीरके चारों ओर एक आवरण बनाती है, जिससे ही रेशम तैयार किया जाता है।

रेशमका कीड़ा

चित्र शृंग वर्गमें वाम्बिक्स मोरी नामक एक उपवर्ग है। रेशमका कीड़ा इसी उपवर्गका प्राणी है। प्रारंभमें बाम्बिक्स मोरी शब्द रेशमके कीड़ेके लिए ही व्यवहृत होता था, किन्तु अब यह नाम इस प्राणीके उपवर्गको भी ही दिया जाने लगा है। अन्य कीड़ोंकी तरह रेशमके कीड़ेकी भी अण्डावस्था, कीटावस्था, कोशावस्था और पूर्णावस्था होती है। असलमें पूर्णावस्था प्राप्त तितलीको ही 'रेशमका कीड़ा' नाम देना चाहिये। तथापि इल्ली ही इस नाम से पहचानी जाती है।

पूर्णावस्था प्राप्त होने पर नर मादाका संयोग होता है। मादा लगातार तीन दिन तक अण्डे देती रहती है। प्रारंभमें तो अण्डेका रंग पीला होता है किन्तु बादमें रंग बदल जाता है। पके हुए अण्डोंका रंग कुछ कुछ सफेद हो जाता है।

अण्डेमें से निकली हुई इल्ली दूसरी इल्लियोंके समान ही होती हैं। किन्तु उनके शरीर पर भिन्न भिन्न रंग नहीं होते। दूसरी इल्लियां अपने मनोहारी रंगोंसे जन-मन आल्हादित करती रहती हैं; किन्तु उनसे मानव प्राणीको कुछ भी लाभ नहीं पहुंचता। रेशमके कीड़ेकी बात निराली है। उसकी पोषाक मज़दूरके पोषाककी तरह सादा होती है। किन्तु उसीकी बदौलत मानव प्राणीको सुंदर सुंदर रेशमी वस्त्र प्राप्त होते हैं।

रेशमके कीड़ेके सोलह पांव नकली होते हैं— छः असली 'पांव' और दस 'नकली पांव'। 'नकली पांव' की सहायतासे कीड़ा शहतूतके पत्ते-पर जम कर बैठ सकता है। इसके शरीरकी रचना अन्य इल्लियोंके शरीरकी रचनाके समान ही है। उसके शरीरके दोनों बाजू पर अठारह छिद्र होते हैं। इन्हीं छिद्रों द्वारा इल्ली श्वासोछ्वास की क्रिया करती है।

दूसरी इल्लियोंकी तरह रेशमके कीड़ेकी इल्लीके भी नीचेके ओठके पास एक छिद्र होता है। इसी छिद्रमें से रेशम निकलता है। इस छिद्रको 'सूत्र-मार्ग' कहते हैं। सूत्रमार्गमें कुछ भीतरकी ओर कांटे उठानेकी जेलीके समान दो शाखाएं होती हैं। यह शाखाएं बहुत लम्बी होती हैं। शाखाओंकी मोटाई एकसी नहीं है। इनका मध्यभाग मोटा होता है, एवं सिरे पतले। कीड़े शहतूतके पत्तों पर ही जीवन निर्वाह करते हैं। भोजन सूत्रमार्गमें प्रवेश करता है और वहीं उसका रेशम बनता है। जिस प्रकार दो नदियां एक स्थान पर मिलकर समुद्रकी ओर प्रवाहित होती हैं उसी प्रकार दोनों शाखाओंका रेशम मुख्य सूत्रमार्गमें आकर मिल जाता है। मुख्य सूत्रमार्गमें कुछ पदार्थ ऐसे हैं, जिनके योगसे रेशम चमकने लगता है। सूत्रमार्गकी शाखाओंमें यह रेशम अपक्व दशामें रहता है।

इल्ली त्वचा बदलती हुई बढ़ती रहती है। ज्यों ज्यों कीड़ा बढ़ता जाता है वह भोजन भी अधिकाधिक खाने लगता है। एक औंस अण्डोंमें से चालीस हज़ार इल्लियां निकलती हैं। नीचेकी सरिणीमें प्रत्येक बार त्वचा बदलने पर इल्लीकी लम्बाई, वज़न और भोजनका वजन दिया गया है—

अवस्था	लम्बाई	चालीस हज़ार कीड़ों का वजन	भोजन का वजन
१ ली०	१ सूत	१ औंस	६ पौंड
२ री०	४ "	१५ "	१८ "
३ री०	६ "	७४ "	६० "
४ थी०	१२	४००"	१८०"
५ वीं	२०	१६९८"	१०७६"

नोटः—आठवीं अवस्थामें तो कीड़ेकी लम्बाई ४० सूत तक पहुँच जाती है।

कोशावस्थाका समय निकट आने पर इल्लीका रङ्ग पके द्राक्षके समान नज़र आता है। इल्ली खाना छोड़कर सुरक्षित स्थानमें जा कोश बनाने लगती

है। पन्द्रह सोलह दिन कोशमें रहने के बाद इल्ली तितलीका रूप ग्रहण कर लेती है और तब कोश तोड़कर बाहर निकल आती है। मादाके पंखका रङ्ग कुछ मैला होता है। स्पर्शेन्द्रियकी पूर्ण बाढ़ नहीं होती। मादाका पेट मोटा और लम्बा होता है। वह चपल भी नहीं होती। नर बहुत चपल होता है। उसका शरीर हलका, रङ्ग कबरा और स्पर्शेन्द्रिय काली होती है। कोशमें से निकलते ही वह उड़ने लगती है। नरसे संयोग होनेपर मादा अण्डे देती है। प्रजोत्पादनका कार्य समाप्त होते ही दोनों मर जाती हैं।

मनुष्यके भोजनका बन्दरोंपर प्रभाव

लेडेलफियाके एक डाकूर ने बहुत से बन्दरोंको मनुष्यका साधारण भोजन दे कर पालनेका परीक्षण किया। उसको इससे विचित्र परिणाम उपलब्ध हुए हैं। गुडहैल्थ नामक पत्रमें इसका निम्नलिखित वर्णन दिया हुआ है।

यह सर्वथा सत्य है कि सभी प्राणियोंके स्वभावोंको उनके भोजन से ही नियमित कर सकते हैं। बन्दरोंको मनुष्योंका भोजन (अन्न और मांस) देकर विचित्र विस्मयजनक परिणाम देखे गये हैं। एक सप्ताह तक बन्दरोंको नियम पूर्वक प्रोटीन मय द्रव्य, जिसमें मांस और अन्नका अधिक भाग था, खानेको दिया गया। पहले तीन दिनके बाद वानरोंमें सुस्ती आने लगी। उनकी कूद फांद समाप्त हो गई। उनको उनका जीवन भारी सा मालूम होने लगा। और दो दिनके बाद तो वह बिलकुल ही आलसी होगये। अपने सिर अपने हाथोंमें पकड़ पकड़ कर बैठ गये। और किसी प्रकार की भी क्रीड़ामें मनोयोग न देते थे।

एक सप्ताहके अन्तमें, सारा कटघरा मातमसे भर गया। मानों उसमें शोककी पुतलियां कैद कर रखी हों। सब बन्दर ऐसे आलसी हो गये कि किसी भी घटनाकी ओर आंख भी उठाकर देखना भारी मालूम होता था। वह संसारको भारी दुखित और आनन्द शून्य दृष्टिसे देखते थे। सप्ताहके बाद उनका भोजन फिर बदल दिया गया, उनको सप्ताह भरतक वनस्पति कन्दमूल फल ही खानेको दिये। तीन दिनके बाद उनमें फिर चंचलता जाग उठी, ५ दिनके बाद वह अपनी पहली आदतोंके अनुसार कूद फांद मचाने लगे। ७ दिनके बाद वह सभी आनन्दित मालूम पड़ने लगे और पूर्ववत चुहल पुहल होने लगी।

यदि मनुष्य संसारकी अवस्था पर ध्यान दें तो ठीक ऐसी ही है। मनुष्य भारी भोजन करता है, इससे उनपर मायूसीका जाल सदा तना रहता है। बहुत मोटे पेट हो जाते हैं। उछलना कूदना उनको असम्भव हो जाता है और संसारकी खुशी और आनन्द लुप्त हो जाते हैं। मनुष्यको चाहिये कि यदि वह गयी खुशी और लुप्त आनन्दको लेना चाहे तो फिरसे फल मूलकन्दका आहार किया करे। प्राचीन मुनि वृत्तिमें सचमुच बड़ा आनन्दका जीवन रहता है। कदाचित् रामचन्द्रको इसीलिए मुनि वृत्ति धारण करके राज्य त्यागने तकका भी दुःख नहीं हुआ।

रसायनकी कुछ प्रारम्भिक बातें

[ले०—श्री० राधानाथ टन्डन, बी. एस-सी., एल. टी.]

आजकल देखा जाय तो विज्ञान से बढ़कर कोई पाठ्य विषय नहीं है। इसीकी महिमासे आज हम बिजलीकी रोशनी और बिजलीके पंखोंका सुख भोग रहे हैं। हम घर बैठे हज़ारों मील दूर पर बैठे हुए अपने कुटुम्बियों से छिनमें बात कर लेते हैं। हज़ारों मीलोंका सफर आनन्द पूर्वक थोड़े समयमें ही कर लेते हैं—न तो रास्तेमें लूट मारका डर और न जङ्गली जानवरोंका भय। एक शताब्दी पहले पुस्तकोंमें विमान शब्द पढ़ पढ़ कर आश्चर्य होता था, पर आज प्रत्यक्ष विमान एक नगरसे दूसरे नगरको उड़ते हुए दीख पड़ते हैं। इसी विज्ञान-के प्रतापसे आज बड़े बड़े धुरन्धर इनजीनियरोंके बनाये विशाल सेतु, नदियों, तड़ागों और झीलों-पर जहां तहां देखने में आते हैं। इसीके बलसे पहाड़ोंको उड़ा उड़ा कर रास्ते निकाले गये हैं। जिन पहाड़ोंका इन्द्रका वज्र बाल बांका नहीं कर सकता था उन्हीं पहाड़ोंमें डैनेमैट (Dynamite) के प्रयोग से रेलोंके लिए सैकड़ों मील तक बिल खोद डाले हैं।

पत्थर क्या है? मिट्टी क्या है? दुनिया किन किन तत्वोंकी बनी है? लोहा, सोना, चांदी, तांबा, सीसा (lead), जस्ता आदि कौन कौन पदार्थोंसे और कैसे निकलते हैं? अन्य पदार्थोंका इन पर क्या प्रभाव पड़ता है? इन प्रश्नोंका उत्तर देनेवाला भी विज्ञान ही है। इन्हीं सब बातोंका ज्ञान लेना रसायन विद्याका ज्ञान लेना है। इसी विद्याके बलपर रसायन शास्त्रज्ञोंने बड़े बड़े आविष्कार कर डाले हैं, यहां तक कि पारस पत्थरकी तरह एक धातुको दूसरी धातुके सदृश कर देना या दूसरी धातुमें बदल देना विज्ञान-वेत्ताओंके लिए एक असाधारण बात नहीं रही। विज्ञानमें इतनी अद्भुत शक्तियोंके होते हुए भी भारतवासी इस विद्यासे अनभिज्ञ रहें, यह बड़े खेदकी बात है। इस अनभिज्ञताका मूल कारण भाषामें विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकोंका अभाव होना है। इसी अभावकी पूर्त्ति करनेका बीड़ा विज्ञान परिषद् ने उठाया है।

पूर्व इसके कि मैं विज्ञानविषय पर लिखना आरम्भ करूँ रसायन और भौतिक विज्ञानमें क्या विशेष भेद है, यह बता देना आवश्यक समझता हूं। विज्ञानका वैभव दिखलानेवाले अनेक उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। भौतिक विज्ञान प्राकृतिक शक्तियोंसे सम्बन्ध रखता है; जैसे ताप, प्रकाश, विद्युत आदि। मिट्टी क्या है? लोहा, तांबा, चांदी, सोना आदि के क्या गुण हैं, पदार्थों पर जल, वायु, अम्ल (acid) आदि का क्या प्रभाव होता है और उनसे क्या क्या परिवर्तन हो जाते हैं? यह सब बातें, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, रसायन शास्त्रके विषय हैं। जो पदार्थ भौतिक नहीं हैं, अर्थात् अभौतिक पदार्थ जैसे ईश्वर आत्मा, बुद्धि इत्यादि इनका सम्बन्ध दर्शन शास्त्र से है। यह बात सर्व विदित है कि केवल जड़ पदार्थों से सृष्टिकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। बिना किसी बाह्य प्रेरणाके इनमें गति या कम्पन नहीं हो सकता। इसको चलानेके लिए कोई अन्य वस्तुकी आवश्यकता पड़ती है। इसी अन्य वस्तुको जो द्रव्योंमें व्यापक होकर उसको परिचालित करती है 'शक्ति' कहते हैं। ताप, प्रकाश, विद्युत् इत्यादि इसके अनेक रूप हैं। बस इन्हीं शक्तियोंसे भौतिक विज्ञान विशेष सम्बन्ध रखता है।

किसी वस्तुमें कितनी गर्मी है? उस पर उसका क्या प्रभाव है? भापसे क्या क्या काम निकलते हैं? इंजिन, मिल आदि भापसे किस तरह चलाये जाते हैं? किसी चीज़को मध्योन्नत कांच (convex lens) द्वारा बड़ी कैसे देख लेते

हैं ? रोशनी में फोटो कैसे खींच लेते हैं ? बाइसकोपका तमाशा कैसे होता है ? विद्युतसे टेलीफोन टेलीग्राफी, रोशनी आदिका काम किस तरह लिया जाता है ? ऐसी ही सब बातोंका उत्तर भौतिक विज्ञान दे सकता है।

रसायन विद्या हमको पदार्थोंका बनना वा बनाना सिखाती है। लोहा, ताम्र, जस्ता, सीसा (lead), चांदी, सोना आदि मट्टी वा पत्थर सदृश पदार्थोंसे कैसे निकाले जाते हैं ? वायु क्या है ? लम्प हवा विना क्यों नहीं जलता रहता ? दियासलाई किस तरह बनाई जाती है ? कांच किस तरह बनाया जाता है ? एक तरल पदार्थ दूसरे तरल वा ठोस पदार्थ पर छोडनेसे एक नई चीज क्यों बन गई और अन्य क्या क्या चीजें बन गईं; इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर रसायन विद्यासे मिलता है। उपर्युक्त प्रश्नोंसे ही इन दो विद्याओंमें क्या भेद है इसका पूरा पूरा पता चल जाता है। अतः अब इस विषयको बढ़ाना उचित न समझ कर समाप्त करता हूं और पाठकोंका ध्यान एक महत्वपूर्ण विषयकी ओर ले चलना चाहता हूं।

पदार्थ और आकर्षण शक्ति

जिस तरह सूर्य्य ग्रह और तारागण अनन्त आकाशमें लटके हुए एक दूसरेको आकर्षणशक्तिसे बांधे हुए अपने मार्गसे एक दूसरेको विचलित होने नहीं देते, वरन प्रकृतिके अटल नियमका अनन्त कालसे पालन करते चले जा रहे हैं उसी तरह इस पृथ्वीके जितने पदार्थ हैं सब आकर्षण शक्तिसे बंधे हुए प्रकृतिके नियमोंका पालन कर रहे हैं। पृथ्वी सनातन अपनी धुरीपर घूमती हुई सूर्यके चारों ओर १८ मील फी सेकन्डकी चालसे चक्कर लगाती चली जा रही है, पर लेश मात्र भी सम्भव नहीं कि पृथ्वीके जड़पदार्थ वा जीव चक्करके वेगसे गिरने लगें। कोई पदार्थ भी क्यों न हो आकाशकी ओर फेंकने पर अन्तमें पृथ्वी पर आ गिरता है। इस गिरनेका मुख्य कारण आकर्षण शक्ति है। यह शक्ति पृथ्वीके एक एक अणुमें व्यापक होकर अणुओंको मिलाये हुये हैं।

यदि विश्लेषण द्वारा देखा जाय तो ज्ञात होगा कि संसारमें जितने पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं सब दो, तीन चार वा अधिक भिन्न भिन्न पदार्थोंके, जिनके गुण पृथक् पृथक् हैं, बने हैं। देखनेमें वह एक ही पदार्थ जान पड़ते हैं, पर ऐसा नहीं है। प्रयोग द्वारा देखने पर ज्ञात होता है कि वह ऐसे घटकोंमें विभाजित किये जा सकते हैं जिनसे फिर कोई सरलतर पदार्थ नहीं निकाला जा सकता। ऐसे पदार्थोंको ही मौलिक कहते हैं। यह स्वतंत्रावस्थामें बहुत कम पाये जाते हैं। ऐसे पदार्थ यदि ताप, विद्युत आदि शक्ति द्वारा किसी पदार्थसे अलग भी हो जावें तो भी स्वतंत्र अवस्थामें ठहर नहीं सकते। वह संयोग शक्ति, युयुत्ता, द्वारा उपयुक्त पदार्थोंसे मिल कर शनैः शनैः फिर अपनी पुरानी अवस्थामें पलट जाते हैं या एक नये गुणवाले पदार्थमें बदल जाते हैं। यदि ऐसे पदार्थ उन पदार्थोंसे जिनसे वह आसानीसे मिल जाते हैं अलग रखे जायं तो उनका स्वतंत्र अवस्थामें रहना सम्भव है। पर प्रकृतिमें ऐसा होना असम्भव है। कृत्रिम तौर पर ही ऐसा हो सकता है। प्रकृतिमें पृथ्वी, वायु, जल आदिके कारण मिलनसार पदार्थोंमें सम्पर्क होही जाता है, जिससे वह फिर नई वस्तुमें पलट जाते हैं।

देखनेमें चूना चूना ही मालूम पड़ता है, पर इसमें से एक चमकता हुआ धातु चांदीके सदृश जिसको केलसियम (calcium metal) कहते हैं अलग किया जा सकता है। पर वायु वा जलके स्पर्श होते ही फिर चूनेमें परिवर्तित हो जाता है। आधुनिक वैज्ञानिकोंने इस धातुको बड़ी कठिनतासे अलग कर पाया है। प्रकृतिमें तो इसका मिलना असम्भव ही है। इसी तरह हमारे प्रतिदिन काममें आनेवाले नमकका हाल है। देखनेमें तो एक सरल पदार्थ ज्ञात होता है और झीलों, समुद्रों आदिमें ढेरका ढेर निकलता है, पर यह

भी दो भिन्न पदार्थोंका, जो प्रकृतिमें स्वतन्त्र अवस्थामें कदापि नहीं पाये जा सकते, बना हुआ है। इसमेंसे भी विद्युत् विश्लेषण (electrolysis) द्वारा एक चांदीकी तरह श्वेत चमकती हुई धातु, जिसको सोडियम (Sodium) कहते हैं निकाल सकते हैं। दूसरा पदार्थ एक हरी वायु है, जिसे हरिन कहते हैं। इन्हीं दोनों पदार्थोंके संयोगका फल नमक है। यह धातु बहुधा हवासे बचा कर मट्टीके तेलमें डुबो कर बोतलोंमें बन्द रखी जाती है। पानीमें डालते ही पिघल जाती है और जिस तरह तपाये हुए लोहेको पानीमें डालनेसे हिस हिसका शब्द होता है उसी तरह हिस हिस करता हुआ सोडियम पानीमें नाचने लगता है। अन्तमें एक नई चीज़ बन जाती है, जिसको दाहक सोडा (caustic soda) कहते हैं। कभी कभी अधिक तापके प्रादुर्भावसे प्रकाश भी पैदा हो जाता है।

इसी तरह और भी कितने पदार्थ हैं, जिनमेंसे विचित्र विचित्र गुणवाले पदार्थ निकल सकते हैं, पर जो प्रकृतिमें स्वतन्त्र अवस्थामें नहीं पाये जाते। सोडियम (Sodium) के घरानेकी और भी कई धातु हैं, जिन पर पानीका असर और अधिक तीव्र होता है। उनको पानीमें डालते ही एक दम तड़ाकेके शब्दके साथ प्रकाश पैदा हो जाता है। ऐसी धातुओंका अलग करना कठिन समस्या है। हवाका इन पर इतना शीघ्र असर होता है कि उसके स्पर्श करते ही उसके ऊपर काई सी जम जाती है और चमक बिलकुल जाती रहती है।

इन धातुओंके विपरीत गुणवाला पदार्थ स्फुर (Phosphorus) है, जो मोमकी तरह श्वेत और मुलायम होता है। इसमें धातुओंकी तरह चमक अथवा और और गुण जो धातुओंमें पाये जाते हैं, नहीं हैं। इसीलिए इसकी गणना अधातुओंमें की जाती है। यह पदार्थ भी प्रकृतिमें स्वतन्त्र अवस्थामें नहीं पाया जाता। संयुक्त अवस्थामें ही मिल सकता है। यह बहुधा हड्डियोंमें से निकाला जाता है। उपरोक्त धातुओंके विपरीत यह पानीमें रखा जाता है। हवामें नहीं ठहर सकता। शीघ्र जल उठता है और जल कर भस्म हो जाता है। अभी तक स्फुरके अतिरिक्त और कोई ऐसा पदार्थ नहीं ज्ञात हुआ जिसमें हवामें रखने पर जल उठनेका गुण हो। रचनामें कुछ पदार्थ तो ऐसे हैं जो थोड़ी गर्मी पाते ही जल उठते हैं। कुछ ऐसे जो देरमें जलते हैं और जिनको जलानेके लिए अधिक गर्मीकी आवश्यकता है और कुछ ऐसे भी हैं जो नहीं भी जलते। ऐसे पदार्थ जो थोड़ी गर्मी पाते ही जल उठें उन्हें दाह्य (combustible) पदार्थ कहते हैं। दाह्य पदार्थों में स्फुर ही एक पदार्थ है जो वायुमें रखने पर आपसे आप जल उठता है, सूर्यके प्रकाशमें भी रखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। और पदार्थोंमें यह गुण नहीं है। मध्योन्नत कांच (convex lens) द्वारा सूर्य्यकी गर्मी एकत्रित कर ज्वलनार्ह पदार्थ जलाये जा सकते हैं। पर प्रतिदिन आग बनाकर अपना काम चलानेके लिए मध्योन्नत कांचसे काम नहीं चल सकता। और फिर रातमें प्रकाशके लिए क्या प्रबन्ध हो सकता है? तब तो स्फुर देवताका ही आसरा लेना पड़ेगा। इसके सिवा और कोई वस्तु नहीं जो आपसे आप हवामें जल उठे। दियासलाईकी जान स्फुर ही है। दियासलाई बनानेमें स्फुरका रहना परम आवश्यक है; और मसालोंमें भले ही हेर फेर हो जाय। चांदी, सोना, आदि धातु भी खटिक, क्षारज, और स्फुरकी तरह बहुधा संयुक्त अवस्थामें ही पायी जाती हैं। पर खानोंमें पृथक् अवस्थामें भी मिलती हैं, पृथक् अवस्थामें मिलनेका कारण यही है कि वायु और पानीका असर इन पर उपर्युक्त खटिक और क्षारज धातुओंकी अपेक्षा बहुत ही कम होता है। इन धातुओंमें वायु और पानीसे मिलनेकी शक्ति कम होती है। पर और पदार्थोंसे मिलकर रासायनिक संसर्ग द्वारा बहुधा यौगिक पदार्थ बन जाते हैं। लोहा बहुधा लाल पत्थरोंको गर्म करके ही निकाला जाता है। स्वतन्त्र अवस्थामें

यह भी कम पाया जाता है। तुरन्त वायु और जलके प्रभावसे ज़ङ्गमें परिवर्तित हो जाता है।

तात्पर्य यह कि जितने पदार्थ इस संसारमें हम देखते हैं सब एक पदार्थसे ही नहीं बने हैं वरन् भिन्न भिन्न गुण रखनेवाले पदार्थोंके संयोगसे बने हैं, जिनका फिर विभाग नहीं हो सकता अर्थात् उनमेंसे फिर कोई भिन्न गुणवाला पदार्थ नहीं निकल सकता। ऐसे पदार्थोंको मौलिक (Elements) कहते हैं; जैसे तांबा, सोना, चांदी, जस्ता, सोडियम, गन्धक, स्फुर इत्यादि। इन मौलिकोंमें से और कोई भिन्न पदार्थ किसी तरह नहीं निकल सकता। मौलिकोंके रासायनिक संयोगसे बने हुए पदार्थोंको यौगिक (Compound) कहते हैं जैसे नमक, चूना, जस्ता इत्यादि। यौगिक (Compound) और मिश्रण (mixture) में भेद है। नमक और चूनेको पीसकर आपसमें मिला दें तो मिश्रण बन गया। इसी तरह लोहे अथवा तांबेके बुरादे और पिसे हुये गन्धकको मिला दो, पिसे हुए कोयले और खलीको आपसमें मिला दो, पिसे हुये पोटाश और पिसे हुए चूनेको आपस में मिला दो, हर बार एक मिश्रण बन जायगा। छानकर, चुन कर, फटककर या घुला कर मिश्रणके दोनों पदार्थ फिर अलग किये जा सकते हैं। लोहेके कणोंको चुम्बक से भी अलग कर सकते हैं। यदि लोहा और गन्धक या तांबा और गन्धकके मिश्रणको गरम किया जाय तो इन मौलिकोंके मिलनेसे एक नई चीज़ बन जायगी, जिसमें न फिर हम लोहेका ही अंश देख सकते हैं और न गन्धकका ही। इस पदार्थका गुण भी दोनोंके गुणोंसे पृथक् है। ऐसे पदार्थको ही यौगिक (Compound) कहते हैं।

यौगिकोंमें से मौलिकोंको आसानीसे अलग नहीं कर सकते। जिस तरह मिश्रणको घोलकर और छानकर पदार्थोंको अलग अलग कर लेते हैं उसी तरह इसमें नहीं कर सकते। यौगिकके घटक पृथक् पृथक् करनेके लिए गर्मीकी आवश्यकता पड़ती है; जैसे पारद भस्म (mercury oxide) को अधिक गर्म करनेसे पारा अलग हो जाता है। कभी कभी यौगिकोंके घटकों को अलग करनेके लिए किसी और पदार्थके साथ उन्हें गर्म करनेकी आवश्यकता पड़ती है जैसे बङ्ग ओषिद् (Tin oxide) वा यशद्ओषिद (Zinc oxide) में से रांगा वा जस्ता निकालनेके लिए इन को कोयलेके साथ तपाते हैं। इस तरहके परिवर्तन को जिसमें गर्मी पैदा हो या अधिक पदार्थ मिलकर नया यौगिक बन जाय अथवा एक यौगिक दो या अधिक मौलिकोंमें विभक्त हो जाय रासायनिक परिवर्तन (Chemical change) कहते हैं और क्रियाको रासायनिक क्रिया (Chemical action) कहते हैं।

रासायनिक अन्वेषण द्वारा लगभग ८० मौलिकोंका पता चला है। इन्हींसे सारी सृष्टिकी रचना हुई है। इन मौलिकोंके दो भेद हैं, (१) धातु—जैसे सोना, चांदी, तांबा आदि; (२) अधातु—जैसे स्फुर (Phosphorus), गन्धक (Sulphur) इत्यादि।

बिजली घरोंमें काम करनेवालों-के लिए उत्तम पोशाक

स्टर स्काट महाशयने चिकागो (अमेरिका) से निकलनेवाले एक पत्र "नेशनल सेफ़टी न्यूज़" में एक लेखमें दर्शाया है कि साधारणसे साधारण उपयोगकी वस्तुएं ही असावधान रहनेसे प्राणतक ले लेती हैं। बिजली घरोंमें काम करनेवालोंको बड़ी सावधानीसे रहनेकी आवश्यकता है। क्योंकि प्रायः देखा गया है कि बिजली घरोंमें काम करनेवालोंके सिरोंपर पहने हुए टोप, जिनमें तारों से गठाई की होती है, आखोंपर लगी ऐनकें, गलेमें पड़ी या छातीपर लटकती घड़ियोंकी चैनें, पैरोंमें पहने कीलोंसे जड़े बूट समय समयपर उनके मृत्युके कारण हो

जाते हैं। यहां तक कि कभी कभी तो कोट वास्केटोंमें लगे धातुके बटन भी उनके प्राणदण्डके विधाता हो जाते हैं; क्योंकि बिजलीकी प्रबल धारा आंखसे चलती हुई तो नहीं दीखती; इसीलिए कभी भूल से भी शरीर को धातवीय वेश भूषाका बिजलीके तारों या उपकरणोंसे अनजाने स्पर्श हो जाता है तो सुवाहक धातुओंमें वही बिजलीका तेज़ धक्का शरीरके प्राण ले बैठता है। फलतः उपरोक्त वेष भूषामें लोहे आदि धातुकी सत्ता ही बिजली घरोंमें अनायास मृत्युका निमन्त्रण है। अतः बिजलीघरके काम करनेवालोंके लिए यदि उपयोगी पोशाक हो सकती है तो वह हिन्दुस्तानी पोशाक है। सादा जूता, सिरपर पगड़ी, तागेके बटन, खद्दरके कुरते इत्यादिमें कहीं भी बिजलीका धक्का लगनेकी सम्भावना नहीं।

दियासलाईका इतिहास और रासायनिक विधि

[ले०—श्री० डा० चुन्नीलाल बोस]

दियासलाईका आविष्कार होनेके पहिले आग दो दाह्य अथवा अदाह्य पदार्थोंको परस्पर रगड़ कर अथवा एक पर दूसरेसे चोट देकर पैदा की जाती थी। वैदिक कालमें यज्ञ कार्योंमें आगकी आवश्यकता पड़ती थी और प्रायः अरणियों से पैदा की जाती थी। एक नौकीला लकड़ीका टुकड़ा दूसरे टुकड़ेमें किये हुए छिद्रमें डाल कर घुमाया जाता था। रगड़ खानेसे गरमी पैदा होती थी और अन्तमें पतला नौकीला सिरा जल उठता था।

प्राचीन आर्य लोग पूजाके स्थानों और यज्ञ मन्दिरोंमें अग्निको हमेशा रखते थे, कभी बुझने न देते थे। यह रिवाज पारसियोंमें अबतक प्रचलित है। यह लोग अपनी पवित्र अग्निको फारससे सातवीं या आठवीं शताब्दीमें लाये थे, जब कि वह वहांसे भाग कर आये थे और भारतमें आश्रय पा बस गये थे। वही अग्नि आजतक उनके बम्बईके मन्दिरमें जल रही है।

सुनते हैं कि शुरू शुरूमें इसाई भी अपने गिरजेमें आग जलाये रखते थे। यूनानी कथाओंसे पता चलता है कि प्रोमिथियस देवलोकसे आग चुरा लाया था। कुछ विद्वानोंका मत है कि प्रोमिथियस शब्द संस्कृत शब्द प्रमथनसे निकला है, जिसका तात्पर्य पुरानी वैदिक शैली द्वारा रगड़ कर आग पैदा करनेसे है। यूनानी लोग नतोदर, प्यालानुमा, शीशोंसे सूर्यकी किरणावलीको एकत्रित करके भी आग पैदा करना जानते थे। इतिहास इस बातकी साक्षी देता है। एक रूमी जहाजी बेड़ेमें सैरेक्यूज़के सामने उपरोक्त विधिसे ही आग लगा दी गई थी।

बहुत ही प्राचीन कालसे मिस्र निवासी भट्टीके बरतन बनाने और धातुओंके निकालनेके उद्योगोंके लिए अग्नि बनाना जानते थे। इन्हीं क्रियाओंके चित्र मिस्रकी कब्रों पर अंकित पाये जाते हैं, जो प्रायः ५००० वर्ष पुराने होंगे।

यह बात भी सर्व साधारणको विदित थी कि पत्थरोंको अथवा पत्थरों और लोहेके टुकड़ोंको जोरसे टकराने पर अग्निकी चिंगारियां पैदा हो जाती हैं। इसी विधिसे (पथरी और फौलादके प्रयोगसे) दियासलाइयोंके आविष्कार होनेके पहले तक यूरोप और भारतमें सर्वत्र आग पैदा की जाती थी। यूरोपमें टिंडर-बाक्सका प्रयोग सं० १८७७ विक्रमी तक होता रहा। इसके बाद ही धीरे धीरे दियासलाईका प्रचार हुआ।

भारतमें उपरोक्त विधिसे उत्पन्न की गई चिंगारी सरकण्डेके गूदेपर डाली जाती थी, जिससे

फिर गन्धकमें डूबी हुई सींकोंको जला लेते थे और काममें लाते थे। ग़दरके पहले घरमें बड़ी बूढ़ी स्त्रियोंको सनकी पतली पतली सींकोंको पिघले हुए गंधकमें डुबो डुबोकर सलाइयां बनानी पड़ती थीं*। साथ ही धानके छिलके अंगीठियोंमें दिन रात सिलगते रखे जाते थे। यद्यपि इनकी आग तेज़ नहीं होती थी, तथापि बड़ी मुश्किलसे बुझती थी और सलाइयोंको जलानेके काम आती थी।

अग्नि पिचकारी (Fire Syringes) का भी कुछ दिन हुए आविष्कार हुआ था। इनसे आग तत्क्षण पैदा की जा सकती थी, परन्तु इनका सर्व साधारणमें प्रचार होना कठिन था। इन पिचकारियोंमें कोई सुगमतासे जलनेवाला पदार्थ रख दिया जाता है। और हवाको दबाकर गरमी पैदा की जाती है।

धीरे धीरे इन भौतिक विधियोंकी जगह रासायनिक विधियोंका प्रचार होने लगा, जिनमें सबसे पहली डोबरीनर महोदयने चलाई। डोबरीनरकी लेम्पमें उज्जनके (Hydrogen) पैदा करनेके लिए जस्ते और तेज़ाबका प्रयोग होता था। उज्जनकी पतली धार स्पञ्जनुमा प्लाटीनमके सम्पर्कमें जब आती थी तो जल उठती थी। परन्तु इस विधिसे केवल प्रयोगशालाओंमें ही काम निकाल सकते थे।

रासायनिक विधियोंमें धीरे धीरे उन्नति होती रही—वह अधिकाधिक सरल और सस्ती होती गई और अन्तमें दियासलाइयोंका आविष्कार हुआ।

ओक्सीम्यूरिएट दियासलाई

सबसे पहली दियासलाई पेरिस नगरमें चैनसिल (Chancel) महोदयने बनाई थी। पोटाश क्लोरेट, शकर और गोंदका मिश्रण सलाइयोंके सिरे पर लगा दिया जाता था। जब यह सलाई तीव्र गंधकाम्लमें डुबोई जाती थीं तो जल उठती थीं*।

कौनग्रीव दियासलाई

सं० १८८४ वि०में पहले पहल रगड़कर जलनेवाली दियासलाई जान वाकर नामक एक इंग्रेजने बनाई। इन सलाइयोंके सिरपर पटास और सुरमेका मिश्रण लगाया जाता था। रेगमालके टुकड़े पर जब इन सलाइयोंको घिसते थे तो जल उठती थीं। रेगमालका टुकड़ा दियासलाईके बक्स पर लगा दिया जाता था। एक बक्समें ८४ सलाई रहती थीं और उसका मूल्य ।।।) होता था।

वेस्टास दियासलाई—इन दियासलाइयोंमें मोमकी सलाइयोंपर ओक्सीम्यूरिएट दियासलाईका मसाला लगाया जाता था और इस प्रकार वह धातुके बक्समें बन्द रहती थीं। कि निकालते वक्त एक तह किये हुए रेगमालसे उनके सिरे रगड़ खाते थे। इन दियासलाइयोंका पेटेएट एक न्यूटन नामी अंग्रेजने कराया था। परन्तु यह बनाई जाती थीं फ्रांसमें।

१८९३ वि० के बाद इन सलाइयोंमें अनेक संशोधन हुए। मोमकी जगह मोम और पैराफिनका मिश्रण, अथवा ब्रिस्टलबोर्डके रेसिनस्टियेरिन आदिमें भिगाये हुये टुकड़े, इत्यादि सलाइयोंके बनानेमें काम आने लगे। यह दियासलाई अब काममें नहीं आतीं, परन्तु कभी कभी बिकती अवश्य हैं।

फ्यूजेज—यह असलमें चुरट जलानेके कामकी चीज़ हैं, जो बादामी कागज़ या पट्ठेके शोरेके घोलको पिये हुए टुकड़ोंसे बनायी जाती हैं। जलानेके लिए फास्फोरसका मिश्रण काम आता है। बाज़ारमें वेसूवियस, इटनास, फिक्स्ड स्टार,

* संयुक्त प्रान्तमें यह काम मेहतर और खटीक करते थे।

* चूरण बेचनेवाले चूरण पर क्लोरेटकी थोड़ी सी बुकनी बुरक देते हैं और उसपर गंधकाम्लकी दो एक बूंद डाल देते हैं। शकर चूरणमें रहती है। तीनोंके मिलनेसे एक लौ सी निकल आती है।

ब्रेडेड लैंट आदि अनेक नामोंसे बिकती है। परन्तु इनका जनतामें प्रचार कम हुआ।

लूसी फरमेच—फास्फोरसमय मुकुट धारण करनेवाली यह दियासलाई पहले पहल आस्ट्रियामें १८८० वि० में बनायी गयी थी। पीले फास्फोरस और पोटाश क्लोरेटका मिश्रण जो सिर पर रहता था, किसी भी खुरदरी सतह पर रगड़ खा कर जल उठता था। इनका बाज़ार आधी शताब्दी तक गरम रहा। यद्यपि इनकी बनावटमें कई संशोधन किये गये, परन्तु इनके प्रयोग करनेमें अनेक आपत्तियां थीं। एक तो यह ज़रासा दबाव पाने या रगड़ खानेसे जल उठती हैं, इस कारण चूहे आदि जानवर यदि इन्हें खींच ले जाते हैं तो सहसा गोदामों और मकानोंमें आग लग उठती है। दूसरे जो पीला फास्फोरस इनमें रहता है वह बहुत ही विषैला है। जो लोग इन दियासलाइयोंके कारखानोंमें काम करते थे, उनकी बुरी दशा होती थी, जबड़े और गाल गल जाते थे और अन्य कई रोग हो जाते थे। आजकल पीलेकी जगह लाल फास्फोरसका प्रयोग करनेसे बड़ी सुविधा हो गई है। कई देशोंमें, जैसे डेन्मार्क आदिमें तो इनका बनाना कानूनन बन्द कर दिया गया है।

सेफटी दियासलाई—इनके सिरेपर जो मसाला रहता है उसमें अंजन गंधिद (सुरमा), पटास (पोटाश क्लोरेट) रहता है और डिबिया पर जो काला मसाला रहता है उसमें रक्त फास्फोरसका अंश रहता है। यह सलाइयां सिवाय डिबियाके मसाले पर रगड़ खानेके अन्यत्र नहीं जलतीं। इसीलिए उन्हें सेफटी मेच नाम दिया गया है।

शब्दोंके चित्र

[ले० प्रो० आर. एन. घोष, एम. एस-सी.]

स्वर शब्द

यह बात तो सबको मालूम होगी कि शब्द निकालनेके लिए वस्तुका कम्पायमान होना जरूरी है। किसी धातुके कटोरेको बजाकर उसपर हाथ रखिये, तो यह तुरन्त मालूम हो जायगा कि कटोरा काँप रहा है। उस कटोरेके कम्पायमान होनेसे वायुमें शब्दकी लहरें पैदा होती हैं और आसपास चारों ओर फैल जाती हैं; इन्हींसे हम शब्द सुनते हैं। इन शब्द तरंगोंकी वैज्ञानिक प्रकृति, और कानका यन्त्र, जिससे हम सुनते हैं, इन सबके विषयोंमें अगले अंकमें लिखूंगा।

मुखमें शब्दोंकी उत्पत्ति भी एक कम्पायमान वस्तु (जो हमारे जीभके पीछे है) के कारण होती है। परन्तु केवल कम्पित होने से ही शब्द नहीं निकलता है। एक काफी चौड़ी वस्तु यदि कम्पायमान हो तो शब्द निकलता है। यदि कम्पायमान वस्तु पर्याप्त चौड़ी न हो तो उसके साथ "रेज़ोनेटर" होना चाहिये। रेज़ोनेटरसे शब्दका बल बढ़ता है। एक काष्ठ वा धातुके बक्सको रेज़ोनेटर कहते हैं, जैसे तानपूराका तुंबा; तबलेकी पेटी। रेज़ोनेटरकी आकृति भिन्न भिन्न प्रकारकी होती है। वाद्यन्त्रमें "रेज़ोनेटर" का होना और उत्तम होना आवश्यक है। वायलिनके रेज़ोनेटर बहुत उत्तम होते हैं।

हम जिस समय बोलते हैं उपरोक्त वस्तु कम्पायमान होती है और हमारे मुखका भीतरी स्थान रेज़ोनेटरका काम देता है। एक बात तो सबने देखी होगी कि वार्त्तालापके समय हर एक मुहूर्तमें मुखकी आकृति बदलती रहती है। कभी तो मुखको खोलते हैं, कभी बन्द रख कर बोलते हैं; दांत दबा रखते हैं; मुखको नाना प्रकार से बनाते हैं।

इस प्रकार भिन्न भिन्न आकृति बनाकर हम भिन्न भिन्न शब्द उच्चारण करते हैं।

चित्र २९

चित्र ३०

चित्र ३१—'आ' की तरङ्गावली

चित्र ३२—'इ' की तरङ्गावली
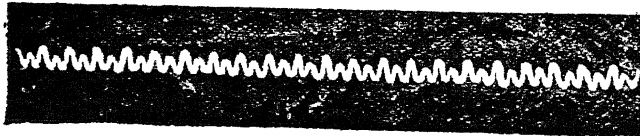
चित्र ३३—'उ' की तरङ्गावली

चित्र ३४—'ओ' की तरङ्गावली

वाद्य यन्त्रसे जो सुर निकलता है, वह जटिल सुर (complex) होता है। कई एक सरल सुर मिलके एक मीठी आवाज निकलती है। जब एक ही सुर मौजूद रहता है, आवाज मीठी नहीं होती। हमारे पास एक यन्त्र है जिससे हम शब्दकी फोटो ले सकते हैं। एकसरल (Simple) सुरका फोटो चित्र २९ में दिखाया गया है। आप देखेंगे कि यह जल तरङ्गोंके समान है। रेखा बहुत ही सरल है। चित्र ३० वायलिनके "जि" तारके शब्द की छबि है। इसमें आप देखते हैं कि रेखा कितनी छोटी हो कर बढ़ी है। इससे यह मालूम होता है कि आवाज घटती बढ़ती है। यह घटना बढ़ना सामयिक (periodic) है।

३१, ३२, ३३, ३४, छवियां जटिल सुरोंकी हैं। इनमें और १,२ छवियोंमें बहुत प्रभेद है। रेखाएँ सरल नहीं हैं। उनकी गतिमें प्रभेद है। इन सब तस्वीरोंसे हम बहुत कुछ सुरके बारेमें जान सकते हैं।

यह सब चित्र स्वरोंके हैं। स्वरोंमें आ, इ, उ, ओ, प्रधान हैं। यदि आ शब्द का कुछ देर तक उच्चारण करते रहें, तो जो लहरें वायुमें उत्पन्न होंगी उनकी आकृति चित्र ३१ कीसी होगी। इ, उ, ओ शब्दोंकी तरंगावलीकी छटा चित्र ३२, ३३, ३४, में दिखलाई है।

इन चित्रोंसे सब स्वरोंका प्रभेद मालूम होता है। इन सबोंकी भिन्नता मुखकी आकृति पर निर्भर है। ओष्ठको हिलाने डुलाने वा दांतको दबानेसे, और खोलनेसे रेज़ोनेटरकी आकृति (Shape) बदलती है, और उसीसे स्वरमें प्रभेद आजाता है। वाद्य यन्त्रोंके रेज़ोनेटरोंकी आकृति बदल नहीं सकती, इसी लिए उनसे सभी प्रकारके "स्वर" नहीं निकलते।

कहां है ?

[गताङ्कसे आगे]

[ले०—श्री० महावीरप्रसाद, बी.एस-सी., एल.टी., विशारद]

रब पच्छिम दूरी को दो प्रकार से प्रकट करते हैं—(१) अंशोंमें, (२) समयकी इकाइयोंमें। जो देशान्तर रेखा मध्यरेखा से १° पूरब है वहां सूर्य ४ मिनट पहले निकलता है, जो दो अंश पूरब है वहां ८ मिनट पहले और जो १५° पूरब है वहां ६० मिनट अथवा १ घंटा पहले। इसलिए ऐसे स्थानोंको भूमध्यरेखासे ४ मिनट पूर्व, ८ मिनट पूर्व या १ घंटा पूर्व क्रम से कह सकते हैं। पूर्व और पच्छिम शब्दोंका अर्थ भी यही है—यदि दो स्थान क और ख ऐसे हों कि क पर सूर्य पहले (पूर्व) निकलता हो और ख

चित्र ३५

पर कुछ पीछे (पश्चात) तो क, ख से पूर्व कहा जाता है और ख, कसे पच्छिम। इस तरह मध्य-रेखा के पूर्व आधी पृथ्वीको १८० अंशोंमें विभाजित किया है और मध्यरेखासे पच्छिम आधी पृथ्वीको १८० अंशोंमें। बस; अक्षांश और देशान्तर जानकर सारे भूतल परके किसी स्थानका पता लगाया जाता है। चित्र ३५ में एक गोल खींच कर निरक्षदेश, मध्यरेखा, अक्षांश, देशान्तर इत्यादिका उदाहरण दिया जाता है:—

यह चित्र पृथ्वीके आधे गोलेका है। निरक्ष रेखा उत्तर और दक्षिण ध्रुवोंके मध्यमें है। अक्षांश रेखाएं निरक्ष रेखा के समानान्तर होती हैं। ज्यों ज्यों उत्तर या दक्षिण जाइये त्यों त्यों अक्षांश रेखाएं छोटी होती जायंगी और सुमेरु या कुमेरु पर शून्यके समान हो जायंगी। अक्षांश रेखाओंको समकोण पर काटती हुई सुमेरु और कुमेरुको मिलानेवाली रेखाको देशान्तर रेखा कहते हैं। जो देशान्तर रेखा कुरुक्षेत्र उज्जैन होकर जाती है वह भारतवर्षकी मध्य रेखा और जो ग्रीनिचसे होकर जाती है वह आजकलकी मध्य रेखा मानी जाती है।

यह याद रखना चाहिये कि जैसे अक्षांश का ज्ञान ध्रुव तारेको देखकर किया जाता है उसी प्रकार देशान्तरका भी ज्ञान आकाशीय घटनाओं-से किया जाता है, जिसका वर्णन अलग लेखमें किया जायगा। इस समय यह भी बतला देना उचित जान पड़ता है कि आकाशीय पिंडोंका भी स्थान निर्देश उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार पृथ्वी परके स्थानोंका। हां, आकाशीय पिंडों का स्थान निर्देश तीन तरहसे किया जा सकता है, जिनमें से मुख्य दो हैं।

पृथ्वीकी भूमध्यरेखा या विषुवरेखाकी चर्चा की जा चुकी है। यह पृथ्वीके चारों ओर है। यदि इस वृत्तको अनन्त आकाशमें चारों ओर बढ़ाया जाय तो आकाशके जिन विन्दुओं पर पहुंचेगा उनके मिलानेवाला काल्पनिक मंडल विषुवन्मंडल या विषुव वृत्त या नाड़ी मण्डल कहलाता है। निरक्ष देश पर यह विषुवन्मंडल ठीक सिरके ऊपर पूरब पच्छिम विन्दुओंको मिलाता हुआ देख पड़ता है। उत्तरके स्थानोंसे यह मंडल सिरके ऊपर नहीं वरन् दक्षिण झुका हुआ रहता है। दक्षिणके स्थानोंसे सिरके ऊपर

से उत्तर हटा हुआ रहता है। आकाशीय पिंडों का पता बतलानेके लिए यह वृत्त बड़ा उपयोगी है। इस वृत्तसे ६०° पर उत्तर या दक्खिन दोनों आकाशीय ध्रुव हैं जो पृथ्वीके अक्षकी सीधमें है। उत्तर और दक्खिन ध्रुवोंको मिलाता हुआ और विषुवन्मण्डलसे समकोण बनाता हुआ जो मंडल उत्तर दक्खिन खींचा जाता है वह यदि निश्चय कर लिया जाय तो इन दोनों वृत्तोंके सहारे आकाशमें स्थित किसी पिंडका स्थान बतलाया जा सकता है। उत्तर दक्खिन ध्रुवोंसे जाते हुए विषुवन्मंडलको समकोण पर काटते हुए वृत्तोंको विषुवान्तर वृत्त कह सकते हैं। परन्तु इसका आरंभ स्थान क्या होना चाहिये यह जाननेके लिए एक और मंडलका हाल जानना आवश्यक है,

सूर्य आकाशमें पृथ्वीकी वार्षिक गतिके कारण ३६५ दिन ६ घंटेमें स्थूल रूपसे पृथ्वीकी एक परिक्रमा करता हुआ जान पड़ता है। सूर्यके इस मार्गको क्रान्ति वृत्त कहते हैं। विषुव वृत्त क्रान्ति
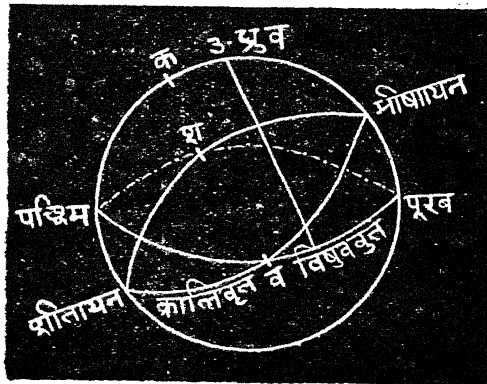
चित्र—३६

व—वसंत संपात; श—शरद सम्पात; क—क्रान्ति वृत्तीय ध्रुव वा कदम्ब।

वृत्तको विन्दुओं पर काटता हुआ जान पड़ता है। इन विन्दुओंको सम्पात कहते हैं। सूर्य इन विन्दुओं पर जब आता है तब दिन रात सारी दुनियामें समान होते हैं। जिस विन्दु पर आनेसे वसंतका आरंभ होता है उसको वसन्त सम्पात और दूसरेको शरद सम्पात कहते हैं। यहीं वसन्त सम्पात विषुवान्तरका आरंभ स्थान माना जाता है।

वसंत सम्पातके एक उदयकालसे दूसरे उदय-काल तकका समय २४ घंटेके समान होता है। इस लिए २४ घंटेमें पूरा विषुववृत्त एक बार परिक्रमा कर लेता है; परन्तु पूरा विषुववृत्त ३६०° के भी समान होता है; इसलिए एक घंटेमें १५° उदय होता है। इस प्रकार विषुवान्तर रेखाको दो प्रकारसे व्यक्त कर सकते हैं; कोण नापनेकी इकाई अंश, कला, विकलामें अथवा समय नापनेकी इकाई घंटा, मिनट, सेकंडमें वा घड़ी, पल, विपलमें। घड़ीको संस्कृतमें नाडी तथा विषुववृत्तको नाडीवृत्त कहते हैं। यदि यह कहा जाय कि मघा तारेका विषुवान्तर १० घंटा ४ मिनट १३ से० है तो इसका अर्थ यह हुआ कि यह तारा विषुवान्तर रेखा पर विषुव सम्पातसे इतनी दूरी पर है कि जिस समय विषुव सम्पात पूरबमें उदय होता है उस समयसे १० घंटा ४ मि० १३ सेकंड पीछे मघा का विषुवान्तर पूरबमें उदय होता है। इसलिए विषुवान्तरको कालान्तर भी कहते हैं। परन्तु इतना कहने से यह नहीं जाना जा सकता है कि मघा कहां है और विषुव वृत्तसे कितनी दूर उत्तर या दक्खिन है। यदि यह भी बतला दिया जाय तो स्थानका पता ठीक ठीक लग जाय। विषुववृत्तसे उत्तर या दक्खिन जितनी दूरी पर कोई तारा रहता है उस दूरीको उस तारेकी क्रान्ति कहते हैं। यह स्वयम् सिद्ध है कि विषुववृत्तसे ध्रुवकी दूरी ६० अंशोंमें बटी हुई है; इसलिए यदि किसी तारे की क्रान्ति मालूम हो तो उसको ६० मेंसे घटाने-पर उसी तारेकी ध्रुवसे दूरी जानी जा सकती है। तारेसे ध्रुव जितना दूर रहता है उसको उस तारे का ध्रुवान्तर कहते हैं।

इस प्रकार यह विदित हो गया कि किसी आकाशीय पिंड, ग्रह, तारा इत्यादिका स्थान जाननेके लिए केवल दो बातोंके जाननेकी आवश्यकता पड़ती है—विषुवान्तर और क्रान्ति अथवा ध्रुवान्तरकी। क्रान्तिके साथ साथ उत्तर दक्खिन का शब्द भी लगाना पड़ता है; परन्तु ध्रुवान्तरके साथ कोई विशेषण लगानेकी आवश्यकता नहीं। जब क्रान्ति उत्तर होगी तब ध्रुवान्तर ९०° से कम होगा और जब क्रान्ति दक्खिन होगी तब ध्रुवान्तर ९०° से अधिक और १८०°से कम होगा। विषुवान्तरकी गणना २४ घन्टे तक या ६० घड़ी तक बराबर चली जाती है। इसमें पूरब पच्छिम लगानेका झंझट नहीं करना पड़ता, जैसा भूतलके स्थानोंका देशान्तर बतलानेमें पड़ता है।

आकाशीय पिंडोंका स्थान निर्देश और प्रकार से भी होता है। जैसे विषुववृत्त एक बहुत ही उपयोगी वृत्त है, उसी प्रकार क्रान्तिवृत्त भी है। क्रान्ति वृत्तके आसपास चन्द्रमा, मंगल, बुध ग्रह उपग्रह चलते हैं, सूर्य चन्द्रमाके ग्रहण, अमावस्या, पूर्णमासी इत्यादिका सम्बन्ध इसी क्रान्तिवृत्तसे है। इसीलिए क्रान्ति वृत्तका ज्ञान तथा इसके अनुसार आकाशीय पिंडोंकी दूरीका ज्ञान भी बड़ा आवश्यक है। यह क्रान्तिवृत्त विषुववृत्तको दो स्थानों पर काटता है और इससे २३°२७ का कोण बनाता है। जैसे विषुववृत्तसे ९०° की दूरी पर उत्तरी ध्रुव है वैसे ही क्रान्तिवृत्तसे ९०° की दूरी पर क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव है, जिसको कदम्ब भी कहते हैं। चित्र ३६ में कदम्बके स्थानमें व लिखा हुआ है। उत्तर दक्षिण दोनों कदम्बोंको मिलनेवाली रेखा क्रान्तिवृत्तिको समकोण पर काटती है। विषुव सम्पातसे जो दूरी क्रान्तिवृत्ति पर नापी जाती है उसे भोग कहते हैं। यह दूरी अंश, कला विकलामें प्रकट की जाती है। वसन्त सम्पातका भोग शून्य है और यहां से १८०° भोगांश पर शरद विन्दु होता है और ३६०° भोगांशके बाद फिर वसंत विन्दु आजाता है। क्रान्तिवृत्त से उत्तर या दक्खिन कदम्बकी ओर जो दूरी होती है उसको शर कहते हैं। इस प्रकार किसी तारेका भोग और शर जानकर भी उसका स्थान निश्चय पूर्वक बतलाया जा सकता है। इस प्रकार स्थान निर्देश करनेमें एक विशेषता और है जो विषुवान्तर और क्रान्तिमें नहीं है। वसंत सम्पात एक जगह स्थिर नहीं है वरन् ५० विकला प्रतिवर्ष पच्छिमकी ओर खिसक रहा है; इसलिए जो ध्रुवान्तर या क्रान्ति आज है वह एक वर्षके पीछे वैसी ही नहीं रहेगी; अन्तर पड़ जायगा; परन्तु किसी तारेका शर सदा एक सा रहता है। हां, भोगांश बढ़ता जाता है; क्योंकि भोगांशकी गणना तो वसंत विन्दुसे होती है, जो पीछे खिसका जा रहा है। हमारे ज्योतिषमें वसंत सम्पातसे लाये जानेवाले भोगांशको सायन भोगांश कहते हैं निरयन भोगांश स्थिर है और उस विन्दुसे आरंभ माना जाता है, जहांसे चित्रा तारेकी दूरी १८०° भोगांश है। यह मत सूर्यसिद्धान्तका है। ब्रह्मगुप्त तथा इनके अनुयायी भास्कराचार्यने आरंभ विन्दु रेवती नामक तारेसे माना है, जो प्रायः क्रान्तिवृत्त पर है और इतना छोटा है कि कोरी आंखसे बहुत प्रयत्न करने पर दीखता है। इस हिसाबसे चित्रा तारेका भोगांश १८३° के लगभग होता है। पहले पक्षको चैत्र पक्ष और दूसरेको रैवत पक्ष कहते हैं।

हमारे प्राचीन ज्योतिषी क्रान्तिवृत्तको ३६०° भोगांशोंमें प्रकट करते हैं। साथ ही साथ इन्होंने सुभीतेके लिए १३⅓ भोगांशोंका एकएक नाम भी रख लिया है और इनकी पहचानके लिए उन तारोंको चुन लिया है जो क्रान्तिवृत्तके पास ही कुछ उत्तर दक्खिन हट कर हैं। इन्हींको नक्षत्र कहते हैं। चन्द्रमा १ नक्षत्र प्रायः १ दिनमें चलता है, इसीलिए यह विभाग भी किया गया है। इसी तरह तीस तीस भोगांशके १२ भाग भी हैं, जिनको राशि कहते हैं। जब चन्द्रमाका स्थान निर्देश निरयन वसन्त विन्दुसे किया जाता है तब नक्षत्रका प्रयोग होता है। और जब चन्द्रमाका स्थान निर्देश सूर्यके स्थानसे किया

जाता है तब सूर्यसे बारह बारह भोगांशोंके अन्तर को तिथि कहते हैं। तिथिसे यह ज्ञान होता है कि चन्द्रमा सूर्यसे कितने अन्तर पर है और नक्षत्र से यह ज्ञान होता है कि चन्द्रमा आदि विन्दुसे कितने अंतर पर है।
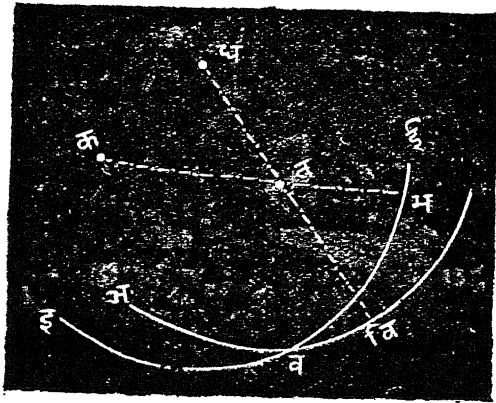
चित्र ३७

आजकलके कुछ लोगोंका कहना है कि पहले निरयन भोगांशका आरंभ विन्दु स्थिर नहीं था और उसी प्रकार गणना की जाती थी जिस प्रकार आजकल पाश्चात्य ज्योतिषमें की जाती है। यह लोग कहते हैं कि जिस समय हिन्दू ज्योतिषका अध्ययन और पठनपाठन उन्नति पर था उस समय अर्थात् छठी विक्रम शताब्दीमें वसन्त विन्दु वहीं था जहांसे आजकल निरयन भोगांशका आरम्भ स्थान माना जाता है। इसके पीछे भारतवर्षमें इतने परिवर्तन हुए कि उस समय जो जैसा था वह वैसा ही स्थिर मान लिया गया। इसके प्रमाण के लिए बहुत सी बातें ऐसी पेश की जाती हैं, जिनसे जान पड़ता है कि यह अनुमान ठीक है।

बस आज इतना ही बतलाना अलम होगा कि भूतल हो चाहे आकाश हो सब स्थानोंमें किसी स्थान विशेषका निर्देश दो समकोण पर काटती हुई रेखाओंके आधार पर होता है। इन रेखाओंसे किसी विन्दुकी जो दूरी होती हैं उनको जान लेनेमें विन्दुका पता सहज ही लग जाता है। त्रिकोणमिति, बीजगणित इत्यादिमें इसको भुज-युग्म कहते हैं, भूतलपरके स्थानोंको अक्षांश और देशान्तरसे सूचित करते हैं और आकाशके तारों, ग्रहों, सूर्य, चन्द्रमा इत्यादिको विषुवान्तर, क्रान्ति वा ध्रुवान्तर अथवा भोगान्तर और शरसे प्रकट करते हैं।

चित्रसे ३७ पारिभाषिक शब्द स्पष्ट हो जायंगे:—

अ आ—विषुवन्मण्डल, इ ई—क्रान्तिवृत्त, व—वसन्त सम्पात, ध—उत्तरीय ध्रुव, क—क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव वा कदम्ब, त—किसी तारे या ग्रहका स्थान।

धवि—'त' को विषुवान्तर वृत्त जो अआ को समकोण पर काटता है और 'त' से होकर जाता है।

कभ—'त' का भोगान्तर वृत्त जो इईको समकोण पर काटता है और त से होकर जाता है।

ववि=त का विषुवान्तर; तवि=त की क्रान्ति; वभ=त का भोगान्तर या भोगांश; तभ=त का शर

इंगलैंडका इतिहास

इंगलैंडके इतिहासका महत्व

संसारके प्रत्येक देशके इतिहाससे हमें कुछ शिक्षा मिल सकती है, कुछ लाभ हो सकता है, पर कतिपय कारणोंसे इंगलैंडका इतिहास हमारे लिए विशेष महत्व और लाभका है। एक तो इंगलैंडसे भारतवर्षका इतना घना सम्बन्ध है कि हमारे राजनीतिक जीवनपर अंग्रेजी शासनप्रथाका बेहद असर पड़ता है। दूसरे वर्तमान वैध शासनकी प्रणाली जो आज सर्वत्र दृष्टिगोचर है, पहिले इङ्गलैंडमें ही पैदा हुई थी। तीसरे इङ्गलैंडके इतिहासमें एक अनोखापन है

जो और कहीं नहीं मिलता। इङ्गलैंडके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक इतिहासके प्रवाहमें एक सिलसिला है, एक प्रकारकी ऐक्यता है, जो और किसी यूरोपके देश में नहीं पाई जाती। इङ्गलैंडके इतिहासमें ऐसे विप्लव नहीं हुये हैं, ऐसी उथल पुथल नहीं हुई है, कि घटनाओंका प्रवाह भी बदल गया हो। इस इतिहासमें घटनाओंका कार्य्य कारण सम्बन्ध स्थापित करना बहुत सरल और सुगम है। यही कारण है कि राजनीतिक और आर्थिक तथ्योंके शंसोधक इंगलिश इतिहासकी शरण लेते हैं। १९वीं सदीके समष्टि वादिओंके आचार्य्य विप्लव, वादी कार्ल मार्कसने इंगलिश इतिहासके आधार पर ही अपने सिद्धान्तकी पुष्टि की है। व्यञामिन-किड आदि विचारकोंने भी इसी क्रमका अनुसरण किया है।

पुस्तकावली

इंगलिश इतिहासपर यूरोपीय भाषाओंमें और विशेष कर अंग्रेज़ी भाषामें हज़ारों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। इंगलिश इतिहासके प्रधान व्यक्तियोंके बीसों छोटे बड़े जीवन चरित्र लिखे गये हैं। इतना साहित्य जमा होगया है कि इस विषय पर संक्षेपसे लिखना असम्भव सा मालूम होता है, तथापि हम यथा सम्भव संक्षेपसे यह कथा कहने का प्रयत्न करेंगे।

भूगोलका प्रभाव

इङ्गलैंडके इतिहासमें पहिली बात यह समझनी चाहिये कि ब्रिटेन अर्थात् इङ्गलैंड और स्काटलैंड मिलकर एक टापू है। उत्तरी समुद्र उसको जर्मनी और हालैंडसे, इङ्गलिश चेनल उसको फ्रांससे जुदा करता है। उसके चारों ओर अटलांटिक समुद्र मौजें मारता है। कई लाख वर्ष हुए इङ्गलैंड यूरोपके महाद्वीपसे मिला हुआ था, पर काल पाकर समुद्रकी लहरोंने उस डमरुमध्यको नष्ट कर दिया। यदि इङ्गलैंड यूरोप की भूमिसे मिला रहता, तो उसका सारा इतिहास बदल जाता। टापू होनेके कारण ही इङ्गलैंड यूरोपके बहुत से झंझटोंसे बचा रहा है। इसी कारण रोमन साम्राज्य उसे बिलकुल हज़्म न कर सका, इसी कारण इंगलैंडकी भाषा और कानून यूरोपीय प्रभावसे बहुत कुछ स्वतन्त्र रहे, इसी कारण इंगलैंड सबसे पहिले वैध शासन का विकास कर सका, इसी कारण इंगलैंड अपना महान् साम्राज्य बना सका।

इंगलैंडकी आबो हवा सर्द है। इतनी सर्द नहीं है जितनी की स्वीडन या नारवेकी, पर तोभी फ्रांस और स्पेनसे अधिक सर्द है। बिना परिश्रमके ज़मीनसे कुछ पैदा नहीं होता, इसलिए लोगोंको परिश्रमकी आदत बढ़ गई है। गरमीसे जो आलस्य कभी कभी शरीरमें आ जाता है वह सर्द मुल्कोंमें नहीं होता।

इङ्गलैंड पृथ्वीके आबाद देशोंके लगभग बीचमें है। यह भौगोलिक स्थिति इंगलिश उद्योग और व्यापारको फैलानेमें बहुत सहायक हुई है। इङ्गलैंडका समुद्रतट ग्रीसकी तरह दन्दानेदार है, खाड़ियों और बन्दरोंसे भरा हुआ है। यह भी व्यापारके लिए अत्यन्त सुविधाजनक है। इस देशमें लोहे और कोयलेकी बड़ी बड़ी खानें हैं। आजकल उद्योगकी वृद्धि इन्हीं दो पदार्थों पर निर्भर है, इनकी खानें सोने चांदीकी खानोंसे अधिक मूल्यवान हैं। अंग्रेज़ोंने अपने यश वैभव का पूरा पूरा उपयोग किया है।

हम ऊपर संकेत कर चुके हैं कि इङ्गलैंड और स्काटलैंड मिलकर एक टापू है। फ्रान्स इत्यादि यूरोपीय देशोंसे पृथक् होने पर भी इङ्गलैंडको स्काटलैंडसे बड़ा बखेड़ा करना पड़ा है एक हज़ार वर्ष तक दोनों देशोंमें बहुत सी लड़ाइयां हुईं, जिनका प्रभाव दोनोंके इतिहास और चरित्रमें, शासन पद्धति और उद्योग व्यापारमें आज भी दृष्टिगोचर है। इङ्गलैंड बड़ा देश है, स्काटलैंड छोटा देश है, पर स्काटलैंडके दुर्गम पर्वतों और घाटियोंने उसकी सहायता की। दूसरे स्काटलैंडने

इंगलैंडके शत्रु फ्रान्ससे मित्रता कर ली, जैसा कि हम आगे दिखलायेंगे। इस मित्रताका प्रभाव सारे यूरोप पर पड़ा। अन्तमें १८ वीं सदीमें जब दोनों देशोंने समानताके आधार पर समझौता कर लिया, तब दोनोंका ही बल बढ़ गया।

इङ्गलैंडके पश्चिममें समुद्रका जो भाग है उसे सेन्ट जार्जकी "चेनल" कहते हैं। उसके पश्चिममें आयरलैंडका टापू है। इङ्गलैंड और आयरलैंडमें कुछ मीलोंका ही अन्तर है। समुद्रके द्वारा पृथक् होने पर भी दोनों देश एक दूसरेसे निकट सम्पर्क रखते हैं। इङ्गलैंडने १२वीं सदीसे ही आयरलैंडको वशमें रखनेका उद्योग किया। १६वीं सदीमें इङ्गलैंडको भय हुआ कि कहीं कोई अन्य यूरोपीय जाति आयरलैंडमें आकर मेरे विरुद्ध षडयंत्र रचेगी। इसलिए उसने आयरलैंडको अपने वशमें रखनेका इरादा किया। आयरलैंडने विरोध किया, परिणाम यह हुआ कि दोनों देशोंमें चिरस्थायी शत्रुता हो गई।

इङ्गलैंडके पश्चिम प्रदेशोंको वेल्स कहते हैं। बहुत दिन तक यह स्वतन्त्र देश था, पर अब कोई ६०० वर्षसे वास्तवमें इगलैंडका एक प्रान्त है। इसमें स्काटलैंडकी तरह पर्वत माला और घाटियां नहीं हैं। क्षेत्रफल और आबादीमें भी यह स्काटलैंडसे कम है। इसलिए यह जल्द ही इङ्गलैंडके हाथमें आ गया।

नकशा देखनेसे मालूम होगा कि इङ्गलैंडके दक्षिणी और पूर्वीभाग यूरोपके निकटतर हैं। अस्तु यही प्रदेश यूरोपसे अधिक व्यापार और व्यवहार रखते आये हैं, और अन्य प्रदेशोंकी अपेक्षा अधिक धन धान्यशाली, अधिक सभ्य, अधिक विद्या सम्पन्न थे। तथापि यूरोपसे बहुत कुछ पृथक् होनेके कारण इगलैंडमें एक प्रकारकी बुरी मानसिक संकीर्णता सदा वर्तमान रही है। नकशा देखनेसे यह भी मालूम होगा कि इङ्गलैंड पर समुद्रके रास्ते पूर्व या दक्षिणसे गहरे हमले हो सकते हैं, इतिहास कई हमलोंका वर्णन करता है, जिन्होंने इङ्गलैंडके सारे इतिहासको अनेक बार बदल दिया। इन बातोंसे यह अच्छी तरह समझमें आ जायगा कि इङ्गलैंड पर अन्य देशोंकी अपेक्षा भूगोलका प्रभाव कैसे अधिक पड़ा है। (क्रमशः)

—बेनीप्रसाद, एम. ए.

क्या पर्वत तैरते हैं ?

हां! पर्वत तैरते हैं और समुद्र डूब जाता है। यही ईश्वरीय नियम है। आकाश समुद्रमें सबसे भारी पृथ्वी निरवलम्ब तैर रही है। फिर किसी भी द्रव तलपर पर्वतोंका उतराना क्या विस्मय जनक है? पृथ्वीके ऊपरी पृष्ठ या छिलकेके नीचे द्रव भाग है, उसपर पर्वत तैर रहे हैं। वाशिंगटनसे प्रकाशित होनेवाले "सायन्स न्यूज़ बुलेटिन" में इस बातको बहुत स्पष्टतासे सिद्ध किया है। डा० विलियम बोवी और प्रो० जान एफ. हेफर्डके निरीक्षणमें अमेरिकाके तट एवं जलस्थल भाग नापा गया। यह ज्ञात हुआ कि पृथ्वीके ऊपरकी तह ६० मील मोटी है। बहुत दबाव पड़ने पर नीचेका पार्थिव भाग द्रवरूपमें बहने लगता है। उसी द्रवीभूत पदार्थ पर सारा ही भूतल तैर रहा है। यदि सारे भूमण्डलके छिलके १०० वर्गमील क्षेत्रफलके ६० मील गहराई तक काट काट कर अलग कर दिये जांय तो भारमें सभी बराबर होंगे। लेखक महाशयका कथन है कि तट भूमिके निरीक्षणसे जाना गया है कि इन खण्डोंका भार लगभग समान ही होगा।

इस आविष्कारसे भूविज्ञानके अन्दर बड़ा भारी परिवर्तन आ जायगा; क्योंकि अब सिद्ध हुआ है कि पर्वतोंके नीचेके पृथ्वीके छिलकेका द्रव्य हलका है। समुद्रके तलके नीचेके छिलकेका द्रव्य अधिक घना और अधिक भारी है।

डा० बोवीका कहना है कि पर्वत पृथ्वीके छिलकेको तोड़कर अन्दर धंस नहीं सकते; क्योंकि उनमें

कोई विशेष भार नहीं है। उनकी स्थिति अन्तस्थ द्रव द्रव्यमें उसी प्रकार है जैसी उत्तरीय ध्रुवीय सागरोंमें तैरते हिमगिरियोंकी होती है। ऊपर निकले हिम शृंगोंका भार निचले हिम पर ही होता है। जैसे वह हिमगिरि (Ice bergs) तैरते हैं वैसे यह भी पर्वत तैरते हैं।

डा० बोवीका सिद्धान्त है कि जिन स्थानों पर अब पर्वत मालाएं हैं वह भूभाग किसी समयमें बहुत नीचे थे।

पृथ्वीके छिलकेका अन्दरका भाग हलका होनेसे फूला और ऊपरको उभर आया। इसीसे पर्वतोंकी उत्पत्ति हो गयी। ६० मील गहरा या ऊंचा छिलकेका खण्ड ३ प्रतिशत घनता घट जानेसे भी ६००० फ़ीट ऊपर उभर आता है।

पर्वत, चट्टान, घाटी और समुद्रके सभी क्षेत्रोंमें एक प्रकारका समभाव (equilibrium) रहता है। इसलिए जिस स्थान पर कुछ अधिक द्रव्य अटका रहता है जल और वायु द्वारा वहांसे आकर स्थानान्तर पर चला जाता है।

डा० बोवीका कथन है कि इधरसे पर्वतके ऊपरके पृष्ठोंसे कुछ द्रव्य जल द्वारा बह जाता है तो दूसरी तरफ नीचेसे और भी द्रव्य लग जाता है। इससे पर्वतकी साधारणतः ऊंचाईमें कोई भेद नहीं आता। परन्तु जब अन्तस्थ आधार पर कुछ द्रव्य और अधिक आलगा तो शीत कटिबन्धोंमें पर्वतका प्रत्येक भाग ऊपर को ही उठता जाता है। और जिस स्थानपर पृथ्वी तलपर भारी द्रव्य जा पड़ता है वह स्थान नीचे धंस जाता है। उष्ण कटिबन्धोंमें ऐसा ही होता है। इस प्रकारसे कोई भूद्रव्य भाग ६ मील तक ऊपर उठ और नीचे बैठ सकता है। भिन्न भिन्न स्थानोंका ताप परिमाण भू भागके ऊंचा होनेमें कारण हो जाता है। और जिस स्थान पर जल धारा द्वारा क्षय क्रिया (Erosion) अधिक हो जाती है वह स्थान भी गहरे हो जाते हैं।

—जयदेव शर्मा

एक विचित्र और आश्चर्यजनक घटना

आज मैं विज्ञानके पाठकोंको एक विचित्र और आश्चर्यजनक घटनाका हाल सुनाता हूं और आशा करता हूं कि कोई महानुभाव इसकी मीमांसा करनेका कष्ट उठावेंगे।

जिन्होंने राजपूतानाके कुएँ देखे हैं, वह जानते होंगे कि यहाँके प्रत्येक कुएं पर ऊंचे ऊंचे चार या दो गुम्बज होते हैं और उन्हींके अनुसार चारों या दोनों तरफ एक एक लकड़ीका वज़नदार चक्र (पहिया) होता है; जिनपर रस्सी डालकर पानी निकालते हैं। इनको "भूण" कहते हैं। हमारे घरके पास एक ऐसा ही कुआँ है, जिसकी गहराई करीब ६०, ७० हाथ है। उसके दो गुम्बद और दो भूण हैं, मैं प्रायः सुना करता था कि रातके समय इस कुएँका एक भूण अपने आप फिरने लगता है। इस विषय में—जितने लोग हैं, उतनी ही बातें हैं। परन्तु इतने दिनों तक मेरा इसपर विश्वास नहीं था।

एक दिन अचानक मुझे अपनी माताकी बीमारीके कारण औषध लानेके लिए औषधालय जाना पड़ा। उस समय रात्रिके साढ़े बारह बजे थे। चन्द्रमाकी शुभ्र चाँदनीमें हरएक वस्तु स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। हमारे घरसे कुआँ कोई एक फर्लाङ्गकी दूरी पर है। घरसे निकलते ही भूणकी आवाज सुनी; सोचा कि कोई पानी निकाल रहा है; मगर चित्तकी उद्विग्नताके कारण इसपर कुछ ध्यान न देकर शीघ्रता पूर्वक चला। मगर जब मैं कुँएके समीप पहुँचा तो यह देख कर मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि वहाँ पर किसी मनुष्यका नामो निशान तक नहीं है, पर भूण बड़ो तेजीके साथ चक्कर लगा रहा है। तिसपर विशेषता यह थी कि भूण इतने जोरसे घूम रहा था कि कोई अच्छा सा पहलवान भी उसको शायद ही

इतने जोरसे घुमा सके। उसी समय मुझे एकाएक मोहल्लेवालोंकी बातोंका ध्यान आया और मैंने समझा कि इतने दिनों तक जिसको असत्य समझता रहा हूँ, वह बात वास्तवमें सत्य है।

मैंने मनोविज्ञान (Psycholoy) का कुछ अध्ययन किया है, और बड़ी रुचिके साथ इस विषय के पत्र और पुस्तकें देखा करता हूं। उसी वक्त मेरे मनमें यह बात आई कि सम्भव है इस विषय को सोचते रहनेके कारण मेरी मनोवृत्तियां ही ऐसी होगई हों, इसलिए मैंने विशेष ध्यान पूर्वक उसे देखा। कईबार आँखें बन्द कीं और खोलीं। हाथको जोरसे आँखोंपर रगड़ा। मतलब यह कि अपने शरीरको सब प्रकारसे सावधान करने की चेष्टा की। परन्तु यह सब व्यर्थ था, भूण उसी प्रकार उतनी ही तेज़ीसे चक्कर लगा रहा था। उस जनशून्य, नीरव, निस्तब्ध रात्रिमें, स्वच्छ चाँदनीमें, एक विषम सन्देह युक्त स्थानमें, अत्यन्त विचित्रता और भयानकता लिये हुये दृश्यके पास मैं करीब दस मिनट तक खड़ा रहा। इतने समयमें मैंने अपने विचारोंको इकट्ठा करके सब तरहसे इसकी मीमांसा करनेका प्रयत्न किया फिर कैसे कहा जा सकता है कि मनोवृत्तियोंके कारण ही ऐसा दिखाई दिया। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित कारण मैं पेश करता हूं जो विचारणीय हैं—

१—जिस समय मैं घरसे चला था, उस वक्त मुझे इसका ध्यान भी नहीं था, परन्तु उस समय भी भूणके चलनेकी आवाज सुनाई दी थी।

२—जिस वक्त कुएके पास पहुंचा और भूणको चक्कर लगाते देखा उसी समय मुझे चित्तकी वृत्तियोंका ध्यान हुआ था और मैंने उनके निग्रहका प्रयत्न भी किया था।

३—कुआ ठीक रास्ते पर है। और जहां पर मैं खड़ा था, वहाँ से उसका फ़ासला पाँच कदम से ज़्यादा नहीं है।

४—चाँदनी इतनी शुभ्र थी कि उसमें किसी प्रकारसे आँखोंको भ्रम होनेकी सम्भावना न थी।

५—भूण इतना भारी है कि किसी प्रकारकी हवा के ज़ोरसे उसका इतनी तेज़ीसे चक्कर लगाना एक प्रकारसे असम्भव है।

६—दूसरे दिन सवेरे ही वहाँ जाकर मैंने अपनी सब ताकत उस भूणको उतनी ही तेजीसे घुमानेमें लगाई पर असफल हुआ।

इन सब बातोंको सामने रखकर मैं "विज्ञान" के विज्ञान वेत्ता पाठकोंका ध्यान आकृष्ट करता हूं, क्या वह इस विषय पर अपनी सम्मति लिखनेका कष्ट उठावेंगे।

—वैद्य रामजीवन त्रिपाठी।

समालोचना

विज्ञापन विज्ञान—लेखक और प्रकाशक श्री० कन्हैयालाल शर्मा, बी. ए., १४७ हैरीसन रोड, कलकत्ता। मूल्य १॥)

इस पुस्तकमें डबल क्रौन सोलह पेजी ८८ पृष्ठ हैं। जिल्द मज़बूत और खद्दर की बनी हुई है। आजकल मनुष्यकी आवश्यकताएं बढ़ रही हैं। इनकी पूर्त्तिके लिए अनेक कारखाने, कारीगर और व्यवसायी दिन रात प्रयत्न कर रहे हैं और उनमें प्रतिद्वंदिता बढ़ती जा रही है। इसी प्रतिद्वंदिताका परिणाम रूप विज्ञापन कलाका जन्म है। जो न केवल अच्छा माल तैयार करेगा प्रत्युत औरोंको उसके गुण भली भाँति समझाकर यह बात दिलमें बिठला देगा कि उसके मालसे अधिक अच्छा बाजार में नहीं है, उसीकी बिक्री अधिक होगी। अन्तिम दोनों बातें किस प्रकार की जाती हैं, यह बतलाना ही विज्ञापन-विज्ञान अथवा विज्ञापन शास्त्रका उद्देश्य है। विज्ञापन विज्ञान उन सिद्धान्तोंकी गवेषणा करता है, जिनके अनुसार काम करने से औरों पर प्रभाव पड़ सकता है और उनको माल लेनेके लिए उद्यत कराया जाता है। अतएव इस विज्ञानका मनोविज्ञानसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनुष्योंकी प्रकृति

पहचानना और उनकी स्वाभाविक इच्छाओं, मानसिक निर्बलताओं और धारणाओंसे लाभ उठाना किस प्रकार सम्भव है, यह विषय भी विज्ञापन विज्ञान द्वारा ही प्रतिपादित है।

इन सब बातों पर समालोच्य पुस्तकमें बड़ी योग्यतासे विचार किया गया है। विज्ञापन किस प्रकारके होने चाहियें, विज्ञापन कैसे और किस प्रकार छपाने चाहियें, आदि विज्ञापन सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य और उपयोगी बातें इस पुस्तकमें दी हैं।

अपने विषयकी हिन्दी साहित्य संसारमें यह पहली पुस्तक है, और बड़ी योग्यतासे लिखी भी गई है; हमें आशा है कि विज्ञापनदाता इसे अवश्य पढ़ेंगे और लाभ उठायेंगे।

मराठे और अंगरेज—अनुवादक श्री० सूरजमल जैन। प्रकाशक राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर जबलपुर। आकार डबल क्रौन सोलह पेजी, पृष्ठ संख्या ५७०। मूल्य ३)

यह पुस्तक श्री० नरसिंह चिन्तामणि केलकर, बी. ए., एल-एल. बी. के 'मराठे व इंग्रेज' नामक मराठी पुस्तकका अनुवाद है। अनुवाद बहुत अच्छा हुआ है। ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर ने इस ग्रन्थको निकाल कर बड़ा उपकार किया है। पुस्तकके दाम भी ज्यादा नहीं हैं। प्रकाशकने यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि पुस्तकके दाम कम रखे गये हैं और छपाईका हिसाब भी दिया है। उस हिसाबमें एक रकम १०१५॥)॥ की कुछ खटकती है। एक पुस्तकके छपानेमें कर्मचारियोंके वेतनमें इतना अधिक खर्च होना आश्चर्य जनक है।

औद्योगिकी—संग्रहकर्ता पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी। प्रकाशक राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर जबलपुर। सैज डबल क्रौन सोलह पेजी। पृष्ठ संख्या ११३। मूल्य ॥)।

इस पुस्तकमें कुछ लेख तो पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीके हैं और कुछ कानपुर निवासी बाबू शिवनारायण जी के। लेख प्रायः अच्छे हैं; परन्तु यह नहीं जान पड़ता कि यह संग्रह किस उद्देश्य से किया गया है। क्या पुस्तक भर देने भरका उद्देश्य था? द्विवेदीजी ने "कृषि विद्या में अद्भुत आविष्कार" शीर्षक लेखमें पृष्ठ १०४ पर अजीब धांधली मचाई है; पौधे, दाने और जीवाणुओंके काम स्पष्ट न लिखकर जीवाणु शास्त्रकी हत्या की है। इन लेखोंके संग्रहके लिए २८७॥) पुरस्कार देना उचित न था। द्विवेदीजी से कोई नई पुस्तक लिखा ली जाती तो अच्छा होता।

गैरीबालडी—ले० श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति। सम्पादक पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार। प्रकाशक साहित्य परिषद् गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी। सैज डबलक्रौन सोलह पेजी; पृष्ठ संख्या १८२। मूल्य १)

गैरीबालडीका नाम किसने न सुना होगा? उसी वीर प्रवर, देशभक्त, स्वाधीनताके उपासक का जीवन चरित्र बड़ी सुन्दर मनोहारिणी भाषामें लेखकने लिखा है। इस पवित्र निःस्वार्थ परोपकारमय जीवन वृत्तान्तको पढ़कर प्रत्येक मनुष्यको अपना मन शुद्ध और उत्साह पूर्ण कर लेना चाहिये।

कादम्बरी—अनुवादक श्री० ऋषीश्वरनाथ भट्ट, बी० ए०, एल-एल० बी०; प्रकाशक गांधी हिन्दी पुस्तक भंडार कालवा देवी, बम्बई, मूल्य सादी जिल्दका २॥) कपड़ेकी जिल्दका ३।)

अनुवाद बहुत अच्छा हुआ है। संस्कृतका एक अपूर्व ग्रन्थ हिन्दी जानने वालोंको सुलभ्य हो गया है।

सत्याग्रह और असहयोग—ले० आयुर्वेदाचार्य श्री० पं० चतुरसेन जी शास्त्री; प्रकाशक गांधी हिन्दी पुस्तक भंडार, कालवा देवी बम्बई। आकार डबल क्रौन सोलह पेजी; पृष्ठ संख्या २६३। मूल्य सादी जिल्दका १॥); पक्की जिल्दका २)

इस पुस्तकमें दो खंड हैं। पहलेमें सत्याग्रहका स्वरूप, उसके भेद, उससे कब काम लेना चाहिये और कब बन्द कर देना चाहिये; व्यक्तिगत, सामाजिक, धार्मिक और राष्ट्रीय सत्याग्रह तथा देशकी परिस्थिति, पर बड़ी योग्यतापूर्वक विचार किया गया है। दूसरे खण्डमें देशकी सच्ची दशाका दिग्दर्शन कराया है और बतलाया है कि हम किस भांति बेबस

पशुओंकी नाईं विनाशकी ओर आंख बन्द किये चले आ रहे हैं। भ्रम वश बाहरी चकाचौंध रूपी रेतमें भारत रूपी शुतुर्मुर्ग अपना सिर दबाकर समझ बैठा है कि मेरे पीछे शिकारी अब नहीं दौड़ रहा। पहले खण्डको पढ़ कर सत्याग्रहका सच्चा ज्ञान हो सकता है और दूसरेको पढ़ कर देशका सच्चा हाल मालूम हो जायगा। यह दोनों खण्ड पत्थर तकको पिघलानेकी शक्ति रखते हैं। दूसरे खण्डमें गिरी हुई दशाको सुधारने और बिगड़ी हुई बातको बनानेका एक मात्र उपाय बतलाया है और उसकी सफलता और असफलता पर विचार किया है। प्रत्येक देशके प्रेमके दम भरनेवालेको यह पुस्तक पढ़नी चाहिये।

महात्मा गांधी—ले० श्री० रामचन्द्र वर्मा; प्रकाशक गांधी हिन्दी पुस्तक भंडार कालबा देवी बम्बई। सैज डबल क्रौन सोलह पेजी; पृष्ठ संख्या ७७२, मूल्य ४॥)।

इस पुस्तकके भी दो खण्ड हैं। पहलेमें महात्मा जीका जीवन चरित्र और दूसरेमें व्याख्यान तथा लेखोंका संग्रह दिया है। पुस्तक परमोपयोगी और समयानुकूल है। भारतके सच्चे सपूत, संसारके अमूल्य रत्न महात्मा गान्धीके जीवन चरित्रको पढ़ कर और उनके उपदेशों पर मनन करके कोई भी अपने मन और बुद्धिको शुद्ध कर सकता है। पुस्तककी भाषा और रचना शैली बहुत अच्छी है। छपाईकी सफाई और जिल्दकी बँधाई भी प्रशंसनीय हैं।

गृहदेवी—ले० श्री० सूरजभान वकील; प्रकाशक महावीर ग्रन्थ कार्यालय आगरा। सैज़ सोलहपेजी डबलक्रौन पृष्ठ संख्या ८७ मूल्य ।=)।

यह पुस्तक बड़ी सरल भाषामें लिखी गयी गयी है। स्त्रियोंकी दशा का सच्चा वर्णन करके और उसके सुधारनेका उपाय बतलाकर लेखकने लड़कियों और स्त्रियोंके लिए एक सुपाठ्य पुस्तक रचनेमें सफलता प्राप्तकी है। इन वयोवृद्ध महोदय के अनुभवों और उपदेशोंसे सबको लाभ उठाना चाहिये।

योगदर्शन तथा योग विंशिका—संपादक प्रज्ञाचक्षु विद्वद्वर्य श्रीमान् सुखलाल जी। प्रकाशक श्री आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचारक मंडल रोशन मोहल्ला, आगरा। सैज डबल क्रौन सोलह पेजी मूल्य १॥)।

इस पुस्तकके आरम्भमें ६७ पृष्ठकी प्रस्तावना दी है, जिसमें योग और दर्शनका अर्थ, ज्ञान और योगका सम्बन्ध, योग और उसके साहित्यका विकास आदि विषयों पर योग्यतासे विचार किया गया है। इसके बाद पातञ्जलि योग दर्शन वृत्ति सहित और सटीक योग विंशिका दी है। अन्तमें हिन्दी भाषामें दोनोंका सार दिया है।

पुस्तक योगशास्त्रके प्रेमियोंके बड़े कामकी है।

परिषद्का हिसाब

आय

सभ्योंका चन्दा	१२)
प्रयागनरायन चटर्जीसे	१५)
मैनेजर हिन्दी साहित्य प्रेससे	६४॥=)
पुस्तकोंकी बिक्री	१५३॥=)।
	२४५।=)।
३० अप्रेलकी रोकड़ बाकी ...	३५॥=)।२
	२८१)॥२

व्यय

किराया दफ़तर	४॥)
क्लर्ककी तंखाह	२०)
गंगा पुस्तकमाला लखनऊ (पुस्तक)	५४॥)॥।
साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग (पुस्तक)	५७॥=)॥
छपाई नोटिस	४॥)
फुटकरिक	६॥=)
	१४८।=)।
रोकड़ बाकी	१३२॥=)।२
	२८१)॥२

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १५ | मिथुन, संवत् १९७९ । जून, सन् १९२२ | संख्या ३

दियासलाई बनानेके मसाले

[ले०—डा० चुन्नीलाल बोस, एम. बी.]

दियासलाई बनानेमें दो प्रकारके पदार्थ काम आते हैं। इनमेंसे एक तो जलता है और दूसरा जलाता है या जलनेमें सहायता देता है। पहलेको दहन शील अथवा दाह्य पदार्थ कहते हैं, और दूसरेको दाहक अथवा दहन-समर्थक। समझनेके लिए जलती हुई मोमबत्तीका उदाहरण लीजिये। मोम, जिसमें उज्जन और कर्बन रहते हैं, दाह्य अथवा दहनशील पदार्थ है। वायुकी ओषजन दाहक पदार्थ है। यदि ओषजन वायुमें न रहे तो बत्तीका जलना असम्भव हो जाय। बत्ती पर कांच-का गिलास औंधाकर यह देख सकते हैं। जहां कहीं दहन क्रिया होगी दाह्य और दाहक मौजूद होने चाहिएँ। दियासलाइयोंके मसालेमें यह दोनों चीज़ें ही रहती हैं।

भिन्न भिन्न प्रकारकी दियासलाइयोंमें काम आनेवाले मुख्य मसाले यह हैं:—(१) लाल या पीला फास्फोरस; (२) पोटाश क्लोरेट; (३) अंजन गंधिद या मामूली सुरमा। इनके अतिरिक्त मंगनीज़ द्विओषिद (मंगनीज़), शोरा, सिन्दूर, बाइक्रोमेट ओव पोटाश, सीसेका थायोसल्फेट आदि भी उपरोक्त तीनोंके साथ अथवा उनके स्थान पर काम आते हैं। ग्लू मसालेके बांधनेके काममें आता है; कांचकी बुकनी अथवा रेत घिसनेके काम आती है। हम यहां पर फास्फोरस, क्लोरेट ओव पोटाश और सुरमे पर ही विचार करते हैं।

फास्फोरस

यह एक मौलिक है, जो प्रकृतिमें स्वतंत्रावस्थामें नहीं पाया जाता। फास्फोरस दो रूप

में बनाया जाता है, पीला और लाल। रासायनिक दृष्टिसे दोनों एक ही पदार्थ हैं; परन्तु उनके गुणोंमें बड़ा अन्तर है। पीला फास्फोरस पहले पहल हेम्बर्ग निवासी ब्राण्डने बनाया था। प्रकृतिमें केलसियम और ओषजनके साथ मिला हुआ हड्डी आदि पदार्थोंमें पाया जाता है। प्राचीन कालके पशुओंके अस्थिपिंजरोंके ढेरके ढेर खानोंमें पाये जाते हैं। इसके आविष्कारके १०० वर्ष पीछे तक किसीको भी यह न सूझा कि इसे किस काममें लायें। यह केवल एक अनोखी रासायनिक वस्तु समझी जाती थी।

पीला फास्फोरस अस्थि-भस्मसे बनाया जाता है। हड्डियोंको दमघोट तपानेसे एक प्रकारका तेल निकलता है और देग में राख बच रहती है। यही राख अस्थि-भस्म होती है। यह प्रायः निरा केलसियम फोस्फेत होता है। इसको तीव्र गंधकाम्लमें गलानेसे फास्फोरिक अम्ल बन जाता है। इसी अम्लमें कोयलेकी बुकनी मिलाते हैं और लोहेके वक्र यंत्रोंमें इतना तपाते हैं कि कुछ कुछ लाल हो जाता है। तदनन्तर मट्टीके बकयंत्रोंमें तपा कर लाल सुर्ख कर देते हैं। इसी तापक्रमपर फास्फोरसकी वाष्प निकलती है। इन्हींको पानीमें ठंडा कर जमा लेते हैं; बादमें गला कर, छान कर और दवा मिला कर शुद्ध कर लेते हैं और पतली पतली छड़के रूपमें ढाल लेते हैं।

आजकल इस सब बखेड़ेसे बचनेके लिए अस्थि-भस्मको कोयलेके साथ मिला कर विद्युत् भट्टेमें गरम करते हैं। फास्फोरस तो अलग वाष्प रूपमें निकल आता है और केलसियम् कर्बिद बच रहता है।

लाल फास्फोरस श्रोडर (Schroder) महोदय ने १८०२ वि० में बनाया था। पीले फास्फोरसको २४०° श तक कर्बन द्विओषिद अथवा नत्रजनसे भरे बर्तनमें तपाते हैं। इन गैसोंकी फास्फोरस पर कुछ क्रिया नहीं होती।

पीले फास्फोरसको अयोडीनके साथ २६०° श तक गरम करनेसे भी लाल फास्फोरस बन जाता है।

पीले फास्फोरसको पानीमें डुबो कर रखते हैं, क्योंकि हवामें रखे रहने पर उसमें आग लग जाती है। लाल फास्फोरसमें आग नहीं लगती।

पीला फास्फोरस मुलायम, मोमवत, रवेदार लहसुनकी सी गंधवाला होता है। अंधेरेमें प्रकाश निकलता है, उसमेंसे सफेद धुआं सी निकलती है, हवामें रखने पर जल उठता है। उसका घनत्व १.८३ है, कर्बन द्विगंधिद (Carbon bisulphide) में घुल जाता है और बड़ा विषैला होता है।

लाल फास्फोरस बेरवा होता है, उसमें गन्ध नहीं आती। प्रकाश नहीं निकलता; धुआं नहीं देता। बिना २६०° श तक गरम किये जलता नहीं। उसका घनत्व २.१४ है। कर्बन द्विगंधिदमें नहीं घुलता और विषैला नहीं होता।

पीला फास्फोरस ओषजन, हरिन, ब्रोमीन, अयोडीन आदि पदार्थों से साधारण तापक्रमों पर भी बड़े वेगसे मिल जाता है; और इस क्रियामें प्रकाश और ताप पैदा होता है। मानलो कि हरिनसे भरी एक बोतलमें फास्फोरसका एक टुकड़ा डालदें, फौरन ही वह भकसे जल उठेगा। यही हाल अन्य पदार्थों का भी है।

फास्फोरस पानीमें नहीं घुलता। हवामें आग लेजानेके कारण यह पानीमें डुबोकर रखा जाता है। पानीमें डूबे हुए ही फास्फोरसको चाकूसे सावधानीसे काटना चाहिये। कभी सूखी उंगलियोंसे उसे न छूना चाहिये। जब काम पड़े तो चिमटेसे या भीगी हुई उंगलीसे पकड़ना चाहिये, पर उंगलीको बार बार ठंडे पानीमें डुबोते रहना चाहिये।

कर्बन द्विगंधिदमें फास्फोरसका घोल वर्णहीन होता है। जब इस घोलमें हवा लगती है तो द्रव उड़ जाता है और अत्यन्त बारीक फास्फोरसका चूर्ण बच रहता है, जो तत्क्षण जल उठता है। यदि

किसी कागजके टुकड़े पर फास्फोरसके घोलकी बूंद डालदें तो थोड़ी देरमें वह जल उठेगा। इसी प्रकार एक लत्तेमें भी आग लगा सकते हैं। इस घोलको यूनानी-अग्नि (Greekfire) कहते हैं। फास्फोरस तेलमें घुल जाता है। इस तेलको जिस चीज़पर चुपड़ दें, वह चीज़ भी अँधेरेमें चमकने लगेगी।

पीले फास्फोरसको कास्टिक सोडाके साथ औटावें तो एक गैस बनती है जो हवासे मिलते ही जल उठती है। इस गैसका प्रत्येक बुदबुदा हवामें आते ही जल उठता है और धुआंका एक छल्लासा पैदा हो जाता है, जो नाचता हुआ ऊपर उठता जाता है और फैलता जाता है।

पीला फास्फोरस जिन कारखानोंमें काम आता था उनमें काम करनेवालोंको अनेक रोग हो जाते थे। जबसे लाल फास्फोरस काम आने लगा है यह रोग भी गायब होगये हैं।

पोटाश क्लोरेट

यह पोटासियम, क्लोरीन और ओषजनका यौगिक है।

पोटासियम एक सफेद मोमके सदृश मुलायम धातु है, जो ओषजनके साथ बड़ी तीव्रतासे मिल जाती है। ओषजनको यह यौगिकोंमें से भी निकालकर अपने साथ मिला लेता है। पानी, धातुओंके ओषिद आदि पदार्थोंको छिन्न भिन्नकर उनके ओषजनके साथ मिल जाता है। इसी लिए यह पानी या हवामें नहीं रखा जाता, किन्तु ओषजन विहीन मट्टीके तेलमें डुबोकर रखा जाता है। यद्यपि यह एक धातु है, परन्तु साधारण दृष्टिसे बड़ी निकम्मी है। न इससे थाल बन सकते हैं न कटोरियां, न अन्य बर्तन। यह तो दर्शन करने भरके कामकी है। इसका तथा ओषजन और हरिनका वर्णन अन्यत्र दिया जायगा।

पोटाश क्लोरेट बनानेके लिए दाहक पोटाश, के घोलमें हरिनको छोड़ते हैं। दो पदार्थ बन जाते हैं; एक पोटाश हरिद और दूसरा क्लोरेट। अन्तिम पदार्थ कम घुलनशील होनेके कारण शीघ्र ही अलग हो जाता है।

पोटाश क्लोरेटमें ओषजनकी मात्रा अधिक है। इसी लिए यह पदार्थ ओषिदीकारक है। यदि गंधक या कोई गंधिद इसके साथ मिलाकर पीसा जाता है या इस मिश्रण पर जब चोट लगाते हैं तो बड़ा भयानक स्फोटन, धड़ाका, होता है। मैंसिल और पटास ही पटाखोंमें काम आते हैं। आग दिखानेपर यह मिश्रण तेज़ीसे जलता है। यदि जलते हुए कोयले पर पटास छिड़क दें तो खूब ज़ोरसे दहन क्रिया होने लगती है।

पटासको गरम करनेसे ओषजन और पटाश हरिद बन जाता है। परन्तु मंगनीज़ मिला देनेसे ओषजन सहज ही, कम गरम करनेसे ही, निकल आता है; अतएव पटास और मंगनीज़का मिश्रण ही प्रयोगशालामें ओषजन बनानेके काम आता है।

कभी कभी गंधक या मैंसिलके साथ पटासको पीसनेके कारण बड़ी भयानक घटनाएँ हुई हैं। इन पदार्थोंको अलग अलग पीसना चाहिये और तब बहुत हलके हाथसे स्पेचुलासे मिलाना चाहिये।

पटास पर जब गाढ़ा गंधकाम्ल छोड़ते हैं तो एक प्रकारकी पीली गैस निकलती है, जो बड़ी बलवान ओषदीकारक है। यही गैस दाह्य पदार्थोंसे स्पर्श करने पर उन्हें बड़े वेगसे जलाना आरम्भ करती है। यही चूरणवालोंके खोमचों पर बारम्बार लौ उठाती है।

किसी चीनीकी प्यालीमें फास्फोरसके छोटे छोटे टुकड़े पानीमें डाल दीजिये। उनके पास ही क्लोरेटके रवे छोड़ दीजिये। तदनन्तर गाढ़ा गंधकाम्ल डालिये, फिर देखिये कि पानीके अंदर आग लगती नज़र आती है। (उपरोक्त गैस पैदा हो फास्फोरसको जलाने लगती है।)

आतिशबाज़ीमें भी पटास काम आता है। भिन्न भिन्न पदार्थोंको इसके साथ मिला कर नाना प्रकारकी रंगीन ज्वालाएं प्रकट की जाती हैं।

सफेद बारूद—गंधक, पटास और पीले पोटाश प्रुशियेटका मिश्रण सहज ही दबाव पाकर या रगड़से जल उठता है। इसी मिश्रणको सफेद बारूद कहते हैं।

अञ्जन गंधिद

अर्थात सुरमा—यही पदार्थ अञ्जन और गंधकका यौगिक है। साधारणतया यह सुरमा नामसे बिकता है। यह एक दाह्य पदार्थ है और पटासके साथ स्फोटक मिश्रण बनाता है। यही मिश्रण सेफटी दियासलाइयोंके मुकुटमें विराजता है। इसको जलानेके लिए रक्त फास्फोरसमय काली सतह चाहिये।

फोटोग्राफ खींचनेके लिए तैयारी

[ले०—श्री० "सिद्ध हस्त"]

६—स्टैंड (stand) या फील्ड (field) कैमरा

हैण्ड कैमरेके बाद सर्व-प्रिय होनेके गुणमें स्टैंड या फील्ड कैमरे की ही पारी है। ऐसे कैमरोंको हाथमें लेकर फोटो नहीं लेसकते, कमसे कम यह इस कामके लिए नहीं बनाया जाता है। यहां पर इसकी एक दो विशेषताओं पर कुछ लिखना आवश्यक ज्ञान पड़ता है। पहिली बात तो यह है कि इसका उदर चौखूंटा होता है और इसकी पीठमें एक ऐसा चौखटा बैठता है, जिस पर प्लेट-घर और फोकस-पर्देके लिए खांचे रहते हैं। इस चौखटेको चाहें तो खड़ा लगा सकते हैं और चाहें तो बेंड़े भी लगा सकते हैं, इससे कुल कैमरेको पलटे ही बिना खड़ा या बेंड़ा चित्र उतार सकते हैं। इस चौखटेको पलटाऊ चौखटा (reversing frame नम्बर ३२) कहते हैं। इस मेलका पलटाऊ चौखटा किसी किसी हैन्ड कैमरेमें भी रहता है। ३४ अड़कन है और ३३ एक पेंच है। इन दोनोंकी सहायतासे पीठको पेंदेकी पटरीके हिसाबसे खड़ा या आगे या पीछेकी ओर झुका हुआ भी रख सकते हैं, इसलिए
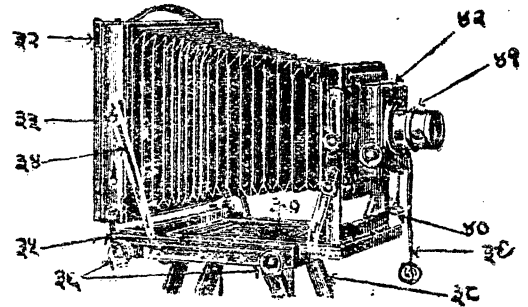
चित्र ३८—स्टैण्ड या फील्ड कैमरा

कहते हैं कि कैमरेमें मुड़नीपीठ (swing back) है। पीठको पेंदेकी पटरी पर जहां चाहें तहां कस सकते हैं। इस कामके लिए पेंच नम्बर ३५ लगा है। नीचेके चित्रसे पीठकी यह चाल, जिसको महा-कोण-चाल (wide angle movement) कहते हैं, अच्छी तरह समझमें आ जायगी। ३६ नम्बरकी घुन्डियां दांतीदार चक्रको घुमानेवाली फोकस-घुन्डियां हैं। यह अग्रभागकी स्थितिके अनुसार बारी बारी से काममें लायी जाती हैं। कैमरा तिपाई (tripod stand) नम्बर ३८ के ऊपर लगा हुआ है। तिपाईको चलाये बिना ही कैमरेको इधर उधर घुमा सकते हैं। इसके लिए पेंदेकी पटरीसे एक बड़ासा गोल भाग काटकर निकाल दिया गया है और इसमें एक घूमनेके लिए पीतलका चक्र लगाया गया है। कैमरेको जिस दिशामें चाहें टिका सकें इसके लिए एक पेंच भी लगा रहता है जो पेंदेकी पटरीके नीचे होनेके कारण चित्रमें नहीं दिखलाई पड़ता। इस चक्रको "घुमनाचक्र" (turntable) कहते हैं (नम्बर ३७)। इस कैमरेका शटर नम्बर ४२ दूसरे मेलका है। इसको परदा-शटर (roller-blind shutter) कहते हैं। प्रत्येक बार शटरको काममें लानेके पहिले ४० नम्बरके तागेको खींच

कर शटरको तैयार (set) करना पड़ता है। प्रायः इस प्रकारके सभी शटरोंमें शटर मोचक तारके बदले शटर-मोचक गेंद और नली (ball and tube
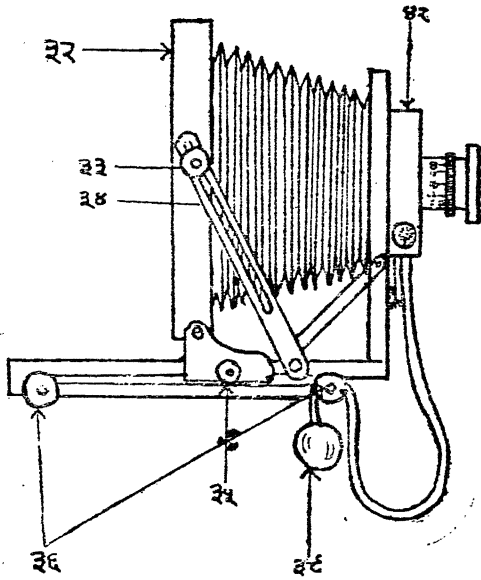
चित्र ३९—महा कोण-चाल युक्त फील्ड कैमरा

release नम्बर ३९) लगी रहती है। गेंदको दबाने से शटर काम करता है। इसको वायु शटर-मोचक (pneumatic release) भी कहते हैं। पुतलीनुमा छेदको छोटा बड़ा करनेके लिए इसमें एक चूड़ी (ring) नम्बर ४१ लगी रहती है। इसीको इधर उधर घुमानेसे छेद घटता बढ़ता है।

१०—विविध विषय

ऊपर दो मुख्य प्रकारके कैमरोंका वर्णन किया गया है। यहां पर कैमरा सम्बन्धी उन शब्दोंकी परिभाषा दी जायगी जो ऊपर नहीं आये हैं।

बक्सनुमा कोष कैमरा या बक्सनुमा मैगेज़ीन कैमरा (Box-form Magazine Camera)—एक बक्सके आकारका कैमरा जिसमें कि ६ या १२ प्लेटोंकी गड्डी लगा दी जाती है। प्रत्येक प्लेटको काले रँगे हुए टीनके चौखटेमें रखना पड़ता है। इस चौखटेको मियान (sheath) कहते हैं। प्लेटोंको बदलने और एकके बाद एकको लेन्सके सामने करनेका प्रबन्ध भी इस कैमरेमें लगा रहता है।

बक्सनुमा फ़िल्म कैमरा (Box form Film Camera) बक्सके आकारका फिल्मसे काम करनेके योग्य कैमरा होता है।

रिफ्लेक्स कैमरा (Reflex Camera)—इस कैमरे के भीतर एक दर्पण (२३, चित्र १२) इस प्रकार से लगा रहता है कि कैमरेके ऊपर लगे हुये और गहरे घूंघट (२५, २६) से घिरे हुए फोकस पर्दे (२७) पर, प्लेटघर (४) को लगा कर, इसके ढकनेके हटा देने पर भी प्रकाश दर्शन अर्थात् एक्सपोज़र (exposure) देनेके समय तक, पूरी नापका चित्र दिखलाई पड़ता है। इसका लेन्स (१९) बहुत बढ़िया और शटर (७) बड़ी तीव्र गतिवाला होता है। और सब प्रकारका काम तो इससे कर ही सकते हैं, पर तीव्र गति फोटोग्राफीमें इसका विशेष करके प्रयोग किया जाता है। कैमरेमें प्लेट लगानेके बाद भी बड़ी सुगमता से फोकस कर सकते हैं।

फोकल प्लेन कैमरा—यह भी तीव्र गति फोटोग्राफीके काममें लाये जाने योग्य कैमरा है। इसमें फोकल-प्लेन-शटर (focal plane shutter), जिसका हाल नीचे दिया गया है, लगा रहता है। भीतरी दर्पणके न होनेसे फोकस करनेमें इतना सुभीता नहीं रहता है जितना कि रिफ्लेक्स कैमरेमें।

स्टूडियो कैमरा (Studio Camera)—बड़े नापका कैमरा जिसको फील्ड (field) कैमरेकी भांति मोड़ कर छोटे आकारका नहीं कर सकते। यह बहुत मजबूत और भारी बनाया जाता है। इसको केवल बड़े बड़े रोजगारी ही मोल लेते हैं। इसका प्रयोग स्टूडियो अर्थात् फोटो घर (जिस घरके भीतर फोटो खींचते हैं) में ही किया जाता है।

इकहरा लेन्स (Single Lens)—सबसे सस्ता और सबसे सरल प्रकारका लेन्स होता है। दो जुदे जुदे तालोंको एक दूसरेसे इस प्रकार चिपका देते हैं कि

देखनेमें एक ही जान पड़ता है। इसको मेनिसकस (meniscus), लैन्डस्केप (landscape) या ऐक्रोमेटिक (achromatic) लेन्स भी कहते हैं।

ऊपरके मेलके दो इकहरे लेन्सोंको एकके पीछे एक पीतल या अल्यूमीनियमके घर (mount) में लगाकर बनाते हैं। इसको आर आर (R. R), अप्लेनैट (Aplanet) और सिमेट्रिकल (Symmetrical) लेन्स भी कहते हैं।

ऐनैस्टिगमैट लेन्स (Anastigmat Lens)—बहुत अच्छे मेलका लेन्स है जो कि बहुत तेज़ बनाया जा सकता है और दूसरे लेन्सोंकी अपेक्षा इस लेन्ससे लिये गये फोटो एक कोनेसे दूसरे कोने तक अधिक नोंक पलकसे ठीक (sharp) होते हैं।

पोर्ट्रेट लेन्स (Portrait Lens)—बहुत तेज लेन्स जो अधिकतर पोर्ट्रेट अर्थात् मनुष्य-चित्र खींचनेके काममें ही लाया जाता है। यह बहुत भारी होता है और अब ऐनैस्टिगमैटके आगे इसका चलान उठा जा रहा है।

पोर्ट्रेट अटैचमेन्ट (Portrait Attachment) या पोर्ट्रेट मैगनिफायर (Portrait Magnifier) चश्मेके तालके समान लेन्स होता है। जिस कैमरेमें फोकस करनेके लिए कोई प्रबन्ध नहीं रहता उस कैमरेके लेन्सके सामने इसको लगा देनेसे नज़दीकके विषयकी फोटो या मनुष्य-चित्र खींच सकते हैं।

चित्र ४०—रिफ़्लेक्स कैमरेके भीतरका दृश्य।

रैपिड रेक्टिलीनियर लेन्स (Rapid Rectilinear lens)—यह ऊपरके लेन्ससे सब बातमें बढ़ कर होता है और लगभग उससे दुगुना तेज़ होता है।

एवर-सेट शटर (Ever-set shutter)—जिस शटरको ऊपर वर्णन किये गये पर्दे शटरकी भांति

बार बार तैयार न करना पड़े उसे एवर-सेट अर्थात् सदा-तैयार शटर कहते हैं

फोकल प्लेन शटर (Focal-plane shutter)—यह शटर पर्दे शटरके समान होता है, पर लेन्सके पास न रह कर प्लेटके बहुत समीप रहता है (७, चित्र ४०)। इस शटरसे बहुत कम प्रकाश दर्शन (एक्सपोज़र) दे सकते हैं, जैसे कि $\frac{1}{1000}$ सेकन्ड, $\frac{1}{200}$ सेकन्ड, इत्यादि।

फिल्म पैक अडैप्टर (Film-pack-adapter)—यह प्लेटघरके आकारका होता है, और इसके द्वारा प्लेट कैमरोंमें प्लेटके बदले फिल्मकी गड्डी (पैक) का प्रयोग कर सकते हैं।

रोल होल्डर (Roll-holder)—इसके द्वारा फिल्मकी पिनडी (रोल) को प्लेट कैमरेमें लगा कर काम कर सकते हैं।

लेवेल (Level)—यह बतलानेके लिए कि कैमरा सीधा या तिरछा रखा गया है छोटा सा स्पिरिट लेवेल (Spirit level) काममें लाते हैं।

११—निवेदन

ऊपरके वर्णनमें कई एक नये नये गढ़े शब्द लिखे गये हैं; पाठकोंके मनमें यह अवश्य खटकेगा; पर किया क्या जाय। या तो अंग्रेज़ी शब्दोंका ज्योंका त्यों प्रयोग किया जाय या नये शब्द गढ़े जांय। उन शब्दोंको जिसका प्रयोग फोटोग्राफी सम्बन्धी बात चीतमें बार बार किया जाता है हमने ज्योंका त्यों रख देना ही उचित समझा है। इस नियमको मैंने केवल डार्क स्लाइड शब्द ही के विषयमें भङ्ग किया है। डार्क स्लाइडके बदलेमें प्लेट-होल्डर शब्दका भी प्रयोग किया जाता है, यद्यपि इन दोनों शब्दोंके प्रयोगमें कुछ अन्तर अवश्य है। इसलिए प्लेटघर शब्दको बहुत सरल होनेके कारण और इसका अर्थ प्रत्यक्ष होनेके कारण हमने इसी शब्दका प्रयोग करना ठीक समझा। और शब्दोंके बदले नया शब्द ही गढ़ लेना उचित जान पड़ता है, क्योंकि वह पहिले कितने ही बेढब क्यों न जान पड़ें, पीछे प्रिय जान पड़ेंगे। कुछ भी हो, अंग्रेज़ी न जाननेवालोंको "इन फ़िनिटी-कैच"से तो "अनन्त-पकड़"ही अच्छा और सरल जान पड़ेगा। कुछ लोग इन नये गढ़े शब्दों पर अवश्य हँसेंगे, पर उनको विचारना चाहिये कि अंग्रेजीके शब्द भी कुछ कम उपहास-योग्य नहीं हैं। नमूनेके लिए डार्क स्लाइड ही लीजिये। डार्क हुआ "अँधेरा" और स्लाइड हुआ "खिसकने वाला"। इन शब्दोंके अर्थको जान कर फोटोग्राफी न जानने वाला कौन ऐसा विलक्षण बुद्धिमान है जो अनुमान कर सकेगा कि डार्क स्लाइड किस जानवरका नाम है ? लाल बुझक्कड़को छोड़ और दूसरा तो कोई नहीं दिखलाई पड़ता। हमारे एक फोटोग्राफर-मित्र, जिनसे इस विषय पर हम बातें कर रहे थे, सहसा बोल उठे "मार ली है बाजी। इसको कहना चाहिये हिन्दीमें अन्धेर-खसकर"। जिनको यहां पर लिखे नये शब्द पसंद न हों यदि वह कृपा करके इनसे अच्छे शब्द सोच कर विज्ञानके सम्पादक द्वारा मेरे पास भेजें तो हम उनके बड़े कृतज्ञ होंगे। यहां पर हम विज्ञान के सम्पादकको धन्यवाद देते हैं क्योंकि उन्होंने कई एक शब्दोंके गढ़नेमें बड़ी सहायता दी है।

१२—कैमरेकी हिफाज़त

चाहे कम चाहे अधिक दामके कैमरेको मोल ले लेने पर इसको बड़े यत्नसे रखना चाहिये। इसको कभी धूपमें न छोड़ देना चाहिये और नम जगहमें नहीं रख छोड़ना चाहिये। नहीं तो कैमरेकी लकड़ी फट जाती है या ऐंठ जाती है। लकड़ियोंमें से सागौन (teak) ही ऐसी है जो हिन्दुस्तानकी गर्मी सर्दीको सहन कर सके। इस लिये इस लकड़ीसे बनाये गये और स्थान स्थान में पीतलकी पट्टियोंसे मज़बूत किये गये कैमरे गर्म-देशी (tropical) नामके भी बिकते हैं। हो सके तो इसी मेलका एक कैमरा मोल लेना चाहिये, पर इसका मूल्य कुछ अधिक होता है। नम स्थान में कैमरेको रखनेसे कैमरेमें लगी हुई सरेस

(glue) सड़ जाती है और उसको दो टुकड़ोंको साथ पकड़े रखनेकी शक्ति जाती रहती है, इससे कैमरेके जोड़ खुल जाते हैं या भाथी निकल पड़ती है। भाथी इत्यादि पर भुकड़ी न लगने देना चाहिये और कैमरे के भीतर बाहर दोनोंको निर्मल रखना चाहिये। भीतरकी गर्द विशेष करके हानिकारक है; क्योंकि इससे सुई छेदके समान कई एक दाग फोटो पर पड़ जाते हैं। इसके सिवा भीतरकी गर्द प्रकाशको फैलाकर प्लेट पर धुन्धलापन (fog) उत्पन्न कर देती है। प्लेटघरको भी खूब साफ रखना चाहिये। लेन्सको आगे खींचने के लिए सदा अंगुष्ठथामों का ही प्रयोग करना चाहिये, कभी भी रकाबके सिरेको पकड़ कर इसको आगे खींचनेकी चेष्टा न करनी चाहिये, क्योंकि यहां पर ज़ोर लगानेसे नीचेके भागोंपर बहुत ही खिचाव पड़ता है, जिसका परिणाम यह होता है कि या तो कोई भाग टूट जाता है या यदि यह दुर्दशा न भी हुई तो थोड़े ही दिनोंमें कैमरेके अग्र भागमें हचक पैदा हो जाती है। इसी प्रकार कैमरेको बन्द करते समय बड़ी सावधानीसे काम करना चाहिये। यदि कैमरेके बन्द करनेमें कहीं रुकावट मालूम पड़ती है तो बल दिखलानेके बदले पहिले इस रुकावटके कारणकी जांच करनी चाहिये। इसका पता लगाकर और रुकावटको दूर करके हल्के हातसे कैमरेको बन्द करना चाहिये। यहां पर कदाचित यह सब बातें तुच्छ जान पड़ें, पर इन्हीं छोटी छोटी बातों पर ध्यान रखनेसे कैमरेके जीवनको आप बहुत बढ़ा सकते हैं। आपका भी इससे लाभ होगा।

१३—शटर और लेन्सकी हिफाज़त

शटरको सदा एक बहुत ही सुकुमार यंत्र समझना चाहिये। अच्छे शटरोंमें घड़ीके समान कई एक पुर्जे लगे रहते हैं। यदि आप पक्के कारीगर नहीं हैं तो आपको कदापि शटरके पुर्जोंको अलग अलग करने या इसे खोलकर भीतरी कारीगरी देखनेकी चेष्टा न करनी चाहिये। थोड़े ही दिन की बात है जब मेरे एक मित्र, जो कालेजके विद्यार्थी हैं और अपनेको चतुर कारीगर भी समझते हैं मेरे पास अपने टूटे शटरको ले आये थे। पूछने पर मालूम हुआ कि आपको यह जाननेके लिए कि शटर कैसे काम करता है प्रबल इच्छा थी। आपने एक सस्ते बक्सनुमा कैमरेसे कुछ दिन काम करने पर इस दुर्घटनाके थोड़े ही दिनों पहिले बढ़िया फिल्म कैमरा मोल लिया था। इसी नये कैमरेके शटरको उन्होंने खोला। खोलते ही उनके आंखोंके सामने ही एक कमानी छिटक कर कहीं दूर जा गिरी। बहुत खोजनेपर भी इसको वह न पा सके। तब उन्होंने इस शहरके दूकानदारोंको अपना टूटा हुआ शटर दिखलाया, पर वह भी उनकी सहायता कुछ न कर सके। मुझसे भी कुछ बन न पड़ा, क्योंकि मैंने इस मेलके शटरके भीतरी भागको पहिले नहीं देखा था। बिना उस कमानीकी सूरत कभी देखे अपने मनसे दूसरी कमानी लगाना मेरे लिए सम्भव नहीं था। इसलिए लाचार होकर उनको मरम्मतके लिए उस शटरको उसके बनानेवाले कारखानेमें भेजना पड़ा। कितने लोगोंको शटरके खुलने और बन्द होनेवाली "खट" "खुट" शब्द बहुत प्रिय जान पड़ता है और वह आपका कैमरा पाते ही सौबार उसे खोलेंगे और बन्द करेंगे। ऐसे लोगोंसे भी कैमरेकी रक्षा करनेकी आवश्यकता है, और यदि आप स्वयं ऐसे लोगोंमें से हैं तो हमारी समझमें नहीं आता कि आपको कौनसा उपदेश दें।

लेन्सकी हिफाज़त अपनी आंखोंकी भांति करनी चाहिये। पहिले तो उसपर गर्द पड़ने ही नहीं देनी चाहिये। यदि गर्द पड़ भी गयी तो उसे बहुत ही नर्म ब्रश (brush) या साफ रेशमी रूमालसे हटा देना चाहिये। कुछ लोग बिना समझे बूझे लेन्स पर गर्दको देखते ही चट धोतीके कपड़ेसे लेन्सको रगड़ने लगते हैं, परिणाम यह होता है कि गर्दमें जो बालू या अन्य किसी कड़े पदार्थके कण रहते हैं उनसे रगड़

खाकर लेन्स पर कई एक खरोंच पड़ जाते हैं। जितनी हानि गर्दसे न होती उतनी इन खरोंचोंसे होती है। इस प्रकारके बर्तावसे लेन्स कुछ ही दिनोंमें धुन्धला होकर बेकाम हो जाता है। और लेन्सोंके शीशेकी अपेक्षा ऐनेस्टिगमैट लेन्सोंके शीशे पर, जिनमें कई एक भाग ज़ीना शीशे (jena glass) के बने रहते हैं, खरोंच पड़ जानेका अधिक भय रहता है। खरोंचके मिटानेका एक भी उपाय नहीं है, इसलिए लेन्स पर खरोंच पड़ने ही न देना चाहिये। लेन्सके शीशे पर हाथ कभी न पड़ने देना चाहिये, नहीं तो उस पर धब्बा पड़ जायगा, जिसके साफ करनेमें खरोंच पड़ जानेका भय रहता है। यदि किसी समय लेन्स पर ऐसे धब्बे पड़ जायं तो नर्म रेशम के रूमालसे पहिले सब गर्दको हल्के हाथसे हटा कर उसको धीरे धीरे पोंछ देना चाहिये। बहुत आवश्यकता होने पर एक दो बूँद स्पिरिट (spirit) से लेन्सके धब्बोंको साफ कर सकते हैं, पर ऐसा उपाय करना चाहिये कि इसकी आवश्यकता ही न पड़े। जिनमें एकसे अधिक शीशे होते हैं ऐसे लेन्सोंके खोलनेमें बड़ी सावधानी रखनी चाहिये। यह भाग ठीक अपनी अपनी जगह पर न लगाये जायंगे, या यदि एक भी भाग उल्टा लगा दिया जायगा तो लेन्स काम ठीक तौर पर न कर सकेगा। यदि किसी लेन्सको अलग कुछ दिनों तक रखना है तो दोनों ओर टोपी लगाकर किसी सूखे स्थानमें इसको रखना चाहिये।

१४—फोकस करना

ऊपर हम देख चुके हैं कि एक ही बात जो सब कैमरोंमें पाई जाती है वह यह है कि एक ओर प्लेट, दूसरी ओर लेन्स, और इन दोनोंके बीच बाहरके प्रकाशको प्लेट तक पहुंचनेसे रोकनेका कोई प्रवन्ध रहता है और लेन्सको इच्छानुसार खोलने और बंद करनेके लिए भी कुछ उपाय रहता है। इनको छोड़ और एक भी ऐसी बात नहीं है जो सब कैमरोंमें पाई जाय। जिस चालको हम सबसे अधिक महत्व पूर्ण समझते हैं वह है फोकस करनेका प्रबंध। पहिले हम ऊपर वर्णन किये गये कैमरेसे फोकस करनेकी क्रियाके विषय पर लिखेंगे। फिर दूसरे प्रकारके कैमरों पर और विशेष करके उनपर, जिनमें फोकस करनेका कोई प्रवन्ध नहीं रहता है, विचार करेंगे। थोड़ी देरके लिए मान लेते हैं कि आपने रकावको, और रकावमें लेन्सको, इस प्रकार टिका दिया है कि लेन्स ठीक प्लेटके केन्द्रके सामने चौबक (लम्ब रूप) पड़ता है और आपने लेन्सके पुतलीनुमा छेदको सबसे बड़ा कर दिया है। लेन्सको आगे खींच कर पेंदेकी पटरीके बीचमें छोड़ दीजिये। कैमरेको तिपाई पर लगा दीजिये और पीठके खाँचोंमें फोकस पर्दा लगा दीजिये। लेन्सका मुंह ऐसे विषयकी ओर कर दीजिये, जिसपर तेज़ रोशनी या धूप पड़ रही हो। अब फोकस पर्देको ध्यान पूर्वक देखिये। इस कामको सुभीते-

चित्र ४१—फोकस करना।

के साथ करनेके लिए काले कपड़ेकी ओढ़नी तो अपने सिर और कैमरेके ऊपरसे छोड़ लीजिये

और बायें हाथसे इस ओढ़नीके दोनों किनारोंको इस तरह पकड़ लीजिये कि आप फोकस पर्देको भली भांति देख सकें, पर इसपर बाहरका प्रकाश अधिक न पड़ने पावे (चित्र ४१)। पर्देको अब आप ध्यानपूर्वक देखिये। इस पर्देके उस पारकी वस्तुओंको देखनेकी चेष्टा आप न करें, क्योंकि आप इस पर्देके आर पार नहीं देख सकते बल्कि पर्दे को ही देखिये। आप देखेंगे कि पर्देपर एक रंगीन चित्र दिखलाई पड़ता है पर यह इतना भद्दा है कि कई एक वस्तु समझमें नहीं आता कि वह क्या है। धीरे धीरे दाहिने हाथसे लेन्सको फोकस-घुन्डीकी सहायतासे या अन्य किसी रीतिसे आगे बढ़ाइये और पर्देको ध्यान पूर्वक देखते रहिये। आप देखेंगे कि चित्र अब पहिलेकी अपेक्षा स्पष्ट हुआ जा रहा है। कई एक ब्यौरे जो पहिले इतने भद्दे थे कि पहचान नहीं पड़ते थे अब पहचान पड़ने लगे। मान लीजिये कि आपके सामने थोड़ी ही दूर (१५ या २० फ़ुट) पर एक पेड़ है और इस पेड़के पीछे कुछ दूर पर दूसरे पेड़ या मकान इत्यादि हैं। लेन्सको आप आगे बढ़ाते जाइये और फोकस पर्देको देखते भी रहिये। एक समय ऐसा आ जायगा जब इस फोकस पर्दे पर सामनेके पेड़का चित्र इतना स्पष्ट हो जायगा कि आप पत्तियोंको साफ़ साफ देख सकेंगे और इसके तने पर जो दाग़ या चिह्न इत्यादि हैं वह भी पृथक् पृथक् दिखलाई पड़ेंगे।

१५—सर नीचे और पैर ऊपर

अब कदाचित एकाएक आपका इस बात पर ध्यान जायगा कि पेड़का चित्र उल्टा दिखलाई पड़ रहा है। तना ऊपर है और पत्तियाँ नीचे हैं। इसके उल्टे रहनेसे यहां हमें कुछ प्रयोजन नहीं। बहुत थोड़े समयमें आप इस उल्टे हुए चित्रके इतने आदी हो जायंगे कि आप इस बातको बिल्कुल भूल जायँगे। हां, कभी कभी आप अपने फोटोग्राफी न जानने वाले उन मित्रोंके आश्चर्य भरी हुई बातोंसे इस बातकी सूचना पायेंगे जो कभी आपके फोटो खींचते समय फोकस पर्दे पर दृष्टि डालेंगे। इस विषयको यहीं छोड़ अब फोकसकी बात फिर लिखते हैं। आप लेन्सको और आगे बढ़ाते जाइये। आप देखेंगे कि फोकस पर्दे पर जो चित्र पेड़का बहुत स्पष्ट दिखलाई देता था वह फिर भद्दा हो चला। लेन्सको और आगे बढ़ानेसे कई ब्यौरे इतने भद्दे हो गये हैं कि उनका पहिचानना कठिन है। लेन्सको और आगे बढ़ानेसे चित्र एक दम भद्दा हो जाता है, कुछ भी पहिचान नहीं पड़ता कि क्या है। बिना फोकस पर्दे परसे दृष्टि उठाये अब लेन्सको लगातार प्लेटकी ओर हटाते आइये। आप देखेंगे कि फोकस पर्दे परका चित्र अब स्पष्ट हुआ जा रहा है, अब पेड़ फिर खूब स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। पर लेन्सको ज्यों ज्यों पीछे हटाते चलते हैं त्यों त्यों यह फिर भद्दा होता जाता है। अब लेन्सको फिर आगे बढ़ाइये और लेन्सके जिस स्थानमें रहनेसे पेड़का तना खूब स्पष्ट दिखलाई पड़ता है उसी स्थानमें लेन्सको छोड़ दीजिये और फोकस पर्दे पर दिखलाई देते हुए चित्रकी जांच कीजिये। देखनेमें यह अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता है, प्रकृतिके असली रंगोंमें यह रंगा हुआ है, केवल दोष यही है कि उल्टा है। यदि पेड़के नीचे मनुष्य या पशु पक्षी चल फिर रहे हैं तो वह इस चित्रमें भी चलते फिरते दिखलाई देते हैं, पर पैर ऊपर और सर नीचे।

वास्तवमें दृश्य बड़ा सुहावना जान पड़ता है। इस चित्रसे मुग्ध न हो कर इसकी कड़ी परीक्षा कीजिये। आप देखेंगे कि जो वस्तु पेड़के पीछे कुछ अधिक दूरी पर हैं वह इतनी स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़तीं जितनी कि वह दिखायी दे सकती हैं। ज़रा सा लेन्सको पीछे हटाने से यह अधिक स्पष्ट तो हो जायंगी पर अफसोस! पेड़ और इसका तना अब पहिलेकी भांति स्पष्ट नहीं हैं। इसलिए लेन्सको अपने पहिले स्थानमें लाकर पेड़के तनेको फिर स्पष्ट कर दीजिये। ध्यानपूर्वक देखनेसे मालूम पड़ता है कि जिन वस्तुओंकी दूरी पेड़के तनेकी दूरीसे कम है

वह भी स्पष्ट नहीं हैं। लेन्सको कुछ आगे बढ़ानेसे यह स्पष्ट हो जाती हैं; पर तब पेड़का तना कुछ भद्दा हो जाता है और ऐसी वस्तु जो पेड़के पीछे अधिक दूरीपर हैं वह तो और भी भद्दी हो जाती हैं। लेन्सको इसलिए फिर अपने स्थानपर पहुँचा देते हैं। अधिक ध्यान देकर देखनेसे इस बातका पता चलता है कि पेड़की जो पत्तियां कैमरेसे उतनी ही दूर हैं जितना कि पेड़का तना है; वह तो खूब स्पष्ट हैं, पर वह पत्तियाँ जो इससे कुछ दूर या कुछ समीप हैं वह इतनी स्पष्ट नहीं हैं। इस छोटेसे प्रयोगके कर देखनेसे हम यह सीखते हैं कि विषय (अर्थात् वह वस्तु जिसकी हम फोटो खींचना चाहते हैं) की कैमरेसे एक विशेष दूरीके लिए फोकस पर्देसे लेन्सकी एक विशेष दूरी होनी चाहिये है और लेन्सको फोकस पर्दे (या प्लेट) से ठीक उसी दूरी पर रखना पड़ता है, जिसमें कि उस विषयका फोटो खूब स्पष्ट आवे। यदि पेड़के तनेका चित्र खूब स्पष्ट है तो कहते हैं कि पेड़का तना फोकसमें (in focus) है। जो वस्तु फोकसमें नहीं हैं उसको कहते हैं कि वह फोकस-बाहर (out of focus) है। चित्रके फोकस बाहर भागोंको हम कहेंगे कि वह भद्दे (blurred) हो गये हैं। जो भाग फोकसमें हैं और जिन्हें हम ऊपर "स्पष्ट" कहते आये हैं उनको अबसे हम "तीक्ष्ण" (sharp) कहा करेंगे।

१६—एक सरल प्रयोग

ऊपरके प्रयोगके परिणामका हम यों समर्थन कर सकते हैं। कैमरेके लेन्सको किसी मकानकी ओर कीजिये और लेन्सको हटा बढ़ाकर मकानको तीक्ष्ण फोकसमें लाइये। अपने किसी मित्रसे कहिये कि वह मकानके पास खड़े हो जायँ। मकानसे कैमरेकी दूरी लगभग २५ फुटके होनी चाहिये। आप देखेंगे कि आपके मित्र भी तीक्ष्ण फोकसमें हैं। अब आप अपने मित्रको अपने समीप धीरे धीरे आनेके लिए कहिये। आप देखेंगे कि आपके मित्रका चित्र आकारमें बड़ा होता जाता है, पर साथ साथ फोकस-बाहर भी हुआ जाता है और इस कारण भद्दा जान पड़ता है। जब आपके मित्र लगभग १२ फुटकी दूरीपर हो जायँ तब आप उनको फिर तीक्ष्ण फोकसमें लाइये। इसके लिए लेन्सको आगे बढ़ाना पड़ेगा। ऐसा करने पर आप देखेंगे कि मकान फोकस बाहर हो कर भद्दा हो गया। अपने मित्रको और निकट आनेके लिए कहिये। आप देखेंगे कि फिर उनका चित्र फोकस बाहर हो गया और इसकी नाप भी कुछ बढ़ गयी। फोकसमें लानेके लिए लेन्सको और आगे बढ़ाना पड़ा। अपने मित्रको अब ३ या ४ फुटकी दूरी पर आकर खड़े होनेके लिए कहिये। उनका फोकस फिर ख़राब हो गया और उनको फोकसमें लानेके लिए लेन्सको और भी आगे बढ़ाना पड़ता है। अब उनका चित्र इतना बड़ा हो गया है कि केवल चेहरा और कंधा ही फोकस पर्देमें अंटता है शेष भाग नहीं दिखलाई पड़ता। अब मकान तो इतना फोकस बाहर है कि कई भाग तो पहचान भी नहीं पड़ते। इस प्रयोगसे हम केवल यही नहीं सीखते कि विषयकी दूरीके घटने बढ़नेसे फोकस ठीक रखनेके लिए प्लेटसे लेन्सकी दूरीको भी बढ़ाना घटाना पड़ता है; परन्तु यह भी सीखते हैं कि ज्यों ज्यों विषय समीप होता जाता है त्यों त्यों लेन्सको आगे बढ़ाना पड़ता है और उसके चित्रका आकार बढ़ता जाता है।

(असमाप्त)

भूतावेश

वर्तमान युग विज्ञानका युग है। ईसाई संसारमें नवीन वैज्ञानिक आन्दोलनोंने सचमुच बड़ा विक्षोभ पैदा कर दिया है। जितने भी अन्धविश्वास थे उनको एक बार तो जड़ मूल तक हिला कर ही छोड़ा। फलतः प्राकृतिक

विज्ञानवादियोंने आध्यात्मिक संसारकी जड़ तक खोद डाली। सब विकार और चमत्कार प्रकृतिके ही मान कर आत्माको सर्वथा निकाल दिया।

पाश्चात्य देशोंमें वैद्यक चिकित्साके क्षेत्रमें अब कहीं भी भूतावेश आदिको रोगका कारण नहीं माना जाता है। उनके लिए तो सभी रोगादि उत्पात शारीरिक विकारोंसे उत्पन्न होते हैं। इसके विपरीत भारतीय वैद्यक ग्रन्थोंमें बहुत से रोगोंका कारण भूतावेश भी है। ज्वर और उन्मादोंमें से बहुत से ज्वर और बहुत से उन्माद भूतावेशोंसे होते माने गये हैं। उनकी चिकित्सा भी औषधिसे न करके मन्त्र जप पुरश्चरणादि से की जाती है। यद्यपि इन बातोंसे प्रायः विश्वास उठता जाता है तो भी इसकी उपेक्षा करनेके पहले इसको सर्वथा असत्य सिद्ध करनेमें भी बड़ा समय अपेक्षित है।

हाल में ही डाक्टर मान्टेगू लोमाक्सने लण्डनके गिरजेवालोंको एकत्रित करके आध्यात्मिक रोग चिकित्सा पर विचार करनेके लिए कहा। आप कहते हैं कि मेरे पास एक स्त्री उन्माद रोगकी शिकायत लेकर आयी। सभी परीक्षाएं करनेसे ज्ञात हुआ कि उसके रोगकी स्पष्ट व्याख्या करनेमें वर्त्तमान चिकित्सा निदान भी असमर्थ है। इस बात-पर वैज्ञानिक हंसेंगे क्योंकि डा० तथा बहुत से पादरी लोग भी अब भूतावेशादिको रोगका कारण नहीं मानते और ईसा और उसके अन्य अनुयायी सन्तोंको भी भ्रम पूर्ण कहते हैं। तो भी मैं इसको दृढ़तापूर्वक सत्य मानता हूं।" †

क्या डाक्टर लोमाक्सके इस कथनको देखकर चरकादि ग्रन्थोंमें भूतावेशके उल्लेखको हम असत्य कह सकते हैं। नहीं; पर विवेक पूर्वक इसका निर्णय करना चाहिये। किसी एक लाठी से सब पशुओंको नहीं हांका जाता। जर्मथियोरी या जीवाणुवादके प्रकट होने पर उसके भक्त सभी बातोंको जर्म्ससे ही हल करनेका प्रयत्न करने लगे। ऐसा न करके सभी कारणोंको उचित स्थान मिलना चाहिये।

भूत वास्तवमें कोई वस्तु है कि नहीं ? है तो कैसा, इत्यादि सभी बातें जानना जरूरी है। हम विस्तार भयसे नहीं लिखते। इस पर अभी बहुत विचार और परीक्षणोंकी आवश्यकता है; तब सिद्धान्त कहा जा सकेगा।

इस प्रसङ्ग पर इतना अवश्य कहूंगा कि मैंने स्वतः इस विषयमें पर्याप्त अनुसन्धान करनेका प्रयत्न किया है। मैं अभी किसी निर्णय पर नहीं पहुँचा हूं। तो भी आंखों देखी घटनाओंका अवश्य उल्लेख करूंगा। मुझे स्पिरिचुअल सर्कल लगानेका बड़ा शौक था। मैंने जगह जगह नाना प्रकारके चक्र लगाये। टिकटी, तिपाई, आदि जड़ द्रव्योंको भी माध्यम बना कर उनमें भूतावेश कराया और मानव देहको सुप्त और जागृत दोनों अवस्थाओंमें भूताविष्ट किया। इनमेंसे कतिपयोंका मैं उल्लेख करता हूं।

मैंने स्वतः भूत नहीं देखा, मैंने कोई आत्मा बिना शरीरकी नहीं देखी। तो भी चमत्कार अवश्य देखे हैं।

१. श्रीगोविन्दपुरमें मैंने एक सर्कल लगाया, जिसमें एक टेबल पर मैं, वर्तमानके प्रसिद्ध विद्वान श्रीमहेशचरणसिंह, जो अमेरिकासे पढ़कर आये थे और तीसरे स्वामी बुद्धदेवजी गु. काँ. बैठे थे। यथा नियम आतमाको टेबिलमें बुलाया गया और उसका पांव उठा। चक्रमें स्थित व्यक्तियोंकी अनुमतिसे उस आत्माको ३०० बार टेबलका पाया उठा कर रखनेके लिए कहा गया और बराबर वैसा होने लगा। मैंने अपने हाथ तिपाई परसे खेंच लिये केवल अब उक्त दोनों महोदयोंके हाथ थे। मैंने इशारेसे महेशचरण सिंहजीसे भी हाथ उठा लेनेके लिए कहा; हटा लेने पर भी बराबर टेबिल उठती बैठती रही। अब केवल एकके ही हाथ रहे। मैंने उनसे यह पूछा कि कौन उठाता है। वह बोले मैं नहीं उठा रहा। टेबिल आप उठती है। मैं इस सर्कल-

† (लिटेरेरी डाइजेस्ट-३ दिसम्बर २१ पृ. ३०,)

का प्रवर्तक (operator) था। उक्त दोनों महोदयोंका आत्म प्रवेश पर सर्वथा विश्वास न था।

२. काशीमें मैंने अपने विद्यार्थी चन्द्रकेतुको उचित मामूल जानकर कुर्सी पर बैठा दिया। उसके हाथ कुर्सीपर अटकाकर स्थिर कर दिये और कलाईमें एक धागेसे सेफ्टी पिन लटका दिया। आत्माको बुलाकर पिनको नचवाया। आध घण्टे तक यह भी विनोद रहा। चन्द्रकेतुकी दृष्टिमें यह एक नवीन घटना थी।

(३) इलाहाबादमें मैंने एक सर्कल विज्ञान-के सम्पादक श्री गोपालस्वरूप भार्गव, एम० एस-सी० के मकानपर लगाया। इस सर्कलमें मैं और भार्गवजी दो ही व्यक्ति थे। उनके हाथ को कोहनी तक निश्चल रूपसे टेबिलपर धर दिया और उस हाथमें आत्माका प्रवेश कराया। हाथमें गति प्रारम्भ हुई और हमारे कथनानुसार हाथ ऊपरको उठने लगा। उक्त महोदयका कथन है कि 'यह अद्भुत घटना मेरे देखनेमें आयी है।' स्थाली पुलाक न्यायसे मैंने यह तीन परीक्षण लिखे हैं, जिनमें बड़े बड़े प्रसिद्ध विज्ञ व्यक्तियोंको भी सम्मिलित थे। और सर्वसाधारण उनसे इस विषय की सत्यता पूछ सकते हैं।

तीन घटनाएं यहां लिखी हैं: इनके अतिरिक्त मैं तो सैकड़ों सर्कल लगा चुका हूं और मैंने कितना ही अद्भुत रहस्य देखा है, परन्तु स्थानाभावसे नहीं लिखा जा सकता। उनका क्या मर्म है क्या वास्तविकता है, मैं स्वयं किसी सिद्धान्त रूपमें नहीं कह सकता।

पाठक भी परीक्षण कर सकते हैं। यथा तथ्य यथार्थ बातकी खोज करना कोई गुनाह नहीं है।

—जयदेव शर्मा

प्लेग

भाग्यवश भारतमें अब यह एक बहुत ही साधारण रोग हो गया है। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा, जिसका कोई न कोई मित्र या रिश्तेदार इसका शिकार न हुआ होगा। १९६५ वि०में मेरे एक प्यारे मित्रकी भी इसके कारण मृत्यु हुई; यद्यपि मैंने उन्हें बचानेकी बड़ी चेष्टा की; परन्तु सफलता नहीं हुई। तभीसे मेरे हृदयमें रह रह कर यह विचार उठता था कि मैं कोई उपयुक्त औषध ढूंढ निकालूं। इसी उद्देश्यसे मैंने प्लेगके रोगियोंकी चिकित्सा और शुश्रूषा शुरू की। सबसे बड़ी कठिनाई निदानमें होती थी. अतएव मैंने मरीज़ोंकी परीक्षा आरम्भ की। मैं इस परिणाम पर पहुंचा कि प्लेग दो प्रकारका होता है।

(१) एकमें रोगीको तीव्र ज्वर होता है और गांठ निकल आती है। (२) दूसरेमें रोगीको ज्वर तो रहता है; पर गांठ नहीं निकलती। परन्तु गांठ और भी कितने ही कारणोंसे उठ सकती है, अतएव मुझे किसी निश्चयात्मक लक्षण ढूंढनेकी आवश्यकता जान पड़ी। मेरे एक डाक्टर मित्र ने इस गांठको भी सुलझा दिया। उन्होंने बतलाया कि रोगीकी नब्ज़में एक खास बात पैदा हो जाती है जो दूसरे किसी रोगीमें नहीं होती।

प्लेग एक जीवाणूत्पादित रोग है। जीवाणु या तो पैरके तलवे या हाथकी हथेली द्वारा शरीरमें घुसते हैं। जब यह रक्त वाहिनियोंमें पहुंचते हैं तो प्रजोत्पादन आरम्भ कर देते हैं। रुधिरके साथ वह समस्त शरीरमें फैल जाते हैं। रुधिर हृत्पिण्ड में पहुंचनेके पहले लसीका ग्रन्थि (lymphatic gland) में होकर जाता है। इस स्थान पर श्वेत रक्ताणुओंका जमाव रहता है। यहां पर पहुंचते ही

रुधिरमें के रोग जीवाणुओंपर श्वेत रक्ताणु हमला कर देते हैं और उन्हें हृत्पिण्डमें नहीं पहुंचने देते। अतएव यहां पर घोर संग्राम आरम्भ होता है। दोनों दलोंके वीर एक दूसरेको मारखानेका प्रयत्न करते हैं और साथ ही प्रजोत्पादनका कार्य भी जारी रखते हैं। इसी संग्रामकी विकालताके कारण ग्रन्थि फूल आती है और गांठ सी प्रतीत होने लगती है। जिनके शरीरमें ग्रन्थि पेशियों और चर्बीकी तहोंके नीचे दबी रहती हैं उनके गांठ नहीं दिखाई देती, यद्यपि सूजन दिखाई पड़ती है।

जिन सज्जनोंको प्लेगके रोगी की शुश्रूषा करनेका अवसर मिला है उन्होंने बहुत सी बातें देखी होंगी जिनका उल्लेख आगे चल कर करेंगे। प्रायः रोगी रोगग्रस्त होनेके थोड़े समय बाद ही मर जाता है। पर कभी कभी कई दिन तक रोगी बड़ी नाजुक हालतमें पड़ा रहता है। कारण यह है कि श्वेत रक्ताणु यदि बलवान हुए तो उन्हें हरानेमें समय लगता है और कभी वह जीत भी जाते हैं अर्थात् रोग जीवाणुओंको खा जाते हैं। अन्तिम दशामें रोगी अच्छा हो जाता है। परन्तु श्वेताणुओंके हार जाने पर रोग जीवाणु सारे शरीरमें फैल जाते हैं और रोगी मर जाता है। श्वेताणुओंको बलवान बनानेके लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य खुली हवामें रहे। परन्तु कभी यह खयाल करके कि मेरे श्वेताणु बलवान हैं, मनुष्यको गंदी जगहमें जहां खतरा हो कभी न रहना चाहिये।

प्रत्येक प्रकारके जर्म्सके लिए एक विशेष तापक्रम होता है, जिस पर वह अच्छी तरह रह कर फल फूल सकते हैं। यदि किसी प्रकार तापक्रम इस निश्चित तापक्रमसे बहुत ज्यादा या कम कर दिया जाय तो जीवाणु मारे जा सकते हैं। परन्तु तापक्रमका कम करना उचित नहीं। क्योंकि ऐसा करनेसे और कई प्रकारकी कठिनाइयां उपस्थित हो जाती हैं। तापक्रम बढ़ानेमें कुछ हर्ज नहीं। प्रायः गांठ या गिलटीको उत्तप्त लोहेसे दाग़ कर रोग शान्त किया जा सकता है। इस प्रकार बहुत से रोगियोंकी जान बचाई जा चुकी है। पर सदैव इस प्रकार सफलता प्राप्त नहीं होती। मैंने बोतलमें उबलता हुआ पानी भरकर या चूने पर पानी डालकर जो गरमी पैदा होती है, उसका भी उपयोग किया पर जैसा चाहता था वैसा परिणाम नहीं हुआ। अन्तमें मैंने पारद लवण अथवा पारद पर अलूमिनियमकी क्रिया द्वारा पैदा हुई गरमीका उपयोग कर बड़ी सफलता प्राप्त की। इसकी चरचा फिर कभी करूंगा।

—मथुरा प्रसाद श्रीवास्तव, एम. एस-सी.

नक्षत्र-संसार*

(ले०—पं० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार)

पिछले लेखोंमें तारोंको रचना दृष्टिसे ८ वर्गोंमें बांटा गया है। परन्तु केवल इतने आलोचन मात्रसे तारोंका वर्गीकरण समाप्त नहीं होता। बहुत से तारे नंगी आंखसे देखनेमें अकेले ही प्रतीत होते हैं; परन्तु अच्छे दूरबीनोंसे देखनेपर उनका रहस्य स्पष्ट हो जाता है। वह अकेले नहीं, परन्तु दो तीन चार और इससे भी अधिक पिण्डोंके समूह होते हैं। ऐसा भी सम्भव है कि एक ही दृष्टि रेखामें होनेके कारण वह एक दूसरेको ढकते से मालूम हों। केवल दृष्टि दोषसे वह युगल, त्रिक, या चतुष्क पञ्चकादि नहीं प्रतीत होते, परन्तु उनमें परस्पर ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि दोनोंकी जीवन यात्रा एक दूसरेसे पृथक् नहीं की जा सकती। उनको विवाहित तारा कहना अनुचित न होगा। ऐसे विवाहित तारोंके भी कई प्रकार

* विज्ञान भाग १३, संख्या ४ से आगे।

हैं, जिनकी आलोचना करनेसे बड़ा कुतूहल उत्पन्न होता है।

दम्पति वर्ग

ऐसे तारोंको हम बहुत से कारणोंसे दम्पति वर्ग ही संज्ञा देना चाहते हैं। क्योंकि जिस प्रकार गृहस्थमें पति पत्नी मिलकर एक दूसरेके भाग्य विधायक बनते हैं और एक गृहस्थ कार्यको वहन करनेवाले कहाते हैं उसी प्रकार इस वर्गके तारे भी एक दूसरेके भाग्य विधायक होते हैं और अपने अपने सौर जगतके कार्यका वहन करते हैं।

ज्यों ज्यों दूरबीनोंकी शक्ति बढ़ने लगी ऐसे युगल तारोंकी संख्या भी बराबर बढ़ने लगी। बहुत से ऐसे युगल भी निकले, जो केवल आंखसे तो पास पास दीखते थे, परन्तु यन्त्रोंके बलसे उनकी वास्तविक दूरी बहुत अधिक मालूम हुई। ऐसे तारोंका प्रायः एक तारेके रूपमें दीखना दृष्टि दोष ही है। अति समीप होनेसे आंख उनका विभेद नहीं कर सकती। बहुत से युगलोंमें भौतिक सम्बन्ध भी पाया गया है। सम्भवतः बहुत से ऐसे भी सहचर हों जो कभी किसी दशामें एक दूसरेसे पृथक् न किये जा सकेंगे।

ऐसे जोड़े केवल आंखसे एक ही तारा दीखा करते हैं। ऐसे सहचरोंका एक तारा अपनी स्वतन्त्र जीवन यात्रा नहीं निबाह सकता। और न दोनों इतना दूर ही हो सकते हैं कि वह आंखको अलग अलग दीखें। इस प्रकारके युगल तारोंको मित्र सहचर या मित्र युगल कहेंगे। संक्षेपमें यदि इनको दम्पति भी कहें तो कुछ बुरा न होगा। हमारे सौर जगतमें सूर्य अकेला है। परन्तु दम्पति वर्गके तारोंमें दो सूर्य इकट्ठे चमकते हैं। वह एक दूसरेकी परिक्रमा करते हैं। हो सकता है कि वह दोनों कदाचित् भिन्न ग्रह उपग्रह संघके केन्द्र बने हुए हैं, जो आकारमें छोटे होने और हमसे बहुत दूर होनेसे हमें दिखाई नहीं देते। यह एक बड़ी विस्मय जनक कल्पना होगी। हैं! यह ग्रह उपग्रह दो सूर्योंकी परिक्रमा कैसे करते होंगे, जब कि यह दोनों भी एक दूसरेकी परिक्रमा कर रहे हैं। यह अद्भुत दासदासियोंकी परिक्रमा गणितज्ञोंके दिमागोंको भी एक बार कुण्ठित कर ही देगी। पूरी तरहसे निरीक्षण करनेसे ही यह मालूम हो सकता है कि क्या दोनोंके ग्रहगण पृथक् पृथक् हैं, जिनपर साथी सूर्यकी किसी प्रकारकी दस्तन्दाजी नहीं चलती या दोनों के ग्रहगण समान भावसे शामिलाती हैं और एक प्रकारके परस्पराकर्षणमें बद्ध होकर गति करते हैं?

गगन मण्डलमें ऐसे दम्पति निःसन्देह बहुत अधिक हैं। शायद ५,६ मेंसे एक या इससे भी अधिक ऐसे ही तारे मिलेंगे। बहुत से तो दूरबीनोंसे भी पृथक् पृथक् नहीं दीखते। रश्मि चित्र-दर्शक द्वारा उनका विभेद प्रतीत होता है। १००० से अधिक दम्पति वर्गके तारे दूरबीनसे देखे गये हैं। परन्तु १४०० से भी अधिक ऐसे जोड़े हैं जो बहुत ही समीप हैं, जिनका अन्तर मापने पर २ विकलासे भी कम है। लिक् वेधशालाके प्रधान ज्योतिषी कैम्पबैलने तो यहां तक निर्णय कर दिया है कि गगनमण्डलमें ऐसा तारा ही विरला होगा जो विना किसी सहचरके अकेला अपना जीवन बिता रहा हो।

इस वर्गके तारोंमें प्रायः दो भिन्न भिन्न रंगोंके तारे ही होते हैं। जैसे वृश्चिकराशिमें पारिजात युगल है। हरिकुलेशमें उसका मुख्य तारा भी युगल है। दोनों देखनेमें गहरे लाल रंगके हैं, परन्तु उनमें पहलेका साथी हरित नील और दूसरेका साथी मरकती हरित है। इस तरहके बहुत से उदाहरण देखकर ज्योतिषियोंने निर्णय किया है कि लाल और हरे तारोंका अवश्य कोई दाम्पत्य सम्बन्ध है।

काश्यपीय, भूतेश, शेफालिका और बक मण्डलोंमें भी बहुत से रंगीन दम्पति पाये जाते हैं। इन सभोंमें सम्भवतः पारस्परिक सम्बन्धोंका ठीक पता लगा लिया जायगा। यद्यपि इस विषयमें

बहुत से सन्देह भी उठाये जा रहे हैं तो भी निर्णय सहसा नहीं हो सकता।

कई तारोंके सहचर तारोंमें प्रकाश बदलता दीखता है या क्रमसे घटता बढ़ता है। ऐसे सहचर भी निश्चयसे दम्पति वर्गके तारे हैं। या तो वह दोनों समान भावसे प्रकाशित हैं या एक न्यून प्रकाशवाला है। वक मण्डलमें एक ऐसा नमूना मिला है, उसमें एकका तो स्थिर प्रकाश है और दूसरा अपने रंग बदलता है। विशेष प्रकारके क्रान्ति मार्गमें गति करना ही दम्पति वर्गके होनेमें प्रबल प्रमाण है। जो तारे एक दूसरेकी परिक्रमा करते हैं निश्चयसे परस्पर दम्पति हैं। वह एक दूसरे से पृथक् नहीं हो सकते। यद्यपि किसी अनहोनी घटनासे दोनोंका सहभाव खण्डित हो सकता है तो भी साधारणतः यह दम्पति ही हैं।

निरीक्षणने ऐसे तारोंकी क्रान्ति मार्गीय गतिका भी पता लगा लिया हैं। इससे वस्तुतः ज्ञानके भण्डारका एक बड़ा भारी महाद्वार खुल गया है। यदि दोनों सहचरोंकी पारस्परिक गतियोंका निर्धारण हो जाय तो उन तारोंके परिमाण और प्रकाशन शक्ति आदि सभीका निर्णय सुगम हो सकता है। परन्तु उनकी गतिके ज्ञानमें बड़ी बड़ी अड़चनें हैं।

प्रथम परस्पर आनुपातिक गति गणनामें ही बहुत सी भूलें हो जाना सम्भव हैं। इतना थोड़ा स्थान अंश जो हमारे यन्त्रसे देखा भी नहीं जा सके वस्तुतः कई लाखों मीलोंकी वास्तविक गतिका द्योतक होता है। कई हजार वर्षमें पूरी होनेवाली परिक्रमाका मार्ग भी हमारे बड़े प्रबल यन्त्रोंसे देखने पर भी विशाल गगनपट पर एक बहुत ही छोटा दीर्घवृत्त बनाता है। आलोक चित्रणसे अवश्य बहुत सी कठिनाइयां दूर होगयी हैं। दम्पति वर्गके तारोंमें जो सहचर स्वतः उज्ज्वल और पर्याप्त रीतिसे दूर दूर हैं उनकी तो गति स्थिति आलोक चित्रण द्वारा बहुत ही स्पष्ट हो गयी है और उसमें किसी प्रकारका सन्देह भी शेष नहीं है। परन्तु जिस जोड़ेके साथी २ विकलासे भी अधिक समीप हैं उनका चित्र स्पष्ट नहीं आता। उनके प्रतिबिम्ब एक दूसरेमें रल मिल जाते हैं। और यदि एक तारा बहुत अधिक उज्ज्वल है और दूसरा बहुत मन्दा है तो मन्दे तारेका तो प्रतिबिम्ब ही नहीं आता।

इसके अतिरिक्त क्रान्ति मार्गमें तारेकी गति मापने में भी बहुत सी बाधाएं हैं। दम्पति वर्गके जिन तारोंमें २ विकला या इससे अधिकका अन्तर है और जिनके सहचर भी पर्याप्त उज्वल हैं उनके क्रान्ति मार्गका ज्ञान तो आलोक चित्रण द्वारा बहुत सहजमें हो जाता है। इसमें भी एक कठिनता यह रह जाती है कि इसमें दोनों तारोंका पृथक् पृथक् क्रान्तिमार्ग नहीं प्रतीत होता प्रत्युत, एक साझेका (उभयतोयुक) दीर्घवृत्त (Composite-ellipse) बना दीखता है, जिसमें दोनोंकी परस्पर भिन्न भिन्न स्थितियां स्पष्ट हो जाती हैं और जिससे दोनोंकी मिश्रित गतिका ज्ञान हो सकता है। यदि उनमेंसे एक सर्वथा स्थिर होता और दूसरा परिक्रमा कर रहा होता तो उनकी वास्तविक गतिका ज्ञान हो जाता। परन्तु ऐसा नहीं होता। दोनों एक दूसरेसे प्रभावित हैं। दोनोंकी गति उनके पिण्डोंके उलटे अनुपातमें हैं। सभी पिण्ड अपने जगतमें अपने परिक्रमा मार्गपर गति कर रहे हैं। प्रत्येक स्वयं उसी प्रकारकी गति करता है जैसी वह दूसरेमें उत्पन्न करता है। और उसकी निजी गति उसीके सम्बन्धी पिण्डोंके परिमाणोंपर निर्भर है। इसी प्रकार हमारे सूर्यनारायण भी ऐसे परिक्रमा मार्गपर दौड़ लगा रहे हैं जैसे पर उनके ग्रह लगा रहे हैं। दम्पति युगलोंमें दोनों तारे चाहे एक समान न भी हों तो भी दोनोंकी परिक्रमासे बना दीर्घ वृत्त उनकी गतिको स्पष्ट नहीं करेगा। दोनों एक दूसरे की भी परिक्रमा करते हैं; और दोनोंके परिक्रमा मार्ग एक जैसे हैं परन्तु तारे अपने क्रान्ति मार्गोंके व्यासोंके छोरोंपर ही विद्यमान रहते हैं। अर्थात् दोनों तारोंको मिलानेवाली सीधी

रेखा दोनोंके क्रान्ति मार्गोंकी नाभियोंमें से गुजरती है। परन्तु दोनोंकी गतिकी पृथक् पृथक् जांच करना बहुत कठिन है। बहुत से दम्पति युगलोंकी गतिका कुछ सीमा तक पता भी लगाई गयी है।

कन्या राशिमें चित्रा भी एक दम्पति युगल है, जिसके दोनों सहचर द्वितीय दीप्तिके हैं। दोनों के प्रकाश बारी बारीसे घटते बढ़ते हैं। दोनों १८० वर्षमें एक दूसरेकी पूरी परिक्रमा कर लेते हैं। दोनोंके परिक्रमा मार्ग समान हैं और बहुत लम्बे दीर्घ वृत्त (Elongated Eleipse) हैं। फलतः दोनोंके पिण्ड भी एक समान हैं।

पृथ्वीका कुछ और हाल

[ले०—प्रो० मनोहर लाल भार्गव]

क पिछले लेखमें हम बतला चुके हैं कि पृथ्वीकी अक्ष अपने कान्ति तलसे समकोण नहीं बनाती, किन्तु उसकी तरफ झुकी रहती है। इसीसे ऋतुओं का परिवर्तन और दिन रातका घटना बढ़ना सम्भव होता है। यदि अक्ष झुकी न होती तो सदा एकसा मौसम रहता और सर्वत्र एक समान १२ घंटेका दिन और १२ घंटेकी रात होती।

अक्षके झुकावके सम्बन्धमें एक और बात ज्ञातव्य है। वह सदा क्रान्तितलकी तरफ समान रीतिसे नहीं झुकी रहती। उसका झुकाव बदलता रहता है। वास्तवमें उसके ध्रुव छोटे छोटे वृत्तों पर घूमते हैं। इस वृत्तको पूरा करनेकी अवधि २१०० वर्ष है। इसका कारण सूर्य और चन्द्रमाका आकर्षण है, जो पृथ्वीके एक समान गोल न होनेसे झुकावको बदल देता है।

इस वृत्ताकार गतिके अतिरिक्त पृथ्वीकी अक्ष इधर उधर झूमती भी रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि कभी तो पृथ्वी कम झुकी रहती है और कभी ज़्यादा। इस परिवर्तनसे दिन मानमें भी साधारण घट बढ़के अतिरिक्त कुछ न्यूनाधिकता हो जाती है। जब अक्ष बहुत ही विचलित होती है तो ध्रुवीय प्रदेशोंमें ८३ दिन तक अधिक प्रकाश रहता है।

इस प्रकार पृथ्वी अक्ष पर नृत्य करती है, सूर्य की परिक्रमा करती है, मटकती है और हिलती है।

आइये अब देखें कि पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा किस प्रकार लगाती है। पृथ्वीका क्रान्ति मार्ग गोल वृत्ताकार नहीं है, किन्तु दीर्घ वृत्ताकार (Elliptical) है। दीर्घ वृत्तमें दो नाभि होती हैं, जैसे वृत्तमें एक केन्द्र होता है। सूर्य इस दीर्घवृत्त की एक नाभि पर स्थित है, अतएव पृथ्वीकी सूर्य से दूरी घटती बढ़ती रहती है। जब वह निकटतम स्थानपर रहती है तो उसकी दूरी ९१२५०००० मील होती है और जब दूरतम स्थान पर होती है तो उसका अन्तर ९४५०००००० मील होता है।

यहां पर यह कह देना आवश्यक है कि शुक्र और बृहस्पति (Venus and Jupiter) के आकर्षणसे यह दीर्घ वृत्त बदल सकता है और सम्भव है कि प्रति दो तीन लाख वर्षके बाद बहुत बड़ा अन्तर उपस्थित हो जाता हो और उस समय दोनों दूरियोंका भेद १४०००००० मील तक बढ़ जाता हो।

गरमी सरदीका होना पृथ्वीसे सूर्यकी दूरी पर निर्भर नहीं है, किन्तु उसकी अक्षके झुकाव पर निर्भर है। यदि उत्तरीय ध्रुव सूर्यसे विमुख हो गया है तो उत्तर गोलार्धमें जाड़ा होगा, नहीं तो दक्षिण गोलार्धमें। इसकी चर्चा तो ऋतुओं पर विचार करते समय करेंगे। अभी तो सिर्फ दो बातें याद रखनी चाहियें।

(१) पृथ्वीका क्रान्तिमार्ग परिवर्तनशील दीर्घ वृत्त है।

(२) पृथ्वीकी अक्षका झुकाव सदा एक सा नहीं रहता।

अभी तक हमने प्रकाश और अंधकारसे ही पृथ्वीकी गतियोंका सम्बन्ध बतलाया है। कुछ

गतियोंके और महत्व पूर्ण प्रभाव क्या पड़ते हैं, यह कहना बहुत मुश्किल है। वस्तुतः हम इस विषयमें कुछ नहीं जानते। पृथ्वी १८ मील प्रति सेकण्डके वेगसे चल रही है, पर यह किस लिए? सम्भव है—बल्कि निश्चय है—कि इस गतिका प्रभाव प्रकाश, विद्युत्, गुरुत्वाकर्षण आदि सभी शक्तियों पर पड़ता है। मान लो कि पृथ्वी देशमें एक स्थान पर खड़ी हो जाती है। क्या इसमें सन्देह है कि इस दशामें ताप, विद्युत्, प्रकाश आदि जितनी आकाशीय लहरें सूर्यसे पृथ्वी तक पहुंचेंगी उनका प्रभाव कुछ और ही पड़ेगा। अतएव स्पष्ट है कि पृथ्वीकी गतियोंका प्रभाव दिन रात, सरदी गरमी, और वायु अंधड़ पर ही नहीं पड़ता बल्कि उन विश्व-व्यापी शक्तियों पर भी जो आकाशीय पिण्डोंकी भाग्य विधायक हैं।

पृथ्वीके सामने मनुष्य बिलकुल नाचीज़ है, परन्तु पृथ्वी स्वयम् आकाशीय पिण्डों सामनेके त्रसरेणुके समान है। सूर्यके दस लाखवें भागके बराबर भी नहीं है; पर स्मरण रहे छोटीसे छोटी नीहारिका भी सूर्यसे बड़ी है; बड़ी नीहारिकाओं-का तो कहना ही क्या है। वह तो कल्पनातीत हैं। सर रावर्ट बालका कहना है कि पृथ्वीके क्रान्ति पथका व्यास १८५४००००० मीलसे कम नहीं है। अब एक ऐसे पिण्डकी कल्पना कीजिये कि जिसकी परिधि पृथ्वीके क्रान्ति पथके बराबर है। इस काल्पनिक पिण्डकी तुलना ओरायन—अग्रहणी—की नीहारिकासे कीजिये। हैं, यह क्या? ऐसे ऐसे दस लाख पिण्ड भी मिल कर उसके बराबर नहीं बैठते! और ओरायनकी नीहारिका तो आकाश गंगाके एक तारके समान ही है!

देशमें असंख्य पिण्ड हैं, असंख्य चमकते हुए सूर्य और उनसे भी अधिक ज्योतिहीन सूर्य; क्योंकि प्रकाशमान सूर्य तो केवल जुगनूकी तरह हैं और बहुत ही कम संख्यामें हैं। इन्हीं अनन्त पिण्डोंमें से एक पृथ्वी भी है।

पाठकोंको जीन्स महोदयकी कल्पनाका हाल हम फरवरी मासमें बतला चुके हैं। यहां उसी कल्पनाका चित्र भी देते हैं।†

चित्र ४२, ४३—पृथ्वीसे चन्द्रमा की उत्पत्ति।

जीवनके विषयमें हम क्या जानते हैं?

[ले०—मौलाना मुहम्मद हुसैन कुरैशी, एम-ए.]

जीवन और उसके नियमोंके सम्बन्धमें हमें क्या मालूम है, इस बातका निर्णय करना कई कारणोंसे कठिन काम है। एक कारण तो यह है कि हम स्वयम् जीवित हैं; अत-एव, उसमें स्वयम् लिप्त होनेसे, हम उस पर निष्पक्ष भावसे कभी विचार नहीं कर सकते। भूगर्भ शास्त्री खनिजोंका, गणितज्ञ कोण रेखा और

† देखिये विज्ञान भाग १४ अंक ५ पृष्ठ १८७

चित्रोंका अध्ययन निष्पक्ष होकर कर सकते हैं, परन्तु जीवन विषयपर जब हम विचार करने बैठते हैं तो अनेक जटिल प्रश्न आ उपस्थित होते हैं। क्या हम अपने प्यारे बन्धुबान्धवोंको, जो मृत्युके ग्रास हो चुके हैं, फिर देख सकेंगे। क्या ईश्वर वास्तव में है, क्या जीवन केवल चलती फिरती छाया मात्र है, क्या बर्कके मतानुसार हम "छाया हैं और छायोंके पीछे ही दौड़ रहे हैं।" तथापि हमें यथा सम्भव निष्पक्ष भावसे ही इन गूढ़ प्रश्नों पर विचार करना चाहिये।

सावधान होकर, पक्षपात को दूर रख कर जब हम इस विषयकी ओर बढ़ते हैं तो तत्सम्बन्धी अनेक कठिनाइयां आ खड़ी होती हैं। पहला काम यह है कि हम जीवनकी परिभाषा दे सकें। परन्तु प्राचीनकालसे विद्वान इस परिभाषाके बनानेमें असफल रहे हैं। कोई भी सन्तोषजनक परिभाषा अभी तक नहीं मिली है। अपनी ही खोजमें यह पहली खन्दक पार करनी है! दूसरी खन्दक विषयका विस्तार है। जीवन ने ही अनेक नगरोंका निर्माण किया; जीवनने ही इन पृष्ठोंकी रचना की; जीवनने ही कागज बनाया; और जीवनने ही उन पदार्थोंको सिरजा, जिनसे कागज बनाया गया। क्षुद्रवीक्षणके नीचे एककोषीय जीवको हम चलते फिरते देखते हैं। क्लोरोफार्मकी एक बून्द डालते ही उसकी हलचल बन्द हो जाती है, यह भी जीवनका नाटक ही है। एक युवा बाजार में खड़ा आने जानेवालोंको, सौदा लेने और बेचने वालोंकी छटा देख रहा है। वह भी वस्तुतः जीवनके खेल देख रहा है, पर एक समय था जब वह स्वयम् भी एक कोष मात्र था।

स्पष्ट है कि हमारा विषय बड़ा विस्तृत है और उसके अनुशीलनमें हमें छोटी चीजोंसे बड़ी की तरफ; जीवाणुओं, घुनों और काइयोंसे महाकाय हाथी और मनुष्योंकी तरफ, घुनोंके झुण्डों और समूहोंसे साम्राज्योंकी तरफ ध्यान ले जाना पड़ेगा। तात्पर्य यह कि "जीवन" से "मन" की ओर जाना पड़ेगा।

प्रस्तुत विषयकी कठिनाई इस कारण और भी बढ़ जाती है कि उसका सम्बन्ध अनेक विषयों से है। यह ठीक वैसी ही स्थिति है जैसी डाक्टरकी होती है। डाक्टर किसी हद तक तो रोगकी जांच कर सकता है, परन्तु शीघ्र ही उसे और शास्त्रोंकी सहायता लेनी पड़ती है जैसे रसायन और जीवाणु शास्त्रकी। बिना इन शास्त्रोंके चिकित्साशास्त्र एक डग भी आगे नहीं चल सकेगा और यदि चलनेका साहस भी करेगा तो भयानक और घातक स्थिति उपस्थित हो जायगी। "जीवन और मन" के विषयके विचारकोंको भी अनेक विज्ञानोंसे सहायता लेना आवश्यक है; परन्तु बहुत से विचारक आराम कुर्सियों पर पड़े ही पड़े अपना काम समाप्त कर देना चाहते हैं। यदि उनसे यह कहा जाय कि यकृतकी क्रियाको अच्छी तरह जान लेनेसे शायद मनके विषयमें वह अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे तो वह समझेंगे कि उनका अपमान किया गया है; कहां मनोविज्ञान और कहां रुधिर मांस निर्मित यकृत? इसी प्रकार "जीवन" विषयक विचारकोंका यह खयाल भी है कि रस शास्त्री, जो सदा निर्जीव पदार्थोंको परख नलिकाओंमें हिला हिला कर देखा करता है, वह इन गूढ़ प्रश्नोंके हल करनेमें क्या सहायता देगा। परन्तु वह यह भूल जाते हैं कि जीवनके कुछ मुख्य रहस्योंका उद्घाटन करनेवाला पाश्चर भी रसशास्त्री था और सम्भवतः उसका पहला रासायनिक अन्वेषण एक बड़े महत्वके प्रश्न पर कि जीव किस प्रकार खाते और बढ़ते हैं प्रकाश डालता है।

अब पाठकों को स्पष्ट हो गया होगा कि जिस भांति वैद्यक शास्त्रमें प्रतिदिन प्रतिवर्द्धन और संशोधन होते रहते हैं—क्योंकि उन विज्ञानोंमें नित्य नये नये शोध और आविष्कार हो रहे हैं, जिन पर वह अवलम्बित है—उसी भांति जीवन शास्त्रका रूप आये दिन बदलता रहता है। जीवन

शास्त्र अनेक शास्त्रों का परिणाम और फल स्वरूप है; उन सबमें जो परिवर्तन और परिवर्द्धन हो रहे, उनका प्रभाव इस शास्त्र पर पड़ता है; अतएव स्पष्ट है कि इसकी सबसे अधिक काया पलट होती रहती है। इसीलिए इस विषयकी पुस्तकें प्रायः आठ दस वर्ष बाद किसी कामकी नहीं रहतीं। उनके संशोधित और परिवर्धित संस्करण नहीं निकलते, वरन् पूर्ण ग्रन्थ फिरसे आद्योपान्त लिखकर छापा जाता है।

परिभाषा देनेके पहिले एक बात और समझ लेनी चाहिये। हम इस विषयके इतिहासमें एक बड़े महत्व पूर्ण और अपूर्व कालमें विद्यमान हैं। उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें प्राचीन कालके पाश्चात्य विश्वासों पर पानी फेरनेवाले एक सिद्धान्तकी रचना हुई, जिसके अनुसार जो जीव आज जिस रूपमें दीख रहे हैं वह उसी रूपमें सृष्टिके आदिमें नहीं रचे गये थे, वरन् उनका विकाश एक विशेष क्रमसे—जटिल रूपों और प्रभेदोंकी रचना सरलतर रूपों और प्रभेदोंसे—हुआ है। आजकल हर एक विचारवान् पुरुषको इस सिद्धान्तकी सच्चाईमें विश्वास है। जिस प्रश्न पर पचास वर्ष पहलेके विद्वान बड़ी बुरी तरह पशुवत लड़ते थे वही प्रश्न आज हल हो गया है। आज विकाशवाद एक प्रमाणिक तथ्य है।

तथ्यका होना एक बात है और उसकी व्याख्या करना या उसका पूरा क्रम बतलाना दूसरी बात है। यह एक तथ्य है कि हमारा विकाश बालरूपसे हुआ है, उसमें सन्देह करना मूर्खता है; परन्तु यह भी सच है कि इस वृद्धिकी पूरी पूरी व्याख्या करनेमें लाखों दार्शनिक महाप्रलयके दिन तक लगे रहें, तो भी इसका अन्त न होगा। उन्नीसवीं शताब्दीमें विकाशवादका झगड़ा इतना ज़्यादा बढ़ा कि जिनका उससे कुछ सरोकार भी न था—जो रायज़नी के क़ाबिल भी न थे—वह भी इसमें शामिल हो गये। वह अँधाधुन्ध मची कि विकाशवादके सत्य होने और उसकी व्याख्या करनेमें जो अन्तर था उसे लोग भूल गये। इसी प्रकार अब यह समझ लेना कि विकाशक्रमका पूरा पूरा हाल मालूम हो गया है अब कुछ ज्ञातव्य शेष नहीं महा भ्रमपूर्ण है।

बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें उन्नीसवीं शताब्दी ने जो कुछ भेंट दी हमने ग्रहण की, परन्तु निस्सन्देह वह भेंट अपूर्व थी। बीसवीं शताब्दीके जो कुछ वर्ष गुज़रे हैं, उनमें जो कुछ हुआ है वह भी कम सराहनीय नहीं है। जितने पुरुष और स्त्री संसार भरमें अब जीवनके रहस्योंके उद्घाटनमें प्रयत्नशील हैं, मनुष्य जातिके इतिहासके किसी कालमें भी इतने निस्वार्थ भावसे काम करनेवाले न थे। उनके परिश्रमसे हमारा ज्ञान बहुत विस्तृत हो गया है। उन्नीसवीं शताब्दी तो अब बहुत पुरानी बात सी मालूम होने लगी है। उस समयके प्रमाण ग्रन्थ केवल इतिहास दृष्टिसे अरस्तू और हर्वेके ग्रन्थोंके साथ पढ़े जाते हैं। विकाशवादकी सम्पत्तिके हम अधिकारी हुए हैं। इसीके आधार पर हमें चाहिये कि "मट्टीसे मनुष्यकी रचना कैसे हुई" वाली जटिल समस्या के हल करने का प्रयत्न करें।

पर शायद कोई कहे कि अब तक हमने अपने आलोच्य विषयकी परिभाषा तो दी ही नहीं है? न हमने यह बतलाया कि किस बात पर विचार करेंगे, और न यह बतलाया कि उसकी सीमा कितनी है? ऐसे प्रश्नका उत्तर यही होगा कि अन्तिम और पूर्ण परिभाषा तभी दे सकते हैं, जब हमारा विवेचन और अध्ययन समाप्त हो जाय। अभी तो काम चलाऊ वर्णन कर देना भर सम्भव है। वस्तुतः जीवनका असली भेद जान लेना और उसे परिभाषाके रूपमें प्रकट करना मानवी मस्तिष्ककी अन्तिम विजय होगी।

एक प्रकारका साधारण विवरण दे देना ही अभी संभव जान पड़ता है, और इसके बहाने जीवनके विषयमें हम कुछ जान भी जायेंगे। हम यह मान सकते हैं कि एक कंकड़ निर्जीव है; सम्भव

है कि ऐसा मानना ग़लती हो, परन्तु यह निश्चय है कि कंकड़ और कंकड़ पर चलनेवाले कीड़ेमें अवश्य भेद दिखाई पड़ता है। अतएव यह मान लेनेमें कोई हर्ज नहीं है कि कंकड़ आलोच्य विषयके बाहर है। परन्तु और पत्थरोंके विषयमें इतनी ज़ल्दी छुटकारा नहीं मिल जाता है। उदाहरणार्थ हीरेको लीजिये। शायद हम यह भी माननेको तय्यार हो जायं कि यह भी विषयान्तर है, परन्तु हीरेके रवे होते हैं और रवे बढ़ सकते हैं। रवे कभी कभी फट जाते हैं और उनमेंसे छोटे छोटे रवे बाहर निकल आते हैं, जो बादमें बढ़ सकते हैं। यह तो वैसी ही बात हुई, जैसी बच्चा पैदा होने और उसके बढ़नेमें होती है। इन बातों पर विचार करके यह कहा जा सकता है कि हमको यह कहनेका क्या अधिकार है कि रवे बे जान हैं। अतएव या तो जीवनका ऐसा वर्णन देना चाहिये, जिसमें रवे न आवें या यह मानना चाहिये कि रवे जानदार हैं।

यह केवल तर्कके लिए ही नहीं कहा जाता है। यदि जीवित चीजें बढ़ती हैं और रवे भी बढ़ते हैं, तो यह जान लेना परमावश्यक है कि इनकी वृद्धिमें अन्तर क्या है, कहां तक उनकी वृद्धिमें समानता है और कहां पर असमानता दृष्टिगोचर होती है।

विचार करनेसे पता चलता है कि जीवोंकी वृद्धि जीवन शक्तिका चमत्कार है, जीवोंमें यदि वृद्धि होती है तो क्षय भी होता है। बाहरी स्थितिके एक समान रहते हुए भी जीवोंमें वृद्धि और क्षय दोनों देखनेमें आते हैं। रवे यद्यपि बढ़ते हैं, परन्तु केवल बाहरसे उनपर तह चढ़ती जाती हैं। वाह्य परिस्थिति एक सी रहते हुए उनमें वृद्धिकी जगह क्षय नहीं हो सकता।

किसी ऐसी चीज़का उदाहरण लीजिये, जिसे हम जीवित समझते हैं। टेनीसनको दीवारकी दरारमें उगे हुए पुष्पको देखकर आश्चर्य हुआ था, अर सोलोमन पर उड़ते हुए उकाब का प्रभाव पड़ा था। यह एक बड़ा महत्वका उदाहरण है। परन्दका शरीर पदार्थ निर्मित है। जिस वायुके समुद्रमें वह तैर रहा है वह भी पदार्थमय है। परन्तु वह पदार्थमय पिण्ड जिसे पक्षीका शरीर कहते हैं, पदार्थ मय समुद्रमें ऊपर उठता है और साधारण गुरुत्वाकर्षण तथा गतिके नियमोंका तिरस्कार करता जान पड़ता है। गोली या पत्थर का टुकड़ा भी हवामें फेंका जा सकता है, परन्तु वह सदा एक वक्र पथ (Parabola) का अनुगामी होता है, थोड़े समय तक ऊपर उठता है और एक विशेष वेगसे थोड़ी देरमें पृथ्वी तलपर आ गिरता है। पक्षीका शरीर वायुमें उठता है, उतरता है और फिर चढ़ता है। वह उपरोक्त नियमोंको पालन नहीं करता। पर शरीरमें गोली लगते ही, पक्षी मरता है और शरीर नीचे गिरने लगता है। अब वह पत्थरके टुकड़ेके ही नाईं व्यवहार करता है। एक क्षण पहले वह उतरता चढ़ता, मंडलाता, चक्काता था, पर अब पत्थरका सहधर्मी हो गया। जिसके प्रभाव से उसमें अनोखापन था, उसीको हम जीवन कहते हैं। उसके अभावसे उसमें क्या महत् परिवर्तन आगया। यही बड़ा अद्भुत रहस्य है। जहां जीवन है, वहां मृत्यु भी है; जीवनके साथ साथ मृत्युका रहस्य भी कुछ कम आश्चर्य जनक नहीं है।

पत्थर न जीवित है और न मर सकता है। उसका व्यवहार सदा एक समान नियमोंके अधीन है और सहज ही ज्ञातव्य है। परन्तु जीवित शरीरका पदार्थ एक क्षण सूर्यकी तरफ चढ़ता है और दूसरे क्षण नीचे गिर पड़ता है। पहले वह जीवित था, अब मृत है! यह भयानक भेद कैसे पैदा हो गया?

यह विकट प्रश्न सृष्टिके आदि कालसे मनुष्यों तथा पशु पक्षियोंके हृदयमें उठता रहा है। एक कव्वेको मर जाने दीजिये, फिर देखिये कि कांव कांव करते हुए कव्वोंका समूह आ जुटता है। मनुष्यमें

तो परस्पर प्रेमका बंधन और भी बलवान है। मांकी ममता, पिताके प्यार, स्त्रीके पति प्रेम और अनाथों-के दुःखने सदा इस प्रश्नको मानवी हृदयमें हरा रखा है। आज भी यह प्रश्न उतने ही महत्वका है। इसका उत्तर जाननेके लिए पहले जीते जागते शरीरकी जांच करनी चाहिये। शायद उसीमें इस रहस्यकी कुंजी मिल जाय। शिकारी यदि मारे हुए पक्षीके शवको देखे तो उसमें बड़े जटिल यंत्र मिलेंगे। उसके समान कोई चीज़ अन्यत्र नहीं मिलती, पर मानवी मास्तिष्क न उसकी नक़ल अवश्य उतारी है। पक्षी और हवाई पोतोंके पर एक समान हैं, उसका हृदय पम्प है, फेफड़े धौंकनी का काम देते हैं। यह सब मेशीनरी है, और इसका अध्ययन यंत्रकी नाईं करना चाहिये। इस अध्ययन-के दो रूप हैं एक काटकर अवयवोंका देखना और दूसरे यह जाननेका प्रयत्न करना कि इनका काम क्या है। पहला काम व्यवच्छेद विद्या (anatomy) और दूसरा शरीर शास्त्रका है। जहां आंख काम नहीं देतीं, तरलों और अणुवीक्षणोंसे काम लेते हैं। अभी तक इन सब उपकरणोंकी सहायतासे भी केवल बाराखड़ी पढ़ पाये हैं; असली विषय तो बहुत दूर है।

उन्नीसवीं शताब्दीमें अणुवीक्षणसे यह पता चला कि ऐसे भी जीव हैं जो बिना उसकी सहायताके नहीं देखे जा सकते हैं। इनको माइक्रोब या अणुवीक्षणीय जीव कहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह जीवित हैं। दृश्य जीवोंमें वह इतने छोटे हैं और उनकी रचना इतनी सरल है कि जो बातें बड़े जीवोंके निरीक्षणसे नहीं जानी जा सकतीं उनका भेद खुलना, इन क्षुद्र जीवोंके निरीक्षणसे सम्भव जान पड़ता है। सम्भव है कि जीवन शक्ति-के इस सरलतम मन्दिरके सामने श्रद्धापूर्वक खड़े होकर ध्यान करनेसे उस देवी के दर्शन सुलभ हो जायं।

इन अणुवीक्षणीय जीवोंके आविष्कारके उपरान्त यह आवश्यक मालूम होने लगा कि हमारी परिभाषा इतनी व्यापक होनी चाहिये कि वह क्षुद्र जीव उसके भीतर आ जायं। यद्यपि रवे बढ़ते और एक प्रकारसे प्रजोत्पादन भी करते हैं, उनकी शुमार जीवोंमें नहीं होनी चाहिये। परन्तु वृक्षोंको निस्सन्देह इस गणनामें आ जाना चाहिये। पुराने पाश्चात्य विवेचक मानते थे कि वृक्ष केवल अर्द्ध जीवित हैं, पर वह साथ ही यह भी मानते थे कि स्त्रियोंके आत्मा नहीं होती। कीटाणुओंके अतिरिक्त जीवाणुओंको भी हमें शामिल करना पड़ेगा। यह कीटाणुओंकी नाईं आंखसे बिना अणुवीक्षण यंत्रकी सहायताके नहीं दीख पड़ते। यह जड़हीन शाखा-हीन और पत्रहीन होते हुए भी वनस्पति संसारमें शामिल हैं। उनका अध्ययन करनेसे यह जान पड़ता है कि उनमें वह सब क्रियाएं होती हैं जो जीवनकी विलक्षणताएं मानी जाती हैं।

यह भी एक बड़ा भारी उपदेश है, जो हमें ग्रहण कर लेना चाहिये। यहां हमें साफ दिखाई दे जाता है कि उड़ते हुए उकाब या फैले हुए बट वृक्षके से पेचीले शरीर यन्त्रोंका होना ही जीवनके लिए आवश्यक नहीं है, वह सरलसे सरल रूपमें भी प्रकट होसकता है। हम फेफड़ोंसे सांस लेते हैं; पेड़ोंमें यह काम पत्तियां करती हैं। कीटाणुओंके न फेफड़े होते हैं और न पत्तियां, तो भी वह सांस लेते ही हैं। वह बिना गुर्दे (kidney) के मल त्याग कर लेते हैं और बिना पेटके हजम। इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि सारा प्रपंच—पेचीली मेशीनरी—जीवन शक्तिकी कारीगरीका नमूना है। जीवन शक्तिने उसको सिरजा है; या वह जीवन शक्तिकी जन्मदात्री है? इसी प्रश्न पर पदार्थ वाद-का फैसला हो सकता है। निस्सन्देह जो बातें हमें कीटाणु जैसे तुच्छ प्राणी सिखा सकते हैं वह दर्शन और धर्म नहीं सिखा सकते।

अब तक हम अपने विषयकी पैमाइश कर रहे थे, सरसरी तौर पर यह देखना चाहते थे कि यह कहां शिरू होता है और कहां इसका अन्त है। बारह वर्ष पहले हम कह सकते थे कि कीटाणु ही

सरल तम जीव हैं और जीवनका विस्तार कीटाणुओंसे लेकर मनुष्य तक है। हम यह भी कह सकते थे कि कुछ लक्षण सभी जीवोंमें पाये जाते हैं। ऐसे वाक्य पाठकोंको १८५० से लेकर अब तककी पुस्तकोंमें मिल जायंगे, परन्तु हालमें ही रोगोंके अध्ययनने ऐसे जीवोंका होना भी सम्भव बतला दिया है, जिनका अभी तक हमें ख़याल भी न था, यद्यपि यह सच है कि हम उनके विषयमें इतना कम जानते हैं कि हमारा ज्ञान थोड़ीसे पंक्तियोंमें ही लिपिबद्ध हो सकता है।

पाश्चर महोदयने जब रोगोंका अध्ययन आरम्भ किया तो उन्हें उन प्राणियोंका पता चला जिन्हें हम जीवाणु कह आये हैं। उनके आकार भिन्न भिन्न हैं। कुछ तो इतने पतले हैं कि सबसे सकड़े अंगोंका व्यास $\frac{1}{50000}$ इंच (एक इंचका पचास हज़ारवा भाग) है। इनके देखनेमें आकारके छोटे होनेके कारण कठिनाई नहीं पड़ती, बल्कि उनके पारदर्शक होनेसे। अतएव उनके रंगनेके लिए उपयुक्त पदार्थोंको खोजना पड़ा। ख़ैर यहां तक तो ठीक ठीक काम चला।

पाश्चरके बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्हें हैड्रोफोबियाके जीवाणुओंका पता न चला, यद्यपि उन्होंने उनके शिकारको उनके चंगुलसे बचा लेने की विधि निकाल ली। अबतक उन जीवाणुओंके देखनेमें सफलता नहीं प्राप्त हुई है। इसी प्रकार खसरा (measles), कुकर खांसी (whooping cough), चेचक, बाल पक्षाघात (Infantile paralysis) आदिके जीवाणुओंका पता अभी तक नहीं लगा है। यह रोग सब बातोंमें जीवाणुउत्पादित रोगोंसे मिलते हैं। इसीलिए अन्तमें यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि शायद इनके जीवाणु इतने छोटे हैं कि क्षुद्रवीक्षण द्वारा दिखाई नहीं देते। हालमें ही यह प्रमाण मिल चुका है कि इन जीवाणुओंका अस्तित्व अवश्य है। वह देखे नहीं जा सकते। वह इतने छोटे हैं कि प्रकाशकी प्रकृति और नियमोंके कारण क्षुद्रवीक्षण द्वारा वह देखे नहीं जा सकते। यह छन्नोंमें से भी निकल जाते हैं। चीनी (पोर्सिलेन) हैज़े और मोती ज्वरके जीवाणुओंको रोक लेती है, पर उसमें से भी यह जीवाणु निकल जाते हैं। प्रोफेसर सैमन फ्लीक्सनरने यह साबित कर दिया है कि एक ऐसा ही प्राणी या वस्तु बाल-पक्षाघातका कारण होता है।

भिषगों और स्वास्थ्यरक्षाशास्त्रियोंके लिए यह बड़े कौतूहलका विषय है। पर हमारी दिलचस्पी तो इसमें इतनी ही है कि ऐसे भी जीव हैं—यदि हम उन्हें जीव कह सकते हैं तो—जो ज्ञात जीवोंके सहधर्मी हैं और जिनकी रचनाके विषयमें हम बिल्कुल अंधकारमें हैं। अब तक हमारा विश्वास यह था कि जीवनकी इकाई सेल (कोष) है। इसीसे सब जीवोंकी रचना हुई है और प्रत्येक सेलका जन्म पहलेकी किसी सेलसे हुआ होगा। पर अब इन अदृश्य, परा-क्षुद्रवीक्षणीय जीवन-प्रकारों—यदि हम उन्हें इस नामसे पुकारनेकी धृष्टता कर सकते हैं—के आविष्कारके बाद हमें सावधान हो जाना चाहिये। पाश्चरने जिन जीवोंको देखा था उनसे भी सरलतर जीव मौजूद हैं। अब जीवनका विस्तार पुरा-जीवाणुसे मनुष्य तक मान सकते हैं, पर कौन कह सकता है कि यही दो चरम सीमाएं हैं। मनुष्यसे बढ़कर भी और जीव हो सकते हैं !

आइये फिर उकाबकी तरफ ध्यान दें। यदि हमें यह न मालूम होता कि उसकी उत्पत्ति कैसे हुई तो बड़ा मनोरञ्जन होता, पर हम जानते हैं कि उक़ाबके पहले बच्चा था, बच्चा अण्डेमेंसे निकला। सारांश यह कि उकाब एक ऐसी चीज़में से निकला जो स्वयम् उकाब न थी।

अब अण्डेकी परीक्षा कीजिये। यह क्या है, यह सिर्फ एक अकेली सेलका सामान मात्र है, जिसकी सहायतासे वह सेल चाहे कव्वा पैदा करे चाहे कोयल, चाहे उल्लू पैदा करे चाहे हुमा। पुरा-क्षुद्रवीक्षणीय जीवोंको छोड़कर हम कह सकते

है कि सारी सृष्टि इन्हीं सेलोंकी लीलाका परिणाम है।

पीपलका पेड़, उकाब, या आदमी सेलों या सेलोत्पादित पदार्थोंसे बना हुआ है, पर जब हम इनके आरम्भकी ओर दृष्टि डालते हैं तो एक सेल ही नज़र पड़ती है।

सूर, तुलसी, केशव, गांधी और तिलक सब एक ही सेलसे पैदा हुए हैं, जिसका व्यास १/२० इञ्चसे अधिक न था और जिसका वजन इतना कम कि रत्तियोंके भिन्नोंमें भी उसे बतलाना कठिन है। इन्हीं नन्हीं नन्हीं सेलोंने जो चमत्कार दिखलाया वह जगतको विदित है। पदार्थके एक कण मात्रका यह महत्व! पर भूल न जाइये पदार्थके साथ मन और जीवन भी था। "मन और जीवन" के रहस्य निस्सन्देह बड़े गूढ़ हैं।

पृथ्वी कबसे नाच रही है?

चाहे नीहारिकावादको मानिये और चाहे उल्कावादको, हमको यह मानना पड़ेगा कि एक समय पृथ्वी द्रवरूप थी। वर्तमान ठोस रूपमें तो पृथ्वीका मानसिक चित्र बनाना आसान है, परन्तु यह कल्पना करना कि लहर मारते हुए, खौलते हुए, चंचल द्रवीभूत धातुओंके गोलाकार पिंडके रूपमें भी यह शस्य श्यामला बसुन्धरा किसी समय थी बहुत कठिन हो जाता है।

आदिमें पृथ्वीका खुरण्ट नहीं था, ऊपरी ठोस पृष्ठ न था। समस्त पृथ्वी तल समुद्र था, और सो भी कैसा? आजकलका नीलमा युक्त समुद्र नहीं, जिसकी लहरें सैकड़ों फुट तक चान्दीके समान उज्ज्वल तटस्थ रेत पर जाती और आती हैं, या जिस पर श्वेत पंख युत जहाज़ चलते हैं; वरन् खौलते और भाप देते हुए, लावाका मूर्तिमान तूफान था, जिसमें भारी धातवीय वायुकी आंधीके कारण बड़ी बड़ी ऊँची लहरें उठती थीं और लोहेकी वर्षा रूपी कोड़े खा खाकर जिसमें भयानक हलचल होती थी।

यह आदिम समुद्र बहुत भारी था। इसमें तरंग उत्पन्न करनेके लिए कोई चन्द्रमा विद्यमान न था। सूर्य भगवान ही उसे आकर्षण द्वारा खींचते और मथते थे। उस समय वायु मंडलका दबाव ६० मन प्रति वर्ग इंच था (आजकल प्रायः ८ सेर ही है)। यही भारी वायु मण्डल उस प्राचीन समुद्रमें लहरें उत्पन्न करता था। ध्रुवों और निरक्ष देशके बीचमें धाराएं चलती थीं, क्योंकि ध्रुवोंपरकी ठंडी धातु निरक्षदेशको चली जाती थी। उस ज़मानेमें भी साइक्लोन और एंटी साइक्लोन भी उठते रहते होंगे, जिनके वेगसे भी द्रवित मास स्थानान्तर करता होगा।

इस भयङ्कर निरंकुश समुद्र पर सदा अंधकार छाया रहता था, क्योंकि सूर्यका प्रकाश भारी धातुवीय वायु मंडलको भेद कर उस तक पहुँच ही न पाता था। हां, कभी कभी उल्का पिण्डोंके जल उठने, अग्निमय लहरोंकी चमक, और महा भयानक बिजलीकी क्षणस्थायी ज्योतिसे यह अंधकार कहीं कहीं कुछ कम अवश्य हो जाता था। बिजलीकी कड़क, भारी लहरोंका धमक, धातवीय अंधड़ोंका भयानक नाद और गिरते हुए तारोंकी सनसनाहटसे अद्भुत समा पैदा हो जाता था। अग्निकी लीलाका एक यह नमूना है।

परन्तु ताप भी क्षणस्थायी है। प्रत्येक गरम चीज़ ठंडी हो जाती है, चाहे वह गरम आलू हो, चाहे श्वेत उत्तप्त नीहारिका और चाहे एक प्रकाशमान विश्व। निरन्तर तापके विसर्जन होते रहनेसे यह पृथ्वी रूपी देगका खौलना बन्द हुआ और वह सिर्फ धुआं देने लगी। ठंडे द्रवकी धाराएं केन्द्रकी ओर जाने लगीं और गरम द्रव ऊपरको आने लगा। जिस प्रकार ठंडके दिनोंमें तालाबों पर ठंडी हवाके थपेड़ोंसे बरफकी पपड़ी पड़ जाती है, उसी प्रकार

इस द्रव समुद्र पर भी पपड़ी बनने लगी, जिसमें वायुके झकोरे लगते रहते थे।

इस कालमें पानी सब वाष्पके रूपमें वायुमंडलमें था। यों समझिये कि २ मील ऊंचा पानीका एक गिलाफ पृथ्वी पर चढ़ा हुआ था। इसका दबाव पृथ्वी पर ४००० फुट मोटी चट्टानके बराबर था। प्रायः दबाव पड़नेसे द्रवोंको ठोस होनेमें सहायता मिलती है; इसी कारण उपरोक्त दबावके प्रभावसे पृथ्वी पर खुरण्ट बड़े ऊंचे तापक्रम पर ही बनना शुरू हो गया। तापक्रम प्रायः २००० फा० से अधिक था। इतने घने दबावके होने और गरम नम वायु मण्डलसे घिरे रहनेसे पृथ्वी बहुत धीरे धीरे ठंडी होती थी; परन्तु ठंडे होनेसे उसका आयतन घटता जाता था, जिससे भी और दबाव बढ़ता था।

इस प्रकार पृथ्वी पर जो खुरण्ट बन रहा था, उसपर वायुमण्डलका दबाव पड़ता था, तूफान और अंधड़ उसपर खूब थपेड़े लगाते थे, उसपर सूर्य और शायद चन्द्रमा भी, यदि उसका जन्म होगया था तो, आकर्षणकी डोरसे जोर लगा रहा था, उसके नीचे जो द्रव था उसमें भी तरंग उठते रहते थे। इन सब कारणोंसे खुरण्ट कभी हिलता था, कहीं ऊपरको उठकर गिरता था, कहीं उसमें शिकन पड़ जाती थी और कहीं उसमें खड़ खड़ाहट होती थी। जब बहुत गड़बड़ होती थी, तो भूकम्प होता था; खुरण्ट फट और टूट कर इधर उधर हो जाता था और उसके नीचेसे द्रव निकल आता था। ठीक वही दृश्य नज़र आता था, जो बरफसे ढके हुए दरयामें बरफके गलने पर होता है। इसी भांति खुरण्ट अनेक बार बनता था और अनेक शक्तियोंके प्रभावसे टूट टूट जाता था। इस कालको भूकम्प और ज्वालामुखियोंका युग कहना अत्युक्ति न होगी।

इसके साथ ही यह भी याद रखना चाहिये, कि प्रत्येक बार खुरण्ट अधिक मोटा और मज़बूत मिलता और बनता था, क्योंकि ठंडे होनेका क्रम तो बराबर जारी था ही। अतएव कुछ कालमें खुरण्ट इतना बलवान होगया कि सिकुड़नेके कारण जो दबाव पैदा होता था उससे वह चटखता न था। सिर्फ खुरण्ट कहींसे ऊंचा, कहींसे नीचा, नाहमवार हो जाता था और कहीं कहीं, कटन और फटनके निशानात उसमें दिखाई पड़ते थे। पृथ्वी जब और ठंडी हुई तो जलवाष्प द्रवीभूत होकर बरसने लगी। गरम जल, जिसका ताप क्रम प्रायः ३६७°श था, पृथ्वी तल पर गिरता था, पर पृथ्वीका तापक्रम और भी ज्यादा था; अतएव पानी उसपर गिरते ही सनसन करता हुआ फिर वाष्पमें परिणत हो जाता था; परन्तु शीघ्रतासे उड़नेके कारण वह पृथ्वीको पहलेसे अधिक ठंडा छोड़ जाता था। वैसे भी पृथ्वी ठंडी हो ही रही थी; अतएव कुछ दिन बाद पानी यत्र तत्र इकट्ठा होने लगा। यह छोटे छोटे ताल तलइयां ही बड़े बड़े समुद्रोंके पूर्वज थे!

आजकल पृथ्वीका खुरण्ट ठोस और स्थायी है। यह बात अलग है कि कभी कभी वह मुंह फाड़ एक आध टापूको हड़प कर जाता है या हिल कर शहरों, जङ्गल और पहाड़ों तकको हिला या गिरा देता है। परन्तु जब हम यह विवेचन करने लगते हैं कि इस खुरण्टके नीचे क्या है, तो हम बड़े विवादग्रस्त विषय पर आ जाते हैं, जिसमें बड़ा मत भेद है। वस्तुतः यह निर्णय करना कठिन है कि पृथ्वीका केन्द्रस्थ भाग ठोस है या द्रव। आइये इस प्रश्नसे सम्बन्ध रखनेवाली बातोंपर विचार करें।

जब हम पृथ्वीके खुरण्टके तापक्रमकी जांच करते हैं तो पता चलता है कि १०० फुट नीचे तक तो उसका तापक्रम सूर्यसे आई हुई गरमीके अनुपातमें घटता जाता है। लगभग १०० फुटके आगे सूर्यकी गरमी नहीं पहुँचती। इस गहराई पर तापक्रम सदा ५२° फा रहता है। यहां तक तो गरम भीतरी भागका पता नहीं चलता, परन्तु जब हम और आगे जाते हैं तो तापक्रम बढ़ना

हुआ पाया जाता है। जिस क्रमसे ताप क्रम बढ़ता है वह चट्टानोंके रासायनिक संगठन और वाहकता पर निर्भर है; परन्तु प्रायः यह देखा जाता है कि समान गहराई पर समान तापक्रम पाया जाता है। यह बात सच है कि खुदाई बहुत दूर तक नहीं हुई है। सबसे गहरा छेद जो अब तक खोदा गया है २१६० गज गहरा है। यह अपर सिलेशियामें खोदा गया था। एक और विवर जर्मन इंजीनियर (Captain Huyssen) ने खोदा था, वह १८७७ गज गहरा था। साधारणतः देखने पर यह बहुत गहरे छेद मालूम पड़ते हैं, परन्तु यों समझिये कि एक दानवकी देहमें कांटोंकी खराश आगई, क्योंकि पृथ्वीका अर्धव्यास ४००० मील है।

केपटेन हुस्सेनने छेद कोयलेकी तलाशमें खोदा था, किन्तु साथ ही साथ उनको कुछ वैज्ञानिक खोजका भी शौक था। उन्होंने यह मालूम किया कि १०० फुटके नीचे प्रत्येक ६६ फुट पर १° का तापक्रम बढ़ जाता है। एक मील पर ८०° का तापक्रम बढ़ा हुआ मिलता है। और प्रयोगोंसे मालूम हुआ है कि इस नियमके बहुत से अपवाद हैं, परन्तु यह निश्चय सा जान पड़ता है कि ५० या ६० फुट पर १° का तापक्रम बढ़ जाता है।

हमारे पैरों तले अतएव बहुत पतली सी ठंडे पदार्थकी तह है। पृथ्वीकी ऊपरी २ मील मोटी तह छील डालिये, फिर निश्चय है कि हम सबकी वही दशा होगी जो सीख पर चढ़े मांसकी। स्मरण रहे कि दो मीलकी तह पृथ्वीके अर्ध व्यासके सामने कुछ भी नहीं है।

यदि चट्टानोंका तापक्रम इस भांति बढ़ता जाता है तो अनुमानतः उनके नीचे अधिकाधिक गरम चट्टानें मिलनी चाहिएं, गो इनमें ताप शायद उसी क्रमसे न बढ़ता मिले। अतएव हम यह माननेको वाध्य होते हैं कि पृथ्वीका अन्दरूनी हिस्सा बहुत गरम है, इतना गरम कि ५० मील नीचे शायद ही कोई चट्टान बिना पिघले बचे। इससे भी अधिक गहराई पर गरमी और भी गज़ब की होगी। जिस उत्तप्त नीहारिकासे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है, उसकी बहुत सी गरमी अभीतक पृथ्वीने अपने गर्भमें जमा कर रखी है!

शायद पाठक समझेंगे कि अब स्पष्ट हो गया कि पृथ्वीका केन्द्रीय भाग द्रव क्या वाष्प रूपमें होगा, पर समस्या बड़ी कठिन है। दबाव द्रवोंके ठोस होनेमें सहायक होता है और पृथ्वीके केन्द्र पर बहुत बड़ा दबाव रहता है। एक तो ऊपरके ठंडे और सिकुडे हुए खुरण्टसे केन्द्रीय भाग इस तरह जकड़ा है जैसे किसी शिकंजेमें दूसरे हजारों मील मोटी चट्टानोंका दबाव भी बहुत अधिक है। इस दबावका अंदाज़ा इस बातसे हो सकता है कि हज़ार मील नीचे की मट्टी लोहे समान भारी होनी चाहिये। दस फुट मोटी चट्टानका दबाव १०½ सेर प्रति वर्ग इंच होता है, एक मीलका ८४ मन और १० मीलका ८४० मन प्रतिवर्ग इंच। यह उतना ही दबाव है जितना १०० टनकी तोपमें कोर्डैट के स्फोटनसे होता है। अब सोचिये कि पृथ्वीके केन्द्र पर कितना अधिक दबाव होगा!

सारांश यह कि यद्यपि पृथ्वीके केन्द्र पर इतनी गरमी है कि कठोरसे कठोर चट्टान भी द्रवीभूत या वाष्पीभूत हो जा सकती है, तथापि हमको यह कहनेका अधिकार नहीं है कि वहांपर चट्टानें वस्तुतः द्रवित या वाष्पीभूत हैं, क्योंकि हम नहीं जानते कि दबावसे तापके प्रभावोंमें क्या परिवर्तन हो सकता है। प्रश्न यह नहीं है कि गरमी गलाने या वाष्पमें बदलनेके लिए साधारण दशामें पर्याप्त है या नहीं, वरन् समस्या यह है कि इतने अधिक दबाव पर भी चट्टानें द्रव या वाष्पमें परिणत हो सकती हैं या नहीं।

दबावसे पदार्थोंका द्रवण बिन्दु बदल जाता है। साथ ही हम यह भी जानते हैं कि असाधारण तापक्रम और दबाव पर पदार्थोंका व्यवहार भी असाधारण होता है। (असमाप्त)

जीता जागता अद्भुतालय

मनुष्य देह एक जीता जागता अद्भुतालय है। इसका अध्ययन विविध दृष्टियोंसे किया जा सकता है। चित्रकार, शिल्पकार, व्यवच्छेदक, चिकित्सक, शारीर शास्त्री, सभी अपनी अपनी दृष्टिसे इसका अध्ययन करते हैं। हम भी आज शारीर शास्त्रकी दृष्टिसे इस पर विचार करना चाहते हैं। हम मानव देहके सौन्दर्य, रंग, अस्थि रचना अथवा रोगों पर विचार नहीं करेंगे। हमारा आलोच्य विषय होगा उसकी गति और क्रियाएं। मृत देहका चित्र चितेरा उतार सकता है, रसज्ञ उसका विश्लेषण कर सकता है, व्यवच्छेद शास्त्री उसकी काट छांट कर सकता है, परन्तु शारीर विद्याका सरोकार जीते जागते, चलते फिरते, खाते पीते, विविध काम करते शरीरसे है। उपयुक्त स्थितियोंमें जब शरीर जीवित होता है तो हृत्पिण्ड धड़कता है, सांस आती जाती है, अंग चलते हैं, आमाशय हज़म करता है। शारीर शास्त्र इन्हीं क्रियाओं और विधियोंकी जांच करता है और यह जाननेकी चेष्टा करता है कि यह क्यों और कैसे होती हैं।

अपना काम आरम्भ करते ही शारीर शास्त्रको जीवनकी समस्याका सामना करना पड़ता है। वह क्या चीज़ है जो देहसे निश्चित अवस्थाओंमें निश्चित किन्तु अद्भुत काम कराती है? वह क्या चीज़ है जो मांसके छोटेसे लाल थैलेको, जिसे हम हृत्पिण्ड कहते हैं, फैलाती और सिकोड़ती रहती है; प्रतिक्षण वर्षों तक, जन्मसे मृत्यु तक उसकी यह क्रिया जारी रखती है। किसकी प्रेरणासे पसलियां प्रत्येक मिनटमें सोलह या सत्रह बार उठती बैठती हैं? किसके प्रभावसे रोटी और पानीसे मांस और रुधिर बनता है? और क्यों विषका एक कतरा थोड़ी सी देरमें सब बातें बन्द कर देता है।

प्रायः कहा करते हैं कि "जीवन" ही इन क्रियाओंकी जड़ है। पर प्रश्न यह होता है कि "जीवन" क्या चीज़ है? जब हम यह कहते हैं कि जल-वाष्प से इंजन चलता है तो हम यह समझ जाते हैं कि प्रेरक शक्ति क्या है। हम समझते हैं कि वाष्प-फैलती होगी और पिस्टनको (डाटको) धक्का देकर सरका देती होगी। पिस्टनकी प्रेरणासे पहिये चलते होंगे। परन्तु जब हम यह कहते हैं कि "जीवन शक्ति" पट्ठोंको चलाती है, तो हम केवल एक अज्ञेय शब्दका प्रयोग भर करते हैं, वास्तविक रहस्यपर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

जीवित शरीरकी प्रेरक शक्ति कुछ भी क्यों न हो यह निश्चय है कि वैसी ही शक्ति गुलाब, पीपल आदिमें भी काम कर रही है। पर जीवित पशु और पौधोंके धर्मोंकी बालकमानी क्या है, कैसी है और कहां है? यही शारीर शास्त्रियोंकी बड़ी भारी समस्या है; यद्यपि वह सैकड़ों वर्षोंसे उसे हल करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, पर अभी तक सफल नहीं हुए हैं।

लगभग ढाई सौ वर्ष हुए कि एक डच वैज्ञानिक लीयूवेनहोइक (Leuwenhoek) ने एक क्षुद्र-वीक्षण बनाया, जिसकी सहायतासे उसने बहुत सी चीज़ें ऐसी देखीं जो पहले देखनेमें नहीं आयी थीं। इस सफलतासे लोगोंको बड़ी आशा हुई कि अब तो हम चीज़ोंका भीतरी रहस्य भी जान लेंगे और जीवोंकी शारीरिक क्रियाओंकी बालकमानी का पता चला सकेंगे। परन्तु क्षुद्र वीक्षण यंत्रने इस रहस्यको खोलनेके स्थान पर यह बतला दिया कि शरीरोंका संगठन जितना हम समझते थे उससे भी अधिक पेचीला है।

इसी भांति भौतिक और रसायन शास्त्रियोंने भी इस सफलताकी बड़ी बड़ी आशायें बांधी थीं। गत सौ वर्षोंमें रसायन शास्त्रने बड़ी उन्नति की है। उसने यह बतलाया है कि जीवोंके मुख्य घटक (जीवाद्यम) में कर्बन, उज्जन, ओषज, नत्रजन और गंधक रहता है। यह भी ज्ञात हुआ है कि

जीवोंके देहोंमें दहन और ओस्मोसिसके समान ही क्रियाएं होती हैं। इन बातोंसे कुछ लोगोंने यह नतीजा निकाला कि जीवित द्रव्य भी साधारण रासायनिक नियमोंका पालन करता है और वह यह अनुमान करने लगे कि जीवोंकी सृष्टि भी रासायनिक विधियोंसे हो सकती है। अब तक तो जीवित द्रव्य (जीव) की रचना कृत्रिम रीतिसे रस शालाओंमें हो नहीं पायी है, आगेकी ईश्वर जाने। हां, अल्ब्यूमेन जो जीवित द्रव्यका एक मुख्य अंग है सफलता पूर्वक बन चुका है। वर्तमानमें तो सजीव द्रव्यका रासायनिक क्रियाओं द्वारा बना लेना असम्भव जान पड़ता है और न जीवनकी पूरी क्रियाओंके ज्ञान प्राप्त होने की ही आशा हो सकती है। कोई जीव ऐसा नहीं पाया जाता जिसकी उत्पत्ति जीवसे ही नहीं हुई है। हम ओस्मोसिस, तल-तनाव, और दहन क्रियाओंका अनुकरण कर सकते हैं और यह सभी क्रियाएं वनस्पतियों और पशुओंमें होती भी रहती हैं। परन्तु इस अनुकरणमें और परस्पर-सम्बद्ध-जीवन-क्रियाओंमें महद अन्तर है। प्रजोत्पादन करनेवाला और स्वभावानुकूल अथवा विचारानुकूल काम करनेवाला जीव पैदा कर लेना कुछ बात ही और है।

पहले तो इसमें ही सन्देह प्रतीत होता है कि उन परमाणुओंको लेकर, जिनसे जीवित पदार्थके अणु बनते हैं, हम कोई यौगिक बना सकेंगे। और यदि बना भी सके तो वह जीवोंके से काम कर सकेगा या नहीं। एक सा संगठन या बनावट का होना समान धर्मी होनेका प्रमाण नहीं है अर्थात् संगठन समान होते हुए भी धर्म असमान हो सकते हैं। बरफ और जल वाष्प मतिकी दृष्टिसे समान धर्मवाले नहीं हैं, यद्यपि वह दोनों एक ही पदार्थके रूप हैं। उनका संगठन एक सा है। इसी भांति उपरोक्त पदार्थ, जो जीवोंके शरीरोंके घटकोंसे संश्लेषण द्वारा बना भी लिया जायगा, इसके गति सम्बन्धी धर्म जीवोंके से होंगे ही, यह आवश्यक नहीं है। हम जीवनके रचयिता होनेका तो दावा तभी कर सकते हैं जब हम ऐसे पदार्थकी रचना करदें, जिसकी गतियां और प्रजोत्पादन और वृद्धिके धर्म जीवोंके समान हों। जहां प्रजोत्पादन होता है, तहां परिवर्तन (variation) हो सकता है; परिवर्तन और उपयुक्त स्थितिसे विकाश होना सम्भव हो जाता है और विकाश द्वारा अमीबासे मनुष्य और मरकट तक बन सकते हैं।

अभी तक किसीको जीवित पदार्थके बनानेमें सफलता नहीं हुई है। यह सच है कि एक योग्य वैज्ञानिक डा० बेस्टियन (Dr. Bastian) का मत है कि कुछ घोलोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके जीवाणु पैदा हो जाते हैं, यद्यपि उनमें पहले किसी प्रकारके जीव मौजूद नहीं होते। अधिक संभावना यह जान पड़ती है कि उनके घोलोंमें जीवाणुओंके दाने किसी भांति पहुंच जाते होंगे।

सौरमण्डलके विकाशमें अन्तिम वस्तु जीवन ही पैदा हुई है। करोड़ों वर्ष तक सौर मण्डलमें कहीं जीवनका नाम तक न था। युगों तक हल चल और अग्नि वर्षा होती रही, तब कहीं जीवनकी उत्पत्ति हुई। अतएव यह समझना शायद न्यायसंगत होगा कि नृत्य करती हुई नीहारिका और जलते हुए पिण्डोंमें ही जीवनका खमीर पक रहा था। यदि हम नीचातिनीच कोटिका अत्यन्त सूक्ष्म जीव भी पैदा करना चाहते हैं तो हमें नीहारिकाओं, चक्कर लगाते हुए ग्रह और द्रव रूप विश्वकी धधकती हुई घरियासे ही आरम्भ करना पड़ेगा।

उपरोक्त बातोंपर विचार करनेसे तो ऐसा ही जान पड़ता है; परन्तु बहुत से सज्जन ऐसे हैं जो जीवनको भी प्रयोगशालामें होनेवाली अनेक रासायनिक प्रक्रियाओंकी कोटिमें ही रखते हैं और आशा रखते हैं कि एक न एक दिन वह किसी प्रकारकी वनस्पति अथवा जीव जन्तु साधारण रासायनिक विधिसे पैदा करनेमें समर्थ

हो जायंगे। यद्यपि यह आशा दुराशा मात्र प्रतीत होती है, तथापि यह कहना पड़ेगा कि निर्जीव पदार्थ इतना जीवन शून्य नहीं है जैसा कि ऊपर से दीख पड़ता है।

प्रत्येक परमाणु, चाहे वह जीवित द्रव्यका हो चाहे निर्जीवका, वस्तुतः बड़ी भारी शक्तिका केन्द्र है, वह भी एक प्रकारका सौरमण्डल है, जिसमें अद्भुत अनेक कण एक केन्द्रकी परिक्रमा लगा रहे हैं। हालमें यह भी सिद्ध हो चुका है कि आदमीकी मृत्यु हो जानेपर उसके सभी तन्तुओं-का मर जाना आवश्यक नहीं है।

डा० कैरेलने अमेरिकाकी रौकफैलर इंस्टि-ट्यूशनमें एक बड़ा चमत्कारक प्रयोग किया था। उन्होंने एक (embryochick) झिल्लीमें बन्द मुर्गीके बच्चेके हृत्पिण्डके एक भागको काटकर पोषक घोलमें १७ जनवरी, सं० १९१२ ई० के दिन रखा। कुछ दिन तक वह स्पन्दन करता रहा, बादमें स्पन्दन बन्द हो गये। परन्तु हृत्पिण्डका टुकड़ा मरा नहीं। वह नये बन्धक-तन्तु-कोष † बनाता रहा और २९ वीं फरवरीको वह फिरसे स्पन्दन करने लगा। प्रत्येक मिनटमें १२० स्पन्दन करता था। मार्च और अप्रेल मासमें वह बराबर स्पन्दन करता रहा, यद्यपि उसकी गति ६०-१२० तक बदलती रही। वह इतनी अधिक सेलें बनाता था कि कभी कभी उन्हें छांट देना पड़ता था। १ मईको घटना वश वह नष्ट हो गया।

२½ मास तक यह हृत्पिण्डका टुकड़ा जीता रहा। इसी भांति पशुओंके अन्य विभाग भी उनके मरनेके उपरान्त ज़िन्दा रखे जा सकते हैं। यह बड़े आश्चर्यका विषय है, इससे प्रतीत होता है कि न तो मनुष्यकी मृत्यु सहसा होती है और न इतनी पूर्ण रीतिसे होती है, जैसा कि प्रतीत होता है।

† अर्थात् वह कोष, सेल, जो पट्ठोंको आवरणमें या पट्ठों-को त्वचासे बांधते हैं।

इन सब बातोंको देखते हुए मृत्यु और जीवनकी परिभाषा देना नितान्त असम्भव है। हम यह मान सकते हैं कि जीवन एक अलग प्रेरक शक्ति है जो कुछ क्रियाओंको सम्बद्धरूपसे और सुचारु रीतिसे करवाती रहती है। वह वही काम करती है जो कोचमेन घोड़ोंके चलानेमें करता है, परन्तु हमारे पास एक अलग शक्ति माननेके लिए कोई प्रमाण नहीं है। हम तो केवल कुछ क्रियाओं-से परिचित हैं। अतएव जीवनकी परिभाषा भी इन्हींके नाते दे सकते हैं। हम कह सकते हैं कि जीव निश्चित रूप और आकारके रासायनिक संग-ठन मात्र हैं, जिनके अणु निरन्तर टूटते और बनते रहते हैं। इन परिवर्तनोंके होते हुए भी प्रायः इन संगठनोंके घटक ज्योंके त्यों ही बने रहते हैं। वह सदा आणविक अथवा मात्रिक (moiar & molecular) गतिका प्रदर्शन करते रहते हैं, जिनसे स्थानान्तर और प्रजोत्पादन सम्भव हो जाता है। इस दृष्टिसे मौत एक ऐसा रासायनिक परिवर्तन है, जिससे मात्रिक गतियां बन्द हो जाती हैं और अणु समूहोंका नाश होने लगता है। रासायनिक भाषा-में मृत्यु भी एक रासायनिक विच्छेद है, जिसमें बड़े, पेचीले, अस्थिर अणु सरलतर अणुओंमें, जैसे पानी और अमोनिया, बदल जाते हैं।

जीवनका सच्चा रहस्य जान लेनेके कठिन और सूक्ष्म विषयको छोड़ कर, हमें उचित है कि उसकी कुछ घटनाओं पर विचार करें।

जीवनकी प्रायः मुख्यतम घटना आत्मीकरण है। चाहें गोभीका बीज हो और चाहे मानवी अण्डाणु, प्रत्येक जीव आत्मीकरणकी क्रियासे अवश्य ही पैदा हुआ है और स्वयम् भी आत्मीकरणकी सामर्थ्य रखता है। आत्मीकरणसे यह आशय है कि बाहरी पदार्थोंको खुराकके रूपमें ग्रहण करना और उन्हें जीवित तन्तुओंमें बदल देना। प्रत्येक जीवके जीवन इतिहासमें इस क्रियासे पहले वृद्धि होती है। अण्डाणुसे भ्रूणकी, भ्रूणसे बालककी और बालकसे बालिगकी उत्पत्ति होती है। कालान्तर-

से वृद्धि बन्द हो जाती है और जीव एक विशेष आकार प्राप्त कर प्रायः मृत्यु होने तक उसी आकार-का बना रहता है।

आत्मीकरणके साथ ही साथ टूटना, विच्छेद अथवा विनाशकी क्रिया होती रहती है। जीवोंके यही दो मुख्य लक्षण हैं:—बनना और बिगड़ना (आत्मीकरण और विघटन)। जीवनके गति सम्बंधी कामों—दिलके धड़कने, अंगोंके हिलने डोलने—में देहकी तन्तुओंके अणु बराबर टूटते रहते हैं। इसी टूटनेकी क्रियासे घनिष्ठ संबन्ध रखनेवाली दहनक्रिया है। वास्तवमें दहनक्रिया-से भी विघटन होता है। श्वास द्वारा ओषजन शरीरमें प्रवेश करती है। फुप्फुसकी केशिकाओंमें-के रक्तके लाल कण ओषजनको ग्रहण कर लेते हैं और तन्तुओं तक पहुंचा देते हैं। वहां ओषजनके प्रभावसे तन्तुओंका कुछ अंश जल जाता है। इसी दहन क्रियामें जो गरमी पैदा होती है उसीसे शरीरका ताप स्थिर रहता है; यही ताप हमारी विविध क्रियाओं और चेष्टाओंमें काम आता है। पाचक संस्थान, परिभ्रमण संस्थान, श्वासोच्छ्वास संस्थान आदि सभी इन मुख्य घटनाओंसे घनिष्ठ सम्बंध रखते हैं। जब शरीरका बनना पूरा हो चुकता है, तो कुछ काल तक सभी काम पूर्ण रीति-से होते रहते हैं। परन्तु कुछ समय व्यतीत होने-पर जीवन क्रियाओंका बलवेग घटने लगता है और अन्तमें कोई आकस्मिक घटना न भी हुई तो भी केवल पुरानापन, बुढ़ापा, ही आदमीको मारदेना है। यह मौत अंगोंके धर्म शैथल्यसे होती है। विलायतमें ६ मेंसे एक आदमी बुढ़ापेके कारण मरता है। प्रायः २० और २५ वर्षके बीचमें बाढ़ पूरी हो चुकती है और अंगोंका शैथिल्य ५५ वर्ष-की उम्रमें बढ़ने लगता है, परन्तु शक्तिका नाश बहुत धीरे धीरे होता है और ६० वर्षके बाद भी आदमी हट्टा कट्टा बना रह सकता है।

पर अंगोंकी क्रियाएं क्यों शिथिल पड़ने लगती हैं? शायद प्रत्येक प्राणी आरम्भमें ही कुछ जीवनी शक्तिके संचयके साथ पैदा होता है और यह शक्ति उसे एक निश्चित समय तक जीवित रखनेमें समर्थ होती है। यह वैसी ही दशा है जैसी घड़ी और घण्टोंकी होती है; वह भी तो एक निश्चित समय तक चल सकते हैं। बृहदंत्रमें करोड़ों जीवाणु हैं जो दिनरात विष उत्पन्न करते रहते हैं। यही विष आंतोंमें से शरीरमें पहुंच जाता है और बन्धक-तन्तु-कोषोंको विषाक्त कर उन्मत्त कर देता है। उन्मादकी अवस्थामें यह कोष धमनियों (arteries) की दीवारोंमें तन्तु पैदा करने लगते हैं और उन्हें मोटा कर देते हैं। अतएव धमनियोंकी लचक कम हो जाती है। इस घटना अथवा बुढ़ापेको रोकनेके लिए मेचनीकाफने यह परामर्श दिया था कि मठाका उपयोग करना चाहिये, क्योंकि मठा हानिकारक जीवाणुओंका नाश कर देती है। कुछ दिन तक तो इन बातोंकी बड़ी धूम रही, परन्तु उक्त सिद्धान्तका समर्थन अभी तक नहीं हुआ है और अब सन्देह होने लगा है कि वह सत्य भी है या नहीं।

—गंगा प्रसाद, बी. एस-सी.

इन्द्रियोंका भ्रमजाल

[ले०—श्री० 'बनमाली']

कुछ ज्ञान हमें प्राप्त होता है वह हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही होता है। मनके साथ काम करती हुई यही पांचों इन्द्रियां ज्ञानोपार्जनके मार्ग अथवा साधन हैं। अस्थि निर्मित राज प्रासादसे मनोदेवके भेजे हुये पांच दूत इधर उधरके समाचार उन तक पहुंचाते रहते हैं। यदि इनके समाचार भेजनेमें असावधानी हुई, अथवा समाचार झूठे और बनावटी हुए तो कभी कभी बड़ी हानि हो जाती है। इसी लिए मनोदेव एकके लाये हुए समाचार-को दूसरेके समाचारसे मिलाते रहते हैं और इस

भांति समाचारकी सचाई का भी यथा शक्य पता लगा लेते हैं। परन्तु ऐसा करनेसे पता चलता है कि कुछ अवस्थाओंमें यह दूत निरी झूठी खबरें ही ला सकते हैं। कभी कभी तो उनकी खबरें बिलकुल निराधार होती हैं।
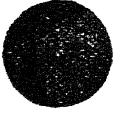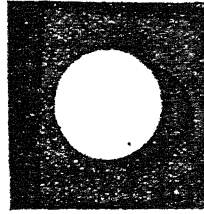
चित्र ४४ चित्र ४५

इसी लिए यह जान लेना परमावश्यक है कि किन किन बातोंमें इन्द्रियां हमें धोका दे सकती हैं, जिसमें मौका पड़ने पर हम सावधान रहें।

सभी इन्द्रियां धोखा खा सकती हैं। रसना और घ्राणेन्द्रिय तो खयाली स्वाद और खुशबू-की प्रायः शिकार हो जाया करती है। वहम होने पर नयी नयी बूओं और स्वादोंका वैसा ही अनुभव होता जैसा प्रत्यक्ष वस्तुओंके सेवन करने से होता है।

चित्र ४६

चित्र ४९ चित्र ५०
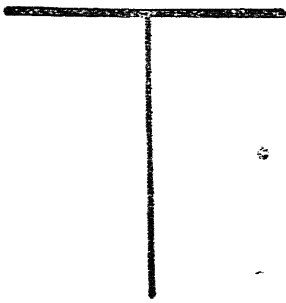
यही हाल श्रवणेन्द्रियका भी है। कितने ऐसे शब्द नहीं सुने हैं, जो केवल भ्रमजन्य थे। नाना प्रकारकी बोली, बोलनेवालोंके फंदेमें पड़ जानेपर किसको अनेक भ्रम नहीं होते?

स्पर्शेन्द्रिय कभी कभी बड़ा धोखा खा जाती है। एक मामूली छोटी कांचकी गोली लीजिये और मेज़पर रख दीजिये। दाएँ हाथकी बीचकी
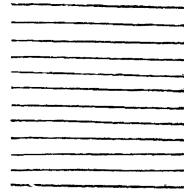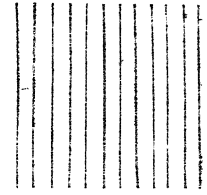
चित्र ४७ चित्र ४८

अंगुलीको उठाकर अंगूठेके पासकी अंगुलीपर रखिये और तब गोलीपर दोनों अंगुली इस प्रकार रखिये कि वह गोलीसे स्पर्श करें। यदि अब गोली-को आप लुढ़कावें तो ऐसा जान पड़ेगा कि दो गोलियां खिसक रही हैं। चाहे जितना आप प्रयत्न करें यह खयाल दिलसे बड़ी कठिनाईसे निकलेगा। इसका कारण भी बहुत स्पष्ट है। साधारणतया कोई गोली दो अंगुलियोंके बाहरी भागको एक

चित्र ५१
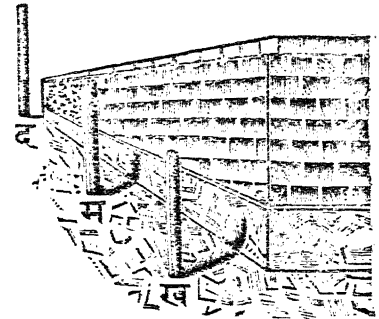
समयमें ही स्पर्श नहीं कर सकती। परन्तु अंगु-लियोंको उपरोक्त ढंगसे रखनेसे ऐसा सम्भव हो जाता है। जन्मसे तो हमारी यह धारणा रहती है कि दो वस्तुएँ ही दोनों बाहरी भागोंको एक

समयमें स्पर्श करती हैं, इसी लिए जब किसी तरकीबसे एक ही वस्तु दोनोंको स्पर्श करती है तो दो वस्तुओंका अनुभव होता है।
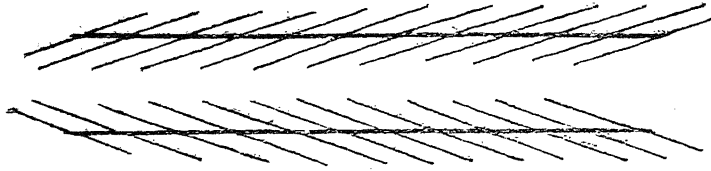
चित्र ५२

पर सबमें ज्यादा धोखा खानेवाली आंख है। लोग समझते हैं कि आंखसे देखी वस्तु बड़ी विश्वास योग्य होती है। पर आज मालूम हो जायगा कि आंख कितना धोखा खाती है। इसी बातके कुछ उदाहरण यहांपर देते हैं।
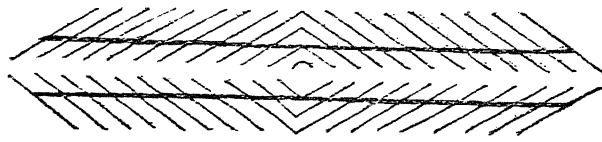
चित्र ५३

चित्र ४४ तथा ४५ को देखिये। चित्र ४४ में एक काला वृत्त सफेद जमीन पर और चित्र ४५ में एक सफेद वृत्त काली जमीन पर बनाया गया है। इनको देखकर निर्णय कीजिये कि कौनसा बड़ा है। सफेद बड़ा प्रतीत होगा, किन्तु दोनों हैं समान आकारके।

चित्र ४६ में एक पतली लकीर दूसरी मोटी लकीर पर खड़ी है। इनमेंसे कौन सी अधिक लम्बी है? पतली लकीर अधिक लम्बी मालूम होगी, पर वास्तवमें दोनों बराबर हैं।

चित्र ४७ में कुछ पड़ी लकीरें हैं और चित्र ४८ में कुछ खड़ी हुई हैं। जो क्षेत्रफल इन लकीरों से घिरे हुए हैं वह भिन्न भिन्न लम्बाई चौड़ाईके मालूम होते हैं, पर हैं दोनों वर्गाकार। इस दृष्टि-भ्रमका उपयोग कपड़ोंके चुनाव और कमरोंकी सजावटमें किया जाता है। मोटी स्त्रियां सदा खड़ी धारियोंके ही कपड़े पहनती हैं, पड़ी धारियों के नहीं। इसी प्रकार पतली स्त्रियां पड़ी हुई धारियां ही पसन्द करती हैं।

चित्र ४९ और ५० को देखिये। चित्र ५० वाली लकीर अधिक लम्बी मालूम होती है यद्यपि दोनों बराबर हैं।

चित्र ५१ को देखिये और बतलाइये कि द, म और ख मेंसे कौनसी रेखा सबसे बड़ी है। द ही सब से बड़ी है न? पर जरा नापकर तो देखिये, तीनों समान लम्बाईकी निकलेंगी। तीनों रेखाओंके आकारमें भेद दीवारकी कम होती हुई ऊंचाईके कारण जान पड़ता है। चित्र ५२ को यदि आप देखें तो पड़ी हुई दो मोटी लकीरें एक तरफ मिलती हुई सी मालूम होंगी; वास्तवमें वह हैं समानान्तर। चित्र ५३ में भी समानान्तर रेखाएँ हैं, परन्तु वह भी झुकी हुई मालूम होती हैं। यह भ्रम रेखाओं पर खींची गई आड़ी रेखाओं से उत्पन्न होता है।

परिषद्का हिसाब

मई २२

आय

साहित्यभवन लिमिटेडसे (पुस्तक खाते)			११५)
पुस्तकोंकी बिक्री	...	...	१३॥।)॥
			१२८॥।)॥
३१ मईको रोकड़ बाकी	...	...	१३३॥=)।२
			२६१।≡) २

व्यय

क्लर्क मई तथा जूनकी तंख्वाह	...		४०)
पुस्तक (शब्द सागर)	...	...	२।≡)
मुत्फर्रिक	...	...	।=)॥
मु० गणेशीलालजीको एडवान्स	...		२००)
			२४२॥।-)॥
३० जूनको रोकड़ बाकी	...	...	१८॥-)॥२
			२६१।≡)२
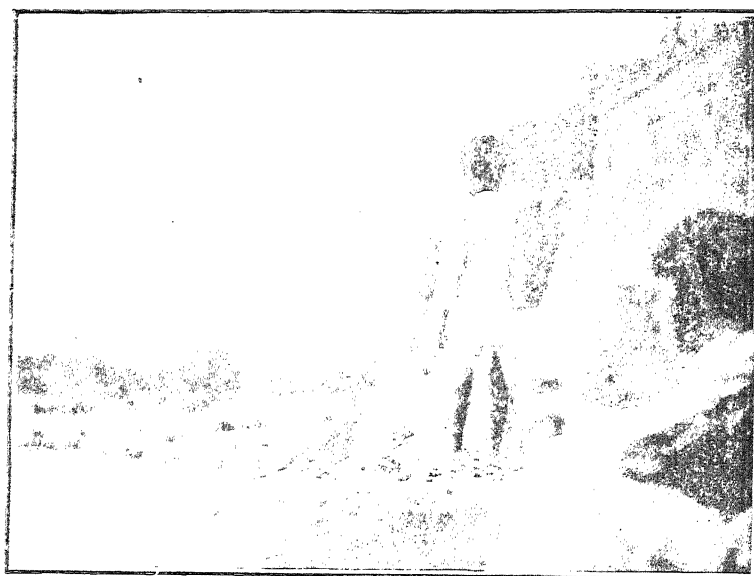
५६—छिद्र फ / ४·५ से लिया चित्र

५७—छिद्र फ / २२ से लिया चित्र

National Press, Allahabad.

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १५ | कर्क, संवत् १९७९ । जुलाई, सन् १९२२ | संख्या ४

सूर्यकी गरमी

बहुत से तारोंसे आनेवाला प्रकाश और ताप घटता बढ़ता रहता है। यदि ऐसा सूर्यसे आने वाले ताप और प्रकाशमें भी होता तो शायद कभी तो पृथ्वी जीवोंको झुलसाने लगती और कभी उन्हें बरफके समान ठंडा कर देती। परन्तु २० वर्षके निरीक्षणोंसे पता चला है कि सौर तापमें भी परिवर्तन होता रहता है, जो औसतसे ६ प्रतिशतसे कम या ज्यादा होता रहता है। जब कभी सनस्पोट (सूर्य चिन्ह) पृथ्वीके सामने होते हैं, तो प्रकाश और तापमें १—. प्रतिशत तक कमी आजाती है। इसका पृथ्वीके मौसम और वैद्युतिक दशापर बड़ा प्रभाव पड़ता है, सूर्यका निरीक्षण करनेसे एक सप्ताह पहले पेशीनगोई की जा सकती है। २००० निरीक्षणोंसे जाना गया है कि एक मिनटमें एक वर्ग शतांश मीटर सौर तलमें से १.९४ कलारी गरमी निकलती है। यदि सूर्यके चारों तरफ ४२४ फुट मोटी बरफकी चद्दर चढ़ी होती तो उसको गलानेके लिए यह काफी थी।

पत्थरके आर पार देखना

यह तमाशा प्रायः शहरोंमें दिखा[illegible] करते हैं। इसे देख कर लोग बड़ा आश्चर्य करते हैं। [illegible] भी बड़ा सरल सा [illegible] पड़ता है। एक साधारण मेज़ पर दो नलियां लगी रहती हैं। यह एक दूरबीनके बीचमेंसे किये गय

दो टुकड़ोंके समान दिखाई पड़ती हैं। इस दूरबीनके एक भागमें देखनेसे बीचमें रखी हुई बड़ी ईंट या चीरीके दूसरे तरफकी सब चीज़ें साफ दिखाई देती हैं। ईंट चाहे रहे या न रहे वही दृश्य बराबर दीखता है। इस बातसे बड़ा आश्चर्य हुआ करता है।
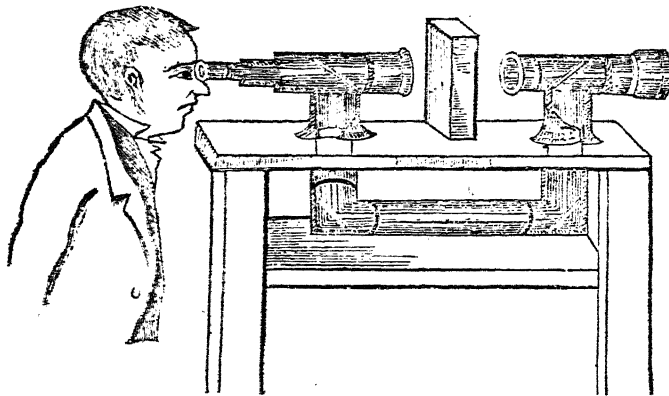
चित्र ५४

वास्तवमें देखनेवाला ईंटको भेदकर नहीं देखता, किन्तु उसके इधर उधरसे देखता है, ऐसा करनेके लिए गरदन घुमानेकी आवश्यकता नहीं है। यह काम हमारे लिए चार दर्पण, जो चतुराईसे चार भिन्न भिन्न स्थानों पर लगाये गये हैं, करते हैं।

जो दूरबीनकी नलियोंके स्तंभसे जान पड़ते हैं, वास्तवमें पीतलकी खोखली नलियां हैं। इनको मिलानेवाली भी एक और नली है जो मेजके नीचे रहती है। चारों शीशे इन्हीं तीन नलियोंके अन्दर उचित स्थानोंपर लगे हुए हैं। इन्हींपर प्रतिफलन होनेसे उधरका दृश्य हमें ज्योंका त्यों दिखलाई देता है।

तमाशे दिखानेवाले रहस्यकी व्याख्या अनेक प्रकारसे किया करते हैं। समयके अनुसार कभी तो भूत, कभी प्रेत, कभी एक्स-रश्मि और कभी रेडियम लोगोंके बहकानेमें उनकी सहायता किया करता है।

तखतेके आर पार देखलो

एक दफ़तीकी ७ या ८ इंच लम्बी और प्रायः एक इंच व्यासवाली नली बना लीजिये। या मोटे काग़ज़को लपेटकर दो तीन स्थानपर चिपका कर या आलपीन लगा कर नली बना लीजिये।

चित्र ५५

इस नलीको बाएँ हाथमें थाम कर बाईं आँखसे उसमें होकर देखिये। दाईं भी खुली रखिये। अब तखतेके किसी टुकड़ेको या दाएँ हाथको चित्र ५४ में दिखलाई स्थितिमें लाइये। हाथका किनारा नलीके दाएं किनारेकी सीधमें होना चाहिये। ऐसा करनेसे बाईं आँखका दृष्टिक्षेत्र बिलकुल कम क्या बन्द हो जायगा, तथापि दूरकी चीज़ें दोनों आँखोंको दीखती प्रतीत होंगी। ऐसा मालूम होगा कि हाथ अथवा तखतेमें एक छेद हो गया है और उस छेदमेंसे बाईं आंखको दूरकी चीज़ें दीख रही हैं। इसका रहस्य यह है कि दोनों आंखें साथ ही देखा करती हैं। इसी लिए यहां भी यद्यपि दीखता एकको ही है, तथापि मालूम ऐसा पड़ता है कि दोनोंको दीख रहा है।

फोटो खींचनेके लिए तैयारी

[ले०—श्री 'सिद्धहस्त"]

१७—लेन्स-छेदका काम

चित्र नम्बर ५६ पर अब ध्यान दीजिये। इसके लिए लेन्सके सबसे बड़े छेदका प्रयोग किया गया था और लेन्सको आगे पीछे हटाकर खड़े हुए छोटे बालकको तीक्ष्ण फोकसमें लाया गया था।

आप देख सकते हैं कि इस चित्रमें भी यह बालक कितना तीक्ष्ण* है, पर आगे बैठा हुआ लड़का कितना भद्दा हो गया है। इसी प्रकार दूर के वृक्ष, घाट आदि भी भद्दे हो गये हैं। जब खड़े बालक पर फोकस करनेके बाद लेन्सके छेदको धीरे धीरे छोटा करते हैं; पर लेन्सको अपने स्थान-से आगे पीछे नहीं हटाते, तो देखते हैं कि फोकस पर्दे पर जो चित्र दिखलाई देता है उसका प्रकाश कम हुआ जा रहा है। ऐसा तो होना ही चाहिये, क्योंकि लेन्स द्वारा अब कम प्रकाश आ रहा है। पर यदि ध्यान देकर देखें तो पता चलता है कि नज़दीक बैठा हुआ लड़का और दूरके वृक्ष आदि सभी तीक्ष्ण हुये जा रहे हैं। यदि छेदको यथोचित छोटा करदें तो चित्रके सभी भाग काफी तीक्ष्ण हो जायँगे। चित्र नम्बर ५७ खड़े बालक पर ही फोकस करके लेन्स छेदको छोटा करनेके बाद लिया गया था। इसके लिए जिस लेन्स छेदका प्रयोग किया गया था उसका व्यास ऊपरके चित्र के लिए प्रयोग किये गये छेदके व्यासका केवल पांचवां भाग था। इससे जो अन्तर होगया है वह इन चित्रोंके मिलान करनेसे प्रत्यक्ष हो जायगा।

* खेदकी बात है कि ब्लाकसे छपे चित्रोंमें असली फोटोकी तीक्ष्णता बहुत कम हो जाती है। कई एक सूक्ष्म ब्यौरे, जिनका रहना फोकसकी तीक्ष्णताका दृढ़ प्रमाण है, वह भी ब्लाकसे छपे इन चित्रोंमें मिट गये हैं।

चित्र ५७ में यह स्पष्ट दिखलाई पड़ता है कि बैठे हुये लड़केका कोट चारखानेदार कपड़ेका है। उसकी अँगुलीका नख तक स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। पीछेके दृश्यमें सीढ़ी, घाट किनारेकी छतरी इत्यादि भी स्पष्ट हैं। यही ब्यौरे चित्र ५६ में इतने फैल गये हैं (भद्दे हो गये हैं) कि वह पहचान भी नहीं पड़ते। इस चित्रसे इस बातका कि लड़केका कपड़ा चारखानेका है किसीको सन्देह भी न होगा। आशा है कि पाठकगण पहिले नहीं तो अब अवश्य समझ गये होंगे कि फोकसमें या तीक्ष्ण, और फोकस बाहर वा भद्दे होनेसे क्या अभिप्राय है। चित्र ५६ में हम कहते हैं कि खड़ा बालक फोकसमें है और दूसरे सब भाग फोकस बाहर हैं। चित्र ५७ में सभी भाग फोकस में हैं। इन चित्रोंसे हम यह भी देखते हैं कि चित्र भद्दा कैसे होता है। प्रत्येक विन्दु या रेखा फैल जाती है। प्रत्येक वस्तुकी हद बांधने वाली रेखायें (out-lines) अपनी सीमाके बाहर तक फैल जाती हैं। विन्दु सुईकी नोकके समान सूक्ष्म या रेखायें छुरेकी धारके समान तीक्ष्ण नहीं प्रतीत होतीं। ब्यौरोंका दिखलाई देना फोकस शुद्ध होनेकी इतनी कड़ी परीक्षा नहीं है जितनी कि विन्दु और रेखाओंका तीक्ष्ण होना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लेन्स-छेदोंका मुख्य काम कैमरेसे भिन्न भिन्न दूरी पर स्थित वस्तुओंको एक साथ ही फोकसमें लाना है। पर इससे दो काम और भी निकलते हैं। यह तो लिख ही चुके हैं कि छेद छोटा करनेसे रोशनी कम हो जाती है, इसलिए प्रकाश दर्शन (एक्सपोज़र) अधिक देना पड़ता है। इस बात-को इस प्रकार काममें लाते हैं। मान लीजिये कि ठीक प्रकाश-दर्शनका समय बड़े छेदके लिए $\frac{1}{2}$ सेकंड है। ऐसा सम्भव है कि शटरमें इतना प्रकाश-दर्शन देनेका कोई प्रबन्ध न हो। टोपीकी सहायतासे या शटरके कांटेको "बी" (B) पर लगा कर $\frac{1}{2}$ सेकंडका प्रकाश दर्शन नहीं दे सकते। इसलिए छेदको इतना छोटा कर देते हैं कि प्रकाश-

दर्शनका समय $\frac{१}{२}$ सेकंड या १ सेकंड हो जाय। इतना प्रकाश-दर्शन टोपीकी सहायतासे बड़ी सुगमतासे दे सकते हैं। दूसरा काम यह है। यदि लेन्समें सबसे बड़ा छेद लगावें और किसी नकशे या समाचार पत्रको दीवार पर फैला कर उसपर फोकस करें तो देखेंगे कि जब बीचका भाग तीक्ष्ण फोकसमें है तब कोनेका भाग फोकस-बाहर और भद्दा दिखलाई पड़ता है। यदि कोनेके भागोंको फोकसमें लावें तो बीचका भाग फोकस बाहर हो जाता है। फिर लेन्सकी किसी भी स्थितिमें कोनेके भाग एक दम तीक्ष्ण नहीं पाये जाते हैं। यह दो दोष अच्छे एनैस्टिगमैट (Anastigmat) लेन्सोंमें नहीं होते हैं, पर सभी सस्ते लेन्सोंमें होते हैं। लेन्सके छेदको कुछ छोटा करनेसे इन दोषोंको कम, और काफी छोटा करनेसे मिटा सकते हैं। इन सब बातोंके कारण और छेद और प्रकाश दर्शनके सम्बन्ध पर हम आगे चल कर विचार करेंगे।

१८—फोकस करनेके नियम

ऊपरकी बातोंसे हमें नीचे लिखे नियम मिलते हैं:—

(१) लेन्सका पहिले सबसे बड़ा छेद रखना चाहिये।

(२) विषयके प्रधान भाग पर फोकस करना चाहिये।

(३) यदि इस प्रधान भागका चित्र नापमें जितना हम चाहते हैं उससे बड़ा आता है, या वह पूरा पूरा नहीं आता तो पीछे हटना चाहिये और यदि छोटा आता है तो विषयके और समीप जाना चाहिये। इस प्रकार प्रधान भागके चित्रको उचित नापका बना सकते हैं।

(४) फोकसको अब बड़ी सावधानीसे ठीक कर लेना चाहिये।

(५) छेदको इतना छोटा कर लेना चाहिये कि चित्रके दूसरे भाग इतने भद्दे न रहें कि देखनेमें कुल चित्र बुरा लगे।

कदाचित आप आश्चर्य करें कि जब लेन्समें छोटा छेद लगानेसे दूर और पासके भाग सब एक साथ ही फोकसमें आते हैं, जब प्लेटके एक कोनेसे दूसरे कोने तक चित्र तीक्ष्ण हो जाता है और जब प्रकाश-दर्शन भी इतना बढ़ जाता है कि शटरकी आवश्यकता नहीं रहती तब क्यों नहीं लोग सदा छोटे ही छेदका प्रयोग करते हैं। उत्तर यह है कि चलती फिरती चीज़ोंके फोटो उतारनेके लिए प्रकाश-दर्शन बहुत कम देना चाहिये, नहीं तो वह प्रकाश दर्शन-समयके भीतर ही अपने स्थानसे इतनी दूर हट जाँयगी कि उनका चित्र भद्दा हो जायगा। फिर यदि किसी मनुष्यका चित्र खींचना है और यदि प्रकाश दर्शन-समय १० या २० सेकन्ड है तो बहुत सम्भव है इतनी देरमें मनुष्य हिल जायगा जिससे चित्र भद्दा हो जायगा। यदि प्रकाश-दर्शन-समय केवल १ ही सेकंड या इससे भी कम होता तो इतनी देरमें उसके हिलनेका कुछ भी भय न रहता। बच्चे तो इतनी देर भी चुप चाप नहीं बैठे रह सकते। उनके लिए $\frac{१}{१०}$ सेकंड या कमका प्रकाश दर्शन देना अच्छा होता है। सड़कोंकी चित्र खींचनेमें लगभग $\frac{१}{२०}$ सेकंडका प्रकाश-दर्शन देना उचित है क्योंकि सड़क पर सदा मनुष्य, गाड़ी घोड़े इत्यादि चला ही करते हैं। जिस चित्रमें चलती हुई साइकल या चलते हुए घोड़े पास ही दिखलाई पड़ते हों उनमें केवल $\frac{१}{१००}$ सेकंड ही का प्रकाश-दर्शन दे सकते हैं। घुड़दौड़, टट्टी कुदान, क्रिकेट फुटबाल आदि खेल, दौड़ती रेलगाड़ी, कूदते हुए मनुष्य इत्यादिकी फोटो लेनेमें तो $\frac{१}{२००}$, $\frac{१}{५००}$ या $\frac{१}{१०००}$ सेकंडका प्रकाश-दर्शन दिये बिना तीक्ष्ण फोटो आही नहीं सकता (फोटोग्राफीके इस विभागको तीव्र गति फोटोग्राफी कहते हैं)। इसलिए जहां तक हो सके लेन्सके छेदको खूब बड़ा रख कर प्रकाश-दर्शन-समयको कम करनेकी चेष्टा की जाती है और यही कारण है जिसके लिए लोग बहुत दाम लगा कर बड़े छेद वाले लेन्स मोल लेते हैं।

१९—फोकस करनेके कुछ चुटकिले

यदि फोकस पर्दा मैला है या उसके ऊपर प्रकाश पड़ रहा है तो ठीक फोकस करना बहुत कठिन है। यदि विषय खूब उँजालेमें नहीं है और यदि आपका लेन्स तेज़ नहीं है, अर्थात् यदि उसका छेद बहुत बड़ा नहीं किया जा सकता तो फोकस पर्दे परका चित्र बहुत प्रकाशमान न होगा और फोकस करनेमें कठिनाई पड़ेगी। ऐसी दशामें काली ओढ़नीको इस प्रकार सर और कैमरे पर लपेटना चाहिये कि फोकस पर्देके ऊपर कुछ भी बाहरी प्रकाश न पड़ने पावे और तब सावधानीके साथ फोकस करना आरम्भ करना चाहिये। तीक्ष्ण फोकसके लिए लेन्सको कौनसे स्थानमें रहना चाहिये इसका ठीक ठीक पता कदाचित आपको न चलेगा, क्योंकि लेन्सको कुछ आगे पीछे हटाने बढ़ानेपर भी तीक्ष्णतामें अन्तर पड़ते नहीं दिखलाई देता। ऐसी दशामें नीचेकी रीतिसे लेन्सके उचित स्थानका पता चला सकते हैं। लेन्सको कुछ आगे केवल इतनी दूर तक बढ़ाइये कि फोकस ख़राब होना आरम्भ हो जाय, तब लेन्सको कुछ पीछे केवल इतनी दूर तक हटाइये कि लेन्स तीक्ष्ण-फोकस स्थान पार कर जाय और फोकस फिर ख़राब होना आरम्भ हो जाय। दो तीन बार लेन्सको आगे पीछे बढ़ानेसे आप देखेंगे कि आप सुगमतासे लेन्सकी इन दोनों स्थितियोंका इस प्रकार पता चला सकते हैं कि इनमें थोड़ा ही अन्तर रहे। लेन्सको इन दोनों स्थितियोंके बीचमें कस देनेसे फोकस तीक्ष्ण अवश्य आवेगा। लेन्स-छेद जितना ही छोटा होगा, लेन्सकी ऊपर लिखी दो स्थितियोंमें उतना ही अधिक अन्तर रहेगा, इसलिए फोकस करनेके लिए लेन्सके सबसे बड़े छेदको काममें लाना चाहिये। नौसिखोंको एक डर और भी रहता है। ज्यों ज्यों लेन्सको आगे बढ़ाते हैं, त्यों त्यों चित्रका प्रत्येक भाग बड़ा होता जाता है। इस कारण तीक्ष्ण-फोकस-स्थान पार हो जाने पर चित्र अधिक स्पष्ट जान पड़ता है, क्योंकि अब चित्रके भागोंका आकार पहिलेसे कुछ बड़ा है। ध्यान देकर देखनेसे आपको अवश्य पता लग जायगा कि आप धोखेमें पड़ गये हैं। चित्र पहिलेकी अपेक्षा अब भद्दा है, उतना तीक्ष्ण नहीं है। यह डर छोटे छेद्वाले लेन्सोंके लिए अधिक रहता है, पर यदि आप ऊपरकी बातको स्मरण रखेंगे तो कभी ऐसा धोखा न खायँगे।

फोकस करनेमें भूल किये पीछे किसी उपायसे ठीक नहीं कर सकते। इसलिए विशेष सावधानीके साथ इस क्रियाको करना चाहिये।

२०—फोकसकी गहराई

ऊपरकी कठिनाई और फोकसकी गहराईमें घना सम्बन्ध है। लेन्समें मझोले नापका छेद लगा कर नीचेका प्रयोग कीजिये। अपने किसी मित्रको कुछ दूरी (मान लीजिये १२ फुट) पर खड़े होनेको कहिये और आप उन पर फोकस कीजिये। इसके बाद उनसे १ फुट पीछे हटनेको कहिये। आप देखेंगे कि उनके १ फुट पीछे हटनेपर भी उनका फोकस नहीं बिगड़ा। केवल १ ही फुट क्यों, उनके २ या ३ फुट पीछे हटने पर भी कदाचित फोकसमें अन्तर होते नहीं दिखलाई पड़ेगा। अब अपने मित्रसे कहिये कि वह अपने पुराने स्थानसे आगे ६ इंच या १ फुट आगे बढ़ कर खड़े हों। आप देखेंगे कि वह अब भी फोकसमें हैं। इस प्रकार आपके मित्र अपने स्थानके समीप रह कर दो चार फुट आगे पीछे भी हो सकते हैं, तिस पर भी वह फोकस बाहर नहीं होते। इसी बातको "फोकसकी गहराई" (Depth of Focus) कहते हैं। सिद्धान्तसे तो यही बात निकलता है कि त्रुटि-रहित लेन्स और सूक्ष्म पदार्थोंको देख सकनेवाली दृष्टिके लिए फोकसकी गहराई होती ही नहीं, परन्तु हम अपने आँखोंसे $\frac{1}{100}$ इंचसे छोटी वस्तुओंको विन्दु-सदृश ही देखते हैं, इसीलिए फोकसकी गहराई यथार्थ है। अब लेन्समें सबसे बड़ा छेद लगा दीजिये। आपको आश्चर्य

होगा कि फोकसकी गहराई कितनी कम हो गई अर्थात् यदि पहिले चार फुटके भीतर कहीं भी रहने पर आपके मित्र फोकसमें रहते थे तो अब पहिलेके चार फुटके बदले एक ही फुटके भीतर उन्हें रहना पड़ता है। यदि लेन्समें बहुत छोटा छेद लगा दें तो देखेंगे कि अब कदाचित २० फुटके भीतर वह जहां चाहें तहां रह सकते हैं। इस प्रयोगसे हम सीखते हैं कि बड़े लेन्स-छेदके लिए कम और छोटे लेन्स छेदके लिए अधिक फोकसकी गहराई होती है। प्रक्रम १३ में लिखी क्रियाको अब हम यों समझ सकते हैं। लेन्स-छेद छोटा करनेसे फोकसकी गहराईको हम इतना बढ़ा सकते हैं कि दूर और पासकी सभी वस्तु फोकसमें आ जायँ।

२१—लेन्स–छेद–नम्बर

ऊपर हम लेन्स–छेदोंको छोटा या बड़ा कहते आये हैं, परन्तु किसी नापके न रहनेसे आगे चल कर असुविधा होगी। इसलिए अब लेन्स–छेदकी नाप बतलाने वाले नम्बर पर कुछ लिखते हैं। पहिले ही लिख चुके हैं कि यदि बहुत दूरके किसी विषय पर फोकस करें तो प्लेटसे लेन्सकी दूरीको फोकल लम्बाई (Focal Length) कहते हैं। इस परिभाषामें एक त्रुटि यह है कि लेन्सके किस विन्दुसे इस दूरीको नापना चाहिये यह नहीं बतलाया गया। इस त्रुटिको हम अभी नहीं मिटा सकते। मोटे हिसाब के लिए लेन्सके बीचके भागसे नाप सकते हैं। मान लीजिये कि यह ६ इंचके बराबर है। यदि इस लेन्सके छेदका व्यास १ इंच है तो इसको फा।६ (f/6) के नाम से पुकारेंगे। कारण यह है कि फा।६ का अर्थ है $\frac{\text{फोकल-लम्बाई}}{६}$ परन्तु यहां फोकल लम्बाई ६ इंच है इसलिए ऊपरका भिन्न १ इंचके तुल्य हुआ। यदि लेन्सकी फोकल लम्बाई ६ इंच होनेके बदले १२ इंचके बराबर होती तो २ इंच व्यासवाले छेदको फा।६ कहते। क्योंकि अबकी बार $\frac{\text{फोकल-लम्बाई}}{६}$ = २ इंच। यदि लेन्सकी फोकल लम्बाई ३ ही इंच होती तो आध इंचके व्यास-वाले छेदको ही फा।६ कहते। कारण स्पष्ट है। इसी प्रकार ६ इंच वाले लेन्सके लिए $\frac{६}{८}$, $\frac{६}{११}$, $\frac{६}{१६}$, $\frac{६}{२२}$ इंच इत्यादि व्यास वाले छेदोंको फा।८, फा।११, फा।१६, फा।२२ इत्यादि कहेंगे। साधारणतः किसी छेदके व्यासको और फोकल लम्बाईको नापनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि छेद घटाने बढ़ाने वाला कांटा छेद मापकके जिस अङ्क पर रहता है वही छेदकी नाप है।

यदि बहुत दूरकी चीज़ोंपर फोकस किया गया है तो जिस दूरीकी या इससे अधिक दूरी पर स्थित वस्तु फोकसमें रहती हैं उसे बतलानेवाली सारणी।*

लेन्सकी फोकल-लम्बाई इंचमें	लेन्स-छेद-नम्बर							
	फा।४·५	फा।५·६	फा।८	फा।११	फा।१६	फा।२२	फा।४४	फा।६४
	दूरी फुटोंमें जिसके बाद सब वस्तु फोकसमें रहती हैं।							
४	३०	२४	१७	१२	८	६	३	२
५	४७	३६	२६	१९	१३	९½	५½	३½
६	६८	५४	३८	२८	१९	१४	७	४½
८	१२०	९६	६८	४८	३२	२४	१२	८
१०	१८७	१४८	१०४	७५	५५	३८	१९	१३

* इससे बहुत बड़ी सारणी British Journal Almanac में हर साल रहती है।

२२—फोकसकी गहराई पर लेन्स छेदका प्रभाव

यदि किसी विशेष फोकल-लम्बाईके लेन्ससे बड़ी दूरकी चीज़ों पर फोकस करें तो प्रश्न उठता है कि कोई वस्तु कैमरेसे कमसे कम कितनी दूरी पर रखा जा सकता है कि उसका फोकस इतना बुरा न हो कि देखनेमें बुरा जान पड़े। यदि यह मान लें कि हम अपनी आँखोंसे $\frac{1}{100}$ इंच की या इससे छोटी वस्तुओंको केवल बिन्दु ही सा देखते हैं तो ऊपरकी सारिणी इस प्रश्नका उत्तर देती है।

यदि बहुत दूरकी चीज़ों पर फोकस करनेके बदले ऊपरकी सारणीमें लिखी किसी दूरीपर फोकस करें तो उस दूरीके आधेसे ले अनन्त दूर तक की सभी चीज़ें फोकसमें रहेंगी। दृष्टान्तके लिए चित्र ५७ को लीजिये। जिस लेन्ससे यह लिया गया था उसकी फोकस-लम्बाई ६ इंच थी। लेन्स-छेदका नम्बर था फा२२। खड़ा लड़का १४ फुटकी दूरीपर और बैठा लड़का ७ फुटकी दूरीपर था। फोकस खड़े लड़केपर किया गया था, परन्तु बैठे लड़केसे ले बहुत दूरके वृक्ष आदि सभी वस्तु फोकसमें हैं। इससे सारिणीमें लिखी दूरियों और ऊपर लिखी बातका समर्थन होता है। ऊपर जो "बहुत दूर" शब्दोंका प्रयोग किया गया है उनसे छोटी फोकस-लम्बाईके लेन्सोंके लिए सौ दो सौ गज़की दूरी और बड़ी फोकस-लम्बाईके लिए इसके दुगुनी या तिगुनी दूरीको समझना चाहिये। ऊपरकी सारणीसे यह प्रत्यक्ष है कि छेदको छोटा करनेसे फोकसकी गहराई बढ़ती है, और हम यह भी देखते हैं कि बड़ी फोकस-लम्बाईके लेन्सोंकी अपेक्षा छोटी फोकस-लम्बाईके लेन्सोंमें फोकसकी गहराई बहुत अधिक पाई जाती है।

२३—फोकस रहित कैमरा

ऊपरकी बातोंको समझ लेने पर हम फोकस रहित कैमरोंका काम बड़ी सुगमतासे समझ सकते हैं। अधिकतर सस्ते ही कैमरे फोकस रहित बनाये जाते हैं। इन कैमरोंमें सस्ते ही लेन्स भी लगे रहते हैं जिनका छेद फा११ से बड़ा नहीं किया जा सकता। कार्टर प्लेटसे बड़े कैमरे फोकस रहित नहीं बनाये जाते। इसलिए ऐसे कैमरोंके लेन्सोंकी फोकल लम्बान ५ इंचसे अधिक नहीं रहती है। ऊपरकी सारणीसे हम देखते हैं कि यदि ५ इंच फोकल लम्बानके लेन्ससे, फा११ नापके छेदके साथ, १९ फुटकी दूरी पर स्थिति वस्तुको तीक्ष्ण फोकसमें लाया जाय तो ९½ या १० फुट से ले अनन्त दूर तककी वस्तु सभी फोकसमें रहेंगी। कैमरेके बनानेवाले ऐसा ही प्रबन्ध करते हैं। इसलिए फोकस रहित कैमरेवालेको केवल इसी बातको स्मरण रखना चाहिये कि फोटो खींचते समय उसके सामने कोई वस्तु दस फुटसे कम दूरी पर न रहे। और छोटे कैमरेके लेन्स इससे भी कम फोकल लम्बानके होते हैं। फा११ लेन्स-वाले वेस्ट-पाकेट (vest-pocket) नापके कैमरों-में केवल ४ या ५ फुटसे अधिक दूर की सभी चीज़ फोकसमें रहती हैं। आप देखेंगे कि यदि बहुत छोटा कैमरा फोकस रहित है तो भी बहुत असु-विधा नहीं होती। यदि इन दूरियोंसे निकटकी वस्तुओंका फोटो लेना चाहें तो विना छेद बहुत छोटा किये या विना पोर्ट्रेट अटैचमेन्ट (portrait attachment) लगाये नहीं ले सकते, पर इस समय इन सबका हाल लिखना उचित नहीं जान पड़ता।

२४—फिल्म कैमरे से फोकस करना। फोकस-मापक

फिल्म कैमरेमें ऊपरकी प्रायः सभी बातें लागू हैं। फोकस करनेके लिए लेन्सको आगे पीछे हटाना, फोकसकी गहराईको बढ़ानेके लिए छेद को छोटा करना, फोकस रहित कैमरोंमें विषयको दस बारह फुटसे अधिक समीप न होने देना, इत्यादि बातें फ़िल्म कैमरेके लिए भी वैसी ही हैं जैसी प्लेट कैमरेके लिए ऊपर लिखी गई हैं, पर फ़िल्म कैमरेमें एक कठिनाई यह है कि फोकस-पर्दा लगाकर फोकस इत्यादि नहीं ठीक कर सकते। इन कैमरोंमें फोकस पर्देको लगानेका कुछ प्रबन्ध

ही नहीं रहता है। इसलिए फोकस-मापक (Focussing scale) की शरण लेनी पड़ती है। अब रुकाव या लेन्स लगी हुई अगाड़ीमें जड़ा हुआ कांटा फोकसमापकके उस चिह्नपर आता है जिसके सामने ३ फुट लिखा हुआ है तब हम जानते हैं कि अब वह चीज़ें जो कैमरेके लेन्ससे ३ फुटकी दूरी पर हैं तीक्ष्ण फोकसमें हैं। इसी प्रकार जब यह कांटा ४ फुट, ६ फुट, १० फुट, २५ फुट या अनन्त दूरी (inf) वाले चिह्नोंपर क्रम से लाया जाता है तब हम जानते हैं कि अब जो चीज़ें कैमरेसे ४ फुट, ६ फुट, १० फुट, २५ फुट या इससे भी अधिक दूरीपर हैं वह तीक्ष्ण फोकसमें हैं। अभ्यास करनेसे बिना नापे ही दूरीका ठीक ठीक अनुमान कर सकते हैं, पर नौसिखेको चाहिये कि आरम्भमें वह इन दूरियों-को फ़ीते या गज़से नाप लिया करे। फोकस करनेका काम तो यों तै हो गया, पर यह जानना अभी बाक़ी है कि सामनेके विषयका कितना भाग फोटोमें दिखलाई पड़ेगा। इस कामके लिए ही दृश्य-बोधक (view finder) लगा है। जितना भाग दृश्य बोधकमें दिखलाई पड़ता है, लगभग उतना ही फोटोमें भी आता है, पर दृश्य बोधक और फोटोमें एक दम पूरा पूरा मिलान नहीं रहता। यह दोष समीपके विषयोंमें विशेष कर दिखलाई पड़ता है। इसलिए ध्यान रखना चाहिये कि प्रधान भाग दृश्य बोधकके किनारोंके बहुत निकट न रहे। बेंड़ा चित्र उतारते समय दृश्य-बोधकको भी बेंड़ा कर लेते हैं। जिन कैमरोंमें दृश्य-बोधकको बेंड़ा करनेके लिए नहीं घुमा सकते उनमें दो दृश्य-बोधक लगे रहते हैं, एक खड़े चित्रोंके लिए, दूसरा बेंड़े चित्रोंके लिए।

२५—प्लेट कैमरेमें फोकसमापक

आप कदाचित समझें कि प्लेट कैमरोंमें फोकस मापक और दृश्य बोधक अनावश्यक हैं। एक प्रकारसे यह सत्य है, पर प्लेट कैमरेमें भी यह बड़े कामके होते हैं। मान लीजिये आप कैमरेमें प्लेट चढ़ाकर, शटरको तैयार करके, कैमरेको हाथमें लेकर सुन्दर विषयकी खोजमें घूम रहे हैं। अचानक एक अनुपम दृश्य आपके सामने उपस्थित हुआ और किसी कारणसे वह दृश्य अपने स्थानपर बहुत समय तक न रहेगा। प्रकाश काफ़ी है। आप चट दृश्यकी दूरीका अनुमान करके, फोकस-मापक-की सहायतासे लेन्सको उचित स्थान पर टिका कर, कैमरेको हाथमें ही पकड़े पकड़े, दृश्य-बोधक-की ओर एक बार दृष्टि डाल, शटरको छोड़ देते हैं। आपके हाथ यदि मँज गये हैं, और शटरकी गति प्रकाशके अनुसार ही थी तो अवश्य ही आप एक सुन्दर फोटोकी प्राप्तिका आनन्द पावेंगे। यदि आपके कैमरेमें फोकस मापक और दृश्य बोधक न होते, तो ज़रूर आप इस अवसरको खो बैठते, क्योंकि कैमरेको तिपाई पर कसनेमें, और तब फोकस इत्यादि करनेमें समय लगता। ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब आपको सब काम जल्द करना पड़ता है, या आप उसकी फोटो ले ही नहीं सकते। सड़क पर स्त्री पुरुषोंका एक चित्ताकर्षक जमाव, प्रसन्नचित्त बालकोंका खेल, नदीमें सुन्दर नौकाका जाना और मन लुभाने वाली लहरें, कोई विशेष घटना या भाव, इत्यादि इत्यादि कितने ऐसे ही विषय हैं जिनके लिए समय बहुत थोड़ा मिलता है। पर यह सब विषय नौसिखोंके लिए नहीं हैं, उन्हें प्रत्येक चालको अच्छी तरह समझ बूझ कर चलना चाहिये, शीघ्रता करनेमें हड़बड़ी मच जाती है, और सब काम चौपट हो जाता है।

२६—विषय।

विषयों* की गिनती असंख्य है, तथापि हमारी इच्छा है कि मुख्य मुख्य प्रकारके विषयोंके फोटो लेनेमें जो कुछ विशेषता है उनको किसी समय पर एक एक करके दिखलायें। आशा है कि स्त्री पुरुष, बच्चे, जानवर, इमारतें, घरके भीतरका दृश्य, वृक्ष इत्यादिसे सुशोभित स्थान, नदी और समुद्र, सड़क

* जिसका फोटो खींचते हैं उसीको हम विषय कहते हैं।

और सड़कों पर होनेवाले दृश्य, चलती फिरती चीजें, हाकी फुटबाल क्रिकेट इत्यादि खेल कूद, और कसरत, कुश्ती, घुड़दौड़ और दौड़ती रेल गाड़ियां, जल क्रीड़ा, महत्व पूर्ण घटनाएँ, रंगीन चीजें, सूक्ष्म चीज़ें, दूरकी चीज़ें, सूर्य्य चंद्रमा आदि ग्रह इत्यादि विषयोंकी फोटो खींचनेमें जो कुछ नई बात सीखनेकी आवश्यकता है और रात्रिके समय फोटोग्राफी, मैगनीशियम-प्रकाश-फोटोग्राफी, यात्राके समय-फोटोग्राफी, चित्रोंकी नक़ल करना, रंगीन फोटो उतारना, व्यवसाय-फोटोग्राफी, सुई-छेद-फोटोग्राफी, सैरबीन-फोटोग्राफी, वायुयान-या गुब्बारा फोटोग्राफी और आलेख्यकला-फोटोग्राफी (Art या Pictorial Photography) इत्यादि फोटोग्राफीके प्रधान प्रधान विभाग क्रमशः अपने अपने स्थान पर आयेंगे। ऊपर गिनाये गये विषयोंमेंसे एक भी ऐसा नहीं है, जिसपर विदेशी भाषाओंमें एक पृथक् पुस्तक न लिखी गई हो। पर हिन्दीमें फोटोग्राफीकी प्रारम्भिक बातोंपर भी कोई अच्छी पुस्तक नहीं मिलती; इसके इन विभागों पर पृथक् पृथक् पुस्तक होनेकी बात ही क्या।

जो कुछ हो यहांपर विषय सम्बन्धी दो चार मोटे नियमोंके उल्लेख करनेकी बड़ी आवश्यकता है। फोटो लेनेवालोंको इनपर अवश्य ध्यान देना चाहिये। विषयपर प्रकाशको ऐसी दिशासे पड़ना चाहिये कि चित्र सुन्दर उतरे। यदि प्रकाश ठीक सामनेसे पड़ेगा तो फोटोमें कुछ भी साया न रहनेसे चित्र निर्जीव और चपटा जान पड़ेगा। यदि बिलकुल बग़लसे प्रकाश आता है तो बड़ी बड़ी परछाहींसे चित्र बुरा लगेगा। यदि मनुष्य-चित्रणमें ऊपरसे कड़ी रोशनी पड़ रही है तो आंख गहरे सायेमें पड़ जायगी और नाकोंके नीचे भी गहरी परछाईं पड़ेगी; फोटो किसी प्रकार भी अच्छा न लगेगा। साधारणतः प्रकाशको सामने और दाहनी बगलके बीचसे, या सामने और बाईं बग़लके बीचसे, आना चाहिये और प्रकाशको एक दम खड़े या एक दम बेंड़े न पड़ कर कुछ तिरछे होकर आना चाहिये। चित्रके एक बड़े अंशका गहरे सायेमें डूबा रहना भी किसीको अच्छा नहीं लगता। या इसका किसी बड़े अंशका ऊसर पृथ्वीकी भांति सफ़ाचट पड़ा रहना भी बुरा लगता है (अवश्य ही, आकाशको छोड़कर; पर यदि आकाशमें भी दो चार बादलके टुकड़े देख पड़ें तो चित्र और भी सुहावना लगता है)।

इसकी भी जांच कर लेनी चाहिये कि किसी दूसरी ओर या दूसरे स्थानपर कैमरेको खड़ा करनेसे इससे भी अधिक रमणीय चित्र तो नहीं आ सकता। सम्भव है, और अधिकतर ऐसा होता भी है, कि किसी विषयका चित्र एक दिशासे लेनेसे बहुत भला दिखलाई पड़े और दूसरी दिशासे बहुत बुरा। विषयके रंगोंसे मोहित होकर यह न भूल जाना चाहिये कि फोटो केवल काला और सफेद ही छपता है। रंगकी बातको छोड़ यदि भागोंके परस्पर सम्बन्धके कारण दृश्य अच्छा लगता है तब तो ठीक है, नहीं तो ऐसे विषयकी फोटो न लेनी चाहिये।

प्रत्येक फोटोमें एक प्रधान वस्तु होनेसे चित्र अच्छा लगता है। जिसमें छोटी छोटी बहुत सी वस्तु होती हैं और प्रधानतामें सभी एक दूसरेके बराबर होती हैं वह आलेख्य-कलाकी दृष्टिसे अच्छा नहीं जंचता। नौसिखेको पहिले कोई बहुत सरल दृश्य पर काम आरम्भ करना चाहिये। जब वह दो चार या अधिक ऐसे विषयोंका शुद्ध फोटो खींच ले तब दूसरे विषयोंके फोटो खींचनेकी चेष्टा करे। संक्षेपमें, हम उस विषयको सरल समझ सकते हैं जिसपर प्रकाश खूब पड़ता हो, जिसका कोई बड़ा भाग घने सायेमें न हो, जो चलता न हो या चलता भी हो तो बहुत धीरे धीरे, जिसमें कोई सुहावनी चीज़ बीस तीस फुटकी दूरी पर दिखलाई देती हो, जैसे कि कोई सुन्दर छोटा पेड़, या फाटक, या झोंपड़ी, या तालाब, या गाय बैल, या अन्य ऐसी कोई वस्तु। इसके पीछे बड़े बड़े वृक्ष, या गांव इत्यादि, दूर पर रहें तो कोई हरज नहीं

है। या इन सबके बदले नदी पर नाव इत्यादि, या पेड़ोंका सुन्दर समूह इत्यादि भी, जिनपर रोशनी अच्छी पड़ती हो और जो इतनी दूर न हों कि फोटोमें बहुत छोटे देख पड़ें या इतने निकट न हों कि फोटोको एक दम छेंक लें, अच्छे विषय हैं। मनुष्य चित्रण यद्यपि सरल नहीं कहा जा सकता है तो भी यदि आवश्यक बातोंका ज्ञान किसी अच्छी पुस्तक द्वारा या किसी चतुर फोटोग्राफरसे प्राप्त कर लिया जाय तो शीघ्र सुगम हो जाता है, पर नौसिखोंको मनुष्य-चित्रणसे ही फोटोग्राफी आरम्भ करनेकी सम्मति हम कदापि नहीं देंगे।

फोकसकी जांच करते समय कैमरेको ऊपर नीचे झुका कर या अगल बगल फेरकर फोकस पर्देके हिसाबसे चित्रके प्रधान भागकी स्थितिको भी ठीक कर लेना चाहिये। यदि चित्रमें अधिकांश भाग आकाश का ही हो या निकटकी पृथ्वी का ही हो, या यदि मनुष्य-चित्रणमें चेहरा एक कोनेमें या एक बगलमें हो, या इतने ऊंचे हो कि सर किनारे से टकरा रहा हो या इतने नीचे हो कि चित्रके बाहर गिरता सा जान पड़े तो चित्र कभी अच्छा न लगेगा।

२७—फोटो खींचना

अब हमने अच्छे विषयको खोज कर, उचित स्थानपर कैमरेको तिपाईपर खड़ा करके, फोकस, और फोकस पर्देपर विषयकी स्थितिको, ठीक करके, लेन्स छेदको यथोचित छोटा कर दिया है। फोकस पर्देको हटाकर इसके स्थानमें प्लेटसे भरे हुए प्लेट घरको लगा, उसके ढकनेको बाहर खींच उचित प्रकाश-दर्शन (एक्सपोज़र) देना ही रह गया है। किन्तु प्रकाशमें बैठकर प्लेटको प्लेट-घरके भीतर तो नहीं रख सकते, क्योंकि प्लेटमें ज़रा भी रोशनी पड़नेसे इसका सर्वनाश हो जायगा और फिर यह फोटोके कामका न रहेगा। इसलिए अब अंधेरी कोठरी (dark-room) के तैयार करनेका प्रयत्न करना चाहिये। वास्तवमें कैमरा मोल लेनेके बाद दूसरा काम अंधेरी कोठरीका ठीक करना ही है, परन्तु ऊपर जो हम फोकस करना सीख रहे थे यह व्यर्थ न जायगा।

दूसरे लेखमें अंधेरी कोठरीके सजानेका पूरा पूरा हाल दिया जायगा।

नक्षत्र संसार

(गताङ्कके आगे)

[ले०—पं० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार]

हिषासुर मण्डलमें मुख्य तारा जय दक्षिण गगनमें एक उज्ज्वल तारा है। १६८६ में इसके युगल होनेका ज्ञान हुआ। यह अन्य युगलोंकी अपेक्षा हमारे बहुत समीप है। इससे इसका निरीक्षण अधिक सुगमतासे हो सकता है। यह दोनों तारे काफ़ी अन्तरपर विद्यमान हैं। गणनासे इनके बीचका अन्तर लगभग सूर्य-पृथ्वीके अन्तरका ११ गुना निकलता है। वक मण्डलके युगलतारोंका अन्तर सूर्य पृथ्वीके अन्तरसे ६५ गुनेसे भी अधिक है। दम्पति वर्गके अन्य कतिपय युगलोंका अन्तर उपरोक्त जय युगलसे अधिक है, और वह हमारी दृष्टिसे भी परे हैं। जय दम्पति बहुत उज्ज्वल, हमारे बहुत समीप, एवं पृथक् पृथक् होनेसे परीक्षा करनेके लिए उत्तम नमूना है। इसीपर प्रसिद्ध ज्योतिषियोंने चिरकालसे अपनी बुद्धि और श्रम लगाया है। इस दम्पतिके दोनों सहचरोंका क्रान्तिकाल ८५ और ८८ वर्ष है। दोनोंका संयुक्त क्रान्तिवृत्त कन्याराशिके युगलके क्रान्तिवृत्तसे बड़ा नहीं है। दोनोंके क्रान्तिवृत्त समान ही हैं अतः पिण्ड भी दोनोंके समान ही हैं। परन्तु उनमें से एक दूसरे साथीसे त्रिगुण प्रकाशमान है।

समीपतम युगलोंमें से यह दम्पति वर्गका युगल भी एक है। इसका प्रकाश हमारी पृथ्वी

तक ४ वर्ष ४ मासमें पहुँचता है। फलतः इसकी दूरी ४ तेजो वर्ष, ४ तेजो मास है। सूर्य-पृथ्वीके अन्तर को एक इकाई मान लें तो इस अन्तरका नाम पृथ्वी-सूर्यान्तर रख सकते हैं। इस प्रकार इस युगलकी दूरी २८८००० पृथ्वी सूर्यान्तर हुई। दोनोंका कुल परिमाण हमारे सूर्यसे दुगुना है।

अभीतक ७ दम्पति तारों की ही परीक्षा कुछ सन्तोषजनक हुई है। इनकी गति, स्थिति, दूरता, और पिण्ड परिमाणमें भी विशेष सन्देह नहीं रहा। जय तारेके अतिरिक्त दूसरा तारा व्याध-मण्डलका एल्फा आर्द्रालुब्धक (Sirius) भी स्वतः दम्पतिवर्गका है। महाशय वेसल ने १८४४ ई० में आर्द्रा लुब्धककी गतिका विशेष निरीक्षण करना प्रारम्भ किया। उसने उसकी गति पर किसी अदृश्य सहचर या ग्रहका प्रभाव होता देखा। नियत समयक्रमसे उसकी गतिमें भेद पड़ता दिखाई दिया। १८६२ ई०में यह छिपा हुआ विक्षोभक ग्रह भी मालूम हो गया। आर्द्रा लुब्धककी गतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले इस ग्रहका रूप-रंग लुब्धकके रूप रंगसे सर्वथा भिन्न निकला। इसकी दीप्ति ९तीय श्रेणीसे भी कम है। तो भी इसका परिमाण बहुत काफ़ी बड़ा है; आर्द्रा लुब्धकसे यह परिमाणमें आधा है। दोनों मिलकर हमारे सूर्यसे ३½ (साढ़े तीन) गुने हैं। लुब्धक हमारे सूर्यसे दुगुना है। तो भी प्रकाशमें ६३ गुना है। और दूसरा सूर्यके बराबर हो कर भी प्रकाशमें इतना दरिद्र है कि उसकी दीप्ति हमारे सूर्यकी दीप्तिका एक सौ साठवां भाग है।

हमसे लुब्धककी दूरी ५० करोड़ मील है और यह भी दम्पति युगल है। दोनोंका क्रान्तिकाल ५८¾ वर्ष है। इसका क्रान्तिमार्ग जय दम्पति (महिषासुर-एल्फा) से भी अधिक पिचका हुआ है। दोनोंके बीचका अन्तर २२ पृथ्वी सूर्यान्तर है; दोनोंके क्रान्ति मार्ग भिन्न भिन्न परिमाणके हैं। यह मार्ग उनके व्यासोंके उलटे अनुपातोंमें हैं। दो दीर्घ वृत्त एक ही आकार और भिन्न भिन्न परिमाणके एक दूसरेको काटते हुए खींचकर यह स्पष्ट किया जा सकता है। दोनोंका मुख्य अंश एक ही सरल रेखामें होगा। व्याधके अपने मार्ग पर गति करते हुए भी व्याध दम्पतिका गुरुता केन्द्र बिना किसी विक्षोभके अपनी उचित गति करता रहता है। अपने परिमाणोंके अनुपातोंमें ही उनकी दूरता भी सदा एक नियत अनुपातमें रहती है।

अरबिस्तान वासी विद्वान् तथा भारतवर्षके प्राचीन विद्वानोंने सबसे पहले दम्पतियुगलका सप्तर्षि मण्डलमें वसिष्ठ—अरुन्धतिका पता लगाया था। साधारण दूरबीनोंसे भी इनका पृथक् पृथक् दर्शन हो जाता है। इनका क्रान्तिकाल लगभग १०००० वर्ष कूता गया है। वर्त्तमानके विद्वानों द्वारा खोला हुआ इसका रहस्य बड़ा कुतूहल पूर्ण है, जिसका हम आगे चलकर उल्लेख करेंगे।

मिथुनराशिका (एल्फा) विष्णु तारा भी एक अद्भुत दम्पति-युगल है। यह दोनों सहचर हलकी मरकत कान्ति लिए हुए उज्ज्वल शुभ्रदीप्तिके हैं। सहचर दूसरी दीप्तिका है। इनका क्रान्ति मार्ग बहुत पिचका हुआ है और क्रान्ति काल १००० वर्षका है। उनकी अधिक तम दूरी न्यूनतम दूरीसे दुगनी है।

हमारा जगत सूर्य और उसके ग्रह उपग्रहों के साथही समाप्त हो जाता है। ३६५ दिनमें संवत्सर पूर्ण हो जाता है। यदि ग्रहका सूर्यकी परिक्रमा कर लेना ही संवत्सर पूरा करना है तो इस सौर जगतके अतिरिक्त अन्य जगतोंके सम्वत्सरोंको सुनकर विस्मयकी सीमा नहीं रहती। दम्पति वर्गके युगलोंमें से कितने ऐसे युगल हैं जिनके परिक्रमा काल कई सौ वर्ष हैं। बक मण्डल (Cygnus) के दम्पति युगल (बकमुख) का ज्ञात परिक्रमा मार्ग ज्ञात दम्पति युगलोंके परिक्रमा मार्गोंमें सबसे बड़ा है। इसके क्रान्ति वृत्तकी मध्यम त्रिज्या (व्यासार्द्ध) पृथ्वी सूर्यान्तरसे ६५½ गुनी है। इतने बड़े क्रान्तिपथकी यात्रा करनेके लिए उन दोनोंको ८०० वर्ष लग जाते हैं। उन दोनोंका

गति वेग हमारी पृथ्वीसे भी कम है। इससे यही परिणाम निकाला गया है कि इन दम्पति तारोंका पिण्ड परिमाण हमारे सूर्यसे भी छोटा है। कदाचित् दोनों दम्पति मिलकर सूर्यसे डेढ़े हों। इनकी दीप्ति भी सूर्यसे कम है।

इसी प्रकारसे ६५ दम्पति युगलोंके क्रान्तिपथ और क्रान्ति कालोंकी गणना की गयी है, जिनमेंसे केवल ११ ऐसे दम्पति हैं जिनका क्रान्ति काल ५० वर्ष से अधिक नहीं है। इन ११ को मिलाकर २६ ऐसे हैं जिनका क्रान्तिकाल १०० वर्षसे अधिक नहीं है। और कुछ इतने धीमे हैं जिनका वेग बड़ी कठिनतासे जांचा गया है। इनका क्रान्तिकाल तो २०००० वर्ष तक भी कूता गया है। सबसे अधिक वेगवान् दम्पति (Equileus) अश्वतर मण्डलमें है। इसका क्रान्तिकाल ११ से १४ वर्ष तक ही है।

अभी तक जिन दम्पति युगलोंका हमने वर्णन किया है वह सभी प्रबल दूरबीनोंसे देखनेपर स्पष्ट युगल देखे गये हैं, परन्तु बहुत से ऐसे सच्चे-दम्पति युगल हैं जो किसी यंत्रादि उपायसे भी दृष्टिगोचर नहीं होते। जब देखो एक प्रकाश विन्दु ही दीखता है। या तो वह हमसे बहुत अधिक दूर हैं या वह दोनों बहुत अधिक समीप हैं; तो भी उनका दम्पति युगल होना रश्मि चित्र यन्त्रसे स्पष्ट हो गया है।

उनके रश्मिचित्रमें नियमित रूपसे परिवर्तन होता दृष्टिगोचर होता है। रश्मिचित्रमें प्रकट हुई धारियां अपनी सामान्य स्थितिको छोड़कर नियत कालान्तरके बाद कभी दायें से बायें और कभी बायें से दायेंको हटती हैं। उनके रश्मिचित्रकी स्थितिको यद्यपि सामान्य या नियत नहीं कहा जा सकता क्योंकि तारा तो बराबर कभी अपने सौर जगतके समीप और कभी दूर हटता ही है और अपने क्रान्ति मार्ग पर बराबर गतिकर ही रहा है तो भी रेखाओंकी दायीं और बायीं ओर-की गतिकी मध्यम स्थितिको सामान्य स्थिति कहा जा सकता है।

यह रश्मि-विद्याका सिद्धान्त है कि यदि कोई उज्ज्वल पिण्ड समीप आता होता है तो उसके रश्मिचित्रमें धारियां जामनी पट्टिका की ओर हटती हैं। और यदि वह पिण्ड दूर हटता है तो तारेके वेगके अनुपातमें ही धारियां लाल पट्टिकाकी ओर सरकती हैं। यदि कोई नक्षत्र अपनी परिक्रमा पथपर गति कर रहा है और उसके क्रान्ति पथका धरातल ही दृष्टिके धरातलके साथ एक हो रहा है तो वह क्रमसे एक बार हमारी ओर आवेगा और फिर दूर हटेगा। फलतः रश्मिचित्र में काली धारियां भी एक बार जामनी और दूसरी बार लालकी ओर हटेंगी। परन्तु यदि दम्पति युगलके दोनों तारे एक दूसरेकी परिक्रमा कर रहे हैं तो अवश्य एक साथी पास आ रहा होगा और दूसरा दूर हट रहा होगा।

ऐसी अवस्थामें रश्मिचित्रमें दोहरी धारियां दृष्टिगोचर होंगी। एक धारी जामनीकी ओर सरकेगी और दूसरी धारी लालकी ओर सरकेगी। फलतः एक हमारे पास आरहा है और दूसरा हमसे हट रहा है। परन्तु जिस समय दोनों गति करते हुए हमारे दृष्टि धरातल और क्रान्ति धरातलके सम्पातों पर होंगे, उस समय न तो कोई हमसे हट रहा होगा और न कोई पास आरहा होगा। उस समय दोनों एक दूसरेको ढके हुए होंगे। उस दशामें रश्मिचित्रमें दोनों धारियां मिलकर एक हो जांयगी। इस प्रकार रश्मि-चित्र-यन्त्र द्वारा धारियोंके दो बारके पृथक् भाव और दो बारके एकीभावसे उनके पूर्ण क्रान्ति कालका पता लग जायगा।

यदि दम्पति युगलमें एक उज्वल प्रकाश मान हो और दूसरा मृत असुर वर्गका हो, जो प्रकाश ही नहीं दे सकता, तो उपरोक्त घटना न होगी। अर्थात् धारियां दोहरी न होंगी बल्कि उज्ज्वल पिण्डकी प्रतिनिधि एक ही धारी क्रमसे जामनी

और लालकी ओर आती हुई तारेके समीप और दूर आने जानेकी द्योतक होगी। जामनीकी ओर सरकनेसे लेकर लालकी ओरको सरकने तक आधा क्रान्तिकाल और उससे दुगना पूर्ण क्रान्तिकाल कूता जा सकता है। अर्थात् धारीका पूरा आवागमन तारेका पूरा क्रान्तिकाल है। इस प्रकार रश्मिचित्र यन्त्र द्वारा तारोंका दाम्पत्य और उनका क्रान्तिकाल भी स्पष्ट हो जाता है। इसी विधि से धारियोंकी न्यूनाधिक उज्ज्वलता और मध्यमताको देखकर पिण्डोंकी उज्ज्वलता और मध्यमताका भी निर्णय कर लिया जाता है।

दम्पति युगलोंको रश्मि-चित्र-यन्त्र द्वारा निरीक्षण करनेसे कई एक बड़े ही विस्मय और विनोद जनक नमूने दृष्टिगोचर होते हैं; विशेषकर रंगीन तारे जो अपना रंग कुछ कालान्तरमें बदल लेते हैं उनका रूप तो बड़ा विनोद जनक है। जैसे हरिकुलेश मण्डलमें ६५ हरि कुलेश तारा दम्पति युगल है। पहले इसके दोनों सहचरोंका रंग हरा और लाल था। पर अब दोनों गुलाबी पीले हैं। अब दोनोंके रश्मिचित्र भी भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। एक तो लुब्धक वर्गका है और दूसरा सूर्य वर्गका है। हम स्पष्टतया इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि लुब्धकवर्गीय रश्मिचित्र हरे तारेका है और सूर्य वर्गीय रश्मिचित्र भूत पूर्व लाल सहचरका है। आशा है कि वही रंग फिर बदलेंगे।

ब्रह्महृदय (ब्रह्म मण्डलका एल्फ़ा केपेला) बड़ा ही कौतुकी तारा है। १८९९ ई० तक यह तारा आदर्श सूर्य वर्गका समझा जाता था। इसका रंग-रूप सभी सूर्यके समान था। रश्मिचित्र परीक्षणने इसकी और भी पुष्टि की। सूर्यसे किसी प्रकारकी भी भिन्नताका कोई चिन्ह उपलब्ध नहीं हुआ। लिक्की वेधशालामें इस तारेके रश्मिचित्रमें बहुत सी नयी बातोंका पता चला। इसकी रचना भी बड़ी जटिल पायी गयी। धारियां रश्मिचित्रमें बराबर क्रमसे जामनी और लालकी ओर सरकती पायी गयीं। सभी प्रखर ज्योतिषी लोग ब्रह्महृदय-पर ही टूट पड़े। बस इस दम्पति युगल तारेके विषयमें पहला निर्णय—कि यह एक मात्र सूर्यका प्रतिद्वन्दी है—काफ़ूर हो गया। पता लगा कि यह निश्चयसे दम्पति वर्गका है। दोनों सहचर शरीरमें समान हैं और क्रान्तिमें असमान। एकका तो रश्मिचित्र सूर्य वर्गीय है। और दूसरेका सूर्य और लुब्धक वर्गोंके मध्यका है। अर्थात् सूर्य लुब्धक वर्गीय है। दूसरा साथी बहुत मध्यम है। पहलेकी अपेक्षा साथीकी कान्ति आधी है। ब्रह्म हृदय हमसे केवल ४० तेजो वर्ष दूर है। दोनों सहचरोंका अन्तर पृथ्वी सूर्यान्तरके बराबर ही है। और क्रान्ति मार्ग दृष्टि धरातलसे ६०° के कोण पर है। मायावती वर्गका वर्णन करते हुए (विज्ञान, भाग १३ संख्या ४ पृ० १८३) हम बतला आये हैं कि स्वल्पकाल परिवर्त्ती तारोंमें बहुत ऐसे ही दम्पति वर्गके युगल तारे हैं जिनमें एक तो स्वतः उज्ज्वल है परन्तु उसका सहचर असुर वर्गका अनुज्ज्वल तारा है। मायावती वर्गके तारोंमें अन्धकार मय असुर वर्गीय साथी ही अपने उज्ज्वल साथीके आगे आकर उसकी कान्तिमें बाधक हो जाता है। युगल तारोंके निरीक्षणने इस निर्णय पर पहुंचा दिया है कि गगन मण्डलमें असुर वर्गीय तारे भी बहुत अधिक हैं और प्रायः वह सारे किसी न किसी उज्ज्वल तारेके साथी हैं। ज्यों ज्यों नक्षत्रोंकी गतिका ध्यान पूर्वक निरीक्षण किया गया है त्यों त्यों असुर वर्गीय अन्धकारमय मृत तारोंका भी पता लगता जाता है। ऐसे असुरोंकी गति, स्थिति भी पूरी तरहसे अनुमान करली गयी है। लुब्धक और प्रभाव तारेके साथी मृत तारोंकी गति स्थितिका बड़ा पक्का निश्चय हो चुका है। गणनीय गणनासे इनके साथियोंका बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त हुआ है।

दम्पति युगलके निरीक्षणसे और भी जटिल समस्याएं और ग्रन्थियां खुलती जाती हैं। जैसे विष्णु तारा स्वतः दम्पति युगल है, परन्तु एक मृत असुर वर्गीय तारा दोनोंकी परिक्रमा करता है।

और हालमें ही विष्णुके सहचर तारेका भी एक उपग्रह चक्कर लगाता जाना गया है। क्या खूब घटना है। विष्णु लक्ष्मीका जोड़ा आकाश समुद्रमें शोभा देता है। और दो दैत्य भृत्य उनके सहचर हैं। एक दोनोंका सेवक और दूसरा केवल लक्ष्मीके ही चरण कमलों पर मुग्ध हुए भ्रमरकी नाईं परिक्रमा करता है।

हमारे प्रसिद्ध भक्त ध्रुव अविचल हो कर नारायणकी उपासना करते हैं। और उनके तपोबलसे नक्षत्र चक्र अपनी परिधि पर बलखा रहा है। हां! उनकी सेवामें दो काछी (असुर वर्गके) नियुक्त हैं। कहीं यह दोनों तपोभङ्ग करनेकी ताकमें तो नहीं हैं?

दम्पति वर्गके युगल प्रेमियोंके वर्णनके अतिरिक्त अभी कुटुम्बी तारोंमें भी बड़ा रहस्य भरा है। दोसे अधिक तीन, चार, पांच या इससे भी अधिक तारे एक कुटुम्बमें पाये गये हैं। ऐसे ताराके परस्पर सम्बन्ध बड़े ही अद्भुत और नाना विध दृष्टिगोचर हुए हैं। इनके निरीक्षणसे जटिल गतियोंका विचित्र कौतुक और ईश्वरीय सृष्टिमें पारस्परिक सहयोगका विचित्र नमूना देखनेमें आता है।

कुटुम्बीवर्गके तारे

हमारे सूर्यके परिवारमें एक सूर्य केन्द्रमें राजाकी तरह चमकता है। और उसके चारों ओर अपने क्रान्तिमार्गमें बुध, शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, अरुण और वरुण गति कर रहे हैं; मानों कोई राजा, कोई मन्त्री, कोई बन्दी और कोई दीवान होकर बैठे हैं। ऐसा क्रम ३, ४, ५ तारोंके कुटुम्बी वर्गके तारोंमें नहीं देखनेमें आता। अर्थात् ३, ४, ५, पिण्ड किसी केन्द्रस्थ महा पिण्ड की समान रूपसे अपनी अपनी कक्षाओंपर परिक्रमा नहीं करते, प्रत्युत दो तारे परस्पर प्रदक्षिणा करते हैं और साथ ही साथ वह दोनों किसी तीसरे तारेकी परिक्रमा करते हैं। या दो तारे परस्पर परिक्रमा करते हैं और एक तीसरा अनुचर दोनोंकी परिक्रमा करता है। या दो दो दम्पति युगलोंका चौका बना है, जिसमें दोनों युगलोंके सहचर एक दूसरेकी और दोनों जोड़े एक दूसरेकी परिक्रमा करते हैं। वीणा मण्डलका एप्सिलन तारा इसी प्रकारका एक बड़ा ही चमत्कारी कुटुम्बी है। सादी आंखोंसे यह तारा चतुर्थ दीप्तिका भासता है। तीन इंची दूरबीनसे ही इस कुटुम्बके चारों सहयोगी दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसमें दो दम्पति युगल हैं। प्रत्येक जोड़ेके तारे एक दूसरेकी परिक्रमा करते हैं और साथ ही दोनों जोड़े भी पर्याप्त दूरी पर रहते हुए एक दूसरेसे उसी प्रकारके सम्बन्धमें बंधे हैं। वीणा मण्डलका एप्सिलनही इस कुटुम्बी वर्गका युगल-युगल (Double double) नहीं है, प्रत्युत इसी प्रकारके बीससे भी अधिक कुटुम्बी तारोंका पता लगा लिया गया है। और अब तक जो दम्पतिवर्गके माने जाते हैं बादमें कदाचित् वही कुटुम्बीवर्गके सिद्ध हो जायँ। इस वर्गके कई एक चतुष्क बहुत ही विशेष ध्यान देने योग्य हैं, जैसे वसिष्ठारुन्धतीका कुटुम्ब। सप्तर्षिकी चौकड़ीके शेष तीन तारोंके मध्यका तारा वसिष्ठ (Mizar) है; जो आंखसे एक तारा दीखता है। पर ध्यानपूर्वक दूरबीनसे दो तारे दीख पड़ते हैं, जिनमें से एक फिर रश्मिचित्र यन्त्र द्वारा युगल प्रतीत होता है। वसिष्ठके पासही एक और तारा अरुन्धती है; जो ध्यानपूर्वक देखनेसे आंखसे भी स्पष्ट देख पड़ता है। इस अरुन्धतीका वसिष्ठके साथ पतिपत्नी भाव सम्बन्ध भारतीय साहित्यमें अत्यन्त प्राचीनकालसे प्रसिद्ध है। विवाह पद्धतिमें भी संस्कारके समय पतिपत्नीको वसिष्ठ-अरुन्धतीके तारे दिखाये जाते हैं। और आदर्श पतिव्रत भावका नमूना रखा जाता है। परन्तु ज्योतिष संसारमें अरुन्धतीका वसिष्ठसे किसी प्रकारके भौतिक आकर्षणादिका कोई विशेष सम्बन्ध है कि नहीं, इसका अभी तक पूरा निर्णय नहीं हुआ। यदि इनका सम्बन्ध सत्य सिद्ध हो जाय तो यह एक बड़ा उत्तम कुटुम्बीका नमूना हो। मुख्य वसिष्ठका एक सहचर अदृश्य, एक

सहचर दूरबीनसे दृश्य और तीसरा आंखोंसे दीखनेवाला हो जाय।

वि० १८३८ (१७८१ ई०) में कर्कट राशिमें एक बड़े ही विनोदजनक त्रिकका पता लगा था। इसमें एक युगलकी प्रदक्षिणा तीसरा दोनोंसे पर्याप्त दूरीपर रहकर कर रहा है। और एक वर्षमें आधा अंश सरकता है। ओटोस्ट्रूवे (Otto Struvey) ने इस तीसरे यात्रीकी गतिमें एक अद्भुत घटना देखी। वह नियत कालोंके बाद नियमसे कभी मन्दा हो जाता था कभी तेज़ हो जाता था, कभी ठहर जाता था। यह देखकर पण्डित स्ट्रूवेने गणनासे पता लगाया कि इसका सम्बन्ध किसी इससे भी बड़े विशालकाय असुर वर्गीय तारेके साथ है। वह उसकी परिक्रमा भी करता है। इसी घटनाको पण्डित सीलेजरने और भी पूरी तरहसे प्रमाणित कर दिया। इस कुटुम्बमें सबसे अधिक विस्मय इस बातका है कि वही असुर इस सारे कुटुम्बका मुख्य तारा है। शेष तीनों उज्ज्वल तारे उसीके वश होकर उसकी परिक्रमा करते हैं। उन तीनोंमें भी तीसरा प्रथम-द्वितीयकी प्रदक्षिणा भी करता है। और प्रथम द्वितीय दोनों एक दूसरेकी भवंरियां ले रहे हैं।

यह कुटुम्ब कर्कट ज़ीटाके नामसे पुकारा जाता है। इस कुटुम्बके विचित्र क्रमको देखकर श्रीमती पण्डितानी कलार्का देवी (Miss Clerke) को इसमें कुपर निकसका सिद्धान्त खण्डित होता दीखता है। श्रीमतीका विचार है कि यह तीसरा असुर-पिण्ड ठण्डा हुआ हुआ सूर्य है; कदाचित् उसमें जीव संसार और वनस्पति संसार भी अनुकूल परिस्थिति, वातावरण और जलवायु पाकर अच्छी प्रकारसे बसे होंगे। वहांके वासी लोग परिक्रमा करते हुए तीन सूर्योंसे अपना प्रकाश लेते होंगे। और यह मुख्य महा भूमण्डलाकार असुर तीनों सूर्योंकी नाथ अपने हाथमें पकड़े तीनोंको अद्भुत रूपसे वश किये हुए है। और आप अन्योंकी अपेक्षा स्थिर ध्रुव है; उसकी यदि गति होगी भी तो बहुत कम।

बहुसंख्यक कुटुम्बी तारों और दम्पति तारोंमें भी नाना प्रकारके रंगोंके तारे पाये जाते हैं। ऐसे कितने ही सुन्दर नमूने आकाशकी शोभा बढ़ा रहे हैं। अन्तर्मदा (ध्रुवमाता) मण्डलमें स्यन्दूर वर्णका २ य श्रेणीका एक तारा है, जिसका साथी सिन्धु समान आनीलहरित वर्णका ५म दीप्तिका तारा है। अच्छे दूरबीनसे देखने पर ज्ञात हुआ कि सहचर स्वतः युगल है। जिसमें एक नील वर्ण और दूसरा हरित वर्णका है। यह दोनों अपने दीर्घ वृत्ताकार क्रान्ति मार्ग पर एक दूसरेके फेरे लेते हैं और एक फेरा ५०० वर्षमें पूरा करते हैं।

यामी मण्डलमें तीन तारोंका एक कुटुम्ब है। जिसका मुख्य तारा ४र्थ, ५म श्रेणीके बीचका है। मुख्य तारेके साथ एक युगल दम्पति है। परन्तु देखनेसे इतने अन्तर पर दीखता है कि दम्पतिका मुख्य तारेसे कोई सम्बन्ध होना भी सन्देह जनक प्रतीत होता है। परन्तु, उन तीनोंकी गतिको खूब गौरसे देखा गया। तीनों अपने मार्ग पर बड़े वेगसे गति कर रहे हैं और आश्चर्य यह है कि तीनोंकी गति बराबर है। अपने मुख्य पिण्डसे सहचर पिण्ड ८५ विकला दूर है। परिक्रमा काल १३६ वर्ष है। दोनोंका पिण्ड मिलकर हमारे सूर्यसे दुगुना है। परन्तु प्रकाशमें वह सूर्यके प्रकाशका $\frac{1}{30}$वां भाग भी नहीं है। सबसे अधिक विशेषता यही है कि यह इतने शीघ्र गतिवाले हो कर भी दीप्तिमें बहुत न्यून हैं। ऐसे भी कई तारे पाये गये हैं जो न्यून दीप्तिके रहते हुए भी बहुत अधिक वेगसे गति कर रहे हैं। यह तारोंका एक भिन्न ही वर्ग है।

दम्पति वर्गके युगल तारोंको साधारणतः एक ही आयुका माना जा सकता है। इसलिए उनके पिण्डों और भौतिक दशाओंका विज्ञान बड़ा ही विनोद जनक है। नक्षत्र जीवनके विकाश पर इस विवेचनासे बहुत अधिक प्रकाश पड़ता है। प्रायः विज्ञानोंकी यह कल्पना है कि बड़े पिण्डमें छोटे

पिण्डकी अपेक्षा (विकास) अवस्थान्तर परिवर्त्तन शनैः शनैः होता है। कन्याराशिमें स्थिति दम्पति युगलके दोनों तारोंके रश्मिचित्र लुब्धक वर्गके हैं, और दोनों समान हैं। इन दोनों तारोंका विकास समान रूपसे माना जा सकता है। और भी बहुत से युगलोंमें सहचर तारे समान वर्णके और समान वर्गके उपलब्ध होते हैं, जैसे विष्णुके दोनों तारे लुब्धक वर्गके हैं। और उसी प्रकार ब्रह्म हृदय और वसिष्ठके सहचर भी हैं। कतिपय युगलोंमें बड़ा पिण्ड सूर्य वर्गका और छोटा लुब्धक वर्गका है; जैसे बकमुख तारा (बकका बीटा) और तारा सुनीति (अन्तर्मदाका गामा) और श्रविष्ठाके गामामें देखा जाता है, कईयोंमें बड़ा पिण्ड पारिजात वर्गका और छोटा लुब्धक और सूर्यकी मध्य वर्गका होता है। यह सब नमूने इस बातको पुष्ट करते हैं कि बड़े पिण्डमें विकाश मार्गकी तरफ परिवर्तनका वेग बहुत अधिक है, अर्थात् बड़ा पिण्ड ही अधिक विकसित और बूढ़ा है। कई नमूने इसके सर्वथा विपरीत हैं। बहुत से पीले तारोंके रश्मिचित्र सूर्यके समान हैं। उनके सहचर भूरे लाल या जामनी गुलाबी रङ्गके हैं। उनकी दीप्ति भी बहुत कम होती है। इन उपग्रहोंके रङ्गोंका अभी पूरा अनुसंधान नहीं हुआ, परन्तु निःसन्देह भद्दी गुलाबी चमक बुढ़ापेका चिन्ह है और जिन पिण्डोंमें ऐसी अवस्था होती है वह बहुत घने होते हैं और उनके वातावरणमें प्रकाशकी बहुत सी मात्रा रुक जाती है। ऐसी दशाओंमें छोटे पिण्ड बड़ोंकी अपेक्षा बहुत दूर तक पहुंचे मालूम होते हैं अर्थात् दोनोंकी समान आयु होने पर भी छोटा बहुत जल्दी विकसित हो जाता है और यह भी सम्भव है कि धुंधियाले गहरे रङ्गके सहचर ही पीछेसे बड़े पिण्ड सिद्ध हों और पीले तारे छोटे। स्थिर परिणामों पर पहुँचनेके लिए अभी बहुत से निरीक्षण परीक्षणोंकी आवश्यकता है।

एक ही कुटुम्बमें चार पांच तारोंसे अधिक तारोंके नमूने भी बहुत से पाये गये हैं, जिनका इस प्रसङ्गमें पूरा वर्णन करना रुचि कर नहीं होगा।

पृथ्वी कबसे नाच रही है ?

पिछले अंकमें हम इस बात पर विचार कर रहे थे कि असाधारण दबाव और तापक्रमके प्रभावसे पदार्थोंके गुण भी असाधारण हो जाते हैं। पोटासियमका एक टुकड़ा पानी पर छोड़ दिया जाय तो पानीका विघटन कर, उसके अणुओंको तोड़ ताड़ कर, उनमेंकी ओषजनके साथ मिल जाता है; इतनी गरमी पैदा हो जाती है कि पोटासियम जल उठता है। परन्तु यदि शुद्ध ओषजनको द्रव बनाकर समुद्रमें भरदें और पोटासियमके पहाड़ उसमें तैरादें तो भी पोटासियमपर दाग तक न पड़ेगा। यह केवल द्रव ओषजनके नीचे तापक्रमकी महिमा है। इसी प्रकार दबावके बदलनेपर भी पदार्थ के गुणोंमें बड़ा परिवर्तन हो जाता है।

कुकस्यूबमेंसे हवा निकाल लेने पर†जो सूक्ष्म द्रव्य बच रहता है, उसकी लीला कुछ निराली ही है। दबाव बढ़ानेसे इस्पात पानीकी तरह बहने लगता है और ग्रेनैटके ढोके बिलकुल चपातियोंकी नाईं चपटे हो जाते हैं, यद्यपि रवेदार पूर्ववत बने रहते हैं।

अतएव यह सिद्ध हुआ कि नयी अवस्थाओंसे पदार्थके गुणोंमें अन्तर हो जाता है। पृथ्वीके आभ्यन्तर भागमें अनोखी अवस्थाएं निस्सन्देह विद्यमान हैं, वास्तवमें वहां दो बड़ी भारी विपरीत प्रभाव वाली शक्तियां विद्यमान हैं। एक तरफ तो अत्यधिक दबाव चट्टानों को ठोसावस्थामें रखने की चेष्टा करता है, दूसरी ओर अति भीषण ताप उनके द्रवीकरण और वाष्पीकरणपर कमर कसे हैं। इनमेंसे किसकी विजय भूतल से हजारों मीलकी दूरीपर भूगर्भमें होती होगी ? यह कौन बतला सकता है, हां इतना अवश्य ठीक है कि दबावमें वृद्धि उसी क्रमसे नहीं होती जिस क्रमसे कि ताप-

† अर्थात् दबाव कम कर देने पर।

की होती है। पर इतने कहनेसे ही इस प्रश्नका निर्णय नहीं हो सकता। ताप और दबाव पर विचार करनेसे तो यह कहना अत्यन्त कठिन है कि केन्द्रीय भाग ठोस, द्रव या गैस है; या वहां पर निरे विद्युत्कण ही हैं।

और बातों पर भी विचार करनेसे कुछ निर्णय करना कठिन है। पृथ्वी-पिण्डका व्यवहार एक कठोर ठोसका सा है। पृथ्वीकी कठोरता इस्पातके समान होनी चाहिये। यदि ऐसा न होता तो चन्द्रमाके आकर्षणसे पृथ्वीके पृष्ठ भागमें भी तरंग उठते। इस बातपर दृष्टि रखते हुए कुछ सज्जनोंका मत है कि ऊपरी पृष्ठकी मोटाई १०००.मीलसे कम नहीं है।

इस सम्बन्धकी तीन कल्पनाएं

भूकम्पों द्वारा जो कम्पन पृथ्वीमें उत्पन्न होते हैं वह उसके पृष्ठ भागमें भी तरंग रूपसे प्रस्थान करते हैं और उसके पिण्डमें होकर भी। पिण्डमें कर कम्पन १० मील प्रति मिनटके वेगसे चलते हैं। परन्तु इतने वेगसे तो कम्पन इस्पातमें भी नहीं चल सकते, अतएव मानना पड़ता है कि पृथ्वीका भीतरी भाग इस्पातसे भी अधिक कठोर है। गणितज्ञ कहते हैं कि पृथ्वीका अयनांश (Precession) भी उसके भीतरी भागके ठोस होनेका प्रमाण है। अयनांशका कारण सूर्य और चन्द्रमा द्वारा पृथ्वीके निरक्षदेशीय भागका आकर्षण है। यदि पृथ्वीका अन्दरूनी हिस्सा द्रव होता तो अयनांशका परिमाण और भी बढ़ जाता।

द्रवों पर जब बहुत अधिक दबाव पड़ता है तो वह भी कठोर ठोसोंका सा व्यवहार करने लगते हैं। दूसरे भूकम्प और ज्वालामुखीय घटनाएँ यह इंगित करती हैं कि भूपृष्ठ बहुत पतला है। अतएव कुछ लोगोंका विचार है कि केन्द्रमें कुछ अंश ठोस है, पृष्ठ भाग ठोस, पर पतला है और बीचमें द्रव भरा हुआ है।

वास्तवमें इस प्रश्नका निर्णय अभी तक नहीं हुआ है। चाहें हम यह मान लें कि किसीके मतानुसार भूपृष्ठ केवल २० मील मोटा है, अथवा, जैसा हक्सलेका मत था, भूपृष्ठ हज़ार मील मोटा है या हम लार्ड केलविनका सिद्धान्त सत्य समझ लें कि पृथ्वी ठोस पिण्ड है।

क्या वह नीहारिका, जिससे पृथ्वीका विकाश हुआ था, अब भी गरमी दे रही है ?

चाहे भूका भीतरी भाग ठोस हो चाहे द्रव या गैसीय, यह निर्विवाद है कि पृथ्वी गरमीका बड़ा भारी भण्डार है। यह तथ्य पृथ्वीके नीहारिकासे पैदा होनेका बड़ा प्रमाण है। क्योंकि यदि इतनी गरमी किसी श्वेत उत्तप्त नीहारिकासे नहीं मिली है तो और कहांसे प्राप्त हो सकती है।

यह सच है कि पृथ्वी किसी जमानेमें अबसे चौगुने वेगसे घूमती थी और उसकी गति घर्षणके कारण कम हुई है—ऐसे ही घर्षणसे जैसा ज्वार भाटेमें पैदा होता है। घर्षणसे चाहे चक्कीके पाटोंमें हो और चाहे किसी ग्रहके पृष्ठपर, उससे गरमी पैदा होना स्वाभाविक है। इस भांति पृथ्वीकी गति-सम्भूत-शक्ति—चक्कर लगानेकी शक्ति—के १५ आने गरमीमें बदल चुके हैं।

यदि पृथ्वीकी गरमीका जन्मस्थान घर्षण होता तो गरमी ऊपरी पृष्ठ भागमें अधिक पाई जाती, परन्तु यहां तो बात ही दूसरी है। सब गरमी तो भीतरी भागमें भरी हुई है। घर्षणजात गरमी निसन्देह पृथ्वीकी असली गरमी पहले भी बढ़ाती थी और अब भी बढ़ा रही; परन्तु यह असंभव है कि पृथ्वीकी सभी गरमी घर्षणजात है। इसीलिए नीहारिकावादकी शरण लेनेके लिए हम विवश हो जाते हैं। पृथ्वीको जो गरमी नीहारिकासे मिली थी उसमें शायद विकीरक पदार्थोंसे पैदा होनेवाली गरमी मिलती रहती है। पृथ्वीकी आयुका अंदाज़ा लगानेमें उसकी गरमीसे बड़ी सहायता मिलती है।

पृथ्वी अब भी गरम है, पर पहलेसे ठण्डी है। यदि हम विकीरक पदार्थोंके अस्तित्वको भूल जायं तो पृथ्वीके ठंडे होनेके क्रम और अब तक

जितनी वह ठंडी हो चुकी है, इन दो बातोंसे उसकी आयुका पता चला सकते हैं।

वायु और चट्टानोंके कुवाहक होनेके कारण ठंडे होनेकी गति बहुत मन्द है। परन्तु ठंडे होनेका क्रम निरन्तर चला जाता है। प्रोफेसर एवेरेट (J. D. Everett) का अनुमान है कि प्रति वर्ष पृथ्वीसे इतनी गरमी निकल जाती है कि यदि पृथ्वी पर एक इंच मोटी तह बरफकी चढ़ी हो तो उसको वह गला सकेगी। यद्यपि भिन्न भिन्न समयों-पर बरफकी और कर्बन द्विओषिदकी मात्रामें परि-वर्तन होनेके कारण, गरमीके विसर्जनकी गतिमें भी अन्तर होता रहा होगा तथापि कभी विसर्जन (radiation) बन्द न हुआ होगा और इसी लिए एक मोटा सा हिसाब लगाया जा सकता है।

मातृ-नीहारिकाके तापक्रमका पता चलाना मुश्किल है; पर यह मालूम है कि पृथ्वीका पृष्ठ जब कठोर होने लगा था तब लगभग २०००° फा० तापक्रम रहा होगा। अतएव इस घटनाका काल-निर्णय करना संभव है। लार्ड केल्विन ने हिसाब लगाया था कि २ करोड़से अधिक और ४ करोड़ वर्षसे कम ठोस भूपृष्ठकी आयु है। उन्होंने यह भी बतलाया कि २ करोड वर्षका समय अधिक ठीक मालूम पड़ता है। ऐसा ही सूर्यकी आयुका भी अन्दाज़ लगानेसे ठीक जान पड़ता है।

सूर्यके आकारके श्वेत उत्तप्त पिण्डको बरफके समान ठंडा होनेमें कितना समय लगेगा ?

पृथ्वी सूर्यसे उम्रमें ज्यादा नहीं हो सकती। पर सूर्य भी सदा इतनी ही तेज़ीसे चमकता न रहेगा। वह भी क्रमशः ठंडा हो रहा है। यदि वह लोहेका पिण्ड होता तो ४८ वर्षमें ही बरफवत ठंडा हो जाता। यदि वह कोयलेका पिण्ड होता तो ३००० वर्षमें भस्म हो जाता। जो उल्का सूर्य-पिण्डपर गिरते रहते हैं, वह भी उसे अधिक दिन जलता न रखते। किसी भांति भी उसकी आयु अधिक नहीं निकलती थी और यह दिखाई पड़ता था कि बहुत जल्द यह जीवन, ताप और प्रकाशका श्रोत सदाके लिए मिट जायगा।

धन्य है हैल्महोज़ महाशयको जिन्होंने एक नया तर्क निकाला। उन्होंने कहा कि सूर्यकी गरमी संकोच अर्थात् सिकुड़नेके कारण निकलती है। उन्होंने हिसाब लगा कर दिखला दिया कि यदि प्रति वर्ष सूर्य १६ इंच घटे तो वर्तमान क्रमसे गरमी निकलती रहेगी।

यदि उपरोक्त सिद्धान्त मानलें, और यह भी मानलें कि सूर्यका जन्म अनन्त नीहारिकासे हुआ था, तो भी सूर्यकी अवस्था ५० करोड़ वर्षसे अधिक नहीं निकलती। लार्ड केल्विनका भी विश्वास था कि सूर्यकी अवस्था १० करोड़ वर्षसे अधिक पर ५० करोड़से कम है।

ऊपर दिये हुए तखमीने बहुत ही मोटे हिसाब से लगाये गये हैं, अतएव और नयी नयी अधिक विश्वसनीय विधियोंसे भी समय समय पर गणना होती रही है। कुछ लोगोंने ज्वारभाटेसे पैदा हुई पृथ्वीके वेगमें न्यूनतासे भी पृथ्वीकी अवस्थाका अनुमान किया है।

क्या पृथ्वी १० करोड़ वर्षसे नाच रही है ?

पृथ्वीका वेग घटता जा रहा है। १०० करोड़ वर्ष पहले शायद उसका वेग दुगना था। यदि इतने वेगसे घूमती हुई वह ठोस हो जाती तो ध्रुवीय देशोंमें अधिक चपटी और निरक्ष देशमें अधिक उभरी हुई रहती। इसलिए चपटेपन और उभारका हिसाब लगाकर हम यह पता चला सकते हैं कि ठोस होते समय उसका वेग कितना था। यह जान लेनेपर उस घटनाका समय मालूम हो सकता है। गणितज्ञोंने गणना करके १० करोड़ वर्षका समय निश्चित किया है; पर यह गणना विधि ठीक नहीं है, क्योंकि ठोस होना आरम्भ होनेके समय यदि पृथ्वी अधिक चपटी रही भी हो तो भी बादमें वेग घटने पर कम चपटी हो गई होगी। ऐसा होना बहुत सम्भव है, क्योंकि आरम्भमें वह बहुत कठोर नहीं थी।

पृथ्वीकी अवस्थाका हिसाब भूगर्भ शास्त्रकी सहायतासे भी लगाया जा सकता है। बहुत सी चट्टानें रेत आदि पानी द्वारा ले जाये गये पदार्थोंके तलेमें ही जमनेसे बन जाती हैं। जिस परिमाणसे आज-कल मट्टी धुल धुल कर समुद्रको जा रही है, उसकी हम जांच कर सकते हैं। उधर तलछटोत्पादित चट्टानोंकी मोटाई भी जांची जा सकती है, इन दोनों बातोंको जान कर तलछटके जमते रहनेका समय मालूम किया जा सकता है।

तलछटके जमावकी पूरी मोटाई ५० मीलके लगभग है। यह एक बड़ा भयावह जमाव है; गौरी शंकरकी ऊंचाईसे अथवा समुद्रकी गहराईसे प्रायः १० गुना ज्यादा है। परीक्षासे ज्ञात हुआ है कि १०० वर्षमें १ फुट तलछट जमता है। इस हिसाबसे पृथ्वीकी आयु २६० लाख वर्षकी होती है।

यह गणना विधि भी बहुत सन्तोष जनक नहीं है। तलछटके जमनेका एक तो कोई निश्चित नियम नहीं है, दूसरे उसकी पूरी मोटाईका पता चलाना मुश्किल है। फिर यह भी याद रखना चाहिये कि बहुत सी तलछटकी तहें मिट भी जाती हैं। इन्हीं कारणोंसे इस विधिसे भी २ करोड़ और १० करोड़के बीचमें अनेक संख्यायें प्राप्त होती हैं।

कबसे नदियां समुद्रमें नमक पहुंचा रही हैं।

समुद्रमें नमककी मात्राका पता चला कर भी पृथ्वीकी अवस्था निकालनेका प्रयत्न किया जाचुका है। समुद्रका पानी आरम्भमें, जब वाष्प द्रवीभूत हुई थी, अत्यन्त शुद्ध था। परन्तु अब समुद्रमें ४०३२०००००००००००० मन नमक विद्यमान है। यदि यह नमक निकालकर पृथ्वीतलपर फैला दिया जाय तो ४०० फुट मोटी तह बन जाय। प्रश्न यह है कि कितने दिनमें यह नमक घुल घुलकर समुद्रमें पहुंच गया? प्रति वर्ष ६५२४ घन मील पानी नदियों द्वारा समुद्रमें पहुँचता है। प्रोफेसर जौलीने १६ बड़ी बड़ी नदियोंके पानीकी परीक्षा की। यह नदियां ४८८ घन मील पानी समुद्रमें पहुंचाती हैं। जौलीको पता चला कि ५.७३ भाग नमकके १०००००० भाग पानीमें रहते हैं। इस हिसाबसे ४४८०००००० मन नमक प्रतिवर्ष समुद्र में पहुंचता है। और जितना नमक अब है वह ६ करोड़ वर्षमें समुद्रमें पहुँचा होगा। इसलिए ६ करोड़ वर्ष ही पृथ्वीकी अवस्था मान सकते हैं।

अतएव हमने देख लिया कि हर तरहसे सिर्फ मोटा हिसाब ही लगाया जा सकता है और परिणाम यही निकलता है कि पृथ्वीकी अवस्था १० करोड़ वर्षसे कम ही है।

पृथ्वी और भी पुरानी जान पड़ती है

जीव विज्ञानियोंको इस बड़ी संख्यासे भी सन्तोष नहीं होता। वह कहते हैं कि इससे करोड़ों वर्ष अधिक जीवोंके विकाशमें लग जाते हैं, अतएव पृथ्वीकी अवस्था इससे बहुत ज्यादा होनी चाहिये। यूरेनियम, रेडियम आदि विकीरक पदार्थोंके आविष्कारके कारण भी अब पुराना हिसाब फिरसे लगाना पड़ेगा और सम्भव है कि कई करोड़ वर्ष ज्यादा ही निकलेंगे।

विकीरक पदार्थोंके परमाणु बराबर टूटते रहते हैं, अतएव उनमें से निरन्तर ताप निकलता रहता है। यदि यह भी मानलें कि पृथ्वीके ठोस पृष्ठमें विकीरक पदार्थ केवल ६० मील तक विद्यमान हैं, तो भी इन पदार्थोंकी इतनी मात्रा पृथ्वी पर है कि उससे, जितनी गरमी विसर्जन (radiation) द्वारा पृथ्वीसे निकल जाती है उतनी ही गरमी प्रति वर्ष पैदा भी हो जाती है।

विकीरक पदार्थोंके विकरण पर दबाव और तापक्रमका प्रभाव नहीं पड़ता। सूर्यमें भी रेडियम विद्यमान है। यदि सूर्यके प्रति घन गज़में ३½ ग्राम रेडियम है तो भी वह हजारों वर्ष तक गरमी देता रहेगा।

विकीरक पदार्थोंके आविष्कारने हमारी सब गणनाओं पर पानी फेर दिया है। जितनी गरमी विसर्जन द्वारा पृथ्वीमें से निकल जाती है, यदि उससे ज्यादा विकीरक पदार्थोंके कारण पैदा हो

जाती है, तब तो समस्या बिलकुल उलटी ही हो जाती है।

क्या भूगर्भस्थ ज्वाला ऊपरकी तरफ प्रयाण कर रही है?

ऊपरकी कल्पनाके अनुसार भूगर्भमें सम्भव है कि गरमी पैदा हो रही हो और क्रमशः ऊपर को चढ़ रही हो। शायद एक समय आजाय जब भूपृष्ठ फिर श्वेत उत्तप्त होजाय।

यहां पर यह सन्देह हो सकता है कि यदि ऐसी ही बात है तो एक दम ही गरमी ऊपर तक क्यों नहीं आ पहुंचती। यह कठिनाई भी दूर हो जाती है जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि चट्टानें कुवाहक हैं और पृथ्वीके भीतरसे उसके पृष्ठ तल तक पहुँचनेमें गरमीको इन्हीं चट्टानोंमें होकर आना पड़ता है। लार्ड केल्विनने भी इस बातको दर्शाया है कि यदि भूगर्भस्थ चट्टानें भी इतनी ही कुवाहक हैं जितनी कि ऊपरी चट्टानें हैं तो भूपिंडका मध्य भाग १०० करोड़ वर्ष तक प्रायः उतना ही गरम बना रहेगा। इसी भांति मध्य भाग यदि श्वेत उत्तप्त भी हो तो भी ऊपर का भाग ठंडा रह सकता है या दिन प्रति दिन अधिकाधिक ठंडा हो सकता है।

सारांश यह है कि पृथ्वीकी अवस्था हमारे हिसाबसे निकाले गये समयसे बहुत ज्यादा है। विकीरक पदार्थ न जाने कितना ताप पैदा कर रहे हैं, परन्तु यह असम्भव नहीं है कि १० करोड़ वर्षमें शायद पृथ्वी फिरसे द्रवीभूत हो जाय।

रेडियम पृथ्वी और सूर्य दोनोंके लिए एक नया गरमीका खजाना है। इसके ज्ञानसे हमारी आंखें खुल गई हैं और हमें ज्ञात हो गया है कि पृथ्वी और सूर्य बहुत पुराने हैं और भविष्यमें ठंडे न होकर शायद गरम होते जायंगे। उसने हमको बता दिया है कि संसारके हृदयमें एक सुलगती हुई आग मौजूद है जो किसी दिन उसे जलाकर खाक कर देगी। इस नये सिद्धान्तमे बतला दिया है कि यदि विकीरकता एक सीमासे ज्यादा बढ़ी तो पृथ्वी मंडल एक भट्टा सा हो जायगा, और यदि कम हुई तो पृथ्वी बिलकुल ठंठी हो जायगी और वायुमंडल द्रव होकर लुप्त हो जायगा।

कैसा आश्चर्य है कि पृथ्वी और सूर्य दोनोंका भविष्य थोड़ेसे टूटते हुए, मरते हुए या मिटते हुए, अणुओं पर निर्भर है। क्या यह सच है कि "मुए खालकी सांस सों सार भसम ह्वै जाय?"

शरीरकी रचना और व्यापार

[ले०—श्री० गंगाप्रसाद, बी. एस-सी.]

आज कल देहके प्रत्येक अंग और विभागके सूक्ष्म और यथा तथ्य वर्णन करनेमें शारीर और वैद्यक शास्त्र इतने तन्मय हो जाते हैं कि वह पूर्ण मनुष्यको भूल जाते हैं। उन्हें यह स्मरण नहीं रहता कि यह भिन्न भिन्न स्वतंत्र वस्तुएँ नहीं हैं; और एक स्वतंत्र पूर्ण व्यक्ति भी है जिसके यह अङ्ग और उपाङ्ग हैं। यह खराबी विशेषाध्ययन (specialism) की है, इसीके कारण दृष्टि संकुचित हो एक विशेष क्षेत्रमें बन्द हो जाती है। अतएव शारीर शास्त्रको अध्ययन करते हुए हमें इस बातसे सावधान रहना चाहिये। मनुष्यको एक जीवित और पूर्ण व्यक्ति, एक साङ्गोपाङ्ग जीव सदा समझना चाहिये।

मानव देह कोई शहर नहीं है, जिसमें भिन्न भिन्न वस्तुएं बनानेवाली अनेक फैक्टरी हों। वह तो एक जीवित सम्पूर्ण वस्तु है, जिसकी एकता उसके भीतरी यंत्रोंकी समानता अथवा एकताके कारण नहीं मानी जाती; परन्तु इस कारण मान्य है कि उसका एक शासक है जिसे हम मन (विशेषतः अज्ञातमन) कहते हैं। यद्यपि शरीरमें अनेक यंत्र हैं, परन्तु यंत्रवत, बिना किसी आवश्यकता के, कोई कार्य सम्पादन नहीं होता। शरीरकी समस्त

क्रियाएं जीवन प्रेरित हैं; उन सबका एक ही लक्ष्य, पूर्ण मनुष्यके स्वास्थ्य और हितका साधन है।

पहले हम मनुष्य देहकी बाहरी रचनापर विचार करेंगे। वह हमें ऊपरसे कैसा दीखता है और उसके कितने अंग स्पष्ट दिखाई देते हैं। पहली देखने योग्य बात सिरका आकार है। मनुष्यका मस्तिष्क उसके चेहरे से कितना बड़ा है! किसी और पशुमें यह बात नहीं मिलती। भौंहों पर होकर कानकी पालीके पास तक जानेवाली एक रेखाकी कल्पना कीजिये। मस्तिष्क इस रेखाके ऊपर और पीछे सिर भरको घेरे हुए है।

माथा, चेहरा और आंखें भी यथा सम्भव एक ही तलमें हैं। यदि माथेसे एक ऊर्ध्व रेखा खींची जाय तो यह रेखा ऊपरके दांतोंके निचले छोरोंको कानकी पालीके साथ जोड़ने वाली रेखाका लम्ब होगी। यह प्रवन्ध मनुष्यको खड़े खड़े चलनेके योग्य बनाता है। यदि मनुष्य चौपायोंकी भांति चारों पैरों पर चलता तो सिवाय जमीनके न तो कुछ सूंघ पाता और न देख पाता।

मनुष्यकी आंखोंका दृष्टि क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत है। केवल भीतरकी तरफ, जब आंख आंखको देखना चाहती है, नाक आड़े आ जाती है। भौंहें मस्तकके पसीनेको इधर उधर ढलका देती हैं; आंखों तक नहीं पहुंचने देतीं।

मनुष्यकी नाककी स्थिति भी ऐसी है कि नीचे से उसे खूशबू जलदी आती है। जानवरोंकी नाक इस प्रकार स्थित रहती है कि उन्हें सामनेसे खुशबू आती है। इसकी उन्हें आवश्यकता भी थी। सामने से आने वाले वैरीकी दुर्गन्ध उन्हें पहलेसे ही आ जानी चाहिये। परन्तु मनुष्यको केवल मुंहमें जानेवाले पदार्थोंकी गंध मिल जानेका प्रवन्ध किया गया है। मनुष्यके जवड़े भी बड़े नहीं हैं और उनकी कन्दराएं शब्दके ग्रहण और वाहन करनेमें बड़ी उपयोगी हैं। जान पड़ता है कि मनुष्यका मुख स्पष्ट बोलने और खाना खानेके उद्देश्योंको सामने रखकर प्रकृतिने गढ़ा था।

चेहरेकी पेशियोंमें जो भावोंकी झलक पड़ती रहती है वह भी देखने योग्य है। मुख-सामुद्रिक बहुत उपयोगी और मनोरञ्जक विद्या है। निस्संदेह मनुष्यके मनोविकारों और व्यापारोंके प्रभावसे बिना जाने हुए चेहरेकी पेशियोंकी आकृति बदलती रहती है; अतएव आदमीके शील स्वभावका पता इन पेशियोंके अध्ययनसे सहज ही लग सकता है। आंखको देखकर उतना पता नहीं चल सकता, क्योंकि आंखकी आकृति चेहरेके पट्ठों अथवा खोपड़ीके उभारों पर निर्भर होती है।

कानका छोटा आकार और सुडौल पाली भी सराहनीय है। वह जानवरोंके कानकी तरह आगे या पीछे नहीं मोड़ा जा सकता, ऐसा करनेसे पशुओंको आगेसे या पीछेसे आनेवाले शब्दोंके सुननेमें आसानी होती है। परन्तु मनुष्यको इसकी आवश्यकता नहीं है। मनुष्य घ्राण और श्रवणके भरोसे ही अपनी आत्म रक्षाका काम नहीं छोड़ देता; उसके पास तो अनेक अन्य साधन भी हैं।

गलेका अस्थिमय स्तम्भ प्रायः चारों ओरसे पेशियोंसे घिरा हुआ है। केवल सामने टेंटवा दिखलाई पड़ता है, यह शब्द यंत्रके सामनेका भाग है। छातीकी चौड़ाई मोटाईसे बहुत अधिक है। स्तनपायियोंमें यह बात केवल मनुष्य अथवा कुछ उच्च कोटिके मरकटोंमें ही पायी जाती है। इस व्यवस्थासे हाथोंके बीचमें, टांगोंके बीचकी अपेक्षा अधिक अन्तर रहता है। इससे हाथोंकी पकड़का क्षेत्र बहुत बढ़ जाता है, यद्यपि साथही वह कमजोर हो जाते हैं और चलनेके कामके नहीं रहते। दूसरे पशुओंमें छातीका ऊपरी भाग सकड़ा रहता है, इससे सामनेके पैर पास आजाते हैं और धड़का बोझ सम्हालनेके लिए ठीक उसके नीचे रहते हैं।

छातीका ढांचा पसलियों और ब्रेस्टबोनसे बना है। यदि यह नीचे तक बराबर चली जातीं तो आदमीका चलना और झुकना असम्भव हो जाता। आदमीके हाथ टांगोंका काम देनेके लिए नहीं बनाये गये। उसका हरेक अंग और सारा शरीर

खड़े रहनेके लिए ही बना है। इसीलिए धड़का निचला आधा हिस्सा मज़बूत, परन्तु लचनेवाली पेशियोंकी दीवारसे रक्षित है। मानवी देहके तीन बड़े बड़े अंग जिनके बिना जीना असम्भव है, उनको बड़ी हिफ़ाज़तसे रखा गया है—मस्तिष्क खोपड़ीमें, फेफड़े और हृत्पिण्ड पसलियोंके भीतर।

अब ज़रा हाथोंकी तरफ ध्यान दीजिये। कंधेके जोड़ कितने ढीले हैं, जिनसे हाथ हर तरफ घूम सकते हैं, पर शरीरका बोझ नहीं सम्भाल सकते। हाथका अगला भाग और कलाईको ही देखिये, इनमें ही प्रायः २७ जोड़ हैं। कलाईकी नरमी लिए हुए मज़बूती; अंगूठेकी उपयोगिता, जो अंगुलियोंके साथ एक पंक्तिमें नहीं रखा गया है, बल्कि हटा कर रखा गया है, जिस कारण वह सब अंगुलियोंको स्पर्श कर सकता है; नाखूनोंकी अद्भुत स्थिति, जिससे अंगुलियोंके सिरोंकी रक्षा हो जाती है, परन्तु स्पर्शमें बाधा नहीं पड़ती; आदि बातें सराहनीय हैं। मनुष्य ही ऐसा पशु है जिसका अंगूठा प्रत्येक अंगुली तक पहुंच कर उसके साथ काम कर सकता है। हाथोंकी तो महिमा ही अपार है। यह बड़े आश्चर्यजनक यंत्रोंके नमूने हैं। हर प्रकारका काम यह कर सकते हैं, मनके भावोंको व्यक्त अथवा कार्य रूपमें परिणत कर सकते हैं और कल्पनातीत शीघ्रतासे उसकी आज्ञाओंका पालन कर सकते हैं। फिर सोचिये कि कैसी कैसी बारीक ललित कलाओं और विज्ञानोंके सम्बंधी काम यह किस खूबीसे करते हैं।

यदि आप मनुष्यकी मूर्ति पर निगाह दौड़ाएं तो पुरुषोंके शरीर पर अनेक टेढ़ी मेढ़ी लहरोली बाह्य-रेखा नज़र आयंगी, परन्तु स्त्रियोंके शरीर पर शनैः शनैः घूमने वाली वक्र बाह्य-रेखा दृष्टिगोचर होगीं। इसका कारण पुरुषकी पेशियोंकी वृद्धि और पुष्टि है। चरबी अधिक होनेसे स्त्रियोंके शरीर अधिक सुडौल और सुन्दर होते हैं। मनुष्य रचित वस्तुओंमें सरल रेखा और कोण बहुत से होते हैं, परन्तु मानवी देहमें इनका कहीं पता भी नहीं लगता। मनुष्य देह चारों तरफसे कितना नपा तुला सुडौल और गुरुत्वाकर्षणके नियमोंके अनुसार बना हुआ है।

कमर परका जो घुमाव है, वह भी बेडौल नहीं है। क्षितिज तल में उसका आकार वृत्ताकार नहीं हैं, बल्कि दीर्घ वृत्ताकार है। नितंब देशकी अपेक्षा मरदोंके कंधे अधिक और स्त्रियोंके कम चौड़े होते हैं, इसीलिए मर्दोंके शरीर उल्टी हुई सूची (cone) के समान और औरतोंके दोहरी सूचीके समान जान पड़ते हैं। चूदड़की हड्डियां भी मनुष्योंकी अधिक मज़बूत होती हैं। क्योंकि खड़े आकारके कारण बहुतसे आभ्यन्तर अंगोंका भार इन्हीं पर पड़ता है और खड़ा रखनेके लिए बड़ी बड़ी पेशियां इनमें लगी रहती हैं।

रीढ़की हड्डी सीधी नहीं है, वरन् दो स्थानपर उसमें घुमाव हैं। इस अद्भुत आकृतिके कई कारण हैं। बच्चों और पशुओंकी रीढ़ बिल्कुल सीधी होती है। बच्चा जब सांस लेने लगता है तो फुप्फुसोंके दबावसे रीढ़ का ऊपरी भाग कंधोंके बीचमें बाहरको झुक जाता है। बादमें जब बच्चा चलने लगता है तो कटिदेशस्थ रीढ़का हिस्सा आगेको खम खा जाता है; इस घटनाके घटित होने पर गरदनका रीढ़का भाग भी आगेको ज़रा खम खा जाता है, जिससे शरीरका साम्य ठीक बना रहता है। इन्हीं सब परिवर्तनोंके कारण बालकके गुरुत्व केन्द्रमेंसे जानेवाली ऊर्ध्व रेखा टांगोंके सामनेसे हटकर नितम्बोंके बीचमें आ जाती है, जिससे वह खड़ा होने लगता है। रीढ़के झुकावसे और भी एक लाभ है, मस्तिष्क तक धक्कोंको यह नहीं पहुंचने देते।

अब ज़रा टांगोंकी तरफ ध्यान दीजिये। पशुओंके धड़के हिसाबसे मनुष्यकी टांगें सबसे ज्यादा लम्बी होती हैं। कंगारूकी भी टांगें इतनी लम्बी नहीं होती। जैसा होलडिन (Holden) महोदयका कहना है उनके इतने लम्बे होनेके कारण मनुष्य केवल खड़ा होकर ही चल सकता है।

कटि देशके नीचे जंघास्थि बाहरकी तरफको झुकी हुई हैं। शुरूमें उनमें १८ इंचका अन्तर है, पर घुटनोंके पास आकर वह मिल जाती हैं। इस रचनाके कारण न केवल नीचेके अंगोंको पर्याप्त स्थान मिल जाता है। प्रत्युत एक महराब सी बन जाती है, जो धक्कोंको मस्तिष्क तक पहुंचने से रोकती है। हाथकी ऊपरी हड्डीसे यह हड्डी बहुत लम्बी होती है। आदमीकी अंगुली जांघके प्रायः बीच तक, चिम्पैंज़ीकी घुटनों तक और ओरंग-ऊटंगकी टखनों तक पहुंचती हैं। मनुष्यकी पिंडलियां विशेषतः बहुत मज़बूत होती हैं। इन्हीं पर उंगलियोंके बल खड़े होने या कूदनेमें सारे शरीरका बोझ पड़ता है।

मनुष्य ही ऐसा स्तनपायी पशु है जो एक पैरसे खड़ा हो सकता है। इसका कारण पैरके पंजोंका चौड़ा, बलवान और बड़ा आकार है जो अन्य पशुओंमें नहीं पाया जाता।

शरीरमें सब अंग प्रायः जोड़ोंमें विद्यमान हैं, जिससे वह सुडौल मालूम पड़ता है! केवल पांच केन्द्रस्थ हड्डियां है—दो सरमें एक गलेमें, एक छाती में और एक मेरु दंड। पेशियां भी केवल पांच ही इकहरी हैं, नहीं तो और सबकी जोड़ीदार मौजूद हैं। शरीरके भीतर, जहां किफायत ज्यादा मंजूर है, अवश्य इकहरे अंग मिलते हैं, पर वहां पर भी बहुतसे दोहरे अंग पाये जाते हैं।

सेलके चमत्कार

सूर या तुलसी भी एक समय एक सेलके रूपमें थे इस बातका ध्यान आते ही मन आश्चर्यसे निस्तब्ध हो जाता है। पर नहीं, इस विचारसे हमें सन्तोष भी बहुत होता है। क्योंकि इसके जीवनकी एकता प्रमाणित होती है, कमसे कम एक बात अवश्य साबित हो जाती है कि सेलमें ही सब समस्या समाई हुई हैं और एक सेलके पूरे पूरे रहस्य समझ लेने से जीवनका कुल रहस्य खुल जायगा। कमसे कम सत्यके जान लेनेकी सम्भावना तो प्रतीत होती है। इस लिए सेलों और सेल निर्मित शरीरोंकी जांच करनी चाहिये और उनके साधारण, किन्तु व्यापक हाल जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये।

यह हम जानते हैं कि सब जीव घड़ी घड़ी या साल बसाल बदलते रहते हैं; क्योंकि जीवन क्रियाशील है। पत्थरके ढोंके ज्यों के त्यों बने रहते हैं। जो कुछ उनमें परिवर्तन होता है वह बाहरी शक्तियोंके कारण होता है; किन्तु जीवोंके कामोंकी प्रेरणा भीतरसे होती है। वह बढ़ते हैं या पुराने होते हैं, वह हरकत करते हैं, वह सीखते हैं, वह अपनी परिस्थिति बदलते हैं, (चाहे वह ऐसा केवल सांस लेनेमें ही करते हों;) और वह स्वयम् भी परिवर्तनशील हैं। कार्डिनेल न्यूमेन कहा करते थे कि जीना बदलना है और यह बात ठीक भी प्रतीत होती है। जीवन एक विधि है, न कि एक अवस्था। गणितकी भाषामें कह सकते हैं कि जीवन गतिशील है, स्थितिशील नहीं। यह बात सभी जीवोंके विषयमें ठीक है। जब वह बदलना बन्द कर देते हैं तभी उनकी मृत्यु हो जाती है। पर तब भी उसके शरीरका परिवर्तन समाप्त नहीं होता, तब भी जीवाणु आकर उसमें काट छांट करने लगते हैं।

उपरोक्त नियमका एक बड़ा सुन्दर अपवाद भी सुननेमें आया है। मिश्रकी कबरोंमें से निकले

हुए गेहूंके दाने हज़ारों वर्ष तक निष्क्रय पड़े रहने के बाद भी, बोने पर जम गये। क्या वह जीवित थे? यदि थे तो क्या हमारा उपरोक्त कथन कि जीवनका सबसे बड़ा चिन्ह परिवर्तन होना है, सत्य है? यदि वह जम गये तो निस्सन्देह वह जीवित थे: परन्तु इस घटनाकी सत्यतामें बड़ा सन्देह है। फ्रांसीसी वैज्ञानिकों ने इस दशाके लिए एक अच्छा नाम ढूंढ निकाला है। वह नाम है (Vie suspendue,) जिसका अर्थ है रुका हुआ जीवन अथवा उद्बद्ध जीवन। बीज कई साल जीवित रह सकते हैं। इस विषयमें एक तालिका विज्ञानमें निकल चुकी है। शायद बीज सूखे रहने-के कारण जीवित नहीं रहते। जब पानी उन तक पहुंचता है तो रुका हुआ जीवन फिरसे आरम्भ हो जाता है। जब उनमें परिवर्तन नहीं हो रहा था तो वह जीवन शक्ति प्रदर्शित नहीं कर रहे थे। परन्तु उनमें जीवनकी संभाव्यता थी, सिर्फ पानी-के अभाव ने सब काम रोक रखे थे।

वास्तवमें हम एक कदम और आगे बढ़ सकते हैं और कह सकते हैं कि जीवन पानी पर निर्भर है और बिना पानीके अपने स्वाभाविक और अनि-वार्य परिवर्तन नहीं दिखला सकता। एक फ्रांसीसी सामंत ने हालमें कहा है कि "जीवन एक जलीय घटना है"। यह वाक्य याद रखने योग्य है, परन्तु इसके कारण भ्रममें न पड़ जाना चाहिये। यह न समझ लेना चाहिये कि जीवनके सब काम जल-मय हैं। कृतज्ञता, शौर्य, प्रतिभा यह सब जीवनके तथ्योंमें से हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध जलसे तनिक भी नहीं है। उपरोक्त वाक्यका अर्थ केवल इतना है कि बिना पानीके जीवन सम्भव नहीं होता। यह बड़ी महत्व पूर्ण बात है। जब जीवनके प्रदुर्भाव-पर हम विचार करेंगे तो इस परिणाम पर ही पहुँचेंगे कि जीवनकी उत्पत्ति समुद्रमें ही हुई थी। चाहे यह सत्य हो वा असत्य, जीवनके इतिहासके प्रश्नोंसे कोई सरोकार न रखनेवाली यह बात सोलहों आना सत्य है कि प्रत्येक प्राणी पानीपर ही अपनी जीवन रक्षाके लिए अव-लम्बित है।

बीजोंके सम्बन्धमें हम देख चुके हैं कि पानी-के अभावमें या तो जीवन पानी न मिलने तक रुक जाता है या नष्ट हो जाता है। कभी कभी पानीके अभावमें जीवनकी गति मन्द पड़ जाती है। यह सब पानीके ही चमत्कार हैं।

प्रत्येक जीव और प्रत्येक सेल भोगी हुई रहती है। उनमेंका पानी धीरे धीरे उड़ता या निकलता रहता है, और पानीकी उन्हें आवश्यकता होती रहती है। अतएव सब जीवोंको पानीकी पिपासा रहती है। जिस अकेली सेलके रूपमें आप एक समय विद्यमान थे, उसका अधिकांश पानी था अब भी आपका प्रायः तीन चौथाई भाग पानी है। बिना पानीके जीवन असम्भव है। जिन ग्रहों और उपग्रहों पर पानी नहीं है उनपर निश्चय जानिये कि जैसे जीवोंसे हम परिचित हैं वैसे वहां कदापि नहीं हैं।

इस जीते जागते इंजनके लिए पानी परमा-वश्यक है। उसकी अनुपस्थितिमें इस इंजनकी रचना भी असम्भव थी। परन्तु यह समझ लेना चाहिये कि इस कहनेमें और जीवनको जलीय घटना (aquatic phenomena) माननेमें बड़ा अन्तर है। हम मानते हैं कि जल जीवनके लिए अनिवार्य है, परन्तु यह कह देने भरसे कि तुलसी-दासके शरीरमें तीन चौथाई पानी था, हम किसी प्रकार भी जीवन अथवा जीवोंके कामोंकी व्याख्या नहीं करते। जीवनके वर्णन और जीवनकी व्याख्या-में बड़ा भेद है। जीवनको जलीय घटना बतलाने के स्थान पर नत्रजनीय घटना बतलानेका भी वही फल होता और यह भी उतना ही सत्य होता, क्योंकि नत्रजन भी जीवोंका परमावश्यक घटक है। हमको अब भली भांति मालूम हो गया होगा कि सेल अथवा सेल-निर्मित प्राणीकी व्याख्या तब तक अपूर्ण समझनी चाहिये जब तक कि उनके कामोंका रहस्य भी न खुल जाय। अतएव

जीवनकी ऐसी परिभाषा देना भी व्यर्थ है, जिसके अन्दर मन आदि मुख्य मुख्य चीज़ नहीं आ जातीं।

१०० वर्ष पहले एक विख्यात फ्रांसीसी विद्वान् बिचाट (Bichat) ने कहा था, "मृत्युका विरोध करने वाली शक्तियोंका समुदाय ही जीवन है"। इस कथनसे हमारे ज्ञानकी तो वृद्धि नहीं होती, पर जीवनके एक मुख्य उद्देश्यका हाल हमें अवश्य मालूम हो जाता है। यही कारण है कि उपरोक्त कथन अभी तक याद चला आता है। सब जीव लड़ते रहते हैं और वह जीते रहनेके लिए लड़ते हैं। अधिक जीवन-शक्ति और अधिक पूर्ण जीवन की लालसा उन्हें सदैव बनी रहती है। इसीके लिए, मरनेसे बचनेके लिए, वह किसी न किसी ढंगसे प्रयत्नशील रहते हैं। आत्महत्या भी सच पूछिये तो निराशा, रोग अपमान आदि घातक शक्तियोंसे बचनेका एक मार्ग ही है। बिचाटके उपरोक्त विचारकी खूबी यह है कि वह हमें जीवन का क्रियात्मक, निश्चयात्मक और वास्तविक रूप दिखलाता है। इसी बातसे जीवनको भौतिक और रासायनिक नियमोंका एक यंत्रवत निरुद्दिष्ट परिणाम बतलाना कितना भ्रम मूलक सिद्ध होता है।

हर्बर्ट स्पेन्सरने भी जीवनको "अज्ञेय" बतलाया है, तथापि उन्होंने परिभाषा देनेका प्रयत्न भी किया है। जीवोंके कार्योंका निरीक्षण करने पर वह इस परिणाम पर पहुंचे थे कि जीव सदा परिस्थितिके अनुकूल बननेका प्रयत्न करते रहते हैं। इसका उद्देश्य बिचाटके शब्दोंमें "मृत्युका विरोध" है। जब जब आस पासकी चीज़ोंमें परिवर्तन होता है तो जीवोंमें भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। जब हम धूपमें चलते हैं तो पसीना आने लगता है, पुतलियां सिकुड़ जाती हैं, इत्यादि घटनाएं हमारे नित्यके अनुभवमें आती हैं। और जीव भी परिस्थितिके अनुकूल बननेके उद्देश्यसे बदलते रहते हैं। इसी लिए स्पेन्सर महोदयने कहा है "बाहरी और भीतरी सम्बन्धोंमें परस्पर समायोग निरन्तर होते रहनेका नाम जीवन है।" परन्तु यह समायोग करता कौन है? कहना पड़ेगा जीवन। अतएव स्पष्ट है कि यह जीवनकी परिभाषा नहीं है, केवल जीवनके एक मुख्य काम का उल्लेख मात्र है। जो बात स्पेन्सरने लिखी है, वह एक मुख्य जीवनक्रिया है। जहां देखिये जिधर देखिये जीव अनुवर्तन अथवा समायोग करते पाये जाते हैं। अनुवर्तन (adaptation) का परिणाम ही चिड़ियोंके परोंमें, मछलीके सफनोंमें, दरख्तोंकी लकड़ीमें, मनुष्यके मस्तिष्क आदिमें दिखाई पड़ता है। परन्तु यह होता क्यों है? प्राचीन कालका तो विश्वास था कि परमात्मा ने ही जीवोंके इस भांति एक समयमें ही पैदा किया था, परन्तु वर्तमानका मत यह है कि जीवोंका क्रमशः विकाश हुआ है। परन्तु प्रश्न फिर उठता है कि क्यों? हम नम्रभावसे यही उत्तर दे सकते हैं कि यह जीवन शक्तिका ही किरिश्मा है। अतएव हर्बर्ट स्पेंसरकी परिभाषा अपूर्ण है और मालूम ऐसा पड़ता है कि हमारे सामने बड़ा भारी और परम गूढ़ दुर्ज्ञेय रहस्य प्रस्तुत है।

अन्तिम बातको भली भांति समझ लेना चाहिये। उन्नीसवीं शताब्दी जो भूल कर चुकी है, उसे हम फिर न कर बैठें। यद्यपि हमारा ज्ञान उन्नीसवीं शताब्दीसे बहुत बढ़ा हुआ है; परन्तु साथ ही हमें अपने ज्ञानकी अपूर्णताका अनुभव उनसे ज्यादा है। उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें सेल-सिद्धान्तकी रचना हुई। सभी प्राणी इन्हींसे बने हैं। सेल ही वह ईंट हैं, जिनसे समस्त जीवों के शरीर निर्माण हुए हैं। सभी जीवोंकी चर्चा सेल निर्मित मानकर की जाती है। यही सरल इकाइयां हैं, जिनसे जैव संसारकी रचना हुई है। इन बातोंसे मालूम होता है कि हम अब अन्तिम परिणाम पर पहुंच गये हैं, परन्तु वास्तवमें हम एक भेदके खोलनेका काम आरम्भ करने योग्य हो पाये हैं। सेलको हम सरल इकाई कह कर भले ही खुश हों, परन्तु क्या वास्तवमें वह सरल हैं? यदि दो सेल मिल एक हो जाती हैं और तब

उनकी संख्या वृद्धि होकर पांच हाथका मनुष्य बन जाता है, तो भी क्या सेलको सरल इकाई ही समझना उचित है ? वह चीज़ कितनी सरल होनी चाहिये जो इतनी छोटी होने पर भी माता पिताके गुण, अवगुण, रोग, बल, आदि सन्तान में पहुंचा देती है !

उन्नीसवीं शताब्दीने एक और बात मालूम की थी। जीवनके आधार जीवाद्यमके आविष्कारका श्रेय उसीको है। पौधे, मनुष्य, पशु, जीवाणु, हाथी, किसीकी भी सैल क्यों न हो उनमें वही द्रव्य पाया जाता है। उसी द्रव्यका नाम जीवाद्यम है। हक्सले ने इसीको जीवनाधार बतलाया था; तभीसे इसकी जांच शिरू हुई है। सूक्ष्म दर्शक ने यद्यपि हमारी सहायताकी है पर केवल एक हद तक। अन्तमें उससे भी एक आकार हीन कण सा दिखाई देता है। जीवाद्यम स्वयम् एक ऐसा पदार्थ है जिसका पूरा पूरा हाल शायद प्रलयकाल तक न मालूम हो। । उसमें सैकड़ों यौगिकोंके अंश रहते हैं, जिनमें से एकके भी अध्ययनमें जीवन भर हम लगे रह सकते हैं। वास्तवमें जीवाद्यमकी समस्याका अभी आदि ही है, अन्त बहुत दूर है। जीवाद्यम अथवा उसकी सी किसी चीज़को कृत्रिम रीति से जिस दिन विज्ञान बना लेगा, वह दिन बड़े गौरवका होगा !

किएव क्रियाका जीवनसे जो सम्बन्ध है, उसका कुछ कुछ भेद उन्नीसवीं शताब्दीमें पाश्चरके उद्योगोंसे खुला। किएव उन पदार्थोंको कहते हैं, जो दूसरे पदार्थोंमें रासायनिक परिवर्तन कर देते हैं; परन्तु स्वयम् नहीं बदलते। प्रत्येक सेलमें किएव रहते हैं। जिस प्रकार यह कहना सत्य है कि "जीना बदलना है" उसी प्रकार यह भी सत्य है कि "किएव क्रियाका होना ही जीना है"। किएवोंकी सहायतासे ही हम खाना खाते हैं, और सांस लेते हैं। उन्हींकी सहायतासे हम एक सेलसे बढ़ कर पांच हाथके जवान हो जाते हैं। जितनी गहरी खोज कीजिये, उतनी ही किएवोंकी महिमा बढ़ती जाती है। जिन किएवोंकी सहायतासे हम हज़म करते हैं उनका पता हालमें ही चला है। हम कह सकते हैं कि जीवन किएव क्रियाओं का एक तांता है। किएव क्रियाओंके लिए पानी अनिवार्य है। इसीलिए पानी बिना जीवन असम्भव है। किएवोंके महत्वका ज्ञान बड़ा लाभदायक है और भविष्यमें शायद इसीकी सहायतासे जीवन-क्रियाओंसे शायद बड़े बड़े काम लेना सुगम हो जाय, जिनका अभी तक हमें स्वप्नमें ज्ञान नहीं है।

परन्तु पाठको, सावधान हो जाइये। यह कहना भी कि जीवन किएव-क्रियाओंका तांता मात्र है गलत है, क्योंकि जिन किएवोंका उपयोग जीवन में होता है, वह स्वयम् जीवन द्वारा ही निर्मित किये जाते हैं। किएव जीवनके हथियार हैं अवश्य, परन्तु उन्हें गढ़ता वही है। दूसरे किएव क्रियाएं योंही अंधाधुंदपनेसे नहीं होती रहतीं, परन्तु एक विशेष व्यवस्थासे होती हैं। यदि सुअरको श्वेतसारमय पदार्थ खिलाते हैं तो उसका क्लोम (pancreas) श्वेतसार पाचक रस बनाता है, किन्तु यदि अन्य कोई पदार्थ खिलाया जाता है तो उसके पचानेकी शक्ति रखनेवाला रस बनता है। सुअरका जीवन "मृत्युका विरोध" करना चाहता है। इष्ट सिद्धि "किएव क्रियाओंके एकतांते द्वारा" होती है जिसमें "बाह्य और आभ्यन्तर संबन्धोंमें समायोग" होता रहता है; यह बात उपरोक्त उदाहरणसे सिद्ध हुई। एक बात और भी इससे सिद्ध होती है कि कोई भी परिभाषा जिसमें "उद्देश्य" को स्थान नहीं है जीवनकी उचित और पर्याप्त परिभाषा नहीं हो सकती। पशु, पक्षी, मनुष्य, वनस्पति चाहे जिधर आंख उठाकर देखिये उद्देश्य हीनता दिखाई न देगी। परन्तु उद्देश्य बिना मनके सम्भव नहीं।

मानवी देह और मोटरकार दोनों मशीन हैं। दोनों पेचीले यंत्र हैं, जो कुछ काम करते हैं। दोनों के काम उद्देश्य पूर्ण होते हैं। वास्तवमें यह मान लेना आसान है कि मोटरके कुल पुर्जे बिना उद्देश्य-

के बनाये गये थे, न कि यह कि मनुष्यकी देह, जिसने मोटर बनाई, विना उद्देशके बनी होगी। इसीलिए जीवनको हम "उद्देश्य पूर्ण मन" मान लें तो हानि न होगी। जीवन भी प्रकृतिके सब नियमोंका पालन करता है। रासायनिक और भौतिक नियमोंकी अवहेलना जीवन नहीं करता। जीवनमय-द्रव्य न तो विनाई धनके जलता है और और न विना शक्तिके खर्च हुए चलता ही है। वस्तुतः मनुष्य जीवन प्रकृतिके नियमोंका पालन उन पर हावी होनेके लिए, उन पर शासन करनेके लिए, करता है। मनुष्यका पूरा रहस्य जाननेके लिये नीच कोटिके जीवनका अध्ययन आवश्यक ही है। नीचे जीवोंके अध्ययनमें ऊंचे जीवोंके ज्ञान से सहायता मिल सकती है। ऊंचे जीवोंको तो अलग ही अध्ययन करना पड़ेगा। यदि मनुष्यमें मन और उद्देश्य हैं तो सर्वत्र ही यह विद्यमान हैं। यही सिद्धान्त है जो विज्ञान और धर्म को एक कर देगा

रसेश्वर वाद

[ले०—पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार]

जैसे जैन जिनको, बौद्ध बुद्धको, भागवत भगवान् हरिको, शाक्त शक्तिको, ईश्वर वादी ईश्वरको अपना परम सुख साधन, चरम ध्येय, मुक्तिका दाता समझते हैं उसी प्रकार शिवको चरम परम ध्येय माननेवालोंमें से ही शैवतान्त्रिक रसको परम मुक्ति दाता समझते थे। तान्त्रिक वस्तुतः भारतवर्षके गुप्त वैज्ञानिक थे, जो विज्ञानकी प्रायः सभी जीवनोपयोगी शाखाओंमें अपने निराले ढंगसे गहरी खोज लगाते थे। वह अपनी सब बातों को अपने धर्मका चोला पहनाये रहते थे। उन्होंने रसायन शास्त्रको भी धर्म और दर्शनकी परिभाषाओंमें ही छिपाया था। इसीसे तान्त्रिकोंका एक पृथक् सम्प्रदाय प्रतीत होता है।

रसायनके पुराने भारतीय तत्वज्ञोंने धातु-रसायनका बड़ा अद्भुत रहस्य खोज लिया था। इनके सभी तन्त्र ग्रन्थ प्रायः ईश्वर शिव और देवी पार्वतीके संवादोंमें ग्रथित हैं। इस लेखमें हमारा प्रयत्न संक्षेपसे उसी संप्रदायके सिद्धान्तोंका निरूपण करना है।

शेष सभी दार्शनिकोंका सिद्धान्त है कि परमेश्वरमें लीन होनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। अनेक जन्मोंमें मुक्ति, अभ्यास और वैराग्यसे योग समाधि द्वारा ही, प्राप्त हो सकती है। परन्तु इस संप्रदायके विद्वानोंका सिद्धान्त है कि यदि इसी शरीरको मृत्युसे बचा लिया जाय और इसकी नश्वरता तोड़कर इसको स्थिर कर लिया जाय तो मुक्ति-परमपुरुषार्थ एक ही जन्ममें प्राप्त हो सकता है और शरीरके रहते रहते ही जीवन्मुक्ति प्राप्त हो सकती है। शरीरको स्थिर करनेका उपाय केवल रसायनसे ही हो सकता है। पारा ही परम रस है। वही संसारके परले पार तक पहुँचनेके लिए एक साधन है। इसलिए वही पारद शिव है; वही परम रस है। पारेको संस्कृतमें पारद कहा जाता है, क्योंकि वही संसारके पार पहुँचा कर मुक्ति देता है।*

रसार्णव प्राचीन रसायनका बड़ा प्रसिद्ध ग्रन्थ है। उसमें शिवका बचन है कि

"मैंने दूसरोंके लिए पारा दिया है। यह मेरे ही शरीरके अंगोंसे उत्पन्न हुआ है। यही मेरे देह का रस है, इसीसे रस कहा जाता है।"

यद्यपि शेष छहों दर्शनोंमें देह गिरनेके उपरांत ही मुक्ति मानी है, इसलिए सम्भव है, कि अनन्त कालके लिए देह न सध सके और देहके रहते मुक्तिकी प्राप्तिमें भी सन्देह रहे, तो भी मुक्ति कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसको हाथ पर रखे बेरके

---

*संसारस्य परं पारं दत्तेऽसौपारदः स्मृतः। (स्फुट)

समान दिखाया जा सके; इसलिए रस तथा अन्य उत्तम रसायनोंकी सहायतासे इस पिण्डकी रक्षा करनी चाहिये। गोविन्द भागवत् पादाचार्यने भी कहा है।

"दुनियाकी सम्पत्ति, यह पंचभूतोंका बना देह और इसके भोग विषय, इन सबको सदा नित्य मानकर सदा मुक्ति पानेका यत्न करना चाहिये। मुक्ति ज्ञानसे ही होती है। ज्ञान सदा अभ्याससे होता है। देहके स्थिर रहनेपर ही अभ्यास हो सकता है।"

परन्तु देखते हैं कि देह नश्वर है। वह देखते देखते ही नष्ट हो जाता है। उसको नित्य कैसे मान लिया जाय? इसका उत्तर यही है कि यह पंच भौतिक देह अवश्य अनित्य है, परन्तु हर-गौरीकी सृष्टिसे उत्पन्न हुआ दिव्य देह अवश्य नित्य है। पारा रस ही हर है और अभ्रक रसायन गौरी कहाता है। उनका सेवन करनेसे शरीर नित्य हो जाता है। जैसा कि रस हृदयमें लिखा है। "जिन रसायन वेत्ताओंने अपने इस शरीर की रक्षा करते हुए रसोंकी सहायतासे अपने देहको हर-गौरी सृष्टिसे उत्पन्न होने वाले देहमें बदल लिया है वह बड़े आदरणीय हैं। सब मन्त्र उनके अधीन हैं।" इसलिए मुक्तिकी इच्छा करने-वालेको प्रथम अपनी देह दिव्य कर लेनी चाहिये। देवों और दैत्योंमें से बहुत से रसायनवेत्ता विद्वानों-ने अपनी देहको रसायनके बलसे अमर करके जीवन्मुक्ति प्राप्त की थी। 'महेश्वरादि देवता, शुक्र आदि दैत्य, बालखिल्यादि मुनि, सोमेश्वरादि राजा, गोविन्दभागवत्पादाचार्य, चर्पटि कपिल, व्याडि, कापालि, कन्दलायन आदि बहुत प्राचीन रसायन वेत्ता जीवन मुक्त होकर विचरते हैं। उन सभीने अपनी देहको दिव्य बना लिया है।'

"कर्मयोग से यह शरीर प्राप्त होता है। कर्मयोग दो प्रकारका होता है। एक रस अर्थात् पारेका प्रयोग दूसरा पवन अर्थात् प्राण वायुका प्रयोग। यह दोनों ही मूर्छित हों तो व्याधिका नाश करते हैं। मृत हों तो प्राणियोंको जीवन देते हैं और बांध लिए जांय तो आकाशमें गमन किया जा सकता है।"

अब यह शङ्का उत्पन्न होती है कि जब योगा-भ्याससे सच्चिदानन्द रूप परम तत्वका स्फुरण होता है तो उसीसे मुक्ति हो जायगी; फिर दिव्य देहके बनानेकी क्या आवश्यकता है? इसका यही उत्तर है कि—

यदि प्राणीका देह ही नहीं रहे तो सब प्रकार-के विकल्पोंसे रहित सच्चिदानन्दकी स्फूर्त्ति भी हो तो किस कामकी; दूसरे देहमें बुढ़ापा आजाने से खांसी, उठती है, सांस चलती है, बड़ा कष्ट होता है। इन्द्रियां अपना काम करना छोड़ देती हैं। ऐसी दशामें समाधि भी नहीं लग सकती। बालक १६ वर्षका नवयुवक होते ही विषय रस का लम्पट हो जाता है। और बूढ़ेकी अक्ल मारी जाती है। अब आपही स्वयं निर्णय कीजिये कि मुक्ति कैसे मिले? इसलिए रसायनसे देहको अमर बना कर ही निश्चिन्त होकर जरामरणका भय काटा जा सकता है और मुक्ति पाई जा सकती है।

रसेन्द्र पारा ही शरीरको अजर अमर कर सकता है। इस प्रकार सब मुक्ति और भुक्ति देने-वाले पारेको ही सर्वेश्वर माना गया है।

इसके अतिरिक्त पारेको और भी विशेष गुणों-से बड़ा महत्व प्राप्त हुआ है।

जिस प्रकार पंचभूतों का बना हुआ यह सब संसार अपने परम कारण प्रकृतिमें लीन होकर परब्रह्ममें लीन हो जाता है, उसी प्रकार यह सब संसार पारेमें लीन हो जाता है।

रस रत्न समुच्चयमें लिखा है कि "सब काष्ठौ-षधियां नाग (रांगा) में लीन हो जाती हैं और क्रमसे नाग (रांगा) वंग (सीसा) में, वंग (सीसा) शुल्व (ताम्बा) में, शुल्व (तांबा) तार (जस्ता) में, तार (जस्ता) सोनेमें और सोना पारेमें घुल जाता है। जिस प्रकार परम पुरुषमें सब योगी जन लीन होकर तन्मय होकर अमर होजाते हैं उसी प्रकार सुवर्णलोहादि धातुएं

भी रस राज पारेमें लीन हो जाती हैं। जैसे परमात्माका भजन सेवन करके सब प्राणी उसीमें लीन हो जाते हैं उसी प्रकार पारेके सेवनसे सब पदार्थ उसीमें लीन हो जाते हैं। सब प्राणी उसी के सेवनसे तन्मय दिव्य देह होकर अजर अमर हो जाते हैं।

किस प्रकार भारतीय रसायन वेत्ताओं ने रसको ही ईश्वर माना था, इस बातका निरूपण संक्षेपसे यहां कर दिया गया है।

दूध

बालकके माताके गर्भसे प्रकट होनेके बाद, पृथ्वीके अन्य किसी पदार्थसे परिचय होनेके पहले माताके दूधके साथ उसका सर्व-प्रथम परिचय होता है। उस समय उसके जीवनका एकमात्र अवलम्ब माताका दूध ही होता है। रुग्णावस्थामें भी मनुष्योंकी जीवनरक्षाका एक मात्र साधन दूध ही है। दूध हम लोगोंका आदर्श भोजन है; इसकी गिनती भोजन और पानीय दोनोंमें होती है। दूधोंमें मां के दूधके बाद गौके दूधका स्थान है। इसका व्यवहार बालक, युवा, वृद्ध हर समय हर अवस्थामें कर सकते हैं। इसीलिए हिन्दू गोमाताके उपासक होते हैं। गो-सेवा हिन्दू धर्म्मका एक अंग है। साधारणतः हम लोग रोटी, दाल, भात, तरकारी, घी, तेल, नमक आदि नाना प्रकारके पदार्थोंको खाकर जीवन धारण करते हैं। इन पदार्थोंसे भी हम शरीर-रक्षणोपयोगी सभी पदार्थ पा सकते हैं। किन्तु संसारमें केवल दूध ही एक ऐसी चीज है जिसमें हमारे जीवनोपयोगी सभी उपादान विद्यमान हैं।

दूधके उपादान—दूधके विश्लेषण करने से हम लोगोंको निम्न लिखित पदार्थ मिलते हैं:—

पदार्थ	दूध औरतका	गौका	भैंस	बकरीका	गदहीका
प्रोटीड	१.६२	४.२८	७.००	३.८५	१.१५
लवणआदि	.२७	.९८		.६५	.५५
मक्खन ...	३.१४	३.५०	६.५०	४.१०	१.४०
शक्कर ...	६.२६	३.९०	४.५०	५.८०	६.४०
जल	८८.७१	८७.३४	८२.००	८५.६०	९०.५०
	१००.००	१००.००	१००.००	१००.००	१००.००

इनमें से मक्खनको छोड़ कर और सब पदार्थ दूधके जलमें घुले हुए रहते हैं। मक्खनके कण दूधमें तैरते रहते हैं। दूधका प्रोटीड या नत्रजन विशिष्ट उपादान दो भागोंमें बांटा जा सकता है। (१) छेना या पनीर; जिसे अंगरेजीमें केसीन Casein कहते हैं (२) लेकटो अलब्युमेन (Lacto albumen)। गो-दूधके ४.२८ भाग प्रोटीडमें ३.६२ भाग केसीन या छेना और प्रायः ०.६६ भाग अलब्युमेन रहता है। साधारणतः १०० भाग प्रोटीडमें

ओषजन	... ...	२२ भाग
नत्रजन	... ...	१६ ”
कर्बन	... ...	५४ ”
उज्जन	... ...	७ ”
गन्धक	... ...	१ ” रहता है

माताका दूध—दूधोंमें माताका दूध शिशुओंका स्वाभाविक भोजन है। इसका जलीय अंश गदहीके दूधके जलीय अंशसे कम किन्तु अन्य

पशुओंके दूधोंके जलीय अंशकी अपेक्षा अधिक होता है। इसलिए माताका दूध अन्य दूधोंसे पुष्टिकारक होने पर भी जल्दी पचता है। स्त्री और गदहीके दूधोंके उपादानोंकी तुलना करने से पता लगेगा कि वह समगुण विशिष्ट हैं। इसलिए माताके दूधके अभाव हो जाने पर गदहीका दूध शिशुओं को पिलाना चाहिये। शिशुको छः महीनेकी अवस्था तक गायका दूध पिलाना उचित नहीं है, क्योंकि इस समय गो-दुग्धमें जितना छेना रहता है उसे शिशु पचा नहीं सकता। इसलिए उदरामय और यकृत आदि रोगोंसे पीड़ित हो जाता है। कमसे कम छः महीने तक शिशुओंको माताका दूध पिलाना हितकर है। माताके रोगग्रस्त होनेपर भी उसका दूध विकृत नहीं होता। गो-दुग्ध के साथ तुलना करने पर जान पड़ेगा कि माताके दूधमें दुग्ध-शर्कराका भाग गो-दुग्धसे अधिक किन्तु प्रोटीडका हिस्सा बहुत कम होता है। माताके दूधमें जो प्रोटीड़ होता है उसमें गो-दुग्धके प्रोटीडकी अपेक्षा केसीनका भाग कम और लेकटो-अलब्युमेन का भाग अधिक होता है। माताके दूधमें छेना कम और दुग्ध शर्करा अधिक होनेसे वह गौ के दूधके सदृश जल्दी फट नहीं जाता। लवण-मय-पदार्थ गौके दूधकी अपेक्षा माताके दूधमें कम होता है। किन्तु माताके दूधमें क्षारका अंश गौके दूधसे अधिक होता है। जो गाय मैदानमें नहीं चरतीं उनका दूध अम्लानुरस (acid in reaction) होता है, किन्तु साधारणतः माताका दूध क्षारानुरस (alkaline in reaction) होता है। इन्हीं सब कारणों से मातृ-स्तन-अभ्यस्त शिशुओंको गो-दुग्ध देनेसे कै होती है और छेना डालते हैं। प्रत्येक पशुका दूध एक विशिष्ट प्रकारका होता है; इससे जान पड़ता है कि एक स्तनपायी जीवका दूध दूसरे स्तनपायी जीवके शिशुओंके लिए उपयोगी नहीं होता। गौके दूधमें नीला लिटमस (Blue Litmus) देनेसे यदि वह लाल हो जाय तो समझना चाहिये कि दूध अम्लानुरस है। ऐसे दूध में थोड़ा सा चूनेका पानी या एक रत्ती बाइ-कार-बोनेट आफ पोटाश देनेसे उक्त दोष दूर होता है।

भेड़ और बकरीका दूध—स्तनपायी पशुओंके दूधमें भेड़का दूध सर्वापेक्षा पुष्टिकर होता है, क्योंकि उसमें छेना और मक्खनका अंश अधिक रहता है। छेना और मक्खन जिस परिमाणमें भेड़के दूधमें पाया जाता है उतना अन्य किसी प्राणीके दूधमें नहीं पाया जाता। बकरीका दूध गोदुग्धसे अधिक बलकारक और निरापद होता है। इसमें जीवाणु, उद्भिदाणु या बक्टीरिया के नहीं रहने से यह रोगियोंको बिना किसी भयके दिया जा सकता है। विशेषतः यक्ष्माके रोगीको यह दवाका काम करता है। आमाशयमें भी बकरीका दूध सुपथ्य होता है। गदहीका दूध सब जीवोंके दूधोंकी अपेक्षा सुपाच्य होता है। वह उदरामय तथा चेचककी बीमारीमें सुपथ्य है।

भैंसका दूध—यह भेंड़ीके दूधको छोड़ कर अन्यान्य सभी दूधोंसे देरमें पचता है। इसमें एक प्रकारकी बू होती है; इसी लिए बहुत लोग इसका सेवन करना नहीं चाहते। भैंसके दूध और दहीके व्यवहारसे शरीर मोटा होता है। एक भैंस प्रति दिन १०-१४ सेर तक दूध देती है। भैंसके दूधमें गायके दूधसे मक्खन अधिक रहता है; इसलिए भैंसका घी गौके घीसे सस्ता और सर्व व्यवहृत है। एक सेर गौके दूधमें एक या आधी छटांक घी निकाला जा सकता है किन्तु एक सेर भैंसके दूधसे एक छटांकसे अधिक घी निकलता है। भैंसके दूधमें गौके दूधसे छेना भी अधिक होता है। भैंसका दूध गायके दूधसे उजला जान पड़ता है।

गो-दुग्ध—भेंड़ीके दूधमें एक प्रकारकी बू रहती है इसलिए उसका कोई व्यवहार नहीं करता; भैंसका दूध जल्दी पचता नहीं; बकरीका दूध और गदहीका दूध यथेष्ट मिलता नहीं, इसी लिए प्रायः सब लोग गौके दूधका व्यवहार करते हैं। गो-दुग्ध अन्यान्य दूधोंसे सुपाच्य, सुस्वादु, सुगन्धित और सुलभ होता है।

दूधकी गाढ़ता—जिस दूधमें जितना ही अधिक मक्खन और छेना होगा वह उतना ही गाढ़ा और सारवान होगा। साधारणतः गर्मी और वर्षाकी अपेक्षा जाड़ेके दिनोंका दूध गाढ़ा होता है। गौ दोहनेके समय जो दूध पहले दोहा जाता है उससे पीछे दोहा जाने वाला दूध गाढ़ा होता है। गौके आहारके ऊपर भी दूधकी गाढ़ता निर्भर करती है। जो गाय घास खाती है उससे भूसा खरी आदि खानेवाली गायका दूध गाढ़ा होता है। जल-वायुका भी प्रभाव दूधकी गाढ़ता पर पड़ता है। पश्चिमकी गौओंकी अपेक्षा पूर्वी गौओंका दूध पतला होता है। उसमें जलीय अंश अधिक और मक्खन और छेनाका अंश कम होता है। गौका बच्चा जैसे जैसे बड़ा होता जायगा दूध भी गाढ़ा होता जायगा। इसीलिए नई गौओंके दूधकी अपेक्षा पुरानी गौओंके दूधको लोग अधिक पसन्द करते हैं। गौके प्रसव कालसे २१ दिन तक कुछ लोग दूध नहीं पीते। दूधकी गाढ़ता गौकी उम्र पर भी कुछ कुछ निर्भर होती है। गौकी उम्र जितनी ही अधिक होगी दूध भी उतना ही गाढ़ा होगा। दूधकी गाढ़ता गौकी जाति पर भी निर्भर है। प्रसवके बाद कुछ दिन तक गौको मसूरकी दाल खिलाना चाहिये; इससे गौ अधिक दूध देनेमें समर्थ होती है।

दूधकी परीक्षा—साधारणतः हंस शीशी (Lactometer) से दूधकी परीक्षा की जाती है। किन्तु उससे दूधके जलीय अंशका ही पता चल सकता है। छेना या मक्खनकी परीक्षा नहीं होती। हंस शीशी की परीक्षाएं सब समय ठीक नहीं होतीं, क्योंकि शहर या शहरके आसपास रहने वाले चतुर व्यवसायी दूधमें पानी मिला कर पीछेसे थोड़ी सी चीनी और आटा या अरारूट घोलकर दूधका आपेक्षिक गुरुत्व (specific gravity) ठीककर देते हैं। ऐसी अवस्थामें हंस शीशीसे परीक्षा ठीक नहीं होती।

दूधका रंग और बू उसकी अच्छाई या खराबी बतला देती है। जो दूध कुछ कुछ पीला रंग लिए होता है वह सब से अच्छा होता है। गौके दूधमें जो छोटे छोटे मक्खनके कण रहते हैं वे ही इस रंगके कारण हैं। दूधमें मक्खनके कण जितने अधिक होंगे उतनी ही अधिक रंगकी गाढ़ता होगी, किन्तु मक्खन निकाल लेनेपर यह कण नहीं रहते अतएव रंग भी नहीं रहता। ऐसा दूध सहजमें पहचाना जा सकता है। यदि किसी दूसरे पदार्थ द्वारा दूधका कृत्रिम रंग हो तो उस वस्तुकी बू से दूध पहचाना जा सकता है। गौ दोहनेके दो तीन घंटे पहले गुलाबके फूल खानेको दिये जायं तो दूधमें गुलाबकी गंध पायी जाती है। इसी प्रकार, बेल, जूही आदि फूल या अन्य कोई गन्धमय पदार्थ खिलानेसे दूधमें वही गंध आ जाती है। बहुत सी गाय मैदानमें चरते समय एक प्रकारके पौधेको खा जाती हैं, जिससे उनके दूधमें लहसुनकी सी गंध पायी जाती है। कच्चा दूध बड़ी आसानी से वायुकी दुर्गंध ग्रहण कर लेता है। केवल गंध ही नहीं नाना प्रकारके दूषित पदार्थों को भी ग्रहण करनेकी शक्ति उसमें है। इसलिए कच्चे दूधको जहां तक जल्दी सम्भव हो औटा डालना चाहिये। बहुत देर तक दूधको कच्ची अवस्थामें रखने से वह इस परिमाणमें दूषित पदार्थोंको ग्रहण कर लेता है कि आग पर चढ़ाते ही फट जाता है। (अमाप्त)

बाल-हत्या

र्थ कन्ट्रोलके अक्तूबरके अंकमें म० एडवर्ड जी० पंकेने 'प्रसव निरोध' (Birth Control) पर बड़ा उत्तम लेख लिखा है। उसमें आपने अमेरिकाकी वर्त्तमान भयंकर स्थितिको दृष्टिमें रख कर यह बतानेकी चेष्टा की है कि प्रायः सर्वत्र ही भोजनके प्रश्नने

बच्चों पर अत्याचार कराया है। अपनी 'दरिद्रता देखते हुए 'प्रसव निरोध' का प्रश्न बड़ी ही मार्मिकताका है। आप लिखते हैं—

"जनसंख्याकी प्रचुर वृद्धिके रोकनेकी प्रायः सर्वत्र ही कोशिश की गयी है। वर्त्तमानमें निरन्तर जातिवृद्धिके पक्षपाती विद्वानोंके विचारमें वर्त्तमान-के बेतारकी तारवर्की और हवाई जहाजोंके साथ ही साथ जातिके आत्मघातका विचार भी पैरिससे दुनियामें फैला है। और अब विशेषतया अमेरिका-में। इतिहासमें 'प्रसव निरोध' की शैलीको खोज लेना यद्यपि कोई औचित्यका समर्थक नहीं है तो भी जनसंख्याको परिमित करनेके लिए सभी देशों-में बहुत उद्योग किये जाते थे। याता बालकोंका घात करा देते थे या गर्भमें ही उसका विनाश करा देते थे।"

आपकी सम्मतिमें प्रसव-निरोधकी क्रिया इतनी पुरानी है जितनी कि मनुष्य जाति। 'दरिद्र जातियोंमें अपनी स्थितिको सुधारनेके लिए वृद्धि निरोध बड़ा आवश्यक होता है; नहीं तो वह बिल-कुल भूखे मर जायं।'

प्रारम्भिक और अर्धसभ्य जातियोंमें जाति वृद्धिको रोकनेके लिए बाल-हत्या और गर्भपात करनेका तरीका बर्ता जाता है।

आस्ट्रेलियाकी एक जातिमें बाल-हत्या ही बहुत होती है क्योंकि वह विचरनेवाली जाति है। माता दो बच्चोंको एक साथ उठाकर नहीं चल सकती। नयी नयी गोरी जातियोंके जानेसे वहां दोगले पैदा होने लगे। जातीय भावमें आकर वहांके निवा-सियोंने दोगलोंका सर्वनाश कर दिया।

न्यूज़ीलैन्डकी एक युद्ध प्रिय जाति कभी भी बाल-हत्या नहीं करती। वह बच्चोंको लड़ाईके लिए और कन्याओंको बाल पालनके लिए पालते हैं। उनकी परस्पर लड़ाइयों से ही जाति वृद्धि रुकी रहती है। गील किंक खाड़ीके वासी पापुअन लोगोंमें भ्रूणहत्या का रिवाज है। डच न्यूगियानामें मां दो तीन बच्चोंसे अधिक नहीं पाल सकती। भोजनकी न्यूनताका भय सदा सिर पर नाचता रहता है। न्यूहिब्राइड जातिके लोग अपने स्वार्थों से प्रायः गर्भपात कर लेते हैं। इसी प्रयोजनसे स्त्रियोंसे वह वृक्षोंपर चढ़ने, कूदने और उनपर भार लादनेका काम लेते हैं।

अफ्रीकाकी जातियों में भी ऐसी बहुत सी बातें हैं। बोन्देई लोग दुःशकुन देख कर बालकका गला घोंटकर मार देते हैं। जंजीबारके किनारे पर बद शकल बच्चोंको योंही फेंक दिया जाता है। काबिली लोग नाजायज़ बच्चों को मार देते हैं।

एशियाकी स्थिति और भी भिन्न है। चीनमें बालिकाएं मारी जाती हैं।

दक्षिण अमेरिकाकी मूल निवासियोंमें माताएँ अपने गर्भको गिरा देती थीं, जिसमें वह अपने शरीरको बच्चा जन कर अशुद्ध न होने दें।

ब्राजिलमें ३० वर्ष तक स्त्रियां प्रायः प्रसवा-शौचके भयसे गर्भ गिरा देती हैं। वर्तमानमें अमे-रिकाकी गोरी सभ्य स्त्रियां भी अपनी क्लबों और क्रीड़ा समितियोंके आनन्द लूटनेसे वञ्चित न होने-के भय से ऐसा ही करती हैं। दक्षिण अमेरिकाकी लाल जातियां प्रायः घुड़ सवारीसे गर्भ ही नहीं जमने देतीं। फलतः असभ्य और अर्धसभ्य जाति-योंमें बाल-हत्या और भ्रूणहत्याका प्रायः सर्वत्र प्रचार है।

ग्रीस और रोममें भी पहले बाल-हत्याका बहुत अधिक प्रचार था। कुरूप बालकोंकी हत्याका समर्थन प्लेटोने स्वयं किया था।

रोमकी प्रजा तन्त्र सरकारके समय बाल-हत्या और भ्रूणहत्या खूब फैल चुकी थी। ईसाके धर्ममें यहूदियोंकी स्मृतियोंका प्रभाव था। अतः उसने बाल-हत्या और भ्रूणहत्याको पाप माना है और फैल कर यूरोपमें बड़ा भारी परिवर्त्तन ला दिया।

जयदेव शर्मा

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १५ { सिंह, संवत् १९७९ । अगस्त, सन् १९२२ { संख्या ५

पृथ्वीकी अदृश्य सेना और उसके संग्राम

उन्नीसवीं शताब्दीमें मनुष्यका दृष्टिक्षेत्र बहुत ही छोटा था। जीवोंके विषयमें इस क्षेत्रको सहसा अत्यन्त विस्तीर्ण कर देनेवाली घटना पाश्चर महोदयकी जीवाणु सम्बंधी आविष्कार था। उस आविष्कारसे हमारी आंखें खुलीं, कल्पनाको अच्छा मसाला मिला और जीवनकी झलक सर्वत्र दिखाई देने लगी। हमारे आश्चर्यकी सीमा न रही जब हमें यह मालूम हुआ कि हमारे शरीरमें ही, जिसे हम बड़े अभिमानसे अपना बताते हैं, निरन्तर होनेवाले संग्रामका हमें पता नहीं चलता। असंख्य छोटे छोटे जीव देहमें रात दिन लड़ा करते हैं, अच्छोंकी जीत हुई तो हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है, नहीं तो खराब हो जाता है—इसीसे हमारे जीने और मरनेका निर्णय भी होता है।

पाश्चरका विषय 'जीवों और पशुओंके शरीरोंमें होनेवाली जीवन कलह' था, परन्तु उनके आविष्कारोंसे वैज्ञानिकोंका साहस बढ़ा और वह पृथ्वीका भी अध्ययन उसी अभिप्रायसे करने लगे। उनके परिश्रमसे हमें यह ज्ञात हो गया कि पौधोंका स्वास्थ्य भी मनुष्योंके स्वास्थ्य की नाईं अदृश्य जीवोंकी उपस्थिति पर अवलम्बित है। केवल अन्तर इतना ही है कि यह जीव पौधोंमें न रहकर प्रायः धरतीमें ही रहा करते हैं।

हालमें ही पृथ्वीकी उर्वर शक्तिके कारणोंका भी पता लग चुका है, जो दो कोटियोंमें रखे जा सकते हैं। यह अब ज्ञात हो गया है कि पौधोंका फलना फूलना या बर्बाद जाना मट्टीमें दो प्रकारके

जीवोंकी उपस्थिति अथवा उनके कार्य-कौशल पर निर्भर है।

इनमेंसे एक तो घुए जातिके हैं, जो पौधोंकी जड़ोंमें चिपट जाते हैं और उसे भोजन पहुंचाते हैं; दूसरे जीवाणु हैं, जिनका महत्व पहिले प्रकारके जीवोंसे अधिक है। इन दोनोंको धरतीके उद्भिद कहते हैं, क्योंकि दोनोंको वनस्पति वर्गका माना जाता है।

कृषकों अथवा बागवानीके शौकीनोंके लिए यह उद्भिद् बड़े महत्वके हैं। बहुत से उद्योगोंमें भी यह बहुत काम आते हैं। पनीर, मक्खन, दही, सिरका आदि पदार्थोंके बनानेमें यही काम आते हैं। सम्प्रति हम घुओंको छोड़ जीवाणुओंकी ही चर्चा करेंगे। क्या किसान और क्या बागवान, जो कोई भी पृथ्वीके ऊपर या भीतरकी सृष्टिसे सरोकार रखता है, उसे जीवाणुओंसे बड़ा काम पड़ता रहता है। वास्तवमें अब संसार पहलेसे अधिक चमत्कारपूर्ण दिखाई देने लगा है, क्योंकि अब हम जान गये हैं कि हमारे पैरों तले ही कितना काम अत्यन्त क्षुद्र जीवाणु कर रहे हैं, उनमें कैसा घोर संग्राम हो रहा है और कैसे कैसे उद्योग धंधे वह कर रहे हैं।

विज्ञानमें भी बड़ा कौतूहल पैदा हो गया है, क्योंकि नयी नयी आश्चर्यजनक बातें हमें मालूम होती जाती हैं। इन आश्चर्योंका हमारी सम्पत्ति और सुखसे बड़ा गहरा संबंध भी है।

अनन्त कालसे, जबसे मनुष्यने प्रव्रजनशील जीवन छोड़ा तभीसे कृषि ही प्रमुख उद्योग चला आया है, परन्तु उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें ही भूमिकी उर्वर शक्तिका रहस्य खुला। किसान लोग यह जानते थे कि किन किन पदार्थोंके प्रयोगसे भूमि अधिक उपजाऊ बनायी जा सकती है, कृषि कार्यमें भी बहुत उन्नति नहीं हुई है; वर्जिल और प्लीनी यह जानते थे कि त्रिपत्र (cloves) के उगनेसे पृथ्वीकी उर्वर शक्ति घटती नहीं, वरन् बढ़ती है। खाद और पर्णसार (पत्तोंको सड़ा कर बनायी हुई मट्टी का) उपयोग वह भली भांति जानते थे। वह कुछ कुछ इस बातको भी समझते थे कि मट्टीको हवा देने और गहरी जुताईसे बहुत लाभ होता है। परन्तु उर्वर होनेका मुख्य कारण क्या है, यह उन्हें मालूम न था। इसका सप्रमाण रहस्य हालमें ही खुला है और यह आशा होती है कि थोड़े ही दिनोंमें हमारा ज्ञान क्षेत्र और भी विस्तृत हो जायगा।

मट्टीका ढोका सदा एक निरी निर्जीव चीज़ समझी जाती है। "मिट्टीका लोथ" एक कहावत हो गई है; इसीलिए खेतोंकी मट्टीके साथ निर्जीव समझकर व्यवहार किया जाता है। ढोकोंको तोड़ कर धरती में सड़े हुए अथवा हरे वानस्पतिक पदार्थ दबा दिये जाते थे। या तो किसान खाद मिला दिया करते थे या त्रिपत्र, राई आदिकी खड़ी फसलको हल चला कर दबा देते थे। परन्तु अब पाश्चरके पैरोंकारोंने बतला दिया है कि मट्टीका डला जीवन पूर्ण है। उसमें करोड़ोंकी संख्यामें जीवाणु विद्यमान हैं।

यह कितने आश्चर्यका विषय है कि हमारे पैर तले करोड़ों जीव पड़े हैं। हाथमें ली हुई डलीमें क्षुद्रवीक्षणकी सहायतासे सैकड़ों जीवाणु दृष्टि गोचर हो सकते हैं। यह एक विवादपूर्ण प्रश्न है कि जीवाणुओंकी गणना प्राणियों अथवा वनस्पतियोंमें की जाय, परन्तु वनस्पति शास्त्रियोंने अपना हक़ जमानेके अनेक प्रमाण प्राप्त कर लिये हैं। वस्तुतः जीवाणु दोनों वर्गोंकी सीमाके जीव हैं। जो कुछ भी हो अब कृषकको उचित है कि इन जीवोंको ध्यानमें रखे; और सदा ऐसा उद्योग करते रहना चाहिये कि उनका पोषण होता रहे।

मट्टीमें और भी कामकी चीज़ें हैं। उसमें पहले तो ऐसे रासायनिक पदार्थोंके रहनेकी आवश्यकता है जो पौदेके खानेके काम आते हैं। इनके अभावमें पौदा भूखा मर जायगा। गत शताब्दीके मध्यमें श्री० लौज़ (Mr. Lawes) ने यह दिखलाया था कि इन रासायनिक पदार्थोंको हम पृथ्वीमें उनके असली रूपमें डाल सकते हैं। उन्होंने कृत्रिम खादों-

का व्यापार चलाया और धन भी कमाया। इसी धनसे उन्होंने विख्यात रौथेम्स्टेड एक्सपेरीमेण्टल फार्मकी स्थापना की। इसी प्रयोगशालामें १६०६ में उपरोक्त जीवाणु सम्बंधी खोज हुई।

रासायनिक पदार्थोंके अतिरिक्त मट्टीका एकसा जमाव, बनावट और मिलावटका पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये। रेतके ऊसर होनेका कारण यही नहीं है कि उसका अधिकांश अर्ध-अनुपयोगी होता है, बलिक यह भी है कि उसके कण बड़े बड़े होते हैं और पानीको बड़ी आसानीसे निकल जाने देते हैं। रेतसे बिलकुल भिन्न मट्टी चिकनी मट्टी है। इसमें पौधेके कामके सभी पदार्थ रहते हैं, परन्तु उसके कण इतने बारीक और सटे हुए होते हैं कि उनमें न पानी और न हवाका ही प्रवेश हो सकता है।

कुछ वर्ष पहले मट्टीके सम्बन्धमें उपरोक्त दो बातोंका विचार हुआ करता था। परन्तु अब उसमें के जीवाणुओं पर भी विचार किया जाता है। सच पूछिये तो यह सबसे मुख्य विषय है।

यह विषय है भी बड़ा मनोरञ्जक; सैकड़ों प्रयोगकर्ता तत् सम्बन्धी शोधोंमें लगे हुए हैं। नये नये आविष्कार बड़े वेग से हो रहे हैं। प्रत्येक आविष्कारसे पृथ्वीकी उर्वर शक्तिके बढ़ानेकी एक नई सूरत पैदा हो जाती है; अतः मनुष्य जातिकी सम्पत्ति और सुखका एक नया साधन दृष्टिगोचर हो जाता है।

जिस जीवन-कलहकी चर्चा डार्विन और बालेसने की थी वह नीची कोटिके जीवोंमें अत्यन्त भीषण रूप धारण कर लेता है। यद्यपि वह मनुष्य जातिमें भी बहुत जोर से हो रही है; परन्तु मट्टीमें तो वह कल्पनातीत परिमाण प्राप्त कर लेती है। लाखों करोड़ों जीव, जो न तो वनस्पति हैं और न जन्तु हैं या शायद जो दोनों ही हों, निरन्तर संग्राम करते रहते हैं। इनमें से अच्छे जीवाणुओंकी जीत होगी या बुरोंकी, इसका किसानकी योग्यता और कौशलसे निर्णय होता है।

प्रत्येक जीवके लिए कुछ अवस्थाएं ऐसी होती हैं कि जिनमें वह खूब फल फूल सकता है। इन्हीं अवस्थाओंके समूहको वनस्पति शास्त्री "ओप्टीमम" कहते हैं। यदि घासोंको अमोनिया मिल जाय तो वह केलेका नाश कर सकती हैं। अमोनिया न देनेसे केला घासोंका नाश कर सकता है। ऐसी ही दशा मट्टीमें है। अच्छे और बुरे जीवाणुओंमें निरन्तर घातक युद्ध हुआ करता है। रोथेम्स्टेड फार्म पर एक अच्छा प्रयोग इस संग्रामके दिखलानेके लिए किया गया था। थोड़ी सी मिट्टी लेकर पानीके साथ उबालकर जीवाणुशून्य करली गई। फिर इस पर पौदे जमाये गये, जिसमें यह मालूम हो जाय कि बिना जीवाणुओंके पौदे कैसे उगते हैं। पहले तो पौधे बहुत धीरे धीरे बढ़े। परन्तु बादमें बड़ी जल्दी जल्दी बढ़े और असली मट्टीकी अपेक्षा अधिक बढ़े। जांच करनेपर यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मट्टीमें अनेक जीवाणु—पहलेसे प्रायः दूने—मौजूद थे।

शायद औटाते समय जीवाणुओंके बैरी आदि-जन्तु (Protozoa) तो सब मर गये, परन्तु कुछ जीवाणु या उनके दाने बच रहे। इन्हींसे पीछे अनेक जीवाणु पैदा हुए। जब तक पर्याप्त जीवाणु पैदा नहीं हुए पौदेकी बाढ़ सन्तोषजनक न हुई और धीरे धीरे होती रही, परन्तु जब पर्याप्त जीवाणु पैदा होगये तो पौदे भी खूब बढ़ने लगे। जीवाणु एक तो वैसे ही बड़ी शीघ्रतासे प्रजोत्पादन करते हैं, फिर आदि-जन्तुओंके अभावमें उनका जल्दी बढ़ना कुछ आश्चर्य जनक नहीं है।

उपर्युक्त प्रयोगसे यह बात सिद्ध होगयी कि पृथ्वीकी उर्वर शक्ति उससे भीतरके उद्भिदों पर निर्भर है। पौधेके लिए मट्टी उसी तरह है जैसे समुद्रके यात्रियोंके लिए पानी—"पानी पानी सभी तरफ है, पीनेको एक बूंद नहीं है।" पृथ्वी भले ही खाद्य पदार्थों से भरी रहे परन्तु पौधा उसका स्वयम् उपभोग नहीं कर सकता। एक खेतमें आप प्रतिवर्ष खाद डाले जाइये, यहां तक कि उसमें

वर्षोंकी फसलके लिए काफी खुराक इकट्ठी होजाय, पर तो भी उसमें पौधे न उग सकेंगे, क्योंकि पहले खादको ऐसी दशामें पलट जाना चाहिये जिसमें कि पौधे उसे ग्रहण कर सकें। वास्तवमें यह सम्भव है कि सबसे अधिक सम्पन्न धरती ऊसर हो। एशियाके पूरबमें इस बातका एक अच्छा प्रमाण पाया गया था।

वहां ऊसर जमीन बहुत सी पड़ी हुई थी। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसमें फसल न हो सकी। यद्यपि रासायनिकोंका मत था कि उसमें पौधोंके लिए पर्याप्त भोजन सामग्री विद्यमान थी और वानस्पतिक रेशोंका कृष्ण चूर्ण भी था। परन्तु १८०६ में धरतीमें जीवाणुओंके रहनेका महत्व मालूम होने पर वहांकी मट्टीकी जांच की गयी तो पता चला कि उसमें जीवाणु नहीं थे। इसी कारण से जो पौधे वहां उगते थे और बादमें मुरझा जाते थे उनकी जड़ें वगैरा ज्योंकी त्यों पड़ी रहती थीं, गलती न थीं, जैसा कि खेतोंमें हुआ करता है। अतएव पीटके समान पदार्थ वहां जमा होता जाता था। वस्तुतः धरती दो तरहकी होती है। एक तो वह जिसमें दबे हुए वानस्पतिक पदार्थ सड़ गल कर मट्टीमें मिल जाते हैं और पौधोंकी खुराकका काम देते हैं; दूसरी वह जिसमें यह चीज़ें ज्योंकी त्यों पड़ी रहती हैं। पहलीमें उपर्युक्त जीवाणु होते हैं और दूसरी में नहीं। एशियाकी धरतीमें भी उपर्युक्त जीवाणुओं का अभाव पाया गया था। इसका कारण यह था कि वहांकी धरती उनके रहने योग्य न थी।

सच्चे किसान

ऐसे भी जीवाणु होते हैं जो बिना वायुके रह सकते हैं। इन्हींमें से कुछ धरतीके तलको बनाते हैं, परन्तु कृषक-मित्र जीवाणु बिना हवा और पानीके नहीं पनपते और अम्लताका न होना उनके लिए परमावश्यक है। उनके लिए किसी क्षारका (base) पर्याप्त मात्रामें होना परमावश्यक है। जर्मनीकी उपरोक्त भूमिमें जब सब उपाय निष्फल हुए तब अन्य उपजाऊ खेतोंमें से थोड़ी थोड़ी मट्टी लाकर डाली गयी। इससे बड़ा लाभ हुआ। मट्टीके साथ जीवाणु भी आ गये, जो वास्तवमें सच्चे किसान हैं और जिनकी अनुपस्थितिमें न तो अनेक खाद और न चतुर किसान ही कुछ सफलता प्राप्त कर सकता है।

क्या जीवाणुओंका स्वभाव बदल सकते हैं?

पर क्या यह सम्भव है कि हरबार मट्टी गाड़ियोंमें भर भर कर लायी जाय? यदि इन जीवाणुओंको ही प्रयोगशालामें पालकर प्रजोत्पादन करालें और एक परख नलीमें भर कर इन्हें जहां आवश्यकता हो भेजदें तो कितना समय और धन बच सकता है? इस बातका उद्योग किया गया है, पर यह कहना कठिन है कि कहां तक सफलता प्राप्त हुई है।

अमेरिकासे जीवाणु दक्षिण अफ्रीका भेजे गये थे। वहां उन्होंने कुछ काम न किया। कहा जाता है कि वह आलसी हो गये थे। यद्यपि यह शब्द वैज्ञानिक नहीं है, तथापि एक सच्ची घटनाको बतलाता है। किसी न किसी कारण से जीवाणु अपना विशेष धर्म भूलने लगे थे या यों कहिये कि वह अपना कौशल खोने लगे थे। शायद इसका एक कारण यह भी हो कि उन्हें खाना आसानीसे मिलता था। जब बिना काम किये रोटियां मिलने लगती हैं तो मनुष्य आलसी हो जाता है, फिर जीवाणुओंका आलसी हो जाना कुछ आश्चर्य जनक नहीं है। वास्तवमें जीवाणु आलसी हो गये थे। परन्तु हताश होनेकी कोई बात नहीं है। अन्य खाद्योंमें, माध्यमोंमें, जीवाणुओंकी वृद्धि करानेसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है।

कुछ वैज्ञानिकोंने तो यह दावा किया है कि वह जीवाणुओंका स्वभाव भी बदल सकते हैं। उनका कहना है कि जो जीवाणु विशेष पौधोंको ही लाभ पहुंचा सकते हैं उनके द्वारा अन्य पौधोंको भी लाभ पहुंचा सकते हैं; जैसे त्रिपत्र आदि दाल जातीय पौधोंकी जड़ों पर नत्रजन स्थम्भक जीवाणु

णु रहते हैं; इनको स्ट्राबेरीकी जड़ों पर रहनेका भी अभ्यास कराया जा सकता है। यदि ऐसा हो जाय तो स्ट्राबेरीकी पैदावार बहुत बढ़ जाय। देखें ऐसा करनेमें सफलता कब प्राप्त होती है।

जब कोई डाल टूट कर पृथ्वी पर गिरती है तो उस पर क्या गुज़रती है ?

प्रत्येक किसान और बागबानको यह भली प्रकार जान लेना चाहिये कि जितने काम कृषि सम्बन्धी किये जाते हैं वह सब जीवाणुओंकी रक्षा और वृद्धिके लिए किये जाते हैं। अतएव इस उद्देश्यको दृष्टिमें रखकर सब काम करने चाहियें। जोतना, गोड़ना, हैरो चलाना, चूना देना आदि सभी काम जीवाणुओंकी रक्षाके लिए किये जाते हैं।

जीवाणुओंकी महिमा तो अब तक बहुत बतलायी, परन्तु अभीतक इस बातपर विचार नहीं किया कि यह जीवाणु धरतीमें करते क्या हैं ? अब इसी बात पर विचार करेंगे।

यह हम सब जानते हैं कि पत्तियों या शाखाओंके धरती पर गिरने पर, बहुत जल्द उनकी आकृति और बनावट बदल जाती है। सारांश यह कि वह बदलकर कुछ की कुछ हो जाती हैं, परन्तु ऐसा होता क्यों है ? कोई वस्तु भी अपने आप तो बदलती नहीं है। किसीने टूटी हुई शाखाओंके गलकर मट्टीमें मिल जानेकी क्रियाकी तुलना जलनेसे की है। लकड़ीको जलानेसे उसका बहुत सा अंश तो गैसों और धुआंके रूपमें उड़ जाता है और थोड़ा सा अंश राखके रूपमें रह जाता है। ठीक यह दशा सड़ने पर होती है। किसी सड़ी हुई टहनीको हाथमें उठाकर देखिये। वह परके समान हलकी प्रतीत होगी और ज़रासे दबावसे चूर्ण होकर राखके समान पृथ्वी पर गिर जायगी। वास्तवमें उसका बहुत कुछ अंश निकल कर पृथ्वी और आकाशमें मिल गया है। शेष जो बचा है वह थोड़ा सा चूर्ण है जो पृथ्वी पर बिखर जाता है।

पौधोंकी जड़ें, ठूंठ, हरा खाद, पत्तियां आदि पदार्थ इसी प्रकार सड़ जाते हैं। परन्तु यदि शाखाएं आदि किसी तालाबकी कीचड़में दब जाती हैं तो वह नहीं सड़तीं। इसी प्रकार ऊसर भूमिमें उगनेवाली झाड़ियोंकी जड़ें आदि भी नहीं गलतीं। इस भेदका क्या कारण है ? यह भी ज्ञातव्य है कि जलनेमें तो दियासलाई या आगसे काम लेते हैं, सड़नेमें क्या होता है ? सड़नेमें जीवनके तापसे काम लिया जाता है। यह सब काम मट्टी और वायुमें विचरनेवाले जीवाणु करते हैं। यह जैव पदार्थोंको गला सड़ाकर वायु और पृथ्वीमें रमा देते हैं। यद्यपि वह अत्यन्त सूक्ष्म हैं और लाखों संख्यामें रहते हैं, तथापि रहते ऐसे ही हैं जैसे अन्य प्राणी। उन्हें सांस लेने और खानेको आवश्यकता रहती है। औषजन और कर्बोजोंकी उन्हें ज़रूरत रहती है। उन्हें आदमियोंकी नाईं स्थान परिवर्तनकी आवश्यकता होती है। यदि उन्हें खेतके एक भागसे दूसरेमें अथवा एक खेतसे दूसरेमें भेज दिया जाय तो वह अधिक शक्तिशाली हो जाते हैं। कुछ लोग इस बातसे लाभ भी उठाते हैं; वह एक खेतकी मट्टी दूसरेमें डालते हैं और इस प्रकार जीवाणुओंका देश परिवर्तन कराते हैं।

जीवाणुओंके लिए एक उपयुक्त तापक्रम भी चाहिये। जब तापक्रम बहुत कम या ज्यादा हो जाता है तो उनको हानि पहुंचती है।

हम पहले ही बतला चुके हैं कि कुछ जीवाणु ऐसे भी होते हैं कि बिना ओषजनके भी रह सकते हैं; परन्तु कृषक-मित्र जीवाणुओंके लिए उपरोक्त बातोंकी आवश्यकता होती है। डार्विनने केंचुओंकी महिमा बहुत गाई थी, उनका ग्रन्थ 'अर्थ वार्म्स' पढ़नेसे ज्ञात होगा कि केंचुए कितने कामके होते हैं। परन्तु जीवाणु केंचुओंसे हज़ारों गुने अधिक उपयोगी होते हैं। केंचुओंके बिना हमारा काम चल सकता है, परन्तु जीवाणुओंके बिना हमारा अस्तित्व ही मिट जायगा।

पौधोंको ओषजनके अतिरिक्त नत्रजनकी भी ज़रूरत होती है। ओषजन तो वह श्वास द्वारा ग्रहण कर लेते हैं। किन्तु नत्रजन वह जड़ों द्वारा जमीनसे लेते हैं। अतएव यह आवश्यक है कि नत्रेतोंके रूपमें नत्रजन जमीनमें हो; यही काम जीवाणु करते हैं। वह नत्रजन उचित रूपमें धरती में पहुंचाते हैं। जो नत्रजनीय पदार्थ जमीनमें पहुँचते हैं उनपर जीवाणु आक्रमण करते हैं। उसकी नत्रजनका कुछ अंश तो वायुमें मिल जाता है और कुछ अमोनियामें परिवर्तित हो जाता है। यह दोनों काम जीवाणुओंकी बदौलत होते हैं। अमोनियाको एक प्रकारके जीवाणु नत्रसअम्लमें और नत्रसअम्लको एक और जातिके जीवाणु नत्रिकाम्लमें बदल देते हैं। नत्रिकाम्ल धरतीके क्षारोंके साथ मिलकर नत्रेत बनाता है। नत्रेत पानीमें घुलकर जड़ों द्वारा पौधोंमें पहुंच जाते हैं। जितने प्रकारके जीवाणु उपरोक्त काम करते हैं वह सभी देशोंकी भूमिमें पाये जाते हैं।

अब पाठकोंको ज्ञात होगा कि जीवाणु ही पौधोंके अन्नदाता हैं। अबसे इनका ज्ञान हमें हुआ है बहुत से भेद खुल गये हैं। कुछ भेदोंके उदाहरण हम अगले लेख में देंगे।

—"हलधर"

ओषजनके चमत्कार

प्रायः डेढ़ सौ वर्ष हुए होंगे कि एक दिन प्रीस्टली महोदय अपने आति-शी शीशेसे प्रयोगशालामें खेल करते हुए फिर रहे थे। यह ताल कहींसे उनके हाथ लग गया था। उसके द्वारा सूर्यके प्रकाशको एकाग्र करके चीजों पर डालनेका उन्हें बड़ा शौक था। कई पाठकोंने भी बचपनमें मध्योन्नत तालोंसे खेल किया होगा और काले कपड़े पर उनके द्वारा प्रकाश डालकर उन कपड़ोंके जलानेका आनन्द लूटा होगा। प्रीस्टली महोदयका ताल बड़ा बलवान् था, उससे खेल करना उन्हें बड़ा प्रिय था। उस दिन वह भिन्न भिन्न पदार्थों पर प्रकाश डालकर कौतुक देख रहे थे। इन पदार्थोंमें पारद-ओषिद भी था, उस पर प्रकाश डालने पर उन्हें एक गैस निकलती नज़र आई। इस गैसको बर्तनोंमें भरकर प्रयोग करने पर उन्हें केवल अपूर्व प्रकाश के ही दर्शन नहीं हुए, वरन् प्रकाश और ज्वालाकी उत्पत्तिका वास्तविक भेद भी खुल गया।

यह गैस एक और भी सुगम रीतिसे बन सकती है। एक पक्के काँच या ताम्बे की कुप्पीमें पटास (Potash Chlorate) और मेंगनीज द्विओषिद (Manganese dioxide) का मिश्रण भरकर गरम किया जाय तो यह गैस पैदा हो जाती है। इसको बरतनोंमें भरनेके लिए नीचे दिये चित्रमें दिखलाये
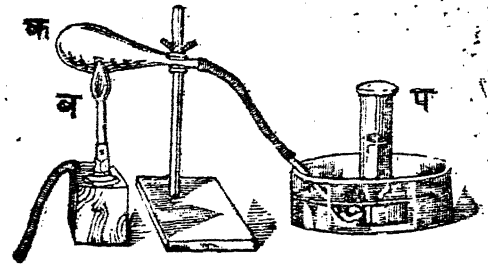
चित्र ५८—क कुप्पी, ब—बर्नर या लम्प, प—बोतल।

हुए यंत्रका प्रयोग किया जाता है। मान लीजिये कि कई बरतनों या बोतलोंमें हमने गैस भरकर रखली है। एक बोतलको उठाकर सूँघिये। गैसमें न रंग नजर आयगा और न स्वाद और गंध; परन्तु सूंघने पर कुछ हलकापन और प्रसन्नताका अनुभव होगा। दूसरे घड़ेमें किसी चूहीको पकड़ कर बन्द कर दीजिये। फिर देखिये कि वह आनन्दके मारे कैसा नृत्य करती और चुहल-पुहल दिखाती है। यदि हम भी इसी प्रकार किसी कमरेमें यह गैस भर कर बन्द करदिये जायँ, तो हममें भी बेहद

फुरती और ताक़त पैदा हो जाय। तीसरी बोतलमें एक जलती हुई मोमबत्ती डाल दीजिये। यह देखिये आपकी आँखें क्यों बन्द हुई जाती हैं। इस बत्तीका प्रकाश तो बिजलीके प्रकाशको भी मात करता है। कदाचित् कोई मनुष्य ऐसी तरकीब निकालता कि साधारणतया मोमबत्तियाँ इतने तीव्र प्रकाशसे जलने लगतीं तो वह न कुछ कालमें मालामाल हो जाता। एक लकड़ीका फलीता लीजिये। उसे कुछ देर तक जलता रखकर बुझा दीजिये, फिर उसको सुलगता ही गैस-भरी बोतलमें डालिये। यह भकसे जल उठा और अत्यन्त तीव्र प्रकाश निकलने लगा। सारांश यह कि जो चीजें वायुमें मन्द प्रकाशसे जलती हैं वह इस गैसमें जिसे ओषजन कहते हैं अत्यन्त तीव्र प्रकाशसे जलती हैं और सुलगती चीजें उसमें पहुँचते ही भभक उठती हैं। यदि लोहेके तारके एक सिरेको पिघले हुए गन्धकमें डुबो दें और गंधकको जलाकर ओषजन भरी बोतलमें डाल दें तो लोहा भी काग़ज़की नाई जलने लगेगा।

चित्र ५९

चीजें जैसे काठ, कोयला, गंधक आदि क्यों जलती हैं? यह प्रश्न बड़ा कठिन था, समस्या बड़ी विकट थी। जबसे मनुष्यने होश सँभाला सभ्यताकी पहली सामग्री—अग्नि—का बनाना सीखा, प्रायः उसी दिनसे उसके दिलमें अग्निका असली भेद जान लेनेकी लालसा उत्पन्न हुई होगी। इसी प्रयत्नके फल-स्वरूप अनेक सिद्धान्त हैं, जिनमें बहुत प्रख्यात दाहयतत्ववाद (Phlogiston Theory) है। यह यूरोपीय वैज्ञानिक और दार्शनिकोंमें बहुत दिन तक प्रचलित रहा। वह समझते थे कि प्रत्येक जलने वाले पदार्थमें एक दाह्य-तत्व नामक पदार्थ होता है, जिसके निकलते रहनेका नाम ही जलना है। जब निकलना बन्द हो जाता है जलना भी बन्द हो जाता है। अन्तमें राख बच रहती है। जिन पदार्थोंके जलने पर कुछ राख नहीं बचती वह निरे दाह्य-तत्वके बने होते हैं; जैसे, मोम आदि। जलनेकी क्रियाको समीकरण द्वारा इस प्रकार व्यक्त करते थेः—

पदार्थ=दाह्यत्त्व+राख

यह स्वतःसिद्ध है कि दाहयतत्व निकल जानेके कारण राखका भार पदार्थके भारसे कम बैठना चाहिये। धातुओंके विषयमें भी यह सिद्धान्त माना गयाः—

धातु=दाह्यत्त्व+भस्म

इस सिद्धान्तकी पुष्टिमें यह कहा जाता था कि यदि गरम भस्मको दाह्यतत्व-परिपूर्ण पदार्थोंके साथ गरम करें, जैसे सिंदूरको कोयलेके साथ, तो धातु बन जाती हैः—

दाह्यत्त्व+भस्म=धातु

परन्तु पीछेसे मालूम हुआ कि धातु-भस्मों का भार प्रायः ली हुई धातु से अधिक होता है, तब तो बड़ी कठिनाईका सामना हुआ। पर मनचले दाह्यतत्ववादियोंने यह युक्ति निकाली कि धातुमें से निकलनेवाले दाह्यतत्वका भार ऋणात्मक होता है, अर्थात् उसके रहनेसे भार कम और निकल जाने से अधिक हो जाता है।

इस अवस्थामें इस सिद्धान्तका हास्यजनक रूप बन गया था; अतएव वैज्ञानिकोंको उसमें श्रद्धा न रही। अनेक प्रयोगों और वाद-विवादोंके उपरान्त लेवासियर महोदयने यह सिद्ध किया कि प्रीस्टली महोदय द्वारा आविष्कृत ओषजन वायुमें वर्तमान है। वायुमें प्रायः पंचमांश ओषजन और चार अंश नत्रजनके हैं। उन्होंने कुछ वायुमें पारा कई दिन तक गरम करके सिद्ध कर दिया कि वायुका पंचमांश उसके साथ मिलकर भस्म बना लेता है और भस्मके गरम करने पर फिर उतनी ही गैस पैदा हो जाती है।
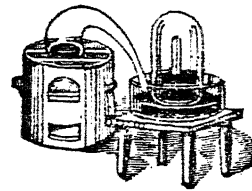
चित्र ६०

साधारणतया, जलना केवल ओषजनके साथ संयोग हो जाना मात्र है। वानस्पतिक अथवा पाशव पदार्थोंके जलनेसे दो मुख्य पदार्थ बनते हैं—एक जल और दूसरा कर्बन द्विओषिद। जलसे सभी परिचित हैं। कर्बन द्विओषिदका मुख्य गुण है कि वह चूनेके स्वच्छ जलमें घुल कर उसे दूधिया कर देता है। एक मोम बत्तीका टुकड़ा जलाकर मेज पर रखिये और उस पर एक कांचका साफ़ और सूखा गिलास औंधा दीजिये। थोड़ी ही देर में बत्ती बुझने लगेगी। उसकी लौ क्रमशः घटते घटते गायब हो जायगी। इस समय आप देखेंगे कि जल-वाष्प गिलासकी दीवालों पर जम गई है। अब गिलास उठाकर झट चूनेका छना हुआ साफ़ पानी उसमें डाल दीजिये और हिलाइये। वह फ़ौरन गदला हो जायगा।

जलना दो प्रकारका होता है, एक प्रत्यक्ष और दूसरा अप्रत्यक्ष। फ़ास्फोरसका टुकड़ा काटकर चीनी या मट्टीकी प्यालीमें रख दीजिये। उसमेंसे धीरे धीरे धुआँ निकलने लगेगा। जहाँ जहाँ धुआँ होता है, वहाँ वहाँ अग्नि होती है। इस न्यायसे आगका होना मान सकते हैं; परन्तु एक प्रत्यक्ष प्रमाण भी है। वह यह कि थोड़ी देरमें ही वह गलने लगेगा और कुछ और देर बाद जल उठेगा। गलनेसे प्रतीत होता है कि गरमी उत्पन्न हुई, जो जलनेकी सदाकी साथिन है। अन्तमें तो प्रत्यक्ष रूपसे जलता दीखता ही है।

अनादि कालसे वैदिक ऋषियोंका यह सिद्धान्त प्रत्येक हिन्दूको मालूम है कि यज्ञसे संसारकी उत्पत्ति हुई, यज्ञसे संसारकी स्थिति है और यज्ञसे ही इसका विनाश होगा। सारांश, यज्ञ ही ब्रह्मा है, यज्ञ ही विष्णु है और यज्ञ ही महादेव है। यज्ञमें होता, हव्य और अग्नि तीन चीज़ें आवश्यक हैं। आज हम पाठकोंको एक अद्भुत यज्ञका दर्शन कराना चाहते हैं जो प्रतिदिन, नहीं नहीं प्रतिक्षण, होता रहता हैं। इसीका ज्ञान होजाने से वैदिक ऋषियोंके वाक्यका महत्व समझमें आ जायगा।

अधिकसे अधिक १२० वर्ष तक जीनेवाले मनुष्योंको पर्वत अमर प्रतीत होते हैं। वह समझते हैं कि सृष्टिके आदिसे यह पहाड़ ज्योंके त्यों खड़े हैं, प्रलयमें ही इनका विनाश होगा; परन्तु वास्तवमें यह पहाड़ भी नश्वर हैं। प्रकृतिकी अनेक शक्तियाँ पहाड़ोंके बिगाड़नेमें काम करती हैं; इनमें एक निरन्तर होनेवाली क्रिया पहाड़ोंका जलना है। जलना? पहाड़ तो जलते कभी नहीं देखे गये! इनका जलना है अप्रत्यक्ष। आप लोहेको लेकर जलाइये। उसकी लाल लाल भस्म बच रहेगी। यही लाल भस्म मुर्चा है। लोहेकी चीज़ें वायुकी ओषजनमें, पानीके योगसे, शनैः शनैः अप्रत्यक्ष रूपसे जलती रहती हैं। इसीका परिणाम-रूप मुर्चा दृष्टिगोचर होता है। पानीके उपस्थित न होने पर—जो कदापि संभव नहीं है, क्योंकि वायुमें सदा ही जल-वाष्प विद्यमान रहती है—यह यज्ञ नहीं हो सकता। कालरूपी होता, प्रकृति-पुरोहित, ओषजन-अग्नि और लोह हव्यके रहते हुए भी बिना जलके संकल्प नहीं कर सकता, बिना संकल्पके यज्ञारम्भ असम्भव है। लालची पुरोहित यजमानके संकल्प करनेके लिए जिस प्रकार जल लिये हुए फिरा करता है उसी प्रकार प्रकृति भी जल लिये हुए खड़ी रहती है। बनना और बिगड़ना इन दो क्रियाओंमें प्रकृतिको अपूर्व आनन्द आता है। मनुष्य न जाने कितने परिश्रमसे पत्थरमें से लोहा निकालकर लाता है, कितनी मेहनतसे चीज़ें बनाता है; पर प्रकृति उन्हें प्रतिक्षण बिगाड़ा करती है। भला लोहेके बर्तनोंने इसका क्या बिगाड़ा है, जो यह सदा हाथ धोकर इनके पीछे पड़ी रहती है? जिन पर्वतों में, चट्टानों में, लोहेका (जैसे सुवर्ण मक्षिका अथवा लोह गन्धिद*) अंश रहता है वह भी रातदिन इसी प्रकार अप्रत्यक्ष रूपसे जल जलकर चूर्ण होते रहते हैं।

ओषजनका और चट्टानोंका बड़ा भारी बैर है। ओषजन मरकर भी चट्टानोंका पीछा नहीं छोड़ती,

* Copper pyrites and Iron sulphide

भूत बनकर उनका सर्वनाश करती है। जीवित अवस्थामें तो वह केवल ऊपरसे ही चोट करती है; पर मर कर तो वह उनके शरीरमें घुसने और उनका पूर्णतया दलन करने लगती है।

वायुमेंकी ओषजन तो चट्टानोंको ऊपर ही ऊपर लाल अथवा पीले चूर्णमें परवर्तित करती है; परन्तु वर्षा होने पर अथवा पानीके बहते रहने पर कुछ ओषजन उसमें घुल जाती है। उसकी तेज़ी बहुत ज़्यादा बढ़ जाती है और पानीके साथ दरारों या छिद्रोंमें होकर वह भीतर तक पहुंच उपद्रव उपस्थित करती है। लोहेके अंशको लाल ओषिद (मुर्चा) में बदल देती है। यदि स्वर्णमक्षिका-का अंश चट्टानमें हुआ तो यह और भी गज़ब ढाती है। स्वर्ण-मक्षिकासे हीरा कसीस और एक गैस (गन्धक द्विओषिद) बनाती है। यह गैस पानीमें घुलकर पहले गंधसाम्ल और अन्तमें गंधकाम्ल बनाती है। * यह गंधकका तेजाब तब चट्टानोंकी और भी दुर्दशा करता है।

हम बतला चुके हैं कि वानस्पतिक और पाशव पदार्थोंके जलनेसे कर्बन द्विओषिद बनता है। उपरोक्त क्रियामें अर्थात् गंधकाम्लकी चूनेके पत्थर पर क्रिया होनेमें भी यह गैस बनती है। यह गैस जलती हुई मोमबत्तीकी नाईं जीवन ज्योतिको भी तत्काल ही बुझा देती है। यह विष न होते हुए भी हलाहलका काम करती है। वानस्पतिक और पाशव पदार्थोंमें कर्बन (कोयले) का अंश है। वही इनके जलने पर ओषजनसे मिलकर कर्बन द्विओषिद बनाता है। इस घटना को या तो उक्त पदार्थोंकी या ओषजनकी मृत्यु कह सकते हैं, और कर्बन द्विओषिदको ओषजनका भूत। कर्बन द्विओषिदको चट्टानें धीरे धीरे पीती रहती हैं। जिस प्रकार चंडूकेमतवाले अपने व्यसन के प्रभाव से घुल घुल कर मरते हैं उसी प्रकार इस अद्भुत धूम्रपानके परिणामसे चट्टानें चूर चूर हो जाती हैं। सुनते हैं कि कैलाशवासी महादेव ने हलाहल पिया था और जगतकी रक्षा की थी। ईश्वर जाने यह सत्य है या नहीं; परन्तु कैलाशको तो प्रतिक्षण हलाहल पान करते हम देखते हैं। इस हलाहलको ही पीकर वह उससे हमारी रक्षा ही नहीं करता; परन्तु अपने राजासे बढ़कर एक बात कर दिखाता है। दधीचि ऋषि की तरह उसका अवशेष भूमिके बंजडपनेको मारने के काम आता है। धरतीकी उर्वरताके लिए पोटाश और नत्रिक अम्लकी आवश्यकता है। चट्टानोंके चूर्णीकरणसे पोटाश और लोह धरती-को मिल जाता है और जो कमी प्रतिवर्ष होती रहती है पूरी हो जाती है। सारांश यह कि चट्टानों की आहुति ओषजन अथवा कर्बन द्विओषिद रूप अग्निमें दी जा रही है; उसीसे भूमिकी उर्वर शक्ति बढ़ती है।

यदि कोई आकर कहे कि आप जल रहे हैं तो आपको कितना आश्चर्य होगा। पर वास्तवमें आप निरन्तर जल रहे हैं। पाशव पदार्थोंके जलने के हम दो लक्षण बतला आये हैं—जलका बनना और कर्बन द्विओषिदका निकलना। हमारे शरीरमें यह दोनों चीजें पैदा होती रहती हैं। किसी ठंडी वस्तु पर फूँक मारिये, जल-वाष्प उसपर जम जायगी और थोड़ी देरमें ही गायब हो जायगी। जाड़ेमें जो मुहमें से धुआँसा निकलता नज़र आता है वह जल-वाष्प ही है जो ठंड पाकर जम जाता है। साँसमें निकलने वाली कर्बन द्विओषिद गैस-का सबूत चूनेके स्वच्छ जलमें फूँक मारने पर उसका दूधिया हो जाना है। जिस प्रकार इंजनोंमें कोयला झोंका जाता है उसी प्रकार जठराग्निमें रसीला भोजन। यह आहुति हमको दिनमें कई बार देना पड़ती है, दूसरे प्रकारकी आहुति बड़ी विचित्र है, जिसके दिये बिना थोड़ी देर भी जीना असम्भव है। वह आहुति है प्राणको अपानमें और अपानको प्राण में—

* Sulphur dioxide, Sulpharous acid, Sulphuric acid.

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगतीरुध्वा प्राणायामपरायणः॥

इन दो यज्ञों द्वारा जो गरमी पैदा होती है उसीके सहारे हमारी संसार-यात्रा होती है। सच पूछिये तो जलचर, थलचर और नभचर सबके सब कट्टर हिन्दू हैं, चाहे वह हठधर्मीसे स्वीकार करें या न करें। प्रत्येक सांसमें करोड़ों ओषजनके अणु प्रवेश करते हैं। फेंफड़ेमें पहुंच रुधिरके कणोंसे इनकी मुठभेड़ होती है और यह उन्हें गरमकर, मैलको जला, शुद्ध करना आरम्भ कर देते हैं। प्रत्येक प्रश्वासमें फिर करोड़ों अणु बाहर निकलते हैं। इन्हें शरीर-रूपी भट्टीका धुआँ समझना चाहिये। होम्समहोदयने कहा है—

God has made
This world a strife of atoms and Spheres,
With every breath I sigh myself away
And take my tribute from the wandering wind
To fan the flame of life's consuming fire

आइये, ज़रा शरीर-रूपी भट्टीमें ओषजनके भ्रमण पर ज़रा विचार करें। शरीरका प्रत्येक अंग असंख्य छोटे छोटे जीवोंसे बना है, जिन्हें 'सेल' (cell) अथवा कोष कहते हैं। वास्तवमें शरीर अनेक सैलोंका प्रजासत्ताक राज्य है। प्रत्येक सेल अपने आभ्यान्तरिक प्रबन्धके लिए स्वतंत्र है; पर विदेशीय राज्योंके संबन्धमें उसके अधिकार कुछ नहीं हैं। उसे समस्त राज्यके सुप्रबन्धके लिए जो नियम बने हैं उनका भी पालन करना पड़ता है। जब वायु फेंफड़ोंमें पहुँचती है तो वहाँ रुधिरसे उसकी भेंट होती है। रुधिरके रक्त-कण इसका शोषण कर सुन्दर लाल वर्णके हो जाते हैं और हृतपिंड-द्वारा प्रेरित हो शरीरका चक्कर लगाने लगते हैं। बारीक बारीक केशिकाओं द्वारा रुधिर शरीरके प्रत्येक कोष तक पहुंचता है। वहां जो कुछ मैल होता है उसे लेता हुआ, साफ करता हुआ, रुधिर फेंफड़ोंमें पहुंचता है। लौटते हुए रुधिरका वर्ण नीला हो जाता और यह धमनियोंमें दिखलाई देता है। फेंफड़ोंमें पहुँचने पर इसमेंका सब मैल ओषजन साफ़ कर देती है और यह फिर अपनी यात्रा पूर्ववत् आरम्भ करता है। रक्त-कणोंमें एक पदार्थ होता है, जिसे हीमोग्लोबिन कहते हैं। यह ओषजनके साथ एक दुर्बल यौगिक बना लेता है। यह यौगिक जहाँ आवश्यकता होती है अपनी ओषजन देकर सफ़ाई कर देता है। शरीर रूपी म्यूनिसिपेलिटीके रक्त-कण महतरोंकी यह मशक हैं, जिनका ओषजन-पानी सफ़ाईके काम आता है। पाशव पदार्थों (अन्न आदि खाये हुए पदार्थोंसे बने पदार्थों) का भस्मीकरण प्रत्येक कोषमें होता रहता है।

जिस समय वायुदेव शरीरमें प्रवेश करते हैं, प्रत्येक सेल फल पुष्पसे इनकी पूजा करनेको उद्यत रहती है। वायुदेव अग्निका रूप धारण कर उसे भस्मसात् करते हैं और कर्बनद्विओषिद रूपमें बाहर निकलते हैं।

बिना बलिदान किये कोई काम सिद्ध नहीं होता। शायद हमारे बहुतसे दयालु मित्र देवीके मन्दिरमें बलिदान देखकर नाक-भौं सिकोड़ें; पर वायु-देवीके सामने वह अपनी बोटियाँ (कोष या सेल) काट काटकर चढ़ाते रहते हैं, उसी बलिदानके पुण्यसे शरीरकी सत्ता है। आप चाहते हैं कि हाथ उठाएँ; पर बलिदान दिये बिना क्या कोई कार्य सम्भव है? हाथ उठाइये, पैर हिलाइये, मुँह खोलिये, विचार कीजिये, प्रत्येक कार्यमें दो चार प्राणियों (सेल अथवा कोष) का बलिदान हो जाता है। यही टूट टूटकर, छिन्न-भिन्न होकर, अपना शरीर न्यौछावर करके आपको काम करनेकी शक्ति प्रदान करते हैं। रुधिरकी धाराओंके साथ जो ओषजन शरीरमें चक्कर लगाया करती है वही इन मृत सेलोंको भस्म करती रहती है।

जितना बड़ा मार्केका काम होता है, उतना ही बड़ा यज्ञ उसकी सफलताके लिए करना पड़ता है। यदि आप दौड़ें, हाईजम्प या लांग जम्प

करें, कुश्ती लड़ें, मल्लयुद्ध करें तो उसी परिमाणमें अधिक सेलें प्रतिक्षण टूटने लगेंगी। इनके मृत शरीरोंके भस्म करनेके लिए अधिक ओषजनकी ज़रूरत पड़ेगी। अतएव पंपिंग स्टेशन (फेफड़े) पर काम तेज़ीसे होने लगेगा, जिसमें ओषजन अधिक मात्रामें जल्दी जल्दी पहुँचती है और पेशियोंमें गन्दगी जमा नहीं होने पाती। इसी घटनाको कहते हैं साँस फूल आना, और आप शीघ्र ही थक जाते हैं; क्योंकि फेफड़े बहुत देर तक ठीक और जल्दी जल्दी काम नहीं कर सकते।

पाठकों को याद होगा कि वायुमें केवल पंचमांश ओषजन का है। अतएव जब शरीरको अधिक ओषजनकी ज़रूरत हो तो वायुमें या तो और ओषजन मिला दें या शुद्ध ओषजनका ही पान करें, तो पर्याप्त ओषजन शरीरको मिलते रहनेसे पम्पिंग स्टेशनके कर्मचारियोंको फ़िकर न करनी पड़ेगी। यही कारण था कि प्रीस्टली महोदयकी चुहियां ओषजनसे भरी बोतलमें पहुँचकर बड़ी फुरती दिखाने लगी थीं।

यूरोपमें मैचोंमें, दौड़ोंमें और अन्य खेलोंमें प्रतिद्वन्द्वी प्रायः ओषजनका प्रयोग किया करते हैं। ओषजन पान करानेकी विधि इस चित्रमें दिखलाई गई है। डा० लियोनर्डहिल अपने एक रोगीको ओषजन दे रहे हैं। ओषजन एक बर्तनमें सौ वायुमण्डलके दबावसे दबी हुई है। वहाँसे एक थैलेमें आती है। थैलेमेंसे एक कपड़ेमें पहुँचती है जिससे मरीज़का मुँह ढाँक दिया जाता है।

फुप्फुस-प्रदाहमें फेफड़े पर्याप्त वायु नहीं खींचते; अतएव वायुके स्थान पर ओषजनमिश्रित वायु देनेसे अथवा ओषजनके पाँच पाँच मिनट पर पान करानेसे रोगीको फ़ायदा होता है; अन्यथा रोगीके दम घुट कर मर जानेका भय रहता है। फुप्फुस-प्रदाहमें रोगी इस रोगसे इतने नहीं मरते जितने पर्याप्त मात्रामें ओषजन न पहुँचनेके कारण विषैले पदार्थ, मैल आदिके पैदा हो जानेसे मरते हैं।

ओषजनके बलसे मनुष्य समुद्रके पेंदे पर, विषैली गैसोंसे भरी खदानों, मकानों आदिमें निर्भय जा सकता है। एक यंत्र है कि जिसका आविष्कार फ्लूस और डेविसने किया था। इसकी क्रिया इस प्रकार होती है—मनुष्यकी पीठ पर दो बर्तन बाँध दिये जाते हैं, जिनमें दबी हुई ओषजन भरी रहती है। बगलमें लगे हुए एक पंच-द्वारा ओषजन सामनेकी तरफ़ बँधे हुए रबरके थैलेमें एक समान वेगसे जाती रहती है। इस थैलेमेंसे दो नलियाँ मनुष्यके मुँह तक पहुँचती हैं। दोनोंमें भोड़र (mica) की ढिबरी लगी रहती है। इनके कारण एक नलीसे ओषजन थैलेमेंसे मुँहमें जाती है (लौट नहीं सकती) और दूसरीसे मुँहमेंसे निकल कर थैलेमें पहुंच जाती है। श्वास लेते समय ओषजन थैलेमेंसे मुँहमें पहुंच जाती है। साँस छोड़ते समय गंदी हवा मुँहमेंसे निकल थैलेमें चली जाती है। थैलेमें कास्टिक सोडा रखा रहता है। यह प्रश्वास-वायुको शुद्ध करके श्वासके योग्य बना देता है।

गोताखोरोंको इस यंत्रसे बड़ी सहायता मिलती है। कुछ दिन पहले गोताखोरोंका मुँह एक खोदमें बन्द कर दिया जाता था, जिसमें एक नली लगी रहती थी। यह नली बड़ी लम्बी होती थी। इसीमें होकर हवा ऊपरसे गोताखोर तक पहुंचाई जाती थी। अतएव बिचारे गोतेखोरको यह नली खींचनी पड़ती थी। फिर नलीकी लम्बाई पर ही उसके जानेकी सीमा निर्भर रहती थी।

१८८० में सेवर्न नदीके नीचे सुरँग खुद रही थी। एकाएक एक तरफ़से पानी आने लगा। मजदूरोंने समझा कि नदीका पानी किसी छिद्रमेंसे होकर आने लगा है और हम सबको डुबा देगा। यह देख वह बेतहाशा भाग उठे। और जल्दीमें लोहेके फाटक जिनसे पानीकी रोक होती थी बन्द करना भूल गये। परिणाम यह हुआ कि ऊर्ध्व-

गामी * रास्तेमें १५० फुट पानी भर गया। पानीका निकाला जाना शुरू हुआ। बड़ी मुश्किलसे पानी ३६ फुट तक उतरा, इससे नीचे उतरना असम्भव था। अब केवल एक उपाय था; वह यह कि लोहेका फाटक बन्द कर दिया जाय, जिसमें पानीका आना रुके। पानीके २६ हाथ नीचे पूर्ण अंधकारमें, प्रायः ३५० गज तक जाना और दर्वाजा बन्द करना, बड़े साहस और जोखिमका काम था। इसके अतिरिक्त, रास्तेमें दो ठेले औंध गये थे, उनके ऊपर चढ़कर जाना था और दर्वाज़ेमें एक

चित्र ६१

रेल अड़ गयी थी, जिसे हटाकर दर्वाज़ा बन्द करना था।

लेम्बर्ट नामी गोतेखोरने हिम्मत की और पुरानी चालकी पोशाक पहन कर गया। पत्थरके ढोकों, उलटी हुई गाड़ियों, बिखरे हुए औज़ारों परसे निकलता हुआ बिचारा कोई २५० गज तक गया, पर आगे न जा सका। वायु-नलीकी १००० फुट लम्बाईको पीछे घसीटना असम्भव था, यद्यपि उसे दो आदमी ऊपरसे सरका रहे थे। फिर वायुनली उठकर सुरँगकी छतसे रगड़ खाने लगी, उसके मारे वह और भी परेशान होगया।

फ्लूस महोदयने अपने यंत्रको पहनकर जानेका साहस किया; पर उन्हें लौटना पड़ा; क्योंकि उन्हें अभ्यास न था। लेम्बर्टने तब इनके यंत्रको पहन कर जानेकी ठान ली और दो बार प्रयत्न करने पर वहाँ तक पहुँचकर दर्वाजा बन्द कर आया। डेढ़ घंटेके बाद लेम्बर्ट निकला। इस समय दर्शकोंकी उत्कण्ठा अत्यन्त उत्कट थी; पर जब उन्हें लेम्बर्ट बाहर आता दिखाई दिया तो उनके हर्षकी सीमा न रही। लेम्बर्टने बड़े साहसका काम किया था। जिस जोखिमकी सम्भावना उसे थी वह भयंकर थी। लेफ्टेंट डेमेंट एडमिरेलटीके लिए इस यंत्रकी परीक्षा कर रहे थे तो एकाएक उन्हें गश आगया और जब तक कि वह ऊपर खींचे जायँ तब तक प्राणान्त होगया। ऐसी घटनाका लेम्बर्टके साथ हो जाना असम्भव न था।

ओषजनका उपयोग और भी अनेक प्रकारसे होता है। उज्जनके साथ जलानेसे ओषजन बड़ा ऊँचा तापक्रम पैदा करती है, जिससे सिकताके बर्तन, तार, प्लाटीनमके बर्तन आदि बनते हैं। इसी ओषोज्जन लौसे चूनेकी बत्ती गरम करके बड़ा तीव्र प्रकाश किया जाता है, जिसे लैमलैट (limelight) कहते हैं। एसीटिलीनके साथ मिला

* वह ऊर्ध्व विवर जिसमें खटोलों पर बैठकर पृथ्वीतलसे सुरंगमें प्रवेश करते हैं।

कर इसको जलानेसे ऐसी लौ पैदा होती है जिससे लोहेकी मोटीसे मोटी चद्दर इस सुगमतासे काट देते हैं जैसे कैंचीसे कागज़। रासायनिक उद्योगोंमें भी ओषजनका उपयोग होता है।

वायुमें केवल पांचवां भाग ओषजनका है, यह बहुत ग़नीमत है। यदि वायुमंडलमें निरी ओषजन होती तो बहुत शीघ्र महाप्रलय हो जाती, चर और अचर शीघ्र ही जल कर भस्म हो जाते। यदि कहीं वायुमें ओषजन आधी भी होती तो न खाना—पकाना सम्भव होता, न शौक़ीनोंका चुरट पीना। तवे पर रोटी रखते ही वह कागज़की तरह जल जाती और चुरटको दियासलाई दिखाते ही चुरट तो फकसे जल ही जाती साहब (नकली होते चाहे असली, स्वदेशी होते या विदेशी) को भी मुँह बचाना मुश्किल हो जाता। वह मुँहकी खाते कि सदा याद रखते! दियासलाई भी कमसे कम एक गज़की बनानी पड़ती। हुकची भी विचारे वंचित रह जाते, चिलममें तमाखू फौरन भस्म हो जाती; पर तौ भी उन्हें चुरटके शौक़ीनोंसे ज्यादा आनन्द मिलता। रसोईमें तवा और कढ़ाईका बचाना मुश्किल होता।

थोड़ी देरके लिए मान लीजिये कि वायुमण्डलमेंसे ओषजन सहसा गायब हो जाती है। ऐसी घटनाके होनेके एक मिनट बाद ही सब प्राणी तड़पने लगेंगे और पांच मिनटके भीतर ही सब चहल-पहल परम निस्तब्धता और अकर्मण्यतामें बदल जायगी। पौधे और वृक्ष कुछ दिन तक अपनी हरयालीकी छटा दिखलाते रहेंगे; पर अन्तमें उनका भी विनाश निश्चित है। क्या जल और क्या थल सभी पशुओं और प्राणियोंके शवोंसे ढक जायँगे। बचेंगे तो केवल कुछ जीवाणु जो नत्रजन पर अपना जीवन-निर्वाह कर सकते हैं।

ओषजनको यदि सजीवन-मूरि कहें तो अत्युक्ति न होगी। मनुष्यको प्रतिदिन जहांतक हो सके नदीके किनारे या खुले मैदानों या बागोंमें अधिकांश समय बिताना चाहिये, जिसमें शुद्ध वायुका सेवन कर यथोचित लाभ मिले।

जीव संसारका विकास

भारतीय विचार

पश्चिम, यूरोप, के देशोंमें डारविनने प्राणिसंसारको देखकर उनको एक विशेष प्रकारकी घटती बढ़ती-शृंखलामें बंधा पाया। उसने छोटेसे अमीबा से लेकर बड़े बड़े विशालकाय शरीरों तक विशेष क्रमसे विकसित हुए विशेष शरीरोंको एक क्रममें देखकर विकासवादकी कल्पना की। और विधाताकी सबसे उच्चतम कृति मानव शरीरको प्रकृतिका अन्तिम और सबसे उत्तम विकास माना। शेष पशु भी यद्यपि अपनी विशेष प्रवृत्तिके पूर्ण विकास हैं तो भी सबसे उत्तम विकास उनको कहा नहीं जा सकता। इसी विचारके परिपोषमें डार्विनने जहां प्रकृति सिद्ध क्रमिक विकसित नमूनोंको एक क्रममें रख कर दिखलाया है तहां साथ ही गर्भ स्थानमें मानव देहकी विशेष विशेष आकृतियोंको भी अपने विकास सिद्धान्तका बड़ा मनोरंजक प्रमाण माना है। डारविनकी विचार शैलीने यूरोप भरको बड़ा प्रभावित किया है। परन्तु हमको इस प्रसङ्गमें उस विषय पर कुछ भी नहीं कहना, परन्तु प्राचीन भारतीय विद्वानोंकी जीव विकासकी कल्पनाका दिग्दर्शन कराना इष्ट है।

सृष्टियोंका विकास

जिस प्रकार विकासवादियोंका सिद्धान्त है कि जलीय सर्ग प्रथम हुआ है, भारतीय भी निःसन्देह प्रथम जलीय सर्ग ही मानते हैं। नारायणने जलोंको पैदा किया और उनमें ही अपना वीर्य आरोपित किया। भागवतके तीसरे स्कन्धके १० वें सर्गमें ६ प्रकारका प्राकृत और ३ प्रकारका वैकृत सर्ग कहा है।

सत्व, रजः, तमः इन तीनों गुणोंकी समशान्त दशामें काल शक्ति से विक्षोभ होनेसे प्रथम

सर्ग, गुण विषमता वाला महत्तत्व हिरण्यगर्भ, तैजस अंडके नामसे पुकारा जाता है। दूसरा सर्ग अहम् कारका है, जिसमें द्रव्य, ज्ञान, और क्रिया तीनों वस्तुएं प्रकट थीं। तीसरा सर्ग पंचभूतोंका है। इसमें पृथवी, अप, तेज, वायु और आकाश यह पांच भेद स्पष्ट हो गये थे। इस सर्गमें द्रव्योंमें पांच प्रकारकी शक्तिका आविर्भाव था—ठोसपन, द्रवता, चमक, गति, अवकाश। चौथा सर्ग इन्द्रियोंका था अर्थात् इसमें वह सूक्ष्म पांच सारभूत वस्तुएं पैदा हुईं, जिनमें उपरोक्त पांचों गुणवाले पदार्थोंका प्रभाव पड़ सकता था, जिससे उनकी सत्ताका ज्ञान भी हो सकता था। पांचवां सर्ग देव सर्ग था। इसमें वह तत्व उत्पन्न हुआ जिसका कि मस्तिष्क बना अर्थात् जिस पर उक्त सब प्रभावोंका भी प्रभाव पड़ सकता था। छठे में तमकी उत्पत्ति हुई। अर्थात् अब तकके पांचों प्रकृतिके क्रमिक विकार तेजोमय थे। अब उनमें तेजकी न्यूनता होनेसे छठे विकारमें छायाकी उत्पत्ति हुई।

इसके बाद सातवां विकार स्थावर सर्ग है। अर्थात् प्रकृतिकी पूर्ण चंचलता नष्ट होकर तमोमय विकारसे जलमयविकार हुआ और वनस्पतियां उत्पन्न हुईं। वह अन्दर ही अन्दर स्पर्शका ज्ञान कर सकती थीं। उनका भी क्रम यह था। प्रथम वनस्पति, फिर ओषधि, फिर लता, फिर त्वक्सार बांस आदि, फिर झाड़ियां, और अन्तमें सख़ काठ वाले वृक्ष हुए। इन सभीमें रस ऊपरको चढ़ता था। भीतर भीतर स्पर्शका ज्ञान था। उनमें अपनी अपनी विशेषता थी अर्थात् क्रम क्रमसे उनमें विशेषता आती गयी थी।

आठवीं सृष्टि तिर्यग् योनियोंकी थी। जिनके २८ प्रकार थे। इनमें गन्ध ज्ञानकी शक्ति विशेष थी और विवेक नहीं था।

नवां सर्ग मनुष्यका था। इसमें राजस भाग अधिक था। इससे ऊपर देव और ऋषि हैं, जिनका दशम सर्ग है।

इस प्रकरणमें कितना सुन्दर क्रम रखा है। कैसा उत्तरोत्तर निसर्ग सिद्ध मालूम होता है।

देह और बुद्धिका विकास

इसी प्रकार भागवतके २९ वें अध्यायमें जीव संसारकी बुद्धिके विकासकी शृंखलाके साथ साथ शरीरके विकासकी शृंखलाका भी उत्तम नमूना दिखलाया है।

"सम्पूर्ण संसारके दो प्रकारके पदार्थ हैं एक जीव और दूसरे अजीव। अजीव पदार्थोंसे जीव पदार्थ श्रेष्ठ हैं। जीवोंमें भी दो भेद हैं एक वह जो प्राण लेते हैं, दूसरे वह जो प्राण नहीं लेते। प्राण न लेने वालोंसे प्राण लेने वाले उत्तम हैं। उनके भी दो भेद हैं एक जिनमें चित्त (नर्वस-सिस्टम) है, दूसरे वे जिनमें नहीं है। चित्तवाले अचित्त प्राणियोंसे उत्तम हैं। चित्तवालोंके भी दो भेद हैं, जिनमें चित्तके साथ इन्द्रियां (सेन्स आर्गन्स) हैं और जिनमें नहीं हैं। इन्द्रियों वाले दूसरेसे उत्तम हैं। उन इन्द्रिय वालोंमें कई प्रकारके भेद हो सकते हैं जैसे कोई केवल त्वचासे स्पर्शका ज्ञान कर सकते हैं; कोई स्पर्श और रसका भी, कोई गन्धका भी और कोई शब्दका भी और कोई रूपका भी। इनमें जीवोंकी उत्तरोत्तर उत्कृष्टता जाननी चाहिये। इस सीमा पर भी अभी ऐसे जीव हो सकते हैं, जिनमें अन्य कर्मेन्द्रियोंका पूरा विकास न हुआ हो। इसलिए उक्त सबसे श्रेष्ठ वह जीव हैं, जिनमें ऊपर और नीचे दोनों तरफके दांत निकल आये हैं; अर्थात् खाना चबानेका पूरा विकास हुआ है। उनसे भी वह जीव श्रेष्ठ हैं, जिनके पैरके अंग निकल आये हैं। अर्थात् रेंगनेवाले या पेटके बल लोटनेवाले जन्तुओंसे टांगोंवाले जन्तु अधिक उन्नत हैं। उनमें भी वह प्राणी अधिक उन्नत हैं जिनके केवल चार पैर रह गये हैं। और उनसे भी उन्नत दो पैर वाले हैं।

अब विकास मनुष्य तक पहुँच गया। इसके पश्चात् पशु समान जंगली वनमानसों की अपेक्षा मनुष्य उन्नत हैं, जिनमें चारवर्ण हैं अर्थात् श्रमविभाग

यथोचित रीतिसे है। विचार रक्षा, पोषण और सेवा यह चार विभाग सुव्यवस्थित दिखाई देते हैं। इन विभागोंमें भी विचारका कार्य करने वाले ब्राह्मण उत्तम हैं । इन ब्राह्मणोंमें भी वेदज्ञ ईश्वरीय ज्ञानका शाब्दिक रूप जानते हैं । इनसे भी उत्तम उसका मर्म, अर्थ, जाननेवाले हैं। उनसे भी उत्तम पुरुष दूसरेके संदेह दूर करने वाले पुरुष हैं। और उनसे उन्नत स्वयं कार्य करनेवाले हैं। और उनसे भी उन्नत उसके फलका त्याग करनेवाले हैं और उनसे भी श्रेष्ठ वह हैं जो अपने पुण्य कर्मोंका भी दूसरोंके लिए त्याग कर देते हैं।"

भागवत् स्क० ३ अ० २६ (२८-३२)

इस क्रमको आप जीवोंकी प्रत्येक योनिमें भी क्रमिक रूपमें पा सकते हैं, और उनके पारस्परिक उत्कर्षका ज्ञान कर सकते हैं। क्या इस उत्कर्ष परम्पराको विकास परम्परा नहीं कहा जा सकता।

गर्भ का विकास

पाश्चात्य विद्वान् गर्भ कालमें मनुष्य गर्भकी १ म दशासे लेकर अन्तिम बालक रूप तक सब शरीरकी आकृतियोंसे उसके शरीरके विकास-इतिहासका अनुमान करते हैं। यही भाव भारतीय साहित्यमें भी पाया जाता है।

इसी स्कंधके ३०वें अध्यायमें कपिलदेवका बचन इस प्रकार है। संक्षेपतः—

"जिस प्रकार मेघ वायु बल से कहींका कहीं चला जाता है उसी प्रकार जीव अपनी गुणमय प्रवृत्ति में बंधा हुआ कालके वेगसे कहांका कहां चला जाता है। मोहसे वह घर, क्षेत्र, धन आदिमें इतनी ममता बांध लेता है और नरक यातनाओंमें कष्ट पाकर भी देह त्यागना नहीं चाहता। अपनी सांसारिक ममताके पात्र देह, जाया पुत्रादिके लिए बराबर पाप करता जाता है। काल आनेपर घोर यम यातनाएं भुगतता है। अपने पापोंसे नरक रूप तिर्यग् योनियां भोगकर फिर शुद्ध हो कर माताके गर्भमें पुरुषके वीर्य द्वारा गर्भ रूपमें प्रकट होता है। एकरातमें कलल, पांच दिनमें बुलबुला, दस दिनमें बढ़कर एक बेरके समान कर्कन्धू, और उसके बाद एक मांसमय पेशीका अण्डासा बन जाता है। उसके पश्चात् एक मासमें सिर, दो में बाहु और पैर निकलने लगते हैं; तीसरे मास में लिंगका चिन्ह प्रगट होता है और त्वचा पर नख और रोएं पैदा होते हैं। चौथे मासमें मांस आदि धातुएं प्रकट होती हैं। पांचवें मासमें भूख प्यास लगती है। छठे मास में जेरमें लिपटा गर्भ दाईं ओर गति करता है। माताके खाये पिये अन्नके रससे पुष्ट होने लगता है। उसकी स्थिति उस समय मलाशय और मूत्राशय दोनोंकी बीचमें स्थित बच्चादानी (जन्तु-सम्भवगर्त्त) में होती है। वहां उसको बड़ा कष्ट होता है। बाहरसे उसे माताकी अन्तड़ियां दबाती हैं और ऊपरसे जेरकी (जरायु) झिल्लीसे ऐसा मढ़ा होता है जैसे पिंजरेमें पक्षी। उसे अपने शरीरके हिलाने तककी स्वतन्त्रता नहीं होती उसी गर्भाशयमें उसको अपने सौ पूर्व जन्म तकके किये सब कर्म याद आया करते हैं। यह स्मरण सातवें मास तक रहता है। तभीसे प्रसव वायु उसको बच्चादानीसे बाहर निकालनेका यत्न करने लगती है। तभीसे वह दोनों हाथ जोड़ भगवान्‌की स्तुति करता है कि मैंने बहुत पाप किये थे। अब क्षमा करो अब कभी न करूंगा।"

भागवतकारने यहां ७ मास तक सौ जन्म पूर्वकी अपनी कर्म वासनाओंकी जागृतिका होना माना है।

क्या गर्भकी रचना वासना पर निर्भर नहीं है। अवश्य है। माताकी हृदयवासना तकका इतना गहरा गर्भ पर प्रभाव पड़ता है कि बच्चा कुछ का कुछ हो जाता है। फिर तिस पर यदि गर्भस्थ जीवकी अपनी वासनाका उदय हो तो उसका प्रभाव उससे भी प्रबल हो सकता है। फलतः गर्भ स्थापनासे जिस जिस वासनाका उदय होता है तदनुरूप शरीर विकसित होता है। सातवें मास तक गर्भकी आकृति पूर्ण हो जाती है।

उस गर्भ कालकी कौनसी वासनाएं जागृत होती हैं? यह वही वासनाएं होती हैं, जिनके कारण उसने पूर्व जन्मोंमें तिर्यग्योनियोंमें जाकर नरक यातनाएं भोगी थीं। अर्थात् तिर्यग्योनियों के क्रमिक रूप गर्भ दशामें प्रकट होते हैं।

कल्पनाप्रौढ़ कविके मस्तिष्कने गर्भ दशामें नाना प्रकारके विकासोंकी सत्ताको देखकर यही उत्प्रेक्षा की कि यह रूपान्तर अवश्य उसके पूर्व जन्मोंके वासनाओं का फल है।*

इस प्रकार सात्मिक शरीर विकासवाद का अपूर्व सिद्धान्त प्राचीन विद्वानोंकी अद्भुत बुद्धिका परिचय देता है।

जयदेव शर्मा

दूध

(पृष्ठ १४७ से सम्बद्ध)

[ले —प्रो० रमेशप्रसाद, बी. एस-सी.]

दूधमें किसी प्रकारकी अस्वाभाविक गंध होने से ही उसे खराब समझना चाहिये। यदि बू कुछ कुछ खट्टी सी जान पड़े तो समझना चाहिये कि औटते समय वह अवश्य फट जायगा।

दूधमें रोग जीवाणु—हम लोग चारों ओर से वायु तथा जलके रोग जीवाणुओं से घिरे हुए संकटमय जीवनको बिता रहे हैं या उनके साथ भीषण जीवन-संग्राम चला रहे हैं। ऐसे जीवाणु दो भागोंमें बांटे जा सकते हैं—जीवाणु (Bacteria) और आदि प्राणी (Protozoa)। कई प्रकारके जीवाणु और आदि प्राणी दूधमें बड़ी सुगमता के साथ तथा कई प्रकारसे प्रवेश करते हैं। दूधकी जीवाणु तथा आदि प्राणीसे रक्षा करना एक प्रकारसे असम्भव है। तथापि विशेष यत्न और चेष्टा करने से अनिष्टकर जीवाणु या उद्भिज्जाणुओंसे दूधकी रक्षा की जा सकती है। अनेक समय दूधके ही द्वारा हैज़ा, डिपथीरिया, यक्ष्मा, टाइफोयड ज्वर, चेचक आदि रोगोंके जीवाणु हमारे शरीरमें प्रवेश करते हैं।

जिस गौका दूध हम लोग व्यवहार करते हैं उसीके शरीरमें संक्रामक बीमारी रह सकती है, जिससे रोग जीवाणु दूधको भी दूषित कर सकते हैं। दूध बेचनेवाले दूधमें जो पानी मिलाते हैं वह भी खराब हो सकता है। उसमें रोगके कीड़े रह सकते हैं। तीसरे दूध दोहने-वाले व्यक्तिका हाथ यदि मैला हो तो उसके हाथ-में जो रोग जीवाणु रहते हैं वह दोहनेके समय दूधके साथ मिल जाते हैं। चौथे कच्चा दूध अधिक समय तक रख छोड़नेसे, वह वायुसे रोग जीवा-णुओंको ग्रहण कर सकता है। यह जीवाणु १०२° फारनहैटकी गरमीपर अच्छी तरह बढ़ सकते हैं, किन्तु यदि दूधकी गरमी ४५° या उससे कम हो तो वह नहीं बढ़ सकते। इसीलिए दूध दोह कर यदि ठण्डे स्थानमें रख दिया जाय तो जल्दी खराब नहीं होता।

दूधकी रक्षा—दूध जिसमें आसानीसे खराब न हो इस लिए उसमें बोरिक एसिड, फरमेलिन, विनिगर (सिरका), सालिसिलिक एसिड (Salicylic acid) आदि डालते हैं। इनके द्वारा दूधमेंके जीवाणु मर जाते हैं। "फूटा हुआ सोहागा" यदि थोड़ा सा दूधमें डाल दिया जाय तो दूध जल्दी खराब नहीं होता। किन्तु यह सब पदार्थ मनुष्यके स्वास्थ्य, विशेषतः शिशुओंके स्वास्थ्यके लिए अनिष्ट कर हैं। किसी बोतलको रेक्टीफाइड स्पिरिट या व्हिस्कीसे धोकर यदि उसमें दूध रखा जाय तो वह अपेक्षा कृत अधिक समय तक अविकृत अवस्थामें रहता है। आज कल थोड़ेसे मूल्यमें "स्टिरिलाइजर" नामक एक यन्त्र मिलता है, जिसमें दूधको औटा लेनेसे दूध मेंके जीवाणु मर जाते हैं। कई बोतलोंमें दूध भर कर उनको गले तक पानीमें डुबाकर

---

* तत्र लब्ध स्मृति दैवात् कर्म जन्म शतोद्भवम्।
स्मरन्दीर्घं मनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते॥

एक बर्तनमें रख दो और प्रायः ४५ मिनट या एक घंटे तक उसे खौला कर यदि डाट अच्छी तरह से बन्द कर दो तो बहुत दिन तक दूध अच्छा रह सकता है। बर्तनमें बोतलोंको रखकर तब पानीको खौलाइये अन्यथा खौलते हुए पानीमें बोतलोंको रखनेसे उनके फूट जानेका डर रहता है। बोतलमें दूध रख कर यदि उसे बरफमें रखदें तो दूध बहुत दिन तक अच्छा रहेगा। दूधमें एक दो बताशे डाल देनेसे भी दूध नष्ट नहीं होता। एक दो बून्द उत्तम सरसोंका तेल दूधमें डाल देने से वह कुछ समय तक बिगड़ता नहीं है। जहां वायु खूब आती जाती हो ऐसे ही शीतल स्थानमें दूध रखना चाहिये। दूधके निकट अन्य किसी खाद्य-द्रव्यका रखना ठीक नहीं है। पात्रको अच्छी तरहसे धोकर और आगपर सुखा कर दूध रखना चाहिये, जिससे उसमें विकृत दूधके कण न लगे रहें।

रोगी का पथ्य—बीमारीके समयमें मनुष्यका प्रधान भोजन दूध ही है। मसूरकी दालके रसको छोड़कर इसके समान जल्दी पचनेवाला और पुष्टिकारक पथ्य और कोई नहीं है। रोगीके क्षीण शरीरकी क्षति पूर्ण करनेमें दूध अन्यान्य पदार्थों से बहुत अच्छा है। प्रबल उदरामय आदि परिपाक-यन्त्र सम्बन्धी कई बीमारियोंमें दूधका नहीं व्यवहार किया जा सकता; किन्तु दूधसे मक्खन और छेना निकाल लेने पर जो अवशिष्ट रहता है अर्थात् तोड़ (whey) वह पथ्य है। जटिल टाइफोयड फीवर आदि बीमारियोंमें भी दूध का जलीय अंश मनुष्य व्यवहार कर सकता है। पाकस्थलीके प्रदाहमें या क्षत आदि बीमारियोंमें इसकी अपेक्षा कोई अच्छा पथ्य नहीं हो सकता। रक्तामाशय आदि आंतकी पीड़ामें यह केवल पथ्य ही नहीं, किन्तु दवाका भी काम करता है। अर्शमें मक्खन दवा और पथ्य दोनोंका काम करता है। दूधमें बराबर परिमाणमें पानी मिलाकर औटानेके बाद जब केवल आधा हिस्सा अर्थात् जितना दूध था उतना ही बच रहे तो उसे उतार कर किसी भी बीमारीमें दे सकते हैं। उससे कुछ हानि नहीं होती। दूधका सब बीमारियोंमें किसी न किसी रूपमें व्यवहार कर सकते हैं। आजकल पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्री डाक्टर पथ्य रूपमें मुर्गीके बच्चेका यूष या गोमांसका रस (Beef Tea) आदि पदार्थ देनेके पक्षपाती हैं; किन्तु पथ्यके हिसाबसे उनका कुछ मूल्य नहीं। उनसे सामयिक उत्तेजनाके अतिरिक्त शरीर पोषण या शरीर-क्षय-निवारण कुछ भी नहीं होता। वरन् उनमें यूरिक एसिड (uric acid) के होनेसे किसी किसी समय अपकार भी होता है।

अमेरिकाके मेडिकेल एसोसियेशनने मांसके यूषको पथ्य रूपमें देनेका घोर विरोध किया है। यहांके पाश्चात्य मतावलम्बी डाक्टरोंसे भी अनुरोध है कि वह ऐसी ऐसी वस्तुओंको पथ्य रूपमें न दिया करें।

गोदोहन—हमारे देशमें साधारणतः सुबह और शामको गौ दोहते हैं। अन्दाज़न १२ घंटेके बाद हम लोग यह काम करते हैं। इसका समय ठीक रखना आवश्यक है। प्रतिदिन निर्दिष्ट समयपर गौको दोहना चाहिये; इससे दूध भी अधिक मिलता है और गौका शरीर भी नीरोग रहता है। दोहनेवाला मनुष्य जहां तक सम्भव हो एक ही रहना चाहिये। बारबार मनुष्य बदलते रहनेसे साधारणतः गाय कम दूध देती है, क्योंकि नये मनुष्यके अनभ्यस्त हाथके स्पर्शसे गायको संकोच मालूम होता है। पहले समयमें घरकी लड़कियां गौ दोहा करती थीं; इसीलिए उन्हें दुहिता कहा गया है। पुरुषकी अपेक्षा औरत इस कामको अच्छी तरह कर सकती है। गौ जिसे पसन्द नहीं करती या जिससे उसे डर लगता है उस मनुष्यको कदापि दूध नहीं दोहने देना चाहिये। वृष्टिके समयमें गौको घरमें ही दोहना चाहिये; बाहर दोहनेसे पानी पड़नेके कारण वह अपने शरीरको सिकोड़ लेती है, जिससे दूध "खिंच जाता" है या "उठ

जाता" है। घरमें ही दूध दोहना अच्छा है। नजदीकमें कुत्ता या बिड़ालको दूध दोहते समय नहीं रहने देना चाहिये, जल्दी किन्तु धीरताके साथ दूध दोहना चाहिये। दोहनेवाले मनुष्यको सहिष्णु और शान्त स्वभावका होना उचित है, क्योंकि उग्र स्वभाववाले मनुष्यसे दोहन-कार्य्य ठीक ठीक नहीं हो सकता। दोहनेके पहले बच्छेको दूध पीने देना और उसके बाद दूध दोहना चाहिये। गौशाला का फर्श पक्का और ढालुवां होना आवश्यक है; नहीं तो गौका स्वास्थ्य और दूध खराब हो जाता है। यदि गौके स्तनमें पीड़ा हो तो कपूरके तेलसे (camphor oil) मालिश करनेसे अच्छा हो जाता है।

दूधके गुण—अब तक आधुनिक वैज्ञानिकोंके मतानुसार दूधके विषयमें आलोचना हुई है। उपसंहारमें आयुर्वेदोक्त दूधके गुणोंकी चर्चा करूंगा। आयुर्वेदके आचार्योंने दूध और दूधसे पैदा होनेवाले पदार्थोंका स्थान खाद्य-द्रव्योंमें सर्व श्रेष्ठ रखा है। आयुर्वेदके अनुसार दूधके साधारण गुण यह हैं:—

दुग्धं सुमधुरं स्निग्धं वातपित्तहरं सरम्।
सद्यः शुक्रकरं शीतं सात्म्यं सर्व्व शरीरिणाम्॥
जीवनं बृंहणं बल्यं मेध्यं वाजीकरं परम्।
वयः स्थापन-मायुर्ष्यं सन्धिकारि रसायनम्॥
विवेकवान्ति-वस्तीनां तुल्यमोजो विवर्धनम्।
जीर्णज्वरे मनोवेगे शोष मूर्च्छा भ्रमेषुच॥
ग्रहण्यां पाण्डुरोगे च दाहे तृषि हृदामये।
शूलोदावर्त्त गुल्मेषु वस्ति रोगे गुदांकुरे॥
रक्तपित्तोऽति सारे च योनिरोगे श्रमे क्लमे।
गर्भस्रावे च सततं हितं मुनिवर्कैः स्मृतम्॥
बाल वृद्ध क्षत क्षीणा क्षुद्व्य वाय कृशाश्चये।
तेभ्यः सदातिशयितं हितमेतदुदाहृतम्॥

अर्थात् दूध मधुर, स्निग्ध, वातपित्त नाशक, सद्य शुक्रकर, शीतल, सब प्राणियोंके लिए हितकर, जीवनी शक्ति-वर्धक, पुष्टिकारक, बलकारक, मेधावर्धक, अतिशय वीर्य बर्धक, वयस्थापक है और योजनकारी अर्थात् कटे हुए हाथ, छिन्न मांस चरम, आदिको जोड़नेमें सहायता करता है; जरा व्याधि-नाशक है। वमन, विरेचन, वस्तिक्रियाके उपयोगी और ओज-वर्धक है। यह जीर्णज्वर, मानसिक पीड़ा, यक्ष्मा, मूर्च्छा, सिरका घूमना, ग्रहणी पाण्डु, दाह, तृष्णा, हृद्रोग, शूल, उदावर्त्त (आंतकी पीड़ा) गुल्म, वस्तिरोग, अर्श, रक्त-पित्त, अतिसार, स्त्री-जननेन्द्रियके रोग, श्रम, क्लान्ति, गर्भ स्राव आदि रोगोंमें हितकर कहा गया है। बालक वृद्ध, क्षत और क्षीण रोगियोंके लिए; भूख या अधिक इन्द्रिय-परिचालन करनेवाले दुबले मनुष्योंके लिए दूध बड़ा ही लाभदायक है। उद्धृत श्लोकसे स्पष्ट है कि पहलेके लोग दूधको अशेष-गुण-सम्पन्न समझते थे। सब प्रकारके रोगोंमें—यहां तक कि अतिसार, उदरामय आदि रोगोंमें भी उसे हितकर पथ्य बतलाया है। ऐसा कोई रोग नहीं जिसमें वह दूध देनेमें हिचकते थे। उन्हें यह विश्वास नहीं था कि दूधकी अपेक्षा कोई श्रेष्ठ तर पथ्य हो सकता है। इस सभ्यताके युगमें भी दूधसे श्रेष्ठ तर पथ्यका आविष्कार नहीं हुआ है। यह तो सब प्रकारके दूधोंका गुण हुआ अब भिन्न भिन्न प्रकारके दूधोंका गुण लिखे जाते हैं।

स्त्रीके दूधका गुण और उपयोगिता

नार्यालघु पयः शीतं दीपनं वातपित्त जित्।
चक्षु शूलाभिघातघ्नं नस्याश्चोतनयोर्वरम्॥

स्त्रीका दूध लघु, शीतल, परिपाकशक्ति-वर्धक, वायुपित्त, चक्षुशूल और अभिघात रोगनाशक होता है। यह नस्य और आश्चोतन क्रियाके लिए उपयोगी होता है।

गौके दूधका गुण और प्रयोग

गव्यं दुग्धं विशेषेण मधुरं रस-पाकयोः।
शीतलं स्तन्य कृत्स्निग्धं वातपित्तास्रनाशनम्॥
दोष धातु मलस्रोतः किञ्चित् क्लेदकरं गुरु।

अर्थात् गायका दूध मधुर रस, मधुर विपाक, शीतल, स्तन्य कारक, और स्निग्ध है और दोषधातु, मल और स्रोत समूहोंके लिए कुछ क्लेदकारक और गुरु है। यह वायु, रक्त,

पित्त, जरा और सब रोगोंको शान्ति करनेवाला है। गो दुग्धको ऋषियोंने जरा और सब रोगोंका शान्तिकारक लिखा है। आधुनिक पाश्चात्य जीवाणु तत्ववित् विद्वानोंने भी गौके दूध और दहीके सेवनसे जरा निवारित हो सकती है, ऐसा कहा है। क्योंकि दहीका ल्याक्टिक ऐसिड-ब्यासिलि नामक उद्भिदाणु, मनुष्यके शरीरकी आंतके भीतरके जरा उत्पादक कीटाणुओंको नष्ट कर देता है। बलगेरियावासी पृथ्वीके सब देशोंके मनुष्योंसे दीर्घजीवी होते हैं, क्योंकि वह नियमित रूपसे दहीका सेवन करते हैं। सौ वर्ष तक वह युवा ही बने रहते हैं।

भैंसका दूध

माहिषं मधुरं गव्यात् स्निग्धं शुक्रकरं गुरु।
निद्राकर मभिष्यन्दि क्षुधाधिक्यकरं हिमम्॥

भैंसका दूध गो दुग्धको अपेक्षा अधिक मधुर, स्निग्ध, शुक्रकारक, गुरु, निद्राकारक, अभिष्यन्दी (रस-निर्गतकारी) क्षुधावर्धक तथा शीत प्रकृतिवाला होता है।

बकरीके दूधका गुण और व्यवहार

छागं कषाय मधुरं शीतं ग्राहि तथा लघु।
रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकास ज्वरापहम्॥
अजाना मल्पकायत्वात् कटुतिक्तादि सेवनात्।
स्तोकाम्बुपानाद्व्यायामात् सर्वरोगापहं विदुः॥

बकरीके दूध के गुण और व्यवहारके विषयमें प्राच्य और पाश्चात्य चिकित्सकोंमें कोई मतभेद नहीं देखा जाता। यक्ष्मा रोगमें बकरीका दूध सब जगह पथ्यके रूपमें व्यवहृत होता है। रक्तामाशय और आंत्रक्षय (Intestinal Tuberculosis) रोगोंमें भी यह व्यवहृत होता है। संसारमें केवल बकरी ही यक्ष्मासे बची हुई है, यह कभी इस रोगसे पीड़ित नहीं होती। यक्ष्मा जीवाणु इसके शरीरमें कोई अनिष्ट नहीं कर सकते। वरन् इसके शरीरके निकले हुए पसीनेकी बू और इसके दूधसे वह मर जाते हैं। हमारे यहांके वैद्योंने यक्ष्मा रोगसे पीड़ित व्यक्तिके घरमें बकरी बांध रखनेके लिए कहा है।

गदहीके दूधका गुण

श्वासवातहरं साम्लं लवणं रुचिदीप्तिकृत्।
कफ कास हरं बालरोगघ्नं गार्द्दभी पयः॥

गदहीके दूधके गुणके विषयमें भी प्राच्य और पाश्चात्य चिकित्सकोंकी एक ही राय है। शिशुओंके लिए गदही का दूध विशेष हितकर है—इसे सभी मानते हैं। पशुओंमें जैसे बकरीको यक्ष्मा नहीं होता, उसी प्रकार गदहीको चेचक नहीं होती।

मक्खन निकाले हुए दूधका गुण

क्षीरं गव्यमथाजं वा कोष्णं दंडाहतं पिबेत्।
लघु वृष्यं ज्वर हरं वात पित्त-कफापहम्॥

गायके दोहनेके समय दूध स्वभावतः गरम रहता है; उसे धारोष्ण दूध कहते हैं। ऐसा दूध बलकारक, लघु, शीतल, अमृत सदृश, अग्निदीपक और वायु, पित्त, कफनाशक होता है। किन्तु ठंडा हो जानेपर उसका व्यवहार न करना चाहिये।

धारोष्णं गोपयो बल्यं लघुशीतं सुधासमम्।
दीपनञ्च त्रिदोषघ्नं तद्धारा शिशिरं त्यजेत्॥

कौन दूध किस अवस्थामें लाभदायक होता है इसे भी ऋषियोंने बताया है :—

धारोष्णं शस्यते गव्यं धारा शीतन्तु माहिषं।
शृतोष्णं आविकं पथ्यं शृतशीतमजापयः॥

अर्थात् गोदुग्ध धारोष्ण अवस्थामें और भैंसका दूध दोहनेके बाद ठंडा होने पर, भेड़का दूध उबालने पर गरम अवस्थामें और बकरीका दूध उबालनेके बाद ठंडा होनेपर लाभदायक होता है।

अर्धोदकं क्षीर शिष्टमामाल्लघुतरं पयः।

अर्थात् आधा पानी और आधा दूध मिलाकर औटानेके बाद जब आधा बाकी रह जाय तो वह दूध सर्वापेक्षा लघुपाक होता है।

साधारणतः हम लोग दूधको औटाकर व्यवहार करते हैं; इससे दो लाभ होते हैं। एक तो दूधमें जो रोग जीवाणु रहते हैं वह नष्ट हो जाते हैं दूसरे कच्चे दूधकी अपेक्षा औटाया हुआ दूध जल्दी पचता

है। दूधके पचानेके लिए हमारे पाचक रसमें रेनेट (Renet) नामक एक पदार्थ है। कच्चा दूध रेनेटके संयोगसे दहीके समान जम जाता है, किन्तु सुसिद्ध दूध उसके प्रभावसे धुनी हुई रुईके रूपमें हो जाता है और उसका प्रत्येक कण पाचक रसके साथ मिल जाता है तथा पच जाता है। इसी लिए औटाया हुआ दूध जल्दी पचता है। अजीर्ण रोगी कच्चा दूध कभी पचा नहीं सकता।

अद्भुत चित्रकारी

[ले०—श्री० "चित्रकार"]

एक ही चित्रसे दो भिन्न भिन्न वस्तुओंका ज्ञान कराना चित्रकारीमें बड़े कौशलका काम समझा जाता है। वैज्ञानिक दृष्टिसे भी ऐसे चित्र बनाये जा सकते हैं। यहां हम बर्लिन निवासी गेलियट (Galiot) नामी सज्जनके बनाये कुछ चित्रोंके नमूने देते हैं। भिन्न भिन्न उद्योगोंमें काम आनेवाले औज़ारोंको चित्रकारने इस भांति

चित्र ६१—मेवाफरोश

चित्र ६२—मोची

दिखलाया है कि वह सब मिलकर आदमीसे दिखलाई देते हैं।

मेवा फरोशके चित्रको लीजिये। उसके सिर-को कुम्हड़ेसे, शरीरको टोकरियोंसे और नाक और कालरको फलोंसे प्रकट किया है। इसी प्रकार ध्यानसे अन्य चित्रोंको देख कर मनोरञ्जनकी सामग्री उपस्थित हो सकती हैं।

विज्ञानोंका सम्राट्

भौतिकशास्त्र

ह संसार शब्द, रंग, गति, ताप और बलके नाना रूपोंकी नाट्यशाला है। इन्हीं आश्चर्य-मय वस्तुओंसे खेलते हुए हमारे जीवन समाप्त होजाते हैं। उनके वास्तविक रहस्य जान लेनेकी उत्कट इच्छा मनुष्यको अनन्त कालसे बनी रही है। आजकल भी तत्संबंधी प्रश्नोंका उत्तर प्राप्त करनेके लिए अनेक वैज्ञानिक प्रयत्नशील हैं। जिस विज्ञानका यह प्रतिपाद्य विषय है उसीको भौतिक शास्त्र कहते हैं। इसीका दूसरा नाम प्राकृतिक विज्ञान है।

भौतिक शास्त्र प्रकृतिके समस्त पदार्थों और शक्तियोंका प्रतिपादन करता है। अतएव मनो विज्ञान, तर्क शास्त्र आदि कुछ शास्त्रोंको छोड़, जिनका सम्बन्ध मन से है, हम कह सकते हैं कि भौतिक शास्त्र ही एक मात्र विज्ञान है।

भूगर्भ, ज्योतिष, रसायन आदि शास्त्र भौतिक शास्त्रके अङ्गोपाङ्ग हैं। अपने प्रतिपाद्य विषयोंको भौतिक शास्त्रके नियमोंके अनुकूल और अन्तर्गत बतलानेमें

जितनी सफलता इनको प्राप्त होती है, उतनी ही उन्नत अवस्था उनकी समझी जाती है।

भौतिक शास्त्र तथा अन्य विज्ञानोंमें यह भेद है कि अन्य विज्ञान वर्णनात्मक हैं। वह वस्तु विशेषोंको ले लेते हैं और यथासम्भव उनका पूरा वर्णन करते हैं। भौतिक शास्त्रका संबन्ध भी यद्यपि सभी वस्तुओंसे है, जैसे मेज़, कुर्सी, हवा आदि, तथापि वह एक अत्यन्त सूक्ष्म (abstract) विज्ञान है। भौतिक शास्त्र एक खास कुर्सी या एक विशेष प्रकारकी वायुको लेकर उसका प्रतिपादन नहीं करता। वह तो व्यापक रूपसे पदार्थका निरूपण करता है। उसे इस बातकी परवाह नहीं कि पदार्थ पृथ्वीपर है अथवा किसी ग्रहपर। इसी प्रकार वह गतिके नियम बतला देता है, फिर चाहे गति घोड़ेकी हो चाहे गधेकी, रेलकी हो चाहे किसी ग्रहकी; जो नियम वह बतला देता है वह सर्वत्र लागू होंगे।
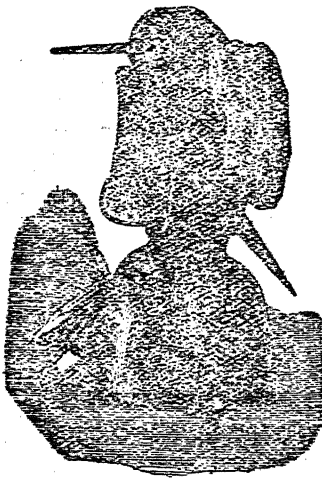
चित्र ६३—कीमियागर
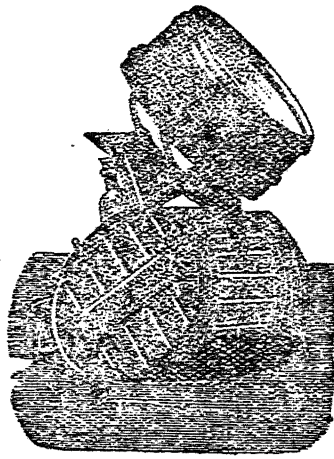
चित्र ६४—शराबकश

यद्यपि भौतिक शास्त्र सभी पदार्थों और गतियोंसे सम्बन्ध रखता है, तथापि सुविधाकी दृष्टिसे पदार्थ और गतिकी कक्षाएं बना ली जाती हैं और उनका प्रतिपादन अलग अलग विज्ञानोंको सौंप दिया जाता है। उदाहरणके लिए जीवोंकी गतियों और घटक द्रव्योंको लीजिये। इनकी चर्चा शरीर शास्त्रके हवाले कर दी गयी है। यहां यह न समझ लेना चाहिये कि भौतिक शास्त्रके नियमोंका पालन शरीर विज्ञानमें नहीं होता; किन्तु जीवोंमें कुछ विशेषताएं भी पाई जाती हैं जो अन्यत्र निर्जीव द्रव्यमें नहीं पायी जातीं। इसी लिए भौतिक शास्त्रके नियम व्यापक हैं, जीव और निर्जीव सभी पदार्थोंमें लागू हैं, परन्तु अन्य विज्ञानोंके नियम संकुचित हैं।

भौतिक शास्त्र प्राचीन तम विज्ञानोंमें से है। इसका बीज भारतमें बोया गया, इसका अंकुर यूनान और मिश्रमें निकला, अरबमें यह पला और यूरोपमें जाकर यह फला। अब फिर भारत में यह पहुंचा है; यहीं उसका सर्वोत्तम पुष्प खिलकर समस्त संसारको सौरभित कर देगा। कणाद, गौतम और पतंजलिने अनेक गवेषणाएं इस विषयमें की थीं, जिनका उल्लेख एक अलग लेखमें किया जायगा। यहां तो केवल पाश्चात्य देशोंमें इसकी जिस प्रकार प्रगति हुई उसपर एक दृष्टिपात करना अभीष्ट है।

यूनानके बड़ेबड़े विचारकोंने प्रकृतिके नियमोंपर कल्पना द्वारा विचार करना आरम्भ किया था। यह लोग वैज्ञानिक न थे, वरन् दार्शनिक थे। उनका अभीष्ट प्राकृतिक घटनाओंका ब्यौरेवार विवेचन करना नहीं था, न उन्हें यह लालसा थी कि उनसे उद्योग धंधोंमें लाभ उठावें। वह तो कल्पना द्वारा, बिना परीक्षण और निरीक्षण किये, आसनारूढ़ रहते हुए, व्यापक तथ्योंको और अस्तित्वकी समस्याओं तथा मनुष्यके अन्तिम परिणाम पर इन तथ्योंके प्रभावको जान लेनेका प्रयत्न किया करते थे। संसारको देखकर वह वस्तुओंके परम तत्वके दर्शन करनेकी लालसा रखते थे अतएव उनके आदर्श और कर्म आधुनिक वैज्ञानिकोंसे बिल्कुल भिन्न थे। वैज्ञानिक प्रकृतिका

निरीक्षण करता है और यथा सम्भव प्राकृतिक घटनाओंका प्रयोगशालामें अनुकरण कर उनकी पूरी पूरी जांच करता है। जिन जिन बातोंका निर्णय प्रयोगों और परीक्षणोंसे हो सकता है, उनका निर्णय कल्पनासे नहीं किया जाता। एक उदाहरण ले लीजिये। अरस्तूने एक बार यह सिद्ध कर दिया कि बर्तन चाहे खाली हो और चाहे राखसे भरा हो उसमें हर दशामें उतना ही पानी अमायगा। इस परिणामकी परीक्षा यदि वह चाहते तो १ मिनटमें कर सकते थे, पर करते क्यों ?

पाश्चात्य भौतिक विज्ञानकी नींव आयोनियामें विक्रमादित्य से कई शताब्दी पहले पड़ी। उस समयका प्रमुख विद्वान थेल्स था, जिसका उसूल था "अपनेको जानो"।

चित्र ६५—चित्रकार

चित्र ६६—शिकारी

इस सम्प्रदायके विद्वानोंने एक बड़े भारी तथ्यको खोज निकाला था—Ex nihil, nihil fit—अर्थात् न कुछसे कुछ नहीं बन सकता। यदि पदार्थका सर्वथा अभाव है तो सृष्टि नहीं हो सकती। थेल्स अथवा उसके पैरोकार इस सिद्धान्तको प्रमाणों द्वारा साबित नहीं कर सके थे। इसके प्रमाण तो उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें लार्ड केल्विन आदि विद्वानोंके उद्योग द्वारा प्राप्त हुए।
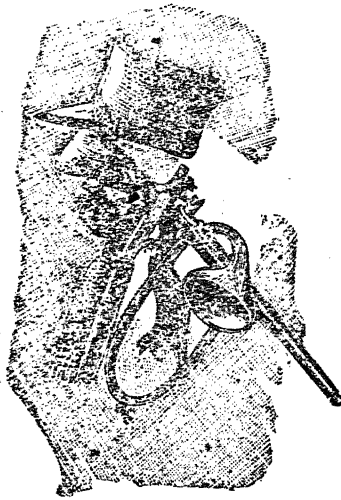
अतएव यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि भौतिक विज्ञान विषयक कल्पनाके युगके आरम्भमें ही एक ऐसे सिद्धान्तकी रचना हुई कि जिसके पूरे पूरे प्रमाण मिलनेके लिए २००० वर्ष पर्यन्त ठहरना पड़ा।

कुछ दिन बाद ही पाइथेगोरसका जन्म हुआ, जिनका मत था कि पृथ्वी गोल है। इनके पीछे एरिस्टारकस (Aristarchus) का जन्म तीसरी शताब्दी (विक्रमसे पूर्व) में हुआ। एरिस्टारकसने भी एक बड़े मारकेकी बात कही। उन्होंने बतलाया कि यद्यपि दिखाई उल्टी ही बात देती है और हमारी इन्द्रियां विपरीत साक्षी देती हैं तथापि पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा कर रही है। यह दोनों तथ्य ज्योतिष शास्त्रके हैं; परन्तु भौतिक शास्त्रमें भी इनका महत्व कुछ कम नहीं है। यदि एरिस्टार कसका मत उस समय मान लिया जाता तो विज्ञानका इतिहास ही पलट जाता। हमें सत्रह शताब्दी तक यह इन्तज़ार न करना पड़ता कि कौपरनिकस इन्हीं बातोंको फिर बतलायें, गैलिलियो उनका समर्थन करें, केपलर गृहगति सम्बंधी नियमोंका आविष्कार करें और न्यूटन उनसे वह गुरुत्वाकर्षणका नियम निकालें, जिसने भौतिक शास्त्रमें एक नये युगकी स्थापना करदी।

अभाग्यवश उनकी बातें उन आदमियों ने न मानीं जो यूनानके पतन और ईसाई मतके उदयके पश्चात् प्रमाण माने जाते थे। उस ज़मानेके विचारक भी कम प्रतिभाशाली और बुद्धिमान न थे, परन्तु अभाग्यवश कुछ घटनाएं ऐसी होती रहीं कि भौतिक विज्ञानकी उतनी ही तीव्र प्रगति न हुई जैसी आजकल हो रही है।

डिमोक्रिटस (Democritus) ने पश्चिममें परमाणुवादका प्रचार किया। कणादके परमाणुवादसे उन्होंने कितनी सहायता ली, यह कहना कठिन

है। परन्तु उनका यह मत था कि पदार्थ परमाणु-मय है और परमाणु परिमाण और रंगको छोड़कर सब बातोंमें एक से हैं। आधुनिक परमाणुवादसे यह बातें बहुत मिलती जुलती हैं। डिमोक्रिटसका मत था कि परमाणुओंमें भार नहीं होता। उनमें शक्ति होती है और शक्तिके आधिक्यसे ही भारका भास होता है। यह बात भी विद्युत्कण सिद्धान्तसे कितनी मिलती हैं। लाइबनिज (Leibnig) ने कई शताब्दी पीछे यह मत प्रकट किया कि पदार्थ "मोनेड" से बना हुआ है, जिनका मुख्य लक्षण शक्ति सम्पन्न होना है।

यूनानियोंमें सबसे बड़ा नाम अर्कमीदिसका है। यह सच्चा वैज्ञानिक और गणितज्ञ था। वह विक्रमसे ढाई शताब्दी पहले पैदा हुआ था। उन्होंने डांडीके नियमोंकी खोज की थी। वह प्रायः कहा करते थे कि यदि मुझे एक पर्याप्त लम्बाईकी डांडी और उसके टेकनेके लिए उचित स्थान मिल-जाय तो मैं पृथ्वीको उठा सकता हूं। इन्होंने उस "पेच" का आविष्कार किया जो उनके नामसे विख्यात है और जिसकी सहायतासे पानी चढ़ाया जा सकता है। इन्हींको गुरुत्व अथवा विशिष्ट गुरुत्वका नियम निकालनेका यश प्राप्त हुआ। इनके एक सम्बंधी राजा हियरो (Heiro) ने इन्हें एक मुकुट दिया और बिना मुकुटके तोड़े या गलाये यह जांच करनेकी आज्ञा दी कि सुनार उसमें कुछ मिला तो नहीं लाया।

जब अर्कमीदिस ७५ वर्षके थे रूमी लोगोंने साइरे क्यूज़का मुहासिरा किया। अर्कमीदिसने दर्पणों और तालोंकी सहायतासे रूमी जहाज़ों पर सूर्यकी किरणें एकत्रित करके डालीं और उनमें आग लगा दी। जब नगरपर रूमियोंने धावा किया तो विचारे वृद्ध वैज्ञानिकको भी एक सैनिकने मार दिया; यद्यपि रूमी सेना नायकने पहलेसे ही आज्ञा दे दी थी कि ऐसा वयोवृद्ध और प्रतिभा-शाली विद्वान मारा न जाय।

अर्कमीदिसके बाद शताब्दियों तक कोई उल्लेख योग्य घटना नहीं हुई। मिथ्या विश्वास और अधिकारसे ही लोकमत प्रभावित होता रहा, विज्ञानकी बात कोई पूछता न था। यूनानी ज्योतिषियोंके सिद्धान्तोंकी उपेक्षा की गयी और राजकीय ज्योतिषी कौपरनिकसके समय तक पुराने ढर्रेपर चलते गये। कोपरनिकसके बाद गैलिलियोने नये ढंगसे काम करना शिरू किया। उन्होंने दूर-बीन बनायी और सूर्य-चिन्ह, बृहस्पतिके चार उपग्रह, शुक्रकी कलाएं आदि अनेक बातें देखीं और अन्तमें ईक्वीज़ीशनकी कृपासे "कृष्ण जन्म भूमि" की यातनाएं सहीं। ज्योतिर्षीय आविष्कारके अतिरिक्त गैलिलियोने भौतिक विज्ञानकी भी बहुत उन्नति की।

ज्योतिषीय आविष्कार तो उनकी मानसिक स्वतंत्रता, कार्य तत्परता, और दूरबीनकी उपयोगिताके परिणाम थे। परन्तु भौतिक गवेषणा उनकी प्रायोगिक और गणित विषयक योग्यताका फलस्वरूप थी। इसीसे वह गति-शास्त्रके जन्म दाता और उच्चकोटिके भौतिक शास्त्री माने जाते हैं।

जब गैलिलियो केवल १८ वर्षके थे तब उन्होंने पिसाके गिरजा घरमें लटकते हुए लम्पको झूलते देखा और झट अपनी नब्ज़ पर हाथ रख कर झोटोंका समय निकाल डाला। उन्होंने यह नतीजा निकाला कि झोटा छोटा हो या बड़ा सदैव उतने ही समयमें पूरा होता है। इसी नियमका उपयोग कर उन्होंने एक घड़ी भी बनाई थी। चौबीस वर्षकी उम्रमें गैलिलियोने "ठोसोंके गुरुत्व केन्द्र" पर एक पुस्तक लिख डाली, जिस कारण उन्हें "अर्कमीदिस उज़्ज़मान्" की उपाधि और पिसा विश्वविद्यालयमें अध्यापकका पद मिल गया। वहीं उन्होंने गति शास्त्र (Dynamics) की नींव डाली।

गैलिलियोको प्रयोगोंका महत्व भली भांति मालूम था। वह ग्रन्थोंको अथवा प्राचीनोंके वाक्यों-

को प्रमाण नहीं मानते थे। उनके समकालीन लोग अरस्तूको परम प्रमाण मानते थे। ईसाई मतको भी बहुत विरोध करते रहनेके बाद अरस्तूको प्रमाण मानना पड़ा था। परन्तु गैलिलियो इस बातको माननेको तैयार न थे। अरस्तू सभी बातोंमें रायजनी कर देते थे, परन्तु प्रयोगों द्वारा सत्यासत्यकी जांच करना उनकी शानके खिलाफ़ था। परन्तु गैलिलियो नये फैशनके वैज्ञानिक थे। वह प्रकृतिसे प्रयोग रूपी प्रश्न कर सत्यासत्यका निर्णय कराना एक उत्तम और श्रेष्ठ मार्ग समझते थे।

उदाहरणके लिए एक बात यहां लिखी जाती है, अरस्तूने विना जांच किये यह नियम बतला दिया था कि वस्तुएं अपने भारके समानुपातिक वेगसे पृथ्वीकी ओर गिरती हैं। भारी चीज़ जल्दी और हल्की धीरे धीरे गिरती हैं। यदि दो गोले एक १० सेरका और दूसरा ५ सेरका लिया जाय तो १० सेरका गोला ५ सेरके गोलेसे दुगने वेगसे गिरेगा। गैलिलियोने कहा कि हम इस नियमको माननेके लिए तय्यार नहीं हैं। इसकी परीक्षा करनी चाहिये। पिसामें झुकी हुई गुम्बद है। उसीके ऊपरी खन तक चढ़कर गैलिलियोने गैंदोंको गिराया। हजारों आदमियोंने देखा कि सभी गेंद एक साथ ही पृथ्वीपर जा गिरीं। सबको समान समय लगा। इस एक प्रयोगसे ही गैलिलियोने अनेक बैरी बना लिये।

परन्तु क्या गैलिलियोकी बातें सोलहों आना सत्य हैं? यदि एक रुपया और एक पर ऊपरसे छोड़े जायँ तो रुपया बहुत जल्दी और पर आहिस्ता आहिस्ता क्यों गिरता है? इसका कारण वायुका विरोध है। यदि एक कांचकी नली ली जाय और उसमें रुपया तथा पर डालकर वायु पम्प द्वारा निकाल ली जाय तो आप देखेंगे कि नली के अन्दर दोनों समान वेगसे गिरते हैं।

अरिस्टोटलका मत था कि कुछ पदार्थोंमें धनात्मक भार होता है और कुछमें ऋणात्मक। यह बात हमारे नित्यके अनुभवके नितान्त प्रतिकूल है।

गति शास्त्रका आरम्भ गैलिलियोने ही किया। अर्कमीदिसने स्थिति शास्त्रकी स्थापना की थी, उनके बाद गैलिलियोका नम्बर आया। कार्य-कारणका पूरापूरा सम्बंध जान लेनेकी उपयोगिता गैलिलियोने भली भांति समझ ली थी। इसीसे उन्हें गति पैदा करनेवाली चीज़ शक्तिका खयाल पैदा हुआ था। इन्हींने गतिके नियमोंका स्थूल रूपमें आविष्कार किया था, यद्यपि न्यूटनने बादमें इनका फिरसे आविष्कार किया और उन्हें परिष्कृत रूप दिया।

फ्रांसिस बेकनने कोई आविष्कार तो नहीं किये परन्तु उन्होंने यह बतला दिया कि वैज्ञानिकोंका कैसा लक्ष्य और कैसी कार्य प्रणाली होनी चाहिये। इनके बाद न्यूटनका नाम आता है जो बड़े प्रतिभाशाली भौतिक शास्त्री ही नहीं बल्कि ज्योतिषी भी थे। उन्होंने गुरुत्वाकर्षणका नियम निकाला, प्रकाशका सफेद चोला फाड़ उसके असली सातों रङ्गोंको प्रकट कर दिया और अन्य अनेक आविष्कार किये जिनका यहां गिनाना असम्भव है। न्यूटनने "शक्ति" के विचारको और भी मांजा और स्पष्ट कर दिया। उन्होंने कई स्थानोंपर अपने ग्रन्थोंमें ऐसे वाक्य लिखे हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि शक्तिके रूप बदल सकते हैं; परन्तु इसका विनाश नहीं हो सकता।

काण्ट महोदयका कहना था कि किसी विज्ञानकी प्रौढावस्थाका चिन्ह उसमें गणितका प्रयोग होना है। यदि इस कसौटी पर जांच की जाय तो आधुनिक भौतिक विज्ञान बड़ी उन्नत अवस्थामें है। आजकलके बड़े बड़े भौतिक शास्त्री गणितके उद्भट विद्वान हैं, भौतिक शास्त्रकी पुस्तकें भी गणित से भरी पड़ी हैं। इस बातसे कुछ लोगोंको यह भय होता जारहा है कि भौतिक विज्ञानका असली और स्पष्ट ज्ञान हुए बिना ही गणितके सूत्रोंसे काम निकालने की जो विद्यार्थियोंको टेव हो जायगी तो भौतिक

शास्त्रके प्रचार और प्रसारको भविष्यमें बड़ा धक्का पहुंचेगा। अतएव जैसे आजकलके नगर निवासियोंको प्रकृतिकी शरण लेनेकी आवश्यकता है, उससे कहीं ज्यादा गणितमय भौतिक विज्ञानके विद्यार्थियोंको है।

इसमें सन्देह नहीं है कि आजकल भी बड़े महत्वका प्रायोगिक काम हो रहा है। क्लार्क-मेक्सवेलने गणित द्वारा जिस प्रकाश-दवाव का होना सम्भव बतलाया था, वह अब प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा दिखाया जा सकता है। केवेरिडिश प्रयोगशालामें भी द्रव्यकी प्रकृति पर बड़े महत्वका प्रयोगात्मक काम हो रहा है।

भविष्यमें भौतिक शास्त्र उस सामर्थ्यके भण्डारकी कुञ्जी ढूंढ निकालनेका प्रयत्न करेगा, जिसका रेडियमके आविष्कारसे, परमाणुओंके अन्दर होना सम्भव जान पड़ता है। जब परमाणुको तोड़ कर उसके भीतरकी सामर्थ्यको निकाल कर काम ला सकेंगे, तब पृथ्वीको मीलों तक खोद खोद कर लाखों करोड़ों मन कोयला निकालना और सैकड़ों हजारों मीलतक लादकर लेजाना न पड़ेगा। उस कालमें तो केवल मंत्र द्वारा ही लाखों मन कोयले की शक्ति पदार्थके एक सूक्ष्म कणसे प्राप्त हो जायगी।

—मनोहर लाल

संक्रामक रोग तथा जीवाणु

पाठको, आप जानते होंगे कि चेचक, हैज़ा, प्लेग, आदि बहुत सी बीमारियां संक्रामक हैं, अर्थात् एक शरीरसे दूसरेमें पहुंच जाती हैं। इनमेंसे कुछ ऐसे भी हैं, जैसे खुजली, जो छूनेसे ही लग जाती हैं; इसी लिए लोग इन सबको 'छूत' की बीमारियां कहते हैं।

छूत क्या है?

विद्वानोंने पता लगाया है कि छूतकी बीमारियां ऐसे नन्हे नन्हे जीवोंसे पैदा होती हैं, जिनको हम ख़ाली आंखसे नहीं देख सकते। अणु-वीक्षण-यन्त्र (खुर्दवीन) से वह देखे और पहिचाने जा सकते हैं। पर इनमेंसे बाज़ इतने बड़े भी होते हैं, कि वह ख़ाली आंख से भी दिखाई दे सकते हैं। आपने देखा होगा कि घरमें दाल, तरकारी आदि रखे रहनेपर कुछ समयमें उनपर फफूंदन लग जाती है और बड़ी दुर्गंध निकलती है। यह फफूंदन भी उन्हीं जीवोंकी जातिकी है, जो हमारे शरीरमें घुसकर तरह तरहकी बीमारियां पैदा करते हैं?

जीवाणु कहांसे आते हैं?

आपने देखा होगा कि हमारी बड़ी बूढ़ियां अचारकी हांडियोंमें झूठे हाथ नहीं लगाने देतीं। अगर कभी झूठे हाथ लग भी जाते हैं तो अचारमें फफूंदन लग जाती है। असलमें फफूँदन एक नन्हा सा पौदा है, जिसके बहुत छोटे छोटे बीज जो आंखसे नहीं दिखाई देते, हवामें उड़ते फिरते हैं। जहां कहीं उनको ऐसी सड़ने गलनेवाली चीज़ मिलती है, जैसे कि दाल वा मांस तो उनपर जम कर वह तुरन्त उग आते हैं और उनको गला देते हैं। इसी तरह अचारकी हांडीमें अगर झूठे हाथ लग जाते हैं तो उससे कोई सड़नेवाली चीज़ पहुँचनेसे उसमें भी फफूंदन पड़ जाती है।

रोगके जीवाणु भी ऐसे ही हैं

यह कहीं न कहीं मौजूद रहते हैं और हमारे शरीर उनके लिए एक प्रकारके खेत हैं, जहां जमते ही वह अपना फल लाते हैं, जो कि रोग हैं। जैसे अचारकी हांडीमें अपने आप फफूंदन नहीं लगती, इसी तरह हमारे शरीरमें भी रोग पैदा नहीं हो सकते, जब तक कि यह जीवाणु किसी तरहसे उसके अन्दर घुस न जायँ।

पाठको! आपने यह भी देखा होगा कि नीबूके रसके अचारमें फफूंदन कम लगती है, लेकिन पानीके अचारमें बहुधा लग जाती है। इसी तरह

यह रोगके जीवाणु भी किसीके शरीरमें आसानीसे पैदा हो जाते हैं और किसीमें कठिनाईसे।

रोग विष प्रवेश होनेके मार्ग

यह जीवाणु शरीरके अन्दर अकसर मुंहसे खाने पीनेकी चीजोंके साथ घुसते हैं। याद रखना चाहिये कि बहुत सी खाक धूल भी खानेके साथ चली जाती है, और हाथमें भी बहुत क़िस्मकी मैली चीज़ें लगी रहती हैं, जिनमें जीवाणु होते हैं। इसीलिए हमेशा हाथ मुंह धोकर कुल्ली करके जहां तक हो सके ताज़ी बनी हुई खानेकी चीज़ें खानी चाहियें। हैज़ेके दिनोंमें तो पानी भी उबाल कर पीना चाहिये, क्योंकि सब जीवाणु उबालनेसे मर जाते हैं।

कई रोगोंके विष त्वचा (खाल) के द्वारा घुसते हैं। आपने देखा होगा कि जहां बदन पर रगड़ लग जाती है, वहीं अक्सर पीप पड़ जाती है। कभी कभी खालके छोटे छोटे ज़ख्मोंसे बड़े बड़े फोड़े तथा अन्य कठिन रोग जैसे सुर्खबाद (विसर्प), टेटेनस (धनुर्वात) आदि पैदा हो जाते हैं। चेचकका विष भी इसी तरह लग सकता है।

कई और रोगोंके विष सिर्फ हवाके ज़रियेसे सांसकी नालीसे शरीरमें दाखिल होते हैं। यक्ष्मा, निमोनिया, न्यूमोनिक प्लेग और इनफ्लुएन्जा इसी प्रकार फैलते हैं। इनसे बचनेके लिए बड़ी सावधानी चाहिये।

कई और, जैसे फ़सली बुखार और प्लेग, एक प्रकारके मच्छर और चूहेके पिस्सूके काटनेसे शरीरमें प्रवेश करते हैं। अगर इनसे बच सकें तो यह रोग कभी नहीं हो सकते। खटमल और जूंके द्वारा भी कई रोग फैलते हैं।

जीवाणुओंकी क्रिया

बस अब आप समझ गये होंगे कि रोग जीवाणु भी जूं, पिस्सू आदिकी तरह एक प्रकारके परोपजीवी जीव (Parasite) हैं, जो कि अन्य जन्तु वा वनस्पति पर पलते हैं; पर थोड़ा सा फर्क भी है। आपने देखा होगा कि अमरबेल जो एक परोपजीवी उद्भिज है और अन्य पौदों पर चढ़ जाती है वह उनका रस चूस कर अपने पालक (Host) को कुछ समयमें सुखा देता है। इसी तरह आंतोंके कीड़े भी कार्य्य करते हैं। पर रोग जीवाणु न केवल हमारे धातुओं पर पलते हैं, बल्कि उनके अन्दर एक प्रकारका तेज ज़हर पैदा कर देते हैं, जिससे वह सख्त बीमार हो जाते हैं, यहां तक कि मर भी जाते हैं।

कुछ संक्रामक रोग किसी किसी प्रान्तमें (Endemic) सदैव देखनेमें आते हैं, जैसे कि गंगाके किनारे पर हैजा; परन्तु यह वहां वा अन्य स्थानोंमें किसी किसी समय पर थोड़ा बहुत फैल भी जाते हैं। इसी तरह मलेरिया सदैव होने पर भी वर्सातमें बहु व्यापक (Epidemic) हो जाता है, कारण उस समय मलेरिया फैलानेवाले मच्छर बहुत पैदा हो जाते हैं। इसी तरह अन्य रोगोंके फैलनेमें भी देश पात्र आदि गौण रूपसे सहायता करते हैं। यही कारण है कि हालके इनफ्लूएन्जाका आक्रमण जगतव्यापी (pandemic) होने पर भी सभीको रोग न हुआ और न सब प्रान्तोंमें उसका ज़ोर ही समान रहा।

जीवाणुओंके साधारण धर्म

बड़े जीवोंकी तरह जीवाणुओंके लिए खूराककी जरूरत है। इनकी भी वंशवृद्धि होती है। कुछ जीवाणु हवामें उड़ते फिरते हैं, पर अधिकतर जल और थलमें रहते हैं और कभी कभी अन्य जीवोंकी देहमें वा मृत जैविक पदार्थमें पलते हैं। यद्यपि प्राणी मात्रके लिए ही ओषजन (प्राण वायु) की आवश्यकता है, तथापि बहुधा जीवाणु हवा वा तेज रोशनीमें मर जाते हैं।

सूक्ष्म जीव दो प्रकारके होते हैं—(१) उद्भिज (२) जान्तव। जीवाणु उद्भिज जातीय होते हैं। आकृतिके अनुसार इनके दो बड़े बड़े भेद माने जाते हैं। (१) विन्द्वाकार (Cocci) (२) शलाकाकार (Bacilli)। यह सबके सब हानिकर नहीं होते हैं, बल्कि बहुधा हमारे लिए लाभदायक ही हैं। थोड़ेसे

ही जीवाणु रोग पैदा करते हैं। अनेक जीवाणु मृत जैव पदार्थोंको सड़ा गला कर अन्तमें निर्दोष कर देते हैं। यदि ऐसा न होता तो आज पृथ्वी पीठ मरे हुए जानवरोंकी लाशोंसे ढकी हुई होती। शायद आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि इन्हींकी कृपासे हमें खूराक मिलती है। स्पष्ट है कि जो अन्न हम खाते हैं उनका मल बन जाता है। यही मल यदि जीवाणुओंके द्वारा न गला दिया जाय तो पौदोंके उपयोगी न हो। अतएव वनस्पति और जन्तुओंके बीचमें जीवाणुओंका रहना अत्यावश्यक है। अपरन्च, कितने ही रोग जीवाणु हमारे शरीरमें रहने पर भी किसी प्रकारके उपद्रव पैदा नहीं करते, बल्कि आंतोंमें रहनेवाले कितने ही जीवाणु हमारे भोजनके अपचित भागको गला सड़ा कर निर्दोष कर देते हैं, पर यही कभी कभी विशेष दशाओंमें मानों उत्तेजित होकर हमारे शत्रु बन जाते हैं और रोग पैदा कर देते हैं।

हम पहिले ही कह आये हैं, कि यह बीजोंकी तरह हैं, जो कि हमारे शरीर रूपी क्षेत्रमें उगा करते हैं, पर खेतोंमें तृणादिके बीज वा जड़ पड़े रहने पर भी जब तक पानी न मिले वह नहीं उगते। इसी तरह ऊसर ज़मीन पर बहुत से बीज उग ही नहीं सकते।

पर शरीरके अन्दर एक और भी शक्ति है जो जीवाणुओंको उगनेसे रोकती है। यह शक्ति अधिकतर रक्तके स्वेत कणोंमें पाई जाती है, जो कि बहुधा जीवाणुओंको खा जाते हैं। शरीरके अन्य धातु भी जीवाणुओंके साथ युद्ध करनेमें काम आते हैं। यदि इस युद्धमें जीवाणु सफल होते हैं तो रोग बढ़कर मृत्यु तक हो जाती है, नहीं तो कभी कभी रोग सहसा जाता रहता है, जैसे कि न्यूमोनियामें। चेचक आदि रोग एक बार होकर धातुओंमें रोग निवारण शक्ति बढ़ जानेके कारण प्रायः फिर जीवन भर नहीं होते।

इसी सिद्धान्त पर वैज्ञानिकोंने टीकेका इलाज निकाला है कि जिसमें कृत्रिम उपायसे हलका रोग पैदा करके भारी रोगसे बचाव किया जाता है, वा अन्य जन्तुओंसे रोग निवारक पदार्थ लाकर शरीरमें डाल दिया जाता है। इससे शरीर पर ऐसा ही प्रभाव होता है, जैसा कि फफूंदन लगे हुए अचारमें सिरका डालनेसे। अतएव संक्रामक रोगोंसे रोकनेके लिए हमें न केवल जीवाणुओंसे बचना चाहिये, जो कि रोगके असली कारण हैं, बल्कि भिन्न भिन्न उपायोंसे अपने शरीरको ऐसा पुष्ट करना चाहिये कि हमारा शरीर उन लियेके ऊसर ज़मीन बन जायँ।

रोग निवारणके साधन

अतएव सिद्ध हुआ कि जिन उपायोंसे शरीर स्वस्थ, दृढ़ और हृष्ट पुष्ट हो सके वही रोगनिवारणके साधन हैं। यह क्या हैं? स्वच्छ भोजन, स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु, स्वच्छ निवास स्थान नियमित अहार विहारादिसे ऋतुचर्य्याके नियमोंका पालन, मानसिक और कायिक परिश्रम तथा विश्रामका समुचित अनुपात। यह सबके सब हमारे उद्योग सापेक्ष हैं, पर आरोग्यताका एक साधन और भी है, जिसको दैवाधीन कह सकते हैं। वह है परम्परागत स्वास्थ्य मूल-धन।

सारांश

१—बहुत से रोग संक्रामक अर्थात् "छूत" से लगने वाले होते हैं।

२—इनका मुख्य कारण एक प्रकारके नन्हे नन्हे जीव हैं, जिनको जीवाणु कहते हैं, और यह जल, स्थल और हवामें पाये जाते हैं।

३—जीवाणु उबलते पानी, तेज गर्मी, वा धूप तथा खुली हवा वा रोशनीमें मर जाते हैं।

४—हमारे शरीरसे इनका सम्बन्ध बीज और खेतका है। यदि शरीर तन्दुरुस्त हो, तो ऊसर ज़मीनकी तरह उसमें यह जीवाणु नहीं पनप सकते।

५—यह खाने पीनेकी चीज़ोंसे मुख द्वारा वा सांसके ज़रिये फुफ्फुस द्वारा वा कीड़े मकोड़ोंके काटने पर त्वचा द्वारा, अक्सर शरीरमें प्रवेश करते हैं।

६—अन्धेरे, सीले और बन्द मकानमें रहना, कूड़े करकटका जमा होना, अस्वच्छ खाद्य और जलका व्यवहार करना, अनाचार और पैत्रिक दुर्बलता रोगके गौण कारण हैं।

७—पूर्वोक्त कारणोंसे यथा शक्ति बचना, अनिवार्य रोगोंके लिए पहिलेसे ही टीका लगाना (यथा चेचक, टाइफोइड, प्लेग और किसी दशामें टेटे नसका), रोगीको सबसे अलहदा रखना, उसके मल मूत्रको अग्नि या अन्य उपायोंसे निर्दोष करके फिंकवाना—यह संक्रामक रोग निवारणके प्रधान साधन हैं।

—बी. के. मित्र

अँधेरी कोठरी *

[ले०—श्री० "सिद्ध हस्त"]

१—असली किफायत शआरी

अँधेरी कोठरीका तैयार करना और सजाना उन लोगोंके लिए जो अपने नेगेटिवोंको स्वयं डेवेलप करना चाहते हैं एक ज़रूरी बात है। भाग्यवश, ऐसी वस्तुओंकी संख्या, जिनकी इस कामके लिए वस्तुतः आवश्यकता है बहुत कम है और वह बहुत सस्ती मिलती भी हैं। सच पूछिये तो केवल दो रुपयेकी छोटी पूंजी और थोड़ा सा परिश्रम उन लोगोंके लिए काफ़ी है जो स्वयं आरी बसूले इत्यादिसे काम कर सकते हैं। कुछ भी हो किफायत शआरोंको इस कामके लिए पांच रुपये काफ़ी होंगे।

यद्यपि अँधेरी कोठरीके न रहने पर भी काम अच्छी तरह चल सकता है, तो भी मेरी सम्मति यह है कि हो सके तो ऐसी कोठरी एक अवश्य रखनी चाहिये। यह मान कर कि आप हमारी सम्मतिको ग्रहण करते हैं हम आगे बढ़ते हैं। इस लेखमें प्रारम्भिक विषयपर विचार करनेके बाद एक सुसम्पन्न अँधेरी कोठरीका वर्णन किया जायगा। इससे उत्साही लोग यह देख सकेंगे कि वह अपनी अँधेरी कोठरीके लिए क्या कर सकते हैं। किस प्रकार वह अपनी अँधेरी कोठरीको सजावेंगे, यह अवश्य ही उनकी समाई पर निर्भर है। कमसे कम व्ययमें किस प्रकार इसी कामको वह कर सकते हैं, यह भी लिखा जायगा। स्मरण रखना चाहिये कि ऐसी किफायत शआरीको, जिससे फोटोकी उत्तमतामें कुछ अन्तर पड़ जाय, हम किफायत शआरी कहते ही नहीं। ऐसा करना तो मेरी समझमें फिज़ूल ख़र्ची और मूर्खता है। किफायत शआरी तो हम तभी समझेंगे जब काम बढ़िया ही उतरे।

स्वभावतः आप पूछेंगे कि यदि दो ही रुपयेमें अँधेरी कोठरी तैयार हो सकती है तो फिर अधिक व्यय क्यों किया जाय। अधिक व्यय करनेसे सुभीता और सुख बढ़ता है। अमीरी ठाठसे सजी अँधेरी कोठरीके स्वामीको एक प्रकारका विशेष आनन्द केवल ऐसी कोठरीके स्वामी होनेमें ही मिलता है। अपने मित्रोंसे वह कैसी प्रसन्नताके साथ कह सकता है "यह देखो, मेरी अँधेरी कोठरी कैसी सुन्दर है।" परन्तु सादी अँधेरी कोठरीवालेको

* इस लेखमें निम्न लिखित प्रक्रम रहेंगेः—

१—असली किफायत शआरी, २—अंधेरी कोठरी की नाप, ३—कोठरीका चुनाव, ४—अंधेरी कोठरीकी परीक्षा, ५—दर्वाज़े और खिड़कियोंसे लाभ, ६—खिड़कियों और दर्वाज़ोंका बन्द करना; ७—दूसरी विधि; ८—देशी ढंगके दर्वाज़े; ९—पलस्तर; १०—वायुका आवागमन; ११—अंधेरी कोठरीमें प्रकाश; १२—प्रकाश छनना; १३—एक सरल प्रबन्ध; १४—बड़ा लेम्प या छोटा; १५—लाल रोशनीकी परीक्षा; १६—तश्तरी इत्यादि; १७—अन्य सामान; १८—ताप मापक (थर्मामीटर) १९—घड़ी; २०—फोटोग्राफी आरम्भ करनेके लिए कितने दामकी आवश्यकता है ?; २१—मेज़ इत्यादि; २२—सरल मेज; २३—पानी बहनेका प्रबंध; २४—सस्ता मेज; २५—एक अच्छी अंधेरी कोठरी; २६—एक छोटी अंधेरी कोठरी; २७—बिना अंधेरी कोठरीके; २८—समाप्ति;

निराश न होना चाहिये। वह भी घमंडके साथ कह सकता है "यह देखो, मेरा बनाया यह फोटो कैसा उत्तम है, यद्यपि मेरी अँधेरी कोठरीमें दो रुपये भी नहीं लगे हैं"। मुझे तो इसी प्रकारकी डींग हांकना भाता है। कुछ लोग कहेंगे कि अधिक सुभीता और सुखके रहनेसे कामके अच्छे होनेकी अधिक सम्भावना है; हम मानते हैं कि यह ठीक है, पर यह उन्हीं लोगोंके लिए लागू है जो कुछ आलसी या लापरवाह हैं। जो परिश्रम करनेसे नहीं डरते वह दावेके साथ अत्यन्त सरल अँधेरी कोठरीमें भी अच्छा काम बना सकते हैं। इस लेखके अन्तमें यह भी लिखा जायगा कि बिना अँधेरी कोठरीके कैसे काम चल सकता है, पर हम इतना यहीं पर लिख देना चाहते हैं कि बिना अँधेरी कोठरीके ब्रोमाइड कागज़ (Bromide paper) पर फोटो नहीं छापा जा सकता और एक प्रकारसे इसके अभावमें एनलार्जमेन्ट (Enlargement) या चित्र प्रवर्द्धन अर्थात् छोटे नेगेटिवसे बड़ा फोटो बनाना भी सम्भव नहीं है।

२—अँधेरी कोठरीकी नाप

यों तो ३ फुट चौड़ी ४ फुट लम्बी और ७ फुट ऊँची कोठरी या अलमारीमें भी काम हो सकता है, परन्तु अँधेरी कोठरीका होना अच्छा है। लगभग ८ फुटकी चौड़ाई और १२ फुटकी लम्बाई एक अच्छी नाप है। बड़ी नापकी कोठरीके रहनेसे वायुके आने जानेका अच्छा प्रबन्ध न रहने पर, या कुछ भी प्रबन्ध न रहने पर फोटोग्राफरके स्वास्थ्यको हानि नहीं पहुँचती। ज्यों ज्यों कोठरीकी नाप छोटी होती जाती है त्यों त्यों बुरी वायुको बाहर निकलनेकी और अच्छे वायुके भीतर आनेकी आवश्यकता बढ़ती जाती है। ३'×४'×७' फुटकी कोठरीमें, इस प्रकारका कोई प्रबन्ध न रहने पर और विशेष करके उसके भीतर एक लैम्प जलते रहने पर, काम करना जान जोखिममें डालना है। यदि प्राण न भी गया तो भी इतना तो अवश्य होगा कि धीरे धीरे फोटोग्राफर के स्वास्थ्यका ह्रास हो जायगा और वह शीघ्र ही खाट पकड़ लेगा। सबसे उत्तम तो यह है कि फोटोग्राफर बड़ीसे बड़ी कोठरीको, जिसको वह इस काममें लगा सकता है, अँधेरी कोठरी बनावे। पर यदि वायुके लिए अच्छा प्रबन्ध है तो छोटी कोठरीमें भी काम करनेमें हानि नहीं है। मेरी समझमें अँधेरी कोठरी की नाप यदि एनलार्जमेन्ट नहीं करना हैं तो ३'×४'×७' फुट, और यदि एनलार्जमेन्ट भी करना है तो ३'×६'×७' फुटसे कम न होनी चाहिये। २'×३'×६' फुटसे छोटे स्थानमें काम करना तो असम्भव ही है।

३—कोठरी का चुनाव

यदि एक कोठरी केवल इस कामके लिए अलग रखी जा सके तो सबसे अच्छा होगा, पर अधिकतर ऐसा करना असम्भव होता है। इस दशामें एक ऐसी कोठरीको चुनना चाहिये, जिसको घंटे दो घंटे बन्द रखनेमें घरके और लोगोंको असुविधा न हो, और जिसके एक किनारे पर कमसे कम ३×४ फुट, या एनलार्जमेन्ट भी करना है तो ३×६ फुट, की नापके स्थानमें आप अपना सब सामान सजा सजाया रख सकें। यदि इस कोठरीमें लड़कोंका आना जाना रहे तो भी कुछ चिन्ताकी बात नहीं है; अवश्य ही, ऐसी दशामें आपको कुछ अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। जहां तक हो सके, इस कोठरीमें फोटोग्राफी सम्बन्धी सामानको छोड़ दूसरी वस्तु बहुत कम रखें, जिसमें इसको भली भांति स्वच्छ रखनेमें कुछ कष्ट न हो और समय बहुत कम लगे। बहुत सी अनावश्यक वस्तुओंके रहनेसे कोठरीकी सफाईमें इतना परिश्रम और समय लगता है कि कोठरी शायद ही कभी साफ की जाती है। परिणाम यह होता है कि अँधेरी कोठरी गर्दसे भरी रहती है। गर्दके कारण नेगेटिवमें सैकड़ों सुई-छिद्र पड़ जाते हैं और फोटो काले बिन्दुओंसे भर जाता है। ऐसा हो सकता है कि आपको कोई ऐसी कोठरी न मिले

जिसको आप दिनमें घंटे दो घंटे बन्द रख सकें। ऐसी दशामें आप रात्रिके समय काम कर सकते हैं। इसमें एक सुभीता यह होता है कि आप जिस कोठरीको चाहें उसीको बातकी बातमें अँधेरी कोठरी बना सकते हैं। और कोई कोठरी न मिली तो अपने सोनेकी ही कोठरीमें काम कर सकते हैं। लेकिन केवल रात्रिके समय काम करनेमें कई असुविधा होती हैं; सच पूछिये तो यह इतनी बड़ी असुविधा हैं कि एक स्थायी अँधेरी कोठरी बना लेनेके लिए ऐसे लोगोंका जी सदा छटपटाता है।

एक असुविधा तो यह है कि कई बार फोटो खींचनेकी आवश्यकता ऐसे समय पर पड़ती है जब प्लेट-घर (plate-holder या dark-slide) में प्लेट नहीं लगा रहता। ऐसे समयमें अँधेरी कोठरीके रहनेसे कैसा सुभीता होता है। ऐसा भी हो सकता है कि आपको रात्रिमें फोटोग्राफीके लिए अवकाश न मिले। परन्तु सबसे बड़ी असुविधा यह है कि गरमीके दिनोंमें सायंकालके बाद रातको बड़ी गरमी पड़ती है। फोटोग्राफर पसीनेमें तर और गरमीसे व्याकुल हो जाता है। इसके सिवा बहुधा सब उपाय करने पर भी प्लेट गरमीसे बिगड़ जाता है। यदि फारमैलिन (Formalin) इत्यादिका प्रयोग नहीं किया गया है तो प्लेट किसी प्रकार बच ही नहीं सकता। यह तो अवश्य सत्य है कि सवेरे दो घंटे रात बाक़ी रहते ही उठ कर डेवेलप इत्यादि किया जा सकता है, पर दो घंटे रात रहे उठता कौन है, विशेष करके केवल फोटोग्राफीके लिए? सवेरे ही तो अच्छी नींद आती है! यदि अँधेरी कोठरी होती तो यह सब दुःख क्यों सहना पड़ता?

यदि कई एक ऐसी कोठरियां हैं; जिनमें से आप किसी एकको काममें ला सकते हैं तो उस कोठरीको चुनना चाहिये, जिसमें नीचे लिखी गई एक या अधिक बातें पाई जायँ।

(१) दरवाज़े और खिड़कियोंको प्रक्रम ६ में लिखी गई विधिसे बन्द करनेमें सुभीता हो।

(२) उत्तरकी ओर एक ऐसी खिड़की हो, जिसके ऊपर आकाशकी रोशनी भरपूर पड़ती हो और जिसके समीप काम करनेके लिए यथेष्ट स्थान रहे।

(३) भीतर सीमेन्ट या चूना सुर्खी का पलस्तर किया हो।

(४) दरवाज़े और खिड़कियोंके खोल देने पर वायु पूरे वेगसे आ जा सकती हो और प्रत्येक कोनेमें प्रकाश भली भांति पहुँच सकता हो।

४—अँधेरी कोठरीकी परीक्षा

जो फोटोग्राफीकी ओर पहले पहल झुकते हैं उनमेंसे कई एक समझते हैं कि कोई भी स्थान, जो अँधेरा हो, अँधेरी कोठरीका काम दे सकता है। जिस स्थानमें प्रकाश इतना कम रहता है कि उन्हें पुस्तकोंके पढ़नेमें कठिनाई होती है, या वह एक दूसरेको भली भांति देख नहीं सकते उस स्थानको वह अँधेरा समझ लेते हैं। मुझे स्मरण आता है कि एक नामी फोटोग्राफरने कहीं लिखा है कि जब वह छोटा था और पहिले पहल फोटोग्राफी सीख रहा था तो वह किस प्रकार सब दरवाज़े और खिड़कियोंको बन्दकर प्लेटोंको टेबिल के नीचे निकालकर उनकी जांच किया करता था। पूछनेकी बात ही क्या है, प्लेट सब नष्ट हो जाते थे। विचार करनेकी बात है कि जिस प्लेटके लिए कभी कभी $\frac{1}{1000}$ सेकंड का प्रकाश दर्शन भी बहुत हो जाता है और तिसपर भी यह प्रकाश दर्शन केवल उसी प्रकाशके द्वारा होता है, जो लेन्स छिद्र से होकर भीतर जाने पाता है, वह प्लेट बिना नष्ट हुये "अँधेरी कोठरी" के श्वेत प्रकाशको दो चार मिनट कैसे सहन कर सकता है, यद्यपि यह प्रकाश इतना कम है कि पुस्तकके अक्षर स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ते। यह सत्य हो सकता है कि उसी कोठरीमें यदि हम फोटो खींचना चाहें तो हमें दो चार घंटेका प्रकाश-दर्शन कराना पड़ेगा, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि एक दशामें प्रकाश केवल एक छोटेसे छेद द्वारा भीतर जाने पाता है और

दूसरी दशामें प्लेट, पर सभी स्थानसे प्रकाश पड़ता है।

अँधेरी कोठरीमें पूर्ण अन्धकार होना चाहिये। इसमें जाकर और सब दरवाज़े इत्यादि बंद कर लेने पर प्रकाशका लेश मात्र भी न आना चाहिये। कवि लोग कहते हैं कि ऐसा अन्धकार होता है कि अपना हाथ फैलाये सूझता नहीं—"सूझ न आपन हाथ पसारा" (तुलसी)। हम कहते हैं कि अन्धकार ऐसा होना चाहिये कि समीप रहने पर भी अपना हाथ न सूझे। केवल इतना ही नहीं। इस परीक्षामें तो कई एक निकम्मी अँधेरी कोठरी भी उत्तीर्ण हो जायगीं। हमारी परीक्षा इससे कहीं कठिन है। अंधेरी कोठरीमें पाव घंटे या आध घंटे तक बैठे रहिये और तब आंखें फाड़ फाड़कर खूब देखिये। यदि कहीं भी कोई दरार या छेद दिखलाई पड़ता हो तो समझिये कि अंधेरी कोठरी अभी बिलकुल ठीक नहीं है। जब इस प्रकारके देखनेसे भी कोई छिद्र इत्यादिका पता न चले तब जानिये कि अँधेरी कोठरीसे अब कुछ डर नहीं है, इसकी ओरसे आप निश्चिन्त होकर बैठ सकते हैं।

आप पूछेंगे कि दरवाजोंको किस प्रकार बन्द करें कि उसमेंसे भीतर प्रकाश न आ सके। इस प्रश्नका उत्तर हम अभी न देंगे, पर हम यहाँ पर इतना और लिख देना चाहते हैं कि कई एक अंधेरी कोठरी ऐसी हैं कि ऊपरकी रीतिसे परीक्षा करने, पर वह बिलकुल निकम्मी जान पड़ेंगी, परन्तु तिसपर भी उनमें उच्चश्रेणीका काम तैयार किया जाता है। हम यह भी कहते हैं कि कुछ समयमें आप भी ऐसा कर सकेंगे, पर अच्छा होगा यदि आप पहिले हमारी सम्मति ग्रहण करें और अपनी अँधेरी कोठरीको आप एक दम अँधेरी बना डालें।

५—दरवाज़े और खिड़कियोंसे लाभ

यह अत्यावश्यक है कि हम खिड़कियों और दरवाजोंको इच्छानुसार खोलकर स्वच्छ वायु और दिनके प्रकाशको अँधेरी कोठरीके भीतर आने दे सकें। जहां यह दोनों प्राकृतिक स्वच्छ करनेवाले नहीं जाने पाते वह स्थान शीघ्र ही मनुष्यके रहनेके अयोग्य हो जाता है। अंधेरी कोठरीमें जल इत्यादि निरन्तर गिरा करता है। यदि वायु अच्छी तरह इसमें आ जा न सकेगी तो यह सदा नम रहेगी। दीवार इत्यादि पर भुकड़ी लग जायगी। प्रकाशके न जानेसे गर्द इत्यादि स्पष्ट न दिखलाई पड़ेगी, जिससे पूरी सफ़ाई न हो सकेगी। लालटेन इत्यादि कृत्रिम प्रकाशसे भी यह काम हो सकता है, पर यह सूर्यके प्रकाशके आगे कहीं फीके हैं, और फिर, इनमें वह स्वच्छ या पवित्र करनेकी शक्ति नहीं रहती जो सूर्यके प्रकाशमें रहती है। इसलिए कमसे कम एक दरवाज़ा और एक खिड़की ऐसी अवश्य होनी चाहिये जिसको हम इच्छानुसार खोल सकें। यदि दूसरी खिड़कियों और दरवाजोंको भी इसी तरह खोल बन्दकर सकें तो बहुत अच्छा होगा, पर यह नहीं भूलना चाहिये कि खुलनेवाली खिड़कीके द्वारा प्रकाशको भीतर आनेसे एक दम रोक देना खिड़कीको स्थायी रूपसे बन्द कर देनेकी अपेक्षा बहुत कठिन है। दो चार कीलें और कुछ पुराने समाचार पत्र दफ्ती, काला मोमजामा (Oil-cloth) या ब्रौन पेपर (Brown-paper) किसी खिड़की या दरवाजेको पक्की रीतिसे बन्द करनेके लिए काफ़ी हैं, परन्तु खुलनेवाली खिड़कियोंके लिए अधिक बखेड़ा करना पड़ेगा। नीचे लिखी रीतिसे अपना कार्य हम सिद्ध कर सकते हैं। (असमाप्त)

राहु

[ले०—पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार]

पुराणोंमें कथा आती है कि देव और दैत्योंने समुद्रको मथ कर अमृत निकाला; मोहिनी रूप धर विष्णुने देवताओंको अमृत दिया। जब वह पान करने लगे तो साथ ही राहु भी छिप कर अमृत चखनेके लिए देवताओंकी पंक्तिमें आ बैठा। राहुने अभी पहली ही घूंट अमृतकी ली थी, अभी वह गलेके नीचे उतरने भी न पाया था कि मोहनी विष्णुने चक्रसे उसका सिर काट दिया। शिर कट जाने पर भी अमृतास्वादके प्रभावसे उस शिरका प्राण नहीं गया। वही आकाशमें राहु रूप होकर चन्द्रमा और सूर्यको ग्रस लेता है। इसीसे सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण लगता है। यह पौराणिक कथा बच्चोंके हृदयमें उत्पन्न होनेवाले प्रथम कौतुकके शमन करनेके लिए बहुत ही काफ़ी है। यह वैसा ही उत्तर है जैसा रोते बच्चेको चुप करनेके लिए हौवेका डर। फिर यह ग्रह, तिसपर भी क्रूर ग्रह माना गया है, क्योंकि कथाके अनुसार दैत्य छल पूर्वक देवताओंके भागको चुरानेके लिए प्रवृत्त हुआ था। इसलिए हिन्दू लोगों पर भी यह ग्रह चढ़ जाता है और बहुत दान पूजा लेकर शान्त होता है। कथाके अनुसार यह सिंहिकाका पुत्र है। इसीसे इसको सैंहिकेय भी कहते हैं। इसने तपसे ब्रह्माको प्रसन्न कर लिया था, जिससे इसको अदृश्य रहनेकी सिद्धि प्राप्त हो गयी थी। वह अमावस और पूनोके दिन ही दीख सकता है, इसका रंग काला है। यह सब बातें पौराणिक कल्पना हैं और केवल बाल-प्ररोचना प्रतीत होती हैं। इनका वास्तविक रहस्य यहां बतलाना अभीष्ट है।

बहुत से ऐतिहासिक पुरुष अपना पुण्य जीवन समाप्त करके इस लोकसे उठ गये। इसी प्रकार बहुत से नामी दुश्चरित्र दैत्य-स्वभाव पुरुष भी अपना क्रूर अभिनय करके चलेगये। उनकी स्मृति स्थिर करनेके लिए प्रायः सभी देशोंने उनके नामपर तारोंके नाम रख दिये, जैसा हम नक्षत्र संसारके प्रथम लेखमें दर्शा आये हैं। ठीक इसी प्रकार राहुका भी नाम ऐतिहासिक दैत्य पुरुषसे संक्रमित हो कर गया है। एकबार संक्रमण होना चाहिये फिर तो कथा कौतुकके प्रेमी कथा निर्माण कौशलोंको इधरका इतिहास उधर जोड़ते क्या देर लगती है। वस्तुतः यह नाम संक्रमणकी शैली सभी देशोंमें प्रचलित है। और अब भी इसका अभाव नहीं है। मानव मस्तिष्कका स्वभाव ही ऐसा है कि वह दो काम एक ही क्रियासे सिद्ध कर लेता है। देश और नदी पर्वतोंके नाम किसी महात्मा, साधु, सन्त और विजेताके नामोंपर रख दिये जाते हैं। इससे उसकी याद बनी रहती है और देशादिका नाम भी व्यवहारके लिये सुगम हो जाता है। अस्तु कुछ भी हो। अब हम इस तुच्छ बातको छोड़ प्रकृत विषय पर आते हैं। बराहमिहिरने तथा अन्यान्य भारतीय विद्वानोंने भी अपने प्राचीनोंका मत उल्लेख किया है। कई एकके मतसे राहुका आकार सांपके समान लम्बा है। इसका बराहने यह कह कर खण्डन किया है—

(१) यदि राहु गोल मण्डलाकार या शरीरधारी होता तो ६ राशिके अन्तर पर रह कर भी कैसे नियमसे चलकर ग्रहणका कारण होता है? यदि उसकी गति किसी नियमसे नहीं होती, तो गणित शास्त्रसे उसकी गणना किस प्रकार ठीक निकल आती है। यदि सांपके समान लम्बा है तो वह मध्य भागसे सूर्यादिका ग्रहण क्यों नहीं करता? यदि सांपके आकार का ही है तो कदाचित् मुखसे या पूँछसे ही आकर पकड़ता है तो बीचके भागसे आधे आकाशको ढक क्यों नहीं लेता? कोई कहते हैं कि दो राहु हैं एक चन्द्रमाको ग्रसता है और दूसरा सूर्यको ग्रसता है तो जिस दिन चन्द्र ग्रस्त दशामें उदित हो या अस्त

हो उसी दिन उसके समान गतिवाले दूसरे राहुसे सूर्य भी ग्रस्त हो जाता ?

इस प्रकार सब अविवेक जन्य मत तथा सिद्धान्तोंका खण्डन करके सिद्धान्त कहते हैं कि वस्तुतः चन्द्रमा, ग्रहणके समय, पृथ्वीकी छायामें घुस जाता है और सूर्य ग्रहणमें चद्रन्मा ही सूर्यके बिम्बमें प्रविष्ट हुआ दीखता है। यही कारण है कि चन्द्रका पश्चिमसे और सूर्यका पूर्व भागसे कभी ग्रहण नहीं लगता। जिस प्रकार वृक्षकी छाया उसके एक ओर दूर तक लम्बी फैली रहती है, उसी प्रकार सूर्यके प्रकाशमें भूमि बीचमें आजानेसे उसकी छाया भी बहुत दूर तक फैली रहती है। यह घटना प्रति रात होती है। पृथ्वीकी छाया ही रात्रि है। जब सूर्य बहुत उत्तरायण और न बहुत दक्षिणायन हो तब चन्द्रमा पृथ्वीकी छायामें अपने पूर्व भागसेप्रविष्ट होता है और सूर्य ग्रहणके समय चन्द्र सूर्य बिम्बके नीचे रहने से सूर्यको ठीक उसी प्रकार ढक लेता है जैसे बादलका टुकड़ा सामने आकर ढक लिया करता है। इसीलिए दृष्टि भेद होनेसे प्रत्येक देशमें भिन्न भिन्न प्रकारका ग्रहण दीखा करता है।

यही कारण है कि चन्द्रका आधा ग्रास हो जाने पर उसके शृंग बहुत कुण्ठित हो जाते हैं और सूर्यके आधा ग्रास हो जाने पर शृंग बहुत तीक्ष्ण रहते हैं। क्योंकि चन्द्रको ढकनेवाली वस्तु बहुत बड़ी होती है और सूर्यको ढकनेवाली वस्तु बहुत छोटी होती है।

दिव्य-दृष्टिवाले आचार्योंने ग्रहणका मुख्य कारण बतलाया है। राहुका दैत्य विशेष होना तो केवल शास्त्रका रहस्य ग्रन्थन मात्रके लिए परिभाषा मात्र है। ब्रह्माने राहु असुरको बर दिया था कि लोग ग्रहणके समय जो दान होम करेंगे उसीसे तुम्हारी तृप्ति होगी। उसी समयमें राहुकी उपस्थिति होती है। वह उसकालमें अपना अंश खानेके लिए आता है। इसीके उपचारसे वह भी राहु कहा जाता है। इसी ग्रहकी अपेक्षा करके चन्द्रमाकी गति भी दक्षिण-उत्तर-दक्षिणमें होती है। और कोई ग्रहणका कारण नहीं होता। यदि अन्य किसी कारणसे ग्रहण हो तो उत्पात, उपद्रवकी सूचना समझनी चाहिये। उपरोक्त उल्लेखमें सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण करनेवाला कोई असुर नहीं, प्रत्युत केवल छाया मात्र मानी गयी है।

पृथ्वीकी छाया मात्रमें चन्द्र और चन्द्रकी छायामें सूर्यके आगे ढकनेके रूपमें पृथ्वीके आगे आ जानेसे चन्द्र और सूर्यका ग्रहण होता है। पर फलित ज्योतिषमें इनके होनेसे बहुत फल अफल माना गया है। ब्रह्म सिद्धान्तकारने बराह मिहिरके उक्त कथनको बड़े बल पूर्वक खण्डन करनेका प्रयत्न किया है, पर वस्तुतः देखा जाय तो बराहमिहिरके सिद्धान्तका खण्डन नहीं हो सका। ब्रह्म सिद्धान्तका कथन इस प्रकार है।

"वराहमिहिर, श्रीसेन, आर्यभट, आदि लोगोंने वेद और स्मृति संहिताओंके विरुद्ध कहा है, जो लोकके भी विरुद्ध है। सूर्य और चन्द्र दोनोंका ग्रहण राहुके कारण होता है। इस बातको गांवके रहनेवाले ग्वाले अहीर तक जानते हैं। ब्रह्माके बरसे शुक्ल पञ्चदशीके दिन राहु ही पृथ्वी और चन्द्रकी छायामें छिपकर बैठा रहता है। वही सूर्य चन्द्रका ग्रास करता है। सूर्य तो अग्निका गोला है और चन्द्र पानीका बना हुआ है। मासके अन्तमें चन्द्रकी आड़में बैठकर राहु सूर्यको छिपा लेता है।"

देखिये पाठक, ब्रह्म सिद्धान्तने कितनी प्रबल-युक्तियोंसे बराहकी बात काटी है; जिसमें पहली युक्ति यही है कि "आगोपालाङ्गनां प्रसिद्धमिदं" कि यह बात अहीरोंकी स्त्रियां तक जानती हैं। स्त्रियां स्वभावतः निर्बुद्धि होती हैं। फिर अहीर लोग उनसे भी अधिक बेवकूफ़। फिर उनकी स्त्रियां तो उनसे भी दो कदम आगे होनी चाहियें। परन्तु बराहने अपने सिद्धान्तकी पुष्टिमें दिव्य दृष्टि आचार्य रखे और ब्रह्म सिद्धान्तकारने अहीरिनियां।

यदि राहु है तो दीखता क्यों नहीं? इसके उत्तर में ब्रह्म सिद्धान्तकारने ब्रह्माके बरकी शरण ली।

तिसपर जलमय चन्द्र की आड़में अग्निमय सूर्यकी शिकार तो बड़ी बढ़िया बात है। पृथ्वीके अंधेरेमें छिपकर चान्द पर धावा और चान्दकी ओटमें सूर्य पर धावा करते हुए राहुको क्याही मजा आता है। सबसे अधिक आनन्द तो अहीरनियोंके कथनोंकी आड़में हेत्वाभासोंसे सत्य वचनोंका शिकार करते हुए ब्रह्म सिद्धान्तकार को ही बड़ा आनन्द आया होगा। तात्विक सिद्धान्तोंके प्रकट हो जानेसे कहीं ब्राह्मणोंका दान पुण्य न टूट जाय, इसीसे छायामें छिपे राहुकी शिकारकी कल्पना की गयी है। अब एक प्रश्न यह है कि सूर्यको खानेके समय राहु छोटा और चन्द्रग्रासके समय बड़ा कैसे हो जाता है। इसके उत्तरमें ब्रह्म सिद्धान्त कहता है कि "चन्द्र ग्रहणके समय राहु चन्द्रकी कक्षामें पृथ्वी की छायाके बराबर हो जाता है। सूर्य ग्रहणके समय वह चन्द्रके बराबर हो जाता है। राहु तो अन्धेरेका बना हुआ है। सूर्य ग्रहणके समय राहु चन्द्रके पीछे छिपा होता है, इसलिए इससे अधिक इधर उधर निकला हुआ राहुका शरीर भाग सूर्य के प्रकाशसे नष्ट हो जाता है। इसीसे वह चन्द्र और सूर्य ग्रहणके समय क्रमसे पृथ्वीकी छाया और चन्द्रके बराबर व्यासका हो जाता है। यों पृथ्वीकी छाया और चन्द्र ग्रहणमें सम्बन्ध नहीं है।

इसीके छोटे भाई सूर्य सिद्धान्तकार भी ऐसी युक्ति लगाते हैं कि "राहु तो तमोमय है। सूर्यकी किरणोंसे भागता है। इसलिए उसके छिपनेके लिए दोही स्थान बनाये हैं एक तो पृथ्वीकी छाया और दूसरा चन्द्रबिम्ब।" ठीक है इन सबको सबसे बड़ा भय है यह कि यदि राहुकी सत्ता टूट जायगी तो इनकी दान भेंट चढ़ावा लेनेका एक आधार स्तम्भ मारा जायगा। मङ्गल, शनि, राहु और केतु यह चारही ग्रह तो ब्राह्मणोंके प्रति पालक हैं। सत्यका घात हो जाय तो कुछ परवाह नहीं, परन्तु इनकी आजीविका विधायक राहुकी हेत्वाभासोंसे भी सिद्धि होनी चाहिये। अस्तु कुछ भी हो नये वैज्ञानिक आन्दोलनके सामने तो यह सभी असत्य अव हास्य योग्य प्रतीत होते हैं। इनका उल्लेख करना भी लज्जा जनक है। इसके अतिरिक्त इसमें संदेह नहीं कि इस क्षेत्रमें भी पूर्वीय विद्वानोंका नैसर्गिक निरीक्षण कुछ कम नहीं। पहले आचार्योंका मत था कि यदि गणितके अनुसार नियत किये समयके विपरीत ग्रहण हो जाय तो शस्त्र कोप और गर्भोंका नाश अधिक होता है। यदि गणित द्वारा नियत किये समयसे अधिक देर तक ग्रहण रहे तो फूल और फलोंका बिनाश और अन्नका विनाश समझना चाहिये। इसपर वराह मिहिर बड़े बल पूर्वक लिखते हैं—"हां शास्त्रोंमें, ज्योतिषकी पुस्तकोंमें, लिखा अवश्य है। परन्तु स्पष्ट गणितका वेत्ता जिस कालका निर्णय करेगा वह कभी अशुद्ध या न्यूनाधिक न होगा। अर्थात् यदि ग्रहण काल न्यूनाधिक हुआ है तो या तो गणितज्ञकी गणित असत्य है या राहु ग्रासका गणितज्ञसे मज़ाक है। दोनों दशाओंमें शस्त्र कोप आदि फलोंकी कल्पना बिना आधारके है। गणितज्ञकी भूलसे फलका मानना सर्वथा असंगत है।"

फलाफलका विवेचन हम पीछे करेंगे। पहले ग्रहणके प्रकारों पर विचार करते हैं। वराहमिहिर ने १० प्रकारके ग्रहण दर्शाये हैं—

(१) सव्य—बायीं ओरसे लगनेवाला।

(२) अपसव्य—दायीं ओरसे लगनेवाला।

(३) लेह—थोड़ासा छूट जाना।

(४) ग्रसन या ग्रास—जब ¼, ½ या ¾ ग्रस्त हो जाय।

(५) निरोध—जब पूर्ण ग्रहण होनेके बाद सूर्य मण्डल छल्लेके आकारका चारों ओर से चमके और बीचमें काला अन्धेरा दीखे।

(६) अवमर्दन—जिसमें पूर्ण ग्रास लगने पर चिरकालतक चन्द्र छिपा रहे।

(७) आरोहण—यदि ग्रहण लगकर तत्काल ही हट जाय।

(८) आघ्रात—यदि चन्द्रविम्बपर छाया इतनी हलकी सी पड़े, जैसी दर्पण पर वाष्पका स्पर्श होनेसे दिखाई पड़ती है।

(९) मध्यतमः—यदि विम्बके मध्यमें गहरा अन्धकार हो और पर्यन्त भागोंमें हलका अन्धकार हो तो मध्यतमः कहाता है।

(१०) तमोऽन्य—जब पर्यन्त भागोंपर अधिक अंधकार हो और मध्यमें न्यून तब तमोऽन्य कहाता है।

उक्त सभी प्रकारोंके भिन्न भिन्न फल कहे गये हैं; परन्तु अभी हम उस प्रकरण पर हाथ नहीं लगाना चाहते। इसके अतिरिक्त ग्रहणके विषयमें और भी कतिपय विशेष बातें हैं, जो केवल प्राकृतिक निरीक्षणसे सम्बन्ध रखती हैं और जिनके फला फलका विवेचन किया गया है; जैसे वराह मिहिरने राहुके कितने ही प्रकारके रंग लिखे हैं। अर्थात् चन्द्रविम्बके ग्रसे जानेपर भी चन्द्रबिम्ब-पर पड़ी छायाके कई रंग हो सकते हैं। वराह मिहिरने राहुके निम्न लिखित रंग लिखे हैं। १. श्वेत, २. अग्निका सा रंग (अनल वर्ण) ३. हरा (हरित), ४. कपिल, ५. लाल किरणोंके समान (अरुण किरणानुरूप) ६. हलके धुएंके समान (आधूम्र) ७. कबूतरके रंगके साथ लाल पीला काला मिला हुआ (कापोतारुण कपिल श्यावाम) ८. कबूतरी रंगका खाकी (कापोत) ९. काले रंग का, निर्मलीमणि (कतक बीज) के समान हलका पीला। १०. अग्निकी ज्योतियोंके समान, ११. गेरुआ रंगका १२. घासके समान हरा, १३. हलदीके समान पीला, १४. लाल पीले फूलके समान १५. लाल धूलिके समान, १६. प्रातःकाल उगते हुए सूर्यके सामान; १७. कमलके समान गुलाबी रंगका, १८. इन्द्र धनुषके समान।

इन सब भिन्न भिन्न रंगोंके होनेके मुख्य मुख्य कारणका निरूपण किसी भी शास्त्रकारने नहीं किया। उनका अधिक ध्यान फला फलके कथनपर ही रहा।

इसके अतिरिक्त चन्द्र या सूर्यके ग्रहण हटने पर जो घटनाएं होती हैं उन पर भी विद्वानोंने बड़ा विलक्षण अनुसंधान किया था। दश प्रकारके ग्रहणोंका वर्णन हम कर चुके हैं। ग्रहणसे सूर्य चन्द्रका छूटना मोक्ष कहाता है। उसके भी १० प्रकार हैं।

(१) दक्षिण हनुभेद—आग्नेय कोणसे ग्रहण का छूटना।

(२) वाम हनुभेद—ईशान कोणसे ग्रहण का छूटना।

(३) दक्षिण कुक्षिभेद—दक्षिणके भागसे ग्रहणका छूटना।

(४) वाम कुक्षिभेद—उत्तरसे ग्रहणका छूटना।

(५) दक्षिण पायुभेद—नैऋत कोणसे ग्रहण का छूटना।

(६) वाम पायुभेद—वायव्य कोणसे ग्रहण का छूटना।

(७) सञ्छर्दन—पूर्व दिशासे ग्रास लगकर पूर्व दिशासे ही उसका छूट जाना।

(८) जरण—पूर्व दिशासे लगकर पश्चिमसे छूटना।

(९) मध्य विदरण—यदि प्रथम मध्यका भाग छूटे फिर प्रान्तका भाग।

(१०) अन्नदरण—पर्यन्त भाग प्रथम छूट जायं फिर मध्य भाग छूटे।

यह दश प्रकारके मोक्ष हैं। इनके नामोंकी कल्पना ठीक इसी प्रकार की गई है, जैसे कोई राहु नामक दैत्य चन्द्रको खा जाता हो।

यही भेद सूर्य ग्रहणके मोक्षके भी समझने चाहियें, परन्तु लक्षणोंमें दिशाओंका विपर्यास हो जाता है।

(असमाप्त)

पानी और तेज़ाब

तेज़ाब धातोंको गला देते हैं। पानी केवल ऊपरसे उनका रंग बदल देता है। पानीकी अपेक्षा तेज़ाब प्रायः अत्यन्त तीव्र पदार्थ माने जाते हैं। परन्तु तापक्रम और दबावके बढ़ने पर यह कोमल स्वादिष्ट और उपयोगी द्रव बड़ा भीषण रूप धारण कर लेता है। वह गंधकाम्ल जैसे तीव्र अम्लकी समानता करने लगता है। लोहा, जस्ता, मग्नीसियम आदि पदार्थोंको यह गंधकाम्लकी तरह गलाने लगता है और उज्जन निकलने लगती है। कांचके समान अनघुल पदार्थ भी उसी तरह उसमें घुलने लगते हैं, जैसे शक्कर पानीमें घुलती है। शुक्र है कि मानव सृष्टि उस समय नहीं हुई थी जब पानीका तापक्रम लगभग ३७०° श था और दबाव अत्यन्त अधिक; नहीं तो लोहे आदि और कांचके बर्तन बिना ही काम चलाना पड़ता।

गीकी ने इस सम्बन्धमें लिखा है:—

"साधारण तापक्रम पर पानीके गुण अत्यन्त दुर्बल क्षार अथवा अम्लके से हैं। १८° श पर सिकताम्ल पानीसे १०० गुना बलवान होता है। परन्तु तापक्रम बढ़ने पर इनका परस्पर सम्बन्ध बिलकुल बदल जाता है। ३००° श पर उक्त दोनों पदार्थ समान बल वाले हैं। १०००° श पर पानी ८० गुना और २०००° श पर ३०० गुना अधिक बलवान हो जाता है और १०००° श और २०००° श के बीचमें बलवान अम्लोंका सा व्यवहार करता है।"

इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। गंधकाम्ल जैसे बलवान द्रव्यको भी यदि ठंडा करें तो उसका बल घटता जायगा; बहुत नीचे तापक्रम पर उनका अमलत्व जाता रहेगा।—१०५° श पर गंधकाम्ल, लवणाम्ल, नत्रिकाम्ल आदि अम्ल उदासीन हो जाते हैं। पानी भी साधारण तापक्रमों पर ऐसी ही अवस्थामें होता है। तापक्रम बढ़ते ही वह अपना असली रूप दिखलाने लगता है।

विज्ञान परिषद् का हिसाब

जौलाई

आय

सभ्योंका चन्दा	२४)
गंगा पुस्तक माला कार्यालय लखनऊसे	४८॥।-)
हिन्दी साहित्य प्रेस	११३।)
पुस्तकोंकी बिक्री	३३॥-)
	२१९॥=)
रोकड़ बाकी ३० जून	१८॥-)॥२
	२०८≡)॥२
ओवर ड्राफ्ट	१६१।≡)॥१
	३६९॥≡)

व्यय

छपाई फसलके शत्रुकी	२७॥।)
मैनेजर हिंदी-साहित्य प्रेस (छपाईके हिसाबमें)	३६७)
"आहार" की कटाई	३)
मुत्फर्रिक	१॥।≡)
	३९९॥≡)

अगस्त

आय

सभ्योंका चन्दा	१२)
सेविंग बैंक	१८०)
प्रयागनारायण	४५)
मैनेजर हिन्दी साहित्य प्रेस	९६)
बिक्री पुस्तक	२०।)॥
	३५३।)॥

व्यय

किराया मकान (मई, जून, जुलाई)	१३॥)
डाक व्यय	१२=)
पिछले ओवर ड्राफ्ट दिये	१६१।≡)४
चटरजी, मरम्मत नल द्वारा	७)
बाबू जवाहरलालको	१००)
मुत्फर्रिक	१≡)॥
	२९५।) १०
रोकड़ बाकी ३१ अगस्तको	५७॥≡)८
	३५३॥।)
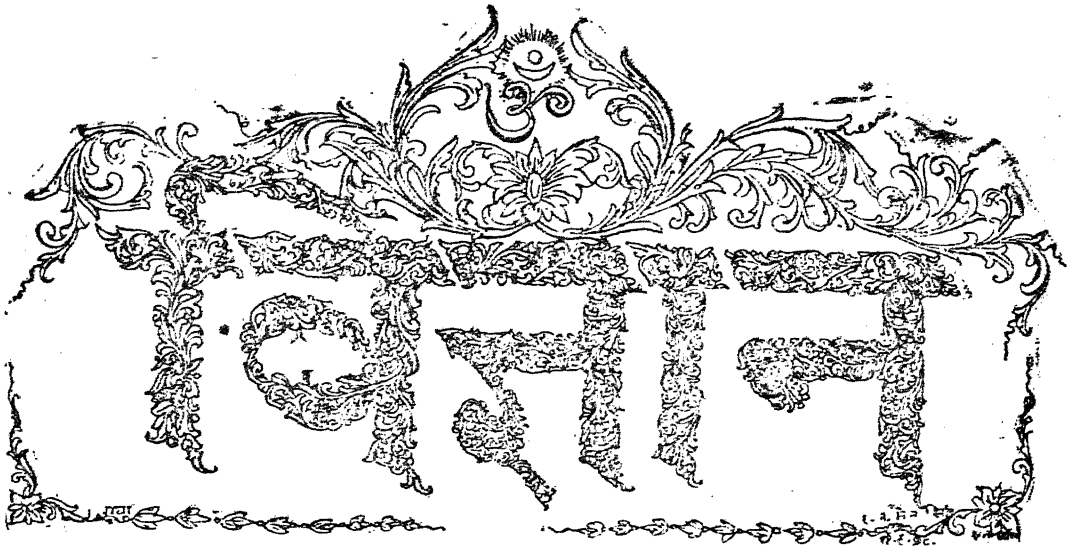
विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १५ } कन्या, संवत् १९७९। सितम्बर, सन् १९२२ { संख्या ६

टिड्डी

[ले०—श्रीयुत शंकरराव जोशी]

यह कीड़ा सरलपक्ष वर्गका है। इस वर्गके कीड़ोंका आकार बड़ा चमत्कारक होता है। सब सरल पंखवाले कीड़ोंका इस वर्गमें समावेश होता है।

सरल पक्ष वर्गके कीड़ोंके आगेके पंख सरल, लम्बे और अर्ध-पारदर्शक होते हैं। पीछेके पंख सकड़े और चन्दनके पंखेके समान घड़ीदार होते हैं। इस वर्गके प्राणियोंका मुख मज़बूत होता है, जिससे वह अपना भोजन चबाकर खा सकते हैं। टिड्डी, झिल्ली, झिंगुर, रामजीका घोड़ा (mantidae), ऊंट (Phasma Rossia) अँखफुड़वा आदि प्राणी इसी वर्गके हैं!

हमारे अधिकांश पाठक इस वर्गसे अवश्य परिचित होंगे। अतएव उसके बाह्य स्वरूपका वर्णन करना अनावश्यक है।

मादाका पेट मोटा होता है। इसीकी सहायतासे वह रेतीली जमीनमें छेदकरके अण्डे रखती है। प्रसवका समय आनेपर मादा अपने अण्डे एक दूसरे से चिपकाकर रखती है। छेदके भर जाने पर माता अण्डोंपर एक प्रकारका पदार्थ चुपड़ देती है, जिससे वह एक दूसरेसे अच्छी तरह चिटक जाते हैं। सूखने पर इस पदार्थका रंग रेतके रंगमें मिल जाता है, जिससे अण्डोंका पता लगाना कठिन हो जाता है।

मादा प्रत्येक बार ५० से १०० तक अण्डे देती है। यह अण्डे तीन अठवारे तक ज़मीनमें रहते हैं और तब उनमें से हरे रंगके छोटे कीड़े निकल आते हैं। कुछ घंटे बाद कीड़ा त्वचा बदलता है, जिससे उसका रंग काला हो जाता

है। यह इधर उधर उछलता फिरता है और वनस्पति पर अपना जीवन-निर्वाह करता है। कीड़ा धीरे धीरे बढ़ता रहता है और तब यथा समय इसके पंख फूट आते हैं। पंखोंके निकल आने पर टिड्डेका शरीर लाल रंगका नज़र आने लगता है। उसका सर और पेट भी लाल हो जाता है। यह स्थिति प्राप्त होते ही समझ लेना चाहिये कि उसकी पूर्ण बाढ़ हो गई है। अण्डेमें से निकलनेके बाद करीब एक महीनेमें कीड़ेकी पूर्ण बाढ़ हो जाती है।

पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुए कीड़ेके शरीरपर टिपके रहते हैं एवं उसके पिछले पैर बहुत मज़बूत होते हैं। अतएव यह बहुत दूर तक कूद सकता है। टिड्डी न तो चलती और न दौड़ती है। दूर जानेके लिए वह उड़ती है और पास जानेके लिए छलांग मारती है।

नर मादाको खुश करनेके लिए गाना गाता है। वह यह गाना मुँहसे नहीं गाता। पिछले पैर और पंखके घिसनेसे एक प्रकारका शब्द निकलता है। यही उसका गाना है। आवाज गूँजनेके लिए ईश्वरने उसके पिछले पैरोंके पास एक गढ़ा बनाया है, जिसका मुख महीन त्वचासे मढ़ा होता है। सितारकी तुम्बीकी तरह यह गढ़ा काम देता है। नर पहले एक पांव पंख पर घिसता है और थक जाने पर दूसरा पांव। गानेका शब्द सुनते ही मादा सब सुध बुध भूलकर नरके पास दौड़ जाती है।

भारतवर्षमें कभी कभी टिड्डीकी संख्या बहुत बढ़ जाती है, जिससे फसलका सत्यानाश हो जाता है। देश पर आनेवाली छह ईतियोंमें 'टिड्डी दल' (शलभ) का भी समावेश होता है। भारतवर्षमें बहुत करके सीमान्त प्रदेश, राजपूताने का पश्चिमी भाग और मैसूरके पश्चिमवाले कूर्ग आदि प्रान्तों पर ही टिड्डी दलके आक्रमण ज्यादा होते रहते हैं। अन्य प्रदेशोंपर भी इनके आक्रमण होते तो जरूर हैं, परन्तु बहुत कम।

एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जानेकी इच्छा होनेपर टिड्डी पहले अपना शरीर फुलाती है और तब बड़े वेगसे उड़ जाती है। वह एक दिनमें ४० मील तकका प्रवास करती है। शीत प्रधान देशोंमें यह कम पाई जाती है। हिन्दुस्तानकी तरह चीन, मिश्र आदि उष्ण कटिबंधके देशोंपर भी टिड्डीका आक्रमण होता है। मिश्र देशमें टिड्डी दल आठवां अरिष्ट माना गया है। जिस समय टिड्डी दल आकाश मार्गसे प्रवास करता है उस समय ऐसा शब्द होता है, मानों ऊंचे पहाड़ परसे जल गिर रहा है। दिनमें अंधेरा हो जाता है और दशों दिशाएं टिड्डियोंसे भर जाती हैं। एक आध वृक्षपर टिड्डियां बैठते ही, इनके वजन से डालियां टूट जाती हैं। सारे प्रदेशके वृक्षोंपर पत्ते तक नहीं रहने पाते हैं। इस प्रकार थोड़े ही समयमें सारे देशकी वनस्पतिको चटकर यह दल वहांसे कूच बोल देता है।

टिड्डी दलके आक्रमण से तो, फसलके नष्ट हो जानेके कारण अकालकी भयङ्कर ज्वालासे, प्रजाको कष्ट होता ही है, परन्तु उनके मर जानेसे भी भयङ्कर हानि होती है। टिड्डी दल एक दम पैदा होता है और एक दम मर भी जाता है। उनके असंख्य शरीर सड़ने लगते हैं, जिससे हवा दूषित हो जाती है और तब रोग फैलकर हज़ारों व्यक्ति अकालमें ही कालके गालमें चले जाते हैं।

ईसाइयोंके धर्मग्रंथोंमें भी टिड्डी दलका उल्लेख पाया जाता है। जब इसराईल लोग, मिश्र देश छोड़कर पेलिस्टाइन जाने लगे, तब मिश्रके परधर्मी राजा फाराओने उन्हें मार्गमें ही रोक दिया। इससे क्रुद्ध हो मूसाने अपनी लकड़ीकी सहायतासे टिड्डी दलकी उत्पत्ति की, जिसने फाराओके सारे देशकी फसल खा डाली। इससे डरकर राजा ने शरणागत हो उनसे टिड्डी दलका नाश करनेकी प्रार्थना की और कहा कि अब आपको न रोकेंगे। मूसाको राजा पर दया आई और उसने टिड्डी

दल नष्ट कर डाला। यह कथा अंजीलके एक्सोडस भागमें लिखी है।

ग्रीस देशमें भी टिड्डी दलका भय बना रहता है। टिड्डी दलके नाशके लिए ग्रीसके एक राजाने तो यह आज्ञा सर्वत्र प्रचारित कर दी थी कि हर एक आदमीको इतने सेर टिड्डी मारनी ही चाहिये। लेमनांस द्वीपका एक राजा तो करके बदलेमें मरी हुई टिड्डियां ही लेता था।

टिड्डी-दलका नाश करनेके लिए फ्रांसको एक बार पैंतालीस हज़ार फ्रैंक (फ्रांसका सिक्का) खर्च करने पड़े थे। एवं उस साल तीन हज़ार क्विंटल (लगभग ४०९८ मन) अण्डे नदीमें बहाये गये थे। हिसाब लगाकर देखा गया था कि करीब ५२५०००००० अण्डे नदीमें डाले गये थे। इतने प्राणियोंका नाश करने पर भी लाभ कुछ नहीं हुआ।

अफ्रीकाके हबशी, टिड्डी दलके आने पर, ज़ोर ज़ोरसे चिल्लाकर उन्हें भयभीत कर भगानेकी कोशिश करते हैं। हंगेरीमें टिड्डीके आनेपर तोपें छोड़ी जाती हैं। छठी और सातवीं शताब्दिमें टिड्डी दलको भगानेके लिए इथोपियन लोग एक अपूर्व युक्ति काममें लाते थे। धर्माध्यक्ष लोग दो चार टिड्डियोंको पकड़ कर उनके पंखोंमें एक चिट्ठी बांध देते थे जिसमें लिखा रहता था,—"हे टिड्डियो, यह देश पवित्र शास्त्रके अनुसार आचरण करनेवाले ईसाई लोगोंका है। इसलिए यदि तुम अपना भला चाहो, तो तीन घंटेके अन्दर यहांसे भाग जाओ, नहीं तो हम तुम्हें शाप देकर दग्ध कर देंगे।" चिट्ठी बांधकर टिड्डीको इसलिए छोड़ देते थे कि वह जाकर अपने साथियोंको चिट्ठी पढ़कर सुना दे और सब डर कर भाग जायं। मालूम नहीं 'दल' उनके आपसे डर कर भाग जाया करता था या नहीं। हमारे मतसे तो वह ऐसी बंदर घुड़कीसे कब डरनेवाला है। अस्तु, सोलहवीं शताब्दि तक यह बात पाई जाती है।

ऐसी ही मूर्खता-पूर्ण प्रथा मुसलमानोंमें भी प्रचलित थी। टिड्डी दलके आनेपर, वह कुरानका एक वाक्य लिखकर एक लकड़ीके सिरे पर बांध देते थे और तब उसे खेतमें खड़ी कर दिया करते थे। उनका विश्वास था कि जिस खेतमें यह लकड़ी खड़ी होगी उसमें टिड्डियां कदापि प्रवेश नहीं करेंगी। एक दूसरे उपायका अवलम्बन और किया जाता था। चार टिड्डियोंको पकड़ कर उनके परों पर कुरानके कुछ वाक्य लिख दिये जाते थे। बाद्में वह इस गर्ज़से छोड़ दी जाती थीं कि उन वाक्योंको पढ़कर सब टिड्डियां वहांसे चल दें।

कुछ लोगोंके मतसे टिड्डियोंमें कुछ गुण भी हैं। अरब लोगोंका विश्वास है कि यदि स्वप्नमें टिड्डी मनुष्यके मुखमें घुस जाय तो उसका भाग्योदय अवश्य होता है। यदि स्वप्नमें सोनेकी टिड्डीकी वर्षा हो, तो खोई हुई वस्तु मिल जाती है। उमर बेनेल सोतल खलीफ़ाके शासन कालमें एक बार एकाएक टिड्डियां अन्तर्ध्यान हो गईं। यह देख खलीफ़ा भयभीत हो गया। कारण उसे पूर्ण विश्वास होगया कि शीघ्र ही राज्य पर संकट आनेवाला है। उसको पूर्ण विश्वास था कि भूमंडल परसे टिड्डियोंका अस्तित्व मिटते ही मानव प्राणियोंका भी नाश हो जायगा। अतएव उसने अपने कुछ सरदारोंको टिड्डियां लानेकी आज्ञा दी। बेचारे सरदारोंने अनेक कष्ट झेलकर कुछ टिड्डियां प्राप्त कर खलीफ़ाको नज़र कीं। खलीफ़ाने इससे प्रसन्न हो सरदारोंको इनाम दिया और सारे राज्यमें खुशी मनाई गई।

अरबिस्तान, तुर्किस्तान आदि देशोंके लोग टिड्डी बड़े चावसे खाते हैं। उनके मतसे उसका स्वाद केकड़ेके स्वादके समान होता है। कहीं कहीं टिड्डी मार कर सुखाई जाती हैं और तब उसके आटेको दूधमें सानकर रोटी बनाते हैं। कभी कभी बाज़ारोंमें टिड्डी ज्यादा आने पर गोश्तको दर भी गिर जाती है। अरबिस्तानके हकीमोंका मत है कि टिड्डी पौष्टिक है। अरब लोग ऊंटोंको टिड्डी चंदीकी तरह खिलाते हैं। वहां दवाइयोंमें भी इसका उपयोग किया जाता है। टिड्डी दलको देख

कर अरबोंको कितना आनंद होता है और वह उसे खानेके लिए कितने उत्सुक रहते हैं, इस सम्बन्धमें पालग्रेव एक जगह लिखते हैं—

"हम बहुत ही थक गये थे। हाफहूफ नगर अभी १५ मीलकी दूरी पर था। यदि हम अपनी यह चाल कायम रखते तो सूर्य निकलनेके पहले ही वहां पहुंच जाते। परन्तु मार्गमें एक विघ्न उपस्थित हो जानेसे एक कदम आगे बढ़ना भी मुश्किल हो गया। हम हूसाके मैदानमें से गुज़र रहे थे। एका एक सामने कुछ काला काला पहाड़ सा नज़र आया और तब जलप्रपातका सा शब्द होने लगा। इससे डर कर हमारे ऊंट उछलने लगे। ध्यान लगाकर देखने पर पता चला कि यह सब टिड्डी दलकी करामात है। 'दल' जमीन पर विश्राम ले रहा था। वह सूर्योदय तक वहीं बैठा रहता; परन्तु हमारे ऊंटोंने उनके आराममें खलल डाल दिया। हमारे साथ ऊंट भी कम न थे। 'दल' ऊंटोंसे डर कर आकाशमें चक्कर काटने लगा। टिड्डी दल डरा ऊंटोंसे और ऊंट डरे टिड्डियोंसे! ऊंटोंके तो होश हवास हवा हो गये!! परन्तु ऊंटों पर बैठे हुए लोगोंको टिड्डी दल देखकर बड़ा आनन्द हुआ! इस प्रान्तमें टिड्डी एक स्वादिष्ट खाद्य-पदार्थ-पकवान, माना जाता है। भारत और सीरियाके लोग टिड्डी दलसे बहुत डरते हैं। परन्तु वहांके लोग इसके आक्रमणके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं। इसका कारण भी है। अरबिस्तान और उत्तरकी ओरके सीरिया आदि प्रान्तोंकी टिड्डियोंमें बड़ा अन्तर है। इसका रंग ताम्बेके समान लाल होता है और मोटाई और लम्बाईमें आदमीकी छोटी अंगुलीके समान होती है। इनमें रानी नहीं होती। कहा जाता है कि तवे पर सेकने या उबालनेपर इनका स्वाद रुचिकर हो जाता है। उधरके लोग ज्यादातर उबालकर ही खाते हैं। टिड्डी देखते ही उनके मुँह-में पानी भर आता है। हमें रास्तेमें टिड्डी मिली थीं। अरबोंने सोचा कि ईश्वरने ही उनके लिए उन्हें भेजा है। ऐसा कौन मूर्ख है, जो घर आई लक्ष्मीको लात मारे! टिड्डियां देखते ही उनकी भूख प्यास सब भाग गई। वह एकदम ऊंटों परसे कूद पड़े और लगे टिड्डियां समेट समेट कर घोड़ों-के तोबरों चादरों और कपड़ोंमें भरने! हर एकने, जिससे जितनी हो सकी उतनी टिड्डियां बांध लीं। सूर्योदय नहीं हुआ था। लोग उन्हें पकाकर खाने-के लिए इतने उत्सुक हो रहे थे कि पलपल युगके समान बीतने लगा। इस प्रकार बहुत सा समय नष्ट करने पर हम हाफहूफ की ओर बढ़े।"

मालवा, दक्षिण भारत आदि प्रदेशोंमें, जहां करीब करीब सब कृषि योग्य भूमि जोत ली गई हैं, टिड्डियोंको अण्डे रखनेके लिए स्थान नहीं मिलता। इसलिए वह वहां स्थायी रूपसे नहीं रह सकतीं। परन्तु पंजाब और राजस्थानकी जमीन रेतीली है। यह जमीन अण्डे रखनेके लिए उपयुक्त है और यही कारण है कि वहां टिड्डियां स्थायी रूपसे रहने लगती हैं। उन प्रान्तोंमें इनसे फसल-को बहुत हानि पहुंचती है।

टिड्डियोंके प्रतिकारका एक मात्र उपाय उनका मार डालना ही है। पूर्ण बाढ़ हो जाने पर उनका नाश करनेकी अपेक्षा अण्डावस्थामें उनका संहार करना अधिक सरल है। टिड्डी मार्च एप्रिल में अण्डे देती है। अण्डोंका पता लगाकर उनका कुचल डालना ही सर्वोत्तम उपाय है। जमीनमें हल चलाने या अण्डोंको जमीनमें गाड़नेसे काम नहीं चल सकता। टिड्डीका नाश ही करना हो तो दया माया छोड़कर अण्डोंको चकना चूर ही कर डालना चाहिये। यह काम ज्यादा कठिन भी नहीं है। रावल पिंडीमें एक बार इसी तरह अण्डोंका नाश किया गया था। वहां डेढ़ दो मासमें करीब ५ मन अण्डे तोड़े गये थे।

यदि अण्डावस्थामें कीड़ोंका संहार न किया जा सके, तो 'परी' अवस्थामें तो ज़रूर किया जाना चाहिये। इस अवस्थामें प्राणीके पंख नहीं होते, जिससे वह उड़ नहीं सकता। 'परी' (nymph) हमेशा एक ही दिशाकी ओर जाती हैं।

इसलिए जिधरकी ओर कीड़े जाते हों, उधर स्थान स्थान पर एक एक फीट गहरी लम्बी नालियां खोदी जायं और तब उन्हें झाड़ूसे इन नालियोंमें गिरा कर ऊपर मट्टी डाल दी जाय। मट्टीमें दब जानेसे दम घुट कर कीड़ा मर जायगा। टिड्डीके नाशकी एक युक्ति और है। पतंगकी तरह टिड्डी भी प्रकाशकी ओर आकर्षित होती है। अतएव रातको खेतोंमें आग जलानेसे टिड्डियां उसमें कूद कर प्राण विसर्जन कर देंगी। इस युक्तिसे भी कई बार हज़ारों मन टिड्डियोंका नाश किया गया है।

पंख निकल आने पर इनका मारना ज़रा कठिन है। कपड़े आदिकी फटकारोंसे और ढोल कनस्तर आदि पीट कर डरानेसे थोड़ा बहुत फ़ायदा हो तो हो। पूर्णावस्थामें उनके मारनेका उपाय यह है कि सूर्योदयके पहले वह लाठियों-से पीटकर नष्ट की जायं। कारण कि ज़रा सी ठंडसे भी वह इतनी अकड़ जाती हैं कि उड़ तक नहीं सकतीं।

भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंकी टिड्डियोंमें अन्तर तो अवश्य है, परन्तु उस पर यहां कुछ लिखना हम उचित नहीं समझते। अतएव इस लेखको यहीं समाप्त करते हैं।

राहु

(गतांकसे सम्मिलित)

सूर्य और चन्द्रमाका ग्रहण ही लगता है या और ग्रहोंका ग्रहण भी माना जाता है? प्राचीन ग्रन्थोंमें तो अन्य ग्रहोंका ग्रहण भी माना गया है।

पर्वमें ग्रहण तो लगता ही है। परन्तु प्राचीन ग्रन्थोंमें बिना पर्वके दिनके भी ग्रहणका लगना माना गया है। यह बड़ा भारी दुःशकुन समझा जाता है; जैसा मयूर चित्रमें लिखा है 'अपर्वणि उपरक्तः प्रजानाशाय' अर्थात् पर्वके अतिरिक्त जो ग्रहण लगे तो प्रजाका विनाश होता है। वृद्ध गर्गने लिखा है कि "चान्द्र और सूर्य दोनोंका ग्रहण त्रयोदशीमें भी देखा गया है। परन्तु ऐसे अवसरमें बहुत से राजाओंके छत्र टूट जाते हैं।"

कतिपय आचार्य एक ही दिन दोनोंका ग्रहण होना भी मानते हैं। वह ऊपरके लिखे गर्गके वचन-का भी तात्पर्य ऐसा ही लगाते हैं। उनका आधार महाभारत का उल्लेख है। भीष्मपर्वमें व्यास लिखते हैं।

"त्रयोदशीको, एक ही दिनमें, चन्द्र और सूर्य दोनोंका ग्रहण लग गया है। यह बिना पर्वके दोनों ग्रहण प्रजाके विनाश देखा चाहते हैं।"

काश्यक श्रुतिमें भी लिखा है—

"बिना पर्वके राहुका ग्रास दीखे तो राजाका बध ही इसका फल कहना चाहिये।

इस प्रकार ही नारद, विष्णु धर्मोत्तर, पराशर आदिने भी अपर्व ग्रहणका उल्लेख किया है।

यद्यपि यह सभी बातें बड़ी विस्मय जनक हैं तो भी दीर्घदर्शी विद्वानोंने इनका अनुमोदन किया है। इन बातोंका विरोध कहीं नहीं मिलता। इससे प्राचीनोंकी दीर्घदर्शिता और सूक्ष्मदर्शितामें कोई भी सन्देह नहीं रह जाता। अब पाठकोंका एक बातकी ओर ध्यान खींचते हैं। वह यह कि यदि गणितका ज्ञान पूरा न हो या गणित भागमें भी संदेह हो तो ग्रहणके आगमनको किस प्रकार जान सकते हैं। इसकी भी प्राकृतिक युक्तिका विवेचन प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलता है। राहु दर्शनके निमित्तोंका उल्लेख करते हुए वराहमिहिरने लिखा है कि "पांच ग्रह एक राशिमें आये हों तब कभी भी ग्रहण नहीं होता। परन्तु इसपर कोई विशेष विश्वास न करना चाहिये"

वृद्ध गर्ग लिखते हैं—

सूर्य चन्द्रकी उच्चगति, स्पन्दन, प्रेपन, न्यून रश्मि-होना, विवर्णता, या रश्मि शून्य होना, बिम्बका पूरा न होना, चन्द्र बिम्बका कलङ्क हट

जाना, अन्धकार, या धूमलेखा या मेघके समान रेखाओंका विम्बपर प्रकट होना, कुछ पीला रंग पड़ जाना, प्रति सूर्यका दीखना, विम्बपर परिवेशका दीखना, भयानक पक्षी गीध काग आदिका शोर मचाना, कुत्तों या मांसाहारी जन्तुओंका ऊपरको मुख उठाकर रोना, भय दर्शाना, बालू कंकड़ मिली हुई घोर आन्धीका चलना, भूकम्पका होना, उल्कापात होना, तारोंका गिरना, बार बार बिजलियोंका कड़कना, दूधवाली गायोंका दूध घट जाना, यह सब ग्रहण होनेके समयके निमित्त या शकुन समझने चाहियें।"

पराशर मुनिने इनका उल्लेख तो किया ही है, परन्तु साथ ही अन्य भी विशेष निमित्तोंका उल्लेख किया है। जैसे—

"संध्याके समय दिग्दाह, आकाशसे धूलिका गिरना, गर्मी सर्दीके मौसमका बदल जाना, हीरा, सोना चान्दी और मणियोंकी कान्तिका नष्ट हो जाना, सूर्य मण्डलसे निकलनेवाली श्याम रेखाका चन्द्रमें प्रविष्ट होना, निरन्तर गीदड़ियों और कुत्तोंका रोना, पानीकी शीतलताका मारा जाना, मालाओंका अचानक कुम्हला जाना, चन्द्र ग्रहणके समय सूर्यमें विकार और सूर्य ग्रहणमें चन्द्रमामें विकारका उत्पन्न होना, आदि निमित्त देखे जाते हैं। यह निमित्त जिस दिशामें हों उस दिशासे ग्रहण लगता है और जिस दिशाकी ओर इनको गति हो उधर ही से मोक्ष होता है।

पराशरने और भी विशेष लिखा है—

"चन्द्रमाका कांपना, चन्द्रमाके कलङ्कका लुप्त हो जाना, उगते समय ही चन्द्रकी कान्तिका न होना, चन्द्रके दाएँ शृंग पर कुछ अन्धकारकी झलक दीखना, चन्द्रके बायें शृंगका बहुत अधिक उठा होना, या चान्दका दोहरा दीखना।"

इन निमित्तोंके नियत कालके विषयमें वृद्धगर्गने लिखा है—"यह निमित्त अष्टमीके बाद ही प्रकट होने लगते हैं। शुक्लपक्षकी अष्टमी और पूनोंके बीचमें चन्द्रग्रहणके और कृष्णाष्टमी और अमावसके बीचमें सूर्यग्रहणके निमित्त प्रबल हो जाते हैं।"

बराहमिहिरने इन निमित्तोंको विशेष मुख्यता नहीं दी। उनका कथन है कि यह निमित्त अन्य समयोंमें भी प्रकट होते हैं और उनके फल अन्य उपद्रव और उत्पात आदि भी देखे जाते हैं।

राजपुत्र अपने ग्रन्थ गजदन्त वैकृतमें लिखते हैं कि यदि हाथी दांत पर नीली आभा दीखे तो चन्द्रका ग्रहण और लाल आभा दीखे तो सूर्यका ग्रहण समझना चाहिये।

इस प्रकार प्राकृतिक निरीक्षण जो आर्योंसे सहजमें किया जाता है उसका संक्षेपसे पाठकोंके समक्ष निरूपण कर दिया। इनका सूक्ष्म निदर्शन करना और सत्यताका परखना विद्वानों और निरीक्षकोंका काम है। यह सब घटनाएं एक ही ग्रहण पर तो उपस्थित नहीं होतीं। कितनी ही सदियोंमें यह सब प्रकारके ग्रहण और निमित्त कदाचित् एक एक बार भो घटित न हों; परन्तु फिर भी भारतीय विद्वानोंका वर्त्तमानमें बहुत कम ध्यान है। वह खोजकी बातोंमें निरीक्षण परीक्षणके झंझटोंसे बचकर यूरोपियन लोगोंकी पुस्तकोंके वर्क़ पलट लेना ही पर्याप्त समझते हैं। यदि कोई बात प्राचीन आचार्यने लिख दी तो वह तो ढकोसला हो जाती है और वही बात किसी और मुखसे निकल जाय तो साहबोंकी वैज्ञानिक प्रामाणिक आलोचना हो जाती है। फलतः इस दास भावका इतना गहरा असर हमारे मन वाणी और लेखनीको जकड़े है कि खोज करनेका माद्दा तो हममें सदाके लिए शान्त हो गया। ऊहापोह तक करनेमें बिरादरीके झगड़े खड़े हो जाते हैं। अस्तु, अब हम फला फल पर आते हैं।

गत विज्ञानके अंकोंमें धूमकेतु और उल्कापात के लेखोंमें हम अपना संक्षिप्त मत प्रकट कर चुके हैं। इस विषयमें हम इतना ही विशेष कह सकते हैं कि आकाश मण्डलमें अपनी कक्षा पर घूमते

हुए सूर्य चन्द्र और पृथ्वीकी विशेष स्थित हो जाना ही वस्तुतः दोनोंके ग्रहणोंका हेतु है। दोनों ग्रहणोंके समय सूर्य चन्द्र और पृथ्वी तीनों एक सीधमें होते हैं। ऐसी दशामें परस्पराकर्षणमें अवश्य भेद पड़ता है। पर्वके दिनोंमें समुद्रकी वेलाओंमें ही बड़ा भेद होता है। पूर्णिमा और अमावस्या दोनों दिनों की बेला (Tides) या ज्वार अन्य दिनोंकी अपेक्षा सबसे अधिक होता है। इसी कारण समुद्री वायु और भौमिक वायु विशेष रीतिसे चलती हैं। भिन्न भिन्न ऋतुओंमें ऐसी विशेष घटनाओंका विशेष प्रभाव भी हो सकता है। उन्हीं घटनाओंका प्राणि संसार पर शारीरिक और मानसिक प्रभाव भी होना असम्भव नहीं है। तिसपर भी इन घटनाओंमें ग्रहणकी विशेष कारणता माननी ठीक नहीं। हां एक विशेषता तो हम भी बतला सकते हैं।

ग्रहणोंसे मूर्ख लोगोंको बड़ा भय होता है। वह असुरकी भावनासे उपवास करते हैं और दान देते हैं। तीर्थके पण्डे लोग तीर्थोंपर आये भोले लोगोंको खूब ठगते हैं। ऐसे अवसरों पर होने वाले मेलोंमें राज्यका कुप्रवन्ध और अवस्था ठीक न हो तो हजारों आदमी स्त्रियां बच्चे स्नानके समय कुचले जाते हैं। बहुत से लुट जाते हैं। बहुतसोंसे बड़ा अनाचार होता है। इन सबका कारण क्या है? ग्रहण ही। यदि ऐसी कारणता मान ली जाय तो क्या आपत्ति है।

पूर्ण सूर्य ग्रहण हो जाने पर सहसा रात्रिका सादृश्य हो जाता है। घटना विशेष होती है। इस विशेष अद्भुत दृश्यको देख कर सभी प्राणिवर्ग कुछ विस्मयमें; अज्ञान वश भयमें और कुछ स्वभावतः भिन्न भिन्न चेष्टाएं करते देखे जावें तो क्या वह सब क्रियाएं ग्रहणका निमित्त कहा सकेंगी। कभी नहीं। अस्तु। कुछ भी हो यह सभी बातें विचारने योग्य हैं। चन्द्र ग्रहण पृथ्वीकी छायासे होता है। पूर्ण छायामें चन्द्रमा सर्वथा लुप्त हो जाता है। अर्ध छायामें आताम्र रहता है; क्यों, कि कुछ अंशका प्रकाश फिर भी बचा ही रहता है। अर्ध छायामें पूरा बिम्ब प्रविष्ट हो जाने पर उसका रूप हलका लाल रहेगा। भूमिके वातावरणमेंसे विचलित किरणोंके चन्द्र बिम्ब पर पढ़ने पर बालारुणका सा रंग हो जायगा। किरण भूमिके जल वाष्पमय वातावरणमें से गुज़रती हुई यदि सातों रंगोंमें फट जायंगी तो ग्रस्त चन्द्र बिम्ब पर इन्द्र धनुषका सा रंग दीखेगा। नाना प्रकारके ग्रहण या राहुके रंगोंका अधिक मुख्य कारण पृथ्वीके वातावरणकी विशेषता उसमें जलीय वाष्पकी सत्ता या अभाव और न्यूनाधिकतापर निर्भर है। इसी प्रकार द्रष्टाकी स्थानिक वायुके उक्त विशेषताओंपर भी अवलम्बित है। इस मिटीरियालोजीके सिद्धान्तोंके अनुकूल वर्षा आंधी और दुर्भिक्ष सुभिक्ष आदिका अनुमान करना बहुत युक्ति संगत है। उन्हींके आधारपर लोक व्यवहारमें आनेवाले परिवर्तनोंका अनुमान करना भी संगत होगा। जैसे किसी चिन्हको देख कर यह अनुमान हुआ कि सावन मासमें वर्षा न पड़नेसे खरीफ़की फ़सल न होगी या पाला अधिक पड़ेगा और इससे गंगाके पश्चिमके देशोंमें दुर्भिक्ष पड़ेगा। इससे यदि वहांके वासी अपना देश छोड़कर अपने सहज स्वभाव सिद्ध प्रकृतिसे गंगाके पूर्वके देशोंमें चले आवें और वहां लूट लें या आक्रमण कर दें, तो दैवज्ञ अवश्य कहेगा कि देखा राहुको ग्रसे चन्द्रमाके ऐसे रूप होने पर पश्चिम देशोंमें दुर्भिक्ष और पूर्व देशोंसे कलह होता है।

ठीक इसी प्रकार बहुत से फल देश किये गये हैं, जिनको ऊपर लिख आये हैं। पाठक कुछ भी फलादेश पर ध्यान देंगे तो असली कारणका पता चल जायगा।

दुर्भिक्षको लीजिये। जब दुर्भिक्ष पड़ता है तो निश्चयसे वृष्टि नहीं होती, अन्न नहीं उपजता, या खड़ी खेती नष्ट हो जाती है। ओला पड़ जाता है। या पुरवा हवा चल जानेसे अनाजके दाने पतले पड़ जाते हैं। या टिड्डी पड़ जाती है।

फलतः दुर्भिक्ष हो जाता है। और लोग भूखसे पीड़ित होकर चोरी करते हैं, लूटते हैं, अट्ट सट्ट खा जाते हैं, भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। यही दुर्भिक्षके समयकी सब घटनायें होती हैं।

वराहने लिखा है जब राहुका रंग हरा होता है तब प्रजामें रोग बहुत होते हैं और अन्न अति वृष्टि और अनावृष्टि आदि विपत्तियोंसे नष्ट हो जाता है।

जब राहुका रंग मटैला, लाल, भूरा, नीला, कई रंगका हो, या हरा हो, या लाल हो तो भी लोग भूखों मरते हैं और महाव्याधियां आदि होती हैं; क्योंकि यह रंग सभी वायुमण्डलमें अति वृष्टि या धूल या रूखेपनके द्योतक हैं। यदि वायुमण्डलमें जल होगा तो राहुका रङ्ग भी धूआंके समान या धूलिके समान या निर्मलीके बीजके समान मटमैला होगा; क्योंकि घने वातावरणमें से किरण इतनी तिरछी होकर या विचलित होकर नहीं निकल सकती और इसीलिए किरणोंके फटने पर नाना रूपोंमें इन्द्र धनुषाकार रङ्ग नहीं पैदा होते।

इसी प्रकार अन्योंको भी समझना चाहिये।

अँधेरी कोठरी

[ले०—श्री "सिद्धहस्त"]

(गताङ्कके आगे)

६—खिड़कियों और दरवाजोंका बन्द करना

ड़ी देरके लिए हम मान लेते हैं कि यह खिड़की (या दरवाजा) अँग्रेज़ी ढंगका है, अर्थात् पल्लोंके बैठनेके लिए चौखटेमें कतरी कटी है और पल्ले कब्ज़ों (hinges) द्वारा चौखटेमें लगे हैं। चौखटे और पल्लेके जोड़को इस प्रकार परिवर्तन करना कि इस मार्गसे प्रकाश भीतर न आ सके पहिला कर्तव्य है। इसके लिए चार अंगुल चौड़ी काले मोमजामेकी एक लम्बी पट्टी चाहिये। यह मोमजामा वही है, जिसके एक ओर चमकती सी वस्तु लगी रहती है और दूसरी ओर सादा कपड़ा रहता है। इसको औयल-क्लाथ (oil-cloth) कहते हैं और प्रायः सभी शहरोंमें बिकता है। इस पट्टीसे एक टुकड़ा खिड़कीकी लम्बाईके बराबर काटकर और उसकी पीठ पर गरम सरेस (glue) लगाकर, कब्ज़ोंके ऊपरसे, पल्ले और चौखटेके जोड़पर चिपका दीजिये (चित्र ६७) और सरेशको भली भांति सूख जाने दीजिये। ऐसा करनेसे आप देखेंगे कि पल्ला बन्द करने पर पल्ले और चौखटेके जोड़के मार्गसे प्रकाश भीतर नहीं आ सकता है। दूसरे पल्लेके लिए भी ऐसा ही कीजिये। अभी पल्लोंके ऊपर और नीचेके किनारोंसे, कतरोंके रहते हुए भी, कुछ कुछ प्रकाश भीतर आता है। इसको ठीक करनेके लिए प्रत्येक पल्लेके दोनों सिरों पर चार अँगुल चौड़ी और ½ इंच या कुछ अधिक मोटी लकड़ीकी पटरी इस प्रकार कीलोंसे जड़ दीजिये कि दो अंगुल तो पल्ले के ऊपर रहे और दो अंगुल बाहर निकली रहे (चित्र ६८) पल्लोंको बन्द करनेपर यह बाहर निकले हुए भाग चौखटों पर पड़ेंगे और इस प्रकार भीतर आने वाले प्रकाशको रोक देंगे। अभी दोनों पल्लोंके जोड़के लिए, जो इनको बन्द करने पर खिड़कीके बीचमें पड़ता है, कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है, परन्तु इसके लिए भी एक पल्लेके किनारे पर वही चार अँगुलकी लकड़ीकी पटरी जड़ देना सरल है। पल्लोंको देखने से ही स्पष्ट हो जायगा कि कौन से पल्ले पर इस पटरीको जड़ना चाहिये। इन पट्टियोंके जड़नेके बाद सब कतरियोंको, इन पटरियोके चौखटे पर पड़ने वाले भागोंको, चौखटेके भीतरी भागको और पल्लोंके किनारोंको गहरा काला रंग देना चाहिये, पर रंग ऐसा हो कि सूखने पर रँगे हुये भाग चमकने न लगें। उनको dead-black होना चाहिये। यदि पल्लोंमें शीशा लगा है तो ऊपर बतलाये गये मोमजामे (oil cloth)
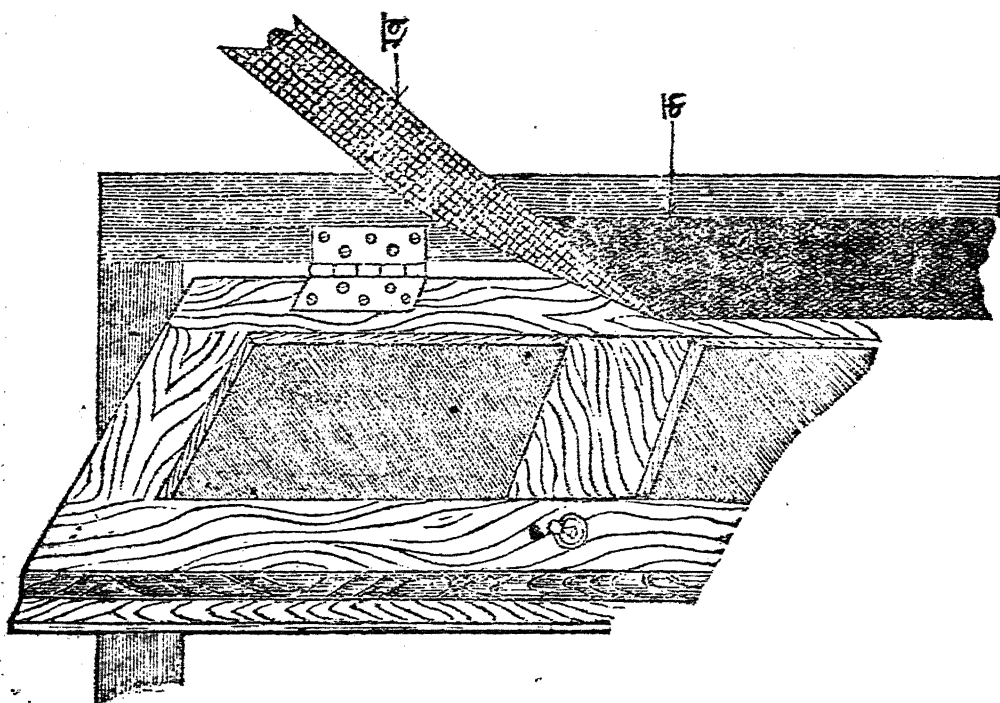
चित्र ६७
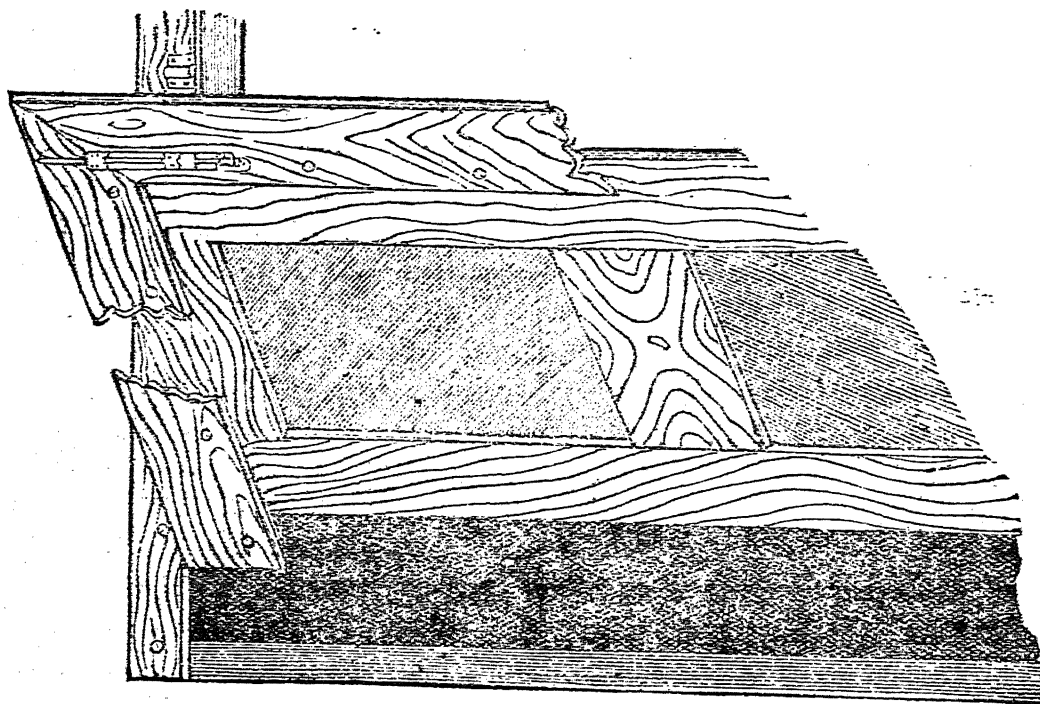
चित्र ६८

के एक या दो तहको इनके ऊपर जड़ देना चाहिये। पटरियोंके जड़ने से कदाचित विल्ली या सिटकिनी न बन्द की जा सके। ऐसी दशामें उन्हें उखाड़ डालना चाहिये और उनके बदलेमें दूसरी लगा देनी चाहियें, जो इन पटरियोंके ऊपरसे काम कर सकें। बहुधा पल्लोंके कुछ ऐंठे रहनेके कारण या अन्य किसी कारण पल्ले पर जड़ी पटरियां चौखटे पर चौचक नहीं बैठतीं और कुछ प्रकाश भीतर पहुंच ही जाता है। इसका उपाय यह है कि पुराने कपड़ोंकी एक गद्दी बनाकर (सबसे ऊपरका कपड़ा काला हो) चौखटे पर जड़ दीजिये। बहुत आवश्यकता न रहने पर भी सभी खिड़कियों और दरवाजोंके चौखटों पर ऊपर और नीचे दोनों ओर ऐसी गद्दी लगा देना अच्छा होगा। यदि पल्लोंके बन्द करनेमें कुछ कष्ट हो तो लकड़ीकी पटरियों और पल्लोंके बीचमें भी गद्देकी मोटाईसे कुछ कम मोटी कोई गद्दी या दफ़्ती या लकड़ी दे सकते हैं।

यदि ऊपरकी रीति से सब खिड़कियां और दरवाजे जो स्थायी रूप से एक दम बन्द नहीं कर दिये गये हैं बदल दिये जायं तो इन दरवाजों और खिड़कियोंके बन्द करते ही पूर्ण अंधकार हो जायगा। मेरी अंधेरी कोठरीमें दो दरवाजे और दो खिड़कियां थीं। एक दरवाजेको मैंने सदाके लिए बन्द कर दिया और इसकी किसी दरारसे प्रकाशके भीतर न आने देनेका भी पूरा प्रबन्ध कर दिया। बाकी दरवाजे और खिड़कियोंको मैंने ऊपरकी रीतिसे बदल दिया है। कोठरी अपने पुराने कामके लिए अयोग्य नहीं हुई है, परन्तु जब मैं चाहता हूं, एक मिनटमें इसको अँधेरी कोठरी बना लेता हूं।

मैं जानता हूं कि कुछ लोगोंको मोमजामेका दाम अखरेगा। कुछ लोगोंको सरेससे घृणा भी होती है। मोमजामेके बदलेमें पुराने काले कपड़ेको काले कागज़ पर लेईसे चिपका कर काममें ला सकते हैं। पर स्मरण रखना चाहिये कि यह इतना साफ नहीं रखा जा सकता जितना कि मोमजामा। फोटोग्राफ़रोंके यहां काला कागज़ बहुत मिल सकता है, या सादे कागज़को काला रंग सकते हैं। सरेसके बदले कीलोंको काममें ला सकते हैं। लकड़ी इत्यादिको चमक रहित काला करनेके लिए सबसे अच्छी वस्तु है—लाहकी वार्निश और कोरा काजल या कालिख। लाहकी वार्निश बनानेके लिए थोड़ा सा शुद्ध लाह, जिसको यहां लोग चपड़ा भी कहते हैं, मेथिलेटेड स्पिरिट (methylated spirit) में चौबीस घंटेके लिए घुलने को छोड़ दीजिये। लाहके घुल जाने पर लाह-वार्निश तैयार हो जायगी। इसीमें यथोचित मात्रामें कालिख छोड़कर खूब मिला दीजिये और तब जो कुछ रँगना हो रँगिये। यदि लाह अधिक पड़ जायगा तो लकड़ी पर चमक आ जायगी, पर लाहको इतना कम भी न होना चाहिये कि सूखने पर रँगी गयी लकड़ी पर हाथ फेरने से कालिख हाथमें लग जाय। जो किफायत करना चाहें वह हिन्दोस्तानी स्याहीसे ही काम चला सकते हैं, पर पानी पड़ने से यह स्याही धुल जाती है।

७—दूसरी विधि

आप कदाचित आश्चर्य करेंगे कि जब दरवाजोंपर कम्बल या रिजाई इत्यादिका परदा टांग देनेसे मुफ़्तमें काम बड़ी सरलतासे चल सकता है तो क्यों इतना बखेड़ा किया जाय। पर आप यह भूल रहे हैं कि बहुत सफाई रखनेपर भी रिजाई इत्यादि सभी प्रकारके परदोंमें इतना गर्द भरा रहता है कि छू जाते ही करोड़ों छोटे छोटे गर्दके कण हवामें उड़ने लगते हैं, और, जैसा कि कई बार ऊपर लिखा गया है, गर्दके कण फोटोग्राफके प्राणघातक शत्रु हैं। इसके सिवा एक बात यह भी है कि परदे कितने ही सावधानीसे क्यों न टांगे जांय, कुछ न कुछ प्रकाश भीतर अवश्य आता है। फिर इनके टाँगनेमें कितना समय नष्ट होता है और परिश्रम भी कितना करना पड़ता है। इस लेखकको।

परदोंका पूरा अनुभव है। ओफ! उस समयमें न जाने कितने नेगेटिव अन्य अन्य बातोंमें अच्छे होते हुये भी सुई-छिद्रोंसे नष्ट हो जाते थे। परन्तु हम एक काम कर सकते हैं। हम लकड़ीका एक चौखटा इतना बड़ा बना सकते हैं कि वह ठीक ठीक कतरीमें अँट जाय। इस चौखटेको काले मोमजामे, दफ़्ती या अन्य किसी अपार दर्शक वस्तुसे मढ़ सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर यह चौखटा कतरीमें बैठा दिया जा सकता है और सिटकिनी या बिल्लीकी सहायता से वहां टिका दिया जा सकता है। इस चौखटे पर जड़ी गयी दफ़्तीसे एक भागको निकाल कर लाल प्रकाशका

चित्र ६९

१—चौखटा; २—छिद्र; ३—तख्ते; ४—चौखटा; ५—सायबान; ६—लालकांच।

प्रबंध कर सकते हैं (प्रक्रम १३) और इसीमें वायुके आने जानेका भी प्रबन्ध कर सकते हैं (प्र० १०)। इस रीति से बने एक चौखटेका चित्र हम नीचे देते हैं। (चित्र ६९)

८—देशी ढंगके दरवाजे
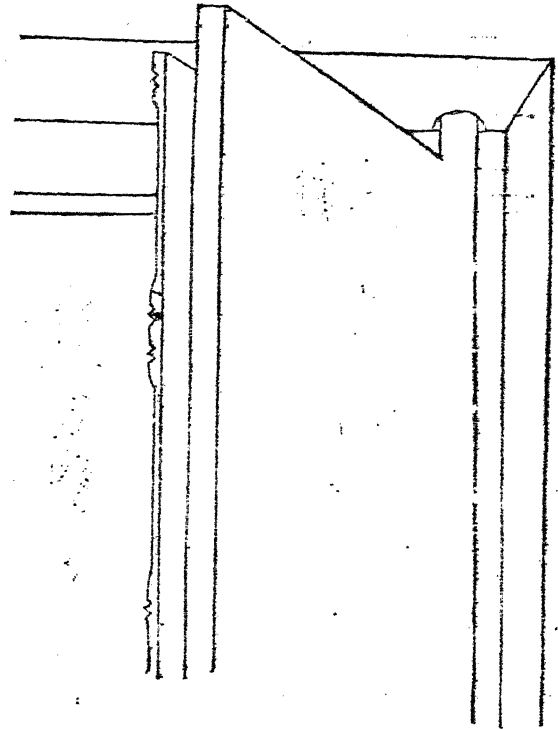
इस देशमें अधिकतर दरवाजों और खिड़कियोंमें कतरी नहीं होती और कब्ज़ोंके बदले पल्लोंमें चूल बनी रहती हैं या जड़ी रहती हैं। कभी कभी पल्लोंमें हुक लगा रहता है जो चौखटेमें लगे हुए कोढ़ोंमें पहिनाया रहता है। ऐसे दरवाजोंको या तो एक दम बन्द कर देना चाहिये या उनमें कुछ परिवर्तन करके उन्हें अँग्रेजी चालका बना देना चाहिये। इस परिवर्तनमें बहुत बखेड़ा नहीं करना पड़ता, क्योंकि चौखटेके बदलनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। मैंने जिस प्रकार अपने देशी चाल-

चित्र ७०—देशी दरवाज़ा

के दरवाजेको अँग्रेजी चालका बना दिया, यह मैं नीचे लिखता हूं। पहले तो पल्लोंको उतार मैंने ऊपर

की चूल काट डाली। फिर नीचे से एक पट्टी इतनी चौड़ी काट डाली कि पल्ला चौखटेकी भीतरी नापसे केवल तीन इंच बड़ा रह गया। चौड़ाईमेंसे भी एक धज्जी निकाल देनी पड़ी। इससे दो बातोंका सुभीता हुआ। पहिला तो यह कि पल्लेका वह किनारा जो गोल कर दिया गया था निकल गया और उसके स्थानमें एक चौकोर किनारा बन गया। दूसरे, दोनों पल्लोंकी चौड़ाई मिल कर चौखटेकी भीतरी चौड़ाईसे केवल तीन इंच अधिक रह गई। इसके बाद पल्लोंके बराबर मोटी लकड़ीकी पट्टियां चौखटे पर चारों ओर इसके भीतरी किनारोंसे १½ इंच हट कर पेंचसे जड़ दी गई। इन पट्टियोंकी चौड़ाई
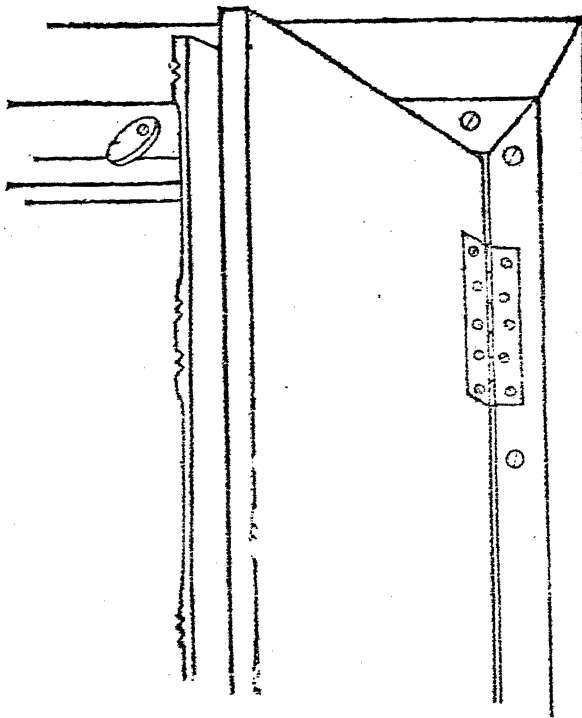
चित्र ७१—देशी दरवाज़ेको बदलकर बनाया अंग्रेज़ी दरवाज़ा

इतनी थी कि उनका दूसरा किनारा दीवारसे लग गया। इतना हो जाने पर पल्लोंको कब्ज़ों द्वारा लगा देना बहुत सरल बात थी। ऊपर का काम चित्र ७० तथा ७१ से स्पष्ट हो जायगा।

९—पलस्तर

ऊपर कई बार लिख चुके हैं कि फोटोग्राफर-को गर्दके कणसे सदा बचना चाहिये। इसलिए यह स्वाभाविक है कि वह अपनी अँधेरी कोठरीके पलस्तर (plaster) पर विशेष ध्यान दे। इस देशमें बहुत सी कोठरियोंकी दीवारों पर केवल मिट्टीका ही पलस्तर किया रहता है और उनको स्वच्छ रखनेके निमित्त वह मिट्टीसे लीपी भी जाती हैं। सावधानीसे काम करनेपर ऐसी कोठरीमें भी बहुत उत्तम फोटो उतारे जा सकते हैं। मिट्टीसे लीपनेके बदले दीवारें और फर्श यदि गोबरसे लीपी जांय और उनके सूख जानेपर झाड़ू से खूब साफ कर दी जांय तो गर्दका डर और कम रहेगा। पर इन सबसे चूने सुर्खीका पलस्तर कहीं अच्छा है और सीमेन्ट (Cement) का पलस्तर और भी बढ़ कर है*। यदि एनलार्जमेन्ट नहीं करना है तो दीवारों और फर्श पर टाली (tiles) लगवा देना सबसे अच्छा होगा। वार्निश या तेल पड़े रंगसे रँगी लकड़ीकी दीवारें और फर्श का रहना भी बुरा नहीं है। दीवारोंसे यदि गर्द झड़नेका भय है तो वह ग्लेज़ किये काग़ज़से ढकी जा सकती हैं। फर्श पत्थरका हो तो भी अच्छा है। मेज़ इत्यादि चिकनी लकड़ीकी बनानी चाहिये और उन पर वार्निश कर देनी चाहिये या वह पिघले मोमसे तर किये जा सकते हैं। अँधेरी कोठरीके सभी धोने योग्य सामानको अकसर पानीसे भीगे कपड़ेसे रगड़ कर पोंछ देना चाहिये। सीमेन्टकी दीवारें भी इसी प्रकार स्वच्छ की जा सकती हैं।

* ऊपरकी ओर सीमेन्टकी एक बहुत पतली तह हो, केवल इतने ही की आवश्यकता है।

कभी कभी लोग पूछते हैं कि अँधेरी कोठरीके भीतर की दीवारोंको काला या अन्य किसी रंगमें रँगना लाभदायक है अथवा हानिकारक। यदि एनलार्जमेन्ट भी करना है तब तो इसका एक ही उत्तर हो सकता है। एनलार्जमेन्ट बनाते समय ब्रोमाइड कागज़ पर श्वेत प्रकाश पड़ता है। इसका एक भाग बिखर कर दीवारों पर पहुँचता है। यदि वह श्वेत वर्ण है तो इस प्रकाशका बड़ा अंश लौट कर फिर उसी कागज़ पर पड़ता है और एनलार्जमेन्ट में धुन्धलापन (fog) उत्पन्न करके इसको हानि पहुँचाता है। इसलिए दीवारोंको श्वेत नहीं रहना चाहिये। ब्रोमाइड कागज़के लिए गहरे रँगकी पीली या लाल रोशनी बहुत कम, या यों भी कह सकते हैं कि बिल्कुल नहीं, हानिकारक है। इसलिए दीवारोंको काला, या लाल, या पीला, रँगवा देना श्वेत रखनेसे बहुत अच्छा है। पर यदि दीवार पर सीमेन्टका पलस्तर है, या यदि मिट्टी या गोबरसे लिपी दीवार है तो उनको किसी विशेष रँगमें रँगवानेकी आवश्यकता नहीं है। अब यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि टाली (tiles) का लगाना ऐसी दशामें क्यों हानिकारक है। यदि एनलार्जमेन्ट नहीं बनाना है तो दीवारोंको श्वेत या लाल रंगका रखना ही लाभदायक होगा क्योंकि इस प्रकार लैम्पकी लाल रोशनी (नीचे देखिये) सब स्थानोंमें फैल कर पहुँच सकेगी। सारांश यह कि चाहे जो कुछ करना हो अँधेरी कोठरीकी दीवारोंको लाल या यदि इस रंगसे औरोंको घृणा हो तो पीला रँग देना अच्छा होगा।

१०—वायुका आवागमन

ऊपर हम लिख आये हैं कि यह कैसा गम्भीर विषय है, इसलिए इस प्रकरणमें हम दिखलायेंगे कि इसका साधन कैसे हो सकता है। सब जानते हैं कि हवा गरम होनेसे ऊपर उठती है। सांस लेनेसे और लैम्प जलनेसे जो हवा ख़राब हो जाती है वह गरम होती है; इसलिए वह ऊपर उठती है। प्रत्यक्ष है कि इस हवाके निकासके लिए ऊपर ही कहीं छेद या वेन्टिलेटर (Ventilator)
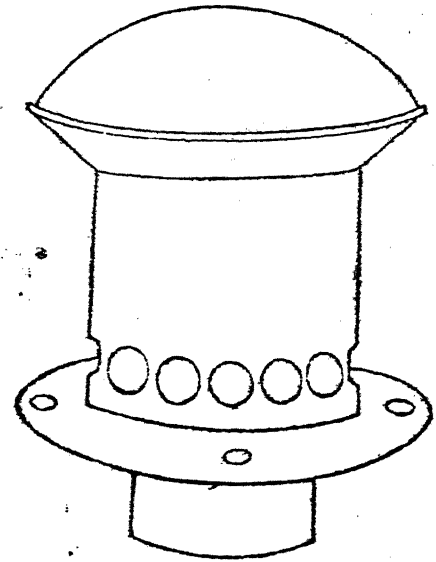
चित्र ७२
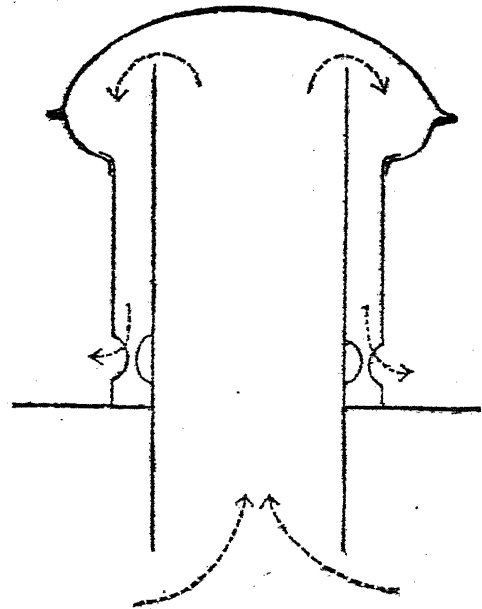
चित्र ७३

होना चाहिये। यदि छतमें एक या अधिक आवश्यकतानुसार छेद हों तो अच्छा है। इस छेदसे होकर प्रकाश भीतर न आने पाये इसके लिए रुकावटकी आवश्यकता है। इन चित्रों में (चित्र ७२, ७३) इस प्रकारकी एक रुकावट दिखलाई गई है। यह लोहेकी चादरकी बनायी जा सकती है। इसको ऊपर किसी ऐसे रंगसे रंग देना चाहिये जो इसपर मुर्चा न लगने दे। भीतर चमक-रहित काले रंगसे रँगना चाहिये। इस पर यदि पानी भी बरसे तो जल भीतर नहीं जा सकता। अधिकतर छतमें हवाके निकासके लिए छेद बनाना सम्भव नहीं होता। ऐसी दशामें दीवारमें ही ऊँचे स्थान पर एक छेद या खिड़की रख सकते हैं। इस पर एक बहुत सादा प्रकाश-रोक (Light-trap) लगा सकते हैं, जिसकी काट चित्र ७४ में दिखलायी जाती है। इसके भीतरी भागका काला होना आवश्यक है। यह भी लोहेके चद्दरका, टीनका, या यदि इसपर जल पड़नेकी सम्भावना न हो तो लकड़ी या दफ़्तीका ही बना सकते हैं।

हमको अब यह देखना है कि हवाके आनेके लिए क्या प्रबन्ध करना चाहिये। दरवाज़ेके पल्लेमें एक पाँती एक इंच व्यासके छेदोंकी कर सकते हैं और इन पर भी ऊपर बतलाये गये आकारकी प्रकाश रोक लगा सकते हैं। या इसके बदले आप स्वयं कोई दूसरा उपाय सोचकर कर सकते हैं। लक्ष्य केवल इतना ही है कि हवा भली भांति आ सके, परन्तु प्रकाश न आ सके।

केवल इन छेदोंके रहनेसे ही हम यह नहीं कह सकते कि अँधेरी कोठरीकी वायु वास्तवमें भली भांति बदलती रहती है, इस लिए यदि अँधेरी कोठरीके भीतर लैम्प भी जलाना है तो हम नीचे लिखे उपायसे वायु के आने जानेमें सहायता पहुंचा सकते हैं। हम लैम्पसे गरम हवा इत्यादि निकलनेवाली चिमनीको अँधेरी कोठरीके वायु निकलने वाले रास्तेसे मिला दे सकते हैं। हो सकता है, इसके लिए एक बक्स बनाना पड़े और लैम्पको इसके भीतर रखना पड़े। चित्र ७५ में इस प्रबन्धका एक मोटा नक़शा दिया जाता है।
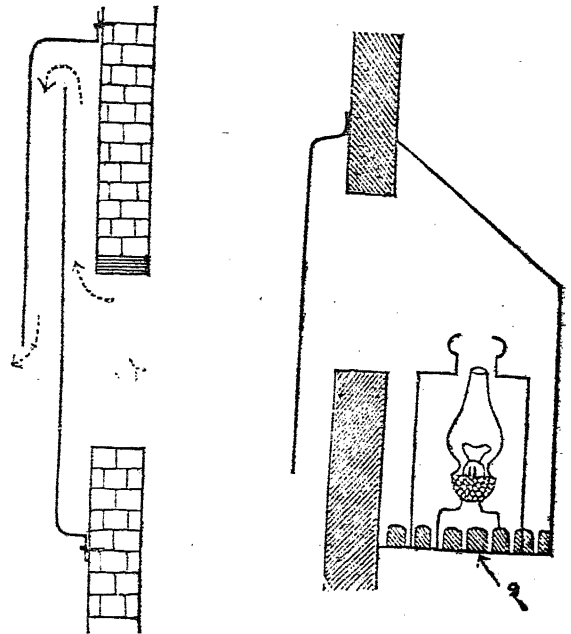
चित्र ७४ चित्र ७५—१ वायु जानेके लिए छिद्र

११—अँधेरी कोठरीमें प्रकाश

यद्यपि फोटोग्राफर अपने कार्य-गृहको "अँधेरी कोठरी" कहता है, तथापि वह प्रकाशके निमित्त इसमें एक लैम्प रखता है, या इसके न रहने पर अन्य कोई उपाय करता है। फोटोग्राफीमें प्रयोग किये जाने वाले प्लेट श्वेत रोशनीके लगते ही नष्ट होजाते हैं, पर वह * लाल रोशनीमें एक दो मिनट और कोई कोई प्लेट घंटे आध घंटे तक बिना किसी हानिके रखे जा सकते हैं। इसी लिए फोटोग्राफर अपनी "अँधेरी कोठरी" से श्वेत रोशनीको निकाल केवल लाल रोशनीका प्रयोग करता है। इसके लिए बाज़ारमें विशेष प्रकारके

* पैन क्रोमैटिक (pan-chromatic) प्लेट लाल रोशनीसे भी तुरन्त नष्ट हो जाता है।

लैम्प मिलते हैं। इनके भीतर वायु जानेके लिए, और धुंआ या गरम हवा निकलनेके लिए जो छेद रहते हैं उनके ऊपर इस प्रकारसे पत्र लगा रहता है कि यद्यपि वायु आ जा सकती है तिस पर भी प्रकाश उनके द्वारा बाहर नहीं आ सकता। उनके एक ओर लाल शीशा लगा रहता है, जिसमें से लाल रोशनी बाहर निकलती है। लैम्पको कम या तेज़ करनेका पेच बाहर निकला रहता है, जिससे लैम्पको खोले विना ही उसके प्रकाशको
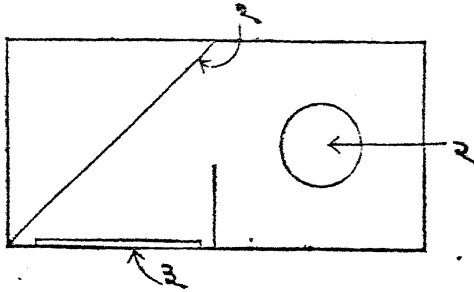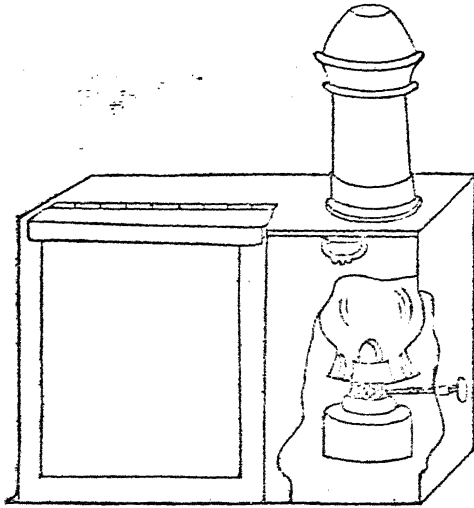
चित्र ७६, ७७—१ सफेद पर्दा, २ लेम्प, ३ लाल कांच

घटा बढ़ा सकते हैं। बाज़ लैम्पोंमें, जिनको सेफ़-लाइट (safe-light) लैम्प कहते हैं जलने वाली बत्ती एक ओर रखी रहती है, जिसमें कि बत्तीसे रोशनी निकलकर सीधी लाल शीशे पर न पड़े।

पहले यह एक सफेद परदे पर पड़ती है और वहां से फैल कर लाल शीशे को पार करती है (चित्र ७६, ७७) इस प्रकारसे आया हुआ प्रकाश प्लेटके लिए और भी कम हानिकारक है, इसी लिए इसको सेफलाइट कहते हैं। इन शब्दोंका अर्थ है हानिरहित प्रकाश।

रोशनीको लाल बनानेके लिए बहुधा गहरे लाल रंगका शीशा काममें लाया जाता है। इसको माणिक के रंगका और खूब गाढ़ा होना चाहिये। फोटोग्राफीके सामानके दूकानदारोंके यहां एक लाल कपड़ा मिलता है जिस पर एक विशेष वस्तु लगी रहती है। इसके द्वारा छन कर आई हुई रोशनीको भली भांति काममें ला सकते हैं। परन्तु कमसे कम इसकी दो तह का प्रयोग करना चाहिये। ब्रोमाइड कागज़ और बहुत मन्द (slow) प्लेटोंको पीले या नारंगी रंग से भी हानि नहीं पहुंचती। इनके लिए पीले शीशेका प्रयोग कर सकते हैं या फोटोग्राफीकी दूकानों पर बिकने-वाले पीले कपड़ेको भी काममें ला सकते हैं। सफेद शीशेके एक ओर लाल शीशेकी एक बहुत पतली तह जमा देनेसे लाल शीशा बनता है। इस कारण जहां कहीं लाल शीशेमें फुटकी या बुल्ले पड़ जाते हैं वहांसे सफेद रोशनी पार हो सकती है। इसके सिवा लाल शीशेमें एक दोष और है। जब रश्मिविश्लेषक यंत्रसे इस शीशे द्वारा आई रोशनीकी परीक्षा की जाती है तो पता चलता है कि नीले रंगकी रोशनी भी कुछ कुछ इसमें से आ जाती है। नीले रंगकी रोशनी प्रायः उतनी ही हानिकारक है जितनी कि सफेद रोशनी। इन कारणोंसे तेज़ (fast) प्लेटोंके लिए सदा एक लाल शीशा और एक पीला शीशा साथ साथ लगाना चाहिये। यदि प्लेट बहुत धीमी है और अधिक प्रकाश की आवश्यकता है तो केवल लाल शीशे ही को काममें ला सकते हैं। ब्रोमाइड कागज़के लिए

केवल पीले शीशेको ही काममें ला सकते हैं। पीला शीशा सब स्थानमें पीला होता है, लाल शीशेकी भांति केवल ऊपर ही ऊपर पीला नहीं होता। बाज़ारमें ऐसे लैम्प मिलते हैं जिनमें पीला और लाल दोनों रंगका शीशा लगा रहता है, और इनमें-से किसी एकको अलग या दोनोंको साथ लगाने-का भी उचित प्रबन्ध रहता है। लाल शीशेके साथ एक तह लाल कपड़ा या एक तह पीला कपड़ा या एक तह लाल या पीला मोमी कागज़को लगाने पर भी प्रकाश अधिक हानि-रहित हो जाता है। कपड़ेकी अपेक्षा शीशेसे अधिक प्रकाश आता है और इस कारण शीशा ही अधिक पसंद किया जाता है, पर कपड़ा फूट नहीं सकता और शीशेकी अपेक्षा बहुत सस्ता भी मिलता है और यदि इस-पर पानी न पड़े और यह व्यर्थ धूपमें न पड़ा रहे तो बहुत दिन चलता है।

कपड़ा अर्धपारदर्शक होता है और इसके द्वारा छन कर आई हुई रोशनीसे परछाहीं नहीं पड़ती; परन्तु शीशे द्वारा बत्तीसे जो सीधी रोशनी आती है उससे परछाहीं पड़ती है। यदि शीशेके ऊपर कोई अर्धपारदर्शक वस्तु लगा दें जैसे कि रगड़ा गया धुन्धला शीशा या मोमी कागज़ तो ऐसा जान पड़ता है कि रोशनी बढ़ गई। वास्तवमें रोशनी घट जाती है, पर उसके फैलकर आनेके कारण पर-छाईं नहीं पड़ती और रोशनी उन कोनोंमें भी पहुँच सकती है, जहां इसका पहिले पहुंचना असंभव था।

स्मरण रखना चाहिये कि लालकीन इत्यादि लाल या पीले कपड़ेसे काम नहीं चल सकता, क्योंकि इनकी बुनावटके कारण जो छोटे छोटे छिद्र रहते हैं उनमेंसे सफेद रोशनी आती है।

१२—प्रकाश छनना

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अँधेरी कोठरीके लिए सबसे उत्तम प्रकाश वह है जो फोटोग्राफी के लिए विशेष रूपसे बनाये गये प्रकाश-छनने (light-filter) को पार करके आता है। उचित रंगसे रंगे हुये जिलेटिन (gelatine) की एक पतली तह दो शीशोंके बीचमें बन्द की रहती है और इस प्रकार यह "छनना" रँगे हुए शीशेका काम देता है। रंगीन शीशा दो चार ही प्रकारका बन सकता है, परन्तु जिलेटिनको जिस रंगमें चाहें रंग सकते हैं। यदि रंग ठीक ठीक चुना जाय तो जिले-टिनके प्रकाश-छनने द्वारा आया हुआ प्रकाश रंगीन शीशेके द्वारा आये हुये प्रकाशसे अधिक तेज़ होने पर भी फोटोग्राफीके प्लेट या कागज़के लिए कम हानिकारक होगा। स्पष्ट है कि यह गुण बड़े मह-त्वका है। जिलेटिनके प्रकाश-छनने कई रंगके बिकते हैं। भिन्न भिन्न कामोंके लिए भिन्न भिन्न रंगोंकी विशेष आवश्यकता होती है, जैसे कि ब्रोमाइड कागज़के लिए पीला या नारंगी रंग, मन्द (slow) प्लेटोंके लिए गहरा नारंगी रंग, तेज़ (fast) प्लेटोंके लिए गहरा लाल रंग और पैनक्रो मैटिक (panchromatic) प्लेटोंके लिए एक विशेष प्रकारका हरा रंग। अच्छे छननोंकी जांच रश्मि-विश्लेषक यंत्रसे कर लेते हैं। रंगीन शीशेसे इनका मूल्य कुछ अधिक होता है। इन दिनों ७×५ इंच-का छनना २॥) और १०×८ इंचका छनना ५॥) में मिलता है। किसी किसी छननोंमें आवश्यकता-नुसार जिलेटिनकी दो या अधिक तह रहती हैं और यह भिन्न भिन्न रंगकी हो सकती हैं। फोटोग्राफर इन छननोंको स्वयं बना सकता है, पर इनको बना बनाया ही मोल ले लेना अच्छा होगा।

१३—एक सरल प्रबन्ध

कितने लोग किफायतके ख़यालसे लाल लैम्प स्वयं बना लेते हैं या किसी कारीगरसे बनवा लेते हैं। ऐसे लैम्पोंका बनाना कुछ कठिन नहीं है, परन्तु यहां पर इनके बनानेकी विधिका सविस्तर वर्णन नहीं दिया जा सकता। जो इनको स्वयं बनाना या बनवाना चाहते हैं उनको किसी अच्छे दूकानदारके सूचीपत्र (Catalogue) में इन लैम्पोंके कई एक चित्र ऐसे मिलेंगे जिनसे वह बहुत कुछ सीख सकते हैं। वायुके आने जानेके लिए बनाये गये छेदोंके विषयमें उनको स्मरण

रखना चाहिये कि प्रकाश मुड़ कर किसी रुकावट के दूसरी ओर नहीं जा सकता है, परन्तु वायु ऐसा कर सकती है। जिससे कुछ भी न बन पड़े वह कमसे कम इतना तो अवश्य कर सकता है कि साइकिल—लैम्प या अन्य लैम्पको रखनेके लिये दफ़्तीका एक बक्स बना ले और इसके एक ओरका कुछ भाग निकाल कर उसके ऊपर लाल शीशा या ऊपर कहा गया लाल कपड़ा लगा दे। ऐसे बक्सको पूरा बड़ा होना चाहिये और वायुके आने जानेके लिए भी उचित प्रबन्ध होना चाहिये, नहीं तो या तो लैम्प बुझ जायगा या बहुत गरम होकर भभकने लगेगा। परन्तु सबसे सरल, सबसे अधिक आराम देनेवाला और सबसे कम व्ययमें बननेवाला लाल रोशनीका प्रबन्ध यह है। अँधेरी कोठरीके कार्य्य—टेबुलको किसी खिड़कीके पास रखिये और इसके पल्लेमेंसे एक भागको काट कर निकाल दीजिये और इसके स्थानमें लाल शीशा या इसके स्थानापन्नको जड़ दीजिये। दिनमें यदि इस खिड़की पर काफ़ी रोशनी पड़ती है और लाल शीशा बहुत छोटा नहीं है तो अँधेरी कोठरीमें भी अच्छी रोशनी रहेगी। रोशनीको इच्छानुसार कम या अधिक करनेके लिए दफ़्तीका एक ढकना या सायबान लगाया जा सकता है (चित्र ६६)। यदि इस खिड़की पर प्रकाश नहीं पड़ता है, या रातके समय, इसके सामने अँधेरी कोठरीके बाहर एक साधारण लैम्प रख दिया जा सकता है। इस प्रबन्धमें एक विशेष गुण यह है कि अँधेरी कोठरीके भीतर लैम्प जलानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती और इससे इसके भीतरकी वायु स्वच्छ और शीतल रहता है। केवल वही लोग जो छोटी सी बन्द कोठरीमें गरमीके दिनोंमें एक लाल लैम्प जलाकर डेवेलप इत्यादि करनेकी चेष्टा कर चुके हैं इस गुणके महत्वको पूर्ण रूपसे समझ सकते हैं। सावधान रहना चाहिये कि लाल शीशे या इसके स्थानापन्नपर कड़ी धूप न पड़े, क्योंकि साधारण गाढ़ेपनका लाल शीशा, कपड़ा या छनना धूपको सचमुच हानि रहित नहीं बना सकता। इसी कारणसे जिस खिड़कीमें लाल शीशा लगाया गया है वह यदि उत्तरकी ओर हो तो अच्छा है; क्योंकि साल भरमें बहुत कम दिन ऐसे होंगे जब उत्तरकी खिड़कियों पर धूप पड़ेगी। आगे चलकर हम देखेंगे कि इसी कारणसे उत्तरकी खिड़की दिनके प्रकाशसे एनलार्जमेन्ट बनानेके लिए भी अच्छी है।*

जिन स्थानोंमें बिजली मिल सकती है वहां अँधेरी कोठरीके लैम्पके बदले एक बिजली-बत्तीको लाल रँगके ग्लोब (globe) में बन्द कर सकते हैं। ऐसे ग्लोब बने बनाये मिलते हैं, पर फोटोग्राफर स्वयं एक ग्लोब ऊपर बतलाये गये लाल कपड़ेका बड़ी सरलतासे बना सकता है।

कई लेखकोंका मत है कि लाल प्रकाशके लिए दिनके प्रकाश पर भरोसा न करना चाहिये, क्योंकि इसकी तेज़ी बदलती रहती है। परन्तु प्रकाशमें अन्तर होते रहनेसे उन लोगोंको जो आधुनिक रीतिसे डेवेलप करते हैं कुछ हानि नहीं पहुंचती।

१४—बड़ा लैम्प या छोटा

जितनी पुस्तकें मैंने देखी हैं (और मैंने बहुत सी पुस्तकें पढ़ डाली हैं) उन सबमें यही लिखा है कि पूरा बड़ा लैम्प मोल लेना चाहिये और एक लेखक महाशयने यह बतलाया है कि उन्होंने किस प्रकार एक पूरे दरवाज़ेको लाल कपड़े और शीशेसे बन्द कर दिया था, जिससे कि उनकी अँधेरी कोठरीमें इतना प्रकाश (अवश्य ही, लाल रंगका) जाता था कि वह इसके कोनेमें भी बैठ कर छोटे टैपसे छपी पुस्तकोंको बड़ी सुगमतासे पढ़ सकते थे। यदि ब्रोमाइड कागज़ पर छापना है तब तो पीले या लाल प्रकाशकी बहुतायतकी

* इसके लिए खिड़कीके पल्लेमें नेगेटिवकी नापका एक छेद काटना पड़ेगा। लाल प्रकाशके लिए छेद काटते समय इसका ध्यान रखना चाहिये। एक पल्लेमें एक छेद और दूसरेमें दूसरा रखना अच्छा है।

आवश्यकता अवश्य है, परन्तु मितव्यय करने-वालोंके लिए बड़े सौभाग्यकी बात है कि प्लेट डेवेलप करनेकी आधुनिक रीतिके लिए बहुत प्रकाशकी आवश्यकता नहीं है। सच पूछिये तो केवल इतना प्रकाश जितनेसे घड़ीकी मिनट वाली सुई सुगमतासे देखी जा सके काफ़ी है। इसलिए, छोटेसे छोटे लैम्पसे जो कि १॥) या २) में मिल सकता है, काम चल सकता है। यदि खिड़कीमें ३ × ४ इंचका लाल शीशा लगा रहे तो भी काम अच्छी तरह चलेगा। पर यदि आप अधिक व्यय कर सकते हैं तो आप अवश्य बड़ेसे बड़ा लैम्प मोल लीजिये और यह भी देखिये कि इसके साथ कमसे कम दो जिलेटिनके प्रकाश-छनने हैं, एक तो ब्रोमाइड कागज़के लिए और दूसरा प्लेटोंके लिए। ऐसा न समझिये कि इसके मोल लेनेमें जो रुपया व्यय होता है वह व्यर्थ जाता है। बड़े लैम्प-के रहनेसे आपको सुभीता अधिक होगा और इसके मूल्यकी कौड़ी कौड़ी वसूल हो जायगी। यदि आप दिनके प्रकाशका प्रयोग करना चाहते हैं तो आप केवल दोनों रंगके प्रकाश छननेको ही मोल लीजिये। इनकी बड़ीसे बड़ी नापको लेकर खिड़-कीके पल्लेसे इससे कुछ छोटे नापका भाग निकाल दीजिये और इसके ऊपर खांचादार चौखटा इस प्रकारसे लगाइये कि इच्छानुसार आप इन छननों में से जिसको चाहें उसको लगा सकें। जिधरसे छनना खांचेमें छोड़ा जाता है उधरसे यदि श्वेत प्रकाशके भीतर आनेका डर है तो उस ओर एक मोटे मखमलकी पट्टी या गद्दी ठीक उसी प्रकार लगाई जा सकती है, जिस प्रकार ऐसी पट्टी कैम-रोंकी पीठ पर लगी रहती है।

१५—लाल रोशनीकी परीक्षा

नेगेटिवोंको नष्ट करने वाले दोषोंमें सबसे प्रधान दोष धुन्धलापन (fog) है और इस धुन्धले-पनका कारण अधिकतर दूषित लाल प्रकाश ही होता है। इसलिए यदि आपके नेगेटिवोंमें धुन्धला-पन उपस्थित रहता है तो आपको चाहिये कि आप अपनी लाल रोशनीकी परीक्षा कर लें। इसके लिए आप एक ताज़े प्लेटके आधे भाग को काले कागज़से ढक कर इसको उस स्थान पर जहां आप डेवेलप करते हैं इतनी देर तक रखिये जितनी देर तक प्लेट-घर भरते और खाली करते और प्लेटोंको डेवेलप करते समय प्लेटों पर लाल रोशनी साधारणतः पड़ती है। फिर इसको आप पूरे समय तक डेवेलप कीजिये। यदि ढके और खुले भागोंमें डेवेलप करनेके बाद कुछ अन्तर न हो तो आपका लैम्प ठीक है। यदि खुला भाग कुछ काला हो गया हो तो आपको चाहिये कि आप हानि रहित प्रकाशके लिए प्रबन्ध करें। ऐसा भी हो सकता है कि यदि आप प्लेटोंको इतनी देर तक लाल प्रकाशमें न रहने दिया करें तो उनका कोई हानि न पहुंचे; पर इसको पहले जांच कर लेनी चाहिये।

(असमाप्त)

झिंगुर

[ले०—श्रीयुत शङ्करराव जोषी]

झिंगुर भी सरल पक्ष वर्गका कीड़ा है। अंगरेजीमें इसे 'ब्लैक बीटल' कहते हैं, परन्तु यह नाम बिलकुल सार्थक नहीं है। यह प्राणी बीटल वर्गका नहीं। और न इसका रंग ही काला होता है। झिंगुरका रंग ताम्रवर्ण युत काला होता है। इसकी पीठ घनी काली होती है। सरल पक्ष वर्गके दौड़ने वाले कीड़ोंमें इसका समावेश होता है।

झिंगुर उष्ण कटिबन्धके देशोंका निवासी है। वहींसे वह समशीतोष्ण कटिबन्धके देशोंमें फैल गया है। चार पांच सौ वर्ष पहले यूरोपमें इसका एक दम अभाव था। सन् १४०० के बाद ज्यों ज्यों यूरोप और एशियाका घनिष्ठ सम्बन्ध होता गया त्यों त्यों इन दोनों खंडोंका व्यापार भी बढ़ने लगा और माल ढोनेवाले जहाज़ोंमें बैठकर झिंगुर महा-राज यूरोप जा पहुँचे। सोलहवीं सदीके अन्त में

इसने हालैंडमें अपना अड्डा जमा लिया; एवं शराब रखनेके तलघर, आटेकी मिल, गोदाम आदि स्थानोंमें इसके झुण्डके झुण्ड पाये जाने लगे। इङ्गलैण्डमें भी आप जा विराजे हैं, किन्तु वहांके सभी प्रान्तोंमें इसका प्रवेश नहीं हो पाया है। इंगलैण्डके कई प्रान्तोंके लोग तो अब तक यह नहीं जानते कि झिंगुर किस चिड़ियाका नाम है। समुद्रके व्यापारी बन्दरोंमें यह ज़्यादा पाये जाते हैं।

झिंगुर दिनभर तो अँधेरे स्थानमें छुपा रहता है और रातको भोजनकी तलाशमें बाहर निकलता है। प्रकाश भी इसे अप्रिय है अतएव रातको दिया बुझा देनेके बाद ही यह अपने बिलसे बाहर निकलता है। आटा, ताजे और सड़े गले फल, कागज़, चमड़ा, मांस आदि सभी पदार्थोंपर यह अपना जीवन निर्वाह करता है। यह अपने मृत सजातीयको भी खा जाता है। रसोईघर इसका प्रिय निवास स्थान है। कारण कि इसे वहां खानेको भी मिल जाया करता है और दूसरे कमरोंकी अपेक्षा इसमें उष्णता भी अधिक रहती है। झिंगुरकी निशाचर वृत्तिके सम्बन्धमें एक महाशय लिखते हैं—

"मेरे घरमें एक बड़ा झिंगुर था। मैंने उसको पकड़नेके लिए नाना उपाय किये, परन्तु वह हाथ नहीं आया। न जाने वह कहां छिपकर बैठ जाता था। मेरे सोनेके कमरेमें पांयतानेकी तरफ़ एक अलमारी रखी थी। वह उसपर बैठकर अपनी मूँछोंपर ताव दिया करता था—स्पर्शेन्द्रिय हिलाया करता था। उसे मारनेके लिये ज्योंही मैं एक आध पुस्तक या लकड़ी उठाता, त्योंही वह नीचे कूदकर न जाने कहां छिप जाया करता था। इस झिंगुरने कई दिन तक मुझे बड़ा कष्ट दिया। दीपक बुझाकर बिस्तर पर लेटते ही यह एक दम प्रकट होकर मेरे मुखपरका पसीना चाटने लग जाता था। इसके पावों या मूँछोंका स्पर्श होते ही मैं एकदम चमक उठता था। मैंने इसे मारनेके लिए कई बार पुस्तकें लकड़ी आदि पदार्थ फेंक मारे, परन्तु यह न मालूम कहां चम्पत हो जाता था।

जहाज़ों पर झिंगुर बहुत पाये जाते हैं। इसके मुंहमें एक प्रकारका प्रवाही पदार्थ रहता है। यह पदार्थ जिस वस्तुको लग जाता है, उसमें दुर्गंध आने लगती है, जिससे खाद्यपदार्थ निरुपयोगी हो जाते हैं। झिंगुरकी कृपासे जहाज़ परके कई पदार्थ खराब हो जाते हैं।

पूर्ण बाढ़को पहुंचे हुए नर और मादाके शरीरमें बहुत अन्तर होता है। नर मादासे छोटा और कम, ताकतवर होता है। नरके पंख होते हैं और वह उनकी सहायतासे उड़ भी सकता है। चलते समय मादाका पेट जमीनसे घिसता है। पूर्णावस्था प्राप्त झिंगुर और 'परी' झिंगुरमें ज़्यादा फर्क नहीं होता। कीटावस्थामें प्राणीके पंख नहीं होते और उसका रंग प्रारंभमें कुछ फीका होता है। दोनों अवस्थामें कीड़ेका बाह्य स्वरूप समान होता है।

अन्य कीड़ोंकी तरह पूर्ण बाढ़को पहुंचनेके पहले झिंगुर भी कई बार त्वचा बदलता है। पहले एक सालमें वह तीन बार त्वचा बदलता है—पहली बार अण्डेमेंसे निकलनेपर, दूसरी बार इससे करीब एक महीने बाद और तीसरी बार वर्षके अन्तमें। पूर्ण बाढ़को पहुंचनेके पहले झिंगुरको सात बार त्वचा बदलनी पड़ती है। पहले वर्षके बाद वह वर्षमें एक बार त्वचा बदलता है। इस परसे तो यही अनुमान निकलता है कि झिंगुर कमसे कम पांच साल तक तो ज़रूर ही जिन्दा रहता होगा। परन्तु शायद ही एक आध झिंगुर इतने लम्बे समय तक जीवित रहता हो। अनेक संकटोंके कारण फी सदी ९९ झिंगुर पूर्ण बाढ़को पहुंचनेके पहले ही कालके गालमें चले जाते हैं। फिर भी झिंगुरोंके मारे मनुष्योंकी नाकोंमें दम आ जाता है।

कांचली उतारनेका (त्वचा बदलते) समय आते ही उसकी त्वचा सरके ऊपरसे फट जाती है और तब झिंगुर इसी मार्ग द्वारा बाहर निकल आता है। सांपकी कांचलीकी तरह झिंगुरकी कांचली भी सारीकी सारी निकल आती है। यहां तक कि

उसकी लम्बी स्पर्शेन्द्रिय भी ज्यों त्यों निकल आती है। दूरसे देखने वाले की को यी देखकर ऐसा मालूम होता है, मानों झिंगुर हो है। कांचली डालनेके बाद उसकी त्वचा इतनी रहती है कि उसके हृदयकी धड़कन गिनी जा सकती है। एक विद्वानने पता लगाया है कि झिंगुरका हृदय एक मिनटमें ८० बार धड़कता है। परन्तु यहां इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि कांचली छोड़नेके कुछ समय पहलेसे लगाकर कांचली उतारनेके कुछ समय बाद तक वह बीमार रहता है। अत एव उक्त संख्या बीमारीकी दशाकी समझनी चाहिये। नीरोग अवस्थामें यह संख्या कुछ कम अवश्य रहती होगी।

छठी बार त्वचा बदलनेके बाद झिंगुरके पंख निकलने लगते हैं। नरके पंख तो बढ़ते जाते हैं परन्तु मादाके शरीर पर पंखोंके चिन्ह मात्र रह जाते हैं। जिस अवस्थामें पंख फूटते हैं, वह कीड़े-की कोशावस्था है। दूसरे कीड़े कोशावस्थामें निश्चेष्ट पड़े रहते हैं। उस अवस्थामें उनका खान पानादि व्यापार बन्द रहता है। परन्तु इस अवस्थामें भी झिंगुरसे सब व्यापार पूर्ववत जारी रहते हैं।

झिंगुरका अण्डा भी देखने योग्य होता है। झिंगुरके पीछेकी ओर एक लम्बा ताम्रवर्ण पदार्थ चिपटा रहता है। इसकी लम्बाई करीब ¾ इञ्च होती है। अधिकांश लोग इसे ही झिंगुर का अण्डा समझते हैं। परन्तु दर असल यह अण्डा नहीं, अण्डेकी थैली है। डाक्टरी औज़ार रखनेकी 'पाकेट-केस' की तरह इस थैलो में एक ओर आठ और दूसरी ओर आठ कुल मिलाकर १६ खाने होते हैं। झिंगुरके दो गर्भाशय होते हैं। हर एक गर्भाशयमें आठ आठ नलिकाएं होती हैं और हर एक नलिकामें एक एक अण्डा रहता है। यह सब अण्डे उक्त थैलीमें भरे रहते हैं। अण्डोंके पक जाने पर थैली फट जाती है।

झिंगुर भागनेमें बड़ा पटु है। यह हम कह सकते हैं कि वह चलता तो है ही नहीं या तो ज़ोर से दौड़ता है या खड़ा ही रहता है।

झिंगुरका अन्न मार्ग भी प्रेक्षणीय होता है। इसकी लम्बाई कीड़ेकी शरीरकी लम्बाई से दूनी होती है। झिंगुरको पानीमें चीर कर देखनेसे सब अवयव अच्छी तरह देखे जा सकते हैं।

झिंगुर मुंहसे श्वासोच्छ्वासकी क्रिया नहीं करता। उसके शरीरके दोनों ओर दस दस महीन छेद होते हैं। इन्हींके द्वारा श्वासोछ्वासकी क्रिया करता है। इन छिद्रोंमें से सोलह तो पेट पर होते हैं और शेष छाती पर। छाती परके छेद कुछ बड़े होते हैं। अतएव चट नज़र आ जाते हैं। शुद्ध हवा इन छिद्रोंमें से शरीरमें प्रवेश कर रक्त* शुद्ध करती है। मनुष्यके हृदयका अशुद्ध रक्त फुप्फुसमें आता है और वहीं वह शुद्ध होता है; किन्तु झिंगुरको सभी छिद्रों द्वारा शुद्ध वायु मिलती रहती है; अतएव वह वायुके संयोगसे वहीं शुद्ध हो जाता है। रक्तमें मिली हुई हवा कार्बोनिक एसिडके योगसे अशुद्ध हो जाती है। यह अशुद्ध हवा उक्त छिद्रोंमें से बाहर निकल जाती है।

घरमें से झिंगुरको भगाना बड़ा कठिन काम है और न इसका नाश ही किया जा सकता है। इंगलैंडमें इसके नाशके अनेकों उपाय किये गये किन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। हमारी समझसे तो ज्यों ज्यों व्यापार और सभ्यताका प्रसार होता जायगा, त्यों त्यों यह गन्दा प्राणी भी बढ़ता जायगा।

अमेरिका आदि कुछ देशोंमें झिंगुर बहुत ही बड़े होते हैं और नर और मादा दोनोंके ही पंख होते हैं। अण्डोंमें से बाहर निकलनेवाले शिशुको

* न तो झिंगुरका रक्त मनुष्यके रक्तके समान लाल ही होता है और न मनुष्यके रक्त और झिंगुरके रक्तके घटकावयव ही एकसे होते हैं। —लेखक

झिंगुर बाहर निकलनेमें मदद करता है। इस सम्बन्धमें हूमेल महाशय लिखते हैं—

"मैंने एक पका हुआ अंडा एक कांचके बरतनमें रखकर उसमें एक मादा छोड़दी। अंडा इस मादाका नहीं था। तो भी वह अंडेके पास जा उसे इधर उधर करने लगी। अन्तमें आगेके दो पावोंसे दबाकर उसने अण्डेको तोड़ा। ज्यों ज्यों चीरा बड़ा होता गया भीतरसे बच्चे बाहर निकलने लगे। गर्भाशयमें मानव प्राणीके शिशुकी जैसी घड़ी जमी रहती है, वैसी ही घड़ी झिंगुरके शिशुकी भी जमी रहती है। मादा अण्डेमें से निकलनेवाले शिशुकी ओर ध्यान लगाकर देख रही थी और बार बार अपनी स्पर्शेन्द्रियसे उन्हें मदद भी करती जा रही थी। थोड़े ही समयमें सब बच्चे बाहर निकलकर इधर उधर फिरने लगे।"

झिंगुरके असंख्य शत्रु हैं। बिच्छू उन्हें मारकर खा जाता है। एक जातिकी बरैया (wasp) इसकी जानी दुशमन है। उसे देखते ही झिंगुरके हाथ पांव ठंढे पड़ जाते हैं। इस सम्बन्धमें एक जगह लिखा है—

"मारिशस द्वीपमें झिंगुर बहुत ज्यादा हैं। इसके मारे लोगोंको बड़ा कष्ट होता है। मुझे तो इस प्राणीके प्रति अतिशय तिरस्कार उत्पन्न हो गया था। परन्तु एकबार एक जाति की बरैया (Ampulex compressum) के चंगुलमें फंसे हुए झिंगुरको देखकर मुझे उसपर बड़ी दया आई। उक्त जातिकी बरैया बड़ा दुष्ट प्राणी है। उसका रंग नीला या हरा होता है। यह बड़ा सुन्दर और चपल होता है। परन्तु है बड़ा क्रूर। झिंगुरका शरीर इसके शरीरसे चार गुना होता है। परन्तु इसे देखते ही झिंगुरके हाथ पैरकी शक्ति हवा हो जाती है। एक कदम आगे बढ़नेकी भी उसमें शक्ति नहीं रहती। शत्रु धीरे धीरे उसके पास जाकर उसे देखता है और तब पकड़ कर खींच ले जाता है। कुछ दूर जाने पर वह उसे छोड़कर स्थानकी खोज करता है और तब उचित स्थान मिल जानेपर उसे वहां खींच ले जाता है। कुछ विद्वानोंका मत है कि यह दुष्ट प्राणी झिंगुरके शरीरमें अण्डे रखता है। अण्डेमें से निकलते ही कीड़ोंको झिंगुरका मांस खानेको मिल जाता है। कभी झिंगुरके मर्मस्थानको बचाकर उसके शरीर में छेद करता है।

झिंगुरकी जातिके अन्य प्राणी

१—रामजीका घोड़ा (mantidae)

इस कीड़ेको हमारे अधिकांश पाठकोंने देखा होगा। इनका शरीर लम्बा और पंख हरे होते हैं। आकार अधिकांशमें टिड्डीके समान ही होता है। झाड़पर बैठने पर यह कीड़ा पत्तोंके रंगमें बिलकुल छिप जाता है। यह मांसाहारी है। यह प्राणी अपने आगेके पांव छातीके सामने रखकर घंटों बैठे रहते हैं। देखनेवालेको ऐसा मालूम होता है मानों वह ईश्वरकी प्रार्थना कर रहा है। इसीलिए इसे अंगरेजीमें 'प्रेइंग इनसेक्ट' (प्रार्थना करने वाला कीड़ा) कहते हैं। यह अपने भक्ष्यको पानेके लिए दोनों हाथ जोड़कर घंटों समाधिमें मग्न रहता है। एक आध कीड़ेको पहुँचके भीतर पाते ही इसकी समाधि भंग हो जाती है और तब एक दम हमलाकर यह उसे मार डालता है।

फ्रांस देशके लांगवेडाक प्रान्तके लोग इस कीड़ेको आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। यह कीड़े गरमी के मौसममें अण्डे देते हैं। अण्डे एक वर्षमें पककर फूटते हैं।

दो कीड़ोंको एक स्थानमें कैदकर रखने पर सबल निबलको मारकर खा जाता है। जब तक दोनोंमें से एक मर नहीं जाता, इनकी लड़ाई जारी रहती है। चीनमें लड़के दो कीड़े एक जगहमें बन्दकर लड़ाईकी मौज देखते हैं।

२—ऊंट (Phasma Rossia)

यह कीड़ा भी सभी पाठकोंने देखा होगा। इसका शरीर ऐसा दीखता है, मानों तिनके जोड़कर बनाया गया है। शरीर लम्बा भी बहुत होता

है। यह कीड़ा बिलकुल निरुपद्रवी है और वनस्पति पर जीवन निर्वाह करता है।

३—अँखफुड़वा (grasshopper)

रातका चिल्लानेवाले कीड़ोंका शब्द भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। यह भी रातको चिल्लाता है। इसकी आवाज, झिग् झिग् झिग् सी निकलती है। इसका और टिड्डीका आकार करीब करीब एक सा होता है। भेद इतना ही है कि टिड्डी की अपेक्षा इसकी स्पर्शेन्द्रियां ज्यादा लम्बी होती हैं। मादाके पेटके सिरे पर एक डंक सा होता है, जिसकी सहायतासे वह जमीनमें छेदकर उसमें अण्डे रखती है। यह प्राणी दिन भर वृक्षके पत्तोंमें छिपा रहता है और रातको जमीनपर उतर आता है। यह रातको ही शब्द करता है परन्तु कभी कभी जंगलमें दिनको भी इसका शब्द सुनाई देता है। भारतवर्षमें यह कीड़े बहुत पाये जाते हैं।

हमने सरल पक्ष वर्गके उन्हीं कीड़ोंका वर्णन किया है जो सब जगह पाये जाते हैं और जिन्हें पाठकोंने देखा है।

झिल्ली

[ले०—श्रीयुत शंकरराव जोशी]

झिल्ली भी सरल पक्ष वर्गका प्राणी है। इसका शब्द तो विज्ञानके पाठकोंने ज़रूर सुना होगा, किन्तु इसका दर्शन बहुत ही कम लोग कर पाये होंगे। यह प्राणी बहुत कम बाहर निकलता है। इसीलिए संस्कृतमें "अदृश्य झिल्ली स्वन" के समान प्रयोग पाये जाते हैं। यह प्राणी इंच डेढ़ इंचसे ज़्यादा बड़ा नहीं होता। इसका रंग घना ऊदी होता है। यह सहज ही पकड़ा जा सकता है। बिलमें एक काड़ी डालनेसे कीड़ा उसे पकड़ लेता है और तब काड़ी बाहर निकालने पर उसके साथ यह भी निकल आता है। बिलसे बाहर आते ही प्रकाशसे उसकी आंखें चौंधिया जाती हैं, जिससे वह भाग नहीं सकता। बिलमें डाली हुई काड़ीको पकड़, जानबूझ कर दूसरोंके अधीन होनेकी प्रवृत्तिके कारण फ्रेंच भाषामें एक कहावत पड़ गई है, जिसका अर्थ है "झिल्लीसे भी मूर्ख"

झिल्ली तीन प्रकारकी होती है—गृह झिल्ली, बन झिल्ली और आखु झिल्ली (mole Cricket)

पूर्णावस्था प्राप्त कीड़ेके पंख ऊदी होते हैं। पंखोंकी सहायतासे वह उड़ तो सकता है, किन्तु पंखोंमें इतनी शक्ति नहीं कि कीड़ा बहुत दूर तक उड़ सके। अतएव उड़ते समय वह बारबार जमीन पर आगिरती है। इस प्राणीके पंख देखने योग्य होते हैं। नर और मादाके पंख भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। मादाके पेटके सिरे पर दो डंकसे होते हैं। इन्हींकी सहायतासे जमीनमें छेद कर मादा उसमें अण्डे रखती है। इनके पास ही दो स्पर्शेन्द्रिय रहती हैं, जिनकी सहायतासे कीड़ेको पीछेसे आक्रमण करनेवाले शत्रुका पता लग जाता है।

झिल्ली दिनको अपने बिलके बाहर नहीं निकलती। रातको ही वह भोजनकी तलाशमें निकलती है। वह टिड्डीके समान उछलती हुई चलती है। पंख होनेपर भी वह बहुत कम उड़ती है। यह प्राणी शाकाहारी है। दो झिल्लियोंको एक ही स्थानमें कैद कर भोजन न देने पर सबल अवश्य ही निबलको खा जायगी। परन्तु इसी परसे उसे मांसाहारी मान बैठना बड़ी भारी भूल है। क्षुधाकी प्रबल यातनासे उत्पीडित हो अपने प्राण रक्षणार्थ, ऐसा कौन प्राणी है जो अपने सजातीयको भी मार कर खानेसे चूकता है? यदि हमारी स्मरण शक्ति धोखा नहीं दे रही है, तो हमें खूब याद है कि अकालमें मनुष्य प्राणी भी कभी कभी ऐसा साहस कर बैठते हैं!

झिल्लीको प्यास बहुत लगती है। कई बार वह पानीके बरतनमें गिर कर मर भी जाती है। फसल-

को भी यह नुकसान पहुंचाती है। यूरोपके किसान खेतोंमें स्थान स्थान पर बरतन गाड़ कर उनमें पानी भर देते हैं। फल यह होता है कि हज़ारों झिल्लियां पानीमें गिर कर मर जाती हैं।

झिल्ली एक बारमें ३०० तक अण्डे देती है। अण्डेमेंसे निकलने पर कीड़ेका रंग सफेद होता है, परन्तु कुछ दिन बाद काला हो जाता है एवं अन्तमें ऊदी। ऊदी रंग होते ही कीड़ेके पंख निकलने लगते हैं। पंखोंके निकलते ही समझ लेना चाहिये कि झिल्लीकी पूर्ण बाढ़ होगई है।

नर एक प्रकारकी आवाज निकालता है। यह आवाज वह मुंहसे नहीं करता। मादाको वशमें करनेके लिए ही नर यह शब्द करता है। पंखोंमें आरेके समान दँतियां होती हैं। नर इन पखोंको एक दूसरेसे रगड़ता है, जिससे आवाज़ पैदा होती है। इस शब्दको सुननेके लिए ईश्वरने मादाके कर्णेन्द्रिय भी दी है। मादाके आगेके पांव संधिकी जगह पोले होते हैं। इस संधिमें आमने सामने दो छेद होते हैं, जिनका मुख महीन त्वचासे मढ़ा हुआ होता है। इस त्वचाके भीतरकी ओर ज्ञान तन्तु रहते हैं। हवामें शब्द होने पर इस त्वचा और ज्ञान तन्तुके द्वारा मादाको उसका ज्ञान होता है। मादा न तो शब्द ही करती है और न उसके पास शब्द करनेका कोई साधन ही है।

झिल्लीके शब्दके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न लोगोंका भिन्न भिन्न मत है। प्राचीनकालमें यूरोपके कई लोगोंका विश्वास था कि घरमें झिल्लीका शब्द होनेसे संकट आता है। अतएव उसे घरमें से बाहर निकालनेके लिए नाना उपायोंका अवलम्बन किया जाता था। कुछ लोग झिल्लीके शब्दको आनंद दायक मानते हैं। अफ्रीकामें झिल्ली छोटे छोटे पींजरोंमें बंदकर बाजारोंमें बेची जाती हैं। उन्हें खरीदनेवाले भी बहुत मिलते हैं। एक अंगरेज़ कविने झिल्लीके मधुर गायनके सम्बन्धमें लिखा है—

Little inmate, full of mirth,
Chirping on my kitchen hearth,
When-so-ever be thine abode,
Always harbinger of good.
Pay, me for thy warm retreat
With a song more soft and sweet,
In return thou shalt receive
Such a Strain as I can give.

झिल्लीको जमीनकी बास आजाती है। इसके इस गुणके कारण एक बार एक जहाज़की रक्षा हुई। इस सम्बन्धमें एक स्थान पर लिखा है—

"ब्राझिलकी ओर जाते समय रास्तेमें 'कोबेडा-डी-व्हारा' नामक जहाज़ पर, केवल तीन पीपे पानी शेष रह गया था। इतना थोड़ा पानी करीब ४०० मुसाफिरों और ३० घोड़ोंके लिए पर्याप्त न था और किनारे पर गये बिना पानी नहीं मिल सकता था। अतएव जहाज़ किनारेकी ओर चलाया गया। मुसाफिरोंमें एक सिपाही भी था, वह बीमार था। उसने मन बहलावके लिए झिल्ली का एक पींजरा भी अपने साथ लिया था। किनारा छोड़नेपर उसने एक बार भी शब्द नहीं किया। अतएव वह मनुष्य पींजरा साथ लानेके झंझटमें पड़नेके लिए पश्चात्ताप करने लगा। किनारेकी ओर जहाज़ चलाये तीन दिन हुए थे। चौथे दिन ज़मीनकी गंध आते ही झिल्ली शब्द करने लगी। × × × × मल्लाहोंने बाहर जाकर देखा तो सामने बड़े बड़े टीले नज़र आये। जहाज़पर अव्यवस्था और घबराहटका साम्राज्य छा रहा था। सब लोग मन मलीन, तन छीन, निराश हो भाग्यको कोसनेमें लग रहे थे। जहाज़के मार्ग की ओर किसीका ध्यान न था। + + + ऐसे समयमें यदि झिल्ली शब्द न करती, तो जहाज़ टीलोंसे टकरा कर चूर चूर हो जाता।

ऊपर झिल्लीकी तीन जातियोंके नाम दे आये हैं। इन सब जातियोंके आचार व्यवहार आदिमें बहुत कम अन्तर है, आखु झिल्लीकी पूर्ण बाढ़ तीन वर्षमें होती है। कभी कभी इससे फसलको ज्यादा

नुकसान पहुँचता है। अतएव उसे नष्ट करनेके लिए बिलोंमें पानी डाला जाता है। मादा अपने बच्चोंकी बड़ी हिफाजत करती है। वह उन्हें भोजन और पानी लाकर देती है। यह बात कीड़ोंमें बहुत कम पाई जाती है।

आदर्श प्राप्तिपर वैज्ञानिक दृष्टि*

अपने जीवनको उन्नत तथा सार्थक बनानेकी अभिलाषा नवयुवकोंमें स्वाभाविक होती है। इसके लिए वह अनेक चेष्टाएँ निरन्तर किया करते हैं। यह भाव उनमें विशेषतया १४ और १६ वर्षकी अवस्थामें अधिक पाये जाते हैं। कोई न कोई आदर्श उनके सामने आ जाता है। उनके शुभचिन्तक भी उनके सामने अनेक आदर्श रखते रहते हैं कि कोई तो रुचिकर हो ही जायगा। व्याख्यान, लेख, पुस्तकालय द्वारा इस अवस्थामें सबका ही यह प्रयत्न रहता है कि देशके नवयुवक किसी आदर्शको अपनाके उसके अनुसार तथा उसकी उत्तेजनाकी सहायतासे अपने जीवनको सुधारें।

इसका फल स्वभावतः बहुत ही अच्छा होना चाहिये। हमारे चारों ओर ऐसे अनेक नवयुवक दृष्टिगोचर होने चाहियें, जिनके जीवन उन्नत तथा सार्थक हो रहे हों और जो किसी आदर्श पर चल कर वास्तवमें ऐसे हो गये हों जैसे वह बनना चाहते हैं तथा जैसे उनके शुभचिन्तक उनको बनाना चाहते हैं।

थोड़ा ही विचार करनेसे स्पष्ट हो जायगा। कि संसारमें कहीं भी ऐसी अवस्था विद्यमान नहीं है। वरन् इसका उलटा ही देख पड़ता है। अधिकांश नवयुवक अपने उद्देश्यको प्राप्त नहीं कर सकते। उनके जीवन निरर्थक होते हैं और उनकी सारी अभिलाषाएं मिट्टीमें मिल जाती हैं। वह ऊँचे और अच्छे भाव जिनका आदर्श उनके सामने रखा जाता है उनके जीवनमें नहीं पाये जाते। इस निदानकी सत्यतामें किसीको भी सन्देह नहीं हो सकता। इस असफलताका कारण कुछ अवश्य ही है, यदि वह कारण नष्ट किया जाय तो सफलता अवश्य हो सकती है।

जब हम किसी आदर्शके भावको अपने हृदयमें लाते हैं तो हम यह सोचते हैं कि आदर्श कोई वस्तु है जो हमसे दूर है और जिसे हम बहुत काल के बाद प्राप्त कर सकेंगे। इस विचार शैलीका प्रभाव यह होता है कि थोड़े दिनके पश्चात् यदि हम अपनेको आदर्शकी ओर कुछ भी बढ़ते नहीं पाते तो सब प्रकारका नैराश्य मनमें उत्पन्न हो जाता है, जो बढ़ते बढ़ते हमें निष्क्रिय बना देता है।

जिसकी मनो विज्ञानमें कुछ भी गति है वह इस साधारण प्रभावको भली भांति समझ सकेगा। यात्राके आरम्भमें ही उसके दूरीके भावसे कुछ शिथिलता आ ही जाती है। आदर्शको हम साधारणतया अप्राप्य समझते हैं। उसको केवल उत्तेजनात्मक मानते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि हमें असफलता मिले और जीवनसे वैराग्य हो तो क्या आश्चर्य है।

हमारे विचारोंका प्रभाव हमारे कार्य्यों पर बराबर पड़ा करता है। हमारे विचार अधिकांश शब्दोंके आधीन रहते हैं। यदि हम ऐसे शब्दोंका प्रयोग करते रहें जिनके भाव हमारे दैनिक जीवनकी मोटी बातोंसे सम्बंध नहीं रखते तो हमारे भाव हमें सार्थक बनाने में बहुत कुछ सहायता नहीं दे सकते। अभी तक जब हम ऊँचे भावोंका विचार करते हैं तो ऐसे शब्दोंका प्रयोग करते हैं जिनसे हमें बहुत सहायता नहीं मिलती। यदि कठिन भाव उत्पन्न करनेवाले शब्दोंके स्थानमें सरल और प्रतिदिन जीवनके व्यवहारमें आनेवाले भावोंको

* अध्यापक ई. ए. वुडहाउसके एक लेखके आधार पर, जिसे उन्होंने गत मासमें हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउसमें पढ़ा था।

बताने वाले शब्दोंका प्रयोग करें तो हमें अपने जीवनको उन्नत और सार्थक बनानेमें बहुत सहायता मिले।

अतएव उचित शब्दोंके प्रयोगके उपायके साथ साथ यदि हम आदर्श सम्बन्धी अपनी विचार-शैली को भी बदलें तो हमारे नवयुवकोंके जीवन सफल हो सकते हैं।

आदर्शको दूर मानना भूल है और इससे काम न चलेगा कि हम आदर्श की ओर अपनी यात्राके प्रत्येक कार्यकी सफलता तथा असफलता को उतने अंश मात्र की सफलता तथा असफलता समझें। इसमें भी कुछ कुछ वही भय है, जो आदर्श को अप्राप्य और केवल उत्तेजनात्मक मानने में है।

इसका एक ही प्रतिकार है। जब तक हम यह न समझलें कि आदर्श जिन गुणों को सामने रखते हैं, वह गुण बीज रूपमें हममे उपस्थित हैं और केवल उनके विकास और स्पष्ट होने मात्र की देर है तब तक हम आदर्शके भावसे पूर्ण लाभ नहीं उठा सकते।

इस विचारसे अध्यापकों को विद्यार्थियोंमें आदर्श की जागृति उत्पन्न करनेमें बहुत सहायता मिल सकती है।

स्मरण रखिये—

(१) आदर्श हमसे दूर नहीं है, वह गुण जिन्हें आदर्शोंके द्वारा हम अपनेमें लाना चाहते हैं वह हममें बीज रूपमें पहले ही से हैं। अतएव नैराश्यका कोई स्थान नहीं।

(२) हमें अपने आदर्शके विचार करनेमें सरल शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये।

वि० प्र०

खेतीके प्राण और उसकी रक्षा

खेतीके काम और यन्त्र

[ले०—एल० ए-जी०]

कटाई

फसलें भिन्न भिन्न अभिप्रायसे खेतमें बोई जाती हैं; जैसे मूलीको हम जड़के लिए बोते हैं। यदि इसे हम उस समय न खोद लें जब कि जड़ पूरी तरहसे बढ़ चुकती है तो वह कड़ी पड़ जायगी और खानेके योग्य न रहेगी। इसी प्रकार ऊख तनेके लिए बोई जाती है। जब तनेमें काफ़ी मीठा रस होता है तब उसे काट लेते हैं। यदि देरी से काटें तो रस कम हो जायगा। इसी प्रकार प्रत्येक फस्ल पर ध्यान देनेसे ज्ञात होगा कि कोई चारेके लिए, कोई फल फूलके लिए, कोई पत्ती और तनेके लिए और कोई जड़के लिए बोई जाती है। जिस समय हमें फस्लकी दशा देखनेसे ज्ञात हो जाय कि हमारा अभिप्राय पूरा हो गया उसी समय उसे काट लेना चाहिये। उपरोक्त विवरणसे यह भी ज्ञात हो जायगा कि कटाईका एक निश्चित समय नहीं हो सकता। जिस समय हमारी आवश्यकता पूरी होती मालूम पड़ेगी उसी समय हमें फ़स्ल काट लेनी पड़ेगी।

कटाईके लिए प्रायः खुर्पी फावड़ा, हँसिया और गड़ांसा काममें लाया जाता है।

जिन फ़स्लोंकी जड़ें या ज़मीनके अन्दर पैदा होने वाले भाग काममें आते हैं उन्हें खुर्पी और फावड़ेसे खोद लेते हैं; जैसे आलू, शकरकंद, गाजर, मूली इत्यादि।

जिन फ़स्लोंके तने नर्म होते हैं वह हँसिये या दराँती (चित्र ७८, ७९) से काट ली जाती हैं; जैसे गेहूँ, जौ, चना, ज्वार, बाजरा, धान, काकुन

इत्यादि। इन फ़स्लोंको काटनेके लिए एक मशीन भी बनी है जिसे कि रीपर (Reaper) (चित्र ८०)
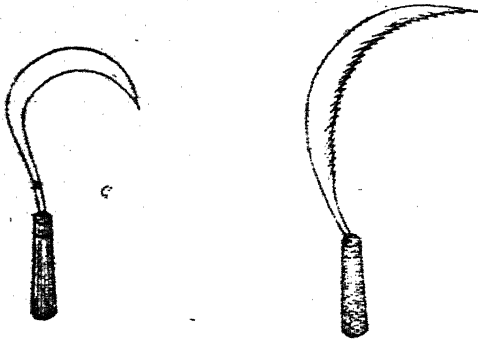
चित्र ७८—हंसिया चित्र ७९—दरांती

कहते हैं। इसके द्वारा गेहूँ जौ, जई, चरी इत्यादि-की फ़स्लें थोड़े समय और कम ख़र्चमें काट ली जाती हैं। इसके चलानेके लिए बड़े खेत होने चाहियें। क्यारी और बरहोंकी मेंड़ोंको इसके चलने से पहिले तोड़ देना चाहिये। जिन देशोंमें सिंचाई नहीं होती और मज़दूर महँगे मिलते हैं वहां पर यह मशीनें बड़ी लाभदायक साबित हुई हैं। २ जोड़ी बैल और १२ मज़दूरोंकी सहायतासे एक दिनमें इस मशीनसे ५—७ एकड़ गेहूँकी फ़स्ल काटी जा सकती है।

कड़े तने वाली फ़स्लें जैसे अरहर, गन्ना, नील इत्यादि गड़ाँसे (चित्र ८१) से काट ली जाती हैं।

फ़स्लों को काटते समय निम्न लिखित बातों-पर ध्यान देना चाहिये :—

(१) दानेके लिए काटे जानेवाली फ़स्लोंको बहुत सूखा न काटना चाहिये। ऐसा करनेसे दाना कटते समय झटकेसे खेतमें झड़ जाता है। बालियां और फलियां गिर जाती हैं।

(२) चारे और भूसेवाली फ़स्लोंको ज़मीनसे मिला कर काटना चाहिये।

(३) दालवाली फ़स्लोंको सवेरे ४—६ बजे तक काट लेना चाहिये। ऐसा करनेसे पत्तियां नहीं झड़तीं और फलियां नहीं चटख़तीं, क्योंकि उस समय उन पर ओस पड़ी रहती है।

(४) जड़ या ज़मीनके अन्दर पैदा होनेवाली फ़स्लोंको काटते समय इस बातका खयाल रखना चाहिये कि वह खुदते समय खुर्पी या फावड़ेसे

चित्र ८०—कटाईकी मशीन

चित्र ८१—गड़ासा

कट न जावें। बीननेवाले इस बातका ध्यान रखें कि खुदी हुई मिट्टीमें से जड़ इत्यादि तत्काल बीन ली जांय; नहीं तो वह दब जावेंगी और फिर उनका सरलतासे पता न चलेगा।

रांग या टिन

इतिहास

मिश्रकी कब्रोंके भीतर टिन या रांगके टुकड़े पाये गये हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन कालमें टिन मिश्रमें काममें लायी जाती थी। पेंटेटियुचमें हेब्रू शब्द बेदिल आया है। इसका अनुवाद यूनानी भाषामें केसी टेरोस शब्दसे और लातनी शब्द स्टेनमसे किया जाता है, परन्तु यह निश्चय नहीं है कि इस शब्दका वास्तविक अर्थ क्या है। रोमन लोग तो स्टेनम शब्दसे सीसेके धातु-मिश्रणोंका अर्थ समझा करते थे।

फोनेशियन लोग रांग भारत अथवा ब्रिटेन या आइबेरियासे मंगाते थे, इस बातका पूरा पूरा पता नहीं है। परन्तु संस्कृत शब्द कस्तीर और यूनानी शब्द केसीटेरोसकी समानतासे यही जान पड़ता है कि भारतसे ही रांग जाया करता था। पीछेसे रांग शायद ब्रिटेनसे आने लगा होगा जिस कारण ब्रिटिश द्वीप समूहको केसीटिराइड्स कहने लगे थे। प्लिनीने लिखा है कि स्पेनके उत्तरमें रांगके टापू (Insulae cassiterides) हैं, जहांसे ही रांग आता है।

रोमन लोग सीसेको प्लंबम नाइग्रम (काला सीसक) और रांगको प्लंबम केंडिडम (सफेद सीसक) कहा करते थे। बादमें स्टेनम शब्द ही रांगके लिए प्रयुक्त होने लगा, जिससे अंग्रेज़ीमें रांगका परमाणु सूत्र Sn लिया गया है।

कीमियागरोंने रांगको बृहस्पति नाम दे रखा था।

निकास

बोलिवियामें शुद्ध बङ्गके टुकड़े पाये गये थे, परन्तु यह कहना कठिन है कि उक्त टुकड़े प्राकृतिक थे अथवा कृत्रिम। अतएव यह संदिग्ध है कि प्रकृतिमें मुक्तावस्थामें रांग मिलता है या नहीं। व्यापारिक रांग रांगके पत्थर (tin stone or casseterite) से ही बनाई जाती है। खानोंमें काम करनेवाले मज़दूर इस कच्ची धातुको "टिन" या "काली टिन" ("tin" or "black tin") नामोंसे भी बोधित करते हैं। शुद्ध धातुको वह श्वेत टिन (white tin) कहते हैं।

रांगका पत्थर प्रायः दो रूपमें मिलता है। एक तो शुद्ध रूपमें, जिसे स्ट्रीम टिन (Stream tin) कहते हैं और जो गौण (Secondary deporits) जमावों से प्राप्त होता है। दूसरा रूप अशुद्ध है, जिसे "लोड टिन" या "वेनटिन" कहते हैं, क्योंकि वह मुख्य जमावों (Primary deposits) की तहों (lodes or veins) मेंसे निकाला जाता है।

रांग का पत्थर रांगका द्विओषिद होता है, जिसका रंग अशुद्धताओंके कारण (विशेषतः लोहा) काला या भूरा होता है। उसमें धातुओंके गंधिद (sulphide), टंग्स्तेत (tungstates), स्वर्ण मक्षिका (copper pyrites) और संखियाके यौगिक मिले रहते हैं।

संसार में जितने रांगकी खपत होती है, उसका प्रायः तीसरा भाग मलाया महाद्वीपमें बन जाता है।

धातका निकालना

कच्ची धातुको पहले पीसकर धोते हैं। मट्टी आदि अशुद्धताएं इस प्रकार थोड़ी बहुत निकल जाती हैं। तदनन्तर उसे एक प्रतिफलक भट्टेमें भूनते हैं। इस क्रियामें गंधक और संखिया ओषिदोंमें परिणत हो निकल जाते हैं। संखियाका ओषिद तो चिमनियों और धमालोंमें जमा हो जाता है

और बादमें काम आ जाता है। लोहका अंश ओषिदमें बदल जाता है और ताम्बा नीले थोथेमें।

इसके बाद कच्ची धातुको फिर धोते हैं। नीला थोथा गलकर और लोह ओषिद बहकर निकल जाता है। अब कच्ची धातुमें अधिकांश बङ्ग द्विओषिदका रह जाता है, जिसमें पत्थरका कोयला पीसकर मिला देते हैं और प्रतिफलक भट्ठोंमें गरम करते हैं। कोयला ओषिदकी ओषजनसे मिलकर कर्बन एक-ओषिद बना लेता है और रांग अलग हो जाता है। यह रांग भट्ठेके पेंदेमें जमा होता रहता है और बड़े बड़े डलोंके रूपमें ढाला जाता है। इन डलोंको (block tin) फिर एक भट्ठेमें गरम करते हैं। रांग पहले गलकर बह जाता है और अशुद्धताएं वहीं पड़ी रह जाती हैं। पिघली हुई रांगको बरतनोंमें भरकर हरी लकड़ीके डंडोंसे चलाते हैं। जो कुछ बची खुची अशुद्धताएं होती हैं वह भी मैलके रूपमें ऊपर उठ आती हैं।

बङ्गके गुण

रांग एक सफेद चमकीली धातु है, जिसमें पीलापन लिये हुए नीली झाईं दिखाई देती है। रांगको चाकूसे काट सकते हैं। रांग सीसेसे अधिक परन्तु जस्तेसे कम कठोर होता है। ठोक कर रांगके वर्क बनाये जा सकते हैं। रांगका तार भी खींच सकते हैं। रांग २३२°श पर पिघलता है। द्रवण बिन्दुके कुछ पहले उसकी ऐसी अवस्था हो जाती है कि वह सुगमतासे खरलमें पीसा जा सकता है। रांग ठोस होने पर रवेदार बन जाता है। यह बात कई प्रयोगोंसे सिद्ध हो सकती है। रांगको एक घरियामें पिघलाइये। उसे अंशतः जमने दीजिये और तब बचे द्रवको निकाल दीजिये। घरियाकी दीवारों पर रांगके रवे दिखाई पड़ेंगे। इसी प्रकार रांगके एक टुकड़े पर या रांग चढ़े लोहे—टीन—पर गरम गरम शोराम्ल और लवणाम्लका मिश्रण छोड़ दीजिये। दोनोंके तल पर रवे नज़र पड़ने लगेंगे।

बङ्गके रूपान्तर

बङ्गके तीन रूपान्तर होते हैं। दो रवेदार और तीसरा बे रवा। जिस भुर भुरे रांगका वर्णन ऊपर कर आये हैं उसके रवे एक प्रकारके (Rhombic) होते हैं और साधारण रांगके दूसरे प्रकारके। पहला प्रकार १७०°शके ऊपर और दूसरा १७०°श और १८°श के बीचमें स्थायी है। तीसरा प्रकार १८°श से नीचे स्थायी है।

बङ्ग रोग

कभी कभी जब कड़ी सर्दी पड़ती है तो रांगसे बनी वस्तुएं स्वतः चूर्ण होकर बिखर जाती हैं। यह बात अर्डमनने पहले पहल रांगकी बनी बांसुरीके विषयमें देखी थी। इस परिवर्तनको बङ्ग रोग कहते हैं। यदि रांगका ऐसा टुकड़ा जिसमें यह परिवर्तन होना आरम्भ हो गया है एक स्वस्थ टुकड़ेके पास रख दिया जाय तो यह दूसरा टुकड़ा भी बदलने लगेगा और पहलेकी अपेक्षा बहुत शीघ्रतासे। अतएव यह रोग छूतका रोग माना जाता है।

बङ्ग रोदन

यदि बङ्गकी एक छड़ लेकर उसे कानके पास जल्दी जल्दी इधर उधर मोड़ा जाय तो एक बारीक रगड़का शब्द सुनायी देगा। इसका कारण यह है कि छड़के झुकाने पर उसके भीतरके रवे एक दूसरेसे रगड़ खाते हैं।

बङ्ग पर तेज़ाबोंका प्रभाव

गरम और पतला लवणाम्ल रांगको धीरे धीरे गलाता है, परन्तु गाढ़ा लवणाम्ल शीघ्रतासे गलाता है और बङ्ग द्विहरिद (बङ्गस हरिद) बन जाता है।

$$ब + २ उ ह = ब ह_२ + उ_२$$

यही हाल गंधकाम्लका भी है।

$$ब + २उ_२ ग ओ_४ = ब ग ओ_४ + २ उ_२ ओ + ग ओ_२$$

परन्तु नत्रिकाम्लकी क्रिया उसके गाढ़ेपन पर निर्भर होती है, पदार्थ भी अन्यान्य बनते हैं—

पतले शोराम्लकी कियासे बङ्गनत्रेत अमोनियम नत्रेत और पानी उत्पन्न होता है:—

४ ब + १० उ न ओ$_3$ = ४ व (न ओ$_3$)$_2$ +
न उ$_4$ न उ$_3$ + ३ ह$_2$ ओ
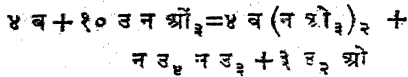
औसत गाढेपनके अम्लके अभावसे बङ्गाम्ल बनता है; बहुत गाढ़े नत्रिकाम्लकी क्रिया बिलकुल नहीं होती।

बङ्ग पर क्षारोंका प्रभाव

क्षारोंमें बङ्ग गल जाता है:—

ब + २ पो ओ उ + उ$_2$ ओ
= पो$_2$ ब ओ$_3$ + २ उ$_2$
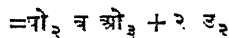
पोटासियम बङ्गेत बन जाता है।

रांग किस काममें आता है

मामूली टीन लोहे पर टिन अर्थात् रांग चढ़ा कर बनाया जाता है। ऐसा केवल लोहेकी रक्षाके लिए करते हैं। रांग चढ़ानेके लिए या तो पिघले रांगमें लोहेकी चद्दरको डुबो देते हैं या विद्युत् विश्लेषण द्वारा चढ़ा देते हैं।

रांगसे बर्तनों पर कलई करते हैं। रांगको पारदमें घोल कर शीशों पर चढ़ाते हैं।

रांग बहुतसे धातु-मिश्रणोंके बनानेके काम आता है। उनमें से टांका, आदि अनेक उपयोगी पदार्थ हैं।

बंग यौगिक

ओषिद—रांगके दो ओषिद होते हैं—एक रांगस ओषिद बओ और रांगिक ओषिद ब ओ$_2$। रांगस ओषिद—इसके बनानेके लिए बङ्गस ओकज़लेत हवाकी अनुपस्थिति में गरम करते हैं।

क ओ ओ—
क ओ ओ— ब = ब ओ + क ओ + क ओ$_2$
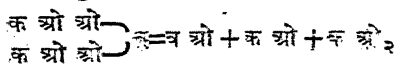
जब बंगस ओषिद हवा में गरम किया जाता है तो श्वेत् उत्तप्त हो जाता है और जलकर बङ्गिक ओषिदमें बदल जाता है। अम्लोंमें गलाने पर बङ्गस लवण पैदा कर देता है। दाहक सोडामें भी यह पदार्थ गल जाता है और सोडियम बङ्गित बन जाता है—सो$_2$ ब ओ$_3$।

रांगिक द्विओषिद—यह कई तरकीबों से बनाया जा सकता है :—

(१) धातुको हवामें जलाने से।

(२) बंगस द्विओषिद को गरम करने से।

(३) नत्रेत अथवा कर्बनेतको गरम करने से। यह एक बेरवा चूर्ण है, जो गरम करने पर पीला या भूरा हो जाता है। परन्तु ठंडा होनेपर फिर सफेद हो जाता है। इसपर अम्लों और क्षारोंका प्रभाव नहीं पड़ता, परन्तु पिघले हुए दाहक पोटास में यह गल जाता है और बंगेत बन जाता है।

बङ्गके हरिद

रांगके दो हरिद भी होते हैं।

बङ्गस हरिद—इस पदार्थ के बनानेके लिए रांगको लवणाम्लमें गलाइये। घोलमें से बह$_2$, २ उ$_2$ ओ के रवे मिल जायँगे। पानीका अंश निकालना अभीष्ट हो तो रवोंको शून्यमें गरम कीजिये। इसके बनानेकी दूसरी तरकीब यह है कि रांगकी छीलनको पारदस हरिदके साथ गरम कीजिये—

पा ह$_2$ + ब = बह$_2$ + पा
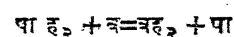
यह हरिद पानीकी बहुत थोड़ी मात्रा लेनेसे उसमें घुल जाता है, परन्तु अधिक पानी लेनेसे वह घुलते ही एक अनघुल पदार्थमें बदल जाता है। यह एक जबरदस्त ऋणद पदार्थ है। उदाहरणार्थ यदि पारदिक हरिदके घोलमें मिलाया जाय तो उसकी हरिन छीन उसे पारदस हरिदमें बदल देगा और अन्तमें निरा पारा ही बना देगा।

ब ह$_2$ + २ पा ह$_2$ = ब ह$_4$ + पा$_2$ ह$_2$

ब ह$_2$ + पा$_2$ ह$_2$ = ब ह$_4$ + २ पा
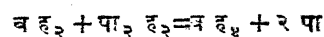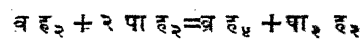
बङ्गिक हरिद—इसके बनानेकी भी कई तरकीबें हैं। (१) रांगको एक बकयंत्रमें गलाइये और शुष्क हरिन उसपर होकर निकालिये; (२) बंगका बुरादा पारदिक हरिदकी अधिक मात्राके साथ गरम कीजिये। (३) बंगस हरिदको लवणाम्ल और नत्रिकाम्लके मिश्रणमें गलाइये।

यह एक अत्यन्त हिलने वाला, धुआं देने वाला वर्णहीन द्रव है।

बङ्गके गंधिद

बङ्गके दो गंधिद भी हैं।

बङ्गस गंधिद—बनानेके लिए बङ्गपत्र गंधककी भापमें लटका देते हैं। वह जलकर बङ्गस गंधिदमें बदल जाते हैं। बङ्गस लवणोंमें जब उज्जन गंधिद प्रवाहित करते हैं तो यह गंधिद बन जाता है। वङ्गिक गन्धिद—बनानेके लिए बङ्गको पारेमें गलाकर अमोनियम हरिद और गंधकके साथ गरम करते हैं। यह रोगनके काममें आता है। इसका व्यापारिक नाम मोज़ेइक गोल्ड है।

—करामत हुसैन।

विचार
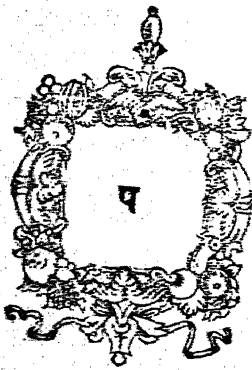
पशुओं और मनुष्योंमें यही अन्तर है कि मनुष्य जातिका मस्तिष्क समय समय पर भावनाओंमें तन्मय होकर नवीन विचारोंकी सृष्टि करता है, पशु-समाजमें यह बात नहीं पायी जाती। काव्य, संगीत, इतिहास, दर्शन, योग आदि जो कुछ भी समाजमें सभ्यताका परिचायक गिना जाता है वह सब इसी विचार-शीलताका फल है। यह विचार-तन्मयता आदिम प्रवृतियोंमें से किसी एकके द्वारा प्रेरित होती है, अथवा स्वतन्त्र रूपसे उत्तेजित होती है, इस विषयमें विद्वानोंमें मतभेद है। उदाहरणके लिए डूगल Medougall नामक एक विद्वान् पूर्व पक्षके समर्थक हैं तथा ग्रैहम वैलस नामक अन्य विद्वान् पिछले पक्षके। इसी प्रकार विचारकी भी कोई कला है या नहीं, इस विषयमें भी लोगोंमें मत-विभिन्नता है। प्रोफ़ेसर जेम्स नामके एक विद्वान् का कथन है कि अख़बारी पहेलीकी रचनासे लेकर साम्राज्यकी नीतिके निर्धारण तक विचारोंकी उत्पत्तिका एक ही क्रम है। उचित विचारके आनेके सम्बन्धमें हम मस्तिष्ककी प्रकृतिके नियमोंपर ही अवलम्बित रहते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक सज्जनोंकी सम्मतिसे यही निचोड़ निकलता है कि विचार हवाकी तरह बहते हैं और मन माने आते हैं, अतएव विचार-कलाका होना असम्भव है। इसके विपरीत कुछ महाशयोंका कहना है कि यह बात सर्वांशमें सत्य नहीं है। हमारी भी यही राय है; और इसीसे आज हम विचारके विकास और उन्नति सम्बन्धी कुछ उपायोंकी चर्चा करनेकी धृष्टता कर रहे हैं।

सबसे पहले जो बात विचारको सर्वाङ्ग-प्रौढ़ बनानेके लिए अत्यन्त आवश्यक है, वह यह है कि विचार करनेवाला भौतिक चिन्ताओंसे मुक्त रहे। भूख, प्यास, शारीरिक व्याधि अथवा ऐसी कोई उद्विग्नता जिसका सम्बन्ध शरीरसे है, विचार कर्त्ताके चित्तको अशान्त बना कर उसके विचार रूपी बादलको हवाकी तरह तितर बितर कर देती है। अतएव यह वांछनीय है कि विचारकर्त्ताको रुचिके अनुकूल भोजन, देश जलवायुके अनुसार वस्त्र तथा शान्त एकान्त स्थान मिले। हमारी तो धारणा है कि भारतवासियोंके इतने धर्म्म प्रेमी और दार्शनिक होनेका प्रधान कारण यहांके विचार कर्त्ताओंका खाने पीनेके झंझटोंसे मुक्त रहना ही है। भारतवर्षमें प्राचीन कालमें ब्राह्मण ही सोचनेका काम करते थे। एक तो वैसे ही यह देश धन सम्पन्न था, तथा गर्म होनेके कारण सरल जीवन व्यतीत करनेके योग्य था, उसपर समाजने कुछ ऐसी सुन्दर व्यवस्था कर दी थी कि वह पृथ्वीपर देवताकी तरह पूज्य समझे जाने लगे और उनकी सेवा पुण्यमयी स्वर्गकी सीढ़ी बतलायी जाने लगी। विशाल देश था, रम्य तपोवन थे और सुजला

सुफला वसुन्धरा थी। अतएव भौतिक विघ्न-बाधाओंसे मुक्त होकर महर्षियोंने तपस्या करके दिव्य दृष्टि लाभ की। यहां हम इतना और बतला देना चाहते हैं कि भूख प्यासको तपोबलसे जीत लेनेवाला विचार-कर्त्ता उनकी उद्विग्नतासे मुक्त हो सकता है, उस दशामें हम यह नहीं कह सकेंगे कि उसे भूख या प्यास लगी है।

परन्तु पश्चिममें न तो ऐसी सुन्दर सामाजिक व्यवस्था थी और न प्रकृतिने ही आवश्यकताएँ कम करनेकी उदारता दिखाई थी। वहां कुछ धनवान् विचार कर्त्ताओंको छोड़कर अन्य सभीको पेट पालनेकी चिन्तामें जीवन-संग्राममें उतरना पड़ता था। उनमेंसे कितने ही लोगोंने वहां जादूगरीके द्वारा और कितनों ही ने पादड़ी बनके जीवन-निर्वाह किया है। प्रायः राजनीतिज्ञोंको तो अवकाश और आरामके वह साधन प्राप्त हो जाते थे, जिनसे विचारके पनपनेमें सहायता मिलती हैं। किन्तु औरोंमें से कितनों ने ही शिक्षकका कार्य्य किया है और बहुतोंने अपनी कृतिको ही बेचकर अर्थात् लेखन-व्यवसायसे रोटी चलाई है। परन्तु इसमें क्या सन्देह कि यह ढंग विचारकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें जितने ही सहायक होते हैं, उतने ही नाशक भी होते हैं; क्योंकि ६ घण्टे तक कार्य्य करनेके पश्चात्, ४ घण्टे एकाग्र चित से चिन्तन करना असंभव-प्राय है। किसी किसी ने भिक्षाटनसे ही अपना काम चलाया है, किन्तु यह ढंग, जब तक कि किसी विशेष प्रकारसे प्रतिष्ठित न बनाया जाय, नैतिक अधःपतनका द्वार है।

खेद है वर्त्तमान भारत भी पश्चिमके इस दूषणको भूषण समझ कर अपनाये जा रहा है। जहां ऋषियोंने नंगे रह करके तथा साधारण फलाहार करके महान् ग्रन्थोंकी रचना की और अन्य अनेक आश्चर्य्य-जनक कार्य्य किये, वहां भी सामाजिक प्रणालीके अत्याचारसे पीड़ित विचार-कर्त्ता अब बढ़ी हुई आवश्यकताओंके कारण चिन्तासे ग्रस्त रहता है और पेटकी ज्वाला बुझानेके लिए आधेसे अधिक समय देने पर विवश होता है।

यदि भविष्यमें समाज चाहता है कि विचार-कर्त्ता उन्नत विचारोंकी सृष्टिमें अबाध रूपसे लगें तो उसे उनके भोजन वस्त्रका प्रबन्ध करना पड़ेगा, अन्यथा उसकी आशा और लालसाके अनुरूप कार्य्य होना कठिन हो जायगा। भारत वर्षकी प्राचीन पद्धति बहुत सुन्दर थी और हमारी सम्मति है कि वह संसार भरमें मान्य हो।

खाने पीनेकी चिन्ता तो विचार कर्त्ताके मार्गमें कांटे बखेरती ही है, मानसिक आन्दोलन भी उसे कम कष्ट नहीं देता। यह अनुभवकी बात है कि जब जब कोई राष्ट्र राजनीतिक उत्तेजनाओंमें पड़ा रहा है, नवीन मौलिक विचारकी सृष्टि उसने बहुत ही थोड़ी की है। साथ ही यह भी देखा गया है कि व्यक्ति गत स्वतंत्रताकी वृद्धिके साथ ही साथ विद्या-क्षेत्रमें भी क्रिया शीलताका क़दम बढ़ता गया है। टालस्टायका कहना है कि उन्होंने कितने हो ग्रंथोंके लिखनेका विचार किया, परन्तु उनमेंसे एक भी न लिख पाया। कारण यह हुआ कि अधिकारियों द्वारा निरीक्षण और कांट छांटके भयने उनकी लेखनी कुंठित कर दी। यह तो एक साधारण सी बात है। किसी विद्यार्थीका खूब अपमान कर दीजिये और फिर उससे कहिये कि वह कोई प्रबन्ध लिखे। सम्भव है आपकी आज्ञाका पालन हो जाय, परन्तु वह कार्य्य आपको पूर्ण सन्तोषप्रद कदापि नहीं हो सकता। अतएव, विचार-कर्त्ताके मस्तिष्कका रुख भी कुछ ऐसा होना चाहिये, जो अपेक्षित विषयके अनुकूल हो।

प्रायः विचारका विकास किसी विशेष आदत अथवा मस्तिष्कके किसी ऐसे प्रदेशका प्रयोग करने पर निर्भर होता है जो विचारोंको अधिक विशद रूपसे प्रकट करनेकी क्षमता रखता हो। कभी कभी ऐसा देखा गया है कि बिगड़े मस्तिष्कवाले भी बोल कर सुन्दर विचार प्रकट करनेमें सफल हुए हैं। इसका कारण यही है कि वाणीकी सहायता पाकर

उनके मस्तिष्कका विचार सम्बंधी भाग क्रिया-शील हो गया। बहुतोंको भाषण करते समय खूब विचार सूझते हैं, अन्य कितनोंकी ही बोलते समय सारी बुद्धि मारी जाती है। कुछ लोगोंको लिखते समय विचार आते हैं। बहुत से विचार-कर्त्ता अन्य अनेक आदतें लगा लेते हैं, जिसका फल यह होता है कि वह उनके दाससे हो जाते हैं। उदाहरणके लिए जिन्होंने अफ़ीम, पान, भंग, अथवा अन्य कोई चीज़ खा कर सोचनेको आदत डाल ली है, उनके लिए बिना इन वस्तुओंके प्राप्त हुए पूर्ण प्रकारसे विचारमें निमग्न होना कठिन हो जायगा।

कभी कभी ऐसा होता है कि विषय परिवर्त्तनसे भी विचार करनेमें सुविधा होती है। जो मनुष्य इतिहास पढ़ते पढ़ते ऊब गया है, यदि वह किसी अर्थ शास्त्रके ग्रंथको उठा ले तो सम्भव है उसे नवीन विचार आ जायँ। Zola ज़ोलाके विषयमें कहावत है कि वह अपने भविष्य कालके उपन्यासके चरित्रोंके पास लम्बे लम्बे प्राइवेट पत्र लिख लिख कर अपनी कल्पनाको उत्तेजित किया करते थे। इसका यही रहस्य था कि वह अपने मस्तिष्कके प्रदेश-विशेषको थोड़ा आराम देकर अन्य प्रदेशसे काम लेनेमें लाभ समझते थे।

इस प्रकार अब पाठकोंको प्रकट हो गया होगा कि विचारके विकास और सौन्दर्य्यमें, विचार-कर्त्ताको शारीरिक और मानसिक कष्ट तथा आन्दोलनसे बचाये रखनेसे, कितनी सहायता मिलती है। अब यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि यद्यपि कितने ही विद्वानोंका वह कथन अधिकांशमें सत्य है कि विचारोंके उत्पन्न होनेका कोई नियम नहीं, तथापि उक्त दोनों प्रकारकी शिकायतोंको बिना दूर किये यह आशा नहीं की जा सकती कि आये हुए विचार थोड़ी देरके लिए भी टिक सकेंगे अथवा उनका स्वरूप उतना ही सुन्दर और सुडौल होगा जितना कि दूसरी दशामें होना सबको मान्य होगा। हमारा यह कहना कदापि नहीं है कि उक्त अवस्थाओंमें विचार अवश्य ही उत्पन्न होंगे, किन्तु इतना हम अवश्य कहते हैं कि यदि वह उत्पन्न होंगे तो उनकी वृद्धि अबाध होगी। नीचे एक अन्य उपाय हम और बतलाते हैं जिससे विचारके स्पष्ट और पक्ष-पात शून्य होनेमें सहायता मिलेगी।

वह उपाय है स्मृति, लिपि, तथा तर्क शास्त्र से सहायता लेना।

स्मृति से सहायता लेनेकी बात कहना तो कुछ बेतुका सा मालूम होता है; क्योंकि सच पूछिये तो सोचना, यादमें लाना तथा तर्क करना—यह सब एक ही बातें हैं। हमारे कहनेका मतलब केवल यही है कि पक्षपात पूर्ण तथा जन्मके साथ आनेवाले विचारों तथा अपने जीवनमें ही निश्चित अनेकानेक भावनाओंमें पूर्ण संशोधन हुए बिना विचार की स्वच्छतामें अन्तर अवश्य ही पड़ता है। उदाहरणके लिए, जो ब्राह्मण शूद्रोंके विरुद्ध भावोंके साथ जन्म लेता है अथवा जो अपने ही जीवन-कालमें किसी जातिके कुछ व्यक्तियोंको देखकर उनके विषयमें एक पक्की धारणा कर लेता है, चाहे वह कितनी ही गलत क्यों न हो, उसके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता कि वह जो कुछ भी सोचेगा वह सर्वांशमें सत्य और न्यायानुमोदित ही होगा। अब दिनों दिन विचार कर्त्ताओंका प्रभाव-क्षेत्र अधिक विस्तृत होता जा रहा है। इंगलैण्डका एक विचारकर्त्ता चाहे तो युद्धकी घोषणा कराके समस्त संसारको दारुण विपत्तिमें डाल सकता है। अतएव अब इस बातकी आवश्यकता भविष्यमें और भी अधिक होगी कि विचार-कर्त्ता अपने भावोंको संकीर्ण होनेसे रोके।

स्वच्छ स्मृतिके साथ ही साथ लिपिसे जो कुछ भी सहायता प्राप्त हो सकती है इससे विचार कर्त्ता को पूर्ण लाभ उठाना चाहिये। स्मृतिका निर्माण तब हुआ था जब मानव जाति शरीर-विकासके आदिम कालमें थी, और वह हमारे जीवनकी समस्त बातोंको उसी शैशव-कालकी अवस्थाओं से सम्बद्ध करनेका प्रयास करती है। इतना ही नहीं, सब बातोंको सजाकर रखनेका

उसका ढंग तथा उसकी ग्रहण-शक्ति यह सब मानव जातिके उसी बाल्यकाल द्वारा निर्धारित होगया था। मनुष्यका कार्य्य क्षेत्र परिमित था। थोड़ी दूर चलनेके बाद पैरमें थकावट आ जाती थी, संसार भरकी बातें यह सुन नहीं सकता था। और न कुछ दूरीकी चीज़ोंको छोड़कर अन्यको वह सूंघ सकता था। कुछ वर्षोंके क्रिया-शील जीवनके पश्चात् इसमें सन्देह नहीं, उसका वह क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता था, परन्तु फिर भी कुछ हज़ार मनुष्योंके अस्पष्ट चेहरों, कुछ सैकड़े स्थानोंकी अर्द्ध-स्मृति शोभाओं आदिके सिवा यह नहीं हो सकता था कि वह प्रत्येक देखी हुई वस्तुकी एक एक बातको याद रख सके। ऐसी तो अस्पष्ट और भ्रान्ति पूर्ण यह स्मृति होती है, तथापि इसीके द्वारा राजनीतिज्ञ अपने कमरेमें बैठा लाखों करोड़ोंका जीवन बनाया बिगाड़ा करता है।

अतएव, विचार-कलाके लिए यह परम आवश्यक है कि प्राकृत तथा कृत्रिम दोनों प्रकारके विचारोंकी स्मृतिमें समुचित संशोधन करनेके साथ ही साथ किसी प्रकार स्मृतिको अधिक स्पष्ट बनानेका प्रयत्न किया जाय। हर्षकी बात है कि कितनी ही अस्पष्टताओंको, विचारको लिपि बद्ध करके, दूर किये जानेका प्रबन्ध किया जाने लगा है। परन्तु अकेली लिपिकी सहायता लेनेसे विचार-कर्त्ताका धोखा खाना सम्भव है, क्योंकि लिपिमें सबसे बड़ी कमी यह है कि वह अत्यन्त जीवन-शून्य हो जानेके कारण विचार-कर्त्ताको मशीनकी तरह हृदय-हीन बना देती है। अतएव विचारके विकाशके लिए यह वांछनीय है कि दोनों से सहायता ली जाय।

विचारके संशोधनमें, उसके रूपकी चारुता-वृद्धिमें, तर्क-शास्त्र भी बड़ी सहायता पहुँचाता है। इसमें सन्देह नहीं कि अब उसका महत्त्व उतना नहीं मालूम होता, परन्तु किसी समय जो विचार उसके सांचेमें ढाले नहीं जाते थे उनके पक्केपन पर सन्देह बना ही रहता था। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि तर्क शास्त्रके प्रति इस वर्द्धमान उदासीनताका कोई कारण नहीं। हमने ऊपर लिपि बद्ध विचारके विषयमें चर्चा की है। यह प्रणाली दिनों दिन व्यापक होती जा रही है। भौतिक शास्त्र, नैतिक शास्त्र, समाज शास्त्र, अर्थ शास्त्र, मनोविज्ञान आदि सभीमें उसका प्रभुत्व स्वीकृत होता जा रहा है। परन्तु भौतिक शास्त्रोंकी तुलना नैतिक शास्त्रोंके साथ नहीं की जा सकती, इसका कारण यह है कि पिछलेमें प्रयोगका करना उतना आसान नहीं है जितना कि पहलेमें है। लिपिबद्ध कार्य्य नैतिक शास्त्रोंमें भी अपने मशीनपन की अरोचिकरता, हृदयशून्यता दिखला कर मानव-हृदयको रुष्ट और असन्तुष्ट कर देता है। यही बात है जो तर्कशास्त्रके प्रति लोगोंमें उदासीनता फैल गई और एक ऐसा दल खड़ा हो गया जो कर्म्मके क्षेत्रमें से तर्क शास्त्रका बहिष्कार ही करने पर उतारू हो गया। अपने मतकी सुपुष्टताके जोशमें उसने प्रवृत्ति को ही मानव-कर्म्मा कर्म्मको औचित्यकी निर्धारिका बतलाया।

किन्तु थोड़ा ही विचार करने पर पाठकको विदित हो जायगा कि ज्यों ज्यों हमारे दैनिक व्यवहारका जगत विस्तृत होता जाता है, तथा ज्यों ज्यों विशाल संगठन होते जाते हैं त्यों त्यों प्रवृत्ति मात्रप्रेरित कार्य्यमें साफल्यकी आशाका लोप होता जा रहा है। अतएव पूर्ण मननके पश्चात् निश्चित किये हुये विचारके अनुसार कार्य्यके किये जानेमें ही बुद्धिमानी समझी जायगी। क्या ही अच्छा हो यदि तर्कानुमोदित और अनुभूतिके बलसे सम्पन्न होकर विचार कार्य्य क्षेत्रमें पैठे।

तो फिर भविष्यमें क्या होना चाहिये? विचार-कर्त्ता किस प्रकार सुन्दर विचार उत्पन्न करनेमें सफल होगा? इसका संक्षिप्त उत्तर यही है कि समाज ऐसी व्यवस्था करे कि शारीरिक तथा मानसिक कष्टसे मुक्त रहकर स्मृति तथा लिपिबद्ध विचारकी सहायतासे, अनुभूति और भावुकता-

को अपने विचारकी सखी बनाकर, प्रतिभाशाली लेखक, कवि, वैज्ञानिक, दार्शनिक, गणितज्ञ अथवा विद्या-जगतके अन्य किसी उद्यानमें रमण करने-वाला विचार-सृष्टिकारी अपने कार्य्यमें पक्षपात आदि भावोंसे शून्य होकर दत्त चित्त हो। इसीमें संसारका कल्याण है।

—गिरिजादत्त शुक्ल।

अश्वशास्त्रकी उत्पत्ति

[ले०—पं० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार]

हिन्दी साहित्यमें हम पशुविज्ञान पर बहुत कम ध्यान देते हैं। रेल मोटरकार हो जाने से वस्तुतः हम पशुओंका मूल्य ही भूल गये। बड़े बड़े शहरोंमें निकम्मा पानी मिला दूध मिलने से हमें दूध से घृणा हो गयी। अच्छा दूध किस चिड़िया का नाम है यह अब स्वप्नमें भी विचार उत्पन्न नहीं होता। आजकल सरकारने चरागाहों-पर अपनी सर्वापहारक नीतिका प्रयोग करके सर्वसाधारणके लिए गाय पाल लेना एक दुष्कर कार्य कर दिया है। इसलिए गायोंके पालने तथा उनके दुःख सुखके साथ अपने दुःख सुखका विचार रखनेका भाव ही हमारे चित्तोंसे सदाके लिए उठ गया है। जब हम गोपालन, गोरक्षा या अन्य किसी पशु सम्बन्धी शास्त्रका अध्ययन करते हैं तब उसकी सब बातें खयाली आंखोंसे मानते जाते हैं। क्रियात्मक वास्तविक रूप हमसे कोसों दूर रहता है। ठीक यही बात घोड़ोंके विषयमें भी है।

पहले घर घर घोड़े भी पलते थे। सब जमींदार घोड़ों और बैलोंके आधार पर ही अपना यश और समृद्धि समझते थे। वह उनको खूब अच्छी प्रकारसे पालते तथा उनका गुणदोष पहचानते थे। अब घोड़ोंका रहस्य जाननेवाला कोई ही मिलता है। या तो वही जानें जिनकी रोज़ी घोड़ों पर है या सरकार जाने जिसके हाथमें सेनाके घोड़ोंका प्रबन्ध है। वेटीनेरी अस्पतालके डाक्टर तो केवल घोड़ेकी चिकित्सा मात्र जानते हैं। शेष भारतके विद्वत् समाजके लिए इससे कोई सरोकार ही नहीं रह गया। वह रुपया बचा लेनेके लिहाज़से घरके बाहर मरियल घोड़ेवाले इक्के या तांगे पर ही आंख बन्द करके चढ़ेंगे। उन्हें घोड़ेके गुणोंसे कुछ मतलब ही नहीं। धनी लोगोंको अपने धनमदसे फुर्सत नहीं, वह भी घोड़ा गाड़ियोंको तिलाञ्जलि देकर किसी कारखानेकी बनी सैकण्डहैण्ड मोटर-कार रखनेमें अपनी शान समझते हैं। एक २५) का मोटरिस्ट ही उनके लिए पर्याप्त है। फिर अश्वशास्त्र और गजशास्त्र संस्कृत पुस्तकोंमें बन्द रहकर केवल पुस्तकालय की अलमारियोंका भार ही बने रहते हैं। यह दशा कैसी शोचनीय है!

यन्त्रकलाके युगने भारतमें से तो जीव संसार की पारिवारीकताका नाश कर दिया। जहां पहले बड़े बड़े धनी लोगोंका धन सैकड़ों हजारों गौओं और घोड़ोंके पालनेमें और उनकी सेवाके लिए नियुक्त सैकड़ों भृत्य सेवकोंकी परवरिश करनेमें लगता था और बड़ा धनी जागीरदार अन्नदाता कहाता था, अब वह रुपया आपसकी मुकदमे बाजी या दूसरे शब्दोंमें सरकारके न्यायके बनावटी हाथीके पालनेमें, मोटरोंके खर्चोंमें, विदेशी विलासिताके क्रय करनेमें, बायस्कोपों और नाच रङ्गोंमें रेलगाड़ीके फर्स्ट क्लास और सैकण्ड क्लासके भाड़ोंमें व्यय हो जाता है। वह अब इन अपव्ययोंमें पड़कर अन्नदाताके स्थान पर अपनी प्रजाके रक्तपायी नर राक्षसोंका स्थान भर रहे हैं।

यूरोपने भी इसी सभ्यताका प्रचार किया है। यन्त्रों द्वारा जब सब पशुओंका कार्य निकल जाय तो सब पशुओंको मारकर उनका मांस खाया जाय, हड्डियोंके चाकू छड़ी और छुरोंके मुट्ठे बना लिये जांय, परों और बालोंसे नाटक घरोंके बहुरूपिये लोगोंकी दाढ़ी मूछें, तथा फैशनोंसे सजनेके लिए नाना पोशाकें और शीत निवारणके

लिए कम्बल बन जांय, चमड़ोंके घुटने घुटने तकके बूट, बैग, मनीबेग, तथा सन्दूक और पेटियां और यन्त्रके चक्रोंके पट्टे बन जांय। फलतः पशुपक्षी संसारका इस लोकमें रहनेका कोई अधिकार ही नहीं रहा। इस घोर निर्दयता तथा शत्रुताका विचार करते ही स्वार्थमय मानव जीवनसे बड़ी घृणा उत्पन्न होती है। क्या पाश्चात्य सभ्यताका यही आदर्श है?

पाठकगण, आइये पूर्वीय सभ्यताका गुण गौरव देखिये। किस प्रकार पशुपक्षी और मनुष्य संसार मिल जुलकर रहते थे। पशुओंके लिए चरागाहें तथा हरे भरे जंगल और उपयोगी पशुओंपर अत्याचार करनेवाले हिंसक जन्तुओंको मृगयासे दमन करनेवाले शिकारी आदिकी योजना की जाती थी, जिससे सब सुखसे अपने जीवनको बिताते थे। पक्षियोंके सूक्ष्म और चरम विज्ञान तककी समुद्र शास्त्र तथा शाकुन शास्त्रों द्वारा खोज की गयी थी। गज शास्त्र और अश्वशास्त्र वृषशास्त्र और सर्प शास्त्रोंसे गज, अश्व, बैल और सर्पों तककी विशेष जांच पड़ताल की गयी थी। उनकी समुचित रक्षाका प्रबन्ध किया गया था। उनसे ही मानव समाजके सुखका प्रबन्ध किया गया था। और मानव समाजने उनको भी सुख पहुँचाया था। फलतः यह एक अजब जीव परिवार सा मिलकर आनन्दसे रहता था। अस्तु इतनी भूमिकाके अनन्तर हम पाठकोंका अपने प्राचीन अश्व शास्त्रपर ध्यान आकर्षण कराना चाहते हैं।

प्राचीनकालमें अश्वशास्त्रके कुछ प्रामाणिक आचार्य हो गये हैं जैसे शालिहोत्र और नकुल। अन्य आचार्य भी हुए हैं तो भी उन्होंने इन्हींको अपना गुरु स्वीकार किया है। यों विष्णु धर्मोत्तर पुराणमें पुष्कर आचार्यने अश्व शास्त्रका उपदेश दिया है। गणदेवने अश्वायुर्वेद बनाया है। जयदत्तने भी अश्वायुर्वेद बनाया है। आचार्य किल्हण ने अश्वसार समुच्चय बनाया है। आचार्य जयदेव ने भी एक अश्वायुर्वेद बनाया। इनके अतिरिक्त शुक्रनीतिमें अश्व प्रकरण, बल्लालदेव कृत अद्भुत सागरमें अश्वाद्भुतावर्त्त तथा मित्र मिश्रकृत वीर मित्रोदयमें अश्व लक्षण प्रकरणोंमें अश्व विद्याका बड़ा ही उत्तम संग्रह किया गया है।

प्राचीन विद्वानोंने घोड़ेकी उचित महिमाको जान लिया था। सब पशुओंमें से अश्व ही एक तेज़ सवारी थी, जो सम विषम, ऊंचे नीचे और ऊबड़ खाबड़ रास्तोंपर बिना किसी भयके जा सकती थी। यूरोप और हिन्दुस्तानमें अब भी घोड़ा कम उपयोगका नहीं। यन्त्र कला विज्ञानके इतना बढ़ जाने पर भी घोड़ा सेनामें से पृथक् नहीं किया जा सका; यह कभी न किया गया और न किया जा सकेगा। अत्यन्त प्राचीन ऋषि शालिहोत्र ने अश्वोंको बर दिया था कि—

"यो राजा भवतां पुष्टिं खानपानादिभिः सदा।
करिष्यति न सन्देहो भविष्यति सुदुर्जयः॥
न च त्यजति तं लक्ष्मीः कदाचिज्जय लक्षणा॥

जो राजा तुम्हें (अश्वों को) खाना पानी देकर तुम्हारी पुष्टि करेगा, निःसन्देह उसका जीतना कठिन होगा। उसको विजय लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ेगी।

अश्वोंकी उत्पत्ति

अश्वोंके विषयमें विशेष कहनेके पूर्व हम अश्वोंकी उत्पत्तिकी आलोचना करना चाहते हैं। इससे उनके देश और स्वभावका अच्छा आलोचन हो सकता है।

विष्णु धर्मोत्तरमें पुष्करने कहा है

"जब समुद्र मथा गया तब सब रत्नोंसे बढ़कर उच्चैःश्रवा घोड़ा निकला। तभीसे घोड़े सब रत्नोंसे बढ़कर माने जाने लगे।"

विकासवादी मानते हैं कि जलीय सर्गके बाद भूचर हुए और उन्हींका विकास होते होते यह सब भूचर प्राणी बन गये। घोड़ा विकसित होकर ऐसा रह गया कि उसकी एक अँगुलीका नख ही आधार रह गया; शेष अँगुलियां लुप्त हो गयीं। कदाचित् संक्षिप्त करके यही रूप दिया गया हो कि उच्चैःश्रवा घोड़ा भी समुद्रसे ही उत्पन्न हुआ।

अर्थात् उसका मूल विकार जलचर वर्गके प्राणी ही हैं। अस्तु कुछ भी हो इतना अवश्य कहेंगे कि 'उच्चैःश्रवाः' जिसके कान खड़े हों ऐसा पशु ही उच्चतम रत्न माना गया। जबसे ऐसा जन्तु आया तबसे गिरे या लटकते कानवाले पशुओंका मान एकदम घट गया, उनकी प्रतिष्ठा मारी गयी। समुद्रसे निकला यह तो अलंकार है। कदाचित् सिन्धु देशके घोड़े ही इस रूपके उत्तम समझे गये थे, उसीसे उसका नाम 'सैन्धव' रूढ़ि तक हो चुका है। नाम साम्यसे सिन्धु और समुद्र कथा कहनेवालेको अलंकार रचनाके लिए पर्याप्त आधार मिल गया। इस प्रसंगमें दूसरी एक बात और भी विचित्र सुननेमें आती है। पुष्कर कहते हैं—

> सपक्षा देव वाह्यास्ते मानुषाणामपक्षकाः।
> छप्लना शालिहोत्रेण वाहनार्थं पुराकृताः॥

देवताओंके घोड़े पंखवाले होते थे और शालिहोत्रने एक बहानेसे मनुष्योंके लिए भी उनको बिना पंखोंका बनाकर एक अच्छी सवारी बना दिया। वही—

> नीराजयन्ति ते देशान् हेषितैर्वत शोभिनः।
> गन्धर्वास्ते विनिर्दिष्टाः श्रियः पुत्राः जितश्रमाः॥

बलशाली पशु अपने हेषारवसे (हिनहिनाना) सब देशोंको सुशोभित करते हैं। यह साक्षात् लक्ष्मीके पुत्र हैं। इन्हें कभी थकावट नहीं होती इनका नाम ही गन्धर्व है।

> केवलस्यैव ते भक्ताः देवस्य परमेष्ठिनः।
> अति मेध्यतया तेन चातु ज्ञाताः दिवौकसाम्॥

वह केवल मात्र ब्रह्माके भक्त हैं। अत्यन्त पवित्र होनेके कारण देवताओंको ही उनपर सवारी करनेकी आज्ञा दी गयी थी।

> ततो श्वमेधस्तुरगः तस्यैवैकस्यद्दियते॥

उसीको अश्वमेध यज्ञका घोड़ा बननेका सौभाग्य भी प्राप्त है।

बृहदारण्यकोपनिषद्में लिखा है—

"हयो भूत्वादेवानवहद्। वाजीगन्धर्वान्। अर्वा असुरान्। अश्वो मनुष्यान्। समुद्र एवास्य बन्धुः। समुद्रोयोनिः।" (प्रथम अ०–१ ब्रा०)

घोड़ा हयके रूपमें देवताओंकी सवारी बना, बाजीके रूपोंमें गन्धर्वोंकी, अर्वा होकर असुरोंकी, अश्व होकर मनुष्योंकी। समुद्र ही उसका बन्धु है और समुद्र ही इसका उत्पत्ति स्थान है। बृहदारण्यकके इसी उद्धरणके साथ यह भी लेख पाया जाता है।

"अहर्वाअश्वं पुरस्तान् महिमाऽन्वजायत। पूर्वे समुद्रे योनिः। रात्रिएनं परचात् महिमाऽन्वजायत। तस्यापरे समुद्रे योनिः। एतौवा अश्वं महिमाना वभितः सवभूवतुः।"

रात और दिन उस घोड़ेकी दोनों महिमा हैं। रात उसके पीछे पीछे चलती है। दिन उसके आगे आगे। अश्वके उत्पत्ति स्थान पूर्व और पश्चिमके दोनों समुद्र ही हैं।

इन उद्धरणोंको उद्धृत करके हम पाठकोंके सामने एक लुप्त इतिहासकी सत्यता दिखाना चाहते हैं। इस गवेषणासे प्राचीन इतिहासका रहस्य खुल जाता है। वह यह कि देव लोग घोड़ोंको हय कहते थे, असुर लोग ऊर्वा कहते थे। गन्धर्व लोग बाजी कहते थे और मनुके सन्तान मानव उसे अश्व कहते थे। यह जन्तु पूर्व और पश्चिम दोनों समुद्रतटों पर पाया जाता था। इन पंक्तियों को लिखनेवाले अपनेको मनुका सन्तान मानते थे। यदि उनके प्राचीन कालिक निवासस्थानका निर्णय हो जाय तो शेष असुर और गन्धर्व और देवोंका भी निर्णय हो सकेगा।

'अश्वो मनुष्यान्' अर्थात् मनुष्य घोड़ेको अश्व कहते थे। यद्यपि यह सभी नाम अश्वके पर्यायवाची हैं तो भी विशेष नाम विशेष देशमें अधिक उपयुक्त हो जाता है। शेषनाम केवल कोषोंमें लिखे रहते हैं। हम देखते हैं कि हिन्दीमें घोड़ा कहते हैं। हम नहीं कह सकते कि इसका मूल शब्द क्या है। परन्तु यह स्पष्ट है कि यह जन्तु भारतवर्षका नहीं; न यह नाम यहांकी भाषाके किसी शब्दका अपभ्रंश ही है।

ऐसा नाम पश्तू में है। हमें यह शब्द गन्धर्व शब्द-का अपभ्रंश प्रतीत होता है। इसमें दो शब्द मिले हुए हैं गन्ध और अर्व अर्थात् सुगन्धवाला घोड़ा। गन्धर्व शब्द स्वतः भी घोड़ेका वाचक है।

इसमें सन्देह नहीं कि गन्धर्वदेश गान्धार या कन्धार है। वहां घोड़ेको बृहदारण्यकके उद्धरणके अनुसार अर्वा कहते थे। अभी तक भी खास घोड़ेको अरबा घोड़ा कहा जाता है। फारस या ईरानमें घोड़ेको अस्प कहते हैं। अस्प अश्वका अपभ्रंश है। ईरान आर्य्य स्थान था! वहां मनु सावर्णिकी सन्तानें बसी थीं! असीरिया और बाबिलोनियामें असुर थे। वह अश्वको वाजीके नाम से पुकारते थे। अब एक घुण्डी रह गयी "हयो भूत्वा देवान वहत्।" गुरु बृहस्पतिके अनुयायी ग्रीक लोग हयानियन् थे; जो पीछेसे आयोनियम् या यवन और यूनानियोंके नामसे पुकारे गये। यह घोड़ेको हय कहते थे। यह ही देव कहाते थे। इनकी राजधानी 'थीबीज़' या 'डेयोपोलिस' देव-पुरी कहाती थी। फलतः हम इस परिणाम पर पहुँचे कि बृहदारण्यककी उक्त पंक्तियां तब लिखी गई थीं, जब अश्वमेध यज्ञ करनेवाले आर्य लोग फारिसमें रहते थे। उनके पश्चिम भागमें असुर लोग बाबिलोनिया असीरिया (एशिया माइनर) में रहते थे। उत्तरमें यूनान या ग्रीस देशमें देव लोगोंका वास था। गान्धारमें गन्धर्व लोग रहते थे। सिन्ध हैदराबाद और राजपूतानेका भाग अभी बखारे समुद्रसे ढका था। काबुल कान्धारसे उतर कर पूर्वमें सिन्धु था। वही पूर्वीय समुद्र था। एशिया माईनरसे आगे पश्चिम समुद्र था। इस मन्तव्य-की पुष्टिमें हम एक और विचारास्पद बात पाठकों के समक्ष रखना चाहते हैं। वह यह कि अरब देश जो एक मरु भाग है, उसको अरब क्यों कहा जाता है। क्या उसका 'अर्वा' शब्दसे कोई सम्बन्ध है। अरबके घोड़े भी प्रसिद्ध हैं। वह अरबी घोड़े कहाते हैं। इसके विषयमें हमारा विचार कुछ भिन्न है।

अरब मरु भाग होनेसे और नीचा होनेसे वह उस ज़मानेमें जब की हम बात करते हैं निः-संदेह समुद्रके नीचे था। समुद्रसे निकल आने-पर भी वह 'अपर' प्रदेश कहाते थे। एशिया माइनरको अपरान्तक प्रदेश कहते थे। अर्थात् वह ऐसा भूखण्ड था, जिससे आगे कोई भूखण्ड न था। केवल समुद्र ही था। उसीको अपर समुद्र कहते थे। उसी दिशाको 'अपरा' (पश्चिम) दिशा कहते थे। पूर्व समुद्रसे सूर्य निकल कर अपरा दिशामें अस्त होता हुआ माना जाता था। उस देशके वासी भी अपर लोग कहाते थे। यह नाम उनका ऐसा ही था जैसा महाराष्ट्रों और मद्रा-सियोंको हम 'दखिनी' कह देते हैं। वह लोग जो भाषा बोलते थे उसे अपरा भाषा कहते थे। यह नाम भी ऐसा ही था जैसे काशीसे छपरा तककी बोलीको हम पुरबिया भाषा कह देते हैं। या पश्चिम की बोलीको पछाहीं कह देते हैं। उसी अपर शब्दका अपभ्रंश अरब है। अक्षरोंमें आगा पीछा हो गया है। प बदल कर ब हो गया है। यह प्रश्न शेष है कि इस कल्पनाका क्या आधार है।

इसमें सन्देह नहीं कि कुरान और इंजील दोनों हिब्रू भाषामें थे। और हिब्रू भाषा हिब्रू लोगों की थी। यह लोग एशिया माइनर और अरबमें रहते थे। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिकामें हिब्रू शब्दका मूल, इब्रि अबर दिया है, जिसका मूल शब्दार्थ पश्चिम है। अब इसमें सन्देह नहीं यह शब्द अपर शब्दका अपभ्रंश है। और संस्कृतके विद्वान पश्चिममें अपरान्तक प्रदेशका होना स्वी-कार करते हैं। अरबका दक्षिण भाग 'ज़ेमन' कहाता है। जिसका मूल अर्थ दक्षिण है। यह वही शब्द है जिसका अपभ्रंश 'जेवां' या 'उजवां' है जिसका अर्थ दायां हाथ है। ('जेवां' * 'उजवां' हाथ=दायां या दक्षिण हाथ। इसका मूल 'जेमन' (भोजनकरना) शब्दमें है। इसीसे भाषाका जीमना,

* उजवां मराठी भाषा में दायां वाचक है।

जेवनार आदि शब्द निकले हैं। जिस हाथसे भोजन किया जाता है वह जेवां हाथ या दायां हाथ कहाता है।) फलतः अरबस्तानका जेमन प्रान्त दक्षिण प्रान्त कहाता था। अस्तु, यही देश प्राचीनकालमें अश्वोंके लिए सुप्रसिद्ध थे; यही अश्वोंके उत्पत्ति स्थान थे। अब सुनिये यह अश्व शास्त्र कहां बना।

अश्व शास्त्रकी उत्पत्ति

अश्व शास्त्रकी उत्पत्ति भारतभूमिमें नहीं हुई। यह माना कि शालिहोत्र वैदिक ऋषि थे और उनकी सब सम्पत्तिके उत्तराधिकारी हम भारतवासी हैं; परन्तु भारत उस शास्त्रका उत्पत्ति स्थान है, यह कहना असम्भव है।

नकुलकृत अश्व शास्त्रमें लिखा है—

"सपक्षाः वाजिनः पूर्वं सञ्जाता व्योमचारिणः ॥
गन्धर्वेभ्यो यथा कामं गच्छन्ति च समन्ततः ॥"

पहले घोड़ोंके पंख होते थे। वह आकाशमें भ्रमण किया करते थे। उनकी सवारी करनेका सौभाग्य गन्धर्वोंको था।

तान् दृष्ट्वा जव सम्पन्नान् बलैधान् वाह नोचितान्।
शक्रः प्रोवाच पार्श्वस्थं शालिहोत्रं मुनीश्वरम् ॥
चासाध्यंच मुने किंचित्तवास्ति भुवनत्रये।
तस्मात्कुरु रथावाहे योग्यानेतान् हयोत्तमान् ॥

उनको वेगवान् बलशाली और सवारी होने लायक देखकर समीप बैठे मुनीश्वर शालिहोत्र से इन्द्र महाराज बोले—'हे मुने! तीनों लोकोंमें तुम्हारे लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। तुम इन उत्तम हयों (घोड़ों) को रथमें लगा करचलाने लायक बना दो, क्योंकि :—

यथामे युद्धयतः सैन्ये प्रवहन्तिरथं सदा।
अशक्या दानवेन्द्रस्य नित्यं च बलगर्विताः ॥

जब मैं युद्ध करूं तब घोड़े मेरा रथ खींचा करें। दानवोंके राजाका अपने बलसे गर्वित उन घोड़ों पर कोई वश न चल सके। इन्द्रकी ऐसी अभिलाषा जान कर ऋषि ने—

इषीकास्त्रं समुत्सृज्य पक्षच्छेदं व्यधत्ततः।
वाजिनां शक्रवाक्येन शालिहोत्रो मुनीश्वरः ॥

इषीकास्त्रका प्रयोग करके उनके पक्ष काट दिये। वह विचारे दीन दुखी लहूलुहान होकर ऋषिके पास जाकर कहने लगे—'भगवन्, आपने किस कारण हमारे पक्ष काट दिये। पण्डित लोग निरपराधियोंको दण्ड नहीं दिया करते। तब हम विचारोंका अब कोई चारा नहीं। अब हम आपकी शरण हैं। ऐसा कीजिये कि हम सदा सुखी और प्रसन्न रहें।" यह सुन कर कृपासे पूर्ण हो कर दुःखी घोड़ोंके प्रति ऋषि बोले—"इन्द्रकी आज्ञासे आपके पक्ष काटे गये हैं। अब ऐसा प्रयत्न करूंगा, जिससे आप लोगोंको सदा सुख रहेगा। आपके शरीर हृष्टपुष्ट रहेंगे और तीनों जगत्में आपका मान रहेगा। इन्द्र आदि देवता आप पर सवारी करेंगे। राजा लोग भी आप पर सवारी करेंगे। जो राजा आप लोगोंको खाना पीना देकर पालन पोषण करेगा निःसन्देह उसका जीतना कठिन होगा, चाहे उस राजामें कोई भी विशेष गुण न हो और चाहे शत्रु उसको चारों ओरसे आ घेरे तो भी विजय लक्ष्मी उसका संग नहीं छोड़ेगी। तुम लोग भूलोक पाताल लोक और स्वर्ग लोकमें मेरी आज्ञासे जाओ। जिस प्रकार लोगोंके पुष्टि तथा रोगकी चिकित्साका शास्त्रमें विधान है उसी प्रकार आपका भी हो जायगा। इस प्रकार शालिहोत्र ऋषिने १२ सहस्र श्लोक संख्यावाली संहिता बनायी। तभीसे घोड़े इस संसारमें सवारीके काममें आने लगे। तभी से शालिहोत्रके अनुसार अश्वोंकी चिकित्सा होती है।"

(नकुल कृत अश्वशास्त्र)

इस उद्धरणमें कतिपय बातें ध्यान देने योग्य हैं। (१) घोड़े सपक्ष थे। (२) इन्द्रके कहने पर शालिहोत्रने उनके पंख काटे। (३) शालिहोत्रने ही उनकी चिकित्साका शास्त्र बनाया। (४) तभीसे वह पलने लगे और राजाओंकी सवारीके काम आये। (५) उसके पहले गन्धर्व लोग ही उनका प्रयोग करते थे। हम इस कथानकसे यही समझे कि गान्धार देशके जंगलोंमें घोड़े ठीक इसी प्रकार फिरते थे जैसे जंगलके हरिण फिरते हैं। वहांके

जंगली लोग उनको उसी प्रकार काममें लाते थे जैसे अमेरिकाके रेड् इन्डियन लोग और दक्षिण अमेरिकाकी गाचो जातिके लोग जंगली घोड़ोंको पकड़ कर अपने काममें लाते हैं। उस समय घोड़ोंको राजा लोगोंने काममें लाना शुरू नहीं किया था। इन्द्र या शक्र जो देवताओंका राजा था उसीने सबसे पहले इन जंगली घोड़ोंको अपनी शानकी सवारी तथा युद्धकी सवारी बनानेका विचार किया था। शालिहोत्रने उनको वश करनेका उपाय निकाला। अति बलवान् और तेज़ होनेके कारण ही उनको पत्नवाला माननेकी कल्पना की गयी थी। वह चट्टानों पहाड़ों और घाटियों और खन्दकोंमें कूदते फांदते फिरते थे। उनको इषीक (मूंज) की रस्सियां और रस्से फेंक फेंक कर उसी प्रकार काबूमें किया गया जैसे रेड् इण्डियन और गाचो लोग फन्दा फेंक कर पकड़ते हैं।

इसी प्रसङ्गमें हम गन्धर्व शब्दका रहस्य भी आपके समक्ष रख देना चाहते हैं। गन्ध और अर्वन् दो शब्द मिलकर गन्धर्व शब्द बना है। अर्वा=घोड़ा। गन्ध=नाकसे सूंघने योग्य पदार्थ। अर्थात् नाकसे सूंघ कर गन्धके द्वारा ही जो जाति अश्वोंका पता लगा लेती थी वही गन्धर्व जाति कहाती थी। रेड इण्डियन और गाचो जाति भी घोड़ोंको गन्धसे ही पहचान लेते हैं। पृथ्वीको सूंघ कर ही घोड़ोंका मार्ग पता लगा लेते हैं। अपने पालतू घोड़ेके चुराये जाने पर भी वह केवल गन्धसे उस चोरीका पता लगाते हैं। ठीक इसी प्रकार गन्धर्व लोग भी घोड़ोंका उसी विधिसे पता लगा लेते थे। अतः गन्धर्व कहाते थे।

अश्व शास्त्रका प्रणयन भी भारतमें न हो कर यूनानमें या शक्र देशमें हुआ यूनानको देव स्थान हम पहले बतला आये हैं।

उक्त चारों स्थानोंसे ही चलकर अब सर्वत्र यह अश्व फैल गये हैं और उनके देशकाल और अवस्थाके अनुसार भिन्न भिन्न स्वभाव हो गये हैं, जिसका वर्णन अगले लेखमें करेंगे।

राजनीति शास्त्र

१—लक्षण

बहुत ही संक्षेपमें राजनीतिको राष्ट्र विज्ञान कह सकते हैं। इस विज्ञानमें राष्ट्रके पूर्व रूप—अर्थात् मनुष्योंका राजनीतिक अभिप्रायसे इकट्ठा होकर कार्यमें अग्रसर होना—राष्ट्रके संस्थापन, राष्ट्रके संघटन और उसके उत्तरोत्तर उन्नति एवं राष्ट्रके वाह्य एवं आभ्यन्तर बातोंकी विवेचना और राष्ट्रोंके परस्पर सम्बन्धका वर्णन और विवेचना की जाती है। राष्ट्र विज्ञानके प्रधानतः निम्न लिखित ४ अंग हैं—

१—राजनीतिक पद्धतियोंका जन्म एवं उसका विकास वर्णन।

२—राष्ट्रकी कल्पनाका तत्व निरूपण।

३—वर्तमान राजनीतिक पद्धतियोंका विभाग एवं वर्णन।

४—राजनीतिक व्यवस्थाके सिद्धान्तोंका निरूपण तथा शासनके विषय एवं व्यापार (कार्य) का वर्णन।

राजनीतिके उक्त अंगोंको देखनेसे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि उसका क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। राजनीतिमें मनुष्योंके परस्पर सम्बन्ध एवं मनुष्योंके साथ राष्ट्रके सम्बन्ध पर विचार किया जाता है। अतएव राजनीति शास्त्रका समाज शास्त्रसे भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी प्रकार राजनीति शास्त्रमें देशकी सम्पत्तिकी व्यवस्था, मनुष्यके सदाचार, एवं मनुष्यके व्यवहार तथा धर्मपर भी विचार किया गया है। अतएव राजनीति शास्त्रका सम्बन्ध क्रमशः अर्थ शास्त्र, सदाचार शास्त्र तथा धर्म (कानून) शास्त्रसे भी है। राजनीति किसी राष्ट्रके पूर्व इतिहासका भी उल्लेख करती है; अतएव इतिहास भी उससे सम्बन्ध रखता ही है।

ऊपर राजनीतिका लक्षण तथा विस्तार लिखा गया है। अब विषय प्रवेशके पहले यह आवश्यक है कि कुछ प्रधान प्रधान पारिभाषिक शब्दोंकी पूर्ण व्याख्या कर दी जाय, जिनका आगे चल कर बार बार प्रयोग होता रहेगा।

जाति—इस शब्दका प्रयोग दो अर्थोंमें होता है। जर्मन लोग जाति उस जनसमूहको कहते हैं जिसके प्रत्येक व्यक्तिकी एक ही भाषा हो और उसकी सभ्यता तथा चाल व्यवहार एक ही प्रकारका हो (चाहे राजनीतिक संघटन कैसा ही हो)। अमेरिकन और अंग्रेज़ उस जनसमूहको जाति कहते हैं, जो एकही शासनके अन्तर्गत संघटित हो। अभिप्राय यह कि जर्मन इस शब्दका राजनीतिसे घनिष्ट सम्बन्ध नहीं मानते जैसा अमेरिकन और अंग्रेज मानते हैं। किन्तु देखा यह जाता है कि प्रायः कोई भी राष्ट्र ऐसा नहीं है, जिसमें केवल एक ही जातिके (जर्मन अर्थमें) लोग हों। प्रायः यही होता है कि एक राष्ट्रमें अनेक जातियां परिगणित होती हैं। यह भी देखा जाता है कि एकाध जाति—जैसे यहूदी—अब तक अपनी जातीयता बनाये हैं, किन्तु उनका कोई राष्ट्र नहीं है। किन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि आज तक जिस जिस जनसमूहके लिए हम अधितर 'जाति' शब्द प्रयोग करते आये हैं उसमें एकताका भाव अवश्य रहता है। अतएव जाति शब्दका इस प्रकार प्रयोग करना लोकमत सम्मत प्रतीत होता है—वह जन समूह जो एक ही भाषाका बोलने वाला और एक ही धर्मका माननेवाला हो, जिसके पूर्वज एक ही रहे हों (अर्थात् एक ही वंशका हो) और जो परंपरासे एक ही प्रकार से उन्नति करता हुआ चला आता हो।

राष्ट्र—उस जन समूहको कहते हैं जो एकता के भावसे प्रेरित होकर संघटित हो, थोड़ी वा अधिक भूमि अपने अधिकारमें रखता हो और स्वतः स्वतन्त्र हो एवं उसे किसी और राष्ट्र वा जनसमूहकी अपेक्षा न हो। अभिप्राय यह है कि किसी राष्ट्रके लिए यह बातें अनिवार्य हैं—(१) जनसमूह, (२) एकता, (३) संघटन, (४) भूमि और (५) निरपेक्ष स्वातन्त्र्य।

प्रभुत्व—वह अवस्था है जिसमें किसी राष्ट्रका प्रभू अपने राष्ट्रके अन्तर्गत, पूर्ण रीतिसे, अधिकार अथवा आधिपत्य रखता है और उसको राष्ट्रके बाहरके किसी जन समूह वा राष्ट्रका न साहाय्य अपेक्षित हो और न किसी प्रकारका उसपर दबाव हो। प्रत्येक राष्ट्रमें किसी न किसीको चाहे वह राजा हो, चाहे पार्लमेन्ट हो अथवा राष्ट्रपति हो-प्रभुत्व प्राप्त रहता है।

शासन*—(१) उस कार्यको कहते हैं जिसके द्वारा राष्ट्र और उसकी जनताके बीच सम्बन्ध स्थापित होता है और वह स्थिर रहता है। (२) किसी राष्ट्रके संघटन (एक उद्देश्यसे सम्मिलित होकर एक निश्चित कार्य प्रणालीका अनुसरण) को भी शासन कहते हैं।

शासक—उस व्यक्ति, अथवा व्यक्ति-समूहको कहते हैं, जिसको प्रभुत्व प्राप्त रहता है; जैसे राजतन्त्र शासनमें राजा और प्रजा तन्त्र शासनमें पार्लमेन्ट।

शासक वर्ग—शासक वर्गमें विधान बनानेवाले विधानके अनुसार प्रबन्ध करनेवालोंके और विधानके अनुसार न्याय करनेवाले व्यक्ति समुदाय (वा संस्था) परिगणित होते हैं।

विधान—किसी राष्ट्रके प्रभूकी उस इच्छा (आज्ञा) को विधान (कानून) कहते हैं जो प्रकाशित की गयी हो और जिसके अनुसार राष्ट्रमें व्यवस्था की जाती हो।

२—राष्ट्रकी मूल वस्तु

प्राकृतिक परिस्थिति और प्रजा इन दोनोंको राष्ट्रके संघटन एवं विकासका नियामक कहा जाय

* अंग्रेज़ीके Parliament शब्दसे शासन, शासक और शासकवर्ग तीनों हीका बोध हो जाता है।

तो अनुचित न होगा। इन्हींके हेर फेरसे राष्ट्रका बड़ा वा छोटा होना, अधिक वा कम समृद्ध होना और उन्नतिके किसी विशेष मार्गको स्वीकार करना अनिवार्य होता है। प्राकृतिक परिस्थितिके अन्तर्गत (१) भौगोलिक स्थिति, (२) जलवायु, (३) प्राकृतिक सम्पत्ति और (४) प्राकृतिक विशेषताएँ हैं। इनका एवं प्रजाका विशेष विवरण नीचे दिया जाता है।

(१) भौगोलिक स्थिति

भौगोलिक स्थितिपर विचार करते हुए जल और स्थल, नदियां, पहाड़ एवं उनके परिमाण आदिको देखा जाता है। भौगोलिक स्थिति पर ही राष्ट्रकी निम्नलिखित बातें निर्भर हैं।

आकार—देखा जाता है कि एक राष्ट्रको दूसरे राष्ट्रसे अलग करनेवाले प्रायः पहाड़ और समुद्र हुआ करते हैं। यदि हिमालय न होता तो कौन कह सकता है कि भारतवर्ष और चीन दो भिन्न भिन्न देश होते और उनकी सभ्यताओंमें इतना अन्तर होता। बड़ी बड़ी नदियां भी एक राष्ट्रको दूसरेसे अलग करती हैं। इस सम्बन्धमें यह ध्यान रखना चाहिये कि भौगोलिक स्थिति केवल दो राष्ट्रोंका विभाग करनेमें ही सहायक नहीं होती वरन् उनमें महदन्तर उपस्थित कर देती है। नदियां केवल सहायक हो सकती हैं; किन्तु पहाड़ और समुद्र तो एक जातिको दूसरी जातिसे न जाने कितने दिनोंसे अलग किये बैठे हैं और उन जातियोंकी चाल, व्यवहार आदिमें इतना अन्तर कर दिया है कि उनका एक होना असम्भव है। इतिहास भी इस बातका साक्षी है; क्योंकि वह बतलाता है कि सीज़र, चार्लमेन तथा नेपोलियन सदृश प्राज्ञ महारथियोंके प्रयत्न करने पर भी समस्त यूरोपका एक राष्ट्र बन जाना सम्भव न हुआ। इससे यह मानना ही पड़ेगा कि भौगोलिक स्थितिपर ही राष्ट्रका आकार निर्भर है। राष्ट्रके राजनीतिक विकास पर भी आकारका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। कहा जाता है कि रोमके संकुचित होनेसे ही एकाधिपत्यकी, और आधुनिक संयुक्त राज्य सदृश राष्ट्रोंके विशाल होने से ही प्रजातन्त्रकी स्थापना हुई।

पृथकत्व—भौगोलिक स्थितिके कारण ही किसी राष्ट्रको अलग होकर अपने विकासका मार्ग निर्णीत करनेका अवसर मिलता है (जैसे इङ्गलैण्ड) और किसीको प्रतिदिन पड़ोसियोंसे रगड़ा झगड़ा करते रहना ही पड़ता है। स्थल और जलके ही थोड़े वा अधिक सम्पर्क पर राष्ट्रको स्थल सेना वा जलयान कम या ज्यादा रखने पड़ते हैं जैसे स्पेन जहाजों बिना और इंगलैण्ड जहाजोंसे ही अपनी रक्षा और वृद्धि कर सका है। भौगोलिक स्थितिपर ही राष्ट्रका व्यवसाय भी निर्भर है।

बाह्य सम्बन्ध—नदियां एक राष्ट्रको दूसरे राष्ट्रसे मिलानेमें सहायक होती हैं; और पहाड़ बहुत बड़े बाधक होते हैं। एक राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्रके साथ व्यवसायिक सम्बन्ध अथवा मित्रता वा शत्रुता तभी कर सकता है जब उसके मार्गमें ऐसी भौगोलिक बाधाएँ न उपस्थित हों, जिनका दूर करना मानुषिक शक्तिके बाहर है।

(२) जलवायु

जलवायुका कितना अधिक प्रभाव मनुष्यकी रहन-सहन और खान पान तथा भूमिकी उत्पादकता पर पड़ता है, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। अधिक सर्दी और अधिक गरमी दोनों ही स्थावर और जंगमकी उत्पत्ति एवं विकासके बाधक होते हैं। समृद्धिशाली प्रायः वही राष्ट्र हुए हैं जहां परिमित सरदी और गरमी रहती है। कहते हैं कि सर्द मुल्कके लोगोंके फेफड़े अधिक बलवान होते हैं और वह दीर्घ जीवी तथा पराक्रमी होते हैं। यह भी देखा गया है कि सर्द मुल्कके लोगोंसे चोरी, जुआ और मद्यपानका अपराध अधिक होता है और गरम मुल्कवाले खून, मारपीट, और ज़िना-बिल-जब्र अधिक करते हैं। अतएव जलवायुका प्रभाव राष्ट्रकी समृद्धि एवं शासन व्यवस्था पर बहुत अधिक पड़ता है।

(३) प्राकृतिक सम्पत्ति

प्राकृतिक सम्पत्तिके अन्तर्गत खनिज और उद्भिज पदार्थ तथा पशु हैं। इस सम्बन्धमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं। सोना, चाँदी, लोहा, ताम्बा, कोयला आदि खनिज पदार्थ; गेहूँ, चावल, चाय, लकड़ी आदि उद्भिज पदार्थ; एवं घोड़ा, गाय, भेड़ आदि पशुओंका उपयोग संसारकी वर्तमान औद्योगिक उन्नति तथा गत युद्ध पर्याप्त रूपसे बतला देता है। इतिहास भी इसकी साक्षी देता है। इतिहास बतलाता है कि प्राकृतिक सम्पत्ति पर ही राष्ट्रका भविष्य निर्भर रहता है।

(४) प्राकृतिक विशेषताएँ

आवश्यकताके कारण ही मनुष्य आविष्कार करता है और अपनी आवश्यकताओंको दूर करनेके लिए ही वह अपने जीवन भर एक न एक उद्योग किया करता है। भूकम्पके कारण जापानमें भारी मकान न होना प्राकृतिक विशेषताका ही फल है। कहते हैं कि जिस देशमें भयानक प्राकृतिक विशेषताएँ रहती हैं वहांके लोग शिथिल प्रयत्न हो जाते हैं; क्योंकि बहुत बड़ी बाधा सामने उपस्थित हो जानेसे उसके दूर करनेकी ओर मनुष्यकी प्रवृत्ति ही नहीं होती। जहांकी प्रकृति सौम्य होती है वहां कला कौशलकी वृद्धि तथा प्रजा सत्ताका विकास होता है। मनुष्यका स्वभाव है कि वह प्राकृतिक कठिनाइयोंका सामना करता है। रेल, तार, पुल, हवाई जहाज़ आदि इसीके प्रमाण हैं। अतएव प्राकृतिक परिस्थितिको एक प्रकारसे मनुष्यको आविष्कारके मार्ग पर अग्रसर करने वाली कहना अनुचित न होगा।

(५) प्रजा

राष्ट्रकी मूल वस्तुओंमें प्रजा एक प्रधान वस्तु है। राष्ट्रका विकास उसकी प्रजा और प्राकृतिक परिस्थितिके योगसे ही हुआ करता है या यों कह सकते हैं कि राष्ट्रके विकासके लिए प्रजा और प्राकृतिक परिस्थितिका वही सम्बन्ध है जो सांख्य मतावलम्बी प्रकृति और पुरुषके मेलको संसारके विकासके लिए मानते हैं। एक जड़ है और दूसरा चेतन और इन्हीं दोनोंके सम्बन्ध एवं संघर्ष से मानव समाजकी उन्नति और विकास होता है।

प्रजाकी संख्या बढ़ने घटनेका राष्ट्र पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। अनुभवसे यह सिद्ध किया गया है कि सभ्यताकी वृद्धिसे प्रजोत्पादनमें शिथिलता होती है। इसमें अनेक कारण हैं। सभ्यता प्राप्त समाजमें व्यक्तियोंका ध्यान दैहिक शक्तियोंकी ओर प्रायः कम और मानसिक शक्तियों की ओर अधिक चला जाता है। विवाह देरमें होने लगता है और होने पर भी प्रजोत्पादनको रोकनेकी ओर रुचि होती है। किन्तु सभ्यताके विकाससे सफाई आदिका अच्छा प्रबन्ध होनेसे मृत्यु संख्या घटती है; अतएव उत्पत्ति कम होने पर भी यदि उसको रोकनेके लिए उत्कट प्रयोग बहुतायतसे न किये गये तो जन संख्या कुछ न कुछ बढ़ती ही है। जन संख्याके बढ़ने पर राष्ट्रकी उन्नति बहुत कुछ निर्भर रहती है। सैनिक तथा औद्योगिक उन्नतिकी अधिकाधिक जन संख्या ही साधक होती है। सन् १९१०—११ के गणनापत्रोंसे भिन्न भिन्न देशोंमें प्रजाकी उत्पत्ति, मृत्यु तथा वृद्धिका निम्नलिखित ब्यौरा मिलता है—

देश	प्रजोत्पत्ति	मृत्यु	वृद्धि
१, संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका)	३३	१८	१५
२. रूस	४४	३१	१३
३. आस्ट्रिया	३२	२२	१०
४. जापान	३४	२१	१३
५. जरमनी	३०	१८	१२
६. इङ्गलैण्ड	२५	१६	९
७. हंगरी	३५	२५	१०
८. इटली	३०	२२	८
९. स्पेन	३३	२४	९
१०. स्विटजरलैण्ड	२५	१६	९
११. फ्रांस	१९	१९	०

प्रजाकी वृद्धिके साथ ही साथ प्रजाका एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जा बसना भी राष्ट्र पर प्रभाव डालता है। देशमें जिस प्रदेशकी भूमि अधिक उर्वरा होती है अथवा जहां कला कौशल की अधिक उन्नति रहती है वहां लोग अधिकतर बसा करते हैं। कहा जाता है कि वर्ण संकरोंमें सांसारिक विकासकी क्षमता अधिक होती है। अतएव स्थानान्तर गमन द्वारा दो भिन्न भिन्न प्रकृतिके लोगोंके मेलसे जो प्रजा उत्पन्न होती है वह राष्ट्रके विकासमें अधिक सहायक होती है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि स्थानान्तर गमनसे ही उपनिवेशोंकी सृष्टि होती है और लोग अपनेसे अधिक कुशल लोगोंका गुण सीख सकते हैं। सन् १९१०—११ में निम्नलिखित देशोंमें प्रति वर्ग मीलकी जन संख्या इस प्रकार थी—

१. बेल्जियम	६५२
२. इङ्गलैण्ड	६१८
३. नेदरलैण्ड	४७५
४. जापान	३३६
५. इटली	३२१
६. जरमैनी	३१०
७. चीन	२६६
८. आस्ट्रिया	२४७
९. स्विट्ज़रलैण्ड	२३४
१०. फ्रांस	१८९
११. स्पेन	१००
१२. रूस	६८
१३. संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका)	३१

यों तो मनुष्य मात्र स्वभावतः एक दूसरेसे मिल कर एक साथ रहते हैं। किन्तु देखा गया है कि घनिष्ठता उत्पन्न करने तथा क्रमशः जातीयताके भावका संचार करनेकी साधक धर्म, भाषा, विचार एवं आचारकी समता और एक ही वंशसे उत्पत्ति होती हैं। एक धर्मके माननेवाले, एक भाषाके बोलनेवाले, एक वर्णके लोग तथा समान आचार विचारवालोंमें स्वभावतः प्रेम हो जाता है और वह परस्पर एक दूसरेके हितेच्छु बन जाते हैं—यही जातीयताके भावका आरम्भ है और इसीकी वृद्धिसे राष्ट्र निर्माणकी प्रेरणा होती है।

भौगोलिक परिस्थिति और प्रजाकी स्थितिको समझनेके उपरान्त अब यह स्पष्ट जान पड़ता है कि राष्ट्रके लिए दो बातें बहुत आवश्यक हैं—(१) राष्ट्र भरमें एक ही प्रकारकी भौगोलिक परिस्थितिका होना। (२) राष्ट्र भरकी प्रजाका आचार विचार एक ही प्रकारका होना। इन दोनोंके रहने से उस राष्ट्रकी प्रजाकी रुचि और प्रवृत्ति एक प्रकारकी होती है, जिससे निर्विघ्न एक निश्चित प्रणालीपर राष्ट्रका विकास होता है। जहां यह दोनों नहीं रहते हैं वहांकी प्रजा भिन्न भिन्न प्रकृतिकी होती हैं और मतभेद आदिका अधिक डर रहता है। जिस राष्ट्रमें एकसे अधिक जातियां रहती हैं उसकी प्रगति प्रायः कण्टकाकीर्ण हुआ करती है और वहांके शासकोंका यह बड़ा कठिन कर्तव्य होता है कि दोनों जातियोंको मिलाकर उनमें एकताका भाव उत्पन्न करे।

३—राष्ट्रका निर्माण

(१) आविर्भाव

राष्ट्रका नाम पानेके लिए स्थूल रूपसे भूमि, एकता और संघटनकी आवश्यकता होती है। अतएव किसी स्थानके निवासियोंने कबसे राष्ट्रकी स्थापना की, यह कहना अत्यन्त कठिन क्या प्रायः असम्भव है। राष्ट्रकी अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्था अर्थात् आविर्भाव तभीसे कहा जा सकता है जब एक वंशके लोग इकट्ठा रहने लगे और अपनेमें सबसे श्रेष्ठको अपना प्रभू मानकर उसकी आज्ञाका पालन करने लगे। किन्तु उस अवस्थाको यदि राष्ट्रका पूर्वरूप मानें तो उस राष्ट्रमें और आधुनिक राष्ट्रके स्वरूपमें जो बहुत बड़ा अन्तर है उसको भी समझना चाहिये। आधुनिक राष्ट्रमें निम्न लिखित बातें नहीं होतीं जो उस राष्ट्रमें थीं—(१) केवल उस वंश वाले ही उस राष्ट्रकी प्रजा थे—अबकी तरह विदेशी भी आकर बस जानेसे प्रजा नहीं हो

सकता था। (२) उस राष्ट्रका प्रबन्ध व्यक्तियोंसे सम्बन्ध रखता था और शासन कार्यमें केवल व्यक्तियोंके आचरणका नियमन मात्र परिगणित था। (३) संक्षेपतः वह राष्ट्र एक प्रकारका बड़ा कुटुम्ब था न कि आधुनिक राष्ट्रके रूपका। जो कुछ हो उसी वेश व्यवस्थाको राष्ट्रका अत्यन्त प्राथमिक रूप कह सकते हैं।

इतिहास बतलाता है कि एकताका भाव उत्पन्न करने तथा किसी एकको अधिपति माननेका मूल साधन एक धर्म (मज़हब) और एक वेशका होना था। यह धर्मका ही प्रभाव था कि अत्यन्त प्रचण्ड, विद्याविहीन जनसमूह किसी एकको (धार्मिक उपदेष्टा वा आचार्यको) अपना प्रभू मानकर उसकी आज्ञाका पालन करते थे। किसी एककी आज्ञा मनवाने वाली दूसरी बात आत्म रक्षाकी आवश्यकता थी। समाजमें जब कुछ लोग दूसरोंकी हानि करने और उन्हें मारने पीटने लगे तो आत्मरक्षाके साधनोंकी खोज हुई। तब यह आवश्यक हुआ कि सब मिलकर किसी बड़े बलिष्ट वा प्रभावशालीके पास जाकर व्यवस्थाका प्रबन्ध कराते। ऐसे ही जैसे जैसे मनुष्य सम्पत्तिका संग्रह करने लगा तैसे तैसे उसको उसकी प्राप्तिमें तथा रक्षामें बाधा न पड़ने देनेके लिए व्यवस्थाकी आवश्यकता होने लगी। बस यहींसे राष्ट्र का निर्माण आरम्भ हुआ। संघटनकी प्रगति जन समूहके स्वभाव पर ही निर्भर होती है। यदि लोग अधिक प्रचण्ड और उच्छृंखल न रहे और आज्ञा पालनकी ओर उनकी रुचि रही तो व्यवस्था ठीक और शीघ्र होने लगी; अन्यथा उनके मार्गमें अनेक बाधाएँ उपस्थित होने लगती थीं।

राष्ट्रने ऊपर लिखी हुई अवस्थासे धीरे धीरे बढ़ते बढ़ते राजा और प्रजाका रूप धारण किया, जिसमें राजा सर्वाधिकार सम्पन्न होता था। उसके उपरान्त फिर प्रजा तन्त्रका आविर्भाव हुआ, जिसका एक मात्र कारण राजाका दुष्ट होकर प्रजा पीड़न ही कहा जा सकता है। इस विवरणसे मालूम होता है कि राष्ट्रका सबसे पहला रूप अपने ही वंशके श्रेष्ठको अधिपति मानना था। दूसरा रूप किसी भी धार्मिक अचार्यको मानना हुआ। तीसरा रूप किसी बलिष्ठको राजा मानना था। इस अवस्थाको पहुंचते पहुँचते प्रजाको धार्मिक आधिपत्य और राजनीतिक आधिपत्यका भेद समझमें आने लगता है। वह समझने लगती है कि अमुक काम ईश्वरके भयसे न करना चाहिये (धार्मिक) और अमुक राजाके भयसे (राजनीतिक)। यह भेद समझमें आते ही 'राजा क्यों ऐसा करता है ?' 'राजा हमारी सम्पत्तिको क्यों लेता है ?' 'राजाने हमारे हितके लिए यह क्यों नहीं किया ?' 'यह राजा अच्छा नहीं,' 'हम स्वयं प्रबन्ध कर लेंगे' आदि प्रश्न और भावनाएं सहजमें उत्पन्न होने लगती हैं। यह ही राजनीतिक भाव हैं और यह ही प्रजा तन्त्रकी स्थापनाके मूल कारण हैं।

(२) सिद्धान्त

पाश्चात्य तत्व वेत्ताओंने राजनीतिके सम्बन्धमें भी बहुत अन्वेषण किया। उन्होंने यह प्रश्न उठाया कि राष्ट्रका निर्माण कैसे सम्भव हुआ? इस प्रश्नका उत्तर अनेक विद्वानोंने अनेक प्रकारसे दिया है, जो राजनीतिक सिद्धान्तोंके नामसे प्रचलित हैं। उनमें से मुख्य यह हैं—

(१) "जिसकी लाठी उसकी भैंस" ही राष्ट्र निर्माणका कारण है। बलवान निर्बलोंको दबाकर अधिपति बन बैठा और आवश्यकतानुसार व्यवस्था करने लगा। किन्तु यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। क्योंकि इसका तो यह अर्थ है कि जिस घड़ी प्रजाको तनिक भी उभड़नेका अवसर मिलता उसी समय वह राजाकी इतिश्री कर देती और सर्वदा वह ऐसा करनेका अवसर खोजा करती। किन्तु जिस राष्ट्रकी प्रजा ऐसी अवस्थामें रहती है वह राष्ट्र तुरन्त ही नष्ट हो जाता है। यह एक अनुभव सिद्ध बात है कि आज्ञा विरुद्ध न चल सकने से ही कोई भी आज्ञाका पालन नहीं करता, वरन् कर्तव्य समझकर ऐसा करता है।

(२) उपयोगी समझकर ही व्यवस्थाका पालन किया जाता है। इस सिद्धान्तमें अनेक दोष हैं। क्या सभी उपयोग मानते हैं? चोर डाकू आदि तो अवश्य न मानते होंगे तो वह क्यों व्यवस्था का पालन करते हैं? ऐसे प्रश्नोंको यह सिद्धान्त नहीं हल कर सकता।

(३) मानव समाजमें यह ईश्वरीय नियम है कि व्यवस्था मानी जाय। किन्तु नास्तिक क्यों व्यवस्था मानते हैं, इसका उत्तर यह सिद्धान्त नहीं दे सकता।

(४) व्यवस्थाका पालन करनेका निश्चय मनुष्योंने स्वयं कर लिया है। यह एक सामाजिक इकरारनामा है। किन्तु यह सिद्धान्त राष्ट्रकी उस अवस्थामें लागू नहीं होता जब मनुष्योंमें राजनीतिक भावोंका अभाव था और वह उनमें स्वयं व्यवस्था करने वा करानेके भाव थे ही नहीं। इसके अतिरिक्त यह इस प्रश्नका उत्तर नहीं देता कि क्या वह लोग भी इकरारनामेमें शामिल थे जिनकी अनर्गलताको राष्ट्र नियन्त्रित करता है?

(५) व्यवस्थापक और व्यवस्था माननेवाले— यह दोनों समाजके अंग हैं और एक ही शरीरके अंगोंमें मतभेद नहीं होता और वह स्वभावतः जैसे उन्नत होते जाते हैं उसी प्रकार राष्ट्र विकसित होता है। किन्तु यह सिद्धान्त इस बातका उत्तर नहीं देता कि जैसे अंग बिना परस्पर प्रयासके ही उन्नत होते हैं उसी प्रकार राष्ट्र भी बिना प्रयास, राजा और प्रजाके परस्पर संघर्ष, के क्यों नहीं विकसित होता?

[ऊपर जिन सिद्धान्तोंका इतने संक्षेपमें खण्डन कर दिया गया है उससे यह न समझना चाहिये कि वह नितान्त व्यर्थ हैं और उनमें कुछ भी तत्व नहीं है। वरन् उनमें बहुत कुछ सत्यता है। अभिप्राय केवल इतना ही है कि वह अंशतः सत्य हैं और उनको पूर्णतया सत्य नहीं मान सकते]

(६) राष्ट्र निर्माणके सम्बन्धमें आधुनिक प्रायः सर्वमान्य सिद्धान्त यह है कि राष्ट्रका कारण न तो ईश्वरेच्छा है और न मनुष्यका प्रयास है; वरन् राष्ट्रका आविर्भाव और विकाश प्रकृतिके विकाशशील स्वभावके अनुसार हो जाता है; उसका मनुष्यको पता भी नहीं लगता; जैसे मनुष्यका शरीर बढ़ता जाता है और उसको कुछ मालूम नहीं होता। एक वंशीय अथवा एक ही धर्मका अनुयायी होनेसे एकताके भावकी उत्पत्ति, रक्षा एवं व्यवस्थाकी आवश्यकता—यही राष्ट्र निर्माणके साधक होते हैं और क्रमशः प्राकृतिक परिस्थिति, आवश्यकता आदिकी प्रेरणा से राष्ट्रका विकास होता है और प्रथम मुखिया, फिर राजा और तब प्रजा राष्ट्रके प्रभुत्वके अधिकारी होती है तथा अधिक विकसित होने पर विषम प्रकारकी शासनप्रणाली, परराष्ट्र सम्बन्ध और स्थापित हो जाते हैं।

राष्ट्र विज्ञान अनुभव जन्य ज्ञानका ही फल है। अतएव जैसे जैसे मनुष्यको अनुभव होता गया वह इसके आधार पर विचार प्रगट करता गया और तदनुसार ही सिद्धान्त भी बनाता गया। भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंका यही कारण है। कौन जाने उपरोक्त आधुनिक सिद्धान्त जो आज प्रायः सर्वमान्य है आगे चल कर वैसा ही पुराना और अंशतः सत्य प्रतीत होने लगे जैसे उक्त ५ सिद्धान्त आज प्रतीत होते हैं।

—हरिहरनाथ, बी. ए.

सरलतम जीवनकी खोज

व कभी हम किसी अज्ञात विषयमें हाथ लगाते हैं तो पहले पहल हम तत्सम्बन्धी समस्याओंको सरलतम रूपमें रखनेका प्रयत्न किया करते हैं। इसी नीतिका अवलम्बन हम गणितके सरलातिसरल प्रश्नोंके हल करनेमें करते हैं। जीवनके रहस्यकी खोजमें भी हमें इसीका

सहारा लेना पड़ेगा। जितनी अनावश्यक बातें हैं उन्हें एक तरफ हटाकर मुख्य लक्ष्यकी ओर झुकने से ही काम चल सकता है। अनादि कालसे जीवन और मनकी समस्याओंको हल करनेमें मनुष्य प्रयत्न-शील रहे हैं। हम भी एक ही बारमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। सूर या तुलसीका उदाहरण लेकर यदि हम जीवनकी व्याख्या करने चलेंगे तो हम अवश्य ही निष्फल होंगे, किन्तु यदि सरलतम जीवनका पहले अध्ययन करेंगे तो बहुत कुछ सफलता प्राप्त करना सम्भव होगा।

भूतकाल की घटनाओं और अवस्थाओं का हाल जान कर हम जीवनके इतिहासका कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उन्नीसवीं शताब्दीमें वैज्ञानिकोंने इस काममें हाथ लगाया और सरा-हनीय सफलता प्राप्त की। उन्होंने यह सिद्ध किया कि जीवन-इतिहास शृङ्खलाबद्ध है। उसके वर्तमान की जड़ कल्पनातीत भूतमें स्थिति है। इसी परि-णामको विकाश सिद्धान्त कहते हैं।

प्राचीन कालसे जो जीवनके सम्बन्धमें मनन हो रहा है उसका मुख्यतम परिणाम यह है कि जीवन एक है और सब जीव एक ही नियमा-नुवर्ती है और उनका अदृश्य उद्गम स्थान एक ही है।

परन्तु सरलतम जीवन प्रकार क्या है? एक समय था जब इस प्रश्नका उत्तर खाली आंखकी शक्ति पर निर्भर था। तदनन्तर तालों (lenses) का आविष्कार हुआ। और अन्तमें आधुनिक क्षुद्र-वीक्षणका। अब तक कुछ लोग हठधर्मीसे यह कहनेको प्रस्तुत हैं कि अणुवीक्षण द्वारा किये गये आविष्कार विकृत मस्तिष्ककी कल्पना मात्र हैं; परन्तु आजकल रोज़मर्रा बायस्कोपोंमें अणुवीक्ष-णीय दृश्योंके चित्र जनताको दिखाये जाते हैं।

इनको देखकर जीवाणुओंके विषयमें कुछ संदेह नहीं रहना चाहिये। प्रत्यक्षके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती।

कुछ जीवाणु पारदर्शक होते हैं। अतएव रंग-नेपर भी उन्हें साधारण विधिसे अर्थात् उनमें हो कर प्रकाश अणुवीक्षणकी नलीमें भेज कर हम नहीं देख सकते। परन्तु हालमें ही एक नयी तरकीब निकल आयी है। वस्तुके नीचे हम एक काला तखता रख देते हैं और प्रकाशको वस्तुपर तिरछा प्रतिफलनसे डाल सकते हैं। इस यंत्रको परा-अणुवीक्षण कहते हैं, क्योंकि यह अणुवीक्षण की शक्तिके बाहरकी चीज़ोंको भी दिखा सकता है। इस नये शोधसे हमारा अत्यन्त सूक्ष्म जीव सम्बन्धी ज्ञान बढ़ता जाता है। इनमें से कुछ तो हमारे जीवन मरणके निर्णायक हैं।

आइये ज़रा ज्ञात सरलतम जीवन प्रकारकी ओर निगाह डालें। न इसके रेखा-चित्रकी आव-श्यकता है और न छाया-चित्र की, क्योंकि इसके अन्दर क्या है इसका पता चलता ही नहीं। यह एक छोटा गोल धब्बासा है, जिसका व्यास $\frac{1}{25000}$ भागसे अधिक नहीं है। इस प्रकारके जीवाणुओं-को हम बिन्दुवाकार कहते हैं, छोटे होनेसे बिन्दु-वणु भी कहते हैं। इनके भी बहुत प्रकार हैं। और आगे चल कर इनका विस्तृत वर्णन किया जायगा, परन्तु यही सरलतम जीव है, जिसे आंख देख पाती है—यह जीवित द्रव्यका एक अत्यन्त सूक्ष्म गोला है जिसके न अंग हैं और न इन्द्रियां।

अब तक इस सम्बन्धमें एक बड़ी गलती होती आई है। हम सदैव अमीबा की चर्चासे आरम्भ करते आये हैं। यह भी एक-कोषीय जीव है, जो तालाबोंमें पाया जाता है। इसके बीचमें एक गाढ़ा छींटा सा होता है, जिसे मींगी कहते हैं। जीवन-तत्वान्वेषी यह समझते रहे हैं कि इसी अमीबासे सारे पशु संसारकी सृष्टि हुई है। अन्त-में यह प्रश्न रह ही जाता है कि अमीबा की सृष्टि कैसे हुई?

अमीबाका जीवन इतिहास, उसके पाचन, गति और ऐंद्रिय ज्ञान, ज्ञानोपार्जन आदि व्यापारों पर तथा मींगीकी रचना और समय समय पर

होनेवाले परिवर्तनों पर विचार करते हैं तो हमें पता चलता है कि यद्यपि यह देखनेमें बड़ा सरल दीखता है, परन्तु है बड़ा जटिल। जीवन श्रृंखला की पहली कड़ीसे अमीवाका स्थान बहुत दूर है। शायद उसका स्थान इतना हटा हुआ हो जितना कीड़ोंका अमीवासे। उपरोक्त भूलके कारण उन्नीसवीं शताब्दीमें जीवनके विषयमें बहुत सी ऐसी व्यापक बातें कह दी गई, जिन्हें अब नये ज्ञान के प्रकाशमें बदलना पड़ेगा।

अतएव स्पष्ट हो गया होगा कि अमीवा न केवल अपेक्षतः एक बड़ा जीव ही है किन्तु विकाश क्रममें उसका स्थान भी बहुत ऊंचा है। इसीलिए उसे छोड़ हमें विन्दवाकार जीवाणुसे आरम्भ करना चाहिये। परन्तु ठहरिये, पहले यह तो निश्चय करलें कि कहीं विन्दवाकारोंसे भी तो सरलतम जीव नहीं हैं। वास्तवमें उनसे भी सरलतम जीव हैं और यदि सम्भव हो तो जीवनके रहस्यकी खोजमें उन्हींसे चलना चाहिये।

हम गत लेखोंमें देख चुके हैं कि जीवनके लिए पानी आवश्यक है। पानीके अभावमें जीवन की प्रगति रुक जाती है, कुछ बीज तो शायद जीना ही बन्द कर देते हैं, और पानीकी प्राप्तिके साथ फिर आरम्भ हो जाती है। बीजोंके स्थानपर अब जीवाणुओंके व्यापार पर ध्यान देना चाहिये। १९१३ की अन्तर्जातीय भिषग परिषद् (International Congress of Medicine) में प्रोफेसर शेटोक और डा० डडजनने अपने कुछ प्रयोगोंका फल बतलाया था। उन्होंने कुछ जीवाणुओंको सरजेम्स देवरकी विधिसे अच्छी तरहसे सुखाया और तदनन्तर २ वर्ष तक अंधेरेमें रखा। फिर जब उनको पानी दिया गया तो वह पूर्ववत बढ़ने और प्रजोत्पादन करने लगे। दो वर्षतक पानीके अभावमें उनकी जीवन क्रिया रुक गयी थी !

यदि इस प्रयोग को रासायनिक दृष्टिसे देखें तो उसके समझनेमें बड़ी सुगमता होगी। रासायनिक क्रियाओंके लिए प्रायः पानीकी उपस्थिति आवश्यक होती है। इन जीवाणुओंमें भी रासायनिक शक्ति होती है, जिसके कार्यके लिए पानी आवश्यक है। इन शक्तियोंका व्यापार ही उनका जीना है, मानों जीवाणु किण्वोंकी पुड़िया हैं। उन्हें सूखा रखिये, कुछ परिवर्तन न होगा। उन्हें पानी दे दीजिये, उनकी जीवन क्रिया, उनकी चहल पहल एक दम शिरू हो जाती है। अब हम कुछ नये आविष्कारोंकी चर्चा करेंगे जो इस मतको पुष्ट करते हैं।

अत्यन्त सूक्ष्म आकृतिहीन विन्दवणु ही सरलतम जीव नहीं हैं यह हम पहले बतला चुके हैं। कुछ ऐसे भी जीव हैं कि जो न तो अणुवीक्षणसे और न परा-अणुवीक्षण से दिखाई पड़ते हैं। वह इतने छोटे होते हैं कि वह उन छन्नोंमेंसे भी निकल जाते हैं जिनमें से $\frac{1}{25000}$ इञ्च व्यास वाले विन्दवाकार नहीं निकल पाते। इनको इसीलिए "फिल्टर पासर" अर्थात् "छन्नेमें से निकलनेवाले" (छन्नापारग) कहते हैं।

यह "छन्ना-पारग" परोपजीवी होते हैं। उच्चकोटिके जीवोंपर आक्रमणकर उन्हें हानि पहुंचाते हैं। इनके अस्तित्वका प्रमाण यही है कि जब यह उपयुक्त परिस्थितिमें रखे जाते हैं तो माध्यममें रोगोत्पादक शक्ति बढ़ती जाती है, जो केवल इनकी संख्या वृद्धि द्वारा ही हो सकती है। संक्षेपमें इनका व्यवहार किण्वोंके समान होता है; जिनकी भी संख्या वृद्धि होती है—अनुमानतः पौष्टिक पदार्थ ग्रहण करने और उसका उपयोग करनेसे—और जो किण्व क्रिया द्वारा ही जीवित रहते हैं।*

जहां तक हमारे ज्ञानकी सीमा है, हम कह सकते हैं कि प्रत्येक जीव किण्वोंका एक क्रिया सम्पन्न संग्रह मात्र है। अतएव यदि कोई क्रिया सम्पन्न किण्व मिल जाय तो उसीको हम जीवनका सरलतम रूप मान लेंगे।

---

* देखिये विज्ञान भाग १५ पृष्ठ १०७

हम अभी जीवनके विषयमें क्यों, किस लिए कहांसे आदि प्रश्नोंका उत्तर नहीं दे रहे हैं। हम केवल जीवन व्यापारका वर्णन करना चाहते हैं। यदि हमको कोई ऐसा किरव मिलजाय जो उद्देश्य-सम्पन्न हो तो हमारी सरलतम जीवनकी खोज सफल समझनी चाहिये। अब एक ऐसे किरवके स्थान पर कई किरवोंकी कल्पना कीजिये, जिनके व्यापार इस प्रकारसे संबद्ध हों कि जहां एकका काम समाप्त हो वहां दूसरेका आरम्भ हो तो ऐसे किरवोंका समुदाय एक साङ्गोपाङ्ग जीवके समान होगा। माना कि इसके अङ्ग और उपाङ्ग हृत्पिएड और वृक्कके समान न होंगे, परन्तु उनमेंसे प्रत्येक पूर्ण समुदायके हितार्थ क्रिया शील होगा।

शरीर सम्बन्धी यह एक नया मत है, जिससे शारीर शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र प्रभावित हो रहे हैं। साधारणतया शरीरको एक मकानसा माना जाता है, जिसमें अनेक कमरे, कोठरी, नाली आदि बनी हुई हैं। यह विचार क्रम उन लोगोंका है जो केवल नश्तर और अणुवीक्षणके भरोसे हीं काम करते हैं, परन्तु जो गहरे पैठ कर सच्चाईकी ओर दृष्टि डालना चाहते हैं, वह इस ऊपरी आडम्बरको भेद वास्तविक जीवन क्रियाओंके तारतम्यको विचार पूर्वक देखकर उपर्युक्त मतकी ओर ही झुकते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दीके लोग जीवन और उसके धर्मोंका मूल कारण शरीरके ढांचेको ही समझते थे, परन्तु अब हम शरीर व्यापारको रासायनिक दृष्टि से देखने लग गये हैं। रासायनिक क्रियाएँ बड़ी सूक्ष्म हैं। शरीर रचना और नाड़ी जालकी नाईं इनका पता चला लेना आसान काम नहीं है। इसी लिए इतने समय बाद हम असली भेद की ओर चले हैं। बीसवीं शताब्दीके आरम्भमें स्टार्लिंग और बेलिसने एक नया आविष्कार किया था। जब खाना आंतोंमें पहुंचकर क्लोमरसकी क्रियाके लिए उपयुक्त अवस्थामें होता है, तो आंतोंमें एक द्रव्य पैदा हो जाता है, जो रुधिर द्वारा क्लोमतक पहुंचता है और क्लोमरसको छोड़ देता है। क्लोमरस तब आंतोंमें आ अपना कार्य आरम्भ करता है। इस आविष्कारसे पहले यह समझा जाता था कि आवश्यकता पड़नेपर उचित समयपर नाड़ी मण्डलकी प्रेरणासे क्लोमरस मुक्त हो जाता है। वास्तवमें नाड़ी मण्डल इस संबंधमें कुछ काम नहीं करता।

वह सुन्दर व्यवस्था, जिससे क्लोमरस व्यर्थ नहीं जाता और ठीक समयपर पहुँचता है—यदि जल्दी पहुँचे तो पाचनके पहले कामोंमें बाधा पड़े और जो देरसे पहुँचे तो भी काम बिगड़े—उसका श्रेय एक किरवको ही है। यह किरव शरीरके एक भागसे दूसरे भागको जाता है, जिससे सम्पूर्ण शरीरके हितार्थ एक मुख्य काम हो जाता है। किरवका काम नाड़ीमण्डलके कामोंसे कुछ कम महत्वका नहीं है।

स्टार्लिंग और बेलिस महोदयने इस किरवको "हरकारा" (hormone) नाम दिया। अब तो अनेक हरकारोंका पता चल गया है।

डा० ब्लैर बैल कहते हैं कि सम्भवतः शरीरकी प्रत्येक सेल एक नाली शून्य ग्रन्थि है। और उसका प्रभाव समस्त शरीर पर पड़ता है अर्थात् जो "हरकारा" पैदा कर वह रुधिर स्रोतमें बहा देती है, वह शरीरके अङ्ग अङ्ग पर कुछ न कुछ असर डालता होगा। वास्तवमें नाली विहीन बहुत सी ग्रन्थियोंसे हम परिचित भी हैं।

सारांश यह कि यांत्रिक वादको छोड़ अब रसायन वादकी ओर हम चल रहे हैं। यंत्र वादी कहते थे कि किसी प्रकार शरीर यंत्रकी रचना हो गयी, फिर तो जीवन उसमें अपने आप पैदा हो गया। परन्तु अब हम अच्छी तरह जान गये हैं कि शरीर-वृद्धिका प्रत्येक कार्य किरवोंकी सहायता से होता है और किरवोंके कार्य उद्देश्य विहीन नहीं होते। पदार्थ वादियोंको अब संभल जाना चाहिये।

—मनोहरलाल भार्गव।

प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ Of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

भाग—१६

तुला—मीन १९७९

October 1922—March 1923

प्रकाशक

विज्ञान-परिषत् प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

साधारण (General)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १६ | कन्या, संवत् १९७९ । अक्तूबर, सन् १९२२ | संख्या १

पृथ्वीके ऊंचे और नीचे स्थान

पिछले लेखमें हम पृथ्वीके ठोस खुरण्टकी रचना और आयु-पर विचार कर चुके हैं। परन्तु यह न समझ लेना चाहिये कि आदिम खुरण्ट ज्यों का त्यों, अपरिवर्तित, बना हुआ है। पहला खुरण्ट भी बहुत गरम था। वह धीरे धीरे ठण्डा होता गया और ठंडा होनेमें वह सिकुड़ता और सिमटता गया। उसमें कहीं शिकन पड़ गयीं, कहीं पासके भागों-में रगड़ होनेके कारण कुछ अंश तड़क तड़क कर फट कर अलग हो गये और कुछ अंगोंका रगड़ और घर्षणसे चूर्ण हो गया। तलकी तड़कनके कारण कठोर पृष्ठके अथवा उसके नीचेके पदार्थके अंश उचट उचट कर दूर जा गिरते थे। खुरण्ट कहीं नीचा हो जाता था और कहीं ऊपर उठ आता था। यह आदिम खुरण्ट सूखा था और कठोर था। समुद्रों-के भरनेमें और द्वीपोंकी ऊबर खाबड़ रचनामें अतीत काल व्यतीत हुआ होगा। आदिम छोटे छोटे भाप देते हुए, खौलते हुए, गड्ढों और प्रशान्त महासागरके अथवा प्रारम्भिक छोटे छोटे लावा द्वीपों और गौरी शंकरके जन्म कालोंमें अनेक युगोंका अन्तर होगा और इस समयमें न जाने कितनी भयानक घटनाएँ हुई होंगी।

पृथ्वीकी वर्तमान आकृति, जल और थलका विभाग, किस प्रकार हुआ इस विषयमें हम कोरी कल्पनासे काम ले सकते हैं।

एक रोचक सिद्धान्तके अनुसार पृथ्वीसे चन्द्रमाके पृथक् होनेके कुछ दिन बाद पृथ्वीने फिर नास्पातीका सा रूप धारण कर लिया। इस नास्पातीके नीचे भागमें ही जल इकट्ठा होकर

पहला समुद्र बन गया, यही शायद प्रशान्त महासागर था। नासपातीका बड़ा भाग एक बड़ा भारी महाद्वीप और छोटा भाग एक छोटा महाद्वीप बन गया। इस प्रकार भूमण्डल दो गोलार्द्धोंमें बट गया, जिनमें से एकमें अधिकांश थल था और एक में अधिकांश जल। पीछेसे थल गोलार्द्ध कई स्थानों पर दब गया और अतलांतिक महासागर भूमध्य-महासागर और भारतीय महासागर इस प्रकार बन गये। इस कल्पनाके अतिरिक्त और बहुत से स्वतन्त्र प्रमाण हैं, जिनसे यह साबित होता है कि उपरोक्त महासागरोंके स्थान पर पहले सूखा स्थल था।

अब भी एक प्रकारसे यही जल थल गोलार्द्धों का विभाग सा दिखाई पड़ता है। उत्तरीय गोलार्द्धमें यूरोप, अफ्रीका, उत्तरीय अमेरिका और एशिया तथा दक्षिणी अमेरिकाका अधिकांश है। दक्षिणी गोलार्द्धमें औस्ट्रेलेशिया, न्यूज़ीलेण्ड, दक्षिणी अमेरिका और मलाया पेनिनशुलाका थोड़ासा अंश है; शेष अधिकांश जल ही जल है।

अत्यन्त प्राचीन कालमें शायद एक उथला समुद्र सारे भूमण्डल पर फैला हुआ था और थल भाग इधर उधर द्वीपों या द्वीप समूहोंके रूपमें दिखाई देता था। उस कालमें शायद भारतवर्ष लंका द्वीपके बराबर टापू था और अफ्रीका मेडेगैस्करसे बड़ा न था। अमेरिकाके स्थान पर कुछ द्वीप थे, जो सब मिल कर औस्ट्रेलियाके भी बराबर न थे। इङ्गलेण्डका तो एक कोना ही दिखाई देता था। बादमें पृथ्वीके ठण्डे होनेसे भू पृष्ठ सिकुड़ गया, जल भरे स्थान गहरे हो गये और थल भाग बढ़ गया। अन्तमें जैसा आजकल जल-थल का विभाग है वैसा हो गया।

पृथ्वीके जितने उठे हुये स्थान हैं उन सबकी सृष्टि सिकुड़ते समय हुई होगी। भूपृष्ठका संगठन एक सा नहीं है, अतएव ठंडे होते समय सब अंश एक गति से ठंडे न हुए और न एक समान सिकुड़े। प्रोफेसर डौबरी (G. A. Daubree) ने एक बच्चोंके खेलनेका गुब्बारा लिया और उस पर रोगनसे कई चित्र बना दिये। जब उसमें से हवा निकली तो उसका संकुचन सर्वत्र एक समान नहीं हुआ। रोगन चढ़े भाग कड़े होनेके कारण कम सिकुड़े और खाली भाग अधिक। इसी प्रकार भूपृष्ठके असमान संकुचनसे पहाड़ों और समुद्रकी तलैटियोंकी रचना हुई।

वर्तमान जलथल विभागोंकी रचना होनेके बाद भी भूपृष्ठका ककुइयांकी नाईं एक स्थानसे उठना और दूसरेसे उभर आना जारी रहा। भूगर्भ शास्त्र इस बातका साक्षी भी है कि प्रायः भूपृष्ठका प्रत्येक भाग एक न एक समय जल निमग्न रह चुका है। उद्गमनका मुख्य कारण पृथ्वीका संकुचन है और अधः गमन का भूपृष्ठका वर्षा और नदियों द्वारा कटना। इस विषय पर पर्वत-रचनाके सम्बन्धमें फिर विचार करेंगे।

प्राचीन कालमें समुद्रकी तलैटीसे तलछटका उद्गमन होता था और तलछट वृष्टि और नदियोंकी क्रियासे फिर कट कटकर समुद्रकी तलैटीमें जमा हो जाती थी। उत्तर अमेरिकाके पुराजीवन (Proterozoic Age) कालमें तलछटके उद्गमन हुए और तलछटकी १८००६, १४०००, और ५०००० फुट मोटी तहोंने उठकर पर्वतका रूप धारण कर लिया। इन उद्गमनोंके बाद फिर काट छांट का काम वर्षा, वायु और नदियोंने शिरू कर दिया और न जाने कितने पर्वत धुल धुलकर समुद्र तल शायी हो चुके हैं और नये पर्वत तलछटसे बन चुके हैं। अप्पलेचियन पर्वतराशि ४०००० गहरी कीचड़से पैदा हुए हैं और कौन जाने कि टेथीज सागरकी तलैटीमें कितनी गहरी कीचड़की तह थी, जिससे हिमालयकी उत्पत्ति हुई।

वेल्ज़की केम्ब्रीय चट्टानें एक समय उस भूमिका एक भाग थीं जो उत्तरीय अतलान्तिक महासागरके स्थान पर थी। समयके फेरने उसका मर्दन कर मट्टीमें मिला दिया, जो बह बह कर समुद्रकी तलैटीमें जा जमी। जब दिन फिरे तो यह कोमल

कीचड़ इन कठोर चट्टानोंका रूप धारण कर समुद्र के आंचलको फाड़ ऊपर उठ आयी।

कीचड़, पहाड़; पहाड़, कीचड़-यही प्रकृतिकी उलट फेर होती रहती है। प्रकृति भी मट्टीके खिलौने बनाया और बिगाड़ा करती है। पर्वतोंको प्रायः अमिट और अटल समझा जाता है, परन्तु यह समझना भूल है। पर्वत भी पृथ्वी तल परसे धुल कर उसी प्रकार साफ़ हो जाते हैं जैसे कपड़े परसे मैल।

नदियोंका काम बहुत मन्द गतिसे नहीं होता। मिसिसिप्पी नदी ६००० वर्षमें अपने बेसिन क्षेत्र-को नीचाकर देती है; रोन १५२८ वर्षमें और पो ७२६ वर्षमें वही काम करता है। यदि यह भी मान लें कि ३००० वर्षमें १ फुट थलकी ऊंचाई कम हो जाती है, तो इस हिसाबसे भी यूरोप ३०००००० वर्षमें समुद्र तलके बराबर हो जायगा। अन्य महाद्वीप भी १०००००० वर्षमें समुद्रके नीचे दिखाई देंगे। इस प्रकार नदियां पर्वतोंका नाश कर भारी महाद्वीपोंका बीज वपन करते हैं। थल भागोंके उद्गमन और अधः गमनके अनेक प्रमाण हैं। लन्दन नगर चिकनी मट्टीपर बसा हुआ है, जिसमें शेलफिश (Nautilus) आदि समुद्रीय जीवोंके देहावशेष मिलते हैं। मट्टीके नीचे खड़िया है, जो मृत समुद्रीय जीवोंके देहावशेषोंका जमाव मात्र है।

अल्प्स, एण्डीज़ और हिमालयके शिखरों पर समुद्रीय जीवोंके देहावशेष पाये जाते हैं। इससे यह तो सिद्ध हुआ कि यह कभी न कभी समुद्रके नीचे रहे होंगे। शायद कोई यह समझे कि यह देहावशेष किसीने लाकर डाल दिये होंगे। यह बात निरी असम्भव है, क्योंकि इतने ऊंचे स्थानों तक कोई इन्हें क्यों ले जाने लगा; फिर सब जगह ऐसा क्यों होता। दूसरे यह देहावशेष इतनी अधिक मात्रामें हैं और इतने विविध प्रकारके हैं कि मनुष्य क्या देवताओंके लिए भी उनको वहां तक पहुँचाना असम्भव है। हेम्पशायर कोस्ट पर बारटन क्लिफ्समें थोड़े मीलके फासलेमें ही एक हज़ारसे ज्यादा प्रकारके समुद्रीय जीवों (Molluscs radiates etc.) के देहावशेष मिलते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि समुद्रके कौनसे भागकी तलैटीका उद्गमन होता है? थलके पास के भागका ही अथवा बीच समुद्रका भी। तलछट समुद्रके किनारेसे थोड़ी दूर तक ही मिलती है—शायद १०० मीलसे ज्यादा दूर नहीं पहुँचती। तल-छट-निर्मित चट्टानें ऐसी ही तलछटकी बनी भी पाई जाती हैं। उनमें गहरे समुद्रकी कीचड़ व्हेल-के कानकी हड्डी, पढ़ना मछली (Shark) के दांत, जो केवल समुद्रके बड़े गहरे विभागोंमें मिलते हैं—नहीं पाये जाते। इसके अतिरिक्त तलछट-निर्मित चट्टानोंमें नमकका अंश समुद्रके समान ही मिलता है। इस बातसे यह अनुमान नहीं होता कि सागरों-के बीचमें भी कभी ऐसे महाद्वीप रहे होंगे, जो धुल धुल कर अब गायब हो चुके हैं।

दूसरी तरफ जब पशु पक्षियों और वनस्पतिके विस्तार पर विचार करते हैं तो मानना पड़ता है कि किसी न किसी समय वह द्वीप और महाद्वीप, जो गहरे समुद्रों द्वारा अलग हो रहे हैं, मिले हुए थे। पशु संसारकी समानताको देखते हुए लोगों-का यह खयाल है कि भारतवर्ष, दक्षिण अफ्रीका मेडेगेस्कर और सीचिली द्वीपसमूह (Seychelles Islands) भारत महासागरमें मिले हुए थे; पीछेसे इस ज़मीनके टुकड़े हो गये। इसी प्रकार न्यूज़ी-लेण्ड, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अमेरिका भी शायद मनुष्य जातिके आविर्भावके बाद तक मिले हुए थे।

अतएव इन सब बातों पर विचार करके यही ठीक मालूम होता है कि महाद्वीप उस प्रदेशके सूचक हैं जहां थलकी सदैव प्रधानता रही है, और समुद्रके गहरे भाग उस प्रदेशके द्योतक हैं, जहां सदैव जलका साम्राज्य रहा है।

वर्तमानमें तीन दशांश भूपृष्ठका थल-मय है और सात दशांश जलमय। थलका अधिकांश भाग इन छः महाद्वीपोंके अन्तर्गत है—एशिया, अफ्री-

का, उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, यूरोप और आस्ट्रेलिया। महाद्वीपोंकी औसत ऊंचाई २१०० फुट है, यद्यपि गौरीशंकर २९००० फुट और एण्डीज़के कुछ शिखर २२००० फुट तक ऊंचे हैं। परन्तु समुद्रकी गहराई धरतीकी ऊंचाईसे ज़्यादा है। समुद्रकी औसत गहराई १४६४० फुट है और अधिकतम गहराई ३१००० फुट। यद्यपि समुद्र और पहाड़ बहुत गहरे और ऊंचे जान पड़ते हैं तथापि पृथ्वीके विशाल आकारके सामने अत्यन्त क्षुद्र हैं। बोनी महोदयने लिखा है "यदि हम मान लें कि पृथ्वी सेंटपाल केथीड्रल की गुम्बदके बराबर है तो गौरी शंकरकी ऊंचाई ३/१० इंचसे अधिक न होगी और समुद्रकी गहराई ३/४ इंचसे लेकर १ इंच तक।" यदि दो फुट व्यासका एक गोला बना कर पृथ्वी मान लें तो उसपर गौरीशंकर १७/१०००० इंच ऊंचा बनाना पड़ेगा और सबसे गहरा समुद्र ३/१०० इंच गहरी खरोंचसे दिखाना पड़ेगा।

एक विख्यात स्काचने एक बार कहा था कि यदि स्काटलेण्डको चपटा कर दिया जाय तो इङ्गलेण्डसे ज़्यादा बैठेगा। यदि वास्तवमें उक्त सज्जन यह प्रयोग कर दिखाते तो उनको बहुत हताश होना पड़ता। यदि अल्प पहाड़को भी चपटा कर दिया जाय तो स्विस सीधा प्रदेश लगभग ७० मील बढ़ेगा और यदि अल्पका चूर्ण कर पृथ्वी पर फैला दें तो यूरोप २२ फुट ऊंचा हो जायगा।

पृथ्वीके पृष्ठ भागमें लगभग ८० मौलिकोंका पता लगा है, परन्तु केवल १६ ही ज़्यादा मिकदारमें पाये जाते हैं। यह सोलह मौलिक ओषजन, शिलाकण, कर्बन, गंधक, उज्जन, हरिन, फास्फोरस, फ्लोरिन, अलूमिनियम, केलसियम, मग्नीसियम, पोटासियम, सोडियम, लोहा, मंगनीज़ और बेरियम हैं। इनसे प्रायः ९९/१०० भाग बने हुए हैं। एक शतांश में सोना, चांदी, जस्ता, रांग और आयोडिन आदि हैं। इनमेंसे मुख्य मौलिकों पर हम विचार करेंगे।

ओषजनकी मात्रा सबसे अधिक पायी जाती है। वायुका २३ % भाग, पानीका ८९ % और चट्टानोंका ४७ % भाग ओषजन है। स्वतंत्र मुक्तावस्थामें ओषजन एक गैस है, जिसकी जलने और जीनेके लिए समान आवश्यकता है। पृथ्वीके ठोस खुरण्टमें वह अन्य पदार्थोंसे संयुक्त विद्यमान है।

ओषजनके बाद शिलाकणकी बारी आती है। खुरण्टका चौथाई भाग इससे बना है। ओषजनके साथ संयोग कर यह सिकता बनाता है, जिससे खुरण्टका प्रायः अर्द्ध भाग निर्मित है। सिकताका शुद्ध रूप बिल्लौर है। सिकता अन्य पदार्थोंको बांधनेका काम करता है, यह प्रकृतिका गोंद है। यह कांचकी जड़ है। बिना सिकताके कांच नहीं बन सकता, बिना कांचके न दूरबीन, न खुर्दबीन और न रश्मिचित्रदर्शक बन सकते हैं। और इनके बिना मानवी ज्ञानकी क्या दशा होगी, इसका सहज ही अनुमान हो सकता है।

अलूमिनियम भी सिकतासे मिला हुआ चिकनी मट्टीमें और चट्टानोंमें मिलता है। कर्बनकी महिमा तो अपार है। वायुमें कर्बन द्विओषिदके रूपमें यह विद्यमान है (वायुका १/२५०० भाग)। ठोस अवस्थामें कोयला, हीरा, ग्रेफाइटके रूपमें यह दृष्टिगोचर होता है। उज्जन, ओषजन, नत्रजन, गंधकसे मिलकर यह पत्थरका कोयला बनाता है। कर्बनके बिना पशु, पक्षी और वनस्पति संसारकी रचना असम्भव है।

कर्बनसे मिला हुआ केलसियम चूनेके पत्थर, संगमरमर, केलसैट, अरेगोनैट आदि रूपोंमें मिलता है। केलसियम पृथ्वीकी उर्वर शक्ति और अस्थियोंकी रचनाके लिए परमावश्यक है।

जोज़फ प्रीस्टविचने जीवाद्यम (प्रोटोप्लाज़्म) और पृथ्वीके खुरण्टके अवयवोंकी एक सूची तय्यार करके बतलाया है कि दोनोंके घटक प्रायः एक समान हैं।

(बाहुल्यके क्रमसे)

जीवात्मके घटक	पृथ्वीके घटक	
उज्जन	ओषजन	५०%
कर्बन	शिलाकण	२५ "
ओषजन	अलूमिनियम	१० "
नत्रजन	केलसियम	४.५"
गंधक	मग्नीसियम	३.५"
लोहा	सोडियम	२.०"
फास्फोरस	पोटासियम	१.६"
हारन	कर्बन	२.४"
सोडियम	लोहा	
पोटासियम	गंधक	
केलसियम	हरिन	
मेग्नीसियम	अन्यमौलिक	१.०"
		१००

वर्तमान शताब्दीके आरम्भमें रश्मि चित्र दर्शकने यह बतला दिया है कि सूर्यके पिण्डके भी वही घटक हैं जो पृथ्वी के हैं।

चट्टान

भूगर्भ शास्त्रमें यह माना जाता है कि पृथ्वीका खुरण्ट चट्टानोंका बना है। चट्टानसे अभिप्राय बड़े बड़े पत्थरोंके टुकड़ोंका ही नहीं है। चट्टान शब्द उन पदार्थोंका द्योतक है जो खुरण्टमें मौजूद हैं, चाहें वह छोटे छोटे टुकड़ोंमें मिलें और चाहे बड़े बड़े ढोकोंमें। ग्रेनाइट, नमक, रेत आदि सभी पदार्थ भूगर्भ शास्त्रमें चट्टान कहलाते हैं, चट्टानोंको दो भागोंमें बांटा जाता है। आग्नेय और जलीय। सच पूछिये तो सभी चट्टान आग्नेय हैं, क्योंकि एक समय था जब सभी द्रवावस्थामें थीं; परन्तु आजकल यह शब्द उन चट्टानोंका द्योतक है जिनमें द्रव होनेके चिन्ह पाये जाते हैं। जलीय चट्टानें वह हैं, जो वायु, जल और कुहरेकी क्रियाओंसे खण्डित होकर पृथ्वी पर बिथुर गयी हैं। जलीय शब्द तलछट-जन्य चट्टानोंके लिए भी प्रयुक्त होता है।

आग्नेय चट्टानें ज्वालामुखीय क्रियासे पृथ्वी तल तक आ पहुंचती हैं और तलछट-जन्य चट्टानों और उनकी तहोंमें ठुंसी हुई मिलती हैं। उनके चारों तरफकी तलछटजन्य चट्टानोंकी दशा देखकर मालूम होता है कि वह बड़े ऊँचे तापक्रमपर उनमें घुसी हैं।

जब आग्नेय चट्टानें पृथ्वी तल तक आ पहुँचती हैं तो लावा अथवा अन्य ज्वालामुखीय चट्टानोंके रूपमें दीखती हैं। जब यह पृथ्वी तल तक नहीं पहुंचती किन्तु तलछट जन्य चट्टानोंकी मोटी तहों के नीचे ठंडी हो जाती हैं तो वह रवेदार बन जाती है। ग्रेनैट ऐसी ही आग्नेय चट्टान है, जो ऊपरकी तलछटीय चट्टानोंके चूर्ण हो जानेके बाद दृष्टिगोचर होती है।

तलछट जन्य चट्टानें तहदार होती हैं, क्योंकि तलछट क्रमशः जमती है और तहें बनती जाती हैं। जब तहें पतली होती हैं तो वरक कहलाती है, यदि मोटी हुई तो "स्तर" कहलाती हैं। तहोंको अलग अलग तभी देख सकते हैं जब जमने वाले पदार्थोंकी प्रकृति और आकारमें समय समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। एक स्तरमें कई वरक हो सकते हैं; तब स्तरोंका जमाव इस तरहका दिखाई पड़ता है जैसा किताबोंको एक दूसरे पर रखनेसे दीखता है। "स्तर" किताबोंके समान और "वरक" उनके पृष्ठोंके समान दिखाई पड़ते हैं। जब तलछट बहुत धीरे धीरे जमती है, एकही आकार और प्रकारकी होती है और बहाव भी एकसां होता है तो तहोंका अलग अलग देखना असम्भव हो जाता है। तहें पानीके नीचे जमती हैं, अतएव उनपर लहरोंके निशान पड़ जाते हैं, विशेषतः जब कि तलछट बारीक रेतीले पत्थरकी होती है।

जहां तलछट हवा और गरमी खा चुकी है, तहें फटी हुई मिलती हैं। कभी कभी तहों पर वर्षाके चिन्ह, पद चिन्ह, कीड़ोंके चलनेके निशान और उनके अन्दर जीवोंके देहावशेष मिलते हैं।

हम देख चुके हैं कि तलछटीय चट्टानें पृथ्वीके खुरण्टके सिकुड़नेके दबावसे समुद्रकी तलैटीसे ऊपरको उठ आयी हैं। आरम्भमें तो उनकी तहें धरातलके समानान्तर होती ही हैं, किन्तु दबावके कारण वह भी ऊबड़ खाबड हो जाती हैं और बीच बीचमें से टूट भी जाती हैं। जितनी वह उठ आती हैं या नीची हो जाती हैं अर्थात् जितना कोण वह धरातलसे बनाती हैं उसे उनका "झुकाव" (Dip) कहते हैं। तहोंके टटनेसे जो अन्तर उनके छोरोंमें हो जाता है उसे त्रुटि कहते हैं। कभी कभी त्रुटि ५००० या २०००० फुट तक नापी गयी है। जान पड़ता है कि पहले त्रुटि कम रही होगी, किन्तु पीछेसे एक भागके ऊपर उठने या नीचे जाने से या दोनों के हटनेसे बढ़ गयी। "स्तरोंमें" पृथ्वीके खुरण्टके क्रमशः केवल सिकुड़नेसे टेढ़ापन, झुकाव या टूटन ही नहीं पैदा हो जाती, किन्तु नदी, कुहरा, वर्षा और वायुके प्रभावसे वह क्रमशः छीज जाते हैं, अतएव उनके उभार वक्राकार न रहकर नोकीले भी हो जाते हैं। इनके किनारोंको जो ऊपर दिखाई देता है "कोर" (outcrop or basset) कहते हैं।

आग्नेय और तलछटीय चट्टानोंके छोटे छोटे टुकड़े भी क्रमशः गरमी और जलके प्रभावसे फट-फटकर अलग होते रहते हैं। यह टुकड़े नियमित रूपसे षट-कोण (छः पहल) होते हैं।

जो चट्टानें अनेक प्राकृतिक क्रियाओं से ऐसी बदल जाती हैं कि उनके सम्बन्धमें यह निर्णय करना असम्भव होजाता है कि वह आग्नेय हैं अथवा तलछटीय तो उनको मेटा मार्फिक (Meta morphic) कहते हैं। प्रायः ऐसी चट्टानोंमें बहुत पतले पतले परत तले ऊपर जमे मिलते हैं जैसे भोडरमें।

पृथ्वीके टोस खुरण्टमें तलछटीय चट्टानोंका आधिक्य है। आग्नेय चट्टानें जहां तहां दिखाई देती हैं, अन्यथा प्रायः ५० मील मोटा आवरण प्रायः तलछट निर्मित ही है। इस तलछटके जमावको प्रकृतिका अद्भुतालय या इतिहास कार्यालय कहें तो अनुचित न होगा। क्योंकि तलछटमें दबे हुए अनेक जातियों (मानुषी) के गौरव स्मारक ही नहीं मिलते, किन्तु लाखों वर्ष पहले विचरनेवाले पशुओं, पक्षियों, कीटों और लहलहानेवाले वृक्षोंके अवशेष अश्मी भूत अथवा कभी कभी सम्पूर्ण शरीर ज्योंके त्यों मिल जाते हैं। इन्हींसे हमें प्राचीन कालका कुछ हाल मालूम पड़ता है। अभी यह प्रकृतिका इतिहास ग्रन्थ समाप्त नहीं हुआ है। इसका निर्माण पूर्ववत जारी है। अब भी वह क्रम जारी है जो पहले था। पहाड़ क्रमशः धुल धुलकर बहे जा रहे हैं, चट्टानें मट्टीमें मिल रही हैं। अब भी समुद्रकी तलैटीमें तलछट जम रहा है। कौन कह सकता है कि किसी दिन एक महद् घटना हो जाय और हम एक नये पर्वतका दर्शन कर सकें। यह सच है कि पृथ्वीका खुरण्ट अब इतना नरम और लचीला नहीं है किन्तु समुद्रके गर्भमें पर्वतोंका निर्माण क्रम, सम्भव हैं, अब भी जारी हो।

यद्यपि महाद्वीप धुल धुलकर समुद्रशायी होते जा रहे हैं, परन्तु किसी दिन भी समुद्रमें से एक नये महाद्वीपका निकल आना सम्भव है।

लोहेके यौगिक

[ले०—मौलाना करामत हुसैन कुरेशी, एम. ए.]

ओषिद

लोहेके तीन ओषिद हैं:—

लोहस ओषिद (लो ओ)

लोहिक ओषिद ($लो_2$ $ओ_3$)

लोहसो-लोहिक-ओषिद, $लो_3$ $ओ_4$ अथवा $लो_2$ $ओ_3$, लो ओ

लोहस ओषिद (Ferrous oxide, Iron Monoxide or protoxide of iron)

जब लोहिक ओषिदको उज्जन अथवा कर्बन एक-ओषिदकी क्रियासे लोहेमें परिवर्तित करते हैं तो लोहस ओषिद बीचमें बन जाता है; किन्तु लोहे

अथवा लोहिक ओषिद्से बिना मिला लोहस ओषिद बनाना बड़ा कठिन है। जब लोहस औक़ज़ेलेतको हवासे बचाकर गरम करते हैं तो भी लोहस ओषिद बन जाता है। कर्बन द्विओषिद और उत्तप्त लोहेके संयोगसे भी यह बनता है।

यह पदार्थ एक काला चूर्णसा होता है जो हवाके प्रभावसे लोहिक ओषिद्में बदल जाता है। अम्लोंमें घुलकर यह लोहस लवण बना लेता है।

लोहस उज्जओषिद (Ferrous hydroxide), लो (ओ उ)$_{२}$ अथवा लो ओ, उ$_{२}$ ओ जब किसी लोहस लवणके घोलमें वायुकी अनुपस्थितिमें दाहक पोटाशका घोल मिलाया जाता है तो लोह उज्ज-ओषिद एक सफेद थक्केके रूपमें पृथक् होजाता है। वायुकी उपस्थितिमें उसका रंग हरा हो जाता है। यदि और देर तक हवाकी क्रिया होती रहे तो वह लोहिक उज्ज ओषिद्में बदल जाता है, जिसका रंग लाल होता है। लोह-उज्ज-ओषिद्को अम्ल में गलायें तो भी लोहस लवण बन जायगा।

लोहिक ओषिद (Sesquioxide of iron) लो$_{२}$ ओ$_{३}$ यह पदार्थ स्पेकुलर आइरन ओर (Specular iron ore) में पाया जाता है, जो एक रवेदार खनिज है। लोहिक उज्ज-ओषिद, लोहस गंधेत अथवा कर्बनेतको गरम करनेसे यह पदार्थ बनता है। यदि इसे रवेदार बनाना हो तो कसीस और नमक को अथवा बेरवा ओषिद्को उज्ज-हरिद्में सावधानीसे गरम करना चाहिये। लोहिक ओषिद, चाहे प्राकृतिक हो और चाहे कृत्रिम, यदि खूब तपा लिया जाय तो बादमें अम्लोंमें बड़ी कठिनाईसे गलता है। यह पदार्थ सीलनेवाला है। बहुत गरम करनेसे, १००० शके लगभग, लोहस-लोहिक-ओषिद्में अंशतः बदल जाता है।

कसीसको गरम करने पर धुआं देनेवाला गंधकाम्ल और लोहिक ओषिद बन जाता है।

२ लो ग ओ$_{४}$ = लो$_{२}$ ओ$_{३}$ + ग ओ$_{२}$ + ग ओ$_{३}$

गंधक त्रिओषिद ही पहलेसे निकले हुए पानी में घुलकर पहले गंधकाम्ल और तदनन्तर धुआं देनेवाला (Nordhausen Sulphuric acid) गंधकाम्ल बना देता है। जो लोहिक ओषिद बनता है वह रोग़नके बनानेमें काम आता है या पालिश करनेमें। इसीको रूज़ अथवा ज्वुएलर्स रूज कहते हैं। बने हुए लोहिक ओषिद्का रंग तथा दानोंका आकार गरम करनेके तापक्रम पर निर्भर है।

लोहिक-ओषिद भी एक बार खूब गरम कर लेनेके बाद अम्लोंमें मुश्किलसे हल होता है। प्राकृतिक लोहिक ओषिद भी अम्लोंमें कठिनाईसे हल होता है।

लोहिक उज्ज-ओषिद (Ferric Hydroxide or Hydrated Ferric Oxide), लो$_{२}$ (ओ उ)$_{६}$, या लो$_{२}$ ओ$_{३}$, ३ उ$_{२}$ ओ, लोहिक हरिद्के घोलमें खूब अमोनिया छोड़नेपर जो ईंटके रंगका थक्का सा बन जाता है उसे यदि औसत गरमी देकर सुखालें तो उसका संघटन लो$_{२}$ ओ$_{३}$, ३ उ$_{२}$ ओ होता है। थक्के बनानेके और सुखानेके तापक्रमोंके अनुसार भिन्न भिन्न पदार्थ बनते हैं अर्थात् जिनमें पानीकी मात्रा भिन्न भिन्न होती है। प्रकृतिमें भी अनेक जल-युक्त लोहिक ओषिद पाये जाते हैं। इसी लिए यह सन्देह है कि वास्तवमें लोहिक उज्ज-ओषिद कोई विशेष पदार्थ है भी या नहीं।

लोहसो लोहिक ओषिद अथवा चुम्बकीय लोह ओषिद (Ferroso Ferric Oxide, magnetite and magnetic oxide of iron) लो$_{३}$ ओ$_{४}$—यह पदार्थ प्रकृतिमें चुम्बकोंके रूपमें पाया जाता है। इसीको मकनातीस कहते थे। कृत्रिम पदार्थ कई विधियोंसे बनाया जा सकता है, परन्तु उसमें चुम्बकीय गुण नहीं पाये जाते। भाप अथवा कर्बन द्विओषिद्को गरम लोहे पर होकर जब निकालते हैं तो यही ओषिद बन जाता है। लोहस और लोहिक लवणोंके मिश्रित घोलमें अमोनिया डालकर धीरे धीरे गरम करें तो यह ओषिद बन जाता है। लोहस और लोहिक ओषिदोंको खूब गरम करने से अन्तमें यही ओषिद बन जाता है।

मोयसांका मत है कि यह ओषिद दो प्रकार का होता है। एकका विशिष्ट गुरुत्व ४·८६ और दूसरेका ५·०–५·१ होता है। पहला नत्रिकाम्लमें घुल जाता है, दूसरा नहीं घुलता। पहला विकार लोहस ओषद्को उज्जन अथवा कर्बन द्विओषिदमें ३५०°—४००° श तक गरम करनेसे प्राप्त होता है और दूसरा लोहेको ओषजनमें जलानेसे।

लोहस लवण

लोहस हरिद (Ferrous Chloride) $\text{लोह}_{२}$— सूखा हरिद बनानेके लिए लोहेके तारको गैसीय उज्जहरिद (लवणाम्ल) में गरम करना चाहिये। हरिद बनकर उड़ेगा और ठंडे भागोंमें आ जमेगा। लोहेको लवणाम्लमें गलानेसे लोहस हरिदका घोल बन जाता है, जिससे रवे बनाये जा सकते हैं, $\text{लोह}_{२}$, ४ $\text{उ}_{२}$-ओ।

लोहस हरिदका घोल धीरे धीरे ओषजन जज़्ब कर लेता है और लोहिक हरिदमें बदल जाता है:—

$$\text{६ लोह}_{२} + \text{२ ओ} = \text{लो}_{२}\,\text{ओ}_{३} + \text{४ लोह}_{३}$$
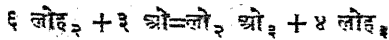
जब भापकी धारामें गरम करते हैं तो लव-णाम्ल बन जाता है—

$$\text{३ लोह}_{२} + \text{४ उ}_{२}\text{ओ} = \text{लो}_{३}\,\text{ओ}_{४} + \text{उ}_{२} + \text{६ उह}$$
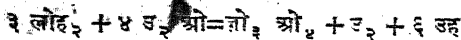
लोहगंधेत (Ferrous Sulphate or green vitriol), $\text{लोग ओ}_{४}$, ७ $\text{उ}_{२}$ ओ—यह पदार्थ लोहेको गंधकाम्लमें गलानेसे बनता है। जब इसे बड़े पैमाने पर तैयार करना होता है तो लोह गन्धिद (Iron pyrites) $\text{लोग}_{२}$ को हवामें पानी छिड़क कर छोड़ देते हैं। हवा और पानीकी क्रियासे लोहस गंधेत और गंधकाम्ल बन जाता है, जो बह कर अलग हो जाता है। इनके घोलमें खराब लोहेके टुकड़े गला कर गंधकाम्लको भी गंधेतमें बदल देते हैं और तब रवे जमा लेते हैं। रवे हरे होते हैं और हवामेंसे पानी सोख लेते हैं।

लोहिक लवण

लोहिक हरिद, $\text{लोह}_{३}$-यदि सूखा तैयार करना हो तो लोहेके तारको सूखी हरिनमें तपाइये। यदि घोल तैयार करना हो तो लवणाम्ल और शोराम्लके मिश्रणमें लोहा गलाइये अथवा लोहिक ओषिदको लवणाम्लमें गलाइये। सूखा हरिद काले रवे बनाता है, जो प्रकाश पार कराने पर गहरे लाल रंगके दीखते हैं। रवोंको गरम करके सूखा हरिद नहीं बना सकते।

लोहिक गंधेत, $\text{लो}_{२}\,(\text{गओ}_{४})_{३}$

इस पदार्थको बनानेके लिए लोह गंधेतके घोलमें नत्रिकाम्ल और गंधकाम्ल मिलाकर गरम करते हैं।

नत्रजन और खेती

[ले०—श्री० हरनारायण बाथम, एम. ए.]

[भा]रतवर्षका मुख्य और प्रधान व्यवसाय खेती है। देशकी आबोहवा पर खेती निर्भर रहती है। आबहवामें दो बातें शामिल होती हैं एक ऋतु और दूसरी वर्षा। इन दोनोंकी गतिके अनुसार भारतवर्षके पूर्वजोंने बड़े अनुभव और बुद्धिमानीसे कृषिपंचांग तय्यार किया था और वर्षको कई फसलोंमें विभाजित कर यह भी मालूम किया था कि कौन पौधा किस समय बोना चाहिये और कौन पौधा किस समय अच्छा उगता है। परन्तु आबोहवा मनुष्यके अधिकारके बाहर है। जब यह अभीष्ट होते हैं तब कृषी विद्याका कर्त्तव्य भूमि तय्यार करनेका होता है।

खेतके जोतनेका उद्देश्य यह है कि हवा, नमी और भूमिकी बनावट और उसके आंगारक (Organic) पदार्थ ऐसे हो जायं कि जीवाणु ठीक ठीक और पर्याप्त गतिसे उचित परिवर्तन कर सकें, जिससे पौधेकी जड़ें जल्दी और अधिकसे अधिक बढ़ जायँ।

संयुक्त प्रान्तमें ऋतु शीघ्रतासे बदला करती हैं। वैशाख ज्येष्ठको खुश्क गर्म्मी, आषाढ सावनको नमीमें एक दम तबदील हो जाती है और इसी परिवर्त्तनके समय "ख़रीफ़" की फसल बोई जाती है और जब नम गर्मी जाड़ेमें तबदील होती है तब "रबी" की फ़सल बोई जाती है।

ऋतुके इस शीघ्र परिवर्तनसे दो बातें उत्पन्न होती हैं, जिनका प्रभाव संयुक्त प्रान्तकी खेती और उसके तरक़्क़ीके तरीक़ों पर बहुत पड़ता है। पहिली बात यह है कि भूमिके तय्यार करनेके लिए बहुत कम समय मिलता है; दूसरे फ़सलकी बाढ़का समय थोड़ा होता है। पहिली बातका प्रभाव खेत तय्यार करनेकी विधियों पर पड़ता है। दूसरी बातका प्रभाव बीजके चुनाव पर पड़ता है अर्थात् यह ध्यान रखना पड़ता है कि कौनसा बीज किस समय बोना चाहिये।

पौधेकी ठीक ठीक उपजके लिए भूमिमें पांच बातोंकी आवश्यकता होती है। पहिले जलका पहुंचना। दूसरे हवाका पहुंचना। तीसरे पौधोंके खाद्य पदार्थोंका पहुँचना। चौथे उष्णता और पांचवें हानिकारक वस्तुओंका कम होना। खेत जोतनेसे पहिली बातको छोड़ कर और चारों बातें भूमिमें आ जाती हैं। इन चारोंमें से खाद्य पदार्थोंको विशेष लाभ पहुंचता है। उनकी हालत ऐसी हो जाती है कि पौधे उनको सुगमतासे अपने काममें ला सकते हैं। खाद्य पदार्थोंमें "नत्रजन" मुख्य है। यह भूमिमें अनेक रूपोंमें पायी जाती है; अधिकतर आंगारक (Organic) रूप में। जब यह नत्रजन (Nitrogen) अन्य रूपोंसे नत्रेत (Nitrate नत्रेत) के रूपमें परिवर्तित होती है, तो पौधे उसको सुगमतासे ग्रहण कर लेते हैं। यह परिवर्तन जीवों द्वारा भूमिमें हुआ करता है।

जब खेत फसल बोनेके लिए तय्यार किया जाता है तब "नमी" को छोड़कर अन्य चारों बातें, जो अत्यंत आवश्यक हैं पूरी हो जाती हैं और तभी पौधोंके खाद्य पदार्थ, विशेषतः "नत्रजन" ऐसे रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं कि जिनको पौधे सुगमतासे पा लेते हैं। जब फ़सल बो दी जाती है तब कृषकोंका कर्त्तव्य इतना रह जाता है कि भूमिमें "नमी" और "हवा" पहुँचाते रहें। "नमी" सींचनेसे पहुँचाई जाती है और "हवा" बीच बीच में गोड़ देनेसे। परन्तु यह गोड़ना या खोदना तब ही तक मुमकिन हो सकता है जब तक कि पौधे छोटे रहते हैं।

इंगलिस्तान निवासी ई० जे० रसल कहते हैं कि भूमिमें "नाइट्रेट" का पहुँचना फसलकी उपजके लिए परमावश्यक है। यदि किसी विधिसे "नाइट्रेट" की मात्रा भूमिमें अधिक कर दी जाय तो उपज भी उसके अनुसार अधिक हो जाती है। इसके विपरीत यदि खेतमें "नाइट्रेट" की मात्रा कम कर दिये जायँ तो उपज भी कम हो जाती है। परन्तु अपने यहां फ़सलकी उपजके लिए खेतमें नमीका रहना अति आवश्यक है और यहांके कृषक यही प्रयत्न किया करते हैं कि भूमिमें "नमी" बनी रहे और प्राकृतिक नमीकी कमी होनेके कारण बाहरसे जलको लाकर उस कमीको पूरी कर दिया करते हैं। जब नमी यथेष्ट रूपसे खेतमें रहती है तब "नाइट्रेट" की मात्रा फसलकी उपजके लिए परमावश्यक हो जाती है; क्योंकि वैज्ञानिकोंने यह अनुभव किया है कि जल चाहे जितना, यथेष्ट, परिमाणमें और प्राप्य अवस्थामें क्यों न हो, परन्तु नाइट्रेटकी मात्रा बिना फ़सल कभी अधिक पैदा नहीं होगी; क्योंकि फसल को अधिक उत्पन्न करनेके लिए जैसा कि ऊपर कह आये हैं पांच बातोंकी परम आवश्यकता है और यदि इनमें से किसी एककी मात्रामें कमी हो जाती है तो फ़सल अच्छी नहीं होती। इनमें से पहिली दो बातोंका वर्णन ऊपर हो चुका है। अब तीसरी बात है खाद्य पदार्थोंको पहुंचाना। खाद्य पदार्थोंमें नत्रजन मुख्य है। नत्रजनके सब रूपोंमें नत्रेतका रूप, जैसे शोरेका, पौधोंके लिए अति श्रेष्ठ है। इसलिए श्रीयुत जार्ज क्लार्क कृषि रसा-

यनज्ञ कृषि विभाग संयुक्त प्रान्तने इस बातकी जाँच की है कि यहांकी भूमिमें किस समय नत्रेत अधिक शीघ्रतासे बनते हैं। यह परीक्षण सन् १६१६ से १६२० तक कानपुर एग्रीकलचरल कालिजके फार्म पर किया गया था और इसीके ऊपर क्लार्क साहबका एक लेख भारतवर्षीय अग्रीकलचरल जनरल (The Agricultural Journal of India) में प्रकाशित हो चुका है। इसमें पहले उपरोक्त बातें कही गई हैं। उसके बाद जिस भूमिमें अध्ययन किया गया उस भूमिका वर्णन है। तदनन्तर भूमिसे नमूने लेनेकी विधि और नाईट्रेटके रूपमें जो नत्रजन है उसके जाँचनेकी विधिका वर्णन है। जाँचनेसे यह मालूम हुआ कि उस भूमिमें नत्रजनकी मात्रा सतहसे एक फुट गहराई तक, ·३७८ फ़ी सैकड़ा है और दूसरे फुटकी गहराईमें, ·३३६ फ़ी सैकड़ा। भिन्न भिन्न महीनोंमें मात्रा निम्न लिखित पायी गयीं :—

तारीख़	नाईट्रिक नत्रजनकी मात्रा दशलाख सूखी भूमिमें	
१६१६–१६२०	एक फुट गहराई तक	दूसरे फुटमें
१४ सितम्बर	२·४	·६
२६ "	२·६	·६
२२ अक्टूबर	८·१	१·५
१७ नौम्बर	८·३	१·५
१५ जनवरी	६·३	१·८
२६ "	६·८	१·६
१५ मार्च	१४·४	१·३
१२ अप्रैल	१२	१·६

इस जांचसे मालूम होता है कि भूमिके पहिले फुटमें नाइट्रेट अधिक बनता है और दूसरे फुटमें अक्टूबरमें किंचित वृद्धि होकर फिर कोई ऐसा परिवर्त्तन नहीं होता। भूमिके पहिले फुटमें "नाइट्रेट" शीघ्रताके साथ अक्तूबर मासमें बनता है और यही समय रबीके लिए भूमि तय्यार करनेका होता है। वर्षाके अन्तमें अर्थात् सितम्बर, मासमें नाईट्रेट लगभग गायब हो जाता है और जहां सितम्बरमें २·६ हिस्सा नत्रेत १०,०००,०० भाग सूखी भूमिमें था तहां अक्टूबरमें ८·१ हिस्सा तक बढ़ गया। नाईट्रेटकी इस घट बढ़के कारणों पर विचार करना चाहिये। यद्यपि सितम्बर और अक्टूबरकी उष्णता ऐसी होती है कि भूमिके जीवाणु अच्छे प्रकारसे नाईट्रेट बना सकें, फिर भी इन महीनोंमें नाइट्रेटकी मात्रामें इतनी भिन्नता क्यों होती है? कारण यह है कि सितम्बर मासमें वर्षा हुआ करती है, जिसका जल भूमिमें अधिकतासे भर जाता है और हवा कम हो जाती है। भूमिकी ऐसी अवस्थामें नाईट्रेट बनाने वाले जीवाणु अपना कार्य्य ठीक ठीक नहीं कर सकते और इसीलिए नाइट्रेट भी शीघ्रतासे नहीं बनता; परन्तु जब वर्षा निकल जाती है और भूमि सूखने लगती है तब उसके ऊपर एक पपड़ी पड़ जाती है, जिसके कारण भूमिके भीतर हवा नहीं जाती और न भूमिके भीतरका जल उड़ने पाता है; इसलिए सितम्बरमें नाईट्रेट कम बनता है। अक्तूबर मासमें जब भूमि जोती जाती है तब यह दोनों त्रुटियां दूर हो जाती हैं अर्थात् हवा यथेष्ट रूपमें भूमिके भीतर जाती है और जल, जो भूमिमें अधिकतासे रहता है, उड़ जाता है। इसलिए नाईट्रेट भी शीघ्रतासे बनने लगता है।

इसी प्रकारकी जांच कृषि रसायनज्ञोंने अन्य स्थानोंमें भी की है; जैसे एलजीर्समें पौगट और गुराड महाशयोंने की है। इनकी जांच बिलकुल क्लार्क साहबकी जांचके समान हैं। पूसामें लेदर और सेन महोदयोंने जांच की। वह भी क्लार्ककी बातोंको पुष्टि करते हैं। परन्तु लेदर कहते हैं कि पूसामें नाईट्रेट अति शीघ्रतासे जून मासके पहिले पानीके बाद बनता है।

इन अवलोकनोंका अन्तिम निर्णय यह निकलता है कि इन प्रान्तोंमें दो समयों पर नाईट्रेट

अधिक शीघ्रतासे जमा होता है; एक तो वर्षाके पहिले जलके बाद जून वा जुलाईमें। दूसरे जाड़ेके आरम्भमें अर्थात् अक्टूबरमें। इन्हीं समयों पर यहांकी दोनों फ़सलोंका आरम्भ होता है। खरीफ़ आषाढ़ अथवा जून वा जुलाईमें बोई जाती है और रबी कुंआर अर्थात् अक्टूबरमें।

इन दोनों फ़सलोंके पहिले यहांकी ऐसी आबो-हवा होती है कि भूमिके जीवाणु बिलकुल सुस्त पड़ जाते हैं, जिसके कारण नाईट्रेट भी कम बनता है, क्योंकि खरीफ़के पहले अर्थात् मई और जून मासमें गर्मी अत्यंत अधिक होती है और रबीके पहिले भूमिमें नमी अत्यंत अधिकतासे रहती है। परन्तु जिन स्थानोंमें खेत एप्रिल और मईके महीनोंमें जोत कर छोड़ दिये जाते हैं, जिससे हवा अच्छे प्रकारसे भूमिमें प्रवेश करती है, वहां नाईट्रेट और भी अधिक शीघ्रतासे बनता है और वहाँकी खरीफ़ भी अन्य स्थानोंसे अच्छी होती है।

उपरोक्त कथनसे मालूम होता है कि हमारे पूर्वज विज्ञानसे अनभिज्ञ न थे। उन्होंने इन सब बातोंका अच्छे प्रकारसे अध्ययन करके फ़सलोंके बोनेके समय नियत किये थे। उनके अनुभवोंका फल यह है कि यहांके किसान उस "नाईट्रेट" से जोकि भूमिमें रत्ती और माशोंके परिमाणमें रहता है, मनों नाज पैदा कर लेते हैं। यही नहीं बल्कि वह इतना नाईट्रेट भूमिके जोतनेसे उत्पन्न कर लेते हैं जितना उनकी छोटी फ़सलके लिए आवश्यक होता है।

इस समय जैसी स्थिति खेतीकी यहाँ पर है उसकी सहायता सर्कारी कृषि विभाग अनेक प्रकारसे कर रहा है; जैसे अच्छे बीजोंका बांटना, श्रेष्ठ फसलोंका परिचय कराना और आबपाशीकी सुगमता करना, नये प्रकारके यन्त्रोंका व्यवहार करना इत्यादि; परन्तु इन सब कामों से कोई ऐसा परिवर्तन नहीं हुआ जिससे उपज अधिक होती। इसीलिए अब दूसरा कार्य्य इस विभागके सामने यह है कि यहांकी खेतीकी स्थिति सदैवके लिए ऐसी करदी जाय कि उपज अधिक होने लगे; और जब इस कार्य्यका आरम्भ होगा तभी उस उन्नतिसे, जो कि अभी तक इस विभागने की है, पूर्ण लाभ उठाया जा सकेगा।

शाहजहांपुरमें कृषि विभागने एक सर्कारी गन्ने का फ़ार्म (Sugar cane Research farm) खोला है, जिसके प्रबंधक हमारे मि० जी क्लार्क हैं। वहांकी परीक्षासे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन प्रान्तोंमें पांस के व्यवहारसे खेती अधिक लाभदायक हो सकती है। वहांकी तीन फ़सलोंकी औसत पैदावार इस प्रकार है:—

गन्ना	१४१	मन	फ़ी	एकड़
गेहूं	३०.३	"	"	"
चना	२४.१	"	"	"

परन्तु इस प्रान्तके अन्य खेतोंकी औसत निकासी जहां आबपाशी पर्याप्त होती है इस प्रकार है।

(१) गन्ना	३४५	मन	फ़ी	एकड़
(२) गेहूं	१५.२	"	"	"
(३) चना	११.६	"	"	"

शाहजहांपुरके फ़ार्मकी भूमिमें चार वर्षमें केवल एक बार नत्रजनकी पांस अंडीकी खलीके रूपमें ५० सेर फ़ी एकड़के हिसाबसे दी गई थी, जिसका परिणाम यह हुआ कि अन्य स्थानोंसे यहाँ की फ़सल दूनीसे अधिक होती है। परन्तु अंडीकी खली तथा अन्य तिलहनोंकी खली, जिनका प्रयोग खादके लिए हो सकता है इतनी अधिकतासे नहीं मिलतीं और न इतनी सस्ती मिलती है कि सब खेतोंमें दी जा सके। इस समय इस ओर ध्यान देना चाहिये कि खेतोंको किन विधियोंसे जोतें, बोयें और काटें कि जिससे नत्रजनकी मात्रा उनमें सदैव बढ़ाकरें और उन विधियोंकी रोकनेकी चेष्टा करनी चाहिये जिनके द्वारा खेतकी नत्रजन व्यर्थ नष्ट हो जाती है। यदि इन बातोंमें कुछ भी सफलता हो जाय तो भारतवर्षके किसानोंका बड़ा भारी कल्याण हो जायगा और तभी कृषि विभागकी सफलता पूर्ण होगी।

वृक्षोंका आहार

बहुधा मनुष्य संसारके एक अति वृहद हरे भरे लहलहाते हुए भागकी गणना जड़ वस्तुओं में करने लगते हैं। परन्तु ऐसा समझना उन निर्बल, निस्सहाय जीव धारियोंपर घोर अन्याय है। वृक्षलतादि ईश्वर की जंगम सृष्टिके अनुसार ही खाते, पीते और बढ़ते हैं। जिस प्रकार मनुष्य, पशु, पक्षी आदि भोजन पच जानेपर निकृष्ट पदार्थोंको मल मूत्र आदिके रूपमें बाहर फेंक देते हैं, इसी प्रकार वृक्ष भी अपने शरीरकी अनावश्यक वस्तुओंको गोंद, लाख, रबर आदिके रूपोंमें बहिष्कार करते हैं। एक नन्हासा बीज गीली मिट्टीमें बो देनेसे एक छोटेसे सुन्दर कोमल पौधेमें परिवर्तित हो जाता है, और यह पौधा समय पाकर एक दीर्घाकार, शक्ति शाली वृक्षका रूप धारण कर लेता है। इस वृक्ष से फिर और नये वृक्ष उत्पन्न होते हैं, और इस प्रकार इस वृक्ष संसारका अस्तित्व बराबर जारी रहता है।

अन्य जीवोंकी तरह काल, वृक्षोंको भी नहीं छोड़ता और यह भी समय आने पर नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य और अन्य जीवधारियोंके समान ही छोटे से छोटे पौधे और बड़ेसे बड़े वृक्ष-पर नश्वर शक्तियोंका पूर्ण प्रभाव पड़ता हैं। अधिक गर्मी और सूखी हवामें पेड़ मुरझा जाते हैं। यदि यह अँधेरेमें अथवा कर्बन द्विओषिद् (Carbon-di-oxide.) रहित वायुमें रखे जावें तो इनका जीवन रूपी दीपक थोड़ेसे ही समयमें बुझ जाता है। कोई कोई पौधे तो ऐसे कोमल होते हैं कि उँगली दिखाते ही मुरझा जाते हैं। यह सब कुछ देखते हुए, क्या कोई विचारशील मनुष्य स्वप्नमें भी इन वृक्षलतादिके निर्जीव होनेकी कल्पना कर सकता है?

वैज्ञानिकोंके अनुसार जीवनका सारा सार अथवा यों कहिये कि जीवोंका जीवनदाता एक गूढ़ पदार्थ है, जिसे वह जीवाद्यम (Protoplasm) कहते हैं। यह प्रोटोप्लाज्म अनेक साधारण पदार्थोंके मेलसे बना होता है, परन्तु अब तक इस बातका ठीक ठीक पता नहीं चला है कि कौन कौनसे पदार्थ किस किस परिमाणमें उपस्थित हैं। कर्बन (Carbon), उज्जन (Hydrogen), नत्रजन (nitrogen), ओषजन (oxygen), फास्फ़ोरस (Phosphorus), कैल्सियम (Calcium), पोटासियम (Potassium), मैगनीसियम (magnesium), गंधक और लोहा तो इसमें सर्वदा पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त सोडियम (Sodium), शिलाकन (Silicon) और हरिन (chlorine) भी कभी कभी मिलते हैं। आवश्यक गुणोंमें वृक्षलतादि और मनुष्य, पशु, पक्षियोंके प्रोटोप्लाज़्ममें कोई विशेष भेद नहीं पाया जाता। इस कारण अब हम निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि दोनोंमें जीवित वस्तु एक ही प्रकारकी है, भेद केवल अंग प्रत्यंग आदि भिन्न भिन्न होनेके कारण हैं :—

जंगम जीवोंको तो हम प्रति दिवस, खाते, पीते, उठते और बैठते देखते हैं, इस कारण हम बिना संकोच कह देंगे कि इनके खाद्य पदार्थोंसे इनके जीवनदाता प्रोटोप्लाज़्मकी रचना होती है, जिसकी शक्तिसे यह अपने समस्त सांसारिक कार्य सम्पादन करते हैं। परन्तु वनस्पति संसारके विषयमें ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं दिखाई देता; इस कारण हमारा यह प्रश्न अत्यंत स्वभाविक है कि इनमें यह सब कार्य करनेकी शक्ति कहांसे आती है?

विश्वास रखिये, यह कहीं गुप्त रूपसे आकाशसे आकर उनमें नहीं समा जाती, वरन् वृक्ष भी अन्य पशु पक्षियोंकी नाईं भोजन करते हैं, और वह खाद्य पदार्थ ही इस शक्तिके जीवनदाता हैं। इनका भोजन मुखसे नहीं—जड़ों और पत्तोंसे होता है। जड़ोंके सिरोंपर छोटे छोटे बाल होते हैं

जो 'रूट हेअर्स (root hairs) कहलाते हैं। वृक्ष सदा अपने भोज्य पदार्थको पानीमें घोलकर खाता है, क्योंकि वह इस बातसे अनभिज्ञ नहीं कि बिना ऐसा किये उनका पचना कठिन है। यह जड़ोंके बाल उस पानीमें घुले हुए भोजनको अपने अन्दर खेंच लेते हैं और फिर यहांसे वह समस्त वृक्षमें फैल जाता है।

मनुष्य चाहें अपनेसे निर्बलोंपर अत्याचार करें तो करें परन्तु न्यायकारी ईश्वर ऐसा कदापि नहीं करता। उसने कुत्तेको सूंघनेकी ऐसी विलक्षण शक्ति दी है, जिससे वह अपनी खाद्य और अखाद्य वस्तुको तुरन्त पहचान जाता है। मनुष्यको उसने इसी कार्य सम्पादनके हेतु जिह्वा दी है। इसी प्रकार उसने अपनी सृष्टिके अत्यन्त निर्बल जीव वृक्षादिको भी इस अपूर्व शक्तिके देनेकी कृपा की है।

वृक्षोंमें प्रोटोप्लाज़्म बोरेके नाजकी तरह नहीं भरा होता, वरन् अगणित छोटे छोटे कोठे बने होते हैं, जिनकी दीवार सैल्युलोस (cellulose) नामक पदार्थकी होती है। इस दीवारके बराबर चारों ओर प्रोटोप्लाज्म फैला रहता है। कोठेके बीचकी जगहको वैकुओल (vacuole) कहते हैं। इसमें नाना प्रकारके रस आदि भरे रहते हैं।

इस कोठेकी दीवारमें होकर, कोई भी वस्तु पानीमें घुल कर निकल सकती है, परन्तु प्रोटोप्लाज्ममें से सब वस्तुएँ इस प्रकार नहीं जा सकतीं। उसमें ऐसी शक्ति है कि वस्तु यदि लाभदायक हो तो वृक्षके अन्दर जाने देता है, अन्यथा नहीं। जड़ोंके बालोंमें ऐसे हो कोठे विद्यमान हैं। उनका प्रोटोप्लाज़्म, श्वानकी नासिका और मनुष्यकी जिह्वाका कार्य सम्पादन करता है।

मिट्टी अनेकानेक पदार्थोंके मिश्रणसे बनी हुई है। इन पदार्थोंमें कर्बन (carbon), नत्रजन (nitrogen), फासफोरस (Phosphorus) कैलशियम, पोटाशियम, मैगनीशियम, लोहा, गंधक इत्यादि सब अनेक रूपोंमें विद्यमान होते हैं। मिट्टीमें थोड़ा अथवा अधिक पानी तो हमेशा रहता ही है, और फिर वर्षा और कुएंका जल सदा वृक्षोंकी सहायता करता रहता है। ऊपर लिखे पदार्थोंमें से अधिकांश तो पानीमें घुल सकते हैं, शेष बैक्टीरिया और अन्य छोटे छोटे जीवों द्वारा इस योग्य बना दिये जाते हैं। इस प्रकार यह समस्त वस्तुएँ पानीमें घुलकर जड़ोंके बालों द्वारा वृक्षमें से ले ली जाती हैं। अन्य जीवोंकी तरह वृक्ष भी सांस लेते हैं। परन्तु यह वायुकी कर्बन-द्विओषिद (carbon-di-oxide) तो अंदर ही रहने देते हैं, पर उसमें की ऑक्सीजन (oxygon) वायुको दे देते हैं। पशु पक्षी आदि ठीक इसके विपरीत करते हैं। इस प्रकार वृक्ष और अन्य जीव जन्तु परस्पर एक दूसरेकी सहायता करते हैं। ईश्वरकी अनेकानेक लीलाओंमें से यह एक अपूर्व ही है। यदि ऐसा न होता तो संसारका कोई भी प्राणी जीवित न रह सकता।

पत्तों और तनेका हरा रंग एक क्लोरोफ़िल (Chlorophyll) नामक पदार्थकी उपस्थितिके कारण होता है। सूर्य्यके प्रकाशमें यह हरितराग कर्बन द्विओषिदको कर्बन और ऑक्सीजनमें विभाजित कर देता है। ऑक्सीजन बाहर चली जाती है, परन्तु कर्बन और पानी मिल कर एक फ़ौर्मेलडीहाइड (Formaldehyde) नामक पदार्थ बनाते हैं। इस फ़ौर्मेलडीहाइडके छः अणु (molecules) के मिलनेसे शक्कर बन जाती है। वृक्षके घुले हुए भोजनमें पोटासियम नाईट्रेट (Potassium nitrate) भी होता है। इसके और शक्करके सम्पर्कसे अमाइड (amides) बन जाते हैं। इन एमाइडोंसे प्रोटीन (proteins), जो प्रोटोप्लाज्ममें पाई जाने वाली वस्तुओंमें मुख्य है, तैयार हो जाती है।

इस प्रकार वृक्षादि अति साधारण भोज्य पदार्थों से अपने जीवन मूल प्रोटोप्लाज़्म को बना लेते हैं। वैज्ञानिक लोग प्रोटोप्लाज़्म बननेकी इस रीतिको एनाबोलिज़्म (anabolsim) कहते हैं। प्रकृति का यह नियम है कि जो वस्तु बनती है, बिगड़ती

भी अवश्य है। अस्तु एनाबोलिज़्मके साथ ही साथ केटाबोलिज़्म (Ketabolism) अर्थात् प्रोटोप्लाज़्मका छोटी छोटी साधारण वस्तुओंमें विभक्त होना भी जारी रहता है। सैल्युलोज़ (Cellulose) स्टार्च (Starch), तेल, शक्कर, क्लोरोफ़िल (chlorophyll) आंगारक अम्ल, फ़र्मेन्ट्स (feerments) टैनिन्स (tanins), alkaloids (एलकैलोइड्स) लाख, गोंद आदि समस्त वस्तुएं इसी प्रकार प्रोटोप्लाज़्मसे केटाबोलिज़्म (Ketabolsim) द्वारा बनती हैं।

रुई, लकड़ी, और वृक्षके अंदरके कोठोंकी दीवारें आदि सब सैल्युलोस (Cellulsy) की ही बनी हुई होती हैं।

स्टार्च (Starch) तो मनुष्य, पशु, पक्षी आदिका जीवन प्राण ही है। जौ, गेहूं, चावल, दाल, शाक आदि कोई वस्तु ऐसी नहीं, जिसमें इसका अंश न हो, वरन् इनमें से कुछ तो केवल स्टार्च (starch) से ही बनी हुई हैं।

अरंडी, तिल आदि अनेक चीज़ोंमें से तेली लोग जो तेल निकालते हैं वह भी इसी प्रोटोप्लाज़्मकी ही कृपासे मिलता है। पत्तों और फूलों इत्यादिमें सुगन्धित तेलोंके पाये जानेका कारण भी यही है।

प्रोटोप्लाज़्मसे ही बनी हुई वह शक्कर है, जो हमारे गन्ने, सेब, केले, अमरूद आदि स्वादिष्ट पदार्थोंमें मिठास उत्पन्न करती है। हमारे रात दिन काम आनेवाली खांड और बूरा गन्नेसे ही बनाई जाती है, इस कारण इसका भी जन्मदाता हमें प्रोटोप्लाज़्म को ही मानना पड़ेगा।

नीबू, सेब, खट्टे आदिके रसको वैज्ञानिक लोग (औरगेनिक एसिड्स) आंगारक अम्लके नामसे पुकारते हैं—यह भी केटाबोलिज़्म द्वारा उत्पन्न पदार्थोंमें से ही हैं।

इसी प्रोटोप्लाज़्म से बने हुए फ़रमैन्ट्स (ferments) जो वृक्षोंमें पाये जाते हैं, अत्यंत उपयोगी और लाभदायक हैं। डायस्टेस (Diastase) नामक फ़रमैन्ट स्टार्चको शक्करमें परिवर्तित कर देता है। माल्टेस (maltase) माल्ट शक्करसे गन्नेकी शक्कर बना देता है। लाइपेस (Lipase) चरबी और तेलसे ग्लिसरीन (glycerine) और कई प्रकारके तेज़ाव उत्पन्न करता है। इस ग्लिसरीनसे फिर शक्कर और स्टार्च बन जाता है।

एलकेलोइड् (alkaloids) भी मनुष्योंके लिए बड़े लाभदायक पदार्थ हैं। एट्रोपीन (Atropine), नीकोटीन (nicotine), कुनैन (Quinine) आदि सब एलकेलौइडोंमें ही गिने जाते हैं।

इन सब पदार्थोंके अतिरिक्त केटाबोलिज़्म से वृक्षमें शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इसी शक्ति द्वारा वह हिलते और बढ़ते हैं, लताएं अन्य वृक्षों और रस्सियों पर चढ़ जाती हैं और नन्हीं नन्हीं बन्द कलियां खिलकर सुन्दर, सुगन्धित पुष्पोंका रूप धारण करती हैं।

इस प्रकार वृक्षादि भी अन्य जीव धारियोंकी तरह खाते और पीते हैं और यही खाना उनमें हिलने बढ़ने फलने और फूलनेकी शक्ति उत्पन्न करता है; जैसे बहुत से मनुष्य, पशु और पक्षी मांसाहारी होते हैं, वैसे ही कुछ वृक्ष भी मांससे ही अपनी उदर पूर्ति करते हैं। ऐसे वृक्षोंके बड़े सुन्दर सुगन्धित पत्ते और फूल होते हैं। नैपन्थीज़ (uapenthes) नामक वृक्षके पत्तोंका आकार, एक छोटेसे घड़ेके समान होता है। घड़ेके मुख पर अनेक, शहदकी थैलियाँ होती हैं। उसपर एक रंग विरंगा और अति सुगन्धित ढकन लगा होता है। परन्तु पाठक गण! आपको पता है, इसका यह सब पाखंड किस लिए होता है? केवल किसी भोले भाले कीड़ेको फँसानेके हेतु! वह विचारा सुन्दर रूप, सुगन्ध और शहदके धोखेमें आकर अपने बैरीके गृहमें घुसने लगता है। थोड़ा सा भीतर घुसते ही वह एक चिकनी जगह पाकर और अंदरकी ओर फिसलनेके लिए विवश हो जाता है। वह निकलनेका प्रयत्न करता है, परन्तु अपने चारों ओर नुकीले कांटे पाकर हिम्मत हार जाता है। उनसे भयभीत होकर, और नीचेकी

ओर जाने पर वह एक ओर खड्डा और दूसरी ओर खाई वाली कहावत चरितार्थ हुई पाता है। इस पत्तेके घटमें एक तेज़ाब रहता है। जिसमें गिरते ही वह कीड़ा मरकर घुल जाता है। नैपन्थीज़के समान, लगभग समस्त मांसाहारी वृक्षोंमें कोई न कोई ऐसा ही कीड़ेके मारने और पचानेका प्रबन्ध होता है। एक ड्रोसरा (Drosera) नामक वृक्षके पत्तोंमें कई डंक होते हैं। इन डङ्कों के सिरोंपर तेज़ाब भरी थैलियां होती हैं। जैसे ही कोई कीड़ी या मक्खी किसी डङ्क पर आकर बैठी कि सब डंक उसपर झुक जाते हैं और कोथलियोंमें से तेज़ाव निकाल कर उसपर डाल देते हैं। इस प्रकार वह उसे मार कर खा जाते हैं।

अब हमने पूर्ण रूपसे देख लिया कि पेड़ों और अन्य जीवधारियोंकी खाने, पीने, बढ़ने, फलने और फूलनेकी रीति आवश्यक बातोंमें बहुत कुछ मिलती जुलती हैं। मैं तो वृक्षोंको परमात्माकी जीवित सृष्टिका एक अति निर्बल, परन्तु अत्यन्त निःस्वार्थ, निष्काम और परोपकारी भाग समझता हूं। मनुष्य जाति संसारमें श्रेष्ठ, अति बलशाली और ज्ञानमें सर्वोच्च समझी जाती है, परन्तु कितने शोक की बात है कि छोटे छोटे जीव तो आपसमें अपना और दूसरोंका उपकार करें और मनुष्य जातिमें भाई भाई परस्पर एक दूसरेकी गर्दन पर छुरी चलावें। क्या ही अच्छा हो कि ईश्वरकी सृष्टिके यह सर्वोत्तम जीव वृक्ष लतादि से ही परोपकारका महत्त्व सीख लें।

—ब्रह्मदत्त भार्गव

नारू या नहरुवा

हमारे देशमें नहरुवेकी बीमारी कोई नई बीमारी नहीं है। इसका ज्ञान हमें दो हजार वर्ष के पूर्व ही हो चुका था। इस बीमारीकी गणना भयंकर रोगोंमें नहीं की जाती। जिन बड़े बड़े शहरोंमें पानी स्वच्छ करके नल द्वारा पीनेको मिलता है वहां तो इस रोगका नाम सुननेमें भी नहीं आता, परंतु जब आरोग्य डिपार्टमेंटकी रिपोर्ट देखी जाती है तो हमें पता चलता है कि देहातोंमें जहां स्वच्छ किया हुआ पानी पीनेको नहीं मिलता वहां यह रोग बहुत होता है। डाक्टरोंके पास शहरोंमें भी इस प्रकारके रोगी आया करते हैं। इन रोगियोंमें बहुधा व्यापारी समुदायके ही लोग होते हैं। इसका कारण यही है कि यह लोग कुओं और ताल तलैयोंका पानी पीते हैं। यह रोग केवल हमारे ही अज्ञानसे हुआ करता है। आरोग्य शास्त्रके नियमोंके अनुसार न चलनेसे ही हमको इस रोगका ग्रास होना पड़ता है। हमारी समाजकी यह प्रथा कि 'पुराना उतना अच्छा और नया उतना बुरा' इस रोगकी जड़से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है। लोगोंका ऐसा विचार है कि नलका पानी जो स्वच्छ किया जाकर जनताको दिया जाता है वह भारी और अपच होता है और कूए आदिका पानी हलका और पाचक होता है; लेकिन वह इसका विचार नहीं करते कि कुओं तथा बावड़ी आदिमें ज़मीनपरकी अथवा ज़मीनके भीतरकी कई प्रकारकी गंदगी पानीमें मिली होती है। इसी प्रकार हमारे कई भाई नलके पानीको धार्मिक दृष्टिसे निषिद्ध समझते हैं और अपना नुकसान आप ही कर बैठते हैं। कूएके पानीको गरम करके पीना तो एक ओर रहा उसे छान कर पियें तो भी हमारे नगर निवासियोंमेंसे कई फीसदी इस रोगसे बचे रह सकते हैं।

नारूके सम्बन्धमें हमें इन बातोंकी विवेचना करनी होगी। (१) नारूका जन्म, (२) उसकी शारीरिक रचना, (३) उसका जीवन, (४) उसकी सन्तान वृद्धि, (५) उसका मनुष्य तथा पशुओंकी देहमें प्रवेश करनेका मार्ग, (६) उसके होनेसे विकार और (७) उनका उपचार।

नारू कई देशोंमें पाया जाता है। अंग्रेजीमें इसे गिनी वर्म कहते हैं। संस्कृतमें स्नायू और गुजरातीमें वाला कहते हैं। प्रायः यह कीड़ा गरम देशोंमें अधिक पाया जाता है। अफ्रीकाके पश्चिमी तटपर प्रायः सभी सिद्दी लोगोंको नारूका रोग हुआ करता है। उसी प्रकार दक्षिण अमेरिकाके पूर्वी किनारेपर, ईरान तुर्किस्तान अरब आदि देशोंमें भी यह रोग हुआ करता है। हिन्दुस्तानमें दक्षिणके प्रांतोंमें काठियावाड़ गुजरात और मध्य-भारतमें यह रोग बहुधा होता है। विलायत वा अन्य ठंडे देशोंमें इस रोगका बीज नहीं जम सकता। यदि उष्ण देशसे इसका रोगी ठंडे देशमें चला जाय तो भी इसकी वृद्धि अधिक नहीं होने पाती।

मनुष्योंके समान पशु भी इस रोगसे सताये जाते हैं। पशुओंको होनेवाले रोगको लोग नारू नहीं कहते, उसे प्रायः (गुजरातीमें) तीड़ फूटना कहा करते हैं। मनुष्योंको होनेवाले नारूके समान ही वह भी होता है, केवल अन्तर इतना ही रहता है कि मनुष्योंको होने वाला नारू बड़ा लंबा होता है, जिसे मादा कहते हैं और यह छोटा और बारीक होता है, जिसे नर कहते हैं। इनके रोगोंके लक्षण भी भिन्न होते हैं, जिनका आगे चल कर उल्लेख किया जायगा।

नारूमें नर और मादा होती है। नर छोटा और बारीक होता है और मादा लम्बी होती है, जिसकी लम्बाई कभी कभी तीन फुट तक हो जाती है तथा कुछ मोटी होती है। नारू का शरीर एक पोली नलीके समान होता है, वह लचीला और दूधके समान स्वच्छ होता है। शरीर पर किसी प्रकार के धब्बे इत्यादि नहीं होते। उसकी पूंछके अग्र भाग पर एक छोटा सा मुड़ा हुआ कांटा (हुक) होता है, जिसके द्वारा वह शरीरकी नस या किसी भागको पकड़ कर अपना कार्य किया करता है। उसका सिर गोल और मुँह तिकोना होता है। उसके शरीरके भीतरकी आंतें और पेट बिलकुल बारीक होता है। मादाका अधिकांश भाग गर्भाशय होता है और गर्भाशयका द्वार भी मुँहके पास ही होता है कभी कभी मादाके शरीर से नर लिपटे हुए रहते हैं।

आयुर्वेदमें नारूके चार प्रकार बतलाये हैं, जो क्रमशः बात, पित्त, कफ और रक्त हैं, वात जातिके नारू जमीनके मटमैले रङ्गके होते हैं कफ जाति के नारूका रङ्ग पीला, पित्त जातिके नारूका रङ्ग काला और रक्त जातिके नारूका रङ्ग लाल होता है। कहते हैं रक्त अथवा लाल जातिके नारूसे दाह अधिक होता है और प्रत्येकके अलग अलग चिन्ह दिखाई देते हैं।

नारूका जीवन बड़ा ही अद्भुत है। जैसे प्लेगके जंतु चूहेके खून से उत्पन्न होकर उनके शरीर परके पिस्सुओंके शरीरमें प्रवेश करते हैं, और उनके काटने से मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश कर जाते हैं अथवा मलेरियाके जन्तु मच्छरोंके शरीरमें बढ़ते हैं और फिर मनुष्योंके शरीरमें आ जाते हैं उसी प्रकार नारू भी दूसरे कीटोंकी सहायता से मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करता है।

नारू अन्य भागोंकी अपेक्षा पैरोंमें अधिक निकलता है। कभी कभी वह अन्य भागोंमें भी निकल पड़ता है, परन्तु वह जब कोमल भागोंमें निकलता है तब उतनी पीड़ा नहीं करता जितनी पीड़ा कुछ कठोर भागोंमें निकलनेसे करता है। कभी तो वह त्वचापर सुतली सरीखा दिखाई देता है। उस वक्त त्वचापर एक छिद्र हो जाता है अथवा डाक्टर लोग चीरा लगा कर उसे निकाल लेते हैं। इसके निकालनेमें कुछ भी हानि नहीं होती, परन्तु जब कभी पीब पड़ जाता है तब कुछ कठिनाई होती है और नासूर हो

जानेका डर रहता है। नैसर्गिक रीति से नारूका प्रयत्न शरीरके बाहर जमीनकी ओर निकलनेका होता है; क्योंकि ६५ फी सदी नारू पैरोंमें ही पाया जाता है। हाथ और और अन्य अंगोंपर शायद ही कभी पाया जाता है।

मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करनेसे लेकर बाहर निकलने तक नारूके जीवनके तीन भाग होते हैं। पहले मनुष्यके पेटसे उसके अङ्गोंमें पहुंचना है। वहां रह कर बड़ा होता है और अन्तमें जब बच्चे उत्पन्न करनेका समय आता है तब त्वचामें छिद्र कर बाहर निकलनेका यत्न करता है। इस प्रकार मनुष्य दे.के भीतर रह कर ही अपना सब कार्य करता है और अपना कार्य कर के बाहर निकल आता है। जितने भी नारू मिलते हैं वह प्रायः मादा जातिके ही होते हैं। नर नारू बहुत ही थोड़े दिखाई देते हैं। लोगोंका ऐसा मत है कि वह अपना कार्य कर शरीरके भीतर ही नष्ट हो जाता है; परन्तु यह कहां तक सच है कहा नहीं जाता।

नारूके बाहर निकलनेके पहले कुछ पता नहीं चलता; परन्तु जब वह बाहर ही निकलने लगता है तब कुछ बुखार आता है। और जैसे पित्तसे शरीरमें खुजली आती है और ददोड़े हो जाते हैं ठीक उसी तरह इसमें भी हो जाता है; कहीं कहीं सूजन भी हो आती है। त्वचापर छिद्र होनेसे उसमेंसे ज़हरीला द्रव पदार्थ निकलता है, जिससे फोड़े हो जाते हैं। फोड़े परकी झिल्ली हटा देनेसे एक बारीक छिद्र दिखाई देता है और उसमेंसे एक बारीक सफेद सूतसा बाहर आता दिखाई देता है। ठंडा पानी डालनेसे उसमेंसे सफेद रंगका गाढ़ा पानी बाहर निकलता है, जिसमें नारूके असंख्य बच्चे होते हैं, जो सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा दिखाई देते हैं। दुबारा ठंडा पानी डालनेसे यह गाढ़ा पानी फिर निकलता है और किसी किसी रोगीके घावसे ऐसा पानी १०-१५ दिन तक निकलता है। इसके बाद गर्भाशय-का मुख बंद हो जाता है। नारूके बच्चे १/५० इंच लम्बे होते हैं; सिर गोल और दुम बारीक होती है और शरीर पर आड़ी रेखाएँ होती हैं। यह स्वच्छ पानीमें ५-६ दिन तक और गदले पानीमें २-३ हफ़्ते तक जीवित रहते हैं। यदि यह सूखी जगह रखे जायँ तो मरते नहीं; पर मंद पड़ जाते हैं। पानीमें डालनेसे फिर उत्तेजित हो उठते हैं।

इतने अधिक और इस प्रकारके बच्चे जब नारूसे उत्पन्न होते हैं तो यह रोग सर्वत्र क्यों नहीं फैलता जाता; यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है। परन्तु इसका कारण यह है कि नारूके बच्चोंको कई बाधाओंको पार करना पड़ता है। उनपर पहला संकट यह है कि उनके जीवनके लिए पानी आवश्यक है। इसलिए जब मादा जान लेती है कि पानी पास है तब ही वह बच्चे बाहर निकालती है अन्यथा नहीं। दूसरी बाधा यह है कि जिस पानीमें इन्हें छोड़ा जाता है उसमें सायक्लाप्स कीड़े होने चाहिएँ, जो इनकी बाढ़के लिए परम आवश्यक हैं। जिस पानीमें यह छोड़े जाते हैं उसमें सायक्लाप्स हुए तो वह इन कीड़ोंको खाना शुरू करते हैं। सायक्लाप्स को सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे देखनेपर यह कीड़े उसके पेटमें कुंडली मारे हुए दिखाई देते हैं। उसके बाद सायक्लाप्सके पेटमें हलचल आरम्भ होती है और उसका पेट फूट जाता है और यह बच्चे मुक्त होकर फिरने लगते हैं। वहां उनकी बारीक दुम नष्ट हो जाती है और इनका रूप नारूके समान हो जाता है। यदि इन बच्चोंका पोषण सायक्लाप्सके पेटमें नहीं होता तो यह बच्चे जल्दी मर जाते हैं; पर उसके शरीरमें जानेसे कुछ समय तक जीते रहते हैं।

यह सब वृत्तान्त बड़ा अद्भुत है। बच्चोंकी अवस्थासे बढ़कर मनुष्योंके शरीरपर हमला करनेके पहले इन्हें एक और कीड़के पेटमें वास करना होता है, जिसे सायक्लाप्स क्वाड्री कार्निस कहते हैं। यदि एक कांचपर कुछ नारूके बच्चे और कुछ ऊपर कहे हुए कीड़े रखें तो थोड़ी ही देरमें मालूम पड़ता

है कि १०–१५ नारूके बच्चे उनके पेटमें सहज ही चले जाते हैं। यह रूपान्तर होता हुआ साफ़ दिखाई देता है।

अब देखिये यह मूज़ी मनुष्य शरीरमें कैसे प्रवेश करता है। जिस सायक्लाप्सके पेटमें नारूके बच्चे रहते हैं वह पानीके साथ पिया जाता है। सायक्लाप्स बहुत बारीक तथा पारदर्शक होनेसे सहजमें दिखाई नहीं देता है। इससे वह पेटमें जाता है। वहां नमकका तेजाब जो पाचन क्रियाके लिए आवश्यक है उनको स्पर्श करता है। वह उसीमें गल जाते हैं और नारूके बच्चे स्वतंत्र हो जाते हैं। नारूके बच्चे शरीरमें भ्रमण करते करते किसी खास स्थानपर पैठ जाते हैं। इस समय इन बच्चोंकी लम्बाई ⅓ इंच होती है। पर इनकी पूर्ण बाढ़ होनेके लिए कमसे कम एक वर्ष लगता है। इसके बाद पूर्ण रूपसे बढ़ा हुआ नारू त्वचामें छिद्र कर बाहर निकलनेका प्रयत्न करता है; क्योंकि उसे भी अपने बच्चे फिर पानीमें डालने होते हैं। ऐसे समयपर जिस मनुष्यके पैरमें नारूका छाला हो वह पानीके समीप अथवा तालाबके किनारे जाकर पानीके पास उस छालेको ले जावे तो नारू अपने बच्चे पानीमें छोड़ देता है।

जिस जगह नारू होते हैं वहांके पानीमें सायक्लाप्स बहुत पाये जाते हैं। यह सब सामग्री होनेसे नारूके कीड़ोंको बढ़नेमें कुछ देर नहीं लगती। ऊपर कहे हुए हिन्दुस्तानके प्रांतोंमें यह कीड़े प्रायः सभी जगह देखे जाते हैं।

एक डाक्टरने एक बार नारूके बच्चोंसे तृम सायक्लाप्स एक बन्दरको खिला दिये। छः महीने बाद जब वह बन्दर मरा तो उसके शरीरमेंसे ३ नारू पूर्ण रूपसे बढ़े हुए मिले। इन सब प्रयोगोंसे स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्यके शरीरमें नारू किस तरह तैयार होते हैं। इनको बड़े होनेके लिए लगभग एक साल लगता है।

नारू प्रायः पैरोंमें अधिक निकलता है। इसलिए लोग समझते हैं कि नारू पानीकी ओर जानेका नैसर्गिक प्रयत्न करता है और चूंकि हमारे पैर शरीरके अन्य अवयवोंकी अपेक्षा अधिक पानीमें रहते हैं इसलिए नारू भी वहीं अधिकतर निकलते हैं। इसीसे एक विद्वान् डाक्टरका कहना है कि भिश्ती लोग सदा पानीकी मशक पीठ पर लादते हैं इसलिए उनकी पीठमें नारू निकलते हैं। लेकिन एक वकीलकी पीठमें नारू निकला था। इसी भ्रमसे लोग जखम पर पानी डालते हैं। परन्तु वास्तविक बात अभीतक जानी नहीं गई है। कोई कहते हैं कि वह ज़मीनकी ओर जाता है और इसीलिए वह पैरोंमें अधिक दिखाई देता है।

फायलरीयासिसमें सूजन पैरोंमें होती है और अन्य अवयवोंमें नहीं आती। कभी कभी नारू पूर्ण बाढ़ होनेके ही पहले मर जाता है। और शरीरमें ही सूख जाता है। जो नारू अधिक कष्टदायी होता है वह प्रायः मादा ही होती है।

उपचार

नारूके कई इलाज हैं। उनमेंसे एक उसपर पानी ढारना है। नारूके रोगीको कई वस्तु खानेको दी जाती हैं। कोई कहते हैं कि खटमल या कुत्ते पर लगने वाली गोल गुंचड़ी गुड़में खिलानेसे नारू शरीरके भीतर ही मरजाता है। कोई कहता है कि गुड़ और हींग खानेसे अच्छा हो जाता है। भाव प्रकाशमें लिखा है कि मेंडक की चमड़ी पर लगी हरी पर्तकी चिकनाईसे चुपड़ कर सेक देनेसे नारू अच्छा होता है।

कुछ लोग जितना नारू बाहर निकलता आता है उतनेको एक लकड़ी पर लपेटते जाते हैं। इससे कभी कभी आराम हो जाता है, परन्तु कभी कभी नारू टूट जाने से बड़ा ही नुकसान होता है; क्योंकि उससे सैकड़ों नारू शरीरमें फैल जाते हैं और कभी कभी जखम सड़ भी जाता है और बहुत सूज जाता है।

नारूका इलाज करते समय रोगीको बड़े संकटमें समझना चाहिये और नारूके निकलनेके स्थानको बराबर स्वच्छ रखना चाहिये। यदि स्वच्छता

न रखी जायगी तो पीड़ा अधिक होगी। यह निश्चय ही है, क्योंकि नारू १०-१५ दिन तक अपने बच्चे बाहर डालता है और तबतक उसे स्वच्छ रखना चाहिये और खींच कर कभी तोड़ना नहीं चाहिये।

यदि नारू निकलनेके लक्षण दिखाई दें तो उस निकलनेवाले स्थानके पास ही कोकीनका इंजेक्शन देकर ठीक स्थान पर छिद्र कर जहां तक वह नहीं टूटे तहां तक उसे निकालनेका प्रयत्न करना चाहिये। उपचार करते समय पूर्ण स्वच्छता रखना अत्यन्त आवश्यक है, नहीं तो पीव पड़कर सूजन आये बिना नहीं रहता। यदि जल्दी ही करना हो तो क्लोरोफार्म देकर बड़ा आपरेशन करना उचित है। परन्तु नारू कितना बड़ा है यह मालूम नहीं हो सकता। इसलिए एक दम चीरा फाड़ो कर डालना भी अनुचित है; बहुत सोच-समझ कर करना चाहिये।

एक फ्रेंच डाकृरने नारूको मारकर बाहर निकालनेके लिए बारीक हैपोडरमिक पिचकारीसे नारूके नलिकाकार (पोले) शरीरमें औषध डाल कर उसे मारनेका प्रयत्न किया है। पहले पारेके सोल्यूशन की और फिर फार्म्यामिन्टकी पिचकारी दी। कई रोगियोंको बड़ा लाभ हुआ परन्तु वह बिना कष्टके बाहर नहीं निकला। एलकोहल (शराब) नरम पदार्थोंको कड़ा करता है उसको नारूमें डालनेका प्रयत्न किया गया। दूसरे डाकृरने अलकोहलका प्रयोग परमेंगनेट मिलाकर किया। यह उपाय अंग्रेजोंके समान गोरी और बारीक त्वचावालोंके सम्बन्धमें अधिक लाभदायक होता है; क्योंकि गोरी खालमेंसे नारू साफ साफ दिखाई देने लगता है और उसे बाहर निकालनेमें भी सुगमता होती है। यह प्रयोग करके देखना चाहिये। परन्तु नारूके मुँहमें पिचकारीका मुख अवश्य जाना चाहिये। इस उपायसे रोगीको कोई भी हानि नहीं होती और उपचार भी सहल हो जाता है। नारू दूषित रक्तका रोग नहीं है। औषध खाने या त्वचामें औषधकी पिचकारी देनेसे उसपर कोई विशेष असर नहीं होता।

आज कल 'Tartrate of Antimony' एनटीमनी टारट्रेटका ऐसे जन्तु जन्य रोगोंमें उपयोग होने लगा है। श्लीपद, जिसमें पैर हाथीके पैरके समान सूज जाता है; रक्त प्रमेह जिसमें मूत्र नली द्वारा रक्त गिरता है; पथरी, जिसमें मूत्राशयमें पथरी जमने लगती है, ऐसे रोगों पर उपरोक्त औषध बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है, इसलिए Tartrate of Antimony (अंजन) की रक्त वाहिनी नाड़ीमें पिचकारी दे देनेसे नारूके रोगीको बड़ा लाभ होता है, और इसका अनुभव एक डाकृरने १६०८ में किया था। इस रोग पर तंत्र मंत्र निरर्थक हैं बुद्धिमान लोगोंको यह कहनेकी आवश्यकता नहीं।

जैसे देहमें कांटा, पत्थर, कंकड़ी, शीशा आदि घुसनेसे देहमें सूजन तथा कष्ट होता है, उसी प्रकार नारूके भीतर रहने पर भी होता है। जैसे उनके निकलने पर आराम हो जाता है वैसे ही नारूके निकलने पर भी बड़ा आराम हो जाता है। इसी सिद्धान्त पर नारूकी औषध हमारे वैद्य लोग किया करते हैं; परन्तु उनके नारू निकालनेका बड़ा ही विचित्र ढंग होता है। जहां बड़े बड़े डाकृरोंकी हिम्मत नहीं होती वहां वह लोग बड़ी ही सावधानीसे खींच कर निकालते हैं। और वह इस क्रियामें तूमड़ीकी सहायता लेते हैं। कुछ भी असावधानी हो जानेसे रोगीको बड़ा ही दुःख होता है। वैद्य अपने हाथ तथा घावको स्वच्छ रखना जानते हो नहीं, जिससे रोग बहुधा भयंकर हो जाया करते हैं। अंग्रेजीमें कहावत है कि रोग अच्छा करनेकी अपेक्षा उसे होने ही न देना श्रेयस्कर है; इसी लिए नारू अच्छा करनेकी अपेक्षा उसे होने ही न देना अच्छा है, जिसका उपाय बिल्कुल सहज है और प्रत्येक आदमी कर सकता है, क्योंकि सायक्लाप्स कीड़े आंखोंसे साफ दिखाई देते हैं और पानीको छान कर पीनेसे वह पेटमें नहीं

जा सकते। उन्हें दूर करनेके लिए पानीको उबालने-की भी आवश्यकता नहीं। जब इतने सहज उपायसे नारूसे बच सकते हैं तो हम उसे क्यों नहीं करें? न करनेका कोई कारण नहीं। देहातोंमें लोग कुओं अथवा तलावोंका पानी अकसर पीते हैं। जहां यह बीमारी बहुत देखी जाती है वहांके लोग इतने आलसी होते हैं कि समझाने पर भी वह इस उपायका उपयोग नहीं करते। तालावोंका पानी बिलकुल खराब होता है; क्योंकि आस पासकी जमीनकी गन्दगी धुलकर पानीमें जमा हो जाती है। लोग उसीमें नहाते धोते तथा ढोरोंको न्हिलाते हैं। इससे वहांका पानी पीनेके बिलकुल अयोग्य होता है। कितने कुओंमें सीढ़ियां बनी हुई होती हैं। वहां भी कई प्रकारकी गंदगी पानीमें मिल जाती हैं। कुओंके चारों ओर दीवाल बनी हुई होनी चाहिये, जिससे आस पासका मैल पानीमें न गिरने पावे और पानीको खराब न करने पावे। पीनेके पानीमें स्नान करना कुल्ला करना तथा और और बातें करना कितना घृणित कार्य है।

उपरोक्त कथनसे पाठकोंको विश्वास हुआ होगा कि पानीको छान कर पीनेसे नारूसे बचाव हो सकता है, परन्तु यह बचाव केवल एक व्यक्ति तथा एक कुटुम्बका होगा, जिससे हमारा काम नहीं चल सकता। हमें तो समाज भरका ही बचाव करना होगा। यह काम एक व्यक्तिका नहीं; सबकी सहायतासे हो सकता है। बड़े बड़े शहरोंमें वाटर वर्क्स लाखों रुपये खर्च करके बनाये जाते हैं और पीनेका पानी साफ कर दिया जाता है; परन्तु देहातोंमें जहां एक ही कुआ हो और जिसमें पानीकी सरलताके लिए सीढ़ियां हों वहां हमें विशेष ध्यान देना आवश्यक है; क्योंकि ऐसा कुआ सबसे खराब होता है। कुएके चारों ओर दिवाल होना परम आवश्यक है। अभी तक हमने इसी बातका विचार किया है कि यह रोग देशके किन प्रान्तोंमें होता है, कैसे होता है और इसका इलाज कैसे करना चाहिये, परन्तु हम यह भी बतला देना आवश्यक समझते हैं कि इससे हमारी आरोग्य सम्पत्तिका कितना नाश हो जाता है।

धनी लोग तो किसी प्रकार अपना इलाज करा सकते हैं; धनका व्यय कर सकते हैं; परन्तु गरीब देहाती भाई क्या इस योग्य हैं कि इतना धन व्यय करसकें! क्या वह डाक्टरोंको अपने घर बुलाकर इलाज करा सकते हैं अथवा शहरोंमें जाकर इलाज करा सकते हैं? क्या उनकी आर्थिक दशा ऐसी है कि वह वाटर वर्कस खोलकर अथवा अन्य उपायोंसे अपनेको बचा सकें? हमारे स्वदेशाभि-मानी देशभक्तोंका कर्तव्य है कि उन्हें इस भयंकर रोगसे बचनेका सहज उपाय बतावें और कुछ सहायता कर उनके लिए उचित रीतिके कुए बनवा कर उन्हें इस रोगसे मुक्त करें।

प्लेग, मलेरिया, कोढ़, अतीसार, हैज़ा, सन्निपात, ज्वर, मोतीझिरा आदि रोग उचित उपायके किये जानेसे बहुत कम हो गये हैं, परन्तु यह रोग देशमें कम क्यों नहीं होता, इसका क्या कारण है? इसका एक मुख्य कारण हममें सहकारिताका न होना है। हमारे देशकी सम्पत्तिका मूल आधार कृषी ही है और यह रोग कृषक लोगोंमें बहुत पाया जाता है, जिससे हमारे देशकी सम्पत्तिका कितना ह्रास होता है यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं*।

—सुन्दरलाल निगम

* टि० यह लेख 'नवयुग' मराठी मासिक पत्र (अगस्त १९२२ के) आधार पर लिखा है।

गोपरीक्षा

[ले०—"एक ग्वाला"]

प्रिय दोस्तो, आप यह न समझें कि आप नगरमें ही रहते हैं, आपके घरमें गाय नहीं है अतः आपको पशुओंके विषयमें जानने से कोई लाभ नहीं। आप सब कुछ बाज़ारसे खरीद लावेंगे, इस लिए गोशाला बनाकर दूध पैदा करनेकी आपको आवश्यकता नहीं। यह सब विचार अब आपको एक ही बार छोड़ देने होंगे। भारतवासियोंका सम्पूर्ण जीवन गो माताके साथ जुड़ा है। गौ भारतकी जन्म दात्री है, गो वंश आर्य सभ्यताकी पताकाको ऊंचा करने वाला है। भारतका गो वंशका चरैया अपनी वंशीसे मांसाहारी देशोंके वासियोंके हृदयमें भी घर कर चुका है। उसका दुहा हुआ अमृत (गीतामृत) पीकर सारा संसार अब चकित है। आपको पाश्चात्य सभ्यताका झूठा सुपना छोड़ना होगा और फिर गो माताकी सेवा करनी होगी।

राजा दिलीपके सन्तान न थी। उसने गो सेवासे रघु जैसा वीर प्रतापी पुत्र पाया। अब भारत वीर शून्य है। उसके बिना भारतके राज सिंहासनपर कोई चक्रवर्ती नहीं है यदि फिर रघुपतिका वंश उठेगा तो गो वंशकी पूजासे उठेगा। इसलिए प्रिय पाठको आप ऊपरके निःस्सार विचार छोड़ दें। गो पालन करें, गौओंसे प्रेम करें, याद रखें कि आपके देशके किसान तथा ग्रामवासी अब भी गोवंश पर अपना जीवन बिता रहे हैं।

पाठक गण, आइये गो वंशकी उन्नतिके लिए गो शास्त्रकी कुछ आलोचना करें। यह शास्त्र वर्तमानमें प्रायः सर्वथा लुप्त हो गया है। महाभारत के कालमें इस शास्त्रको बड़े आदरसे देखते थे। पाण्डु राजाके पुत्र राजकुमार सहदेव गोपालन शास्त्रके बड़े प्रसिद्ध विद्वान थे। उनकी रक्षामें पली हुई गौएं और बैल इतने उत्तम थे कि चक्रवर्ती दुर्योधन भी उनकी गौओंको हरनेके लिए ललचा उठा। यह गोधन बड़ा ही पवित्र था। जमदग्निकी कामधेनुको देख कर राजा सहस्रार्जुन तकके मुखमें पानी आ गया। भगवान् वसिष्ठकी नन्दिनीको देखकर विश्वामित्र राजा तक मर मिटा; परन्तु अत्याचारिक राजाओंका कोई बस न चला। गत महाभारतमें जब भारतीय वीरोंकी जर्मन गोभक्षकों पर कठोर तलवार बजी तब उनके होश हवास दुरुस्त हो गये।

गो माताकी महिमा कहां तक कहें। जितना कहें थोड़ा है। गो माता कामधेनु है। कामधेनु बननेका यदि किसी जन्तुको सौभाग्य मिला तो एक मात्र गो माताको। वेदने जिसको अघ्न्या नामसे याद किया है, उसको मारना पाप है। इसको मारना माँको मारनेके बराबर है। इसका मांस खाना अपनी माँको मार कर उसका मांस खानेके बराबर है। उसकी रक्षा न करना अपनी माताको संकटमें त्याग देनेके बराबर है; ऐसे पवित्र जन्तुकी उपेक्षा करना कोई बुद्धिमत्ता नहीं। उसके सारे देहमें देवताओं का वास है।

उत्तम गायको सुरभि कहा है। उसके देह भर से पद्मकी सी गन्ध आती है। उसके गोबरमें से भी गुलाबकी सी गन्ध आती है। उसके मूत्रमें सब तीर्थ हैं। उसका पान करनेसे सब रोग दूर होते हैं। कोढ़के से अपवित्र व्याधि दुःसाध्य रोगको एक गो मूत्र, स्नान द्वारा, दूर कर देता है। उत्तम बैलके मूत्रको सूंघ कर वन्ध्या स्त्री बाँझपनसे मुक्त हो जाती है। सहदेवने महाभारतमें कहा है कि मैं उन बैलोंके भी लक्षण जानता हूं, जिनका मूत्र सूंघ कर बन्ध्याके भी पुत्र पैदा हो जाते हैं।*

---

* येषां मूत्रमुपाघ्राय अपि वन्ध्या प्रसूयते।
—महा० विराटपर्व।

ऐसे गुणवान पशुकी परीक्षा आप सीखना नहीं चाहते ? आप अवश्य चाहते हैं । तो आइये कुछ गो परीक्षाका प्रकरण शास्त्रोंसे निकाल कर देखें और गो परीक्षाका रहस्य जानें । आप जानते हैं कि गाय दूध देती है । बैल हलमें लगते, गाड़ियोंमें जुतते और भार उठाते हैं, परन्तु संस्कृतमें दोनोंको गौ नामसे पुकारा जाता है। उन दोनोंकी ही परीक्षा कर लेना हमारा काम है। प्रथम गौओंकी परीक्षा ही करेंगे ।

आप किसी गौशालामें चले जाइये। वहां नाना रंगकी, छोटी बड़ी, लम्बी चौड़ी, मोटी ताजी, नांटी ऊंची, बूढ़ी जवान हर तरहकी गाय देखनेमें आवेंगी। परन्तु कौन कैसी है, कौन उत्तम है, कौन निकृष्ट, यह वही जानेगा, जो गो परीक्षाका अच्छा पण्डित होगा। कितनी लज्जाकी बात है कि हम भारतवासी आर्य सन्तान हो कर भी नागरिक होनेका अभिमान करते हैं और अच्छी बुरी गायके बारेमें कुछ भी नहीं जानते। यदि बहुत सूक्ष्म नहीं तो साधारण चिन्होंकी परीक्षा तो सीख लीजिये ।

प्राचीन कालमें पराशर मुनि गो शास्त्रके अच्छे विज्ञाता हुए हैं; उन्होंने बृहद्रथराजाको इस शास्त्रका उपदेश दिया था । उसीके अनुसार पीछे कतिपय आचार्योंने उसीका उद्धरण किया है। अस्तु आइये गोशालामें देखिये कैसी गौएं भरी हैं।

इधर यह गाय, कुछ रो सी रही है, इसकी आंखमें मैला कीचड़ अधिक आता है, यह गौ अच्छी नहीं है । इसको कोई रोग अधिक सताता है। इसको मस्तककी पीड़ा और भारी पन है। अतः इसका दूध भी उत्तम नहीं । यह गौएं आसू ढार गौएं कहाती हैं। इधर यह एक और गौ देखिये। इसको आँखे सूखी सी जान पड़ती हैं, यह भी शास्त्रकारोंकी दृष्टिमें उत्तम नहीं है । इसी तरह कई गौओंको देखिये कि उनकी आँख मूसेकी सी छोटी छोटी और चंचल और घूसरी सी हैं । यह भी अच्छी नहीं है। इसी प्रकार किसीका सींग हिलता है, किसीका सींग चपटा है; यह भी बुरा समझा गया है ।

यह देखिये एक गाय बड़ी भोली है। परन्तु इसके सींग हिल रहे हैं । इसके सींग मजबूत नहीं हैं। इस गायको यदि जंगलमें छोड़ दिया जाय तो आप ही मारे डरके सूख सूख कर मर जाय। फिर इसका दूध पीनेवालोंको धैर्य कैसे आ सकता है। ऐसी गौओंको अच्छा नहीं समझा जाता।

जिन गौओंका रंग बहुत ही लाल घुंघचीके समान होता है वह अच्छा नहीं होता। इसी प्रकार देखिये गौशालाके दखिनी कोने पर यह एक गाय खड़ी है, जिसके सींग और पूँछ छिपा देने पर देखें तो गधा सा खड़ा दीखता है। यह भी रंग उत्तम नहीं है। गाय काले रंगकी या बानरकेसे तेलिया या शरूदिया रंगकी या बिल्कुल श्वेत रंगकी उत्तम मानी गयी है। महाभाष्यकारने लिखा है "गवाँ कृष्णा क्षीरतमा" गौओंमें काली रंगकी गायें अधिक, उत्तम दूध देती हैं। कपिला गायका रंग शरूदिया होता है, उसका दूध बहुत मधुर होता है। वसिष्ठकी गाय कपिल रंगकी थी। उसीको पाटला रंग कहा गया है। उसके मस्तक पर श्वेत रोमका चन्द्र था। यह बहुत ही उत्तम लक्षण कहा गया है।

आप याद रखिये पुराणों और स्मृतियोंमें गौका बड़ा महात्म कहा गया है। इस गौशालामें भी देखिये, एक गाय उत्तरकी ओर खड़ी है। उसके पास चलिये, उसके गुण देखिये। वह कितनी शील स्वभावकी है। इस पर हाथ फेरिये। इसके रोमोंमेंसे एक बिजलीसी निकलती हुई प्रतीत होगी। आप याद रखें गौओंके शरीर पर हाथ फेरनेसे उनको प्यार करने और पुचकारनेसे ही बहुत से रोग शान्त हो जाते हैं। भविष्य पुराणमें लिखा है कि—

गवां कंडूयनं श्रेष्ठं तथाच प्रतिपालनं ।
तुल्यं गोघृतदानस्य भयरोगादि पालनम् ॥

"गौओंके शरीर पर खुजलाने और उनके पुचकारनेसे घृत दानके समान पुण्य मिलता है और भय नष्ट हो जाता है; रोगोंसे रक्षा होती है;" इसका यही अभिप्राय है। इन पर बराबर हाथ फेरनेसे इनके शरीर से विद्युत् निकलती है और उससे बहुत से रोग दूर हो जाते हैं।

कपिला गौके दस भेद शास्त्रकारोंने कहे हैं।

१. स्वर्ण कपिला, २. गौर पिङ्गला, ३. आशा, ४. अग्नि ज्वाला, ५. जुह वर्णा, ६. घृत पिङ्गला, ७. श्वेत पिङ्गला, ८. क्षीर पिङ्गला, ९. पाटला, १०. पुष्प पिङ्गला। यह सभी पाप हन्त्री और पापसे तारनेवाली हैं।

इनमें क्रमसे (१) स्वर्णकपिलाका रंग सोनेका सा पीला और भूरा मिला होता है। उसको सुनहरी गाय कहा जाता है। (२) गौरपिंगला कुछ धौली और कुछ पीली होती है। (३) आशा कुछ ललाई लिये होती है; उसको अग्निगर्भा भी कहा गया है। उसके देहमें आगकी सी कान्ति होती है। (४) अग्निज्वालाके सींग बड़े उज्ज्वल श्वेत या लाल होते हैं। उसकी आंख जलते कोयलेकी सी लाल, उसका मूत्रस्थान और मुखका थूथा (नाकका अगला भाग) आगका सा लाल रंगका होता है। (५) जुह्ववर्णा कुछ खाकी रंगकी होती है। (६) घृतपिंगलाका रंग गोघृतके समान हलका पीला होता है। (७) श्वेतपिङ्गला सर्वथा श्वेतता लिये होती है। (८) क्षीर पिंगला सफेद दूधके समान होती है। (९) पाटला सायंकाल सूर्य अस्त होते समय सन्ध्याके से रंगवाली होती है। (१०) पुष्पपिंगला वह होती है, जिसके शरीरपर पीले पीले चकत्ते होते हैं।

यदि रंगोंकी विशेष पहिचान न हो सके तो सदा नाकको देखना चाहिये। नाकका रंग ही विशेष मुख्य रंग समझा गया है।

इन दस प्रकारकी गौओंके अतिरिक्त प्रियपाठक वृन्द एक और प्रकारकी गायका वर्णन भी मैं करना चाहता हूं।

देखो इस हमारे गांवकी गोशालामें ५०० गायें हैं, यहां हर तरहके नमूने सहजमें मिल जाते हैं। रघुनाथ ग्वाला क्यों जल्दी दौड़ कर जा रहा है? क्या आप भी उसके इस शीघ्रताका कारण जानना चाहते हैं? अवश्य। यह कौतुककी सी बात है। अच्छा आइये देखें। और यह तो बड़ा अच्छा हुआ देखो यह पाटला गौ है इसके बच्चा हुआ चाहता है। पेटमें कुछ प्रसव वेदनासे गाय करवटें बदल रही है। कुछ दूरीपर खड़े होकर गायको देखिये; उसके गर्भाशयसे बच्चेने अगले पैर बाहर निकाल दिये और शनैः शनैः उसने अपना सिर भी बाहर कर दिया। अब वह गले तक बाहर निकल आया। यही गाय इस अवस्थामें द्विमुखी गौ कहाती है। इसके दानका शास्त्रोंमें बड़ा माहात्म्य लिखा है। आओ इसकी प्रदक्षिणा करलें, भविष्य पुराणमें लिखा है—

"कल्य उत्थाययो मर्त्यः कुर्यात्तासां प्रदक्षिणम्।
प्रदक्षिणी कृतातेन पृथिवीस्याद्वसुन्धरा॥"

जो प्रातःकाल उठकर गौओंकी प्रदक्षिणा कर लेता है; उसने मानों पृथ्वीको प्रदक्षिणा कर ली। यह तो साक्षात् कपिला अभी अपना पूरा बच्चा जन्म भी नहीं पाई, इस समय तो साक्षात् यह माता पृथ्वीके समान है। क्योंकि वहीं लिखा है—

यावत्पादौ योनिगतौ शिरश्चैव प्रदृश्यते।
तावद्गौः पृथ्वी ज्ञेया यावद् गर्भ न मुञ्चति॥
गौर्यावद्द्विमुखी चैव यदाभवति भारत।
सदासौ पृथ्वीज्ञेया स शैल वनकानना॥

—भविष्य उत्तर पर्व अ० १५८

जबतक बच्चेके पैर और मुख गर्भसे निकलते हुए गर्भ मार्गमें रहते हैं तब तक गोमाता पृथ्वीका रूप है। और तब तक ही जब तक बच्चा बाहर न आ जाय।

"जब तक गौ 'द्विमुखी' रहती है तब तक यह पृथ्वी शैल पर्वतों और जंगलों सहित पृथ्वी कहाती है।"

अच्छा यह देख लिया, चलो, यह एक प्रसंग-वश घटना हो गयी और शास्त्रकी भी एक उत्तम बातका पता लग गया। अब इन ग्वालोंको अपना काम करने दो। और हम और गौओंकी परीक्षा करते हैं।

इन गौओंके दांतोंमें भी बड़ा रहस्य होता है। इनके खुरोंमें भी बड़ा शुभाशुभ होता है। गौओंके मुखमें दस दांत होना अच्छा नहीं माना जाता। इसी प्रकार सात और चार भी अच्छे नहीं माने जाते। इसी प्रकार लम्बा मुख वाली पीठ, ठमकी मोटी गर्दन, यह सभी बुरे लक्षण कहे गये हैं। खड़े होते समय यदि गायके खुर फटें, दोनों जुदे जुदे बिखरे हुए मालूम हों तो यह भी लक्षण अच्छा नहीं है। ऐसी गायोंको खरीदनेके समय देख भाल कर लेना चाहिये। इस गौशालामें ऐसी कई गौवें हैं। उनका न बच्चा ही सुन्दर है और न दूध ही भरपूर देती हैं। उनको मानो तपेदिक सा सताये रहता है।

गायकी जीभ बहुत लम्बी या बहुत छोटी दोनों ही बहुत बुरी हैं। बड़ी जीभ वाली मैला खानेकी आदी होती हैं। छोटी जीभकी गाय बच्चे-को कम प्यार करती है। लोहेके से रंगकी जीभ भी अच्छी नहीं होती। इसी प्रकार जिनके खुरोंके ऊपरकी छोटी छोटी बद्खुरियां बहुत लम्बी होती हैं या बहुत छोटी होती हैं वह भी शीलस्वभावमें बहुत अच्छी नहीं होतीं। जिस गौके ककुद बहुत ऊंचा हो वह गाय मरखनी और कम दूध वाली होती है। ऐसी गाय कभी न लेनी चाहिये।

देखो, कई गायोंमें कोई अंग कम या कोई अधिक होता है। जैसे इस समीपवाली गायके तीन ही थन हैं और वह काली गाय जो परे खड़ी है उसके पांच थन हैं। वह पीली सी गाय इतनी बड़ी है, परन्तु उसके सींग ही नहीं। उसका कोई बच्चा जीवित नहीं रहा। ये सभी हीनांगा या अधिकांग गौएं कहाती हैं, परन्तु यह इनके शुभ लक्षण नहीं हैं।

यवमध्या गायका नमूना भी उत्तम नहीं होता। देखिये, आपके पीछे यह गाय कैसी है? इसका पेट बीचमें बहुत फूला है, थनोंका स्थान खाली है, छाती कमजोर और पेटकी अपेक्षा घेरेमें बहुत कम है; यह सब दोष यवमध्याके हैं। प्रायः ऐसी गायका बच्चा नहीं होता, होता है तो निर्बल ही मर जाता है। ऐसी गाय दूध नहीं देती। गाय वही उत्तम है, जिसका गलकम्बल खूब लटके, पूंछ खूब लटके, और ऊधस या दूधका थैला खूब भरा हो और जिसकी आंखोंसे प्रेम टपकता हो।

नक्षत्र-संसार

तारोंकी गति और दूरी

नक्षत्र संसारका मानचित्र सैकड़ों बर्षों तक ज्योंका त्यों ही दिखाई देता है। दूरबीनोंसे देखनेपर और भी अधिक चमकते तारे बिखरे हुए मालूम होते हैं। केवल चार्म चक्षुओंसे देखनेपर तारों की स्थिति अब भी वैसा ही दीखती है जैसी आजसे हज़ार वर्ष पूर्व उस कालके ज्योतिषी लोग देखते थे। तो भी तारे गति कर हो रहे हैं और उनकी स्थिति बराबर बदलती रहती है। तारोंकी गति और स्थिति और दूरताका विषय वस्तुतः बड़ा ही जटिल है, क्योंकि एक तो तारे बहुत ही अधिक दूर हैं; दूसरे उनकी गति या दूरता मांपने के लिए आकाशमें कोई स्थिर बिन्दु नहीं, जिसकी अपेक्षा गतिका निर्धारण किया जाय। लाखों करोड़ों तारोंमेंसे हमारा सूर्य भी एक तारा है और वह भी औरोंके समान आकाश मार्गका पथिक है, उसकी भी यात्राका कुछ ठीक ठीक ज्ञान नहीं है।

पृथ्वीकी वार्षिक गतिसे ही नक्षत्रोंकी स्थितिमें बहुत कुछ परिवर्तन हर मास दिखाई पड़ते हैं। परन्तु मानव बुद्धि उन परिवर्त्तनोंसे खूब अच्छी तरह परिचित है। पुराने भारतवर्षीय बहुत अच्छी तरह जानते थे कि जेठमें कृत्तिका नक्षत्र सूर्योदयके पूर्व उदित होता है। उसीको देखकर उनके वसन्त कालिक दस्त चेतते थे। यूनानमें प्राचीन यूनानी इस ऋतुमें समुद्र यात्रा प्रारम्भ करते थे। इसीलिए भारतवर्षीय विद्वान कृत्तिकाको अग्नि देवताका नक्षत्र मानते हैं और यूनानी वरुण देवताका। कई एक जातियाँ कार्तिक मासमें कृत्तिका नक्षत्रको सूर्यास्तके बाद ही उगता देखकर अपनी खेती आदि बोना शुरू करते थे। इसीसे वह उस समयमें बड़े प्रसन्न होते थे। बहुत से ज्योतिषी तारों और ग्रहोंकी विशेष स्थितिको ही देखकर मानव समाजका भाग्य निर्णय किया करते थे। इसी आधारपर फलित ज्योतिषका उद्भव हुआ है। सचमुच ईश्वरीय सृष्टिमें अनन्त आकाश पटलपर नक्षत्र और ग्रह ऐसे नियम और व्यवस्थासे घूम रहे हैं कि उसको देखकर बुद्धि चकरा जाती है। ग्रहोंका ठीक समयपर नियत नक्षत्रोंपर प्रकट होना और नियत कालके बाद भिन्न भिन्न मार्गोंसे गति करना इतना सुव्यवस्थित है कि मानव चक्षुने नक्षत्रोंको ही अपने काल ज्ञानका विशाल यन्त्र माना है। इसी महायन्त्रके आविष्कारसे सभ्य और असभ्य जातियोंमें आसमान पातालकासा अन्तर हो गया है। इसी काल ज्ञानके आधारपर पुरानी जातियोंने अपने आहार विहारको नियमित करके जातीय जीवनको संगठित कर रखा था। अज्ञानमय जीवनपर ज्ञानमय जीवनकी यही बड़ी भारी विजय है अर्थात् यही देवोंकी असुरोंपर विजय है। पुराण कर्ताओंने कदाचित इसी विचारसे इस महान नक्षत्र चक्रको जगन्नाथ (अथवा महादेव) के रथका चक्र माना है। इस विशाल रथका निर्माण जगन्नियन्ता विश्वकर्माने किया था। इसीपर चढ़ कर शिवने दैत्योंके त्रिपुर—लोहे चांदी और सोनेके बने तीन गढ़ों—का विजय किया था। कदाचित लोहेके बने शस्त्रास्त्रों और सोना चांदीके, लक्ष्मीके, मदमें फँसे हुए ऐश्वर्यशाली देशकालका विचार छोड़ मनमाना अन्धेर करते हों और बादमें विवेकशील विद्वानोंने नक्षत्रोंके आधार पर काल व्यवस्था करके उस महा अन्धेरको हटाया हो तो क्या आश्चर्य है। दूसरे कथाकार नक्षत्र चक्र (कालचक्र) को विष्णुका सुदर्शन चक्र कहते हैं। अस्तु, इन सब प्राचीन कल्पनाओंको छोड़ कर आज कलके सिद्धान्तोंकी स्थापना दर्शाते हैं।

तारोंकी गतिका ज्ञान बहुत पहले जमानेसे चला आता है तो भी नये आविष्कारोंने बहुत अधिक चमत्कार दर्शाया है। तारोंकी निजी गति (Proper motion) का निर्णय करना भी एक जटिल समस्या है; क्योंकि स्थितिका परिवर्त्तन इतना कम दीखता है कि मापना भी कठिन है, पर वास्तविक गति कई लाखों मीलोंकी हो चुकती है। इसलिए तारोंकी गतिकी नाप कोण मिति (Angular Measurment) के आधार पर की जाती है। इस नाप विधिसे दृष्टि रेखासे तारेका विचलन नाप लिया जाता है; पर कठिनता यह है कि यदि तारेकी दूरीका ही पता न हो तो कोण ज्ञानसे तारेकी गतिका कुछ अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

दूसरी कठिनता यह है कि हमारा सूर्य भी अपने परिवार सहित आकाशमें दौड़ लगा रहा है। इससे गणना करना और भी कठिन हो जाता है। महाशय कृम्ब्रिजने सप्तर्षि मण्डलमें एक छोटे से तारेका पता लगाया है, जिसकी गति बहुत अधिक पायी गयी है। वह प्रति वर्ष सात विकला अपने स्थानसे हट जाता है। गणनासे ज्ञात हुआ है कि यह तारा २३२ मील प्रति सैकंडके वेगसे गति कर रहा है। इससे भी अधिक वेगसे अपने रास्ता तय करनेवाले दो तारे और भी जाने

गये हैं। एक तो काश्यपीय मण्डलमें पांचवीं दीप्तिका तारा है जो ३०५ मील प्रति सैकेन्ड भागता है। दूसरा स्वाती नक्षत्र (भूतेश एल्फा) है, जो भूतेश मण्डलका सबसे अधिक उज्ज्वल तारा है। वह ३७५ मील प्रति सैकेन्डके वेगसे आसमानी राह नाप रहा है। काश्यपीय मण्डलके तारेकी कोणिक गति (Angular motion) ३·२५ विकला है और स्वातीकी २·३ विकला है और यह दोनों ही तारे सप्तर्षि मण्डलके तारेसे कई गुना दूर हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि तारोंकी निजी कोणिक गति आपेक्षिक है। उसके ठीक ठीक ज्ञानके लिए उसकी दूरीका ज्ञान आवश्यक है। निरीक्षणसे सिद्ध हुआ है कि बहुत से चमकते तारोंकी कोणिक गति बहुत अधिक है। फलतः वह तारे हमारे बहुत पास हैं। अर्थात् तारा जितना अधिक समीप होगा उतनी ही कोणिक गति अधिक होगी। कई इसके अपवाद भी हैं। ८३ तारे ऐसे पाये गये हैं, जिनकी गति प्रतिवर्ष १ विकला है, पर जिनकी निजी गति बहुत अधिक है।

तारोंका मध्यम और उज्ज्वल प्रकाशसे चमकना भी बड़ा भ्रमजनक है। क्या मध्यम तारे हमारे अधिक समीप हैं? क्या उनकी गति बहुत अधिक है। क्या ज्यों ज्यों तारे हमसे अधिक दूर होते जाते हैं उनकी गति भी अधिक होती जाती है? या कोई तारोंका ऐसा अपरिचित वर्ग है जो मध्यम होनेके साथ साथ वेगमें भी बहुत अधिक है?

वस्तुतः यह बात नहीं है। इन सभी बातोंके अपवाद मिलते हैं। तो भी साधारणतः यह निश्चित है कि अधिक चल तारे हमारी पृथ्वीके अधिक समीप हैं। और स्थिर तारे बहुत दूरीपर विद्यमान हैं। इसी प्रकार उज्ज्वल अधिक समीप हैं और मध्यम बहुत दूर। उपरोक्त तीनों तारे दूर्बीनसे दिखाई देते हैं और तीनों ही क्रमसे ७,६,७ विकला गतिवाले हैं। इसके विपरीत लुब्धक बहुत ही अधिक विचलित होता है। महर्षि मण्डलका जय, शनि मण्डलका प्रभाव, भूतेशका स्वाती, यह सब ही अत्यन्त उज्ज्वल तारे हैं। और इनका वार्षिक कोणिक विचलन भी बहुत अधिक है। इनमें सबसे अधिक विचलित होने वाला तारा महर्षि मण्डलका जय है, जो प्रतिवर्ष ३·५ से भी अधिक हिल जाता है। यही तारा पृथ्वीसे सबसे अधिक समीप है। इसकी निजी गति साढ़े चौदह मील प्रति सेकंड है। लुब्धक भी हमारे काफ़ी पास है। वह दश मील प्रति सैकन्ड चलता है। इन सबका अपवाद स्वाती है, जो उज्ज्वल तम होता हुआ भी बहुत अधिक विचलित होता है, और बहुत अधिक दूरीपर विद्यमान है।

तारेका विचलन दूरबीनसे तभी स्पष्ट जाना जा सकता है जब उसकी गति दृष्टि रेखाको काटती हुई हो। यदि दृष्टि रेखापर तारा आगे पीछे हट रहा है तो ऐसी दशामें तारेकी गति पहचाननेमें दूरबीनका यंत्र सर्वथा असमर्थ है।

(असमाप्त)

—पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार

भीमसेनी कीट

छ काल पहले बड़े विस्मय जनक परीक्षण किये गये हैं, जिनसे भिन्न भिन्न प्रकारके पशुओं और कीटोंकी शक्तिको जाँचा गया है। उनसे बड़े ही आश्चर्य जनक परिणाम निकले हैं। मनुष्य और घोड़ा अपने भारसे पांच गुना खेंच सकता है। एक इल्ली या पत्राहारी लारवा (कैटर पिलर) को एक खिलोनेपर ४६५ ग्रेन रखकर जोत दिया गया उसने अपने से २५ गुना भार खेंच लिया। 'ब्लोफ्लाई' का भार एक ग्रेन होता है। उसको १७० ग्रेन भारवाले एक खिलोनेमें जोत दिया गया। वह उसे मजेमें

खेंच ले गयी। वह अपनेसे १७० गुना खेंच सकती है। बीटिल या गुबरीला नामका कीट प्रायः मल या गोबरके गोले बना बना कर अपने उलटे पैरों-से ढकेला करता है। उसको भी इसी प्रकार भार-में जोता गया; वह अपनेसे १८२ गुना भार खेंच ले गया। वम्बल मक्खी अपनेसे ३०० गुनाभार खेंच लेती है। इन सभीसे बढ़कर ईर विगकी मक्खी है, जो तोलमें आधे ग्रेन होती है, पर उसने एक छोटे खिलोनेमें जुतकर २६५ ग्रेनका भार खेंच लिया अर्थात् अपनेसे ५३० गुना भार खेंच लिया।

सचमुच इस अद्भुत संसारमें देहधारी-का देह एक विचित्र यन्त्र है। पर आनन्द यह है कि जो आत्मा बिल्कुल भार वाला नहीं वह कीट पतङ्गोंके देह भारसे लेकर हाथी और ह्वेल तकके भारोंको उठाता है। इस विशेष विज्ञान का रहस्य भारतीय योगियोंके हाथमें था। इसकी साधना कर लेने पर ताड़कामें १० हजार हाथियों का बल था। वह एक उस जातिकी औरत थी, जिसके अब तिब्बत निवासी लामा लोग हैं। उसी जातिके नर वीर रावणने कैलाशको उठाया। उसके समकालिक वानर जातिके वीर हनूमान निषध पर्वत उखाड़ कर हवामें उड़े और उसी जातिके वीरोंने सेतुबन्धन किया। फिर महा-भारत कालमें भीमसेनके फेंके हाथी आज तक नहीं लौटे। उन्हींके अवशेष हम लोगोंको आज खद्दरका कपड़ा भी बोझ लगता है।

मक्खीकी उड़ान

साधारण मक्खी दिनभरमें प्रायः ६ मील उड़ लेती है।

पहाड़ीका संहार

अमेरिकाके वैज्ञानिक यान्त्रिकोंने ब्राजिलमें रायोडे जू विरोमें अगली शत वार्षिक प्रदर्शनीके लिए एक अद्भुत चमत्कार प्रस्तुत करनेकी तय्यारी की है। उन्होंने बन्दरगाहमें से कास्टेलो मोरो नामकी पहाड़ीको जड़ मूलसे उड़ा दिया है। यह पहाड़ी नगरके बिलकुल बीचमें खड़ी थी। यद्यपि यह बड़ी सुहावनी थी तो भी लोगोंका कथन था कि इस पहाड़ीके रहनेकी अपेक्षा उड़ जानेसे जो स्थान निकल आवेगा उससे बड़े आर्थिक लाभ होंगे। उस पहाड़ीको हटाकर वहां ही प्रदर्शिनीके लिए पर्याप्त स्थान निकाला गया। इसके अतिरिक्त वहां बड़ी बड़ी इमारतों और नगरकी बस्तीके लिए कितने ही एकड़ भूमि निकल आयी।

उस पहाड़ीको उड़ानेके लिए जलधाराका प्रयोग किया गया था। जलधाराके बलसे उस पहाड़ीको मक्खनके समान काट काट कर बहा दिया। सारा पहाड़ पानीमें मट्टीके समान कीचड़ बना बना कर समुद्रमें बहा दिया गया और व्यय भी बहुत अधिक नहीं पड़ा। यदि उसको भालो कुदालों और बारूदसे उड़ाकर गाड़ीपर लाद लाद कर उसका मलबा उठाते तो यह कार्य असम्भव हो जाता है।

विद्युत् धाराका स्वाद

साधारण सूखी बैट्रीके तारोंके सिरों पर यदि आप हाथसे स्पर्श करें तो आपको कदाचित् कुछ भी मालूम न हो, क्योंकि वहां धारा बहुत ही मन्द होती है। पर तो भी वैद्युतिक घण्टी उससे भी बज जाती है। तारोंके सिरोंको मिला-कर यदि जीभपर धरलें तो आपको उनका खट्टा सा स्वाद आवेगा। यदि तारोंका बैटरीसे सम्बन्ध तोड़कर उनका स्वाद लें तो आपको विद्युत् धारा-के स्वादमें भेद स्पष्ट हो जायगा। यह वही तेजाब का सा स्वाद है जिससे यह पैदा होती है। आप इस परीक्षणको भूलकर भी कभी बड़ी प्रबल बैट-रीके तारोंसे न करें। उससे स्वादसे भी कुछ अधिक मिल जायगा।

अँधेरी कोठरी

(गतांक से आगे)

[ले०—श्री० "लिट हन"]

१६—तश्तरी इत्यादि

ऊपर हम देख चुके हैं कि श्वेत प्रकाशको भीतर आनेसे पूर्णतया रोक कर किसी कोठरीको हम कैसे अँधेरी कोठरी बना सकते हैं और इसमें लाल प्रकाशके लिए क्या प्रबन्ध कर सकते हैं।

अब हमको यह देखना है कि किन वस्तुओंकी और आवश्यकता है। सबसे अधिक आवश्यकता तश्तरियोंकी है। फोटोग्राफीके लिए विशेष तश्तरियां बनती हैं। यह चौकोर और प्लेटकी नापसे केवल आध इंच या एक इंच बड़ी होती हैं। यह चीनी मट्टी; ज़ाइलोनाइट (xylonite); लुक, जापान या एनामेलसे रँगा हुआ टीन, कागज़की लुग्दी, या 'ताम चीनी' (enamelled steel) की बनी होती हैं। सबसे अच्छी और बहुत दिन चलनेवाली तामचीनीकी तश्तरी होती है। यह लोहेके चद्दरकी बनी होती है और इनपर एक प्रकारका ऐसा एनामेल (enamel) पिघला कर चढ़ाया रहता है कि यह ऊपरसे देखनेमें चीनी मट्टीके समान लगती है। यदि ठोकर खानेसे इसका एनामेल उखड़ने न दिया जाय तो एक तश्तरी जन्म भर चल सकती है, पर यह मंहगी मिलती है।

चीनी मिट्टीकी तश्तरियां भारी होती हैं और उनके टूटनेका अधिक भय रहता है। इनका पेंदा बिलकुल समथर नहीं रहता और इनपर जो चमकीली वस्तु चढ़ी रहती है वह कुछ दिनोंमें चटख जाती है। यह तश्तरियाँ अधिकतर केवल हैपोके घोल रखनेके काममें आती हैं। ज़ाइलोनाइटकी तश्तरियां सस्ती और बहुत हल्की होती हैं। सँभाल कर काम करनेसे यह भी बहुत दिन चलती हैं और यदि तामचीनीको तश्तरी नहीं मोल लेना चाहते हैं तो आपको ऐसी ही तश्तरियोंके लेनेमें सुभीता होगा। लुकसे रंगी हुई तश्तरियां बहुत दिन नहीं चलतीं, क्योंकि उनका रंग थोड़े ही दिनोंमें उखड़ने लगता है और मुर्चा लगनेके कारण वह शीघ्र ही बेकाम हो जाती हैं। ऐसी तश्तरियोंको फोटोग्राफर स्वयं बना सकता है या बनवा सकता है। यद्यपि ऐसी तश्तरियां पहले सस्ती पड़ती हैं, पर अन्तमें यह महँगी ही पड़ती हैं।

कार्य्य आरम्भके लिए दो तश्तरियाँ आपके प्लेटके नापकी अवश्य चाहियें। यदि आप और भी तश्तरियां रख सकें तो अच्छी बात है। यदि आप क्वार्टर-प्लेटों[1] का प्रयोग करते हैं तो क्वार्टर-प्लेटकी दो तश्तरियां अवश्य चाहियें। यदि आप दो तश्तरियां हाफ-प्लेट[2] नापकी और दो होल-प्लेट[3] नापकी रखें तो आप दो या चार प्लेट एक साथ ही डेवेलप कर सकेंगे। यह तश्तरियाँ एनलार्जमेन्ट बनाते समय भी काम देंगी। पर यदि आप बड़े बड़े एनलार्जमेन्ट भी बनाना चाहेंगे तो आपको दो तश्तरियाँ १५ × १२ इंचकी भी रखनी चाहियें*।

हैपोके घोलमें डेवेलप किये हुये प्लेटोंको रख कर उनको स्थायी (fix) करनेके लिए विशेष टंकी बिकती है। इनमें बारह प्लेट एक साथ ही खड़े रखे जा सकते हैं और स्थायी किये जा सकते हैं। एक दर्जन या अधिक प्लेटोंको साथ धोनेके लिए भी यंत्र मिलते हैं और एक प्रकारकी ऐसी टंकी (developing tank) भी बिकती है, जिसमें १२ बिना

---

१ इसकी नाप ३¼ × ४¼ इंच है।

२ इसकी नाप ४¾ × ६½ इंच है।

३ इसकी नाप ६½ × ८½ इंच है।

* बड़ी तश्तरियोंको सस्तेमें बनानेकी रीति एनलार्जमेन्टके सम्बन्धमें दी जायगी।

डेवेलप किये गये प्लेटोंको रख सकते हैं। इसको बन्द करनेके बाद अँधेरी कोठरीके बाहर निकल सकते हैं और तब इसके एक छेद्को खोल उसमें डेवेलपर छोड़ कर और छेद्को बन्द करके इन बारह प्लेटोंको एक साथ ही डेवेलप कर सकते हैं। परन्तु नौसिखों-को इन सब यंत्रोंके मोल लेनेकी सम्मति हम कभी न देंगे। उनको चाहिये कि वह पहिले एक एक प्लेट को अलग अलग डेवेलप करें और योग्यता और अनुभव प्राप्त करने पर विचार करें कि हम इन यंत्रोंसे लाभ उठा सकेंगे कि नहीं। जब उनको विश्वास हो जाय कि यह उनके लिए उपयोगी होंगे तब वह इनको मोल ले सकते हैं, अन्यथा, नहीं।

ड्राइङ्ग-रैक (Drying-rack) पर नेगेटिव सूखनेके लिए रखे जाते हैं। इनको हम आवश्यक नहीं समझते। बहुत कम फोटोग्राफर इनका प्रयोग करते हैं।

१७—अन्य सामान

तरल पदार्थ नापनेके लिए एक मापक (measure glass) की भी आवश्यकता पड़ेगी। एक मापक दो औंस (ounce) का चाहिये। (चित्र १) इससे दो औंस या कम नाप सकेंगे। हैपोके घोलको नापनेके लिए एक छोटा ग्लास दो तीन औंस तक पानी अँटने योग्य चाहिये। इस पर १ औंस और २ औंसका चिन्ह रेतीसे बना सकते हैं या योंही अंदाज़ कर सकते हैं। यदि आप ऐज़ोल (Azol) या अन्य कोई बना बनाया तरल डेवेलपरका प्रयोग करना चाहते हैं तो एक बहुत छोटे मापककी भी आवश्यकता पड़ेगी। (चित्र २) इससे जितने मिनिम (minim) चाहें उतने नाप सकते हैं और उसमें कुल ६० मिनिम या १२० मिनिम अँटता है। इस दशामें दो औंसवाले मापककी उतनी आवश्यकता नहीं है। हैपोके घोलके लिए जैसा ग्लास रखनेके लिए कहा गया है वैसा ही ग्लास डेवेलपरके लिए भी रख सकते हैं। जो लोग टिकियोंके रूपमें बने डेवेलपरका प्रयोग करते हैं वह बिना किसी
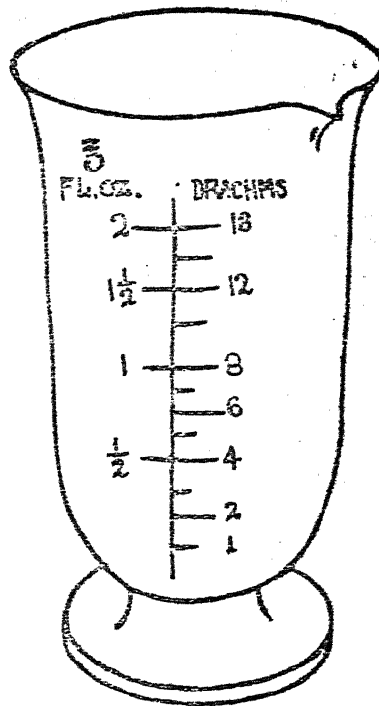
चित्र—१

मापकके ऊपर के ग्लाससे ही काम चला सकते हैं। इसके चिन्होंको एक दम ठीक स्थानपर रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, आवश्यक बात केवल यही है कि प्रत्येक बार उतना ही जल लिया जाय। जो लोग अधिक व्यय कर सकते हैं वह सुभीतेके लिए
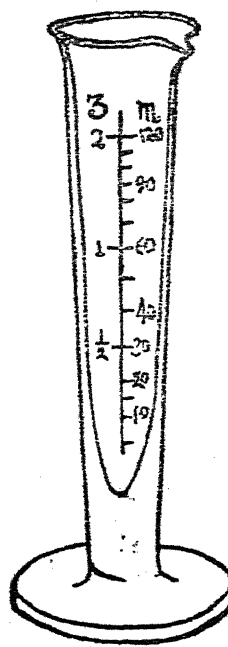
चित्र—२

कई एक मापक भिन्न भिन्न नापके मोल ले सकते हैं। वह शीशेकी बनी एक कीप (Funnel) भी ले लें तो अच्छा है। ऐसे लोग इन मापकों और तश्तरियोंको स्वच्छ रखनेके लिए ब्रश (Brush) भी मोल ले सकते हैं। तश्तरियाँ तो बिना ब्रश के भी साफ़ हो सकती हैं, पर उन मापकोंके लिए जो इतने सँकरे होते हैं कि उनमें अंगुली नहीं जा सकती ब्रशकी विशेष आवश्यकता पड़ती है। प्रतिदिनके काममें आने वाली दतवन इस कामके लिए भी बड़ी अच्छी

है। अवश्य ही, पहिले उन्हें कूँचनेका कष्ट उठाना पड़ेगा।

यदि आप स्वयं अपने डेवेलपरको तैयार करना चाहते हैं तो आपको एक तराजू (काँटा) और बांटकी भी आवश्यकता पड़ेगी। स्वदेशी काँटे जैसा कि सुनार लोग सोना इत्यादि तोलनेके लिए रखते हैं विलायती काँटोंसे बहुत अच्छे होते हैं और इनके दाम भी कम होते हैं। एक छोटा कांटा मोल लीजिये, जिस पर चार पाँच तोले तक तोला जा सके। बाटोंमें ½, १, २, ५, १०, २०, ३०, ६०, १२० ग्रेनके बांटोंको रहना चाहिये। इनको फोटोग्राफर स्वयं बना सकता है। स्मरण रखना चाहिये कि एक रुपया १८० ग्रेन भर होता है।
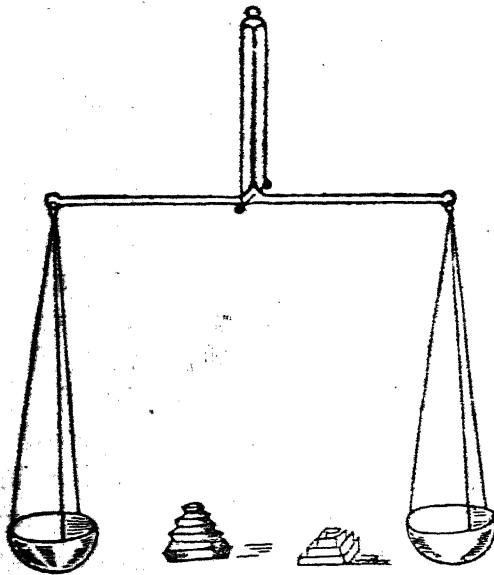
चित्र—३

१८—थर्मामेटर या ताप मापक

जो डेवेलप करनेकी सबसे सरल और अचूक रीतिका प्रयोग करना चाहते हैं उनको एक थर्मामीटरकी भी आवश्यकता पड़ती है। फोटोग्राफीका कार्य एक सादे थर्मामीटर (Thermometer) अर्थात् ताप-मापक यंत्रसे भली भाँति चल सकता है। इसको १२०° फा. तककी गर्मीको नाप देना चाहिये। ऐसा ताप मापक फोटोग्राफीके सामान बेचनेकी किसी अच्छी दूकान पर तीन चार रुपयेमें मिलेगा। स्मरण रखना चाहिये कि बुखार नापनेके ताप-मापक (Clinical thermometer) से काम नहीं चल सकता। जो चाहे वह थर्मामीटर बिना भी अच्छी तरह काम कर सकता है। जिन्होंने कभी ताप-मापकसे काम नहीं किया है उनके सुभीतेके लिए इसका संक्षिप्त वर्णन और इसके प्रयोग करनेकी रीति नीचे लिखी जाती है।

शीशेकी नली कख (चित्र ४) के एक किनारे पर एक पतली दीवारका एक खोखला भाग बनाया रहता है। नलीका छेद बहुत पतला और सब स्थानमें एकही व्यासका होता है। खोखले भागमें, जिसको बल्ब (Bulb) कहते हैं और नलीके नीचेके भागमें पारा रहता है। नलीके शेष भागसे हवाको निकाल कर उसका ऊपरी सिर शीशेको पिघला कर बन्द कर देते हैं। नली पर बराबर चिन्ह बना रहता है और इन चिन्हों पर गिनती लिखी रहती है। बाज़ ताप-मापकोंमें पतली छेदवाली नलीके पीछे कागज़ लगा रहता है और इसी पर चिन्ह इत्यादि रहते हैं। नली और कागज़की रक्षाके लिए इनके ऊपरसे दूसरी नली रहती है। बात एक ही है, चाहे कागज़ पर चिन्ह हो चाहे शीशे पर।

चित्र—४

गरमी लगनेसे पारा फैलता है और इसलिए ऊपर चढ़ता है। ठंडकसे पारा सिकुड़ता है और इस लिए पारा नीचे उतरता है। पारेका सिरा जिस चिन्ह तक पहुंचे उस चिन्हकी गिनती उस द्रव्यका ताप-क्रम बतलाता है, जिसमें ताप-मापकका बल्ब है; जैसे कि यदि हम बल्बको बर्फके चूरमें गाड़ दें

तो देखेंगे कि पारा नीचे गिरता है और थोड़े समयके बाद स्थिर हो जाता है। जिस चिन्ह पर पारे का सिरा पड़ता है उसकी गिनती ३२ है। हम कहते हैं कि बर्फके चूरेका तापक्रम ३२ डिगरी फारेनहैट है और संक्षिप्त रूपसे इसको इस प्रकार लिखते हैं—३२° फा.। यदि खौलते पानीमें ताप-मापकको रखें तो देखेंगे कि पारा ऊपर चढ़ता है और लगभग २१२ गिनतीवाले चिन्ह पर जाकर स्थिर हो जाता है। हम कहते हैं कि खौलते पानीका तापक्रम २१२° फा. है। तापक्रम की इस प्रकारकी मापको फारेनहैटने पहले पहल प्रचलित किया था, इसीसे उनका नाम इसके साथ अभी तक लगाया जाता है। दूसरे प्रकारकी गणना भी हैं, जिसमें बर्फका ताप-क्रम ०° (शून्य) और खौलते पानीका १००° या ८०° होता है, पर उनसे यहां कुछ प्रयोजन नहीं। हम लिखते हैं कि फारेनहैट ताप-मापक पर ३२° से लेकर २१२° तकके भागको १८० बराबर भागोंमें बाँटा गया है। और इनकी गिनती जाननेके लिए कई एक चिन्होंके सामने गिनती लिखी गई है। ताप-मापकके प्रयोग करनेकी रीति अब स्पष्ट हो गई होगी। जिस घोल इत्यादिका तापक्रम जानना हो उसमें ताप-मापकके बल्बको डुबो दीजिये। पारेके स्थिर हो जानेपर देखिये कि इसका सिरा किस गिनती पर है। यही गिनती ताप-क्रमको बतलाती है। यदि आपका ताप-मापक १२०° फा से अधिक ताप-क्रमको नहीं बतलाता तो विशेष रूपसे ध्यान रखिये कि आप इसको किसी ऐसे पदार्थमें न छोड़ दें जिसका ताप-क्रम १२०° से अधिक हो, नहीं तो यह टूट जायगा। अर्थात् जो वस्तु हाथोंको गरम जान पड़े उनके लिए ऐसे ताप-मापकका प्रयोग नहीं करना चाहिये। इसी कारण इसको कभी धूपमें भी न रखना चाहिये। किसी भी ताप-मापकको खूब गर्म वस्तुसे एकाएक न छुवा देना चाहिये; ऐसा करनेमें इसके चटख जानेका भय रहता है।

१६—घड़ी

एक घड़ीकी भी आवश्यकता पड़ेगी। बिना इसके कामका चलना कठिन है। किसी प्रकारकी घड़ीसे भी काम चल सकता है, पर उन लोगोंको जो वाटकिन्स (Watkins) की गुणन-रीति (factorial method) से डेवेलप करना चाहते हैं ऐसी घड़ी चाहियें, जिसमें सेकन्ड बतलाने वाली सुई भी लगी हो। ब्रोमाइड कागज़के प्रयोग करनेवालोंके लिए भी ऐसी ही घड़ीकी आवश्यकता पड़ती है। कई एक घड़ियां विशेष करके अँधेरी कोठरीके लिए बनी होती हैं। इनमें सबसे बड़ी और खूब चौड़ी सुई सेकन्डवाली सुई होती है और यह घड़ीके केन्द्रसे निकली हुई कीलीपर घूमती है (। चित्र ५)। मिनटवाली सुई भी इसी प्रकार
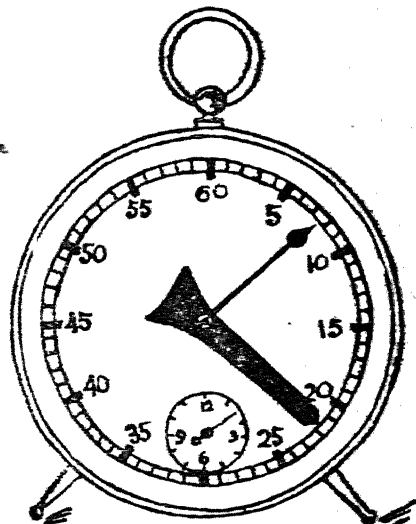
चित्र—५

लगी रहती है, पर यह सेकण्डवाली सुईसे पतली होती है। घंटेवाली सुई बहुत छोटी होती है और यह उस स्थानमें लगी रहती है, जिस स्थानमें साधारण घड़ियोंमें सेकण्डवाली सुई लगी रहती है। बाज़ घड़ियोंमें यह होती भी नहीं। कुलका उद्देश्य यही है कि बहुत धीमे प्रकाशमें भी मिनट और सेकन्डका ज्ञान सुगमतासे किया जा सके।

अच्छी घड़ियोंको इच्छानुसार चलाने और रोकने-का भी प्रबन्ध रहता है। चलानेके बाद जितने मिनटपर हम चाहें ठीक उतने ही मिनटपर अलार्म (alarm) अर्थात घंटी बजे इसका भी उचित प्रबन्ध रहता है। कुछ घड़ियोंमें एक एक मिनटपर घंटी बजती है। इस प्रकारकी घड़ी रहनेसे बिल्कुल अँधेरेमें काम करना सरल है। ऐसी घड़ीसे ब्रोमाइड कागज़के प्रयोग करनेमें भी सुगमता होती है। इन घड़ियोंका दाम पच्चीस तीस रुपयेसे कम नहीं होता, इसलिए इनके मोल लेनेकी सम्मति हम आपको नहीं देंगे। हां यदि आप धनी हैं तब तो बात ही दूसरी है।

लगभग सब सामान ऊपर बतला दिया गया है। इसके सिवा शीशेकी छड़का टुकड़ा रासायनिक पदार्थोंके घोलनेमें सहायता देनेके लिए हो तो अच्छा है। फोटो छापते समय छापनेके चौखटे (printing-frame) की भी आवश्यकता पड़ेगी इसका भी एक नग मोल ले लीजिये। तीन चार हों तो सुभीता होगा।

प्लेट, कागज़ और रासायनिक पदार्थोंके बिना तो कुछ हो ही नहीं सकता। नौसिखे बहुधा इसके जाननेके बहुत इच्छुक होते हैं कि कमसे कम दाम कितने चाहियें कि वह फोटोग्राफी आरम्भ कर सकें। उनके लिए इसका हिसाब नीचे दे दिया जाता है।

२०—फोटोग्राफी आरम्भ करनेके लिए कितने दाम की आवश्यकता है?

यदि कैमरा क्वार्टर प्लेट नापका है तो

१	कैमरा मूल्य २०) से लेकर २०००) तक	
२	तश्तरी (ज़ाइलोनाइट की)	१॥)
१	फोटो छापनेका चौखटा	१॥)
१	तरल पदार्थ मापक	॥)
१	ग्लास	।)
१	बत्ती डेवेलपरके टिकियों की	१॥।)
१	पाव हाइपो (hypo)	।)
१	बक्स प्लेट	२॥)
१	गड्डी फोटोका कागज	१)
	अंधेरी कोठरीके बनानेके लिए मैं लाल प्रकाशके प्रबन्धके	२)
		११॥)

इस प्रकार कैमरेको छोड़ शेष सामानके लिए १२) काफी हैं। हमने मान लिया है कि आपके पास एक घड़ी पहले से ही है। हम आपको एक अच्छा कैमरा मोल लेनेकी ही सम्मति देंगे। इसके लिए आप अपने पूरे शक्ति भर व्यय कीजिये। यदि आप स्वयं कुछ काम कर सकते हैं तो ऊपर लिखे सामानके लिए १२) के बदले आपका काम आठ दस ही रुपयेमें चल जायगा। यदि आपका कैमरा क्वार्टर प्लेटसे छोटी नापका है तो इसमें भी कम दाममें आप काम आरम्भ कर सकते हैं। वेस्ट पाकेट ($1\frac{5}{8} \times 2\frac{1}{2}$ इंच) कैमरेके लिए १ पुलिन्दा फ़िल्म केवल रुपये सवा रुपयेमें मिल जायगा। इस नापका बक्सनुमा कैमरा भी केवल १०) में मिल सकता है।

२१—मेज़ इत्यादि

ऊपर अँधेरी कोठरीके विषयमें लिखते समय मैंने मेज़ इत्यादिका कहीं भी वर्णन नहीं किया है और ऐसा मैंने जान बूझ कर किया है। हम लोगोंको इन वस्तुओंकी उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी कि पतलून पहननेवाले और ठंढेके रहनेवाले विदेशियोंको। परन्तु इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि इनके रहनेसे हम लोगोंको भी बहुत सुभीता होता है। इसलिए जो इतना व्यय कर सकते हैं उनको मेज़ इत्यादि अवश्य रखना चाहिये। अँधेरी कोठरीमें पानीकी बहुत आवश्यकता पड़ती है। इसलिए लोग इसमें पानीका कल लगवा लेते हैं। इसमें बहुधा एक विशेष प्रकारकी टोंटी (tap) लगी रहती है (चित्र ६) जब घूमने वाले भागको घुमाकर दीवारसे सटा देते हैं तो पानीका आना बन्द हो जाता है। कभी कभी इसका सिरा पलटा जा सकता है।

एक ओर फव्वारा या हज़ारा लगा रहता है और दूसरी ओर सादी टोंटी लगी रहती है। फव्वारेसे प्लेट, तश्तरी इत्यादि धो सकते हैं। और सादी टोंटीसे बोतल इत्यादिमें पानी भर सकते हैं। सिरे

चित्र ६—टोंटी

को घुमा कर चाहे फव्वारेको, चाहे सादी टोंटीको, काममें ला सकते हैं। अधिकतर केवल फव्वारा ही रहता है और एक सादी टोंटी अलग लगी रहती है।

पानीके बह जानेके लिए भी उचित प्रबन्ध चाहिये। इसके लिए कलके नीचे एक हौज़ (sink) लगा रहता है। इसके पेंदेमें एक छेद होता है; जिसमें एक पाइप (pipe) या नली लगी रहती है और जिसके द्वारा बेकाम जल बह कर अँधेरी कोठरीके बाहर निकल जाता है। इस नलीमें एक दो मोड़ अवश्य रहते हैं, जिससे इसके द्वारा प्रकाश भीतर न आ सके। यह हौज़ स्वच्छताके विचारसे अधिकतर सस्ते मेलकी चीनी मट्टीका बना रहता है। पर इसमें एक अवगुण यह होता है कि यदि इस पर कोई बोतल या ग्लास गिर पड़े तो अवश्य टूट जाता है। इस कारण कुछ लोग सीसे (lead) के पत्रसे मढ़ा हुआ लकड़ीका हौज़ पसंद करते हैं। परन्तु यदि ऊपरके हौज़में लकड़ीकी एक जाली छोड़ दें तो यह अवगुण जाता रहेगा।

जो लोग ऐसे हौज़ और पानीके कलको नहीं लगवा सकते हैं उन्हें जब जब वह अँधेरी कोठरीमें काम करते हैं तब तब एक लोहेके या अन्य बरतनमें पानी ले जाना पड़ता है और कार्य समाप्त होने पर काममें लाये गये जलको (जो उन्हें एक बाल्टी या अन्य किसी बरतनमें भरना पड़ता है) बाहर फेंकना पड़ता है। जो कुछ हो, बहुत से अच्छे फोटोग्राफर सदा इसी प्रकार काम करते हैं।

चित्र—७ (ऊपरवाला) तथा चित्र—८ (नीचेका)
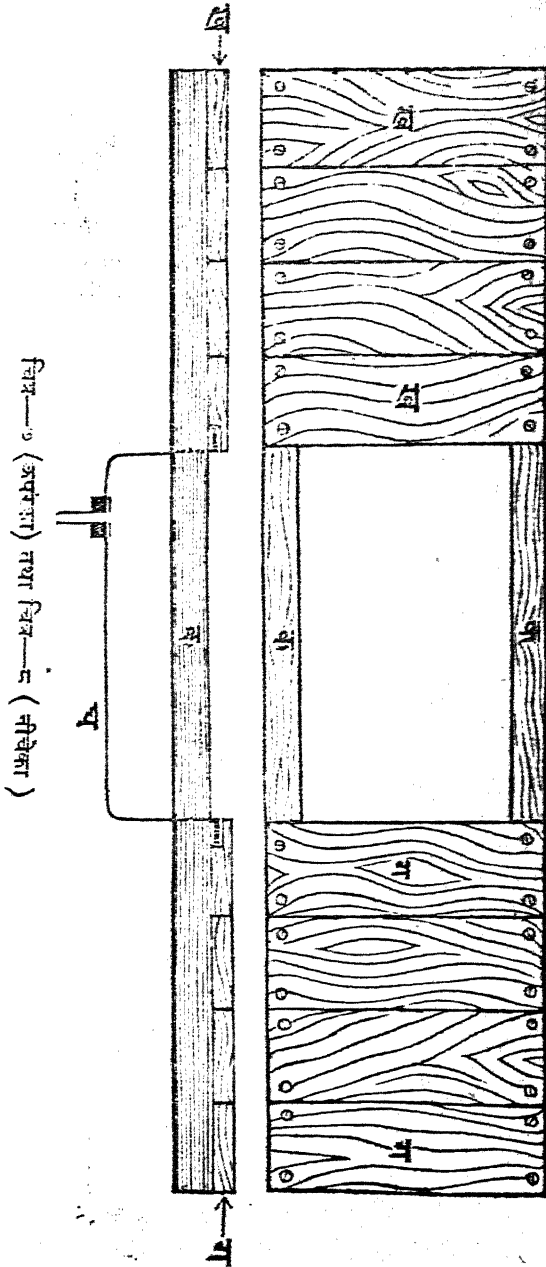
२२—सरल मेज़

इस प्रकममें यह दिखलाया जायगा कि अँधेरी कोठरीके लिए एक सरल मेज़ थोड़े दाममें कैसे बनायी जा सकती है और पानीके बहनेके लिए क्या प्रबन्ध किया जा सकता है। मेज़के लिए लकड़ीके दो टुकड़े (क, क, चित्र ७) १ इंच मोटे २ इंच चौड़े और इच्छानुसार लम्बे (जैसे ६ फुट) ले लीजिये और इनको पट करके एक दूसरेके सामने इस प्रकार रखिये कि इनके बाहर वाले किनारे एक दूसरेसे १८ इंचकी दूरी पर रहें। अब इनके ऊपर दाहिनी ओर ½ या ¾ इंच मोटे या अधिक पल्लेके टुकड़ों (ख) को जड़ दीजिये। इन पटरोंकी लम्बाई १८ इंच होनी चाहिये और पटरोंकी चौड़ाई मिलाकर कुल २ फुट हो जानी चाहिये। इसी प्रकार बाईं ओर भी २ फुट पटरों (ग, ग) से जड़ दीजिये। बीचमें जो २ फुट खाली बच गया है उसमें हौज़ लगाया जायगा जैसा कि (चित्र ८) में दिखलाया गया है। १ या १½ इंच मोटी और ३ इंच चौड़ी लकड़ीसे एक टुकड़ा (व, चित्र ९) २½ फुट लम्बा और एक टुकड़ा (च) १½ फुट लम्बा लेकर इनको चित्रमें दिखलाई गई रीति से जड़कर अड़कन (छ) को भी जड़ दीजिये। इनको दीवारमें जड़नेके लिए दीवारमें छेनी से स्थान ज और झ पर छेद खोद दीजिये और इन छेदोंमें लकड़ीके खूंटे ठोक दीजिये। मैं अँधेरी कोठरीमें खड़ा होकर काम करना पसंद करता हूं। यदि आप भी यही पसंद करते हैं तो आपको अपनी मेजको लगभग ३¼ फुट ऊँचा रखना चाहिये और ऐसी दशामें छेद (ज) ज़मीन से लगभग २¾ फुटके ऊँचाई पर पड़ेगा। छेद झ इसके लगभग १½ फुट नीचे पड़ेगा। घ में १½ फुटकी दूरी पर दो छेद कीजिये और इन छेदों को ज और झ में ठोंके गये लकड़ियोंके सामने रखकर ३ इंचके पेंचसे घ को जड़ दीजिये। ध्यान रखिये कि इसको बिलकुल खड़ा रहना चाहिये। इससे ५ फुट की दूरी पर इसी नापका एक दूसरा ब्रैकेट या कोनिया इसी रीतिसे और ठीक इतनी ही ऊँचाई पर लगा दीजिये। इन दोनों ब्रैकेटों पर अब पटरा (क, ख) रख दीजिये और मेज़ तैयार हो जायगी। यदि इस पटरेके आगे खिसक आनेका भय हो तो दो पेंच या बोल्ट और ढ़िबरीसे इसको ब्रैकेटों पर जड़ देना सरल है। भाग क हैपोके लिए और भाग ग डेवेलप करनेके लिए है। जो लोग कुर्सी पर बैठकर काम करना चाहते
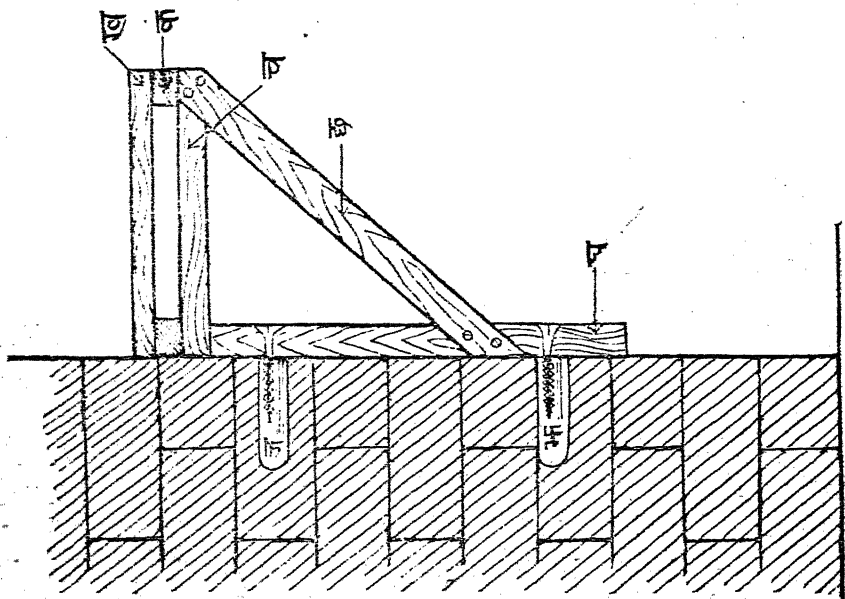
चित्र ९

हैं, स्वभावतः वह मेज़को नीचा रखेंगे। लगभग २½ फुटकी ऊँचाई ठीक होगी। जो अधिकतर खड़े रहकर ही काम करना चाहते हैं वह एक ऊँची तिपाई विशेषतः इसी कामके लिए रख सकते हैं। इसकी ऊँचाई इतनी होनी चाहिये कि इसपर बैठकर काम करनेसे कोई कष्ट न पड़े। २¼ फुटकी ऊँचाई बहुत अच्छी होगी।

२३—पानी बहनेके लिए प्रबन्ध

अब यह देखना है कि पानीके लिए हौज़ (sink) किस प्रकार बनाया जा सकता है। अस्तेकी कलईकी हुई लोहेकी पतली चद्दरका एक टुकड़ा (चित्र १०) में दी गई नापका ले लीजिये और जहां समूची रेखा हैं वहां वहां कैंचीसे कतर दीजिये। ऋण चिन्हांसे बनी रेखाओंपर चद्दरको भीतरकी ओर मोड़ दीजिये और धन चिन्होंसे बनी रेखाओंपर चद्दरको बाहरकी ओर मोड़ दीजिये। आप देखेंगे कि भाग क भाग ख पर पड़ता है। भाग क को भाग ख के बाहर रहना चाहिये। इन दोनोंमें दो दो छेद करके कीलसे जड़ दीजिये अर्थात् इन दोनोंको रिवेट (rivet) कर दीजिये। इसी प्रकार बाक़ी कोनोंको भी जड़ दीजिये। बाहर फैले हुए किनारोंकी पुष्टताके लिए चित्र ११ में दिखलाये गये आकारका एक कोनिया हर एक कोने पर लगा दीजिये। स्थान ग में एक छेद कर दीजिये और बाहरकी ओर एक छोटीसी नली लगा दीजिये। सबसे सरल रीति यह है कि बाइसिकलके पहियेमें लगने वाली भीतरी ट्यूब (inner tube) की नली ले लीजिये। किसी साइकलकी दूकान पर यह मुफ़्त या बहुत सस्तेमें मिल जायगी, क्योंकि जब ट्यूब बेकाम हो जाता है तो यह भी बेकार हो जाता है। इसी नलीको छेद ग में छोड़कर दूसरी ओरसे ढ़िबरी कस दीजिये। (चित्र ८) हौज़ अब तैयार ही समझिये, परन्तु एक दो काम और करना है। एक तो यह कि पेंदेको काठके हथौड़ेसे ठोंककर भाग ग को कुछ गहरा और सबसे नीचा कर दीजिये। दूसरे यह कि हौज़को मुर्चे और रासायनिक पदार्थोंसे बचानेके लिए काले लुक (black japan) से दो तीन बार रँग दीजिये। पहिली बारके लगाये लुकको पूर्णतया सूख जाने पर ही दूसरी बार लुक लगाना चाहिये। हौज़ अब सब प्रकारसे तैयार है और मेज़के बीचमें जो ख़ाली भाग है उसमें बिठा दिया
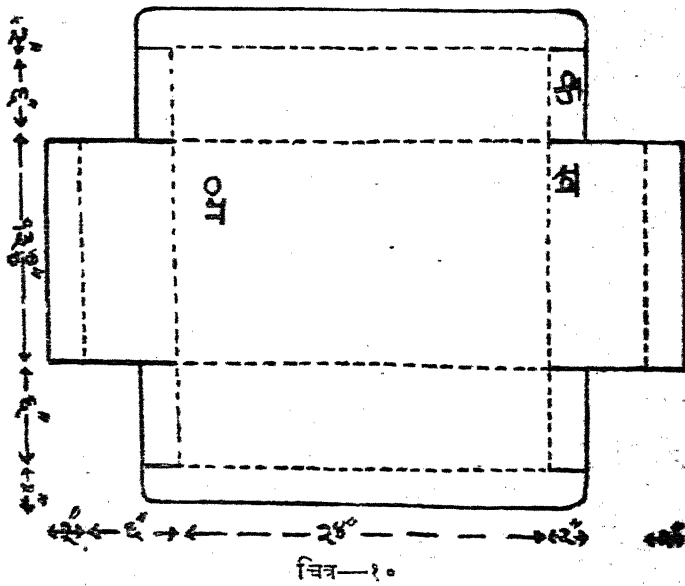
चित्र—१०

जा सकता है। इसके लिए अगल बगलके पटरोंको पहिले खोलनेकी आवश्यकता होगी। हौज़ रखनेके बाद यह फिर जड़ दिये जा सकते हैं। ध्यान रखना चाहिये कि बगलवाले पटरोंकी ढाल ऐसी हो कि उनपर यदि पानी गिर जाय तो वह बह कर हौज़में ही जाय। यदि पानीके बह जानेके लिए पनाला है तो नली ग से लेकर इस पनाले तक टीन या किसी अन्य पदार्थकी
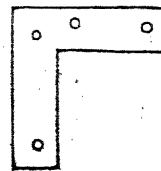
चित्र—११

एक नली लगानी पड़ेगी। नहीं तो इस नली के नीचे पानी भरनेके लिए कोई बरतन रखा जा सकता है। इसके भरके जानेके पहिले ही इसके पानीको सदा फेंक देना चाहिये।

२४—सस्ती मेज़

एक बहुत सस्ती मेज़ इस प्रकार बन सकती है। तीन चार फुट लम्बा और डेढ़ या दो फुट चौड़ा और लगभग इतना ही ऊंचा चीड़का बक्स (जिसमें विदेशी माल आता है) लीजिये। सामने क भागको खुला रखिये और बक्सके भीतरी भागको इच्छानुसार खंडोंमें बांट दीजिये। आवश्यता-

चित्र—१२
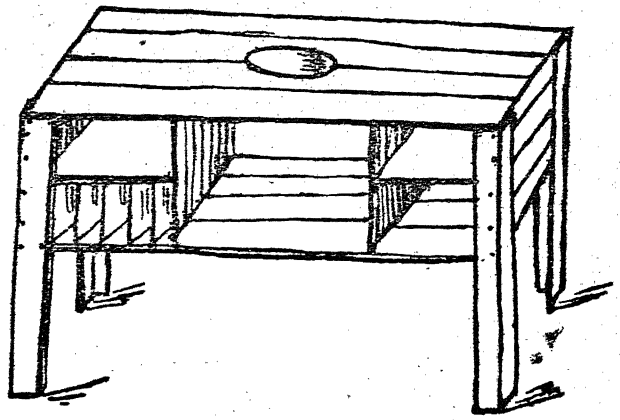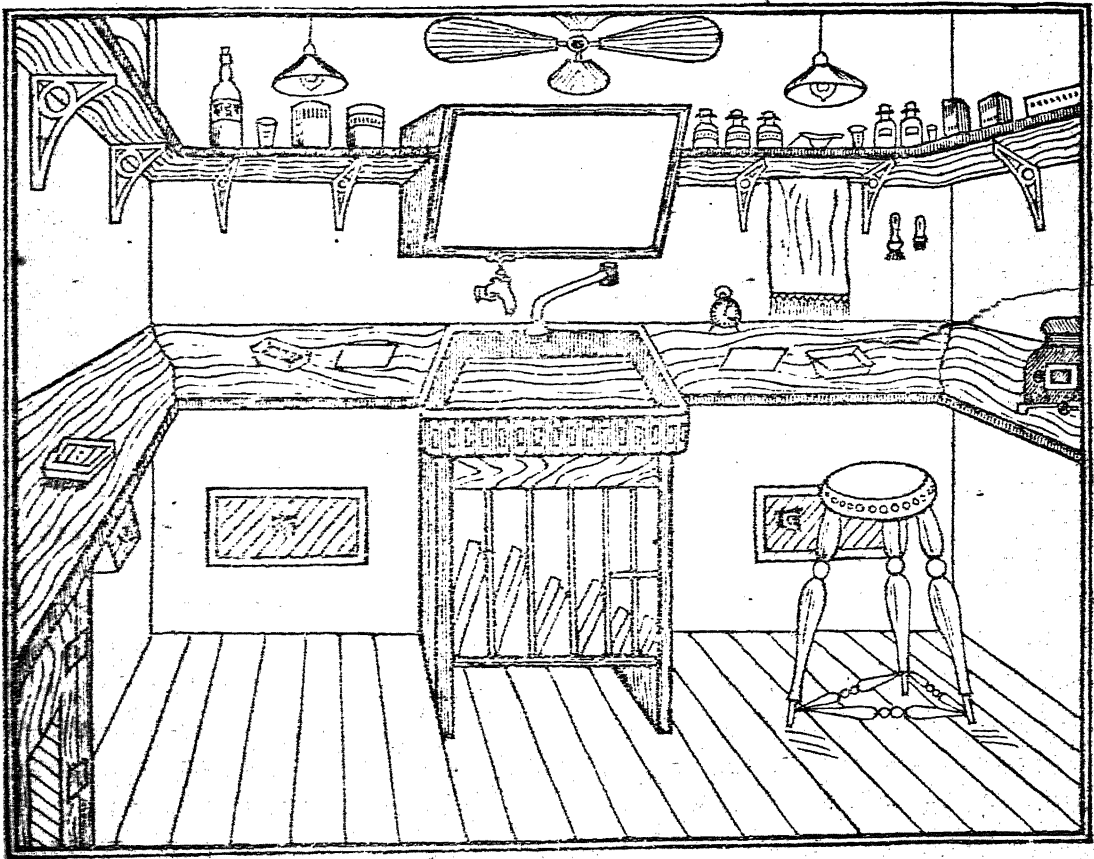
चित्र—१३

नुसार शीशी इत्यादि रखनेके लिए दो चार पटरे टांड़ोंके रूपमें लगा दीजिये। कोनोंमें पेंच द्वारा लकड़ीके पटरोंका पाया जड़ कर बक्सके ऊपरी भागको इतना ऊँचा कर दीजिये कि काम करनेमें सुगमता हो। पानी रोपनेके लिए आठ या दस इंच व्यासका एक गोल भाग निकाल कर उस पर एक कूँड़ा (मिट्टीका अर्धगोलाकार बरतन जो दही रखनेके काममें आता है) रख दीजिये। यदि पानी से भरे कूंड़ेको उठानेमें असुविधा होती हो तो इसके पेंदेमें एक छेद करके इसके नीचे मिट्टीका एक छोटा घड़ा या एक बड़ा लोटा रख दीजिये। इस प्रकार बहुत कम दाममें मेज़ और हौज़ दोनों तैयार हो जायँगे। इसका चित्र अन्यत्र दिया जाता है (चित्र १२)

२५—एक अच्छी अंधेरी कोठरी

अन्यत्र एक अच्छी अँधेरी कोठरीका चित्र दिया जाता है (चित्र १३)। कोठरी ख़ूब हवादार और काफी बड़ी है। हवाके आनेके लिए वेन्टिलेटर (ventilator) स्थान क, ख, पर लगे हुए हैं और इसके बाहर जानेके लिए एक बड़ा वेन्टिलेटर छत-में लगा हुआ है, जो चित्रमें दिखलाई नहीं पड़ता। भीतर सीमेन्ट का पलस्तर और फर्श है। गर्दको न उड़ने देनेके लिए कभी कभी पानीके सूक्ष्म कणों-की बौछार छोड़नेके लिए भी यंत्र लगा है। फोटो-ग्राफरको शीतल रखनेके लिए बिजलीका पंखा भी है जो समय पर काममें लाया जा सकता है। दर-वाज़े और खिड़कियोंके बन्द करनेसे इसमें पूर्णतया अन्धकार हो जाता है, परन्तु एक घुन्डीके झुकाते ही लाल लैम्पके भीतर बिजलीकी रोशनी जल उठती है और कोठरी लाल प्रकाशसे भर जाती है। घुन्डीको दूसरी ओर घुमानेसे लाल प्रकाशका अन्त हो जाता है पर इसके बदले श्वेत प्रकाश हो जाता है। इसकी तीन दीवारोंसे सटी हुई लगातार मेज़ है और इसके २ फुट ऊपर शीशी बोतल इत्यादि रखनेके लिए इन्हीं तीनों दीवारोंपर बराबर टांड़ लगी है। मेज़के नीचे धोई हुई तश्तरियोंको उनके पानीको निथर जाने और उनके शीघ्र सूखने-के लिए खड़ी लकड़ियां (rack) लगी हैं। छोटीसे ले बड़ी तश्तरियां, ताम चीनीकी बनी, बहुतायत-से रखी हैं। सब उपयोगी सामान चाहे वह कितना ही बहुमूल्य क्यों न हों, यहां उपस्थित है। मेज़के नीचे आलमारियां स्थान स्थानपर लगी हैं। एक ओर मेज़के बीचमें चीनी मट्टीका एक हौज़ (sink) लगा है। इसके उपर दो पानीके कल लगे हैं। एकके मुँहपर फव्वारा या हजारा लगा हुआ है। पास ही इसके साबुनकी बट्टी और एक स्वच्छ तौलिया रखी हुई है। मेज़की ऊंचाई इतनी है कि खड़े होकर आसानीसे काम कर सकें, परन्तु गद्दीदार ऊँची तिपाई पर बैठ कर भी उसी आसानीसे काम कर सकते हैं। इसी हौजके पास ऊपर लिखा गया लाल लैम्प है। इसमें रश्मि विश्लेषक यन्त्रसे जांच किया गया जिलेटिनका प्रकाश-छनना लगा हुआ है। इसीके पास ही अँधेरी कोठरीके लिए विशेष करके बनी बड़ी भी रखी है। नेगेटिव डेवेलप करनेके सब सामान भी पासमें ही हैं। दूसरी ओर भी इसी प्रकार हौज़ और कल इत्यादि लगा हुआ है और यहांके लैम्पसे पीला प्रकाश बहुतायतसे मिल सकता है। इस स्थानपर मेज़के नीचे कई एक छापनेके चौखटे रखे हैं और ऊपर टांडपर ब्रोमा-इड कागजके उपयुक्त रासायनिक पदार्थ रखे हैं। मेज़में यहां एक ऐसा दराज़ (drawers) है, जिसको बन्द करनेसे इसके भीतर प्रकाश नहीं जा सकता। थोड़ेमें, यहां ब्रोमाइडपर छापनेके लिए सब सामान रखे हैं। तीसरी ओर बड़ी बड़ी तश्तरियां और एक एनलार्जमेंट बनानेके यंत्र इत्यादि रखे हैं। यह अँधेरी कोठरी सदा स्वच्छ रखी जाती है और इसमें घन्टों तक उतने ही सुखसे रह सकते हैं, जैसे कि मकानके किसी दूसरी कोठरीमें।

२६—बिना अंधेरी कोठरीके

फिल्मके प्रयोग करनेवाले बिना किसी असु-विधाके अँधेरी कोठरीके बिना भी काम कर सकते

हैं। फिल्म काठ या धातुके बेलनपर एक ऐसे कागजके साथ लपेटा रहता है जिसके आर पार प्रकाश नहीं जा सकता। यह कागज चौड़ा तो फिल्म ही के बराबर होता है परन्तु लम्बा अधिक होता है। कई फेरे केवल कागजके लपेटनेके बाद फिल्म और कागज साथ पड़ते हैं और सब फिल्मके लपेट जानेके बाद केवल कागज ही के कई फेरे और लपेटे जाते हैं।

फिल्मके दोनों सिरे कागजसे चिपकाये रहते हैं, जिससे कि कागजको खोलने या लपेटनेसे फिल्म भी खुलता है या लिपट जाता है। जिस बेलनपर यह लपेटा रहता है उसके दोनों सिरों पर एक काले पत्रका गोला लगा रहता है। स्पष्ट है कि इस प्रबन्धसे लपेटे रहने पर फिल्म तक प्रकाश नहीं पहुँच सकता। फिल्मके पुलिन्देको इसी रूपमें कैमरेमें लगा देते हैं और इसके लिए अंधेरी कोठरी की कुछ भी आवश्यकता नहीं पड़ती। कागज़का ऊपरी सिरा दूसरे बेलनके चीर (शिगाफ) में फंसा देते हैं और कैमरेको बन्द कर देते हैं। पहिले* बतलाई गई रीतिसे फिल्मके सब भाग पारी पारी काममें लाये जा सकते हैं। इसके बाद चाभीके ओर ऐंठनेसे कुल कागज़ ऊपरके बेलन पर चला जाता है। यह बेलन भी ठीक नीचे वाले बेलनके समान होता है। इस कारण अब इसको कैमरेके बाहर निकाल सकते हैं। फिर फिल्म तक प्रकाशके पहुँचनेका कुछ भी भय नहीं रहता। डेवेलप करनेके लिए भी अँधेरी कोठरीकी आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि अब डेवेलप करनेकी ऐसी मशीन मिलती हैं, जिनको हम बिना भयके दिनके प्रकाशमें ही काममें ला सकते हैं। यदि ब्रोमाइड कागज़ पर न छापें, केवल पी. ओ. पी (P. O. P.) या गैस लाइट (Gas light) का ही प्रयोग करें तो अंधेरी कोठरीकी आवश्यकता बिलकुल जाती रहेगी। साधारण प्लेटोंको भी अंधेरी कोठरीके बिना ही काममें ला सकते हैं। इसके लिए एक काले झोले (Changing bag) की आवश्यकता होती है। यह ऐसे काले कपड़ेका बना रहता है जिसके आर पार प्रकाश नहीं जा सकता। इसके एक भागमें इस काले कपड़ेके बदले पहिले बतलाये गये मेलका लाल कपड़ा लगा रहता है, जिसमें से इस झोलेके भीतर लाल प्रकाश जा सकता है। (चित्र १४) इस झोलेमें दो छेद रहते हैं, जिन पर आस्तीन

चित्र १४—काला झोला
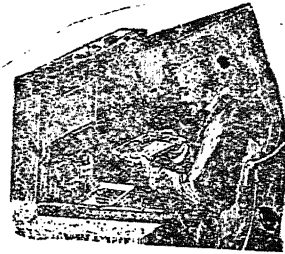
चित्र १५—ब्लाक देखो

सिले रहते हैं। इन आस्तीनोंके मुंह पर रबरकी चूड़ी रहती है। जब फोटोग्राफर इनमें अपना हाथ छोड़ता है तब यह चूड़ियाँ काले कपड़ेको उसके हाथों पर इस प्रकार दबा देती हैं कि प्रकाश भीतर नहीं जा सकता। इस झोलेके भीतर झांकने के लिए एक स्थानमें लाल शीशा लगा रहता है। इस झोलेमें कैमरा या प्लेट-घर और प्लेटका बक्स पहिले रख कर और आस्तीनोंमें हाथ छोड़ कर प्लेटको कैमरे या प्लेट-घरमें चढ़ा सकते हैं या इन

* विज्ञान मई १६२२ पृ० ४६।

से प्लेटोंको निकाल कर डेवेलप करनेकी टंकी (Developing tank) (प्रक्रम १६) में रख सकते हैं और इस प्रकार अंधेरी कोठरीके बिना ही काम भली भाँति चल सकता है। रातके समयकी बात ही दूसरी है। उस समय किसी भी कोठरीको तुरन्त अन्धेरी कोठरी बना सकते हैं। ऐसी दशामें बिना लाल लैम्पके काम यों चला सकते हैं रेडियम (Radium) घड़ी जो अन्धेरेमें भी पढ़ी जा सकती है इस समय सहायता दे सकती है, या किसीको बाहर खड़ा कर सकते हैं और वह डेवेलप करनेके समयकी समाप्तिकी सूचना दे सकता है। यदि तीन चार मिनटके समान थोड़े समयके अन्त पर भी ठीक ठीक घण्टी (Alarm) बजाने वाली घड़ी मौजूद है तो भी काम चल सकता है; परन्तु समय कुसमय प्लेट-घर भरनेके लिए एक काला झोला अवश्य चाहिये।

बाज़ कारखाने वाले एक सफ़री अन्धेरी कोठरीभी बेंचते हैं, जिसमें डेवेलप करनेकी कुल क्रिया की जा सकती है। यह झालेकी भाँति काले कपड़ेकी बनी होती है। पर यह बड़ी होती है और इसमें दो चार टुकड़े लकड़ीके भी लगे होते हैं, जिससे हम इसको मोड़कर बक्सके आकारका बना सकते हैं। यात्राके लिए यह बहुत सुभीतेकी है, परन्तु प्रति दिनके कार्य्यके लिए अच्छी नहीं है। लंडनके ऐडैम्स कम्पनीकी बनाई वेन्टिलेटर संयुक्त एक इस प्रकारकी अँधेरी कोठरी चित्र १५ में दिखलाई जाती है।

२८—समाप्ति

ऊपर मैंने अँधेरी कोठरीके विषयमें मुख्य मुख्य बातों पर विचार किया है। अँधेरी कोठरियाँ सैकड़ों प्रकारसे बनाई जाती हैं और इसमें सन्देह नहीं कि विरली ही दो अँधेरी कोठरियां सब बातोंमें एक सी होंगी। इन सबका वर्णन करना असम्भव है, परन्तु आशा है कि पाठकको अब एक उपयोगी अँधेरी कोठरीके बनानेमें कुछ भी कठिनाई न पड़ेगी। यह भी आशा है कि आपको इतना अवश्य प्रत्यक्ष हो गया होगा कि फोटोकी उत्तमता अँधेरी कोठरीकी सजावटके ऊपर इतनी निर्भर नहीं है जितनी कुछ लोग समझते हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि अच्छी अँधेरी कोठरीसे सफलता प्राप्त करनेमें बड़ी सहायता मिलती है। यदि जब जब दो चार प्लेट डेवेलप करना पड़े तब तब थोड़ी देरके लिए किसी कोठरीको अँधेरा करना पड़े और तश्तरी, शीशी, बोतल इत्यादि जुटाना पड़े और फिर सब हटाना पड़े तो बहुत बहुमूल्य समय नष्ट जाया करेगा। फोटोग्राफीके आनन्दका अधिक भाग जाता रहेगा। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि ऐसी दशामें भी कई एक फोटोग्राफर बढ़ियासे बढ़िया काम बनाते हैं, परन्तु इसमें भी कुछ सन्देह नहीं है कि यदि एक छोटा सा स्थान भी केवल फोटोग्राफीके लिए अलग रखा जा सकता तो इतने ही समयमें अधिक काम तैयार हो सकता; घंटे आध घंटेकी फुरसत भी फोटोग्राफीमें लगाई जा सकती और फोटोग्राफर कई एक झंझटोंसे बच जाता।

खोपड़ीकी विशेषताएं

पड़ीको देखकर चरित्र जान लेनेवाले विद्वानोंका मत है कि तंग पतला माथा शुभ लक्षण नहीं। ऐसे माथेके पुरुष बहुत विचार नहीं कर सकते और वह अपना माथा प्रायः ऐसे मनहूस से विषय पर लगाते हैं, जिससे कुछ सन्तोष जनक फल भी नहीं निकलता। विशाल मस्तकसे चरित्रकी विशालताका ज्ञान होता है। परन्तु इसके साथ ही साथ मुख भी तदनुरूप सुन्दर और समानुपाती होना चाहिये। क्योंकि अन्य अंग भी अपनी अपनी

विशेषता लिये होते हैं। जो खोपड़ी आंखोंकी भौंओंके कुछ ऊपरसे ही मोड़ खाने लगती हैं उनमें कविताकी विशेष शक्ति होती है। साथ ही उनमें चित्रकारी, तथा गायनकी भी प्रवृत्ति होती है। जो मस्तक भौंओंपर समकोण बनाकर उठे रहते हैं उनमें कठोरता, स्तब्धता, अभिमान, तथा अविनय बहुत होता है। मस्तकका उभरा रहना बुद्धिका चिन्ह है। बुद्धिमान मस्तक भौंओंके ऊपर उभरा होता है और कान काफ़ी पीछेकी ओर गये होते हैं। यदि माथा चौड़ा और ऊँचा और उभरा हो तो यह अच्छा समझना चाहिये। शान्त और गम्भीर विचारकोंके भौंओंके ऊपरका भाग स्पष्ट आँखोंसे देख पड़ता है; उनका सिर ऊपरको भी उभरा होता है। भविष्य पुराणमें इसी ललाट के लिए लिखा है "आचार्या शुक्ति सदृशैः" अर्थात् सीपके समान बीचसे उभरकर फैलनेवाले ललाटोंसे आचार्य की पहचान होती है।

अर्धचन्द्रके आकारका ललाट, राजाओं और धनियोंका होता है। जिनके माथेपर नसें दीखती हैं वह पापी, जुआरी और वेश्यागामी होते हैं। जिसके माथेपर खूनकी रगें दीखती हैं वह धनी होते हैं। जिनका सिर ऊंचा नीचा हो वह दरिद्र और जिनका सिर लम्बा ऊपरको निकला हुआ होता है वह सदा दुखी रहते हैं। जिसका सिर चपटा हो, वह अपने मां बापका सुख नहीं भोगता। घड़ेके समान या बिलकुल लोटेके समान गोल मटोल सिर वाला, सदा राहगीर बना रहता है; उसे घरका सुख नहीं मिलता। पिचका सिर कष्ट और अनर्थकारी है।

जिसका सिर ऐसा बंटा हुआ सा हो कि एक के स्थानपर दो सिरसे प्रतीत हों वह भी पापाचारी निर्धन होता है।

केकड़ेका चोला बदलना

केकड़ा भी सांपके समान अपना नया चोला प्रति वर्ष बदला करता है।

पक्षियोंकी शृङ्गार सामग्री

न्दर्यका भूखा मनुष्य अपने शरीरको चमकानेके लिए, नाना रंग पोतता है और गुदवाता है, तेल लगाता हैं, उबटन लगाता है, साबुन लगाता है, पौडरका प्रयोग करता है। इसी प्रकार वह बालोंपर नाना प्रकारके स्निग्ध पदार्थ लगाकर कंघी करता है और सजता है। इसी प्रकार निसर्गमें पक्षिगण भी अपने सौन्दर्यको बनाये रखनेके लिए विशेष सामग्रीका उपयोग करते हैं।

बतखके पंखोंपर एक विचित्र सी चमक होती है। वह पानीमें, कीचड़में, धूलीमें लोट पोट कर भी फिर ज्योंकी त्यों स्वच्छ, चमकीली तथा स्निग्ध निकल आती हैं। क्यों? आपने देखा होगा कि वह पानीमें नहाकर फिर किनारेपर खड़ी होकर शरीर धुना करती हैं। चोंचोंसे अपने सारे शरीरका छोटा बड़ा एक एक पंख साफ करती हैं। और फिर अपने सिरको सारे शरीरपर रगड़ा करती हैं। उनकी पूंछके निचले भागमें कुछ छोटी छोटी ग्रन्थियोंमें से एक प्रकारका चमकदार तेल सा निकला करता है वह उसको अपने सिरपर लगाकर सारे शरीरपर चुपड़ा करती हैं। इसीसे उनके पंख फिर चमकने लगते हैं।

कई पक्षियोंके पास कंघी भी होती है। उल्लूके एक पंजेके नखका निचला भाग दनदाने दार होता है; वह उससे अपने सब पंख संवारता है और अपने देह पर लगी किचड़ी आदि तकको साफ़ कर लेता है।

कई पक्षी पौडरका उपयोग करते हैं; जैसे कबूतर और बाज़। उनके कुछ एक पंख ऐसे होते हैं जो बड़े होकर कड़कीले हो जाते हैं। वह उनको उखाड़ उखाड़ कर चबाते हैं और अपने सब शरीर

के पंखोंपर उसका पौडर चुपड़ लेते हैं या देह धुनते समय वह आपसे आप कड़क कर एक धूलिके रूपमें बिखर जाते हैं। वही पंखोंकी कान्तिका कारण होते हैं। इसको पत्ररज कहना चाहिये। पत्ररजका सबसे सुन्दर दृष्टान्त तितली-के रंग बिरंग पंखोंपर देख लीजिये। अन्य पक्षिगण भी कुछ अपना उपाय रचते हैं; पर उनका अभी पूरा पूरा अनुसंधान नहीं हुआ है।

नामका धोखा

रातदिनके व्यवहारमें आनेवाली वस्तुओंके ऐसे नाम होते हैं जो उनकी वास्तविकतासे बहुत दूर होते हैं; जैसे (१) टीनका बना पीपा, या टीनकी चादरें जो छत पर लगायी जाती हैं। उनको टीनका कहलानेका कोई अधिकार ही नहीं। वह तो लोहेकी चादर होती हैं; जिनपर बहुत पतला टीनका पानी फिरा होता है। (२) 'गेल वेनाइज़्ड़ लोहा' भी सचमुच कोई विद्युन्मय पदार्थ नहीं होता। वह केवल पिघले हुए जस्तेमें डुबा दिया जाता है। और वैसा ही दीखने लगता है। (३) ऊंटके बालोंके ब्रश, प्रायः हमारे चित्रकार ढूंढा करते हैं। और व्यापारी वैसा ही कह कर बेचते हैं। पर उसमें एक बाल भी ऊंटका नहीं होता। वह साधारण गिलहरीके बालोंके बने होते हैं। (४) सीलिंगवैक्समें एक रत्ती मोम नहीं होता। वह केवल लाख, शिंगरफ़ और तारपीन मिलाकर बनाया जाता है। (५) सीसेकी पेंसिल-में नाम मात्र भी सीसा नहीं होता। (६) 'किड् ग्लव्स्' भेड़के बच्चोंके चमड़ेके बनाये जाते हैं पर बकरीके बच्चेका नाम मशहूर है।

'टिटमाऊस (Tit-mouse) शायद आप समझें कि कोई कुतरने और काटने वाला छोटा चूहा है। खूब! यह तो एक छोटा सा सुन्दर पंछी होता है। नाइटिंगेल—यह पक्षी क्या रात ही को बोलता है? नहीं, दिनमें भी बोलता है। (३) मक्खियोंमें छोटी छोटी मक्खियां मक्खियोंके बच्चे नहीं होते; बल्कि वह उमर भर उतनी ही बड़ी रहती हैं; बढ़ती नहीं। (Dragon-fly) अजगरी मक्खी अपने भया-नक काटनेके लिए बदनाम है, पर बिचारी कभी काटती नहीं; उसके डंक ही नहीं होता। लोग कहते हैं कि बिल्ली रातको दिनकी अपेक्षा अच्छा देखती है। परन्तु नहीं। वह दोनों समय समान भावसे देखती है। हां वह रातको मनुष्य तथा अन्य गरीब जानवरोंकी अपेक्षा बहुत अच्छा देखती है। 'बीफ़ईटर' क्या गो मांसके बिना दूसरी चीज़ नहीं खाते? खाते हैं। इसका मूल शब्द है "वेफेटीयर", जिसका अर्थ है जो राजाके भोजन करते समय उसकी चाकरी करें (बफेट-राज-भोज)। शायद आप समझें कि उबलती देगचीमेंसे उड़ती हुई भाफ़ दीख रही है। वस्तुतः भाफ़ दीखा ही नहीं करती यह तो शीतल होकर जमे पानीके छोटे छोटे कण हैं जो दीखते हैं। सचमुच

रंगीको नारङ्गी कहें, तत्त मालको खोया।
चलतीको गाड़ी कहें, देख कबीरा रोया॥

सबसे छोटा प्राणी

सबसे छोटा प्राणी 'प्लूरोमोनस जेकुलन्स' नामक क्षुद्र कीटाणु है। वह तालतलैयों, छपड़ों तथा गलती सड़ती वनस्पतियोंमें निवास करता है वह आकारमें लौंगियेके दानेके समान एक ओरसे भीतरको पिचका होता है। उसी ओर उसके दो अतिसूक्ष्म केश या मूंछ होती हैं, जिनसे वह अपना मार्ग देखता है, चलता है, और पानीमें भी तैरता है, इनकी जड़में उसका मुख होता है। वहींसे यह अपना भोजन करता है। इसके देहकी लम्बाई अधिकसे अधिक ८ या ९ माइक्रोन (१ माईक्रोन् १०००००० मीटर) अर्थात् इंचका तीन हजारवाँ भाग है। इस जातिके ऐसे भी देह पाये गये हैं, जिनकी लम्बाई इंचका १२ हजारवां भाग हो अर्थात् २ माइक्रोन।

इनका जीवनकाल केवल कई घण्टे होता है। उसके बाद वह दो भागोंमें फट जाता है। उसके दोनों भाग अलग अलग तैरने लगते हैं और फिर बढ़ने लगते हैं। अन्तमें बड़े होकर फूट जाते हैं। इस प्रकार यह सन्तान वृद्धि करते हैं।

प्राणीसंसारमें दो ही क्रम सन्तान वृद्धिके दीखते हैं-(१) एकके दो होना; (२) दोके तीन होना। एक तीसरा क्रम भी देखा गया है दो का एक हो कर दो होना। हमारा सबसे छोटा प्राणी प्रथम पद्धतिका अनुसरण करता है।

कालेका गोरा होना या वर्ण परिवर्त्तन

क ब्राज़िल निवासी नवयुवक वैज्ञानिक ओक्टेविस फीलिक्स पीड्रो-ने एक ऐसी विधि खोज निकाली है, जिससेकाले भीलको भी गौर काश्मीरी बनाया जा सकता है।

अभीतक उस विधिका प्रयोग केवल मूषकोंपर किया गया है। और बड़ी सफलता हुई है। यह रक्त प्रवाह विधि है। अर्थात् शरीरके एक अंगसे नाड़ी छेदकर उसके रुधिरको रबरकी नली द्वारा उसी देहके दूसरे अंगमें प्रवेश करा दिया जाता है। इस बीचमें उसे कुछ विशेष ताव दिया जाता है तथा उसमें विशेष रसका योग भी दिया जाता है। १ मासमें काला चमड़ा गोरे चमड़ेमें बदल जाता है। इस विधिसे रक्तमें काले कणोंको नष्ट करके श्वेत कणोंकी अधिकता कर दी जाती है। मूषकोंका रंग तो इस विधिसे १५ दिनोंमें ही बदल जाता है। (टि० वि० मि० ३, २२)

यह तो विधि पश्चिमी खोपड़ीकी उपज है। परन्तु अब पूर्वीय खोपड़ीका चमत्कार भी देखिये। काम शास्त्रमें वात्सायनने सुभगंकरणके प्रकरणमें लिखा है कि रूप गुण और वय का बदल देना ही सुभगंकरण कहाता है। रूप बदलना अर्थात् कालेसे गोरा और गोरेसे काला करना, गुण अर्थात् सख़्तसे कठिन और कठिनसे सख़्त करना, और वयः अर्थात वृद्धको युवा और युवाको वृद्ध बनाना। हमें इनमेंसे रूप परिवर्त्तनका प्रकरण ही अपेक्षित है। आप लिखते हैं—

(१) तगर, कूठ, तालीस पत्र, इनकी लुग्दी बना कर लेप करनेसे चर्मका रूप बदल जाता है।

(२) पुनर्नवा, सहदेवी सारिवा, कुरण्टक, और उत्पल पत्र, इनसे तेलका पाक करके उसको मलने से भी रूप स्वच्छ हो जाता है।

(३) पद्म, नाग केसर और उत्पल पत्रको सुखा कर चूर्ण बना कर शहदके साथ चाटनेसे भी देहका रूप सुन्दर हो जाता है।

मोरकी या चीतेकी आंखको सुवर्णके वरकमें लपेट कर हाथमें रखनेसे भी रूपमें परिवर्त्तन हो जाता है।

अर्थशास्त्र कार चाणक्यने कालेसे गोरे होनेके उपाय लिखे हैं।

(१) कुक्कुटका मांस, कोशानकी लता, और शतावर इनकी जड़का निरन्तर भोजन दिया जावे तो एक मासमें पुरुष कालेका गोरा हो जाता है।

(२) बड़के पत्ते उबाल कर उससे नहाये और आमके पत्तोंको कूट कर उससे अपने शरीरको रगड़े तो गोरा भी काला हो जाय।

(३) काकुन कङ्गु (कंगनी) के सिद्ध किये तेलसे हरताल और मनसिल पीस कर देह पर पोत ले तो देह भर श्याम, घनश्याम हो जाय।

(४) पारिभद्रक वृक्षकी छालकी राखको मेंडककी चर्बीमें मिला कर गात्र पर मले तो आगके समान रातको भी देह तमतमाये।

(५) ऊपरके ४थे नुस्खेमें मेंडककी चर्बीके स्थानमें तिल कूट कर उनका भी प्रयोग किया जा सकता है।

वृहदारण्यकोपनिषद्के ६ठे अध्यायका ४थे ब्राह्मणमें पुरुषोत्पत्ति प्रकरणको बड़ी सूक्ष्मतासे ऋषियोंने लिखा है। उसके एक एक पदमें गूढ़

विज्ञान कूट कूट कर भर दिया है। हम यहां उसका विस्तारसे उल्लेख नहीं करना चाहते तो भी अपने प्रयोजनीय भागका हम अवश्य उल्लेख करेंगे। उपनिषद्का मन्तव्य है कि सब शरीर पांचो भूतोंके बने हैं। पांचो भूतोंका रस पृथ्वी है। उसका रस जल है, जलोंका रस ओषधियां हैं। ओषधियोंका रस पुष्प है, पुष्पोंका रस फल है। और फूलोंका रस पुरुष (नर) शरीर है। नर देह का रस वीर्य है। वही गर्भमें आसिक्त होकर पुत्र रूपसे उत्पन्न होता है। (बृ० उ० ६।४।१)

परन्तु देखा जाता है कि गौर जातियोंके पुत्र गौर हैं, श्याम जातियोंकी औलाद कृष्ण होती हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या यह वर्ण पलटा भी जा सकता है। उपनिषद्कार मानते हैं कि ऐसा हो सकता है। क्योंकि देह ओषधियोंके रसोंसे बनता है। उसका जैसा आहार होगा वैसा देह बनेगा। इस कारण भोजनको अपने वश कर लेने पर भावी पुत्रके रंग पर भी वश हो सकेगा। इसी सिद्धान्त पर उपनिषद्में लिखा है "कि—

*(१) जो मां बाप अपने गौर पुत्र चाहते हैं वह ऋतु दशामें दूधमें चावलोंकी खीर पकाकर घी डाल कर खाया करें। उनके पुत्र गौर होगा।

(२) जो चाहते हैं कि उनका पुत्र कपिल रंगका गेहुँआ होवे, दही और भात पकाकर घी डाल कर खावें।

(३) जो चाहते हैं कि पुत्र श्याम रंगका लोहित चक्षुवाला उत्पन्न होवे, केवल भात पकाकर घी डाल कर खावें।

उपसंहारमें हम एक बात पर पाठकोंका और ध्यान खेंचते हैं। हमारे घटपट पर तर्कक्रीड़ा करनेवाले तार्किक प्रायः सोपाधिक हेत्वाभासका उदाहरण देते हुए कहा करते हैं—

"मैत्रः श्यामः। मित्रातनयत्वात। चैत्रवत्। अत्र शाकपाकजः उपाधिः।"

मैत्र श्याम रंगका है, क्योंकि मित्रानामक स्त्रीका बेटा है। जैसे मित्राका बेटा चैत्र। इस स्थल में मित्राका बेटा होना कोई मैत्रके काला रंग होनेमें हेतु नहीं हो सकता; क्योंकि काला होनेका प्रयोजक शाकादि भोजन है।" अर्थात् यदि गर्भकालमें मित्राने शाकादि अधिक न खाकर घी दूध का सेवन अधिक किया होगा तो उसीका एक लड़का श्याम होकर भी दूसरा गौर हो सकता है। इत्यादि। इस तर्कसे भी यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि पूर्वीय दिमाग इस शरीरकी रंगतके मूल कारणको खूब समझते थे और इच्छानुसार रंग बदल लेते थे।　　—जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार।

* बृहदारण्यकोपनिषद् अ० ६। ब्रा० ४। क० १४, १५, १६।

भारतीय ज्योतिःशास्त्र

प्रस्तावना

अनादि और अनन्त कालकी मर्यादा स्थिर करनेके लिए ज्योतिःशास्त्र एक सेतु है। कालका निश्चय उन आकाशीय घटनाओंसे किया जाता है जो एक नियमसे बार बार फेरा किया करती हैं। इनमें सबसे प्रत्यक्ष और सहज गम्य वह हैं जो सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और तारोंके संयोग वियोगके कारण देख पड़ती हैं। यह घटनाएं किस किस क्रमसे और कब कब होती हैं; और भिन्न भिन्न स्थानोंसे देखने पर इनके समयमें क्या भेद पड़ता है–इन प्रश्नोंका ज्ञान जिस विज्ञानसे किया जाता है उसको ज्योतिर्विज्ञान अथवा ज्योतिःशास्त्र कहते हैं। इस शास्त्रके ज्ञान बिना स्थान या कालका निश्चय करना असंभव है और समयके निश्चय बिना कोई सामूहिक काम जिसका सम्बन्ध बहुतसे जन समुदायसे हो सुचारु रूपसे

नहीं हो सकता। ज्योतिःशास्त्र सम्बन्धी अन्वेषण और अध्ययनकी आवश्यकता पहले पहल कालका निश्चय करनेके लिए पड़ी। इसलिए हमारे संस्कृत साहित्यमें इसको काल विधान शास्त्र भी कहते हैं। काल विधानकी आवश्यकता यज्ञयागादि धार्मिक कृत्योंके समयका निश्चय करनेमें बहुत पड़ती थी; इसलिए कालविधान शास्त्र हमारे वेद-का एक बड़ा आवश्यक अंग समझा जाने लगा। इसकी प्रशंसा वेदांग ज्योतिषके शब्दोंमें इस प्रकार की गयी हैः—

वेदाहि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदम् काल विधान शास्त्रम् यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्॥३॥

—याजुषज्योतिष

अर्थात् यज्ञके लिए वेदका प्रादुर्भाव हुआ और यज्ञ दिन, मास, ऋतु तथा अयन इत्यादि काल मानोंके अधीन हैं इसलिए यज्ञ करनेके समयका उचित ज्ञान उसीको हो सकता है, जो इस काल विधान शास्त्रको जानता है।

ज्योतिःशास्त्रके लिए हमारे पूर्वजोंने जो उच्च स्थान नियत किया उसके लिए वह सर्वथा योग्य है; इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। उस आदि कालमें जब कि ज्योतिर्विज्ञानका पता नहीं था लोगोंको समय निश्चय करनेमें कितनी कठि-नाइयाँ पड़ती होंगी; इसका अनुमान हम लोग कल्पना द्वारा नहीं कर सकते। यदि हम अपने संस्कृत साहित्यके वेद, ब्राह्मण, वेदांग, स्मृति, सूत्र, इतिहास, पुराण आदि ग्रन्थोंको जिनमें ज्योतिषकी चर्चा जगह जगह भरी पड़ी है देखें तो पता चलता है कि हमारे पूर्वजोंने कितने अध्यवसाय, प्रकृति निरीक्षण और वाद विवादसे इस सिद्धान्तको स्थिर किया है। ज्योतिः शास्त्र एक ऐसा विषय है जिसके नियमोंकी सत्यताकी जाँच आकाशको देख कर सहज ही की जा सकती है। इसलिए इसका कोई सिद्धान्त उस समय तक अचूक नहीं कहा जा सकता जब तक कि उसका मेल प्रत्यक्षसे न देख पड़े। यही कारण है कि हमारे ज्योतिः शास्त्रके प्रवर्तक भिन्न भिन्न आचार्य माने जाते हैं; जिनके मतोंमें कुछ न कुछ विभिन्नता अवश्य पायी जाती है। फिर उन प्रवर्तकोंके अनु-गामी सैकड़ोंकी संख्यामें हैं; जिन्होंने अपने पूज्य आचार्योंके सिद्धान्तोंमें प्रत्यक्षके अनुकूल जगह जगह संशोधन करके उनके नियमोंको ऐसा बनाने का प्रयत्न किया है कि किसी घटनाके प्रत्यक्ष और नियमानुसार जाने गये समयोंमें कुछ अंतर न पड़े। सौ बातकी एक बात यह कि ज्योतिःशास्त्रके ऐतिहासिक अध्ययनसे पता चलता है कि हमारे ऋषि मुनि वैज्ञानिक दृष्टिसे ही ज्योतिःशास्त्रका अध्ययन अध्यापन करते थे और पुरानी लकीरके फकीर नहीं होते थे, जैसा कि आजकलके कुछ ज्योतिषी देखे जाते हैं।

जहाँ ज्योतिःशास्त्रका ऐसा उच्च स्थान था वहाँ यह भी देखनेमें आता है कि कुछ ग्रन्थों-में ज्योतिषीकी बड़ी निन्दा भी की गई है। यहां तक कि यह कहावत प्रसिद्ध हो गयी है-कि जिस घरमें वैद, ज्योतिषी और ओझा एक बेर घुसें उसका सत्यानाश कर दें। इसका कारण यह जान पड़ता है कि जिन ज्योतिषियों तक साधारण मनुष्योंकी पहुंच होती है वह प्रायः ज्योतिष सिद्धान्तसे अनभिज्ञ होते हैं और केवल मुहूर्त या ग्रह आदि-का विचार करके शुभ अशुभ फल कह कर अपनी जीविका चलाते हैं। साधारण मनुष्य तो ज्योतिष-से केवल यही अर्थ समझते हैं कि ज्योतिषी केवल शुभाशुभ फलका बतलानेवाला होता है। फिर जहां पेट पालनका प्रश्न आता है वहां जब उचित रीतिसे काम नहीं चलता तब बहुधा लोग उचित अनुचितका विचार छोड़ कर अपने कार्यको सिद्ध किसी तरह करने लगते हैं; जिससे उनकी जगह जगह निन्दा होने लगती है।

ज्योतिःशास्त्रका अच्छा ज्ञान गणितकी अच्छी जानकारी बिना नहीं हो सकता। इसलिए ज्योतिष और गणितका सम्बन्ध अटूट है। यहां तक कि ज्योतिषीको लोग गणक भी कहते हैं। ब्रह्म गुप्तको

भास्कराचार्यने गणक-चक्र-चूड़ामणि कहा है। यदि ज्योतिष सिद्धान्तमें गणितकी आवश्यकता न पड़ती तो गणितका विकास जितना इस समय है उतना ही होता, यह माननेमें संदेह है। गणित शास्त्रका आदिका इतिहास ज्योतिःशास्त्रके इतिहास से भिन्न नहीं है। हमारे यहां गणितका अध्ययन अध्यापन ज्योतिषके लिए ही किया जाता था और गणित ज्योतिषका एक प्रधान अंग समझा जाता था। यही कारण है कि प्राचीन कालमें हमारे पूर्वजोंने गणितमें इतनी उन्नति की थी कि उसकी चर्चा देश देशान्तरोंमें फैली थी और विदेशी लोग यहांके ग्रन्थोंका अनुवाद अपनी अपनी भाषाओंमें करके अपनेको धन्य समझते थे। इसका जिसको साक्षात्कार करना हो वह अरबी ज्योतिष और गणितके ग्रन्थोंको अब भी पढ़े और देखे कि अरब-के निवासी, भारतीय आर्योंके कितने ऋणी हैं। और उनके यूनानी और रोमन जातिके लोग कितने ऋणी हैं। यह बात अरबके उदार विद्वानोंने अपने ग्रन्थोंमें मुक्तकंठसे स्वीकार की है। यहां इसकी चर्चा छेड़नेका यह कारण नहीं है कि हम अरब-वालोंको नीचा दिखावें वरन् इसलिए कि उस समय हम लोगोंका व्यवहार विद्या और व्यापारमें और और देशोंसे भी था और एक दूसरेसे नयी बात सीखनेमें तनिक भी संकोच नहीं होता था, क्योंकि विद्या किसी देश विशेषकी सम्पत्ति नहीं है; वह सारे संसारके लिए सत्य है और इसलिए उसके अधिकारी सारे संसारके मनुष्य हो सकते हैं। हमारे यहांका तो आदर्श यह है:—

उत्तम विद्या लीजिये जदपि नीच पै होय।
परो अपावन ठौरमें कंचन तजत न कोय॥

पर समयने अब पलटा खाया है। जहां हमारे पूर्वज अपने उद्योग और अध्यवसायसे सारे संसा-रके प्रशंसा पात्र थे, जहां हमारी सभ्यताकी चर्चा दूर दूर देशोंमें होती थी जिसको सुन कर वहांके उद्योगी पुरुष हमारे देशमें पहुंचनेके लिए सैकड़ों उपाय करते थे और उसमें अपनी जानको भी जोखिममें डालते थे, वहां अब यह दशा हो रही है कि वहांके निवासी अब हमको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। इसका कारण क्या है? पहले जहाँ हमारे पूर्वज सत्यकी खोजमें अपनी सारी आयु बिता देते थे वहां अब हमारी दशा यह हो गयी है कि हम अपने आलस्यके कारण उन्हींकी खोजी हुई बातोंको अटल सत्य मान कर उनके आगे एक कदम भी बढ़ना अपनी समझमें उनकी मर्यादामें बट्टा लगाना समझते हैं। इसका परिणाम यह हो रहा कि विदेशी लोग हमारी वर्तमान दशाको देख कर कहते हैं कि हमारे पूर्वज ऐसे हो ही नहीं सकते कि वह दूसरोंको कोई मौलिक वैज्ञानिक विचार दे सकें। यह लेखककी कोरी कल्पना नहीं है। यदि पाठक महोदय ह्विटनी, बरजेस, थीबो आदि महोदयोंके ज्योतिष सम्बन्धी लेखोंको देखें तो उनको स्वयम् ही मालूम हो जायगा। परन्तु सत्य बात कब तक छिपी रह सकती है। इन लोगोंके लेखोंसे जो विचार संघर्ष हुआ उससे हम लोगोंमें स्फूर्ति हुई और यह विचार उठा कि इन लोगोंका कहना कहां तक सत्य है। इसके फल स्वरूप भारतीय विद्वानों द्वारा अङ्गरेजी, संस्कृत मराठी और बङ्गलामें कई ग्रन्थ लिखे गये और एशियाटिक रिसेर्चेज़, इण्डियन ऐंटीक्वेरी, एपीग्राफिका इण्डिका, इत्यादि मासिक पत्रोंमें जिनके द्वारा पाश्चात्य विद्वान अपना मत समय समय पर प्रकट करते हैं यह लोग भी लिखने लगे। इस समुद्र मन्थनसे ज्योतिष सम्बन्धी कई ग्रन्थ रत्न प्रकट हुए परन्तु इनसे साधारण मनुष्य बहुत कम लाभ उठा सकते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि उनका प्रचार बड़े बड़े विद्वानोंको छोड़ कर साधारण श्रेणीके मनुष्योंमें नहीं हुआ, जिससे उनका दूसरा संस्करण होनेका अवसर ही नहीं मिला। फिर भी मराठी, बङ्गला और अङ्गरेजीमें कुछ पुस्तकें मिल सकती हैं; जिनसे उन भाषाओंके जानने वाले कुछ लाभ उठा सकते हैं। परन्तु शोक की बात है कि हिन्दीमें जो कि सारे भारत वर्षकी

राष्ट्र भाषा मानी जाती है और जिसके बोलने और समझने वाले १३, १४ करोड़की संख्यामें गिने जाते हैं ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है; जिससे ज्योतिष शास्त्रके क्रम गत विकासका कुछ पता लगा सकनेकी बात तो दूर रही इतना ही मालूम हो सके कि हमारे पूर्वजोंने इस सम्बन्धमें क्या किया है। इसके प्रमाणिक ग्रन्थोंका ही अच्छा अनुवाद सर्व साधारणको नहीं मिल सकता जिससे कि जिज्ञासु अपनी पिपासा शान्त कर सके।

हिन्दीमें नाम लेनेके लिए कुछ ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ है। परन्तु उनकी भाषा और शैली ऐसी है कि उनसे शायद ही कोई मनुष्य विना गुरुकी सहायताके लाभ उठा सकता है। यह अनुवाद अधिकतर अस्पष्ट हैं। इस लिए इनके सहारे कुछ दूर तक आगे बढ़ने पर ऐसी उलझनें पैदा हो जाती है कि जिज्ञासु हार मान कर वैठ जाता है।

जो लोग ज्योतिषके बारेमें कुछ जानते हैं उनमें ज्योतिष सिद्धान्तके दो ग्रन्थोंसे परिचय अच्छी तरह है, जिनमें एक सूर्य सिद्धान्त है और दूसरा सिद्धान्त शिरोमणि। सूर्य सिद्धान्तमें जो बात लिखी गयी हैं वह सूत्र रूपमें हैं; जिनकी कोई बहुत अच्छी टीका नहीं मिलती। इसलिए इनका समझना समझाना बड़ा कठिन समझ पड़ता है। दूसरा ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि है जिसमें मूल श्लोकोंके साथ साथ वासना नामक व्याख्या भी मूल ग्रन्थकार भास्कराचार्य द्वारा की गयी है। इस लिए इसके समझने समझानेमें उतनी कठिनाई नहीं पड़ती। इसके चार भाग हैं (१) लीलावती (२) बीज गणित, (३) गोलाध्याय और (४) गणिताध्याय।

लीलावतीका नाम भारतके कोने कोनेमें प्रसिद्ध है और यह अङ्क गणित पर आजसे कोई पौने आठ सौ वर्ष पहलेका बड़ा ही महत्व पूर्ण ग्रन्थ है। बीजगणितकी प्रसिद्धि लीलावतीके समान नहीं है; क्योंकि इसका काम विद्वानोंके सिवा साधारण लोगोंमें बहुत कम पड़ा। सिद्धान्त शिरोमणिमें ज्योतिष सिद्धान्तकी विशद रूपसे चर्चा की गयी है और जगह जगह यह भी दिखलाया गया है कि उन बातोंका प्रत्यक्ष अनुभव कैसे किया जा सकता है। गोलाध्यायमें सिद्धान्त शिरोमणिका उपपत्ति सहित व्याख्या दी गयी है। इसमें त्रिकोणमिति सम्बन्धी अनेक प्रश्न तथा उनके उत्तर दिये हुए हैं; जो गणितका इतिहास जानने वालोंके लिए बड़ी महत्वकी बातें हैं। इस ग्रन्थ रत्नकी हिन्दी टीका अच्छे ढंगसे जहां तक मुझे मालूम हुआ है केवल एक जगह हो रही है। इसके टीकाकार हैं लखनऊके नवलकिशोर विद्यालयके प्रधानाध्यापक ज्योतिषाचार्य पं० गिरिजाप्रसाद जी द्विवेदी। इसका गोलाध्याय मेरे पास है, जिसमें एक त्रुटि यह देख पड़ती है कि टीकाके हिन्दी भागमें उतना भी प्रयत्न नहींकिया गया है जितना संस्कृतमें मूल ग्रन्थकारकी वासना व्याख्यामें किया गया है। इस टीकामें एक विशेषता यह है कि जहां कहीं नवीन आविष्कारोंके बतलानेकी आवश्यकता थी वहां उनका वर्णन साधारणतः अच्छी तरह सचित्र किया गया है। परन्तु पुस्तक बहुत ही लापरवाहीसे छापी गयी है। कागज़ निकृष्ट श्रेणीका लगा हुआ है और छापेकी भूलें अनेक हैं। इसी प्रेसमें उपर्युक्त विद्वान द्वारा गणिताध्याय भी छप रहा है; परन्तु अभी तक पूर्ण नहीं हुआ, यद्यपि इसका छपना दो तीन वर्ष पहलेसे आरंभ हुआ है। इस टीकाके सम्बन्धमें यहां लिखनेकी आवश्यकता इस लिए पड़ी कि हिन्दी भाषामें सिद्धान्त शिरोमणि जैसे प्रसिद्ध और उपयोगी ग्रन्थकी कुछ अच्छे ढंगसे लिखी हुई टीका मौजूद है। परंतु जिसकी गणना अपौरुषेय ग्रन्थोंमें की जाती है और जिसका प्रचार एक न एक रूपमें सारे भारतवर्षमें प्रत्यक्ष रूपसे कोई डेढ़ हजार वर्षसे है और जिसकी संस्कृत तथा अँग्रेज़ी टीकाओंकी संख्या दो दर्जनके लगभग है

ऐसे अत्यन्त प्रसिद्ध और महत्व पूर्ण ग्रन्थ सूर्य सिद्धान्तकी हिन्दी टीका विशद व्याख्याके साथ कोई नहीं है।

गिनानेके लिए इस समय इसके चार अनुवाद हिन्दीमें मौजूद हैं। एकको पं० बलदेव प्रसाद मिश्र मुरादाबादी ने किया है; जिसमें संस्कृतकी गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीका भी सम्मिलित है। इसमें हिन्दीके अस्पष्ट अनुवादके सिवा कुछ नहीं है। चित्र जो ऐसे ग्रन्थोंमें बड़े आवश्यक होते हैं नहीं हैं। उदाहरण अन्तमें ४, ५ पृष्ठोंमें दिये हुए हैं। यह वेंकटेश्वर प्रेससे १९४८ विक्रमीयमें प्रकाशित हुई थी।

दूसरी टीका पं० दुर्गाप्रसाद जीकी है और १९५४ विक्र० में प्रकाशित हुई है। यह मेरे देखनेमें नहीं आयी। पं० इन्द्रनारायण द्विवेदीके हिन्दी अनुवादमें इसका नाम आया है।

तीसरी टीका बाबू उदयनारायण सिंहकी लिखी १९६० विक्र० में प्रकाशित हुई थी। इसके देखनेका सौभाग्य मित्रवर पं० रामजीलाल शर्माकी कृपासे मुझे हुआ। इसकी भूमिका बड़ी लम्बी चौड़ी है; परन्तु टीका केवल मूल श्लोकोंका अनुवाद मात्र है। उदाहरण भी अधिकतासे मिलते हैं, चित्र देनेका भी वचन दिया गया है, परन्तु वह पुस्तकमें मुझे कहीं नहीं देख पड़े। इन महोदयने ज्योतिष सिद्धान्तके प्रचार करनेमें बहुत प्रयत्न किया। इन्होंने ज्योतिष सिद्धान्तके तीसरे प्रमाणिक ग्रन्थ आर्यभटीयका भी अनुवाद किया है। इनका उद्योग प्रशंसनीय है; परन्तु इस समय उस अनुवादसे विद्यार्थियोंका कोई काम नहीं निकल सकता। इससे केवल वही लोग लाभ उठा सकते हैं जो ज्योतिष सिद्धान्तके विषयमें कुछ जानकारी रखते हों। चौथी टीका हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे प्रकाशित मित्रवर पंडित इन्द्र नारायण द्विवेदीकी लिखी हुई है। इसमें भी एक लम्बी भूमिका है, जिसमें सूर्य सिद्धान्तको अपौरुषेय सिद्ध करनेका अच्छा प्रयत्न किया गया है और उन विद्वानोंका खंडन किया गया है, जो इसको कोई डेढ़ हजार वर्ष पहलेकी लिखी हुई मानते हैं। पुस्तकके मुख्य भागमें मूल श्लोकोंके साथ साथ हिन्दी अनुवाद दिया गया है; जो अन्य अनुवादोंसे भाषा और शैलीके विचारसे अच्छा है। कहीं कहीं टिप्पणी भी मिलती हैं। परन्तु इसमें न तो उदाहरण दिये गये हैं और न पारिभाषिक शब्दोंको ही अच्छी तरह समझानेका प्रयत्न किया गया है, चित्र भी कहीं नहीं हैं। छापनेकी भूल भी बहुत है; इस अभावसे विद्यार्थियोंको जो कठिनाइयां उपस्थित होती हैं उनका अनुभव वही लोग कर सकते हैं जिनको बीज गणित, रेखा गणित, और त्रिकोणमिति इत्यादि ऐसे ग्रन्थों से पढ़नेको कहा जाय; जिनमें चित्र और उदाहरण न दिये गये हैं और केवल नियम लिख दिये गये हैं। इस लिए इस अनुवादसे भी उन जिज्ञासुओंको बहुत लाभ नहीं हो सकता, जो बिना किसी विशेषज्ञके सहारे स्वयम् इसकी उलझनोंको सुलझाना चाहते हों। इस कारण इसका प्रचार उतना नहीं हुआ जितना होना चाहिये। हिन्दी साहित्य सम्मेलन की मध्यमा परीक्षामें यद्यपि ज्योतिष भी एक ऐच्छिक विषय रखा गया है तथापि सूर्य सिद्धान्तकी टीका मौजूद होते हुए भी कोई परीक्षार्थी उससे लाभ नहीं उठाते, और ज्योतिषके प्रश्नोंमें उन प्रश्नोंको बहुधा छोड़ देते हैं जो सूर्य सिद्धान्तसे पूछे जाते हैं।

इसलिए एक ऐसी टीकाकी आवश्यकता है; जिसमें सूर्य सिद्धान्तकी ऐसी व्याख्या हो कि ज्योतिःशास्त्रका उत्सुक विद्यार्थी अंकगणित बीज गणित और त्रिकोणमितिके प्रारंभिक ज्ञानसे ही उसके रहस्योंको बिना किसी विशेषज्ञकी सहायताके जो आज कल बहुत कम मिलते हैं, जान सके। इसी उद्देशसे सूर्य सिद्धान्तकी एक टीका 'विज्ञान' में क्रम क्रमसे निकलेगी। इसका ढंग यह होगाः—(१) पहले मूल श्लोक रहेगा; (२) श्लोकोंके नीचे उनका साधारण अर्थ रहेगा; (३) फिर उसकी व्याख्या चित्र और उदाहरणके

साथ दी जायगी और जहाँ कहीं अन्य भारतीय ग्रन्थों की सहायतासे समझानेमें सरलता होगी वहां उनका भी मत दे दिया जायगा; और (४) जहां कहीं आवश्यकता होगी उन नवीन आविष्कारोंकी चर्चा की जायगी जो आज कलके सूक्ष्म यंत्रों द्वारा जाने गये हैं; इससे ज्योतिषके विद्यार्थीको एक ही पुस्तकसे प्राचीन और अर्वाचीन दोनों प्रकारकी बातोंकी जानकारी सहज ही हो सकेगी।

सूर्य सिद्धान्त जैसे कठिन ग्रन्थकी टीका करनेके लिए बड़ी योग्यताकी आवश्यकता है; जो इस लेखकमें नहीं है। क्योंकि न तो उसने इस विज्ञानको किसी गुरूसे सीखा है और न उसके पास इतना साधन ही है कि आज तक इस विषय पर अन्य भाषाओंके अच्छे अच्छे विद्वान जो कुछ लिख गये हैं उसका ही पर्याप्त अध्ययन कर सके। उसने इस विषयमें सहज प्रेम होनेके कारण दो चार ग्रन्थोंकी सहायतासे इसका अध्ययन आरम्भ किया था और यह देख कर कि लोगोंमें ज्योतिष सिद्धान्तके ग्रन्थोंका बहुत कम प्रचार है साहस किया कि इसकी एक टीका जहां तक अच्छी हो सके हिन्दी संसारके सम्मुख रखे। आशा है कि इससे उन जिज्ञासुओंको कुछ सुभीता होगा जो ज्योतिष सिद्धान्तके तत्वको हिन्दी भाषा द्वारा जानना चाहते है। इससे यह भी जान पड़ेगा कि हमारे पूर्वजोंने इस विषयमें कितना परिश्रम किया है और उनका संसार कितना ऋणी है।

अपनी अयोग्यताको देखते हुए यह आशा तो नहीं है कि यह टीका सब तरहसे पूर्ण होगी; परन्तु इतनी आशा अवश्य है कि इससे मार्ग कुछ साफ़ हो जायगा और भविष्यमें योग्य पुरुषोंके हाथमें इसका और भी अच्छा संस्कार हो सकेगा।

—महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

चायका लोप

यह बड़ी अद्भुत बात है कि चाय और काफ़ी दोनोंमें एक ही घटक हैं। दोनोंके गुण भी समान हैं। चायमें थीईन और काफ़ीमें कैफीन विशेष होता है। पर थीईन और कैफीन दोनों सत हैं और दोनों समान वस्तुएँ हैं। यह क्षार हैं, जो और पदार्थोंमें भी पाये जाते हैं। योपोन या क्रिस्मस-बैरी एक वृक्ष अमेरिकाकी दक्षिणी रियासतोंमें पाया जाता है, उसमें भी यही गुण होता है। यही क्षार उसमें भी पाया जाता है। वहांके मूल वासी बहुत प्राचीन कालसे उसीके पत्तोंको उबाल कर चाय का मजा लेते आये हैं। इसमें चायके स्वाद गुण सभी विद्यमान हैं।

भारतवर्षके वासियोंने तो व्यर्थ ही अपनी चाहको चाय पर चलाया। निम्न लिखित प्रकारसे चायसे सहस्रों गुनी अधिक स्वादिष्ट चाय बनाकर पी सकते हैं।

१—आध सेर पानीमें तोले भर गेहूं या जौके आटेका चोकर, तीन लौंग और ५ किशमिस डाल कर उबालिये। ५ मिनट खौलनेपर उतार लीजिये। छान कर पी लीजिये। ऐसा जायका लाख चाय पीने पर भी नहीं मिलता। खांसी जुकाम, सर्दी, बुखारकी यह अच्छी रोक है।

२—तुलसीके पत्ते गीले या सूखे हुए चायकी तरह उबाल कर इस्तेमाल किये जांय तो बहुत फायदा होता है।

इस प्रकार लोग जब चायसे अच्छा पदार्थ पावेंगे तो चायका लोप हो जायगा।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति॥ तै० उ०। ३। ५॥

भाग १६ } वृश्चिक, संवत् १९७९। नवम्बर, सन् १९२२ { संख्या २

चींटी

[ले०—श्री० शंकर राव जोशी]

चींटी त्वक्पत्र वर्गका कीड़ा है। इस जातिके कीड़ोंके चार पंख होते हैं। शान्त बैठने पर कीड़ेकी पीठ पंखोंसे ढक जाती है। इस जातिके कीड़ोंके मुख शहद आदि पदार्थ प्राशन करने योग्य होते हैं।

इस वर्गके अधिकांश कीड़ोंमें मादाके डंक होता है। डंकके चुभ जानेसे एक छोटा सा जखम हो जाता है और कुछ समय तक वेदना भी होती है। कीटावस्थामें इस वर्गके प्राणियोंके पैर नहीं होते। इस लिए उन्हें अपने पोषणके लिए दूसरों पर अवलम्बित रहना पड़ता है। इस पराधीन अवस्थामें उनके पूर्णावस्था प्राप्त सजातीय भाई उनकी सेवा करते हैं। और अनेक कष्ट सह कर उन्हें पाल पोस कर बड़ा करते हैं।

इस वर्गमें कई उपजातियाँ हैं। सदा उद्योगमें रत रह कर मधुर मधु देनेवाली मधुमक्षिका, मधुर गुंजारवसे कर्णेन्द्रिय तृप्त करनेवाला एवं कमलिनीका रसास्वादन करनेवाला मधुप, आदि प्राणी इसी वर्गके हैं। चींटीके समान परिश्रमी और बरैयाके समान विषैले कीड़े भी इसी वर्गके हैं। सारांशमें इस वर्गमें जाति उपजाति और भिन्न भिन्न स्वभावके प्राणियोंका समावेश होता है।

अर्वाचीन तत्ववेत्ता डार्विन महोदयने जबसे बंदरोंको मानव प्राणीका पूर्वज सिद्ध कर दिखाया है, तबसे उन्हें अपना पूर्वज माननेमें हमें लज्जा नहीं आती। बाह्याकारमें मनुष्य और बंदरमें पुष्कल समानता है, परन्तु बुद्धिमें बंदरकी अपेक्षा

चींटीको ही मानव प्राणीसे अधिक समानता है। परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि बुद्धिबलसे मनुष्य जितने बड़े बड़े काम कर सकता है, वह चींटियां भी कर सकती हैं। चींटीके समान छोटेसे प्राणीके अद्भुत कामोंको देख कर आश्चर्यसे चकित होना पड़ता है। कार्य तत्परता, स्वार्थ त्याग, मकान बांधनेकी कुशलता, शत्रुको नामशेष करनेकी प्रबल इच्छा आदि गुण इसमें कूट कूट कर भरे हैं। यदि यही गुण मानव जातिमें पाये जाते तो संसार स्वर्ग बन जाता।

चींटीकी मुख्य तीन जातियाँ हैं। १ फार्मिसिडी, २ पोनेरिडी, ३ मिर्मिसीडी। हरएक जातिमें कई उपजातियाँ हैं। शीत प्रधान देशोंमें चींटियां कम पाई जाती हैं, तो भी इङ्गलैण्डमें २३० उपजातियां पाई जाती हैं। भारत वर्षमें एक हजार से भी अधिक जातियोंका पता लग चुका है। और अनुमान किया जाता है कि अनुसंधान करने पर और भी कुछ जातियोंका पता लग सकेगा।

दो भिन्न भिन्न जातिकी चींटियोंके आचार व्यवहार समान नहीं होते। वह जमीनके अन्दर घर बना कर रहती हैं: अतएव उनके प्रति दिनके आयुष्यक्रमका समझना ज़रा कठिन है। दूसरे चींटियाँ समाज-प्रिय प्राणी हैं। वह हज़ारोंकी संख्यामें मिल कर रहती हैं। इतने बड़े समाजमें एक प्राणी पर नज़र रख कर उसका प्रति दिनका जीवनक्रम जानना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। अनेक विद्वानोंने वर्षों परिश्रम कर कई बातोंका पता लगाया है, तो भी उक्त कठिनाईके कारण कई बातोंका अभी तक पता ही नहीं चला है।

चींटीका अण्डा सफेद या पीली झाईं युत सफेद होता है। रखनेके करीब १५ दिन बाद अण्डे फूटते हैं। कभी कभी कुछ विशेष कारणोंसे अण्डे दो दो मास तक नहीं पकते। अंडोंका जलदी या देरीसे पकना अधिकांशमें तापक्रमपर ही अवलम्बित रहता है। अंडोंमेंसे निकलनेवाला कीड़ा सफेद रंगका होता है। उसका सर मोटा और नीचेका भाग पतला होता है। इसीके पांव भी नहीं होते। छत्तेकी पूर्ण बाढ़को पहुंची हुई चींटियां जुदी जुदी उम्रकी इल्लियोंको जुदे जुदे स्थानमें रखती है।

चींटीकी कीटावस्था एक माससे लगाकर चार मास तक रहती है। तदनन्तर कोशावस्था प्रारंभ होती है। कुछ जातिकी चींटियाँ अपने चारों ओर आवरण बनाती हैं और कुछ खुली ही रहती हैं। कुछ चींटियाँ आवरण क्यों बनाती हैं और कुछ क्यों नहीं बनातीं, इस प्रश्नका समुचित उत्तर कीटक शास्त्र वेत्ता नहीं दे सकते। कोशावस्था पूर्ण हो जानेपर पूर्ण बाढ़को पहुँची हुई चींटी बाहर निकल आती है। कोशमेंसे निकलते समय चींटीको बड़ा कष्ट होता है। इस समय पूर्णावस्था प्राप्त चींटियां अपनी स्पर्शेन्द्रियसे उसे मदद देती हैं।

यह बात निश्चय पूर्वक नहीं कही जा सकती कि पूर्णावस्था प्राप्त चींटी कितने वर्ष तक जिन्दा रहती है। प्राणिशास्त्र वेत्ताओंका मत है कि नर जलदी मर जाता है। मादा और मज़दूर चींटियां बहुत लम्बे समय तक जिंदा रहती हैं। लबक नामक कीटक शास्त्र वेत्ताके पास एक चींटी थी जो १५ वर्ष तक जिन्दा रही थी। उनके छत्तेमें अठारह बीस वर्षकी उम्र वाली मज़दूर चींटियाँ भी मौजूद थीं।

चींटीकी स्पर्शेन्द्रियका आकार मनुष्यके हाथके आकारके समान होता है। वह मनुष्यके हाथकी तरह अपनी स्पर्शेन्द्रियको झुका सकती है। स्पर्शेन्द्रियको चींटीका हाथ कह सकते हैं। चींटीके नेत्र सादा या पहलूदार होते हैं। सादा नेत्र तीनसे ज़्यादा नहीं होते। परन्तु पहलूदार आँखोंकी संख्या अनियमित होती है। पोनेरा कांट्रेक्टा नामक जाति की चींटीके नेत्र चार पांच पहलूके होते हैं। परन्तु फार्मिका प्राटेंसिस नामक जातिकी चींटीके नेत्रोंके पहलुओंकी संख्या १२०० होती है। टाफ्लोपोन नामक चींटियोंकी एक ऐसी जाति भी है, जिसके आंखें ही नहीं होतीं।

नर और मादाके पंख होते हैं। गर्भाधानके होते ही मादा अपने पंख उखाड़ कर फेंक देती है। सूक्ष्म दर्शक यंत्रकी सहायतासे मादाकी पीठपर उखाड़े हुए पंखोंके चिन्ह स्पष्ट नज़र आते हैं। मज़दूर चींटीके पंख आते ही नहीं। चींटीके शरीरपर छः छिद्र होते हैं; जिनके द्वारा वह श्वासोच्छ्वासकी क्रिया करती है। चींटीकी छाती और पेटके बीचमें कमर होती है। पेट पर रेखाएं सी होती हैं और वह छह भागोंमें विभक्त रहता है। नर का पेट सात भागोंमें विभक्त रहता है।

कुछ चींटियोंके पेटके सिरेपर डंक होता है। और डंकके पास ही दो छोटी छोटी गाठें रहती हैं, जिनमें विष भरा रहता है। कुछके डंक तो नहीं होता; परन्तु विषकी थैलियां होती हैं। यह मुंहसे काटकर जखममें विष डाल देती हैं। इस विषके बलसे वह अपने बड़े बड़े शत्रुओंको भी परास्त कर सकती हैं।

चींटी बड़ा बहादुर प्राणी है। परन्तु सभी जातिकी चींटियां एक सी नहीं होतीं। मिरमेसिना लिट्रीली नामक चींटी शत्रुपर हमला नहीं करती। शत्रुके चढ़ आनेपर वह मुर्देकी तरह दम खींच कर पड़ जाती है। इसकी त्वचा कड़ी होती है। अतएव शत्रुके शस्त्राघातसे इसे बिलकुल हानि नहीं पहुंचती। यह अपने छत्तेका दरवाजा इतना छोटा बनाती है कि शत्रु उसके अन्दर नहीं घुस सकता। इसके अलावा पहरा देनेके लिए दरवाजे पर पहरेवाले नियुक्त किये जाते हैं। इस जातिकी चींटीके शरीर मेंसे एक प्रकारकी तेज़ दुर्गंध आती है; जिससे भयभीत हो, शत्रु दूर ही रहता है।

फार्मिका रूफा नामकी चींटी बहुत बहादुर होती है। वह दल बांधकर शत्रुपर हमला करती है। फार्मिका एकफीटा जातिकी चींटी छोटी होनेपर भी युद्ध-कलामें बड़ी निपुण होती हैं। अधिक बलवान शत्रुसे पाला पड़ते ही वह एक दम उछल कर उसके शरीरपर जा चढ़ती हैं और तब अपने मुंह से उसका सर काट डालती हैं। शत्रु वर्गकी इकली दुकली चींटी चंगुलमें फंसते ही वह उसे बड़ी निर्दयतासे मार डालती हैं। पालि एरगस जातिकी चींटी बहुत ही हिम्मतवर होती है। बलवानसे बलवान शत्रुपर भी वह एक दम चढ़ाई कर देती है और उसे हराये बिना पीठ नहीं दिखाती। भिन्न भिन्न जातिकी चींटियां भिन्न भिन्न प्रकारसे युद्ध करती हैं और उनका युद्ध कौशल देखकर आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। स्थानाभावके कारण इस सम्बन्धमें यहां कुछ नहीं लिखा जा सकता।

छत्तेमें तीन प्रकारकी चींटियां रहती हैं—नर, मादा और मजदूर। मादा चींटी 'रानी' कहलाती है। प्रौढ़ावस्था प्राप्त होते ही इसके पंख फूट आते हैं और तब कुछ समयके लिए वह छत्तेमेंसे उड़ जाती है। गर्भाधान हो जानेपर रानी अपने छत्तेमें लौट आती है। छत्तेमें आते ही वह अपने पंख उखाड़ कर फेंक देती है और तब योग्यकाल प्राप्त होनेपर अण्डे देने लगती है।

प्रजोत्पादन करना ही नर चींटीका एक मात्र कर्तव्य रहता है। यह कर्त्तव्य समाप्त होते ही वह परलोक सिधार जाती है। छत्तेमें इसका कुछ भी उपयोग नहीं होता। रानी और मज़दूरके सब अवयव करीब करीब एकसे होते हैं। परन्तु न तो मज़दूरके पंख ही निकलते हैं और न उनके सन्तति ही होती है। अण्डे देनेका काम रानीके जिम्मे रहता है। वह नाम मात्रके लिए जननी कहलाती है, क्योंकि शिशुके लालन पालनका सब भार बेचारे मज़दूरोंको ही उठाना पड़ता है। नया छत्ता बनाना, पुराने छत्ते को बढ़ाना और उसकी दुरुस्ती करना, अण्डोंकी हिफाजत करना, इन्हें उष्णता पहुँचाना, नवजात कीड़ेको भोजन देना, शत्रुसे छत्तेकी रक्षा करना, अन्न जुटाना आदि सब काम मज़दूर चींटियोंको ही करना पड़ता है। वास्तवमें मज़दूर चींटीका अण्डोंसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रहता, फिर भी वह निरपेक्ष बुद्धिसे उनकी सेवा करती

है। समाज-हितके लिए निस्स्वार्थ बुद्धिसे काम करनेकी हविस हम भारतवासियोंके लिए अनुकरणीय है।

एक ही छत्तेमें दोतीन जातिकी मज़दूर चींटियां पाई जाती हैं। आस्ट्रेलिया द्वीपमें कैंपोनोटस नामक चींटियोंकी एक जाति है। इस जातिकी कुछ मज़दूर चींटियोंके पेट बहुत ही बड़े होते हैं। अतएव वह बिलकुल चपल नहीं होतीं। अन्य मज़दूर चींटियोंको इनके भोजनकी भी व्यवस्था करनी पड़ती है और यह भी खूब डटकर खा लेती हैं। इनके पेटमें भोजन भी खूब अमाता है। कई रोज़ तक यह हज़म भी नहीं होता—उनके पेटमें ज्योंका त्यों बना रहता है। एक आध बार काफी भोजन न मिलने पर छत्तेकी चींटियां इनका पेट फोड़कर भोजन खा जाती हैं। इन्हें हम खाद्य पदार्थ सुरक्षित रखनेके कोठार कह सकते हैं। दक्षिण यूरोपकी फोडोल नामक जातिकी चींटियोंमें भी दो प्रकारके मज़दूर होते हैं। एक प्रकारके मज़दूरोंका सर बड़ा और शरीर मोटा होता है। छत्तेके दरवाजोंकी रक्षाका भार इन्हीं पर छोड़ दिया जाता है। दूसरे प्रकारके मज़दूरका सर और शरीर उतना बड़ा नहीं होता। जब अन्य मज़दूर किसी कामके लिए बाहर निकलते हैं, तो यह बड़े सर वाले मज़दूर उनकी रक्षाके लिए सिपाहियोंकी तरह साथ रहते हैं। परन्तु इससे यह नहीं समझ बैठना चाहिये कि शत्रुका आक्रमण होने पर केवल बड़े सरवाले मज़दूर ही उसका सामना करते हैं। शत्रुके चढ़ आने पर दोनोंही प्रकारके मज़दूर उससे लोहा लेनेको तैयार हो जाते हैं और पीठ दिखाकर रणक्षेत्र छोड़ भाग जाना तो वह जानते ही नहीं। यह तो शत्रुको जीत कर ही लौटते हैं या रण क्षेत्र में मरते दम तक जूझते रहते हैं।

रानी जितने अण्डे देती है वह सब एक से ही होते हैं! तब कुछ अण्डोंमेंसे एक प्रकारके मज़दूर और कुछमेंसे दूसरे प्रकारके मज़दूर क्यों निकलते हैं? इस प्रश्नका समुचित उत्तर अभी तक नहीं मिला है। वेस्टवुड नामक विद्वानका मत है कि मज़दूर कुछ अण्डोंकी व्यवस्था एक रीतिसे करते हैं और कुछकी दूसरी रीतिसे और यही कारण है कि भिन्न भिन्न प्रकारके मज़दूर पैदा होते हैं। परन्तु कई विद्वान इस मतको स्वीकार नहीं करते हैं। वह अनुसंधान कर रहे हैं।

छत्तेमें पद पद पर श्रम-विभागका तत्व दृष्टिगोचर होता है। नवजात चींटीकी त्वचा मृदु होती है। अतएव वह बाहरका काम नहीं कर सकती। और यही कारण है कि प्रारंभमें उनसे छत्तेमें ही काम कराया जाता है।

चींटियोंके रहनेके घर भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। कुछ चींटियां महीन कचरा कूड़ा और मट्टीको मिलाकर उससे अपने घर बनाती हैं। कुछ चींटियां अपने घर केवल मट्टीसे ही बनाती हैं। यह घर या छत्ते आधे तो जमीनके अन्दर रहते हैं और आधे जमीनसे ऊपर। छत्तोंमें कई मंज़िलें तहखाने, पुल रास्ते, गैलरी आदि जहांके तहां बने होते हैं। छत्तोंकी रचना पुल आदिको देख कर ऐसा कौन है जो चींटोंकी बुद्धिमानीकी प्रसंशा न करेगा।

शहद कोड़े आदि ही चींटियोंके भक्ष्य हैं। कुछ जातिकी चींटियां चिकटाके गुद द्वारके पास की ग्रंथियोंमेंका रस भी पीती हैं। वह गाय भैंसकी तरह इन्हें पालती भी हैं। इस सम्बन्धमें चिकटा' 'शीर्षक लेखमें विस्तारसे लिखा जा चुका है।*

चींटियोंके हजारों शत्रु हैं। कई प्रकारके कीड़े छत्तेमें घुस कर जुटा कर रखे हुए खाद्य पदार्थ और अण्डे खा जाते हैं। सांप तो इन छत्तोंमें घुस कर उसे ही अपना निवास स्थान बना लेता है।

जिस प्रकार भिन्न भिन्न देशोंके मनुष्योंका स्वभाव भिन्न भिन्न प्रकारका होता है, उसी प्रकार भिन्न भिन्न देशोंकी चींटियोंका स्वभाव भी जुदा जुदा होता है। कुछ जातिकी चींटियां दूसरी जातिकी चींटियोंपर आक्रमण कर उन्हें अपना

---

* विज्ञान भाग १४ संख्या ३ पृष्ठ १०६

गुलाम बना कर रखती हैं। कुछ चींटियां दूसरेकी सेवा करनेमें ही अपनेको कृतार्थ समझती हैं। और कुछ जातिकी चींटियां एकान्त प्रिय हैं।

चींटियोंके समान उद्योगप्रिय प्राणी शायद ही कोई हो। यहां तक कि मनुष्य भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता। चींटियां प्रतिदिन सोलह सोलह घंटे काम करती हैं। प्रतिदिन १६ घंटे काम करनेवाले प्राणी इस संसारमें कितने होंगे!

फुरसतके समय वह खेलती भी हैं। ह्यबरने चींटियोंको खेलते देखा है। वह लिखते हैं—

"खेलते समय वह पिछले पांवोंपर खड़ी हो जाती हैं। एक दूसरेकी स्पर्शेन्द्रिय पकड़ कर खींचती हैं। सारांशमें, सवेरे या शामको जिस तरह कुत्ते खेलते हैं उसी तरह चींटियां भी खेलती हैं।"

चींटी स्वच्छता प्रिय प्राणी है। एक आध चींटीके शरीरपर कुछ खराब पदार्थ लग जानेपर दूसरी उसे चाटकर साफ कर देती हैं; उनके छत्तेमें भी चारों ओर स्वच्छता रहती है।

छत्ता—गर्भाधान हो जानेपर या तो रानी पुराने छत्तेमें लौट आती है या नवीन उपनिवेश बसाती है। कभी कभी तो रानीको कुछ मज़दूर उपनिवेश बसानेमें मदद देते हैं और कभी कभी रानी अपने निजके परिश्रमसे ही नवीन छत्ता बना कर उपनिवेश बसाती है। रानीके पुराने छत्तेमें लौट आनेपर मज़दूर छत्तेको बढ़ाने लगते हैं। बढ़ते बढ़ते छत्ते २०० फुट तक लम्बे हो जाते हैं। यदि रानी नया उपनिवेश बसाती है, तो उसे सब काम स्वयं करना पड़ता है। और ऐसी अवस्थामें प्रारंभमें छत्ते की सब चींटियां उसीकी सन्तान होती हैं। प्रारंभमें छत्ता भी छोटा ही होता है। छत्तेके वर्णनको पढ़कर उसकी रचना समझना कठिन है; अतएव हम छत्तेका वर्णन करनेके झंझटमें नहीं पड़े हैं। कारण कि उसकी रचना बड़ी पेचीली है।

वृक्ष और चींटियोंका सम्बन्ध

वृक्ष और चींटियोंका पारस्परिक सम्बन्ध बतानेके पहले वनस्पति शास्त्रके एक विषय पर यहाँ संक्षेपमें कुछ लिखना अप्रासंगिक न होगा।

हर एक वृक्षमें फल लगनेके पहले फूल आते हैं। फूलके भीतर केसर रहती है। यह दो प्रकारकी होती है—पुंकेसर और स्त्री केसर। इन दोनों प्रकारके केसरका संयोग हुए विना फल आही नहीं सकता। एकेली स्त्रीकेसर या पुंकेसरसे फलोत्पत्ति नहीं हो सकती है। कभी कभी यह दोनों प्रकारकी केसर एक ही फूलमें रहती हैं, जिससे संयोग होनेमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं होती। परन्तु कभी कभी एक फूलमें पुंकेसर रहती है और दूसरेमें स्त्रीकेसर। फलोत्पत्तिके लिए इन दोनोंका संयोग होना अनिवार्य्य है। इतना ही नहीं वरन् दो भिन्न भिन्न वृक्षोंकी केसरोंका संयोग होनेसे उत्तम फल आते हैं। यह डार्विन महोदयका मत है। इस मतानुसार भिन्न भिन्न पौदोंकी केसरका मालती माधवके समान सम्बन्ध करा देनेके लिए एक आध कामकंदकी की ज़रूरत होती है। और पंख और बिना पंख वाले कीड़े ही यह काम करते हैं। पंखवाले कीड़ोंसे यह काम जलदी होता है। बिना पंखके कीड़े एक फूलसे दूसरे फूल तक बड़ी कठिनाईसे जा पाते हैं। अतएव दोनों प्रकारकी केसरका संयोग करानेमें चींटीकी अपेक्षा शहदकी मक्खी और पतंगके समान प्राणियोंका ही ज्यादा उपयोग होता है। कभी कभी चींटियोंसे इस काममें रुकावट भी पहुँचती है। चींटी मधु प्राशन करनेके लिए फूलमें घुस जाती है। यदि संयोगवश इसी समय एक आध पतंग या शहदकी मक्खी भी फूल पर आकर बैठ जाय और मधु प्राशनके लिए अपनी सूंडको फूलके अन्दर प्रवेश करावे, तो चींटी चट काट खाती है। डंक लगते ही प्राणी वहांसे उड़ जाता है और पुनः उस ओर दृष्टिपात तक नहीं करता। अतएव चींटियोंको फूल तक न जाने देना चाहिये। प्रकृतिने इसके लिए भिन्न भिन्न योजनाएं की हैं; जिससे चींटी और उसीके समान दूसरे कीड़े फूल तक नहीं पहुंच सकते।

१—कुछ फूल पानीमें ही होते हैं।

२—कुछ फूलोंके नीचे एक हरे रंगकी कटोरी होती है, जिसमें ओस या बरसातका पानी भर जाता है।

३—कुछ फूलोंकी पँखुड़ियाँ बाहरकी ओरसे इतनी चिकनी होती हैं कि चींटी फिसल कर नीचे गिर पड़ती है।

४—कुछ फूलोंकी शहदके पासवाली पंखुड़ियां इतनी मज़बूतीसे मुंदी रहती हैं कि चींटी उनके अन्दर नहीं घुस सकती।

५—कुछ फूलोंकी मधु-ग्रंथिके पास छोटे छोटे कांटेसे रहते हैं; जिससे चींटी मधुतक नहीं पहुँच पाती।

इस प्रकार प्रकृतिने अनेक योजनाएं की हैं, जिनके द्वारा गर्भाधानमें किसी प्रकारकी बाधा उत्पन्न नहीं होती। तथापि ऊपरके विवेचन से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि चींटीसे वृक्षको कुछ भी लाभ नहीं पहुँचता। वृक्षके पत्तोंको खाने वाले हज़ारों कीड़ोंको मार कर वह वृक्षकी रक्षा करती है। फारेल नामक एक विद्वानने पता लगाया है कि एक चींटी एक मिनट में २८ कीड़े मार कर अपने छत्तेमें ले जाती है। इस हिसाबसे एक दिनमें चालीस हज़ार कीड़ोंका संहार होता है। संसारमें लाखों छत्ते हैं। जिनमें असंख्य चींटियां रहती हैं। यह प्रतिदिन कितने कीड़ोंका संहार करती होंगी!

अन्न जुटाने वाली चींटी

इंगलैंड आदि शीत प्रधान देशोंकी चींटियां अन्न संग्रह नहीं करतीं। जो भक्ष्य मिलता है, उसे वह उसी समय खा डालती हैं। परन्तु उष्ण कटिबंध की चींटियां अन्न संग्रह करती हैं और वह इस बात पर ध्यान रखती हैं कि दानोंमें अंकुर न फूट आवे। चींटीके छत्तेमें अन्नका दाना कितने ही समय तक क्यों न पड़ा रहे परन्तु वह अंकुरित नहीं होता। इससे यह तो निर्विवाद है कि वह एक आध युक्ति काममें लाती हैं, किन्तु अभी तक उस युक्तिका पता नहीं लगा है।

भारतवर्षमें लाल रंगकी छोटी छोटी चींटियां हैं जो अपने छत्तोंमें अन्न के दाने जुटाकर रखती हैं। अकालके ज़मानेमें कई गरीब लोग छत्तोंमेंसे अनाज निकालते पाये गये हैं। एक बार हमारे एक मित्रने कहा था कि एक मनुष्यको एक छत्तेमेंसे करीब अढ़ाई मन अनाज मिला था।

खेती करने वाली चींटियां

टेक्सस प्रान्तमें एक जातिकी चींटियां पाई जाती हैं, जो खेती करती हैं। यह अपने छत्तेके आस पासकी पांच छह फुट तककी जमीन कंकर आदि हटाकर साफ़ करती हैं और तब वहां एक प्रकारकी घास बोती हैं। इस घासके बीजको उस देशमें 'चींटीके चावल कहते हैं। बीजोंके पक जानेपर चींटियां उन्हें छत्तेमें उठा ले जाती हैं और तब उन्हें दूसरा मौसम आने तक सुरक्षित रख छोड़ती हैं।

मालवेमें चार पांच प्रकारके पौदोंको 'चींटीकी बाटी' 'चींटीके आम' या ऐसे ही नामोंसे पुकारते हैं। हमने इनमेंसे कुछ पौदोंको छत्तेके पासही उगते हुए देखा है, पर कह नहीं सकते कि यह चींटियों द्वारा बोये गये थे या आप ही आप उग आये थे।

चींटीकी नीतिमत्ता

एक एक छत्तेमें हजारों चींटियां रहती हैं, किन्तु वह कभी आपसमें नहीं लड़तीं। श्रम विभागके तत्वानुसार सब अपना अपना काम करनेमें लगी रहती हैं। इनके समाजकी सुव्यवस्था अपूर्व है। मानव समाजमें ऐसी सुव्यवस्थाका पाया जाना करीब करीब असंभव है। चींटीकी नीतिमत्ता मानव प्राणीकी नीति मत्तासे भी चढ़ बढ़ कर है।

शत्रु मित्रसे व्यवहार

छत्तेकी एक आध चींटीके जखमी या बीमार होजाने पर अन्य चींटियां उसकी योग्य शुश्रूषा करती हैं। परन्तु रोग असाध्य हो जानेपर वह उसे खींचकर छत्तेके बाहर डाल देती हैं। काम करनेपर एक आध चींटीके मट्टीके अन्दर दबजाने पर

दूसरी चींटियां पहले उसे बाहर निकालती हैं और तब अपना काम करती हैं। किन्तु शत्रुके साथ उनका व्यवहार बड़ा निर्दयता पूर्ण होता है। वह उसे बड़ी निर्दयतासे मार डालती हैं। शत्रुको पकड़ लेने पर गर्दन टूट जाने पर भी वह उसे नहीं छोड़तीं। चींटीके इस गुणसे लाभ उठा कर ब्राझिल देशके इण्डियन लोग जखम सीनेके लिए रेशमके धागेकी जगह इनका उपयोग करते हैं। जखमके दोनों ओरका किनारा चींटीके मुखमें देकर उसका सर काट डाला जाता है। पूरा जखम सीने तक यह क्रिया जारी रखी जाती है।

प्रसिद्ध प्राणी शास्त्रवेत्ता लवकका मत है कि मित्र भावकी अपेक्षा द्वेष बुद्धि ही चींटियोंमें अधिक पाई जाती है।

चींटी एक दूसरीको कैसे पहचानती हैं ?

कुछ विद्वानोंका मत है कि चींटी गंधसे अपने साथीको पहचानती हैं। अन्य कुछ विद्वान कहते हैं कि स्पर्शेन्द्रियके इशारोंसे पहचानती हैं। लवकने इस सम्बन्धमें पुष्कल छान बीन की है। उसे उक्त दोनों मत मान्य नहीं हैं। तथापि वह पहचानके साधनका पता नहीं लगा सका है।

चींटीकी भाषा और शब्द

चींटियोंके पारस्परिक विचार विनिमयका पता लगानेके लिए लवकने अनेकों प्रयोग किये थे। उनका मत है कि चींटीकी भाषा है परन्तु उस भाषाका पता वह नहीं पा सके। अपने एक प्रयोगका वर्णन करते हुए लवक महोदय लिखते हैं—

"मैं एक दिन नायगर जातिकी एक चींटीका हाल चाल ध्यान लगाकर देख रहा था। दिनभर वह छत्तेके बाहर रखे हुए अंडोंको भीतर लेजाकर रखनेमें लगी हुई थी। शामको मैंने उसे पकड़कर कैद कर लिया। दूसरे दिन सवेरे सवा सात बजे वह पुनः अंडोंके पास छोड़ दी गई। वह अंडे भीतर लेजाकर रखने लगी। नौबजे मुझे बाहर जाना पड़ा; अतएव वह पुनः एक कांचके बरतनमें कैद करली गई। शामको चार बजके चालीस मिनट पर वह फिर छोड़ी गई। इस बार उसने अण्डे नहीं उठाये। वह उन्हें देख भाल कर छत्तेमें चली गई और अपने आठ साथियोंको लिवा लाई। मेरी चींटी सबसे आगे थी। छत्तेमेंसे बाहर निकलते ही मैंने उसे पकड़कर कैद कर लिया। उसके साथी इधर उधर दौड़ने लगे। वह यह तो जानती ही नहीं थे कि किधर जाना है; लाचार कुछ समय तक इधर उधर दौड़ धूप करनेके बाद वह सब की सब छत्तेमें लौट गईं। साढ़े पांच बजे मैंने अपनी चींटीको पुनः अण्डोंके पास छोड़ दिया। इस बार भी वह अण्डे देख भाल कर छत्तेमें चली गई। और थोड़े ही समय बाद अपने १३ साथियों-को लिवा लाई। दोनों ही बार वह अपने साथ अण्डे न ले गई थी। अतएव यही मानना पड़ता है कि वह अपने साथियोंको बुला कर ही लाई थी—उसने उनको अपने साथ चलनेके लिए अवश्य ही कहा होगा; कारण कि बिना कहे वह अपने साथियोंको साथ कैसे ला सकती थी।"

ऊपरके विवेचनपरसे पाठकोंको ज्ञात हो जायगा कि लवक साहबके मतानुसार चींटियाँ शब्द करती हैं। तथापि अभी तक यह बात निश्चित रूपसे सिद्ध नहीं हो पाई है।

चींटीके नेत्र

अभी तक यह बात निश्चित नहीं हुई है कि हम जिन पदार्थोंको जिस रंग और आकारके देखते हैं, उन्हीं पदार्थोंको चींटियां भी उसी रङ्ग और आकारका देखती हैं या नहीं। सादे नेत्र वाले कीड़ोंका पदार्थ ज्ञान संभवतः हमारे ही समान होगा। तथापि पहलूदार नेत्रवाले कीड़ोंके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा जा सकता। अभी तक यह नहीं मालूम हुआ है कि उनके सब पहलुओंसे एक ही पदार्थ दिखाई देता है या प्रत्येक पहलूसे एक भिन्न पदार्थ नज़र आता है।

लवकने चींटियोंके नेत्रसे सम्बन्ध रखनेवाले कई प्रयोग किये थे। उन्होंने यह निश्चित किया

है कि चींटियां नेत्रोंसे देखती हैं, इतना ही नहीं, वह रंग भी पहचान सकती हैं। हरा रङ्ग उन्हें सबसे ज्यादा पसंद है; दूसरे नम्बरमें पीला और तीसरे नम्बरमें लाल है।

चींटीकी श्रवणेन्द्रिय

तोप ही क्यों न छोड़ी जाय किन्तु चींटीको शब्द सुनाई नहीं देता। परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि चींटीको बिलकुल ही सुनाई नहीं देता। पहले किसी लेखमें हम लिख चुके हैं कि पदार्थके एक ही स्थानपर हिलनेसे शब्दकी उत्पत्ति होती है। यह कम्पन (हिलना) एक सेकंडमें १६ बारसे कम और ४१,००० बार से ज्यादा होनेपर शब्द सुनाई नहीं देता। यह ध्वनि शास्त्रका सिद्धान्त है। अतएव यह नहीं माना जा सकता कि जो शब्द हमको सुनाई नहीं देता, वह चींटियांको सुनाई दे सकता है।

चींटीकी स्पर्शेन्द्रियकी रचनाको ध्यान लगा कर देखनेपर कहा जा सकता है कि इनसे कान का काम लिया जा सकता है। और जब ईश्वर ने उनको कान दिये हैं, तो यह कैसे मान लें कि वह सुन नहीं सकतीं!

चींटीकी घ्राणेन्द्रिय

चींटीके घ्राणेन्द्रिय भी है। कपड़ेकी चिंदीको लेवेन्डरमें डुबोकर चींटीके पास रख देनेसे वह उसे सूंघने लगती है।

चींटीका उपयोग

ऊपर लिखा जा चुका है कि जखम सीनेके लिए चींटीका उपयोग किया जाता है। चायके पौदोंको 'टीबग' नामका एक कीड़ा बहुत नुकसान पहुँचाता है। 'इंडियन प्लेंटर्स गज़ट' में हमने पढ़ा है कि काले चींटे इनकी इल्लियोंको खा डालते हैं। चीनमें 'टीबग' के लिए चायके झाड़ पर चींटियां छोड़ी जाती हैं।

बम्बईके एक दैनिक वर्तमान पत्रकी पुरानी फाइलमें हमने पढ़ा था कि छूतकी बीमारी हो जाने पर चींटियां रोगीको अलग रखती हैं जिसमें रोग फैलने न पावे। तथापि हमने इस सम्बन्धमें अन्यत्र कुछ नहीं देखा है और न अभी तक यह बात प्रयोगों द्वारा सिद्ध ही की जा चुकी है।

चींटियोंकी बुद्धिमानी

ऊपर संक्षेपमें चींटियोंके सम्बन्धमें ज्ञातव्य बातें लिख आये हैं। अब यहां चींटियोंकी बुद्धिमानीके एक दो उदाहरण देकर यह लम्बा लेख खतम करते हैं।

१—एक महाशय रोज़ नियमपूर्वक चींटियोंको शक्कर खिलाया करते थे। चींटियां भी रोज़ शक्कर खानेके लिए उनकी खिड़कीमें इकट्ठी हो जाया करती थीं। कुछ दिन बाद उन महाशयने एक रोज़ एक तश्तरीमें शक्कर रख कर उसे ऊंचे पर टांगकर उसमें दो तीन चींटियां रख दीं। अपना पेट भर लेनेके बाद वह रस्सीपर होकर खिड़कीकी चौखट पर जा पहुँचीं और तब वहांसे अपने साथियोंमें जा मिलीं। थोड़े ही समय बाद तश्तरीसे लगाकर जमीन तक चींटियोंकी कतार सी बन गई। दूसरे दिन भी वह शक्कर खानेके लिए तश्तरीमें जा पहुँची। परन्तु तीसरे रोज़ तश्तरीके नीचे ही जमा होकर वह शक्कर खाने लगीं। ध्यान लगाकर देखने पर मालूम हुआ कि कुछ चींटियां तश्तरीमें पहुंच कर अपने साथियोंके लिए शक्कर जमीन पर गिरा रही थीं। तश्तरीमें की सब शक्कर खतम होने तक यह काम जारी रहा।

२—एक वृक्ष पर बहुत सी चींटियां हो गई थीं। मालिकने तमाखूके सतमें कपड़ा भिगो कर वृक्षके तने पर लपेट दिया। कपड़ेसे ऊपरकी ओर जितनी चींटियां थीं, वह तो सब एक दम नीचे कूद पड़ीं; परन्तु नीचेकी तरफकी चींटियोंको ऊपर चढ़ जानेके लिए एक युक्तिका आविष्कार करना पड़ा। वह एक दम नीचे उतर आईं और तब मट्टी ले जाकर उस कपड़े पर उन्होंने पुल बना डाला और तब इसी पुल परसे वह आने जाने लगीं।

३—न्यू सौथवेल्सकी श्रीमती हरनने एक मासिक पत्रिकामें निम्न लिखित बातें प्रकाशित करायी थीं—

मैं एक रोज़ अपने घरके सामनेके खेतमें बैठ कर कसीदा काढ़ रही थी। मेरा छोटा बच्चा भी पास ही खेल रहा था। करीब आध घंटे बाद लड़का एक दम ज़ोरसे चिल्ला उठा। चींटियां पैरों पर चढ़ कर काट रही थीं। मैं चींटियाँ झाड़ कर लड़केको बराँडेमें बैठाल कर चींटियां देखने लगी। वहाँ कई चींटियां मरी पड़ी थी; एवं मुर्दोंके बीचमें पाँच सात चींटियाँ इधर उधर दौड़ रही थीं। कुछ समय बाद वह वहांसे चल दीं। मैं भी यह देखनेके लिए कि वह कहां जाती हैं, उनके साथ साथ आगे बढ़ी। क़रीब दो ढ़ाई गज़की दूरी पर जाकर वह एक छत्तेमें घुस गईं। कुछ ही क्षण बाद छत्तेमेंसे करीब ३०० चींटियां बाहर निकल आईं। वह सब मुर्दोंके पास गईं। करीब तीन मिनट बाद एक दूसरा झुंड और वहां आ पहुंचा। इनके आनेके बाद प्रेत-यात्रा शुरू हुई। दो दो चींटियां मिलकर एक एक मुर्दा खींचने लगीं। इनके थक जाने पर दूसरी दो चींटियां मुर्दा खींचने लग जाती थीं। इस प्रकार सबके सब मुर्दे उठा लिये गये। यह यात्रा कुछ दूरी पर जा कर रुक गई। शीघ्र ही कबरें खोदीं गईं। एक एक गढ़ेमें एक एक मुर्दा दफनाया गया। सब काम खतम हो जाने पर मालूम हुआ कि छः चींटियोंने किसी कार्यमें मदद नहीं दी थी। अतएव उन्हें प्राण दंड दिया गया। और छहों मुर्दोंको एक ही गढ़ेमें गाड़कर सब चींटियां लौट गईं।

खानमें छिपे शत्रुओंका मुक़ाबला

कोयलेकी खानोंमें काम करनेवालोंको बड़े बड़े संकटोंका सामना करना पड़ता है। वैज्ञानिकोंने इनसे बचनेके बड़े अनुसन्धानसे अद्भुत अद्भुत उपाय निकाले हैं। सबसे भयंकर संकट यह है कि प्रायः वहांकी मार्श गैस बत्ती देखते ही भड़क उठती है। मानों यह आगको देखते ही चौंक कर उछलनेवाले सिंहका सा आक्रमण करती है। यही संकट सगर राजाके ६० हजार पुत्रोंको अपने छिपे घोड़ेको ढूंढते समय कपिलदेवकी आंखकी अग्निके रूपमें देखना पड़ा था। वह भी अपने जमानेके बड़े भारी खनक थे। मार्श गैस या कोयलेकी धूली थोड़ी सी आग छू जाने पर भभक उठती है। वहां शुद्ध हवाका बराबर स्रोत बहना चाहिये। सदा ध्यान रखना चाहिये कि ३/४ प्रतिशतसे अधिक मार्श गैस वहां न रहे।

डेवी महाशयने जालीदार लैम्पोंका आविष्कार किया है। उनका प्रयोग बड़ा लाभदायक है। उस लैम्पका मुंह भी कभी खानमें नहीं खोलना चाहिये। यदि खानमें खड़े खड़े यह लैम्प बुझ जावे तो वहां ही उसको जलानेका प्रयत्न न करे; बल्कि वहां से निकल कर शुद्ध हवामें चला जावे और वहां पहुंच कर जलावे।

हरेक खानके गढ़ेमें वायु भारमापक लगा होना उचित है। बैरोमीटरमें पारेका गिरा रहना मार्श गैसकी सत्ताका सूचक है। खानोंमें जब कोई घटना उपस्थित हो जाती है या उसमें सहसा भड़कन हो जाती है तो उस घटनाके पश्चात् पुनः उसमें जानेके पूर्व सहायक दल कनारी नामक पक्षीको साथ लेकर अन्दर जाते हैं; जब विषैली गैस वहां होती है तो तुरन्त गैसको सूंघते ही वह पक्षी अचेत हो कर गिर पड़ता है।

हरएक खानके लिए एक सहायक दल भी विशेष रूपसे शिक्षित किया जाता है। वह अपने साथ ओषजन संजीवनका उपकरण (Proto Oxygen apparatus) सदा लिये रहते हैं। उस यन्त्रके द्वारा वह जो निःश्वास छोड़ते हैं वही तुरन्त शुद्ध हो जाता है और उसीको फिर अन्दर खींच लेते हैं। उसमें उपकरण द्वारा फिर पर्याप्त ओषजन मिल जाता है। इस उपकरणकी सहायतासे भी खनक कोल गैससे भरे गढ़ेमें दो घण्टेसे अधिक काम नहीं कर सकता। अब इससे भी अधिक उच्च कोटिका आविष्कार हो गया है। यह एक ऐसा उपकरण है जिसमें साधारण वायुको द्रव रूपमें अपने साथ लेकर रख सकते हैं। वायुको इतना अधिक ठण्डा कर लिया जाता है कि वह वायु द्रव रूपमें हो जाती है। इसमें बहुत सा ओषजनका भण्डार जमा हो सकता है। इस द्रव वायुसे उपकरणको भरकर खनककी नाकके आगे लगा दिया जाता है।

खनकों पर एक बड़ा संकट यह भी आ जाता है कि खोदते खोदते धरतीमेंसे पानी फूट आता है। यदि खोदते खोदते कहीं भूगर्भसे एक दम कोई अन्तः स्रोत फूट पड़ता है तो अनन्त जल राशि खानमें भर जाती है। इसको साधारण पम्पोंसे खेंचकर खाली नहीं किया जा सकता; इसके लिए टैंकोंके टैंक भर कर निकालनेका प्रबन्ध किया जाता है।

—जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार

विचारका संगठन

जब हम अनेक ऐसी शक्तियों को, जो काम तो एक ही करना चाहती हैं, किन्तु अलग अलग करती हैं, एकत्र करके सामूहिक रूपसे क्रिया-शील बनानेकी चेष्टा करते हैं, तब कहा जाता है कि हम संगठन करना चाहते हैं। उदाहरणके लिए मान लीजिये कि भारतवर्षमें एक हज़ार आदमी ऐसे हैं जो जर्मनीसे बैर रखते हैं, और सभी अलग अलग उस देश-विशेषको हानि पहुंचानेका उद्योग करते हैं; अब यदि कोई इन सबको एक सूत्रमें बांध कर समष्टि रूपसे कार्य्य करानेका प्रयत्न करे, तो यह कहा जायगा कि वह उन सबको संगठित कर रहा है। संसारमें सभी मनुष्य कुछ न कुछ सोचते ही हैं। जिस समय कोई एक व्यक्ति लन्दनमें विचारमग्न है, उसी समय न्यूयार्क, बम्बई और टोकियोमें भी अन्य व्यक्तियोंका उसी कार्य्यमें संलग्न होना सम्भव ही नहीं बल्कि तथ्य है। इस दशामें यह भी सम्भव है कि यदि विचार-कर्त्ता एक दूसरेके वर्त्तमान कार्य्यसे अपरिचित तथा संसारमें जितने विचार कर्त्ता भूत कालमें हो गये हैं उनकी कृतिसे अनभिज्ञ रहे तो उसका प्रायः उसी कार्य्यमें निरत होना संभव और स्वाभाविक है जो किया जा रहा है या किया जा चुका है। अब यदि कोई इस पिष्ट-पेषण आदिकी सम्भावना रोकने तथा विचार-कर्त्ताका पथ परिष्कृत करनेके लिए, ऐसा प्रबन्ध करनेका प्रयत्न करे कि विचार-कर्त्ताको अपने क्षेत्रमें किये गये सम्पूर्ण कार्य्यका ब्यौरा मिल सके, स्वयं उसके द्वारा सम्पन्न होनेवाले कार्य्यका समाचार अन्य लोगोंको भी प्राप्त हो सके, तथा इस प्रकार सोचे गये नवीन विचारोंसे यथा सम्भव अधिक संख्यामें

लोग लाभ उठा सकें, तो समझा जायगा कि विचारका संगठन करनेकी चेष्टा की जा रही है।

विचारके अन्तर्गत तीन बातें हैं।(१) परिज्ञान, (२) अनुभूति और (३) सचेष्टता। अर्थात् पहले हम किसी बातको जानते हैं, फिर उससे प्रभावित होकर अनुभव करते हैं, तदनन्तर अनुभूतिके प्राबल्यके अनुरूप ही हममें प्रयत्नशीलता आती है। यह तीनों क्रियाएँ जिस प्रकार एक व्यक्तिमें होती हैं, उसी प्रकार अनेक व्यक्तियोंके समूहमें भी होती हैं। पहले एक व्यक्तिका उदाहरण लीजिये। कल्पना कीजिये कि एक निर्जन बनमें अन्धकारमें किसी मनुष्यको डाकुओंके समीप होनेका परिज्ञान हुआ। इस ज्ञानके होनेके साथ ही उस मनुष्यमें भयकी अनुभूति होनी स्वाभाविक है, अनुभूति होते ही वह तुरन्त उस भीषण अवस्थामें से निकलनेकी चेष्टा करेगा।

अब मान लीजिये कि उस व्यक्तिके स्थानमें एक हज़ार आदमी हैं और उन्हें दो हज़ार डाकुओंके आक्रमणका सम्भवतः चार घण्टेके भीतर सामना करना पड़ेगा। चूँकि सभी व्यक्तियोंमें समान बुद्धि, और अनुभूतिका होना सम्भव नहीं है और चूँकि एक व्यक्ति परिज्ञान और अनुभूति दोनोंसे युक्त होते हुए भी यह समझता है कि अकेले भागनेमें भी प्राण बचनेकी आशा नहीं है, वह व्यक्ति औरोंको उस भयकी बातसे अभिज्ञ करनेका प्रयत्न करने लगता है। इस प्रकार वह परिज्ञानका संगठन करनेमें तत्पर हो जाता है। इस क्रियामें अनेकों वादविवाद खड़े होंगे। कुछ लोग इस कथनकी सत्यतामें सन्देह करने लगेंगे, सम्भव है गरमागरम बहस छिड़ जाय, अतएव उस व्यक्तिका यह कर्त्तव्य हो जायगा कि वह उनका समाधान करे, यदि यह क्रोधित हो गये हों तो उनका क्रोध ठण्डा करे, और तर्कवितर्कके पश्चात् एक निश्चय पर आनेके लिए उन्हें प्रेरित करे। इस एक निश्चय पर पहुंचनेकी क्रियाको इच्छाका संगठन कहना अनुचित न होगा, क्योंकि ऐसा होनेसे सम्पूर्ण समूहमें एकता आजाती है और सभी एक बातको स्वीकार कर लेते हैं। मान लीजिये कि उन्होंने डाकुओंके निकट ही होनेकी बातको स्वीकार कर लिया और कोई थोड़ा, कोई अधिक सभी घबराहटमें पड़ गये, क्योंकि सब एकसे घबराये नहीं हो सकते। अब संगठन-कर्त्ताको शीघ्र कार्य करानेके लिए लोगोंको बारम्बार भय-भीत करनेका प्रयत्न करना होगा, जिन लोगोंको डाकुओंसे लड़नेका साहस होता होगा उनके सामने शत्रुकी भयानकताका चित्र खींच कर चिन्तासे अभिभूत बनाना होगा। हम इस क्रियाको अनुभूतिका संगठन कहेंगे।

इस संगठनके हो चुकनेपर, जितना ही अधिक लोगोंमें भय होगा, उतने ही अधिक वेगसे भागनेकी इच्छा लोगोंमें उत्पन्न होगी। जल्दीमें कोई किसी रास्तेसे भागना चाहेगा और कोई किसीसे। किन्तु चूंकि लोगोंमें यह ख़याल बना रहेगा कि अलग होने में हानि ही हानि है, सभी मनुष्य एक मार्गसे भागना अच्छा समझेंगे। जल्दीमें मत भेद होनेकी गुञ्जाइश रहती है; अतएव उस अवस्थामें भी कोई कहेगा इस राह चलो, कोई कहेगा उस राह चलो। उस समय भी एक बार इच्छाका संगठन करना होगा, और इतनी क्रियाके पश्चात् वह समूह जंगलमें से भागेगा। समूहका भी सम्पूर्ण कार्य व्यक्ति ऐसा ही होता है। अन्तर केवल इतना है कि पहलेको परिचालित करनेके लिए संगठनकी आवश्यकता होती है, और दूसरा आप ही आप तीनों क्रियाओंको अपनेमें होते अनुभव करता है। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि जहां व्यक्तिमें तीनों क्रियाओंका साथ साथ होना निश्चित है, वहां समूहमें एक समयमें एक ही क्रियाका होना सम्भव है। हम नीचे एक और उदाहरण देते हैं, जिससे यह बात पूर्ण रूपसे स्पष्ट हो जायगी।

आज कल स्वराज्यकी बड़ी चर्चा है, अतएव इसीके विषयमें विचार करनेसे हमें अधिक सुविधा होगी। आरम्भमें ही हमें इसके सम्बन्धमें तीन

प्रश्न करने चाहियें। (१) स्वराज्यका परिज्ञान, (२) स्वराज्यकी अनुभूति (३) स्वराज्यके लिए यत्नशीलता, यह तीनों बातें कब और किस प्रकार हुईं। यदि हम ध्यान देकर विचार करेंगे तो हमें अवगत होगा कि सन् १९०६ में कलकत्तेकी कांग्रेसमें स्व० दादा भाई नौरोज़ीने स्वराज्यकी चर्चा की। तीस करोड़ मनुष्योंके सम्पूर्ण समूहमें सबसे पहले उन्हें इस बातका परिज्ञान हुआ कि स्वराज्य-प्राप्ति अत्यन्त वाञ्छनीय है। इसके पश्चात् लोकमान्य तिलक आदि नेता जनताको इसका परिज्ञान करानेके लिए बहुत काल तक पत्रों तथा व्याख्यानों द्वारा आन्दोलन करते रहे, अर्थात् परिज्ञानका संगठन करते रहे। जो आदमी उन कारणों पर जिन्हें संगठन कर्त्ता महोदय बतलाते थे मनोनिवेश पूर्वक विचार करते थे उन्हें अपनी दुरवस्था पर परिताप और स्वराज्यके लिए उत्कण्ठा हो जाती थी। इस प्रकार अनुभूतिका संगठन होता गया।

सन् १९१९ की पंजाबकी घटनाओं तथा मुसलमानोंकी कुछ स्वधर्म्म विषयक शिकायतोंके कारण और महात्मा गांधी द्वारा सचेत और प्रेरित किये जाने पर भारतीय जनताकी स्वराज्य सम्बन्धिनी अनुभूति प्रबल हो उठी। इस अनुभूतिका संगठन इतने जोरोंके साथ हुआ कि सचेष्टताकी मात्रा बहुत अधिक बढ़ गई। बारदोली प्रस्तावोंके समयके पहले तक इस सचेष्टतामें वृद्धि ही होती गई। किन्तु चतुर सेनापति ने देखा कि सेना बहक रही है, जिस मार्गसे जानेका प्रयत्न किया जा रहा है वह ठीक नहीं है, उसे भयङ्कर परिणामोंका परिज्ञान हो गया और उसने लोगोंको आगे बढ़नेसे रोक दिया।

इस रोक दिये जानेके कारण लोगोंमें उत्साहकी कमी दीख पड़ने लगी। अतएव नेताओंको यह जान लेना आवश्यक प्रतीत हुआ कि जिस सामूहिक सत्याग्रहकी ओर वह जनताको ले जा रहे हैं वह लोगोंकी रुचिके अनुकूल है या नहीं, और यदि है तो वह उसे कार्य्य रूपमें परिणत करनेको भी तैय्यार हैं या नहीं। यदि चौरी चौराका काण्ड न हुआ होता, तो जिस राहसे अगुआ लोग देशको ले जा रहे थे, उसकी भयंकरताका परिज्ञान उन्हें न होता और वह आगे चले ही जाते। किन्तु ऐसा होने पर, उन्होंने सत्याग्रह जांच कमेटीको नियुक्त करके देश-दशाका परिज्ञान प्राप्त करनेका उसे आदेश दिया। यत्नशीलताकी क्रिया थोड़ी देर तक थम गई और अब फिर परिज्ञानका संगठन होने लगा। इस परिज्ञानके संगठन कालमें लोगोंमें मतभेद भी हो गया है। कुछ लोग कौन्सिलोंमें जाना चाहते हैं। कुछ लोग इसे असहयोग सिद्धान्तके विरुद्ध समझते हैं। कुछ समयके पश्चात् कांग्रेसमें वाद-विवादके बाद सबका एक मत पर पहुँचना सम्भव होगा, अर्थात् परिज्ञान-संगठनके समाप्त होने पर अब सबसे अधिक महत्व-पूर्ण प्रश्न भारतीय जनताके सामने इच्छाके संगठनका है। जब एक निश्चित मत सबको मान्य होगा, जब सब एक मार्ग पर पुनः चलने के लिए तय्यार होंगे, तभी इच्छाका संगठन समाप्त होगा। इसके पश्चात् सचेष्टताको पुनः विशेष रूपसे परिचालित करनेके लिए अनुभूतिका संगठन करके उसे फिर सजीव करना होगा।

अब यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि स्वराज्य प्राप्तिके लिए सोत्कंठ भारतीय राष्ट्रके इस सामूहिक कार्यके एक एक विभागकी पूर्त्तिमें बरसों ही नहीं अर्द्ध शताब्दियों और शताब्दियोंका समय लग सकता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, अब हमारे सामने इच्छाका संगठन करना, तथा अनुभूतिका संगठन करना, यही दो काम हैं। पहलेके सम्बन्धमें निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि कितना काल लगेगा, संभव है दो ही महीने लगें और सम्भव है सालों लग जायँ। उसी प्रकार अनुभूतिके विषयमें कुछ निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता, किन्तु इस बातको देखते हुए कि पंजाबकी भीषण घटनाओं

के द्वारा भी यह अनुभूति समस्त देशमें इस प्रकार न संगठित और जागृत की जा सकी कि सबमें सचेष्टता आ जाती, यह जान पड़ता है कि उसको पूर्ण रूपसे प्रबल बनानेके लिए बहुत समयकी आवश्यकता होगी। इसके साथ ही साथ हम यह देख सकते हैं कि जिस व्यक्तिको स्वराज्यकी वाञ्छनीयताका परिज्ञान हो जाता था, और जिसमें प्रवल अनुभूति उस कारण से हो जाती थी वह राष्ट्रकी उद्देश्य-सिद्धिके निमित्त उत्साह पूर्वक कारागृह तक पहुँच भी जाता था। अतएव यह निर्विवाद है कि व्यष्टिकी तुलना समष्टिके साथ इस सम्बन्धमें नहीं की जा सकती।

हमने ऊपर परिज्ञान, अनुभूति, और सचेष्टता को क्रमानुसार परिचालित होते हुए बतलाया है, किन्तु इसका यह अर्थ न समझा जाना चाहिये कि कुछ समय तक पहला होगा, फिर कुछ समय तक दूसरा होगा, और फिर कुछ समय तक तीसरा। उक्त उदाहरणको ही दृष्टिके सामने रखते हुए हम कह सकते हैं कि यद्यपि मोटी तौरसे यह बात सत्य है कि गत १५, २० वर्ष तक हमारे देशमें परिज्ञानका संगठन ही होता रहा, किन्तु ध्यान देनेपर विदित होगा कि यह बात सर्वांशमें सत्य नहीं है। बात यह है कि उक्त तीनों भावोंमें से एक किसी समय विशेषमें क्रिया-शील अवश्य रहते हैं, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि शेष दोनों भी चुपचाप बैठे नहीं रहते। क्या स्वराज्यके उस परिज्ञान-कालमें सचेष्टताके अवसर हमने नहीं देखे हैं? क्या उस समय भी हमने फाँसी पर लटक जानेवालों और देश से निर्वासित होने वालोंमें अनुभूतिका प्राबल्य नहीं देखा है? और क्या इसमें भी कोई सन्देह किया जा सकता है कि उस सचेष्टता और उस अनुभूतिके कारण ही परिज्ञानके संगठनमें विशेष ज़ोर आया? सच तो यह है कि तीनों क्रियाओंका सम्बन्ध इतना घना है कि उनमेंसे किसी एकको दूसरेसे अलग करके दिखलानेका प्रयत्न सफल हो नहीं सकता। इसका कारण यह है कि जिस समय सम्पूर्ण समूह एक प्रकारके संगठनमें विशेष रूपसे क्रिया-शील है, उसी समय उसके भीतरका उप-समूह विशेष दूसरे प्रकारके कार्यमें दत्त-चित्त रह सकता है। उदाहरणके लिए, जिस समय सत्याग्रह-जांच-कमेटी भारतवर्षमें घूम घूम कर जांच कर रही थी, उस समय पुलिसके अत्याचारोंसे पीड़ित कहीं कहीं का जन-समुदाय निर्माणात्मक कार्य-क्रम उपस्थित करके देशकी क्रियात्मक यत्न-शीलताको बन्द कर देनेके कारण म० गांधीसे रुष्ट हो रहा था और शासन-पद्धतिको कोस रहा था। यह क्या था? केवल अनुभूतिका प्राबल्य।

अब यह नहीं कहा जा सकता कि सामूहिक परिज्ञान, अनुभूति और सचेष्टता नामक तीनों भावोंमें से जिस किसीके साथ एक भाव-विशेष का सम्बन्ध होगा वह भाव उसीके उदयकालमें उत्पन्न होगा, अर्थात् यह नहीं हो सकता कि समूहके किसी भागमें तभी अनुभूति होगी जब कि सामूहिक अनुभूतिका काल आ जाय, और परिज्ञान और सचेष्टता तभी हो जब कि सामूहिक परिज्ञान अथवा सचेष्टताका समय रहे। जिस प्रकार इच्छा-संगठनके बार बार आनेकी बात बतलाई गई है, उसी प्रकार उप-समूहसे सम्बन्ध रखने वाली अनुभूति, परिज्ञान, और सचेष्टता समस्त समूहसे सम्बन्ध रखने वाली अनुभूति, परिज्ञान, और सचेष्टतामें से किसी एकके कालमें भी तीनोंको तीनों मौजूद रह सकती है, और रहती ही हैं। उदाहरणके लिए गत वर्ष कांग्रेसने गरीब स्त्रियोंको चरखे मुफ़्त बँटवाये थे। था तो यह स्वराज्यके लिए सचेष्टतामें दाखिल, किन्तु क्या वह अनुभूति जागृत करनेका और विधवाओंको आनन्दित होनेका कारण नहीं बना? और फिर क्या उस अनुभूतिसे असहयोगका काम नहीं निकला? क्या उससे परिज्ञान—संगठनका कार्य्य सम्पन्न नहीं हुआ? अतएव यह निश्चित है कि परिज्ञान, अनुभूति और सचेष्टता

छोटी लहरोंकी तरह एक दूसरेको ठेलती हुई समूह रूप समुद्रके पानीको तटसे टकरा देती हैं।

ऊपर विचारके तीनों अङ्गोंकी कुछ चर्चा की जा चुकी है। उनके सङ्गठनके वषयमें भी कुछ लिखा जा चुका है। अब हमें सोचना यह है कि यह सङ्गठन किन साधनों द्वारा आजकल सम्पन्न किया जाता है। अर्थात् अब आवश्यक यह है कि हम यह विचार करें कि वर्त्तमान कालके विचार-कर्त्ता एक दूसरे द्वारा सोचे गये विचार से परिचय किस प्रकार पाते हैं और जनता समस्त विचारोंको जाननेमें किस प्रकार समर्थ होती है। इसको जान लेनेके पश्चात् यह पता लगानेकी चेष्टा करेंगे कि उन साधनोंका अवलम्बन करनेसे विचारके सङ्गठनमें, परिज्ञान, अनुभूति और सचेष्टताको समष्टिमें उत्पन्न करनेके प्रयत्नमें, किस प्रकारकी कठिनाइयां और असुविधाएँ होती हैं। साथही हम यह प्रयत्न भी करेंगे कि उन कठिनाइयोंको दूर करनेके लिए जिन अन्य साधनोंका प्रयोग वाञ्छनीय हो, उनकी भी चर्चा करें। किन्तु इसके पहले कि हम वर्त्तमान विचार-संगठनके साधनोंका वर्णन करें, हम प्राचीन कालके विचार-संगठनमें व्यवहृत उपायोंका थोड़ा वर्णन करेंगे।

अब यह प्रश्न होता है कि जब मानव जातिने बोलना और लिखना नहीं सीखा था—बोलनेसे हमारा मतलब भाषाके व्यवहारसे है—तब एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके हृदयमें किस प्रकार परिज्ञान, अनुभूति और सचेष्टता उत्पन्न करता था। अनुमानसे हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि चेहरेपर मनो-विकार-विशेषके लक्षण विशेष तथा अवस्था-विशेषमें अङ्गोंके आन्दोलन-विशेषसे ही वह अपने मनोगत भावोंको औरों पर प्रकट करनेमें समर्थ होते रहे होंगे। यह साधन कितना कमज़ोर था, यह बतलानेकी ज़रूरत नहीं; क्योंकि एक साधारण सी बातको प्रकट करनेमें बेचारे गूंगेको कितना परिश्रम करना पड़ता है, यह हम जानते हैं। जान पड़ता है इसी कष्टका अनुभव करते करते आदिम मनुष्योंने क्रमशः एक भाषाका निर्म्माण भी कर डाला, क्योंकि कहावत है 'आवश्यकता आविष्कारकी जननी है'। इसमें सन्देह नहीं कि भाषाके जन्मसे नवीन बातोंको समझाने, लोगोंमें यथा वाञ्छित अनुभूति उत्पन्न करने, तथा उन्हें अपेक्षित कार्य्यमें निरत करने आदिकी क्रियामें बहुत कुछ सुगमता हो गई। फिर भी यह कठिनाई तो बनीही रही कि जो मनुष्य अपनी आंखोंके सामने नहीं है, उससे विचारका आदान प्रदान किस प्रकार किया जाय। सौ दो सौ मीलकी दूरी पर स्थित मनुष्यके पास तो पैदल या किसी जानवर पर चढ़ कर पहुँचा भी जा सकता था, किन्तु हज़ारों मीलकी दूरी कैसे पार की जाती; विशेष करके जब मार्गमें समुद्र भी पड़ते हों?

भाषाके व्यवहार द्वारा संगठनका परिचय हमें पिता अथवा गुरुसे वेदादि ग्रन्थोंको बालकोंके जबानी पढ़नेकी बातसे मिलता है। शिष्योंको समस्त वेद रट लेना पड़ता था। जिन लोगोंको आजकलका आराम मिल गया है वह अपने मनमें कहेंगे कि पूर्व कालके बेचारे मनुष्य कितने अभागे थे। वह सचमुचमें अभागे थे या नहीं, यह तो हम नहीं कह सकते, परन्तु इतना तो निर्विवाद है कि इस प्रकारके साधनमें समय बहुत लगता था, साथ ही काम भी थोड़ा ही होता था। इस अवस्थामें भी लोगोंको कष्ट प्रतीत होने लगा। इस क्लेशका अंदाज़ा करनेके लिए पाठक को उचित है कि वह स्वयंको उक्त कालके विचार कर्त्ताकी स्थितिमें रख कर देखे। कल्पना कीजिये कि आज कल छापेखाने नहीं हैं, लिखनेकी प्रथा जारी नहीं हुई है। हमने एक नवीन विचारकी सृष्टि की, अब हमें उस विचारके ग्रहण करनेको उत्सुक एकाध प्रेमियोंकी तलाश करनी पड़ेगी। मान लीजिये कि एक हज़ार मनुष्योंको वह बात बतलाई और किसीको वह पसंद नहीं आई। इस अवस्थामें हमें जो क्लेश और वेदना होगी वह हम ही जान सकते हैं—विशेष करके उस अवस्थामें जब कि

रेल, तार आदि कुछ भी न हों, और वह हो ही कैसे सकते हैं, जब लिखनेकी प्रथा ही अभी जारी नहीं हुई है। अतएव प्राचीन मनुष्योंके सामने यह एक ऐसा प्रश्न हो गया जिसके हल हो जाने पर ही, उनकी दृष्टिमें, स्वर्ग प्राप्तिका आनन्द मिल सकता था। किस प्रकार दूरस्थ मनुष्यको हम किसी बातका ज्ञान अपने घर बैठे ही बैठे करा दें, कैसे उसके चित्तमें हम अपेक्षित अनुभूति उत्पन्न कर दें, और कैसे उसे अभिलषित क्रिया शीलताकी ओर अग्रसर कर दें, इस समस्या ने उनके चित्तको खूब आन्दोलित किया होगा। तुलसीदासकी 'जाकर जेहिपर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु संदेहू' चौपाईकी सत्यताका प्रमाण एक बार फिर मिला और हैरानीमें डूबे हुए मनुष्यने अक्षरोंका आविष्कार किया। हस्त-लिपिसे ग्रन्थ लिखे जाने लगे और जहां पहले किसीसे कोई बात कहनेके लिए उसके पास स्वयं जानेकी आवश्यकता होती थी, वहाँ अब इतना सुभीता हो गया कि सम्पूर्ण प्रयोजन पत्र-अथवा पुस्तक प्रेषण से भी सिद्ध होने लगा।

किन्तु लिखावटकी प्रथा जारी हो जाने पर भी लेखकका एक नियमित संख्यासे अधिक पुस्तकोंको हाथसे लिखना असम्भव ही था। साथ ही यह कोशिश भी की जाती थी कि जैसे लिखावट-का आविष्कार किये जानेके पहले स्मरणकी सुविधाके लिए छोटे छोटे सूत्रोंमें अपार ज्ञान और तत्वकी बात गागरमें सागरकी तरह भर दी जाती थी, वैसे ही अब लिपिका आविष्कार हो जानेपर भी जितनी अधिक बातका थोड़ेमें कहा जाना सम्भव हो, उतनी दो एक लाइनोंमें ही कह डाली जाय। इन कारणोंसे जिन मनुष्योंको दूरस्थ विचार कर्त्ताकी रचना प्राप्त हो भी जाती थी, उन्हें ग्रन्थ में अनेक स्थलोंमें कठिनाई प्रतीत हुए बिना नहीं रहती थी। इसका फल यह हुआ कि जिज्ञासु प्रसिद्ध विचारकर्त्ताके पास स्वयं आ आकर उपस्थित होने लगे और उससे मौखिक सम्भाषण द्वारा सत्यकी खोजमें प्रवृत्त हुए। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि प्राचीन कालमें हमारे महर्षियों के आश्रमोंमें इसी प्रकार विचारका प्रसार और परिग्रहण होता था। ग्रीसमें सुकरात और प्लेटो भी इसी प्रकार अपने साथियोंका एक समूह बनाके अपने अपने विचारोंका आदान प्रदान करते थे।

मनुष्य जाति इस प्रकारके प्रबन्धसे भी अधिक काल तक संतुष्ट न रह सकी। जिज्ञासुओंको दूरस्थ विचार-कर्ताके पास जाना अखरने लगा, और विचार-कर्ता भी ज्ञान-प्रेमी आगन्तुकोंकी भीड़से, फिर पुस्तकको हाथसे लिखने और नवीन नवीन विचारोंकी सृष्टिके कार्याधिक्यसे व्याकुल हो गया। यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि किसी प्रकार ऐसा कोई उपाय निकाला जाय जिससे बड़ी बड़ी पुस्तकें अधिक संख्यामें एक साथ तय्यार हो सकें और न जिज्ञासुओंको दूरसे आना पड़े न विचार-कर्त्ताको अपना समय प्रश्नोंका उत्तर देने और शंकाओंका समाधान करनेमें खर्च करना पड़े। सौभाग्यसे किसीके दिमागने छापेकी मशीन की भी ईजाद की और विचार-संगठनकी तत्कालीन पद्धतिमें अभूत पूर्व परिवर्त्तन कर दिया।

छापेकी मशीनके आविष्कारसे पुस्तकोंकी संख्या बढ़ने लगी। समाजके लिए जितनी भी सुविधा और आसानीकी ज़रूरत थी, उससे कहीं अधिक उन्हें प्राप्त हो गई। पुस्तकोंके अतिरिक्त मासिक पत्रोंका जन्म हुआ। धीरे धीरे अर्द्ध-मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्र भी कार्य्य-क्षेत्रमें आये। इतना ही नहीं, दिनमें दो दो बार निकलने वाले पत्र भी संसारकी शिकायतोंको दूर करनेका वादा करके मैदानमें कूद पड़े। यहींसे हमारा वर्त्तमान युग आरम्भ होता है।

उक्त उपायोंसे विचारके आदान प्रदानमें बड़ी सरलता हो गई। बड़े बड़े ग्रन्थ जिन्हें हाथसे लिखनेमें एक व्यक्ति कई जन्म लेकर भी समर्थ न होता, अब सुन्दर रूपमें सस्ते दामों पर, पढ़नेवालोंको मिल सकते हैं। जिन समाचारोंको प्राप्त

करना सैकड़ों रुपये खर्च कर देने पर भी सम्भव न था उन्हें अब हमारा दैनिक पत्र कुछ ही पैसे लेकर हमारे घरपर पहुँच कर बतला देता है। इसके अतिरिक्त हमें अनेक अन्य सुविधाएँ हो गई हैं। आने दो आने खर्च करके पत्र तो हम संसार भरमें भेज ही सकते हैं। तार, टेलीफ़ोन, बेतारके तार आदिने हमारा काम और भी सुलझा और सीधा कर रखा है। अब इन साधनोंसे विचारके संगठनका कार्य्य बहुत कुछ सुचारु-रूपेण चलने लगा है।

अब अगर हम चाहें तो पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक आसानीसे और पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक संख्यामें लोगोंको, जो बात बतलाना चाहें बतला सकते हैं। आज वर्त्तमान साधनोंके प्रयोग-से एक लेख समाचार-पत्रमें छपा कर हम हज़ारों और लाखों मनुष्योंके हृदयमें अपेक्षित अनुभूतिका सञ्चार कर सकते हैं। इन्हीं साधनोंका अवलम्ब लेकर हम आज लाखों आदमियोंको २४ घंटोंके बीच मरने कटनेके लिए तैय्यार कर सकते हैं। निःसन्देह आधुनिक कालने विचारके सँगठनमें बहुत कुछ उन्नति हो गई है।

किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि हमारा कार्य्य समाप्त हो गया। सच्ची बात तो यह है कि जिस क्रमसे उसने हम अग्रसर होते गये हैं, उसी क्रमसे नवीन दोष भी हमारे संगठनमें आते गये हैं। वह दोष क्या हैं, किस प्रकार उनका प्रतीकार सम्भव है, यह सब हम अन्य लेखमें बतलानेकी चेष्टा करेंगे।

—गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

गरल सागरकी सैर

संखियाके कारखानोंमें काम करना सचमुच एक प्रकारसे गरल सागरके विहारके समान है। इन लोगोंको घुटने घुटने तक संखियामें चलना पड़ता है। इस महाविषका दुअन्नी भर चूर्ण प्राणान्तके लिए पर्याप्त है। संखियाके कारखानोंमें काम करनेवाले अपने मुंह और नांकपर कपड़ा बाँधे रहते हैं। नांकमें रूईके टुकड़े ठुंसे रहते हैं। इस पर भी देहकी त्वचामें रोमकूपोंके मार्गसे इस महा भयंकर गरलके देहमें प्रविष्ट हो जानेका भय बना रहता है। यदि रोमकूपोंसे यह विष प्रविष्ट हो जाय तो असाध्य कष्टसे देह आत्माका वियोग हो जाता है।

संखिया वर्त्तमानमें यूरोपमें 'मिस पिकल' नामक कच्ची धातसे तय्यार किया जाता है। यह पदार्थ कार्नवालकी ताम्बा और टिनकी खानोंमें अधिक पाया जाता है। संखियाकी कच्ची धात (मिस पिकल) को खास तौरकी बनी भट्टियोंमें तपाया जाता है। इस धातको एक अच्छे चौड़े स्थान पर डाल कर नीचेसे ताप दिया जाता है और शनैः शनैः उसमें एक चक्कर द्वारा उलट पलट की जाती है। वहीं उसके डलोंको दुर्मुटोंसे चूर कर दिया जाता है।

संखियाके रवे

नीचे ताप लगने से उसमें मिले गन्धक आदि पदार्थ उड़कर नलियों द्वारा अलग निकल जाते हैं और संखियाकी धुआँ नलियों द्वारा गुम्बदाकार घरोंकी मालामेंसे निकाली जाती है। यह गुम्बद कोरी पकी ईंटोंके बनाये जाते हैं। संखियाकी धुआँ क्रमसे एकसे दूसरेमें जाती है। संखियाकी धूलि ठण्डी होकर ईंटोंपर जम जाती है और दानेदार रवोंके रूपमें इकट्ठी हो जाती

है। जब यह समझ लिया जाता है कि अब सब धूम पर्याप्त रूपमें संखिया छोड़ चुका है भट्टीकी आग शान्त कर दी जाती है। या भट्टीकी धूएंका प्रवाह दूसरी गृह मालाओंमें मोड़ दिया जाता है।

ग्रहमाल के काफ़ी ठण्डे हो चुकनेपर घरों के दरवाजे खोले जाते हैं और संखियाको इकट्ठा करनेकी तदबीर की जाती है। इन गृह मालाओंसे संग्रह किया गया संखिया भी शुद्ध संखिया नहीं होता। इसका रंग भी पीला, भूरा, या काला (जैसा भी ताप लगा हो) हुआ करता है। इसमें ৭০ से ६० प्रतिशत संखिया होता है।

इस संगृहीत पदार्थको फिर अन्य साधारण भट्टीमें निधूम दहकते अंगारोंपर शनैः शनैः तपाया जाता है और फिर धूम रूप करके पूर्ववत् गृह मालामेंसे गुज़ारा जाता है। जब इस गृह-मालाके द्वार खोले जाते हैं तब अद्भुत दृश्य देखनेको मिलता है। हर एक गृहमें द्वार, छत, और दीवार सबपर संखियाके रवे ही रवे जड़े दिखाई देते हैं। यह शुद्ध संखियाके होते हैं। जब कभी इनमें भी कुछ अशुद्धि रह जाती हैं तो इनको भी फिर लोहेके भपकोंमें चढ़ाकर शुद्ध कर लिया जाता है।

प्राण हरण नाशक

यूरोपमें लाखों करोड़ों मन संखिया पैदा किया जाता है; इसको किस रूपसे काममें लाया जाता है सो भी सुनिये।

किसान और माली लोग इसका घोल पौधों और फलदार दरख़्तों पर वनस्पति नाशक कीड़ोंको मारनेके लिए करते हैं। पशुपालक ग्वाले और गड़रिये अपनी भेड़ोंके ऊनको कीड़ोंसे बचानेके लिए इसके पानीसे उन्हें न्हिलाते हैं। मक्खियोंको मारने के लिए गुड़में संखिया मिलाकर कागज़ पर मल दिया जाता है। उसे फ्लाई पेपर या मक्खी मार कागज कहते हैं। इधर वैद्य लोग अपने रोगियोंके रोगों पर भी इसका प्रयोग करके इसको बड़ा आरोग्य प्रद बना लेते हैं। यहां तक कि यह नींदकी बीमारी (Sleeping sickness) में भी बड़ा लाभदायक है। वैद्य लोगोंने तो संखिया को भी अमृत बना लिया है।

संखिया महा पापोंके नाटकोंमें भी बड़ा अद्भुत पात्र बना है। एडवर्ड कोहन 'कान्क्वेस्ट' पत्रमें लिखते हैं कि यह विष एक बार भी किसी प्रकारसे देहमें प्रविष्ट हो जाता है तो कभी न कभी उसका भेद खुल ही जाता है। इसका प्रयोग बहुत जल्दी खुल जाता है। वैद्य लोग या डाक्टर इसको कभी इतनी मात्रामें नहीं देते कि प्राणघातक सिद्ध हो।

इसके रवे देखनेमें जौहर और खानेमें ज़हर हैं।

एक नवीन शिक्षा विधि

[ले०—अध्यापक विश्वेश्वर प्रसाद, बी. ए.]

लगभग पन्द्रह वर्ष हुए कि मिस पार्खर्स्ट अमेरिकाके मैसेच्युसेट्स राज्यमें एक स्कूलमें पढ़ाने लगीं। उन्हें तीन कक्षाके पढ़ानेका काम एक साथ करना पड़ता था। दो कक्षाको नियत कार्य करनेका आदेश करके एकको स्वयम् पढ़ाया करती थीं। पारी पारीसे तीनों कक्षा इस प्रकार उनसे पढ़ लेती थीं। विचार करते करते उनके मनमें यह आया कि यदि बालकोंको अधिक स्वतन्त्रता दी जाय तो काममें उनका मन स्वयम् अधिक लगने लगेगा और सच्ची शिक्षा भी दी जा सकेगी। इस सिद्धान्त मूलक भाव के मनमें आनेके साथ ही उन्हें ऐसा अवसर मिला कि महाशय स्विफ्टका Mind in the making नामक ग्रन्थ उन्होंने पढ़ा। इस ग्रन्थमें यह सिद्धान्त स्थिर किया गया है कि यदि शिक्षक बालकोंके हृदयमें स्वयम् ज्ञान बढ़ानेकी अभिलाषा उत्पन्न करादे और उन्हें मन माने नियम पर कार्य्य करने दे तो सच्ची शिक्षा दी जा सकती है। तभी स्कूल प्रयोगशाला बन जांयगे, जहां बालक अपनी अपनी

बुद्धिके अनुसार ज्ञान सम्बन्धी प्रयोग करके अपनी शक्ति और इच्छाके अनुसार ज्ञानकी वृद्धि सच्चे वैज्ञानिक नियमसे कर सकेंगे।

१९१३ में मिस पार्खर्स्टने अपनी नवीन विधिका खाका बना लिया। दो बरसमें विधि पूर्ण हो गयी। १९१८ तक वह मोन्टिसेरी ट्रेनिंग कालिजोंकी स्थापनामें लगी थीं। उस कार्यको छोड़ १९१९ में उन्होंने अपनी विधिकी परीक्षा (Berkshire Cripple) एक स्कूलमें आरंभ की। सौभाग्यवश १९२० में ही डाल्टन नामक स्थान (मैसेच्युसेट्स राज्यमें) की श्रीमती क्रेन नामक महिलाकी सहायता और सहकारितासे Children's university School में इस नवीन विधिका पूर्ण प्रयोग होने लगा।

मई १९२० में टाइम्स समाचार पत्रके शिक्षा संबन्धी लेखमें मिस बेलरेनी (इङ्गलैण्डकी एक अध्यापिका) ने इस नवीन विधिका समाचार संसार को दिया। जून १९२० में इङ्गलैण्डमें (Streatham Country School) यह प्रयोग मिस रोजाबेसेटने आरंभ किया। इतने ही समयमें इस नई विधिका शुभ समाचार इतना फैल गया कि जुलाई १९२१ में जब मिस पार्खर्स्ट इङ्गलैण्ड गईं तो प्रायः व्याख्यान शालाओंसे बहुतेरे श्रोतागण स्थानाभावसे हताश हो लौट जाया करते थे।

मिस पार्खर्स्टने प्राचीन तथा नवीन शिक्षा सिद्धान्तोंका इस नई विधिमें समावेश किया है। इस विधिको डाल्टन नामक स्थानके नामसे ही पुकारते हैं। प्राचीन सिद्धान्त था कि ज्ञान उत्पन्न किया जाय; नवीन सिद्धान्त है कि अनुभव हो। मिस पार्खर्स्ट कहती हैं कि बालकको अपनी तेज़ीसे चलने दो। उसके दो फल होंगे-(१) बालकका मन कार्यमें उतना ही लगेगा जितना खेलमें लगता है; (२) बालक अपनी शक्ति और इच्छाके अनुसार चलनेसे पद पद पर बातोंका अनुभव प्राप्त करता चलेगा; और यही उसके जीवनमें फलदायक हो सकता है; ज़बर्दस्ती ठूंसा हुआ ज्ञान किसी कामका नहीं होता।

इस विधिको काममें इस प्रकार लाते हैं। पहली बात तो यह है कि टाइमटेबल कोई न हो। प्रत्येक बालक जितनी देर जिस विषयको पढ़ना चाहे पढ़े। क्लास कोई न हो। विषय विषयके अध्यापक अपने अपने कमरेमें, जिसमें उस विषयका एक पुस्तकालय हो बैठे रहें। हाजिरीका रजिस्टर भी न हो। हालमें एक नक़शा टंगा रहे, जिसमें प्रत्येक बालक आनेके साथ ही ठीक समय पर आनेका चिह्न तथा देरमें पहुँचनेका चिह्न बना दे। स्कूलका समय अवश्य नियत रहे। उस समयमें बालकको समय-विभाग तथा विषय निर्वाचनकी पूरी स्वतंत्रता रहे। अध्यापक महोदयोंका कार्य्य यह रहे कि जो बालक भिन्न भिन्न योग्यताके उनके कमरेमें आवें और काम करें तो वह, यदि उन्हें सहायताकी आवश्यकता हो, उनको सहायता करें। एक कमरेमें साधारणतया ३५ बालकोंके बैठकर काम करनेका प्रबन्ध रहेगा। यदि कोई बालक उस कमरेको भरा पावे, जहां उसके पढ़नेकी इच्छा है तो वह हालमें जाकर पढ़ सकता है। यदि किसीको किसी विषयके पढ़नेकी भी इच्छा नहीं है तो हालमें जाकर और कोई पुस्तक वहांके पुस्तकालयसे लेकर पढ़ सकता है। अध्यापक महोदयोंको अपने विषयमें बालकोंको जबानी कुछ शिक्षा देनेकी यदि आवश्यकता हो तो प्रत्येक सप्ताहमें दो दिन बुला सकते हैं। जबानी बातचीतको बिलकुल बंद करना ठीक नहीं। अतएव साधारणतया दो बार तो इस कार्यके लिए बालक अवश्य एकत्र हों। अधिक समय न लेना चाहिये। मास्टर महोदय प्रत्येक बालकके लिए एक महीनेका कार्य्य नियत कर दें और पुस्तकें पढ़नेको बता दें। पुस्तकोंकी उन अध्यायोंको भी बता दें, जो उन्हें पढ़ना है। सब बात लिखकर दे देनी चाहियें। इसमें जितनी सहायता हो सके दी जाय। कोषादिका भी संकेत कर देना चाहिये। अध्यापक महोदयोंका कार्य कम कठिन न होगा। व्यर्थ काम बच जायगा। जैसे यदि इतिहासके अध्यापकने अकबर पढ़ने तथा उसपर लेख लिखनेको कहा तो उस लेखको भाषाके अध्या-

पैक भी अपने विषयका काम समझेंगे। सब काम बालककी जिम्मेदारीपर छोड़ा जाय। महीनेके अन्तमें अध्यापक बालकोंकी ज़बानी जांच करके यह जान लें कि जो कार्य नियत किया गया था वह हुआ कि नहीं।

प्रत्येक कमरेमें एक नकशा रहे; जिसमें प्रत्येक बालकके उस विषयकी साप्ताहिक उन्नति दिखाई जाय। प्रत्येक बालकके पास एक कार्ड रहे, जिसमें प्रत्येक विषयमें अपनी अपनी गति बालक नोट करता चले। इसके सहारे वह अपनी जिम्मेदारी, (महीने भरके कार्य पूरा करनेकी) पूरी करें, जिसके लिए महीनेके आरम्भमें उसे एक प्रकारका वादा करना पड़ेगा। जो पाठक महोदय इस विधि का और विशेष हाल जानना चाहते हों वह मिस पार्खर्स्टकी लिखी हुई Education on the Dalton Plan नामक पुस्तक पढ़ें, जो बेल एण्ड सन्सने छापी है।

पंचमकार

मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेवच।
पंच तत्वमिदं देवि निर्वाण मुक्ति हेतवे॥
(कैवल्य तन्त्र पटल १)

मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन, यह पञ्चमकार हैं। शाक्त तन्त्रोंमें यही पञ्च तत्व कहे गये हैं। इन्हींका सेवन निर्वाण और मुक्तिका साधन माना गया है।

वास्तवमें क्या तांत्रिक मत इतना भ्रष्ट है कि उसकी दृष्टिमें सिवाय मांस भोजन, मद्य सेवन तथा स्त्री सम्भोगके अन्य कोई जीवनको उन्नत करने तथा कष्टोंसे छूटनेका उपाय ही नहीं? क्या ऐहिक सुख भोग ही जीवनका परम सुख है? तान्त्रिक ग्रन्थोंके गूढ़स्वाध्यायसे वस्तुतः उन ग्रन्थोंके दो रूप प्रतीत होते हैं; एक अन्तस्तत्व और दूसरा वाह्यतत्व। वाह्यतत्वके रूपमें भ्रष्टता तथा वीभत्सताकी पराकाष्ठा है। इसमें सन्देह नहीं। परन्तु जब गूढ़ तत्व या अन्तस्तत्व पर दृष्टि जाती है तो उसका वीभत्स रूप सर्वथा लुप्त हो जाता है।

अन्तर्गूढ़ रहस्योंको समझनेके लिए तत्ववेत्ता गुरुओंकी परम आवश्यकता है। तान्त्रिक शब्दोंके सांकेतिक अर्थोंको जाननेके लिए बड़े श्रमकी आवश्यकता है। इसी प्रकारके रहस्य शास्त्रोंको तन्त्र कहा गया है। इन तन्त्रोंके मन्तव्य और क्रियाकाण्ड पर हम आज विचार नहीं करना चाहते। परन्तु साधारणतः उसमें प्रति पादित पञ्चमकारोंपर ही कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

पाठक विचारें तो सही कि पञ्चमकार दुनिया में कितने विस्तृत हैं।

मदकारी द्रव्य मद्य कहाता है। इसका सेवन प्रायः सर्वत्र होता है। देश काल भेदसे मद्यके कितने ही प्रकारोंका आविष्कार हुआ है।

गौड़ी, पैष्टी, तथा माध्वी त्रिविधा चोत्तमासुरा।
सैव नाना विधा प्रोक्ता तालखर्जूरसम्भवा॥
तथा देश विभेदेन नाना द्रव्य विभेदतः॥
बहुधेयं समाख्याता प्रशस्तादेवतार्चने॥
(महा निर्वाण तन्त्र, ५ उल्लास)

उत्तम मदिरा तीन प्रकारकी कही जाती है—१ गौड़ी, २ पैष्टी, ३ माध्वी। वह ताड़ और खजूरसे भी तय्यार होती है। देश और द्रव्य भेदसे उस के बहुत से नाम हो गये हैं। गौड़ी, गुड़से तैयार होती है; पैष्टी अनाजसे पैदा होती है; माध्वी मीठी वस्तुओं से, जैसे महुआ, आदिसे।

यही सब द्रव्य अब भी बराबर मद्य बनानेमें प्रयुक्त होते हैं। मद्यका प्रयोग भी दुनियामें कम नहीं बड़े शहरसे लेकर छोटेसे गांव तकमें शराबका व्यवहार होता है। मदकारी द्रव्यका प्रयोग तो इतना बढ़ गया है कि पान, तमाखू, गांजा, ताड़ी, अफ़ीम, खजूर, धतूरा (यह भी तान्त्रिकोंके कथनानुसार मद्योंमें ही सम्मिलित हैं) आदिसे शायदही कोई बचा हो। इस प्रकार मद्यका प्रयोग कहीं भी लुप्त नहीं है।

दूसरा नम्बर मांसका है। कोई देश ऐसा नहीं, जिसमें मांसका प्रचार न हो; कोई जाति या फिर्का नहीं जिसमें मांसका सर्वथा लोप हो; कोई धर्म ऐसा नहीं जिसमें मांसकी सर्वथा रोक हो। थोड़े बहुत सम्प्रदाय भले ही मांसको छोड़ दें। परन्तु यदि वृक्ष या स्थावर संसारको प्राणी माना जाय तब तो मांसकी कोई सीमा ही नहीं। बिना मांसके जीव-संसारमें गुजारा नहीं चल सकता। "जीवो जीवस्य जीवनम्" जीव ही जीवोंका जीवन मालूम होता है।

जीवोंके तीन भेद माने गये हैं। जलचर, भूचर, और खेचर। तन्त्रोंमें आठ प्रकारके महामांस कहे हैं—

१ गो मांस, २ नर मांस, ३ हस्ति मांस, ४ अश्व मांस, ५ महिष मांस, ६ वराह मांस, ७ उष्ट्र मांस और ८ सर्प मांस।

तीसरा मकार मत्स्य है। कदाचित् कई देशोंमें मछलीको जल फल समझ कर मांस नहीं माना जाता; इस कारण उसको मांसमें न गिनकर पृथक् गिना गया है। मत्स्य भोजन भी प्रायः सर्वत्र होता है।

चौथा मकार मुद्रा है। वनस्पतियोंसे उत्पन्न होनेवाले द्रव्य तथा अग्निपाकसे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ मुद्रामें गिने जाते हैं। घीमें पके पदार्थ उत्तम, भुने हुए धान चावल मध्यम तथा नीच अन्न निकृष्ट समझे जाते हैं।

पांचवां मकार मैथुन है। यह मकार सम्पूर्ण संसारके जीवोंमें सन्तति उत्पन्न करनेका साधन है। यह जीव मात्रमें विद्यमान है। इसकी उपेक्षा नहीं हो सकती।

इस प्रकार पांचों मकारोंकी सर्व व्यापकता-को देखकर और उनमें जीवों, प्राणियों और विशेष कर मनुष्योंकी प्रवृत्ति देखकर उन्हींको तान्त्रिकों ने अपने इष्ट साधनका मुख्य तत्व माना है। उन्हीं-की परिभाषा बनाकर अपना सर्वस्व उसीमें छिपा दिया है। अपना सब क्रियाकाण्ड उक्त सर्व साधारणमें प्रचलित शब्दोंमें ही वर्णित किया है; उनके लिए विशेष नाम न रख कर पांच मकारमें छिपा दिया है। इस बातको विस्तारसे लिखनेके लिए बहुत स्थान अपेक्षित है; अतएव संक्षेपसे यहां इसका उल्लेख करते हैं।

ऊपर लिखे पांच मकार राजसिक पञ्चमकार कहाते हैं। इसी प्रकार इनको तामसिक तथा सात्विक पञ्चमकार भी कहते हैं; परन्तु उस समय इन नामों से अन्य वस्तुओंका ही ग्रहण होता है। जैसे—

जगत्में जितने फल या रसमय पदार्थ हैं वह सब मद्य हैं। जितने भूचर और खेचर प्राणियोंसे पैदा होनेवाले पदार्थ हैं, वह सब मांस हैं। जितने धान्य, अनाज हैं वह सब मुद्रा हैं। सब जल-चर प्राणी मत्स्य हैं। पुरुषके उपभोगके स्त्री, रत्नादि भोग्य पदार्थ सब मैथुन शब्दमें आ जाते हैं। शिवशक्ति, जगदम्बा तथा इष्टदेवकी पूजाके लिए यह पांचोंमकार मनसा वाचा कर्मणा अर्पण करना आवश्यक है। संक्षेपतः पांचमकारोंसे इष्टदेव की पूजा की जाती है। निःसन्देह पञ्चतत्व पंच-महाभूत पृथ्वी, जल, वायु अग्नि, और आकाश हैं। इनके ही पांच प्रतिनिधि क्रमसे मद्य, मांस, मत्स्य, मैथुन, और मुद्रा अर्थात् पञ्चमकार हैं।

कैलास तन्त्रमें पांच तत्वोंका उद्घाटन इस प्रकार किया है—

> मद्यं विष्णुर्विधिर्मांसं रुद्रो मत्स्यस्ततः परम्।
> मुद्रात्वमीश्वरं विद्धि मैथुनं च सदाशिवः॥
> नानान्येतानि तत्त्वानां पञ्चप्राणोद्भवानिते।

"हे शिव तुम्हारे पांचों प्राणोंसे यह पांचतत्व उत्पन्न हुए—मद्य-विष्णु, मांस-ब्रह्मा, रुद्र-मत्स्य, मुद्रा-ईश्वर और मैथुन-सदाशिव।

१	मद्य	विष्णु	जल	रसना
२	मांस	ब्रह्मा	पृथिवी	नासिका
३	मत्स्य	रुद्र	अग्नि	चक्षु
४	मुद्रा	ईश्वर	वायु	त्वचा
५	मैथुन	सदाशिव	आकाश	कर्ण

इस कोष्ठकसे पांचमकारोंका रहस्य कितना स्पष्ट हो जाता है। इसके अतिरिक्त सात्विक पूजा-के पांचमकार और भी गूढ़ हैं।

(१) मद्य

विजय तन्त्रमें लिखा है—

यदुक्तं परमं ब्रह्म निर्विकारं निरञ्जनम्।
तस्मिन् प्रमदनं ज्ञानं तन्मद्यं परि कीर्त्तितम् ॥

निर्विकार निरञ्जन परब्रह्ममें योगसे लय हो कर भक्त लोगोंका रमण करना, उसका ज्ञान होना और उसीमें मग्न हो जाना ही मद्य है।

आगमसार तन्त्रमें लिखा है।

सोमधारा क्षरेद् यातु ब्रह्मरन्ध्राद् वरानने।
पीत्वानन्दमयो यस्तां सएव मद्यसाधकः ॥

मद्यका साधक वही है जो ब्रह्म रन्ध्रसे टपकने-वाली सोम (अमृत) धाराको पी कर आनन्दमय हो जाता है। कुलार्णवमें लिखा है—

परमे कुण्डली योगात् सम्भवेदमृतञ्च यत्।
तत्पान निरतोयोगी कथितो मद्य साधकः ॥

परब्रह्ममें कुण्डलिनीका योग हो जाने पर, जो अमृत रस उत्पन्न होता है, उसके पान करनेमें मग्न योगी ही मद्यका साधक है।

(२) मांस

विजय तन्त्रमें लिखा है।

मां सनोति हियत्कर्म तन्मांसं परि कीर्त्तितम्।
नचकाय प्रतीकन्तु योगिभिर्मांसमुच्यते ॥

योगी लोग शरीरके टुकड़ोंको मांस नहीं कहते। बल्कि मुझ—देवता—को समस्त कर्मोंको अर्पण कर देना ही मांस कहाता है।

आगमसारमें लिखा है—

माशब्दाद्रसनाज्ञेया, तदंशान् रसना प्रियान्।
सदायो भक्षयेद्देवि सएव मांस साधकः ॥

'मा' का अर्थ रसना, जिह्वा, है। उसके अंश वाक्योंका बोलना वाणीको बहुत प्रिय लगता है। जो साधक वाक्योंको बाहर न निकाल कर उनको संयमपूर्वक अपने अन्दर ही खाकर (श्रवण कर) पचाले अर्थात् मौन धारण करके गुरु वाक्योंका मनन करे वही मांसका साधक है।

कुलार्णवतन्त्रमें लिखा है—

मानसादिन्द्रियगणं संयम्यात्मनि योजयेत्।
मांसाशी सभवेद्देवि इतरे प्राण घातकाः ॥

जो अपने मनसे अपनी इन्द्रियोंका संयम कर लेते हैं वही मांस भोजी हैं और शेष सब तो प्राणों-के हत्यारे हैं।

(३) मत्स्य

विजय तन्त्रमें लिखा है—

मंसयानं सर्वभूते सुखदुःखादि मत्प्रिये।
इतियत् सात्विकं ज्ञानं तन् मत्स्यं परिकीर्त्तितम्।

हमारे समान ही सब प्राणियोंको सुख दुःख होता है। जिस जिस बातसे मैं सुखी या दुःखी हूं उसी उसी बातसे सब प्राणी भी सुखी और दुःखी होते हैं—यह सात्विक ज्ञान ही मत्स्य कहाता है।

आगमसार तन्त्रमें लिखा है—

गङ्गायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु सभवेन् मत्स्यसाधकः ॥

गंगा और यमुनाके बीचमें दो मछली सदा घूमा करती हैं; उनको जो खा लेता है वही अच्छा मत्स्य साधक है। इड़ा नाड़ी गङ्गा है, पिङ्गला नाड़ी यमुना है। इन दोनोंमें निश्वास प्रश्वास दो मत्स्य प्राण अपान रूपसे विचरा करते हैं। जो प्राणायामसे निरोधकर उनको वशमें कर लेते हैं वही सच्चे मत्स्य साधक हैं।

कुलार्णवमें लिखा है—

पुण्यापुण्योभयं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परेलयेल्लयं चित्तं समत्स्याशी निगद्यते ॥

जो योगी पुण्य और पापरूपी मछलियोंके ज्ञान रूपी खड्गसे टुकड़े टुकड़े करके अपने चित्तको परब्रह्म-में लीन कर दे वही मत्स्यका खाने वाला कहाता है।

(४) मुद्रा

विजय तन्त्रमें लिखा है—

सत्सङ्गेन भवेन्मुक्तिर सत्सङ्गेषु बन्धनम्।
असत्सङ्ग-मुद्रणंत् तन्मुद्रा परिकीर्त्तितम् ॥

सत्सङ्गसे मुक्ति होती है और दुर्जनोंके सङ्गसे संसारमें बन्धन होता है। असत्सङ्गका परित्याग करना अर्थात् उसको (मुद्रण) मूंद देना ही मुद्रा कहाता है।

आगमसारमें लिखा है—

सहस्रारे महापद्मे कर्णिका मुद्रिता चरेत्।
आत्मा तत्रैव देवेशि केवलं पारदोपमम्॥
सूर्य कोटि प्रतीकाशं चन्द्रकोटि सुशीतलम्।
अतीव कमनीयञ्च महाकुण्डलिनी युतम्॥
यस्यज्ञानोदयस्तत्र मुद्रा साधक उच्यते।

शिरो भागमें सहस्र दलकमलके बीचमें एक कर्णिका है। उसके बीचमें त्रिकोण यन्त्रमें पारेके समान स्वच्छ करोड़ों सूर्योंके समान उज्ज्वल, करोड़ों चन्द्रोंके समान शान्ति दायक शीतल कान्तिमान, अत्यन्त मनोहर कुण्डलिनी सहित आत्मा विराजमान है; जिसको परम ज्ञानका बोध उसमें होता है वही सच्चा मुद्राका साधक होता है।

(५) मैथुन

विजय तन्त्रमें लिखा है—

कुला कुण्डलनी शक्तिर्देहिनां देह धारिणी।
तया शिवस्य संयोगो मैथुनं परिकीर्त्तितम्॥

देहको धारण करनेवाली, मूलाधारमें स्थित कुण्डलिनी ही शक्तिरूपसे स्थित है। योगबलसे षट् चक्रोंको भेद करके उसका सहस्र दलकमलमें स्थित कर्णिकासे योग करा देना ही मैथुन है।

आगमसारमें लिखा है—

रेफस्तु कुङ्कुमा भासः कुण्डमध्ये व्यवस्थितः।
मकारश्च बिन्दु रूपो महायोनौ स्थितः प्रिये॥
आकार हंसमारुह्य एकता च यदा भवेत्।
तदा जातं महानन्दं ब्रह्म ज्ञानं सुदुर्लभम्॥
आत्मनिरमते यस्मादात्मना रामस्तदुच्यते।
अतएव रामनाम तारकं ब्रह्म निश्चितम्॥

कुंकुमके समान लालरङ्गका कुण्ड मणिपूर चक्र है; उसके बीचमें रकाररूपी प्राणवायु अकार रूपी हंस (श्वासप्रश्वास) के ऊपर चढ़कर बिन्दुरूपी मूलाधारमेंसे होता हुआ योनिमण्डलमें बैठे हुए मकार से सहस्र दलकमलमें संयोग करता है तभी ब्रह्मज्ञान रूप महाआनन्द प्राप्त होता है। यही मैथुन है। इसकी साधना करनेवाले आत्मामें ही रमण करते हैं; वह आत्मा राम कहाते हैं। तारक नाम ब्रह्मको ही राम कहते हैं।

योगिनी तन्त्रमें लिखा है—

सहस्रारोपरिबिन्दौ कुण्डल्या मेलनं शिवे।
मैथुनं परमं द्रव्यं यतीनां परिकीर्त्तितम्॥
(५म पटल)

सहस्रदल कमलमें कर्णिकाके बीचमें परमबिन्दु अर्थात् शिवतत्वसे नाम रूपा कुण्डलिनी शक्तिके योगको ही योगी जन मैथुन कहते हैं।

कुलार्णव तन्त्रमें लिखा है—

पर शक्त्यात्म मिथुन संयोगानन्द निर्भरः।
स मुक्तो मैथुनं तत्स्यादि तरेस्त्री निषेवकाः॥

योगके बलसे कुण्डलनीको आधार पद्ममेंसे उठाकर शिरमें स्थित सहस्र दलकमलमें लाकर शक्तिका शिवसे योग कराना ही मैथुन है। उसको करनेवाला ही मुक्त है; शेष सब तो स्त्री भोगी हैं।

इस प्रकार मुख्य मुख्य तन्त्रोंमें पञ्चमकारोंका गूढ़ाशय स्थान स्थानपर खोला गया है। शेष तन्त्र-ग्रन्थ भी इन मकारोंकी ऐसी ही व्याख्या करते हैं; जैसे कैलास तन्त्रमें लिखा है—

ब्रह्म रन्ध्र महापद्म चन्द्रांशु परिपूरिता।
ब्रह्मा दिभिः सदा पेया प्रथमा सा प्रकीर्त्तिता॥

मदिरा वही है; जिसे ब्रह्मादि पीते आये हैं और जो ब्रह्म रन्ध्र रूप महापद्म में चन्द्र (सोमचक्र) की किरणोंसे गलित होकर उसको भर देती है।

भैरवयामल तन्त्रमें लिखा है—

ब्रह्म स्थान सरोज पात्र लसिता ब्रह्माण्ड तृप्तिप्रदा।
याशुभ्रां शुकला सुधा विगलिता सा पान योग्यासुरा॥

ब्रह्म रन्ध्रके स्थानपर स्थित सहस्र दल कमल रूपी प्यालेमें शोभा देनेवाली, ब्रह्माण्ड भरको सन्तुष्ट करनेवाली, और शुभ्र चन्द्रकलासे झरनेवाली जो सुधा है; वही पीने योग्य सुरा है।

कैलास तन्त्रमें लिखा है—

छित्वा ज्ञानासिना सर्वान् काम क्रोधादिकान् पशून्।
भुंक्ते योऽविषयं मांसं द्वितीया तदुदाहृता ॥

ज्ञानरूपी खड्गसे काम क्रोध आदि पशुओंको मार कर विना विषयोंका रस लिये जो उनका मांस खाया जाता है, वही मांस भोजन है; वही मांस कहाता है।

अहंकारादयो मीनाः छित्वा वैराग्य जाल के।
ज्ञानाग्निना आचयित्वा तृतीया परिकीर्तिता ॥

मानस सरोवरमें अहंकारादि मीन हैं; उन पर वैराग्यका जाल बिछा कर पकड़ले और ज्ञानकी आगपर भून कर खा जाय। बस यही मत्स्य भोजन कहाता है।

भैरवयामलमें लिखा है—

अहंकारो दम्भो मद पिशुनता मत्सर द्विषः।
षडेते मीना वै विषय हर जालेन विधृताः ॥

अहंकार, दम्भ, मद, पिशुनता (चुगलखोरी), मत्सर (छलकपट) और द्वेष, यह छः मछली हैं, जिनको वैराग्यके जालसे पकड़ लिया जाता है।

कैलास तन्त्रमें लिखा—

आशा तृष्णा महा मुद्रा ब्रह्माग्नौपरिपाचिता।
याऽश्नन्ति नियतं चतुर्थी सेव कीर्तिता ॥

आशा और तृष्णा नामका धान ही, ब्रह्म ज्ञान रूपी अग्निमें खूब भुना है। खीलें बन गयीं हैं; उन्हींको ऋषि लोग खाया करते हैं। यही मुद्रा कहाता है।

भैरवयामलमें लिखा है कि आशा, तृष्णा, जुगुप्सा, भय, विषाद, मान, लज्जा, शङ्का यह आठ मुद्रा रूप धानोंको ब्रह्मकी अग्निमें भूनकर खानेसे रुद्र तुल्य महात्मा हो जाता है।

उपरोक्त ग्रन्थमें ही लिखा है—

या नाड़ी सूक्ष्मरूपा, परमपदगता, सेवनीया सुषुम्ना।
सा कान्ताऽऽलिङ्गनार्हा न मनुजरमणी सुन्दरीवारयोषा ॥
कुर्याच्चन्द्रार्कयोगे युगपवनगते मैथुनं मैत्रयोनौ।
शेतेयोगेन्द्रवर्याः सुखमय भवने तां समादाय नित्यम् ॥

परमपद ब्रह्माण्ड भागमें सुषुम्ना नाड़ी ही सेवन करने योग्य मानो एक कान्ता है, जिसका आलिङ्गन करना चाहिये, नकि किसी सुन्दर वार विलासिनी नारीका। जब चन्द्र (वाम प्राण) और सूर्य (दक्षिण प्राण) का योग हो, दोनों प्राणापानकी समान गति हो तभी योगीश्वर लोग सुखमय भवनमें नित्य उस सुषुम्नामयी कान्तासे रमण किया करते हैं।

लेखके बहुत बढ़ जानेके भयसे हम अधिक नहीं लिखते। केवल इतना ही लिख कर पाठकोंका ध्यान इस ओर आकर्षण करते हैं कि तन्त्रकारोंने अपने परमार्थ विषयको किस सूक्ष्मता और सिद्धहस्ततासे गोपन करके ऐसा चोला पहनाया कि ऊपरकी आंखसे देखनेवालेको शराबखोरी कबाबखोरी और ऐयाशीके सिवा कुछ मालूम नहीं होता। वस्तुतः तन्त्र ग्रन्थ एक सांसारिक जीवनका गोरख धन्धा है। जो ऊपरके मैलेमें फंस गया, वह डूब गया। जो सबको छोड़ कर अन्दरका सार पा गया वह तर गया। तन्त्र ग्रन्थोंकी पंक्तियां बड़ी जबर्दस्त भूल भुलैय्यां हैं; जिसमें फंसकर आदमी धैर्यसे देहमें छिपे राजाको पा सकता है; नहीं तो मार्गमें ही तड़प कर मर जाता है। तन्त्र ग्रन्थोंकी कुछ भूल भुलैय्यांका रहस्य अगले लेखमें लिखेंगे।

"तांत्रिक"

आविष्कारोंके पूर्वज

सौथ केन्सिंगटन म्यूज़ियममें संसारके बहुत से चमत्कारजनक आविष्कारोंके बाल्यकालकी अवस्थाओंके दृश्य देखे जा सकते हैं। जैसे—

१. वह एंजिन जिसने सबसे पहले यूरोपियन समुद्रोंमें कोमेर नामक स्टीमरमें लग कर वर्त्तमानके जहाजी गौरवको जन्म दिया था। एक होनहार स्काटलैण्डवासी हेनरी बैलने इसे बनाया था। बैल

महोदय पहले राजगिरीका काम करते थे। बड़े संकट सह कर, बहुत बाधा और कष्ट पार करके उसने भापसे नाव चलायी और संसारको चकित कर दिया। ग्लासगो और ग्रीनिचके बीचमें यह नाव ५ मील प्रति घण्टेकी चालसे चलती थी।

२. इस अद्‌भुतालयमें आप सबसे पहलेकी सीनेकी कल देखेंगे। इसके आविष्कारक चार्लस काइट (Charles Kyte) थे, जो वोर्सेस्टर शायरके वासी थे। इन्होंने पहले एक भद्दीसी मशीन एक स्टूलपर लगाकर तय्यार की थी। कई सालके बाद १८५२ में आइज़कसिंगरने, अपनी सीनेकी कलका आविष्कार किया।

३. इस अद्‌भुतालयमें एक छापा खाना भी रखा है। इस ढङ्गका छापा खाना आजसे सौ वर्ष पहले बैनजामिन फ्रैंकलिन अपने काममें लाया करते थे। उसकी बनावट बहुत कुछ कैक्सटन महोदय के लकड़ीके छापेखानेसे मिलती जुलती है। कैक्सटनने यह प्रेस १४५६ ई० में ही बना डाला था।

४. वहां आप एक ऐसा यन्त्र भी देखेंगे जो एक मिनिटमें २८००० मीलपर बैठे पुरुषको ५० संवाद भेज सकता है। यह असाधारण उपकरण १८३५ ई० में बनाया गया था।

५. ब्रिटिश म्यूजियममें दाउर कलर्सने बनाया हुआ एक चित्र है। यह एक ऐसे अद्‌भुत यन्त्रका है जिसमें छः शटर हैं। एक सदी पहले इसी यन्त्र द्वारा लण्डनसे पोर्ट्समाउथ, डील, या डोवरमें सिग्नल भेजा करते थे।

६. एंजिनोंके पुराने वंशकर देखने हों तो आप बर्मिङ्घम आर्ट गैलरीमें तशरीफ़ ले जावें। वहां आप विलियम मरडकके बनाये एंजिनका प्रति रूप देख सकेंगे। इस आविष्कारकने ही १८वीं सदीके अन्तिम भागमें कोलगैसका आविष्कार किया था। इन्होंने १७८६में कार्नवालसे अपनी मालिक कम्पनी मेसर्स बोल्टन एण्डवाटको लिखा था कि "मैंने एक छोटासा एंजिन बनाया है; जिसे एक छोटीसी गाड़ी के साथ लगाकर देखा गया है और खूब सफलता हुई है।" यद्यपि उसने रेल गाड़ियोंके खैंच ले जानेकी समस्या हल कर दी थी; तो भी उसके इन कार्योंका बड़ा घोर प्रतिवाद उठा। उसने इस कामको आगे बढ़ानेका विचार छोड़ दिया और इसकी विशेष उन्नतिका कार्य औरोंको सौंप दिया।

७. ५० वर्ष बाद रिचर्ड ट्रीविथिक्‌ने एक भाप गाड़ीका आविष्कार किया, जिसका नाम उसने फप् फप् दानव (Puffing devil) रखा। यह महोदय कार्नवालके खान-इंजिनीयर थे। इनका यह आविष्कार देख कर लन्डन वासी बड़े चकित हुए। उस समय 'दानव' से आक्सफोर्ड स्ट्रीट पर ८ मील प्रति घण्टेकी चालसे सवारी ढोनेका काम लिया जाता था।

८. बहुत से लोग समझते हैं फप् फप् दानव वर्तमानकी मोटरकारका पुरखा है। परन्तु वस्तुतः मोटरकारका वंशकर एक और गाड़ी है; जो सर रिचर्ड टैंगी (Sir Richard Tangye) ने आज से बहुत दिन पहले बनायी थी। यह गाड़ी २० मील, प्रति घंटेकी चालसे लोगोंको उड़ाये लिये जाती थी।

९. सबसे पहली बाई सिकल, जिसको पुराने 'होबी-हार्स' से कुछ भिन्न माना जा सकता है १८३९ में बनी। इसके बनाने वाले किर्कपैट्रिक मैक्मिलन नामके स्काट लैण्ड वासी लोहार थे; जिन्होंने सबसे पहले पहियोंमें जंजीर और पायदानियाँ लगा कर साइकल तय्यार की थी।

१०. ४४ वर्ष पहलेका एडिसनका वैज्ञानिक बच्चा मनुष्य वाणीसे बोलने वाला यन्त्र फोनोग्राफ़ अब भी अमेरिकामें कहीं कहीं बराबर "गुड़मोर्निंग, हाउडुयूडु, डुयू लाइक फोनोग्राफ" आदि कहता हुआ पाया जा सकता है।

—ज० वि०

पृथ्वीका प्राचीन इतिहास

आज से लाखों करोड़ों वर्ष पहले भूमण्डल पर कैसे प्राणी विचरते थे, उनकी शकल सूरत कैसी थी, वह क्या खाते पीते थे और उनकी रहन सहन कैसी थी, यह बड़े रोचक प्रश्न हैं। इनका उत्तर ढूंढ निकालनेका प्रयत्न आधुनिक वैज्ञानिकोंने किया है। प्रकृतिने प्राचीन इतिहासका बहुत कुछ मसाला स्थान स्थान पर जमा कर रखा है। इन्हीं स्थानोंका कुछ वर्णन यहां पर किया जायगा।

विज्ञानके एक लेखमें तलछट जन्य चट्टानोंका हाल लिखा जा चुका है, नदी नालोंकी धाराएं तथा वर्षाका जल भूपृष्ठको धीरे धीरे काटकर बहा ले जाता है। यह रेत मट्टी, कंकड़ आदि नदी आदिके मार्गमें अंशतः और मुख्यतः समुद्रमें जाकर जमा होते रहते हैं। इसी तलछटसे तलछटीय
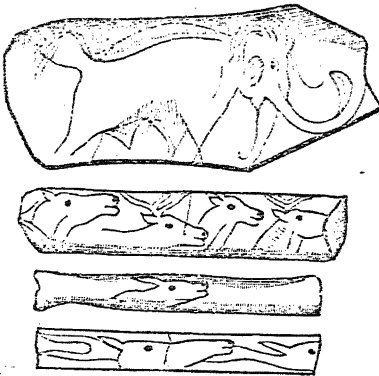
चित्र १६—हड्डियों पर खुदे हुए प्राचीन चित्र

चट्टानोंकी रचना होती है। भूगर्भकी अनेक घटनाओंके कारण भूपृष्ठ तथा समुद्रकी तलैटीमें परिवर्तन होते रहते हैं। जो स्थान समुद्रके पेंदेमें आज मौजूद है, वह समयके हेर फेरसे किसी ऊंचे पर्वत शृङ्गके रूपमें ऊपर उठ आ सकता है।

जब तलछट जमती रहती है, उस समयमें मृत जन्तुओंकी हड्डियां या अस्थि पिंजर वहां तक पहुंचकर उसमें दब जाते हैं अथवा भूला भटका जानवर कीचड़में फंस जाता है तो निकल नहीं सकता और वह उसीमें धंस कर दब जाता है। जब कीचड़ चट्टानोंके रूपमें सूख कर ऊपरको उठ आती है तो यह हड्डियां और अस्थि पिंजर उनमें लाखों क्या अर्बों बरस तक दबे पड़े रहते हैं। जब चट्टानें खोदी जाती हैं तो उनमें यही हड्डियां निकलती हैं। इन हड्डियोंको बड़ी सावधानीसे इकट्ठा कर लिया जाता है। यदि पूरी हड्डियां मिल गयीं तो ढांचा बनाकर खड़ा कर दिया जाता है। और

चित्र १७—इग्वानोदंत (Iguanodon) के पद चिह्न

उसकी रचनासे ही जीवित जन्तुकी आकृति अनुमानसे बनाली जाती है। हड्डियोंको देखकर विशेषज्ञ यह बतला सकते हैं कि किस जातिके प्राणीकी वह हड्डियां हैं। उदाहरणके लिए मोआके आविष्कारकी कथा सुनिये।

एक बार एक सज्जन न्यूजीलेण्ड गये, वहांपर उन्हें अपने बागमें ही एक हड्डी मिली, जो प्रायः ७ या ८ इंच लम्बी थी। यह हड्डी उन्होंने प्रोफेसर ओवेनके पास भेज दी। जांच करनेके बाद यह परिणाम निकला कि शुतुर्मुर्गकी जातिके किसी

पक्षीकी जंघास्थिका यह मध्य भाग है। प्रो० ओवेनने दावेके साथ यह प्रकाशित किया कि न्यूज़ी लेण्डमें शुतुर्मुर्गकी जातिका, पर बड़े डील डौलका, एक जानवर रहता था, जो अब नहीं

चित्र १८—मध्यारम्भकालीन चक्रदन्तके (Labyrinthodon) ७ इंच लम्बे पद चिन्ह

मिलता। बादमें न्यूज़ी लेण्डसे और हड्डियां आईं, जिनको इकट्ठा कर ओवेनने ढांचा खड़ा कर दिया।
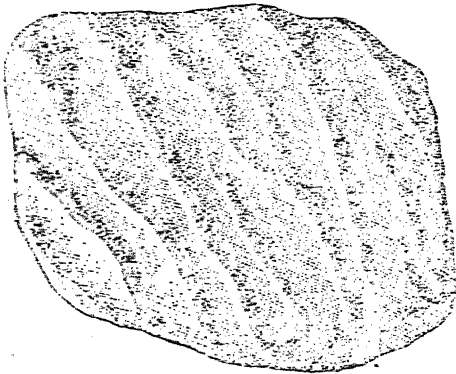
चित्र १९—मध्यारम्भक कालीन (Triassic) स्तरों में पाये गये जलतरंगोंके चिन्ह।

हालमें ही मोआ पक्षीके पूर्ण अस्थि पिंजर दलदलमें दबे हुए मिले हैं, जिससे पता चलता है कि ५०० या ६०० वर्ष पहले यह पक्षी न्यूज़ीलेण्डमें पाये जाते थे।

दलदलोंमें भी प्रायः पूरे आस्थिपिंजर दबे मिल जाते हैं। वास्तवमें यदि दलदली स्थानमें कीचड़ न होकर पिच या डामर जैसा पदार्थ हुआ तब तो मांस तक चढ़ा हुआ मिलता है। अमेरिकामें कई स्थानों पर पिचकी दलदल मिलती है, इसमें से भी पशुओंके आस्थिपिंजर निकलते हैं।

बरफमें जो पशु दब जाते हैं, वह बरफके न गलने तक, अविकृत अवस्थामें बने रहते हैं। मैमथ एक प्रकारका हाथीका सा पशु था। यह उत्तरीय एशिया और यूरोपमें पाया जाता था। १७९९ में एक रूसी सरदार मेमथके दांतोंकी

तलाश करा रहा था। साइबेरियाकी अनुकूल (Onkoul) झीलके पास उसे एक विकृत ढेरसा दिखाई दिया। पांच साल तक वह उसे देखता रहा, पांचवें वर्षके अन्तमें बरफ गली तो मेमथक

चित्र २०—आरसिनिई जन्तु (arsineitherium) का तीन फुट लम्बा सिर।

शव दिखाई दिया। मार्च सं० १८०४ में शमेकफ (Schumakhoff) ने उसके दांत काटकर (लगभग १२० रु०) ५० रुबलमें बेच दिये। १८०६ ई० में एडम्सने जाकर उस शवको देखा। याकुत (Yakuts) लोगोंने उसका मांस काट काट कर कुत्तोंको खिला दिया था। जंगली जानवरोंने भी खूब मांस खाया था। सर पर चमड़ा मौजूद था और कानोंके पास बालोंका गुच्छक। आंखोंकी पुतली दिखाई देती थीं, मस्तिष्क सरमें भरा हुआ था, गलेमें अयाल थी। केवल चमड़ा इतना भारी था कि दस आदमी मुश्किलसे उठा सकते थे। अस्थिपिंजर अब सेंट-पीटर्स वर्गके अद्‌भुतालयमें रखा है।

दलदल, चट्टान, पिचके कुण्ड, बरफ, यह सभी प्रकृतिके अद्भुतालय हैं। इन्हींमें दबी हुई प्राचीन इतिहासकी सामग्री पायी जाती है। इस सामग्री-का सदुपयोग वैज्ञानिक करते हैं। अस्थिपिंजरको मांसावरण कल्पना शक्तिके बलसे पहनाना चतुर चितेरोंका काम है; अस्थियोंके आकारसे पशुओं-का स्वभाव, रहन सहन, बुद्धिमत्ता और योग्यता-का अनुमान कर लेना विज्ञ वैज्ञानिकोंका कर्तव्य है।

कभी कभी प्राचीन कालके मनुष्य भी अपने अपने युगोंके प्राणियोंके चित्र हड्डियों पर बनाते थे। पत्थरों और हड्डियों पर बनाये हुए चित्र प्रायः मिला करते हैं।

चित्र १६ में हड्डियों पर बनायी हुई आकृतियों-के कुछ नमूने दिखाये गये हैं। ऊपरका चित्र मैमथका है; नीचेके चित्र एक प्रकारके हिरन, रेन-डियर, के हैं।

चित्र १७, १८, में प्राचीन कालके पशु-पक्षिओंके पद चिन्होंके कुछ नमूने दिखाये गये हैं। यह चट्टानों पर अंकित पाये गये हैं। चित्र १९ में जलतरंगोंकी आकृति है। चित्र २० में एक प्राचीन

चित्र २१—मध्यकालीन पेरीसराट (Pariasaurus) जो ६ हाथ लम्बा था

पशुका मस्तिष्क दिखलाया है, चित्र २१ में एक प्राचीन कालके पशु पेरियासौरसकी आकृत्ति दिखाई गयी है। चित्र २२ में बानर जातिके मनुष्यके दांत दिखलाये हैं, जो माल्टाके एक प्राचीन कालके मन्दिरमें मिले थे।

चित्र १७ में इग्वानोंदंत (Iguanodon) नामक छिपकलीकी जातिके एक प्राणीका पद चिन्ह दिख-

चित्र २२—वानर जातिके मनुष्यके दांत और पेथरीके औज़ार
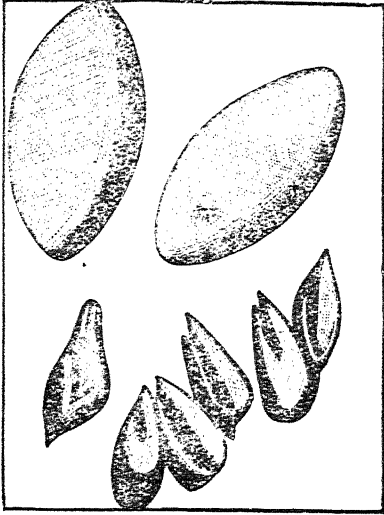
लाया गया है। इन्हीं पद चिन्होंसे यह पता चलता है कि वह कंगारूकी नाईं पिछले पैरों पर खड़ा होकर चलता और दौड़ता था। जब यह पिछली टांगों पर खड़ा होता था तो इसका सिर १४ फुट ज़मीनसे ऊंचा रहता था। इसके दांत लगभग ८० वर्ष पहले डा० मेनटेलको मिले थे। इसके दांत इग्वानोंके से होते थे, अतएव इसका नाम इग्वानोदंत रखा गया है।

चित्र १८ में चक्रदंत (Labyrinthodon) के पद चिन्ह दिखाये गये हैं, जो सात सात इंच लम्बे हैं। यह प्राणी स्थलजलचर (amphibian) था। आरसिनोई जन्तुका मस्तिष्क तीन फुट लम्बा था। (चित्र २०)। डा० एण्ड्रूज़ ने इसका समूचा अस्थिपिंजर मिश्रमें खोद कर निकाला था। इसके चार सींग थे, दो बड़े और इन्हींके पीछे दो छोटे। इसकी हड्डियां मिश्रकी सम्राज्ञी आरसिनोईके प्राचीन प्रासादके पास मिली थीं, इसीसे इसका नाम आरसिनेई जन्तु (arseneitherium) रखा गया है।

पेरोसराट गाय भैंसके आकारका पशु था। यह भी शाकाहारी था। इसका अस्थिपिंजर प्रोफेसर एमेलिट्ज़की (Amalitzky) ने उत्तरीय रूसके द्विना (Dwina) नदीके किनारे खोदकर निकाला था। यह प्राणी १५०००० वर्ष पहले जीवित था।
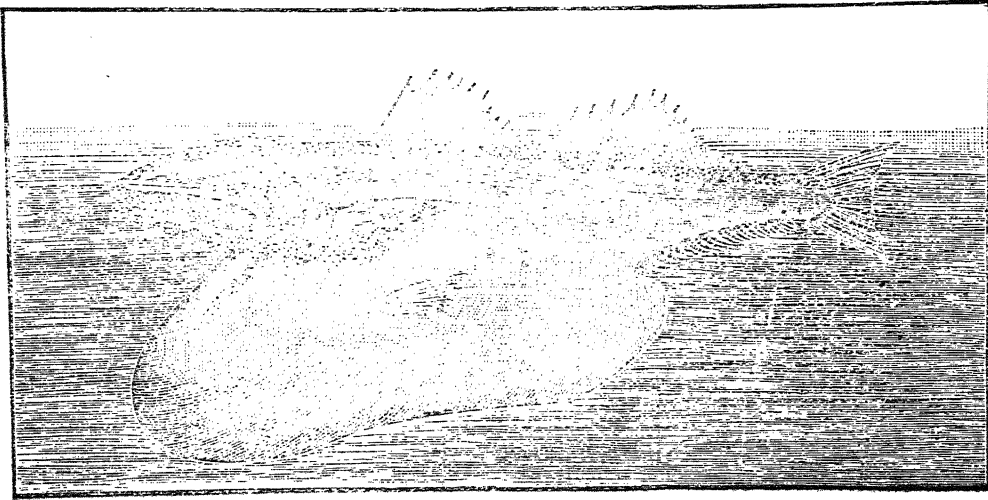
चि २३—बड़ पेटू मछली (Chiasmodon niger)

बड़ पेटू मच्छ

मथुराके चौबे खानेमें मशहूर हैं। दस दस सेर "लडुवा और पेड़ा" अथवा "दूध जलेबी" उड़ा जाना उनके लिए खेल है; परन्तु अपने शरीरके भारके बराबर अर्थात् लगभग २ मन मिठाई उड़ाना उनके लिए असम्भव है। परन्तु इस बातमें उन्हें एक प्रकारके मच्छ मात कर देते हैं। यह मच्छ समुद्रमें पाये जाते हैं। इनका नाम है चिएस-मोडन नाइगर (Chiasmodon niger)। कभी कभी यह अपने शरीरसे भी बड़े डीलडौलकी मछलियों-को पकड़ कर हड़प जाती है। इसका पेट भी परमात्माने ऐसा बनाया है कि फुटबालके ब्लेडरके समान फैल जाता है। चित्रमें देखिये कि पेट फूलनेपर इसका कैसा विकृत उदर हो जाता है। (चित्र २३)

सन्तान प्रेमी मेंढ़क

सुरीनम मेंढ़कमें सन्तान प्रेम अधिक उच्च कोटिका पाया जाता है। इसकी पीठमें छोटे छोटे कोठे होते हैं, जिनमें यह अपने अण्डे रखा करता है। इन्हीं कोठोंमेंसे छोटे छोटे मेंढक निक-लते हुए चित्रमें दिखाये गये हैं। वैज्ञानिक नाम पिपा अमेरिकेना (Pipa Americana) है। (चित्र २४)

कोयल-थूक

प्रयागस्थ कम्पनी बागमें सितम्बरके महीनेमें जो सज्जन घुड़ दौड़के कच्चे रास्तेसे आते जाते हैं, उन्होंने शायद देखा होगा कि घासपर इधर उधर ऐसे झागसे लगे रहते हैं कि जिससे मालूम होता

चित्र २४—सुरीनम मेंढक

है कि कोई थूक गया होगा, परन्तु किसी तिनकेसे इस फेनको हटा कर देखा जाय तो पता चलेगा कि उसमें एक इल्ली विराजमान है। यह कपट जाल इल्ली आत्म-रक्षाके लिए रचती है। इसमें छिपे रहने से इल्ली अपने शत्रुओंसे और सूर्यके तापसे बची

रहती है। इस झाग देनेवाले पदार्थको कोयल-थूक (Cuckoo Spit) कहते हैं। कीड़ेका नाम फ्रॉगहॉपर है। पर निकल आनेपर यह झागके लिवासको छोड़ उड़ने और उछलने लगता है।

संक्षिप्त सूरसागर

सूरदास हिन्दीके कवियोंमें सूर्य कहलाते हैं। इस नामसे उनका स्मरण जमानेसे किया जा रहा है। उनकी इस पदवीको आज तक कोई भी कवि छीननेमें समर्थ नहीं हो सका, परन्तु खेद है कि ऐसे सर्वश्रेष्ठ कविकी रचनाओंका कोई प्रामाणिक संस्करण अभी तक न निकल सका। खड़ी बोलीके ज़मानेमें ब्रजभाषाके बड़े बड़े दिग्गज हामियोंके रहने पर भी ब्रजभाषाको सर्वोच्च पद पर पहुँचानेवाले सूरकी रचनायें लुप्तप्राय सी ही बनी हैं। भला हो श्री वेङ्कटेश्वर और नवल किशोर प्रेसका जिन्होंने सूरकी रचनाओंके भ्रष्ट संस्करण निकाल कर उनकी धवल ध्वजाको मिट्टीमें मिल जानेसे बचाये रखा। इन प्रेसों द्वारा प्रकाशित सूरके ग्रन्थोंके संस्करणोंको जो सज्जन रद्दी कह कर नाक भौंह सिकोड़ते हैं वह पहले अपनी कर्त्तव्यहीनताकी ओर दृष्टिपात करलें तब कहीं उन्हें कुछ कहनेका साहस करें।

सूरदासकी रचनाओंका रसास्वादन सर्वसाधारणको करानेके लिए इधर कुछ समयसे एक दो संस्थाओंके जिन आयोजनोंकी चर्चा थी, उनका सुफल प्रकट हुआ है। सूरसागरके दो संग्रह अभी हालमें ही निकले हैं तथा एक और शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। इनमेंसे एक संग्रह साहित्य सम्मेलनकी ओरसे प्रकाशित हुआ है। उसीके सम्बन्धमें हम यहां कुछ लिखना चाहते हैं।

सम्मेलन द्वारा प्रकाशित संक्षिप्त सूरसागरके संग्रह कर्ता पण्डित हरिप्रसाद द्विवेदी हैं। वियोगी हरि 'आपका उपनाम' है। इसकी पृष्ठ संख्या ४०८ है। इनमेंसे ३२७ पृष्ठोंमें मूल संग्रह है और अवशिष्ट पृष्ठोंमें सूरदासका जीवनचरित्र, उनकी उत्कृष्ट रचनाकी विवेचना तथा संग्रहसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्तर्कथायें दी गई हैं। प्रारम्भमें राधाचरण गोस्वामी जीकी लोकाचारात्मक दो पृष्ठोंकी प्रस्तावना है। इस संग्रहमें पदोंकी पूर्ण संख्या ५१६ है। प्रत्येक पदके कठिन तथा प्रान्तिक शब्दोंके अर्थ पाद-टिप्पणियोंके रूपमें दे दिये गये हैं। पुस्तक सजिल्द है और मूल्य २) है।

प्रायः कुछ लोगोंका यह ढङ्ग सा हो गया है कि जहां कोई पुस्तक उन्होंने लिखी, तुरन्त किसी प्रसिद्ध लेखकके पास उसकी भूमिका लिखानेको दौड़ पड़े। शीलवश उन्हें भूमिकाके रूपमें कुछ लिख ही देना पड़ता है। इस संग्रहकी प्रस्तावना भी इसी श्रेणीकी है। गोस्वामी जी ब्रजभाषा काव्यके मर्मज्ञ माने जाते हैं, पर न मालूम आपने अपनी प्रस्तावनामें सूरके कवित्व अथवा इस संग्रहके महत्वका उद्घाटन करनेका प्रयत्न क्यों नहीं किया। संग्रहके सम्बन्धमें लिखा गया है कि "यह संग्रह मूलका अनुसरण और लीलाओंके अनुक्रमसे हुआ है और उत्तरोत्तर ज्ञान-वृद्धि पर ध्यान रखा गया है।" लीलाओंके अनुक्रमसे संग्रह करना तो समझमें आ जाता है, पर यह जानना कठिन है कि मूलके अनुसरण तथा उत्तरोत्तर ज्ञान वृद्धिको ध्यानमें रख कर संग्रह कैसे किया जाता है। चाहे जो हो, हम इस संग्रहका स्वागत करते हैं। सूरसागर जैसे विशाल ग्रन्थका रसास्वादन सबको सुलभ नहीं है। ऐसी दशामें उसके संग्रह ग्रन्थ अत्यन्त ही आवश्यक हैं। चाहे जिस भावको लक्ष्य कर ऐसे ग्रन्थोंका प्रणयन हो वह उपयोगी ही सिद्ध होंगे। इस संग्रहका पाठ कितना प्रामाणिक है, यह बात हम नहीं जान सके। इसके प्रत्येक पदके नीचे बहुलतासे जो शब्दार्थ दिये गये हैं उनसे यह पुस्तक बहुत अधिक उपयोगी हो गई है। उनसे पदोंका आशय

समझनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। जिन पुराने काव्योंके प्रकाशनमें इस बातकी उपेक्षा की जाती है, उनसे पाठकोंको विशेष लाभ नहीं होता है। वह सिर्फ़ उनकी अलमारियों की शोभा ही बढ़ाते रहते हैं। क्योंकि पुराने काव्योंमें ऐसे शब्दोंकी बहुलता है, जिनका अर्थ बहुत ही कम लोग जानने का गर्व कर सकते हैं।

इस संग्रहका परिशिष्ट भी कम उपादेय नहीं है। इसमें सूरदासका चरित और उनके कवित्व-की विवेचना आदिका संकलन हुआ है। संग्रह-कर्ता सूरदास और व्रजभाषा दोनोंके ही भक्त मालूम पड़ते हैं। वह अपनी इस वृत्तिके लिए सर्वथा स्वतन्त्र हैं। भक्तजन अपने इष्टकी प्रशंसा अतिशयोक्तिसे कर सकते हैं। पर हम यह सम-झते हैं कि यह संग्रह सम्मेलन की सम्पत्ति है और सम्मेलन एक दायित्व पूर्ण संस्था है। ऐसी दशामें उसके प्रकाशित ग्रन्थोंमें अनर्गलताकी जरासी खटकका होना उचित नहीं है। परन्तु खेद है कि हमें इसके परिशिष्टमें ऐसे कई एक स्थल दृष्टिगोचर हुए हैं। 'महात्मा नानक कबीर दास चरणदास......की कवितायें प्रायः जटिल, दुर्बोध एवं भङ्ग पद हुआ करती थीं। सर्वसाधारण पर भला ऐसी कविताओंका प्रभाव ही क्या पड़ सकता है'--यह लिखना कहांतक उचित है, यह बात हम जैसे 'दो चार अक्षर पढ़े पठित मूर्ख हृदय हीन जन' कैसे जान सकते हैं? 'लोगोंका अनुमान है कि कवियोंमें आचार्य केशवदास जीका पाण्डित्य सबसे बढ़ कर था, किन्तु यह उनका भ्रम है। यह माना कि केशवदास जीने अपनी कवितामें... अनेक भाषाओं और संस्कृत शास्त्रोंका वर्णन किया है (?), पर पाण्डित्य इसीको ही नहीं कहते। बहु-ज्ञतामें केशव तो हैं ही क्या स्वयं गुसाईं...जी भी सूरदासकी बराबरी नहीं कर सकते...' इत्यादि कथन तब तक प्रलापकी ही कोटिमें गिना जायगा जब तक इसका लेखक प्रमाणसे उसके समर्थन-की उपेक्षा करता रहेगा। 'इनकी उपमायें तो इतनी अनूठी हैं कि महाकवि कालीदास भी इनके आगे पिछड़ जाते हैं' इत्यादि जैसी बातें लिखना लेखक के साहसका काफ़ी परिचय देती हैं। परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी परिशिष्टके पढ़ने से मालूम हो जाता है कि लेखकने उसके लिखनेमें परिश्रम किया है। सूरके चुने हुए पदोंको यथा स्थान सन्निविष्ट कर उनकी उत्कृष्टता दिखलानेके लिए जो विवेचना की गई है वह बेतरह शिथिल होनेपर भी साधारण पढ़े लिखे लोगोंको सूरके कवित्वका परिचय प्रदान कर देनेमें सहायक अवश्य हो सकती है।

—समालोचक

प्राप्तिस्वीकार

(अप्रेल—दिसम्बर २२)

पं० शेषमणि त्रिपाठी, बी. ए., साहित्य रत्न, आज़मगढ़ १२)
डा० त्रिलोकी नाथ वर्मा, बी. एस-सी. एम. बी. बी. एस., बाराबंकी २४)
प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी, प्रयाग १२)
श्री० जल्पा प्रसाद, बी. एस-सी., प्रयाग १)
पं० कन्हैयालाल भार्गव रईस कीटगंज, प्रयाग १५०)
डा० नीलरतन धर, प्रयाग १२)
प्रो० वी. एस. तम्मा, एम. एस-सी., मेरठ १२)
प्रोफेसर सालिग्राम भार्गव एम. एस-सी, प्रयाग १२)
श्री० हरदयाल सिंह, बी. एस-सी., कानपूर २८)
श्री० इक़बाल नारायण गुर्टू, एम. ए. लखनऊ ४८)
प्रो० निहालकरण सेठी, डी. एस-सी., काशी १२)
श्रीमान् राजा रामपालसिंह कुर्री सुदौली राज्य २४)
श्री० शारदा प्रसादजी, सतना २४)
राय ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, एम. ए. लखनऊ १२)
प्रो० हरि राम चन्द्र दिवेकर २४)

—गोपाल स्वरूप भार्गव, कोषाध्यक्ष

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १६ } धन, संवत् १९७९। दिसम्बर, सन् १९२२ { संख्या ३

घोड़ोंके विभाग

[ले०—पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार]

आचार्य शालिहोत्रने घोड़ोंका विभाग देश विभागसे किया है। इस विभागका रहस्य जाननेके लिए प्राचीन भूगोल जानना बड़ा ही आवश्यक है। कोरे शाब्दिक वर्णनमें कुछ भी विशेषता नहीं दीखेगी।

शालिहोत्रने ६३ विभाग इस प्रकार किये हैं।

(१) ४ कुल
(२) ४ उपकुल
(३) ४ अन्तःस्थ
(४) ४ अनुस्थ
(५) ५ पञ्चस्थ
(६) ५ विषमेयस्थ
(७) ४ अनूपज
(८) ४ अपरान्तक
(९) ४ शूद्रक
(१०) ४ दाक्षिणात्य
(११) ४ वैशिम
(१२) ४ वेसर
(१३) २ कुक्कुर (स)
(१४) १ हैमवत
(१५) १ मागध; और
(१६) ९ घोटक कुल

(१) चार कुल—काम्बोज, वानायुज, आरट्टज और सैन्धव, यह चार घोड़ोंके कुल हैं; अर्थात् यह ४ मुख्य नसलें हैं। शेष इन्हींकी शाखा प्रशाखाएं हैं।

(२) चार उपकुल—गान्धार, चाम्पेय, तैतिल, बाल्हीकेय, यह चार उपकुल हैं। शालि-

होत्रके मतसे वानायुज कुलमें गान्धार देशके घोड़े शामिल हैं और आरट्ज कुलमें चाम्पेय अर्थात् चम्पा देशके घोड़े शामिल हैं। चम्पादेशको वर्त्तमानमें चम्बाकी रियासत कहते हैं। तैतिल देशके घोड़े सैन्धव कुलमें सम्मिलित हैं।

(३) घोड़ोंके ४ भेद अन्तस्थ कहाते हैं, मेवक, उपमेवक, कूलज और उपकूलज। मेवाड़ देश मेवनाट कहाता था, वहांके घोड़े मेवक और उसके समीपके देशके उपमेवक कहलाते थे; समुद्रका तट कूल,वहांके घोड़े कूलज उसके समीपका देश उपकूल; और वहांके घोड़े उपकूलज कहलाते थे। मेवक, उपमेवक, कूल और उपकूल यह देश अन्त प्रदेश कहाते थे। वहांके घोड़े अन्तस्थ कहाते थे।†

(४) घोड़ोंके चार भेद अनुस्थ कहाते हैं—त्रैगर्त, आर्जुनेय,‡ साविन्नेय, और योधेय। त्रिगर्त्त देशके घोड़े त्रैगर्त्त, अर्जुन देशके आर्जुनेय, सवित् देशके साविन्नेय और योध देशके योधेय कहाते थे। उक्त चारों देश अन्वग्देश और वहांके घोड़े अनुस्थ कहाते थे।

(५) घोड़ेके ५ भेद पश्चस्थ कहाते थे। यावन तुपार, विपमेय, कान्दरेय और वार्ष्मेय। यवन देश, तुपार देश, विशम देश, कन्दरा देश, और वर्ष्मवान देशके घोड़े क्रमसे यावन, तुपार, विपमेय, कान्दरेय और वार्ष्मेय कहाते थे।

(६) पांच भेद विपमेय कहाते थे। विपम देश वह पर्वत भाग हैं, जिनकी भूमि ऊवड़ खावड़ है। पश्च देशोंमें भी एक भाग विपम देश था। उसके अतिरिक्त अवट, अतस, काश्मीर, सकानक और पार्वती प्रान्त यह पांच प्रदेश सम्मिलित थे। इनके घोड़े भी क्रमसे आवट्य, आतस, काश्मीर, साकानक, और पार्वतीय कहाते थे। इन पांचों भेदोंका साधारण नाम विपमेय था।

† अर्थात् किसी समय यह देश समुद्रके तट पर देशके सीमा प्रान्त थे।

‡ आर्जुनेय ही आजानेय भी कहाता था, जहांके घोड़ों को आजानेय नामसे भी पुकारा जाता है।

(७) घोड़ोंके ४ भेद अनूपज कहाते थे। उत्तरान्त माद्रेय, दक्षिणान्त माद्रेय, आन्तर्द्वीपक और कैकय। मद्रदेशके दो सीमान्त प्रदेश क्रमसे उत्तरान्त मद्र और दक्षिणान्त मद्र कहाते थे। वहां के घोड़े भी उत्तरान्त माद्रेय और दक्षिणान्त माद्रेय कहाते थे। अन्तर्द्वीपके घोड़े आन्तर्द्वीपक और केकय देशके घोड़े कैकय कहाते थे। यह चारों देश अनूप देश थे; इनके घोड़े अनूपज कहाते थे।

(८) घोड़ोंके चार भेद अपरान्तक कहाते थे। अम्बष्ठक, वासन्तक, सौवीरक, और दरद। यह भिन्न भिन्न देश भी पश्चिममें बसे थे।

(९) घोड़ोंके ४ भेद शूद्रक कहाते थे, जो शूद्रक देशोंमें होते थे। सैन्धव, शुद्रक, मालव और ऐरावत—यह चार प्रकारके घोड़े सिन्धु, शुद्रक, मालव और ईरावती नदीके तट प्रान्तोंमें पाये जाते थे। यह चारों प्रदेश शूद्र देश समझे जाते थे।

(१०) दक्षिणात्य घोड़ोंके ४—भेद थे—आवन्त्यक, कालिङ्गक, मौकुल और वानवासि। यह चारों भेद क्रमसे अवन्ती, कलिङ्ग, मुकुल, और बनवास प्रान्तोंके थे। यह चारों प्रान्त दक्षिण देश कहाते थे।

(११) घोड़ोंके ४ भेद वैशिप कहाते थे। तैलङ्ग, क्रथन, अपवृत्तक, सौराष्ट्र यह ४ भेद क्रमसे तेलङ्ग क्रथन, अववृत और सुराष्ट्र देशमें पाये जाते थे। उक्त चारों प्रान्त विश् देश कहाते थे।

(१२) घोड़ोंके ४ भेद वेसर कहाते थे। इस वर्गमें साल्वेय, कुरुक्षेत्रज, पञ्चालज, वीतथज नामक चार भेद थे। यह क्रमसे साल्व-कुरुक्षेत्र, पञ्चाल, और वीतथ देशके वासी थे। यह चारों प्रान्त वेसर प्रान्त कहाते थे।

(१३) घोड़ोंके दो भेद कुकुर कहाते थे। अभिसारन और स्वाकज क्रमसे अभिसार और स्वाक देशमें पाये जाते थे। यह दोनों देश कुकुर (स) देश कहाते थे।

(१४) हिमालयके घोड़े हैमवत कहाते थे।

(१५) मगध देशके मागध कहाते थे।

(१६) ६ भेद घोटक कहाते थे। मन्तावक, आश्मकेय, मौलिक, चकोरक, श्वेतशैलज, वैदूर्भिक पूर्व हैमेय, दक्षिण हैमेय, और सामेय यह ६ भेद थे। जो क्रमसे, मन्तावक, अश्मक (अश्मार्क), मूलदेश, चकोर देश, श्वेत शैल, विदर्भ, पूर्वहिम, और दक्षिण हिम, और साम देशमें पाये जाते थे। यह ६ देश घोटक देश कहाते थे। इस घोटक शब्द का ही अपभ्रंश घोड़ा है, जो अब सामान्यतः सभीके लिए प्रयुक्त होता है। परन्तु अश्व शास्त्र-के अनुसार ६२ विभागोंमेंसे केवल यह ६ विभाग ही घोटक कहाते थे जो उक्त घोटक देशमें पैदा होते थे।

इस प्रकार हमने घोड़ोंका वर्गीकरण दिखला दिया है। परन्तु उपरोक्त देशोंके नाम प्राचीन कालमें ही प्रचलित थे; अब उन देशोंके नाम बदल गये हैं। और सीमा भी बहुत बदल गयी है। राजनीतिक परिवर्तनोंके साथ देशोंका भूगोल भी बदला करता है। थोड़े ही ऐसे नाम हैं, जिनका ठीक स्थान निर्णय करना सुगम है। बहुत से देशोंके नाम तो एक दम नये हैं। पर फिर भी प्राचीन अश्व शास्त्रका रहस्य जान लेनेके लिए हमें प्राचीन भूगोल अच्छी प्रकार जान लेना चाहिये। हम अगले लेखमें उक्त देशोंका ही निर्णय करेंगे। इससे स्पष्ट हो जायगा कि कौनसी अश्व जाति भूमण्डलके किस देशमें रहती थी और देश भेदसे उनके स्वभाव तथा शरीर रचनामें क्या क्या भेद था। जिस जिस अश्व जातिका हम वर्णन करेंगे उसका साथ में दिये हुए नक्शेमें स्थान निर्णय भी करते जानेसे यह विषय बड़ा रोचक हो जायगा।

बरैया, कुम्हारी और भौंरा

ज्ञानके किसी गतांकमें शहदकी मक्खी पर एक लेख प्रकाशित हो चुका है, अतएव अब बरैया पर विचार करेंगे।

बरैयासे हमारे सभी पाठक परिचित होंगे। इसका स्व-भाव बहुत क्रोधी होता है। अन्य कीड़े खाकर ही यह अपना जीवन निर्वाह करती है। बरैयाके डंक होता है। डंक मार कर यह अपने शत्रुको मार डालती है। परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि यह क्रूर होती है। सजातीयके साथ यह प्रेम पूर्ण व्यवहार करती है। इनके घरोंको देखकर इनकी कार्य कुशलता सराहे बिना नहीं रहा जाता। छत्तेमें यह हिल मिल कर रहती हैं। बरैयाका मुख्य दोष उसका क्रोधी स्वभाव ही है। गर्मीके दिनोंमें तो यह बहुत जल्दी क्रुद्ध हो जाती है।

शहदकी मक्खीकी तरह बरैया भी समाज-प्रिय प्राणी है। इनमें भी नर, मादा और मज़दूर होते हैं। त्वक्पक्षवाले अन्य कीड़ोंकी रानीकी तरह बरैया रानीका काम अंडा देना ही नहीं है। उसे छत्तेका दूसरा काम भी करना पड़ता है। मधु मक्षिकामें नरका एक मात्र काम प्रजोत्पादन ही है तथापि बरैयाके नरको म्युनिसिपेलिटीके हेल्थ आफीसरका काम करना पड़ता है; छत्तेकी सफाईका सब काम नर बरैयाके ही जिम्मे रहता है। नरका शरीर लम्बा और कमर पतली होती है, अतएव वह शीघ्र ही पहचाना जा सकता है।

बरैयाका डंक शहदकी मक्खीके डंकसे बड़ा होता है। डंककी जड़में विषैली पोटली रहती है। बरैया छत्ता बनाती है, किन्तु वह मोम तैयार नहीं कर सकती। वह अपनी तेज़ दाढ़ोंसे लकड़ी या वृक्षकी छालका महीन चूरा बना देती है। अपने मुँहमें से एक प्रकारका चिकना पदार्थ निकाल कर

बरैया इस चूरेमें मिलाकर 'गारा' तैयार करती है। छत्ता इसीसे बनाया जाता है। सूख जाने पर छत्ता बहुत कड़ा हो जाता है। मधु और अन्य मीठे पदार्थ इन्हें बहुत प्रिय हैं। किन्तु यह न तो केवल मधु पर ही जीवन निर्वाह करती हैं और न शहद जमा करनेके झंझटमें ही पड़ती हैं। पके फल, शहद, मीठे पदार्थ मांस और कीड़े ही बरैयाका मुख्य भोजन हैं। शहद आदि मीठे पदार्थ खानेको न मिलने पर यह मधुमक्षिकाके छत्ते पर हमला करती हैं और सारे छत्तेका शहद खा डालती हैं। बरैयाका डंक बहुत विषैला होता है। डंक मारते ही शत्रु घायल होकर जमीन पर लोट पोट हो जाता है। नरके डंक नहीं होता; अतएव बेचारे-को अकसर उपवास करना पड़ता है।

वसन्त ऋतुके प्रारंभमें मादा अण्डे देती हैं। बरैयाके छत्तेमें भी शहदकी मक्खीके छत्तेके तह-खानोंके समान ही तहखाने होते हैं। हर एक तहखानेमें एक एक अंडा रखा जाता है। अंडे देने के आठ रोज़ बाद उनमें से बिना पैरके कीड़े निक-लते हैं। पांव और पंखके अभावके कारण कीड़े छत्तेमें ही पड़े रहते हैं। अतएव मादा और मजदूर बरैया उन्हें बाहर से भोजन लाकर, खिलाती हैं। अंडेमें से निकलनेके तीन अठवाड़े बाद कोशावस्था प्रारंभ होती है। अन्य कीड़ोंके समान बरैया भी कोशावस्थामें खानापीना छोड़ देती है। कोशा-वस्था नौ दिन तक रहती है। इस अवधिमें कीटके पंख फूट आते हैं। पूर्णावस्था प्राप्त कीड़े के तहखानेमें से बाहर निकल आने पर मादा और मज़दूर चाट कर उसका शरीर साफ कर डालते हैं। इन्हीं तहखानोंमें मादा पुनः अण्डे रखती है।

गर्मीके दिनोंमें मादा छत्ते छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती। अण्डे देने और शिशु पालनमें ही उनका अधिकांश समय व्यतीत होता है। भोजन जुटाने-का काम मज़दूरोंको ही करना पड़ता है। मज़दूरके शरीरका आकार मादाके शरीरके आकारसे मिलता जुलता होता है, परन्तु उसके सन्तति नहीं होती।

बरैयाके छत्तेमें कभी आपसमें लड़ाई झगड़ा नहीं होता। यदि एक आध बार टंटा हो भी गया-तो एक दूसरेका प्राण लेने तककी नौबत कदापि नहीं आती। एक छत्तेकी बरैया दूसरे छत्तेकी बरैयासे लड़ती झगड़ती नहीं है। छत्तेका प्रत्येक व्यक्ति अपने हक और कर्तव्य से भले प्रकार परिचित रहता है। अतएव प्रत्येक व्यक्ति अपना अपना काम करनेमें दत्तचित रहता है। हम यह कह सकते हैं कि छत्ता एक छोटा सा प्रजा-सत्तात्मक राज्य ही है। परन्तु यह राज्य अधिक समय तक रह नहीं पाता। शीतकाल आते ही नर और मादाएं धीरे धीरे मरने लगती हैं। इस भयसे कि मृत्युके बाद बच्चोंको शत्रुसे कष्ट न उठाना पड़े, वह उन्हें भी मार डालती हैं। ज्यादा ठंड पड़ना प्रारंभ होते ही सबकी सब बरैया मर जाती हैं। कुछ गर्भवती मादाएं कहीं एकान्त स्थानमें लुक छिपकर दुखसे दिन बिताती रहती हैं। शीतकाल खतम होते ही यह नया छत्ता बना कर उसमें अण्डे रखती हैं। प्रौढ़ावस्था प्राप्त होते ही माताको अपनी सन्ततिसे सहायता मिलने लगती है और इस प्रकार पुनः नवीन उपनिवेश स्थापित हो जाता है।

गरमीके मौसमके अन्तमें एक आध साधारण प्रकारके छत्तेमें तीन हजार तक मजदूर बरैया पाई जाती हैं। मादाएं भी कई होती हैं परन्तु मधु-मक्षिकाकी रानीके समान वह आपसमें नहीं लड़तीं और हिल मिल कर काम करती रहती हैं। मादा नरसे और नर मज़दूरसे बड़ा होता है। एक मादाका वजन तीन नरके बराबर होता है और एक नरका दो मज़दूरके बराबर। छत्तेमें उतनी ही बरैया रहती हैं जितनीकी कि नवजात शिशुकी शुश्रूषाके लिए जरूरत होती हैं। शेष भोजन प्राप्त करनेके लिए बाहर चली जाती हैं।

बरैया बहुत ढीठ होती है। इस सम्बन्धमें लबक साहब अपने एक ग्रंथमें लिखते हैं—

"मेरे कमरेमें बहुत सी बरैया थीं। मैं भी उन्हें रोज़ शहद खिलाया करता था। एक रोज़ एक बरैया शहदके बरतनमें गिर पड़ी। पंख चिपट जानेसे वह उड़ नहीं सकती थी। मैंने सोचा कि दूसरी बरैया शहद चाट कर इसका बदन साफ कर देंगी। कई बरैया शहद खानेके लिए वहां आईं; किन्तु किसीने उस बेचारीकी ओर फूटी आंखसे भी नहीं देखा। अन्तमें मैंने उसे एक चिमटेसे उठा कर और एक शीशीमें डाल कर पानीसे धो डाला। पंख साफ़ हो जाने पर वह पुनः जमीन पर रखदी गई। मैंने सोचा था कि अब वह शहद खानेका नाम तक न लेगी। किन्तु शीघ्र ही मुझे अपनी भूल मालूम हो गई। पंख सूखते ही वह मेरे कमरेमें आकर शहद खाने लगी।"

लबक साहबका मत है कि बरैया पाली जा सकती है। उन्होंने एक बरैया पाली थी। वह उसे अपने हाथ पर बिठाकर शहद खिलाया करते थे। बदन पर हाथ रखने पर भी वह डंक नहीं मारती थी।

पुष्कल खाद्य पदार्थ मिल जाने पर बरैया भी अपने सजातीय बांधवोंको बुला लाती हैं; किन्तु यह बात हमेशा नहीं पायी जाती।

हार्न नामक एक महाशयने अपने रोज़ नामचेमें लिखा है:—

"काशीमें बरैया बहुत ही ज्यादा हैं। परन्तु उनका स्वभाव कम क्रोधी है। मिठाई खानेके लिए सैकड़ों बरैया हलवाईकी दूकानोंमें उड़ती रहती हैं। हलवाई उन्हें बार बार मार कर भगाता है; किन्तु वह काटती नहीं। हाथ लग जाने पर ही वह डंक मारती हैं। यह अपना छत्ता मकानोंके कोनोंमें बनाती हैं।

"एक बार कुछ शकर पानीसे भीग गई थी। मैंने सुखानेके लिए उसे खिड़कीमें रख दिया। बहुत सी बरैया शकर खानेके लिए वहां आ पहुँचीं। मेरे नौकरने उनमेंसे कई मार डालीं। थोड़े ही समय बाद चींटियां उन्हें खींच कर ले जाने लगीं। कुछ मुर्दे बरैया भी उठा ले गई थीं। शायद वह उन्हें खानेके लिए ले गई हों।"

"बरैया अपने शत्रु चींटी पर भी आक्रमण करती हैं। मैंने उन्हें कई बार ऐसा करते देखा है। परन्तु हमेशा बरैया की ही हार होती है। चींटियां बरैया की पीठ पर चढ़ जाती हैं और उसका प्राण लिए बिना नहीं छोड़तीं।"

एकपत्न वर्गके अन्य कीड़े

कुम्हारी—इसे अंगरेजी में mason bee कहते हैं। यह प्राणी अकेला ही रहता है। मक्खी मट्टी आदि पदार्थोंमें अपने मुखमेंसे निकलने वाले एक चिकने द्रव पदार्थको मिलाकर उससे छत्ता बनाती है। इसी छत्तेमें वह अण्डे रखती है। प्रत्येक अंडेके लिए अलग अलग तहखाने बनाये जाते हैं। तहखानेमें अंडेमेंसे निकलने वाले कीड़ेके लिए काफी भोजन रख दिया जाता है। अंडा रखनेके बाद तहखानेका मुँह बंद कर दिया जाता है। अण्डेमेंसे बाहर निकलने पर कीड़ा संचित खाद्य पदार्थ पर जीवन निर्वाह करता हुआ बढ़ता रहता है। योग्य समय प्राप्त होते ही कीड़ा कोश बनाता है। कोशावस्थामें उसे भोजनकी जरूरत नहीं होती। पूर्णावस्था प्राप्त होते ही नवजात मक्खी तहखानेमेंसे बाहर निकल कर अपने व्यवसायमें लग जाती है।

भौंरा—इससे हमारे अधिकांश पाठक परिचित होंगे। इसे अंगरेजीमें 'कारपेंटर बी' कहते हैं। इसका अर्थ है 'बढ़ई मक्खी'। यह प्राणी लकड़ीमें छेद कर उसके अन्दर छत्ता बनाता है। भीतरसे लकड़ी खोखली करके ही छत्ता बनाया जाता है। छेदके मुखपर अति महीन पपड़ी रहने दी जाती है। पूर्णावस्था प्राप्त प्राणी इसी पपड़ीको तोड़ कर बाहर निकल आता है।

छत्ता तैयार हो जाने पर उसमें अन्न जुटाकर रख दिया जाता है। खाद्य पदार्थ पर अण्डा रख कर वह लकड़ीके चूरेसे ढक दिया जाता है। इसपर पुनः दूसरा अण्डा रखा जाता है। अंडे पर

पुनः लकड़ीका चूरा डाल दिया जाता है। इस प्रकार अंडे एक पर एक रखे जाते हैं। प्रत्येक अंडेके साथ ही काफी भोजन सामग्री भी रख दी जाती है। अंडे रखनेके बाद माताका कर्तव्य समाप्त हो जाता है। समय पाकर अंडेमेंसे कीड़े निकल आते हैं और पास रखा हुआ भोजन खाते हुए बढ़ते रहते हैं। नीचेका अंडा सबसे पहले रखा जाता है अतएव उसीमेंका प्राणी सबसे पहले पूर्णावस्थाको प्राप्त होता है। पूर्णावस्था प्राप्त होने पर और महीन पपड़ी तोड़ कर बाहर निकल आता है। इसके बाद दूसरे नम्बरके अंडेका प्राणी अपने नीचेके स्थानमें छेद कर पहले प्राणीके घरमेंसे होकर बाहर निकलता है। इस प्रकार सभी प्राणी एकके बाद एक एक ही रास्तेसे बाहर निकल आते हैं।

दैत्य वंशका उदय और क्षय

विज्ञानके गतांकोंमें हमने पाठकोंको राक्षस जातिके इतिहासका इतना दिग्दर्शन मात्र कराया था जितना कि रामायणमें क्रमिक रूपमें मिलता है। समालोचना करते हुए हमने अपनी गवेषणाका विस्तार करनेके लिए २० प्रश्नोंका उल्लेख किया था; जिनमेंसे राक्षस जाति कहां से चली यह साधारणतया दिखा दिया था। आलोचना में परस्पर द्वेष एवं घृणाका कारण भी दर्शा दिया था। तदनन्तर हम उनका वैवाहिक सम्बन्ध दैत्य दानवों से पाते हैं। अब हम उसीका कुछ स्पष्टीकरण दिखाते हैं।

पुराणोंमें दैत्य प्रजाकी मूल उत्पत्तिका विवरण कई स्थानोंपर मिलता है। वायु पुराणमें लिखा है।—

"कश्यपकी दिति अदिति दो स्त्रियाँ थीं। इनमें अदितिके पुत्र आदित्य और दितिके पुत्र दैत्य थे। दितिके दो पुत्र पैदा हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। दैत्य प्रजाके सबसे प्राचीन पुर्खा यही दोनों पुरुष थे।

पुष्करके तटपर कश्यप ऋषि अश्वमेधयज्ञ करते थे, जिसमें ऋषि, देवता, गन्धर्व आदि सभी यज्ञकी शोभा बढ़ा रहे थे। वेदशास्त्रोक्त विधिसे यज्ञ वेदीपर सुवर्णके पांच आसन जमाये गये थे। चार आसन मुख्य होताओंके लिए थे, जिन पर कुशाएं बिछायीं गयीं थीं। होताके आसन पर सुवर्णका बना, सुवर्णके तन्तुओंसे बुना, आसन बिछाया गया था। कश्यपकी स्त्री दिति उस समय गर्भवती थी। यज्ञ कालमें ही उसके गर्भसे बालक उत्पन्न हो गया और उदरसे निकल कर होताके आसनपर बैठ गया। नवजात बालकने उसी समय इतिहास वेदके सहित पांचों वेदोंका अपने पिताके समान पाठ किया। यह आश्चर्य देखकर उसका नाम हिरण्यकशिपु रखा गया। उसका छोटा भाई हिरण्याक्ष, और उसकी बहिन सिंहिका हुई। इसका विवाह विप्रचित्तिसे हुआ। उसीका पुत्र राहु हुआ।

दितिके पुत्र हिरण्यकशिपुने बड़ा घोर तप किया। वह सैकड़ों हज़ारों वर्ष, निराहार रह कर नीचे सिर लटकाये तप करता रहा। उसके तपसे सन्तुष्ट होकर ब्रह्माने वर माँगनेको कहा। उसने सब देवताओं और सब प्राणियोंसे अवध्यताका वर मांगा और कहा कि दानव और असुर लोग भी देवताओंके समान हो जावें। इसपर ब्रह्माने उसको बहुत से दिव्य वर दिये और अन्तर्धान हो गये।

हिरण्यकशिपु वर पाकर संसारमें भारी राज्यका संस्थापक हो गया। उसकी इतनी बड़ी राज्य प्रतिष्ठा थी कि देव लोग उससे बहुत ही डरते थे। पुरातन ऐतिहासिक लोग उसके विषयमें निम्नलिखित श्लोक लिख गये हैं।

राजा हिरण्य कशिपु यां यामशां निषेवते
तस्मै तस्मै दिशो देवाः नमश्चक्रुर्महर्षिभिः॥

(वा० पु० अ० ६७।६४)

राजा हिरण्यकशिपु जिस जिस दिशामें जाता था उस दिशाकी ओर झुक कर ऋषियों सहित देवता नमस्कार किया करते थे।

इसके विशाल राज्य और असीम ऐश्वर्यको देवता लोग न सह सके। दिव्य वरोंके मदसे इसने देवताओंकी सभी बस्तियोंको तहस नहस कर डाला। इससे तंग आकर देव लोगोंने विष्णुके पास अपनी दुःख कथा जा सुनाई। विष्णुने अभय दान देकर नरसिंहका अवतार धारण किया और राजसभाके बीचमें नखों से विदीर्ण करके उसका घात कर दिया।

इस हत्याके विषयमें पुराणोंमें कई प्रकारसे उल्लेख है। एक जगह लिखा है—हिरण्यकशिपुने ब्रह्माको तपस्यासे प्रसन्न करके वर मांगा कि मुझे न देव, न असुर, न गन्धर्व, न यक्ष, न राक्षस न ऋषि और न मनुष्य मार सकें। ऋषियोंका शाप भी मुझपर न चले। मैं न शस्त्रसे, न अस्त्रसे, न पर्वतसे, न वृक्ष से, न गीलेसे, न सूखेसे और न किसी और वस्तुसे मारा जा सकूं।"

इस प्रकार वर पाकर वह मदोन्मत्त होगया। और त्रिभुवनमें बड़ा त्रास फैलाने लगा। तब देवताओंके कहनेपर विष्णुने नृसिंह (आधा मनुष्य और आधा शेर) का रूप रखा और सभामें आकर मारा।

कोई पुराणकार इसी घटनाको प्रह्लादकी कथाके रूपमें लिखते हैं। प्रह्लाद हिरण्य कशिपुका पुत्र था। वह बड़ा विष्णुभक्त था। हिरण्यकशिपु अपनेसे बड़ा किसीको न मानता था। इस मदसे उसने प्रह्लाद को बहुत कष्ट दिये। प्रह्लादके स्मरण और भक्तिसे सन्तुष्ट होकर विष्णु भगवान नृसिंह रूपमें सभा भवनके स्तम्भको फाड़कर प्रकट हुए और हिरण्यकशिपुको अपनी गोदमें रख कर नखोंसे फाड़ डाला। नखोंकी गणना न शस्त्रोंमें न अस्त्रोंमें, न अन्य किसी मृत्युके साधनोंमें थी। गोद पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्यौः तीनोंसे पृथक् थी। नख न सूखे थे न गीले थे। नृसिंह न नर था न पशु, न देव था न असुर। इस प्रकार ब्रह्माका वर भी पूरा हुआ, महा दैत्यका संहार भी हो गया और उसका बड़ा विशाल साम्राज्य नष्टभ्रष्ट हो गया।

नृसिंहके भक्तोंने नृसिंहकी इस कथाको बड़े ही रुचि कर रूपमें जैसा चाहे बढ़ा कर रखा, प्रह्लादपर किये अत्याचारोंको असीम बतलाया और प्रह्लादपर भगवानके अनुग्रहोंकी भी पराकाष्ठा दिखा दी। इसी प्रकार नरसिंह और दैत्यराजकी घोर लड़ाईका भी बड़ा भारी वर्णन लिखा, जिसमें दैत्यने अपने सभी शस्त्रोंका प्रयोग किया और नरसिंहपर तिलमात्र भी प्रभाव न पड़ा। उन्होंने सभी राजप्रासादके विशालभवनों तकको तोड़ फोड़ कर ढेर कर दिया और सब दैत्य सेनाओंको मार गिराया। फलतः पुराण-कवियोंने नरसिंह और दैत्यराजकी अद्भुतसे अद्भुत रूपकी युद्ध-कल्पना करके अपनी कविताका परिचय दिया। वास्तविकता क्या है; इसको हम आलोचनामें दिखा देंगे। पहले, इस प्रसङ्गमें केवल वंश विस्तार दिखाना अभीष्ट है।

हिरण्याक्षके पांच पुत्र हुए—१ उत्कुर, २ शकुनि, ३ कालनाभ, ४ महानाभ और ५ भूतसंतापन। इनके भी बहुत से पुत्र पौत्र हुए, जो बढ़कर सैकड़ों हजारोंकी संख्यामें हो गये। वह वाडव गण के नामसे विख्यात थे। देवोंका तारकासुरके साथ भी बड़ा भारी संग्राम हुआ था, जिसमें देवताओंकी सेनाका प्रधान सेनापति स्कन्दकुमार था। इस युद्धमें यह वाडव गण मारे गये।

हिरण्य कशिपुके चार पुत्र थे। १ प्रह्लाद २, अनुह्लाद, ३, संह्लाद, ४, ह्रद।

ह्रदके दो पुत्र हुए—ह्राद और निसुन्द (निकुम्भ)। निसुन्दके दो पुत्र हुए—सुन्द और उपसुन्द सुन्दके तीन पुत्र हुए और एक पुत्री—अहाद्य, मूक, मारीच और ताड़का। ताड़का रामके हाथसे मारी गयी। और मूकासुरको अर्जुनने किरात युद्धके समय मारा। मूकके वंशज ३० करोड़ मणिवर्त्त पुरमें निवास करते थे। वह सभी शंकरके उपासक थे। इन्द्रकील

पर्वतपर शंकर किरातके वेशमें शिकार करते हुए अपने गणों सहित घूमते थे। एक शूकरपर अर्जुन और शिवकी तकरार हो गयी और किरातोंमें और अर्जुनमें बड़ा घोर संग्राम हुआ। उसी युद्धमें मूक-के ३० करोड़ वंशज मारे गये।

अनुह्लादका पुत्र वायु और पुत्री सिनीवाली थी। उनके और भी वंशज हुए जो हालाहल गणके नामसे प्रसिद्ध हुए।

प्रह्लादका एक पुत्र विरोचन था। प्रह्लादके पांच और पुत्र हुए गवेष्ठी, कालनेमि, जम्भ, बाष्कल और शम्भु। यह सब प्रह्लाद पुत्रके नामसे प्रसिद्ध थे।

शुम्भ, निशुम्भ और विश्वक्सेन, यह तीन पुत्र गवेष्ठीके हुए और जम्भके भी तीन पुत्र शत दुन्दुभि, दत्त और खरड हुए। बाष्कलके चार पुत्र, विरोध, मनु, वृक्षायु और कलशी मुख हुए। कालनेमिके ब्रह्मजित्, क्षत्रजित्, देवात्मक और नारान्तक हुए। शम्भुके धेनुक, असिलोमा, नावल, गोमुख, गवाक्ष और गोमान, यह छः पुत्र हुए।

बलिके सौ पुत्र थे, जिनमें ४ बड़े प्रतापी थे— सहस्रबाहु, बाण, कुम्भ और गर्दभाक्ष। उसके शकुनी और पूतना नामकी दो कन्याएँ थीं। बलिके पुत्रोंके भी पुत्र पौत्र हुए और इस प्रकार बड़ा भारी वंश हो गया। यह सवजिगणके नामसे विख्यात हुए। देव दानवोंके युद्धमें वह सभी मारे गये। इस प्रकार दैत्यों का सारा कुल नष्ट होगया।

आलोचना

दैत्य वंशमें बहुत से ऐसे नाम और वंश है जिनसे पाठक बहुत अच्छी तरहसे परिचित हैं। जैसे हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, सुन्द, उपसुन्द, मारीच, ताड़का, वायु, विरोचन, कालनेमि, वाणासुर, और बलि। हिरण्यकशिपु और प्रह्लादकी कथा हम लिख चुके हैं। हिरनाकुश और प्रह्लादके नाम सभीके मुख पर हैं। सुन्द उपसुन्द तिलोत्तमा अप्सराके बीचमें पड़ने पर दोनों युद्धसे मारे गये। मारीच और ताड़काका अन्त रामचन्द्रके वाणोंसे हुआ। मारीच की रावणसे मित्रता थी। वायु हनुमानका पिता था। विरोचन बड़ा भारी पातालका राजा और इन्द्रका सहाध्यायी हुआ है। कालनेमि वंशका महाभारतके समयमें भी बड़ा राज्य रहा है। कृष्ण ने इसके राज्यका नाश किया है। वाणासुरके साथ रावणने मैत्री करके और उसे अपनी भगिनी देकर देवलोक पर आक्रमण किया। बलिके विशाल राज्यमें वामन रूप धरकर बलिको छलसे राज्य-से उतार कर विष्णुने बांधा और उसे पाताल भेज दिया।

यह सब कथाएं ऐतिहासिक और पौराणिक लोगोंके मुखोंसे प्रायः सुनी जाती हैं। इन सबका ही ऐतिहासिक मूल्य बहुत अधिक है। जो हम क्रमशः दिखाएंगे।

१. हिरण्यकशिपु और नृसिंह

हिरण्यकशिपु, हिरनाकुस आदि नामसे विख्यात है। अपने नृसिंहावतारकी महिमाको बढ़ानेके लिए हिरण्यकशिपुको बढ़ाना कोई भी बात नहीं है। फलतः उसको भी बहुत बढ़ाया गया है।

किसी बातको कविताकी दृष्टिसे बढ़ता देखकर भले ही कितना आनन्द होता हो; परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे उसको उचित स्थान और मानका मिलना ही देना जनक है।

यह निःसन्देह माना गया है कि राजा हिरण्यकशिपु यज्ञमें उत्पन्न हुआ था और जन्म कालसे ही बड़ा संस्कारी बालक था। बाल्यकालमें ही उसको प्राप्त वेदोच्चारणादिका पूरा सौभाग्य हुआ। अश्वमेध यज्ञ सदा राज्य वृद्धिके लिये होता है। इसीके प्रभावमें वह पुत्र चतुर्दिगन्तका बड़ा भारी विजेता हुआ। उसने पर्वत प्रदेश (देवभूमि) और अन्यान्य समस्थल भाग भी जीतकर सम्पूर्ण पृथ्वी पर अपना बड़ा भारी रौब बैठा लिया था। कोई उस समय उसका मुकाबला नहीं कर सकता था। कोई राज्य भी उसको दबा नहीं सकता था। इसीसे वह 'सर्वाबध्य' होगया था। उसके मारनेका कोई उपाय ही शेष न रहा था।

परन्तु जिनके राज्यों पर उसने हाथ साफ़ किया था वह सदाके लिए कब उसके अधीन रह सकते थे। उनके हृदयोंमें तो अवश्य द्वेषकी ज्वाला सुलगती ही होगी। उन्होंने उपजाप गुप्त मन्त्रणासे पर्वत निवासी लोगोंको या वैष्णवोंको अपने साथ मिलाया और नृसिंह मायासे उसका घात किया गया। राजाका घात होना था कि अधीन राजाओं-को सिर उठानेका अवसर मिला और सभी राज दर्बारके अमीर उमरा लोग अपने खञ्जर खींच कर साम्राज्यके विरुद्ध खड़े होकर अपना बदला चुकाने लगे।

इसमें 'नृसिंह की माया' एक बड़ी रहस्यमय वस्तु है। यह रहस्य न केवल भारतवर्षके लिए महत्व पूर्ण है, प्रत्युत प्राचीन देश, यूनान, मिश्र, बाबिलन, आदि सभी देशोंके लिए समान रूपसे है। इसका रहस्य स्पष्ट हो जानेसे यह पूरी कथा पाठकोंके ध्यानमें आ जायगी।

पञ्जाबमें एक प्रान्त मुलतानका है। इसको मूलस्थान माना जाता है; क्योंकि सबसे प्रथम यहां ही मानव संसारका मूल था। यहां से विकसित होकर सभी देशोंमें मानव जातिका विस्तार हुआ। मूलस्थान नाम मात्रके आधार पर ऐसी कल्पना करना बड़ा असंगत है परन्तु उक्त कल्पनाके लिए हमारे पास बहुत आधार है।

हिरण्यकशिपु कश्यपका पुत्र था। यह कश्यप अपने ज़मानेका प्रजापति था। दिति अदिति उसकी १३ स्त्रियोंमें से दो थीं। दितिसे दैत्य लोग और अदितिसे आदित्य देव लोग पैदा हुए! देव लोग पर्वतोंमें फैल गये; इससे पर्वत देव-भूमि कहाते थे। दैत्य लोगोंने मैदानोंमें अपना राज्य जमाया। दोनों कुलोंका विरोध स्वाभाविक था। वही विरोध उनकी सन्तानोंमें भी बराबर रहा। और देव दैत्योंका अनन्त कालका झगड़ा खड़ा हो गया। एक विष्णुके उपासक थे, दूसरे शिवके; एक सूर्यको मानते थे दूसरे चन्द्रको; ऐसे ही अनेक भेद उनमें पैदा हो गये।

हिरण्यकशिपुका पुत्र प्रह्लाद था; इसी कारण मुलतान अभी तक प्रह्लादपुरी कही जाती है। वहां प्रह्लादका मन्दिर है। कश्यपसे तीसरी पीढ़ीमें प्रह्लाद है। अवश्य काश्यपीय प्रजा उसी स्थान पर उत्पन्न होकर सब तरफ फैली होगी। उस स्थान पर दितिके पुत्रोंका प्रबल अधिकार था। फलतः अदितिके पुत्रोंको अपना मूल-स्थान छोड़कर अन्य देशोंमें शरण लेनी पड़ी। इसीसे वह स्थान मूलस्थान ही कहाता था; जो बिगड़कर मुलतानके नामसे विख्यात है। अर्थात् हिरण्यकशिपुकी राजधानी मुलतान थी। उसी स्थान पर बैठा हुआ हिरण्यकशिपु निश्चयसे पंजाब, कश्मीर, यू. पी. राजपूताना, सिन्ध और काबुल कन्धार और एशिया माइनर तकका शासन करता होगा। भारतवर्षका और कोई भी राज्य उसके मुकाबलेमें न खड़ा होता था। इस स्थानकी प्रधानता आदि कालसे चली आ रही है। पंजाबमें लाहोरसे चलकर दूसरे नम्बर पर यदि कोई मार्केका स्थान है तो मुलतान ही है। इसी प्रकार इतिहास वेत्ता भली भांति जानते हैं कि मुसलमानोंके आक्रमण कालमें भी इस स्थानका कितना महत्व रहा है। इसका दमदमा अभी तक मशहूर है।

अब नृसिंह माया पर ध्यान देनेके पहले हम पाठकोंसे निवेदन करेंगे कि मुलतान नगरके स्थान संनिवेष पर ध्यान दें। मुलतान कई मीलोंकी परिधिमें बसा है। सारा मुलतान पहलेसे ही बड़े भारी कोटसे घिरा है और ऊँचे स्थान पर विद्यमान है। उसमें एक मोहल्ला अभी तक नृसिंह पुरी कहाता है। उसके दूसरे छोर पर कुछ टीलोंके पास प्रह्लाद पुरी है। उसीकी बग़लमें धर्मपुराकी बस्ती है। इन सभी बातोंसे यह पता चलता है कि प्रह्लादका स्थान और नृसिंह पुरी बहुत दूर दूर नहीं थे। अधिकसे अधिक दो डेढ़ मीलका अन्तर था। अब सन्देह यह है कि यह नृसिंह पुरी क्या थी? क्या यहां नरसिंहावतार हुआ था? या कोई अन्य बात थी? यहां नरसिंह का अवतार नहीं हुआ।

प्रत्युत यहां नृसिंह लोग रहते थे। यह एक क्षत्रियों का फिरका था; जो नृसिंहके नामसे प्रसिद्ध था। उनकी बस्ती इसी प्रान्तमें थी। प्रह्लादने इनसे मिलकर अपने पिताके राज्यको प्राप्त किया। उनके धार्मिक विचार और सब बातें उसके पितासे सर्वथा प्रतिकूल थीं। इसीसे हिरण्यकशिपु राजपुत्रको बड़े नियन्त्रणमें रखता था। शत्रु राजाओंने इस राजपुत्रको अपने साथ मिलाकर उस अदम्य विजेताका नाश किया।

राजपुत्रोंको सभी जमानोंमें राज्य लक्ष्मीकी चाहने बड़े बड़े अजब खेल खिलाये हैं। एतिहासिक एवं राजनीतिज्ञ लोग इस बातको अच्छे प्रकारसे जानते हैं। इसीसे अर्थशास्त्रज्ञोंका सिद्धान्त रहा है कि राजपुत्रों का स्वभाव व्याघ्रोंके समान हुआ करता है। *

कामन्दक लिखते हैं कि—

राजपुत्रैर्यदोन्मत्तैः प्रार्थ्यमान मितस्ततः।
दुःखेन रक्ष्यते राज्यम् व्याघ्राघ्रातमिवामिषम् ॥
रक्ष्यमाणाः यदिच्छिद्रं कथञ्चित् प्राप्नुवन्तिते।
सिंहशावा इवघ्न न्ति रक्षितारमसंशयम् ॥
क्लिश्यमानः सपितरं परमाश्रित्य हन्ति हि।

मदोन्मत्त राजपुत्र जब राज मांग बैठे तो उससे राज्यकी रक्षा करना उतना ही कठिन है जितना व्याघ्रको मांसका गंध आजाने पर उस मांसकी रक्षा करना।

उनकी रक्षा करने पर भी यदि उनको कुछ भी अवकाश मिल जाय तो वह शेरके बच्चोंकी तरह अपने मालिकको अवश्य मार देते हैं। इसीलिए राजा लोग अपने पुत्रोंको बड़े उपायसे रखते थे। उनको बहुत कष्ट देने पर राजपुत्र शत्रुके साथ मिलकर अपने पिता तकका घात करा देते थे।

कौटिलीय अर्थशास्त्रमें चाणक्यने अपने पूर्वके आचार्योंका राजपुत्रोंके विषयमें मत इस प्रकार उद्धृत किया है।

"आचार्य भारद्वाजका मत है कि जन्मसे ही राज पुत्रोंकी खूब रक्षा करे; क्योंकि राजपुत्रोंका स्वभाव केकड़ेके समान होता है। वह अपने उत्पादक पिताको भी मारकर खा जाते हैं। पिताको चाहिये कि उन पर अधिक स्नेह न करके गुप्त दण्डका प्रयोग कराता रहे।" इसके खण्डनमें विशालाक्ष आचार्य कहते हैं कि इस प्रकार राजपुत्र पर गुप्त दण्डका प्रयोग करना बड़ी नृशंसता है। इस प्रकार क्षत्रियका वीर्य ही नाश हो जाता है। इसलिए राजपुत्रोंको किसी एक स्थान पर कैद कर रखना ही उत्तम है। इसके प्रतिवादमें पराशर आचार्य कहते हैं कि राजपुत्रको एक स्थान पर कैद रखना अपने घरके बिलमें छिपे सांपको समीप रखनेके समान है। क्योंकि जब कभी राजपुत्रको इस बातका पता चलेगा कि राजा मुझको अपने राज्यनाशकी आशङ्कासे कैद रखता है तो वह अवसर पाकर दुर्गसे निकलेगा और सीधा राजा पर आ चढ़ेगा। इसलिए उसे राज धानीमें कैद न करके अपनी राज्य सीमा पर बने दुर्गमें रखना उत्तम है। इसके प्रतिवादमें पिशुनाचार्य कहते हैं यह भी मेढ़ोंका सा भय है। यदि राजपुत्रको इस बातका पता चला कि राज्यके भयसे मुझे सीमा प्रान्त पर रखा है, तो वह तत्काल सीमा प्रान्तस्थ दुर्गपालसे मिलकर राजा पर चढ़ाई कर देगा। इसलिए राजाको चाहिये कि राजपुत्रको किसी अपने दूरस्थ मण्डलीकके दुर्गमें कैद रखे।

भीष्मपितामह इसके प्रतिवादमें कहते हैं कि यहां भी सामन्त राजा राजपुत्रके व्ययके बहानेसे राजासे मनमाना रुपया लूट सकता है। इसलिए उसको नानाके घरमें रखना ही उत्तम है।

श्री कृष्णके चचा उद्धव महोदय (वातव्याधि आचार्य) इसके प्रतिवादमें कहते हैं कि जिस प्रकार मन्दिरका पुजारी मन्दिरके झण्डे आदि दिखा कर यात्रियोंसे उसके लिये सदा दान मांगा करता है

* देखो, कौटलीय अर्थशास्त्र राजपुत्र रक्षण प्रकरण

उसी प्रकार नानाके घरवाले भी राजपुत्रके लिए नयेसे नये प्रकारके व्यय मांग सकते हैं। इसलिए ऐसे राजपुत्रको वेश्यादि विषय जालमें फंसाये रखना ही उत्तम है। इस प्रकारसे प्राचीन आचार्यों-के इस वाद विवादसे स्पष्ट हो जाता है कि राज-पुत्रसे राजा लोगोंको कितना सावधान रहना पड़ता था। यदि इसी राजनीतिके विचार मार्ग पर चल कर हिरण्यकशिपुने अपने बड़े पुत्रको विष्णु भक्त अर्थात् अपने कुल देवता शङ्करको त्याग कर उप-माताके अन्य पुत्रोंके साथ मिलता जान कर उसपर कारावास और उपांशु दण्ड तथा अन्यान्य नि-यन्त्रण और कष्ट बाधाओंका प्रयोग किया हो तो क्या आश्चर्य है? और प्रह्लादने भी नीति शास्त्रके वचनानुसार अपने कष्ट देनेवाले पिताको त्याग कर उसके विरोधी लोगोंका साहाय्य लिया हो तो क्या आश्चर्य है? राजनीतिक दृष्टसे देखने वालेके लिए यह बातें कुछ भी आश्चर्य करनहीं है। धार्मिक भाव तो केवल लोकोत्तेजना देनेके निमित्त होता है।

इसी बातको पुष्ट करनेके लिए अब सबसे मुख्यग्रन्थि नृसिंह जातिकी आलोचना ही है। यह नृसिंह लोग कौन थे और कहां रहते थे। इसकी विवेचना करनेके पहले मैं हिरण्यकशिपुके विषयमें एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूं। पौराणिक लोग थम्भेको फाड़ कर नृसिंहका प्रगट होना मानते हैं; इसका क्या रहस्य है? कामन्दकने अपने नीतिसारमें लिखा है कि विजिगीषु अपने शत्रुको त्रास देनेके लिए मानुष और दैवी मायाओंका प्रयोग किया करे। मानुष मायाएं बतलाते हुए देवता की प्रतिमाओं और स्तम्भोंके अन्दर खोखले स्थानमें मनुष्योंका छिपा रहना और अवसर पाकर अपने शत्रुका घात करना आदि बातोंका कथन किया है। तब यह कौन विचित्र बात है कि साहसके कार्य करनेके लिए किसी बहुरूपिये चतुर मायावी नृसिंह जातिके क्षत्रिय पुरुषने अपनेको छिपानेके लिए बनावटी सिंहका बाना पहन कर राजाकी हत्या की हो और राजाकी हत्या होते ही राजसभा-में ऐसी खलबली मच गयी हो कि फिर राज्यका सम्भालना कठिन हो गया हो; तब शायद प्रह्लादकी बन पड़ी हो। क्या यह घटना कोई असम्भव है? कुछ भी असम्भव नहीं। सीज़रसे चतुर्दिगन्त विजयीकी राजसभामें द्रोहकारियोंने हत्या की और देखते देखते सब राजसभा छिन्न भिन्न हो गयी। सीजरका सूर्य सदाके लिए अस्त हो गया; और फिर रोमको वह राजलक्ष्मी कभी प्राप्त न हुई।

हिरण्यकशिपुके विरुद्ध तो उसके राज्यके वेतन भोगी ब्राह्मण शिक्षक तक थे; जैसा विष्णु पुराणमें लिखा है कि प्रह्लादके शिक्षक प्रह्लादको सदा उसके पिताके विचारोंसे उलटी ही शिक्षा देते थे।

उसकी तपस्यापर ब्रह्मा तो क्या प्रसन्न होकर वर देता था, वस्तुतः ब्राह्मण लोग ही उसको यह सब खेल खिलाते थे। पहले चढ़ते प्रतापके साथ सभीने सहयोग किया। पर मदोन्मत्त होनेपर सभी उसके विरोधी हो गये। या समझिये कि दितिके पुत्रको राजगद्दीपर देख अदितिके पुत्रोंका षड्यन्त्र इस प्रकार फल गया। फलतः एक बना बनाया बहुत बड़ा साम्राज्य उलट गया। कवियोंने सभी क्रान्ति देवताओंके गले मढ़ी हैं। सभी क्रान्ति लानेवाले एवं जमाना पलटनेवाले व्यक्तियोंको अव-तार माननेके लिए अद्भुत अद्भुत कथा प्रसङ्ग घड़ लिये हैं। वर्त्तमानमें गान्धीजीके नामपर ही कितने अप्रासङ्गिक असम्भव बातोंकी अफवाहें उड़ गयी हैं। जब इतने चैतन्य कागजी संवाददाताओंके होते हुए इतनी असत्य बातें उड़ती हैं; तब पत्रोंके न होनेपर तो जितनी मुख उतनी बातें हो जाना क्या असम्भव है। फिर व्यास लोगोंके मुखसे कथाके प्रसङ्गसे निकली बातें श्रोताजनोंकी रोचक-ताके लिए ऐसा कविताका चोला पहनती हैं कि वास्तविकता काफ़ी गहराईपर पहुँच जाती है।

राजनीतिके जाननेवाले अच्छी तरहसे इस सिद्धान्तको जानते हैं कि यदि विजिगीषु पर-

राष्ट्रमें कोई घटना उपस्थित करे तो लोकवादमें सदा उसको अपना कार्य छिपाना पड़ता है। अपने कार्यको रूपान्तरमें रखनेके लिए उसे कितने ही उपाय रचने पड़ते हैं। अब तो इस कामको अपनी पार्टीके मुख पत्र करते हैं। पहले यह कार्य सब व्यासों और कथाकारोंके सुपुर्द था। वह उन सब बातोंको अपना धार्मिक कवितामय चोला पहनाकर उद्घोषित करते थे।

इस प्रकार हिरण्यकशिपुकी मृत्युकी वास्तविक घटनाका स्पष्टीकरण हो गया। अब हम नृसिंह जातिकी आलोचना करते हैं।

प्राचीन भूगोल वेत्ताओंने अपने अपने ज़मानेका देश संस्थान लिखा है। प्रायः जातियोंके नामसे ही जनपद और देशोंका नाम पुकारा जाता था। मार्कण्डेय पुराणमें और बराहसंहितामें मारकण्डेय ऋषि और वराहमिहिरने पश्चिमोत्तर प्रदेशोंको दर्शाते हुए कूल्लू (कुलूत) आदि देशोंकी गणना की है। उन्हींमें नृसिंह जनपदका भी उल्लेख किया है। फलतः यह भी एक जनपद था। वहां नृसिंह लोग वास करते थे। निःसन्देह वह बड़े शूर, युद्धप्रिय और क्रूर नृशंसताका कार्य करनेमें कठोर चित्त होते होंगे। इसीसे वह नृसिंह नामसे विख्यात हुए होंगे और उनका जातीय चिन्ह भी आधे शेर और आधे पुरुषका होकर उनकी वीरताका पूरा परिचायक होता होगा।

नृसिंहकी कथाएं केवल भारतकी पुराण-कथाओंमें ही नहीं सुनी जातीं, परन्तु भारतके समकक्ष सभी प्राचीन जातियोंके इतिहासमें इनका वर्णन है। भेद इतना ही है कि भारतकी पुराण कथामें या इतिहासमें तो एक ही नृसिंहको प्रसिद्ध होनेका अवसर प्राप्त हुआ, परन्तु औरोंके इतिहासोंमें बहुत से नृसिंह भिन्न भिन्न रूपोंमें नाम पा गये।

यूनानी मिथ्या कथा (पुराण) वादोंमें (Sphinx) स्फिंक्स लोगोंका वर्णन आता है। वह अकेले दुकेले किसी मार्गको रोककर बैठ जाते थे और अद्भुत सा प्रश्न उपस्थित करते थे। जो उनके प्रश्नका उत्तर न दे सकता था उसको उसी समय वह मारकर खा जाते थे। इसी प्रकार मिश्रके इतिहासमें तो सपक्षसिंहका बहुत जगह वर्णन है। नरसिंह और नारीसिंह दोनोंका वर्णन आता है। मिश्रके वर्त्तमान भग्नावशेषोंमें अब भी ऐसे सिंहोंकी सभाकी सभाएं शिलारूपसे विद्यमान हैं।

इन्हींका वर्णन बाबिलनके इतिहासमें और उसी कालकी प्राचीन हिती आदि जातियोंके इतिहासोंमें बराबर आता है। इससे प्रतीत होता है कि यह जाति प्राचीनकालमें अवश्य किसी भूभागमें विद्यमान थी। चीनके इतिहास तकमें इसका पता मिलता है।

रामायणमें भी एक स्थान पर पश्चिम दिशामें पर्वत प्रस्थों पर सपक्ष सिंहोंका वास बतलाया है (सुग्रीव कृत भूगोल वर्णन सुं० का०)। फलतः हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि पश्चिमी भूभागोंके पुराण कथाओंके नृसिंह और नारीसिंह जिनका आकार आधा नर और आधा शेरका ही कल्पित था भारतकी कथाओंके नृसिंहसे भिन्न न थे; प्रत्युत एक ही थे। केवल स्थान भेदसे कार्य भेद था।

स्फिक्स और सिंह दोनों शब्दोंमें कितनी समानता है। इसी शैली पर विचार करनेसे न केवल हमारी नृसिंह कथाका रहस्य स्पष्ट हो जाता है, प्रत्युत मिश्र, यूनान, असीरिया आदि देशोंकी स्फिंक्सकी समस्या भी हल हो जाती है।

भारतीय भौगोलिकोंके कथनानुसार नृसिंह नामकी जातिके होनेमें तो कोई सन्देह नहीं रह जाता है। जब स्पष्ट मुलतान प्रदेशमें अब तक नृसिंह पुरीकी स्थिति देखते हैं तब यह संशय और भी हट जाता है।

इस प्रकार हम हिरण्यकशिपुके राज्यकी वर्धमान दशासे चलकर क्षीयमाण दशाका कारणानुसन्धान पूर्वक दिग्दर्शन करा चुके। अब अगले लेखमें प्रह्लाद आदिकी आलोचना भी संक्षेपसे करेंगे।

———

सूर्य सिद्धान्त

मध्यमाधिकार नामक पहला अध्याय

(संक्षिप्त वरणति)

[१ श्लोक—ईश्वर वंदना। २-७ श्लोक-ज्योतिःशास्त्र जाननेके लिए मयासुरका सूर्य भगवानकी तपस्या करना, सूर्य भगवानका प्रसन्न होकर वर देना तथा अपने शरीरसे एक पुरुषका उत्पन्न करना। ८-९ श्लोक—सूर्यांश पुरुषका मयासुरसे कहना कि जो शास्त्र पहले सूर्य भगवानने महर्षियों-से कहा था वही कुछ परिवर्तनके साथ कहा जा रहा है। १० श्लोक-कालके दो भेद (१) अनादि और अनन्त, (२) कलनात्मक। ११-२० श्लोक-निमेषसे लेकर कल्प तककी कालकी इकाइयां। २१-२३ श्लोक ब्रह्माकी वर्तमान आयु। २४ श्लोक कल्पके आरंभसे कितने समयमें सृष्टि रची गयी। २५-२७ श्लोक-नक्षत्रों और ग्रहोंकी गतिका कारण। २८ श्लोक-कोण नापनेकी इकाइयां। २९-३४ श्लोक-एक महायुगमें ग्रहों, उनके शीघ्रोच्चों, चन्द्रमाके उच्च और पात तथा नक्षत्रोंके कितने चक्कर होते हैं। ३५-३६ श्लोक चान्द्र और सौर मासोंका सम्बन्ध। ३७-३९ श्लोक-एक महायुगमें कितने सावन दिन, अधिमास तथा तिथियां होती हैं। ४० श्लोक-एक कल्पमें कितने सावन दिन तथा तिथियां होती हैं। ४१-४४ श्लोक-एक कल्पमें ग्रहोंके मन्दोच्चों तथा पातोंके कितने चक्कर होते हैं। ४५-४७ श्लोक-कल्पके आरंभसे सत्ययुगके अंत तकका समय। ४८-५० श्लोक-सृष्टिके आरंभसे अब तक कितने दिन बीते, यह जाननेकी रीति। ५१-५२ श्लोक-दिन-पति, वर्षपति और मासपति जाननेकी रीति। ५३-५४ श्लोक-ग्रहोंके मध्यम स्थान जाननेकी रीति। ५५ श्लोक-बृहस्पतिका वर्ष (संवत्सर) जाननेकी रीति। ५६-५८ श्लोक-सत्ययुगके अंतमें ग्रहोंके स्थान क्या थे। ५९ श्लोक-व्यास और परिधिका सम्बन्ध तथा भूपरिधिका परिमाण। ६०-६१ श्लोक किसी स्थानके अक्षांश वृत्तका परिमाण जानना तथा उससे ग्रहका मध्यम स्थान निकालना। ६२ श्लोक-भारतवर्षकी मध्य रेखा पर कौन कौन प्रसिद्ध नगर हैं। ६३-६५ श्लोक—चंद्र ग्रहणसे यह जानना कि अमुक स्थान मध्य रेखासे कितना पूर्व या पश्चिम है। ६६ श्लोक—वार प्रवृत्ति कब होती है। ६७ श्लोक किसी इष्टकालमें ग्रहोंका स्थान क्या है। ६८-७० श्लोक—चंद्रमा इत्यादि ग्रह क्रान्ति वृत्तिसे कितने उत्तर या दक्खिन जा सकते हैं।]

अचिन्त्याव्यक्त रूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्त जगदाधार मूर्त्तये ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

अनुवाद—उस परब्रह्मको नमस्कार है जिसका रूप न तो ध्यानमें आ सकता है और न प्रकट किया जा सकता है, जो निर्गुण है परन्तु जिससे सब गुण उत्पन्न हुए हैं और जो सम्पूर्ण विश्वका आधार है ॥ १ ॥

अल्पावशिष्टे तु कृते मयनामा महासुरः ।
रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ॥ २ ॥
वेदाङ्गमग्र्यमखिलं ज्योतिषांगति कारणम् ।
आराधयन् विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥३॥

अनुवाद—सत्ययुगके कुछ शेष रहने पर मय-नामक महा असुरने सब वेदाङ्गोंमें श्रेष्ठ, सारे ज्योतिष पिंडोंकी गतियोंका कारण बतलानेवाले, परम पवित्र और रहस्यमय उत्तम ज्ञानको जानने-की इच्छासे कठिन तप करके सूर्य भगवानकी आराधना की ॥ २,३ ॥

विज्ञान भाष्य—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि-युगकी व्याख्या इसी अध्यायके १६ वें श्लोकमें की गयी है।

वेदाङ्ग ६ हैं—शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प और ज्योतिष। इनसे वेदोंके समझने सम-झानेमें सहायता मिलती है, इसलिए यह वेदाङ्ग कहलाते हैं। वेदाङ्गोंमें ज्योतिषकी श्रेष्ठता भास्करा-चार्यजीने इस प्रकार दिखलायी हैः—शब्द शास्त्र वेद भगवानका मुख है, ज्योतिःशास्त्र आंख है, निरुक्त कान है, कल्प हाथ है, शिक्षा नासिका है, छन्द पांव हैं, इस लिए जैसे सब अंगोंमें आंख श्रेष्ठ होती है वैसे ही सब वेदांगोंमें ज्योतिःशास्त्र श्रेष्ठ है।

तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने ।
ग्रहाणां चरितं प्रदान् मयाय सविता स्वयम् ॥४॥

अनुवाद—उसकी तपस्यासे संतुष्ट और प्रसन्न होकर सूर्य भगवान्ने स्वयम् वर चाहनेवाले मयको ग्रहोंके चरित अर्थात् ज्योतिः शास्त्रका उपदेश दिया ॥ ४ ॥

विज्ञान भाष्य—पाश्चात्य ज्योतिषी ग्रह उन ज्योतिष पिंडोंको कहते हैं जो सूर्यकी परिक्रमा किया करते हैं। इस परिभाषाके अनुसार बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, युरेनस और नेपच्यून यह आठग्रह हैं, जिनमेंसे पिछले दो ग्रहोंका पता पिछले दो सौ वर्षके भीतर लगा है और यह कोरी आंखसे नहीं दिखाई पड़ते। चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा करता है, इसलिए यह उपग्रह है। अन्य ग्रहोंके भी उपग्रह दूरवीक्षण यंत्रसे देखे गये हैं। परन्तु हमारे ज्योतिष ग्रन्थोंमें पृथ्वीको नहीं वरन् सूर्यको ग्रह माना है। चन्द्रमा भी ग्रहोंकी श्रेणीमें रखा गया है। युरेनस और नेपच्यूनकी कहीं चर्चा नहीं है। इसलिए हमारे यहां सूर्य चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु अथवा बृहस्पति, शुक्र और शनि सात स्थूल ग्रह तथा राहु और केतु दो सूक्ष्म ग्रह माने जाते हैं। दो सूक्ष्म ग्रहोंका पूरा विवरण इसी अध्यायमें चंद्रमाके पातोंका वर्णन करते समय लिखा जायगा। ज्योतिःशास्त्रमें इन ग्रहोंकी गतियोंसे जो घटनाएं आकाशमें होती हैं उनका वर्णन है, इस लिए इस श्लोकमें ज्योतिः शास्त्रका दूसरा नाम 'ग्रहोंका चरित' बतलाया गया है।

विदितस्ते मया भावस्तोषितस्तपसा ह्यहम् ।
दद्यां कालाश्रयं ज्ञानम् ग्रहाणां चरितं महत् ॥५॥
न मे तेजः सहः कश्चिदाख्यातुं नास्तिमे क्षणः ।
मदंशः पुरुषोयं ते निःशेषं कथयिष्यति ॥६॥

अनुवाद—भगवान सूर्यने कहा कि तेरा भाव मुझे विदित हो गया है और तेरे तपसे मैं बहुत संतुष्ट हूं; मैं तुझे ग्रहोंके महान् चरितका उपदेश करता हूं, जिससे समयका ठीक ठीक ज्ञान हो सकता है; परंतु मेरा तेज कोई सह नहीं सकता और उपदेश देनेके लिए मुझे समय भी नहीं है मेरे अंशसे उत्पन्न यह पुरुष तुझे भली भांति इसलिए उपदेश देगा ॥ ५,६ ॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः समादिश्यांशमात्मनः ।
स पुमान् मयमाहेदं प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम्* ॥ ७ ॥
श्रृणुष्वैकमनाः पूर्वं यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम् ।
युगे युगे महर्षीणां स्वयमेव विवस्वता ॥ ८ ॥
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः ।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोत्र केवलम् ॥ ९ ॥

अनुवाद—इतना कह कर सूर्य भगवान अन्तर्ध्यान हो गये और सूर्यांश पुरुषने आदेशानुसार मयसे जो विनीत भावसे झुके हुए और हाथ जोड़े हुए थे कहा—एकाग्र चित होकर यह उत्तम ज्ञान सुनो, जिसे भगवान सूर्यने स्वयम् समय समय पर महर्षियोंसे कहा था; भगवान सूर्यने पहले जिस शास्त्रका उपदेश दिया था वही आदि शास्त्र यह है; युगोंके परिवर्तनसे केवल कालमें कुछ भेद पड़ गया है ॥ ७,९ ॥

विज्ञान भाष्य—नवें श्लोकके दूसरे पदका कुछ लोग यह अर्थ करते हैं कि सूर्य भगवानने जिस शास्त्रका उपदेश महर्षियोंको किया था वही शास्त्र बिना किसी परिवर्तनके यह है, केवल कहनेके समयमें भेद है। परन्तु यदि इसका यही अर्थ होता तो यह कहनेकी क्या आवश्यकता थी कि केवल कालमें भेद है, पहले पदमें जो कुछ कहा गया है वही पर्याप्त था। इस लिए इस पदका अधिक युक्ति युक्त अर्थ यह है कि पहलेके बतलाये हुए और इस समय बतलाये जानेवाले ज्योतिः शास्त्रमें यदि कुछ भेद है तो वह कालके कारण

---

* इस श्लोकके पहले पूनाके आनन्दाश्रमके सूर्य सिद्धान्त की एक टीका रहित प्रतिमें यह श्लोक भी पाया जाता है:—

तस्मात्वं स्वां पुरीं गच्छ तत्र ज्ञानम् ददामि ते ।
रोमके नगरे ब्रह्म शापान्म्लेच्छावतार धृक् ॥

परन्तु यह सूर्य सिद्धान्तकी अन्य किसी प्रतिमें नहीं है। आगे पीछेके श्लोकोंसे इसका कोई संबन्ध भी नहीं देख पड़ता, इस लिए यह क्षेपक है।

हो गया है; तत्वतः कोई अन्तर नहीं है। कालके कारण भेद कैसे हो सकता है; इसका कारण यह है कि ज्योतिः शास्त्र प्रयोगात्मक विज्ञान है और प्रयोगमें कुछ न कुछ सूक्ष्म भूल रह ही जाती है, जिसे प्रयोगात्मक भूल (Experimental error) कहते हैं। ज्योतिः शास्त्रमें यह भूल प्रति वर्ष इकट्ठी होती रहती है और सैकड़ों वर्षके बाद वह बहुत बड़ा रूप धारण कर लेती है; इस लिए समय समय पर उसका संशोधन करना पड़ता है, जिसको बीज संस्कार कहते हैं। इसी दृष्टिसे यह वाक्य सूर्यान्श पुरुषने कहा है जिसके प्रमाणमें सूर्य सिद्धान्तके अन्तिम अध्यायमें 'बीजोपनयन' नामके २१ श्लोक हैं, जिनकी टीका रंगनाथजीने तथा पं० इन्द्रनारायण द्विवेदी जीने क्षेपक मान कर नहीं की है और क्षेपक माननेका कारण यह बतलाया है कि सूर्य भगवानके कहे हुए शास्त्रमें बीज संस्कार स्वयम् सूर्य भगवान कैसे करते। परन्तु रंगनाथ जी अपनी गूढ़ार्थ प्रकाशिका टीका में ६ वें श्लोककी व्याख्या करते हुए यह भी बतलाते हैं कि काल पाकर कुछ अन्तर हो जाया करता है उनके वाक्य ज्योंके त्यों यह हैं:—

"तथा च कालवशेन ग्रहचारे किञ्चिद्वैलक्षण्यं भवतीति युगान्तरे तत्तदनन्तरं ग्रहचारेषु प्रसाध्य तत्कालस्थित लोकव्यवहारार्थं शास्त्रान्तरमिव कृपालुरुक्त वानितिनानन्तर शास्त्राणां वैयर्थ्यम्। एवञ्च मया वर्तमान युगीय सूर्योक्ति शास्त्र सिद्धग्रह चारमंगी कृत्याद्य सूर्योक्त शास्त्र सिद्ध ग्रहचारंच प्रयोजनाभा वादुपेक्ष्य तदुक्तमेवत्वां प्रत्युपदिश्यत इति भावः। एवञ्च युग मध्येऽप्यवान्तर काले ग्रहचारेष्वन्तर दर्शने तत्तत्काले तदन्तरं प्रसाध्यग्रंथास्तत्काल वर्तमानाभियुक्ताः कुर्वन्ति। तदिदमन्तरं पूर्व ग्रन्थे बीज मित्यामनन्ति। पूर्व ग्रंथानां लुप्तत्वात्सूर्योर्वि संवादोऽपीदानीं न दृश्यत इति। तदप्रसिद्धिरागम प्रामाण्याच नाशंक्या† ॥"

काल पाकर अन्तर पड़नेके उदाहरण अनेक हैं, जो इसी टीकामें उचित स्थानपर बतलाये जायंगे।

† वेंकटेश्वर प्रेसका १६५३ वि० का छपा सूर्य सिद्धान्त पृष्ठ ७।

लोकानामन्तकृत्कालः कालोन्यः कलनात्मकः।
सद्विधा स्थूल सूक्ष्मत्वान्मूर्त श्चामूर्त उच्यते ॥ १० ॥

अनुवाद—एक प्रकारका काल संसारको नाश करता है और दूसरे प्रकारका कलनात्मक है अर्थात् जाना जा सकता है। यह भी दो प्रकारका होता है—(१) स्थूल और (२) सूक्ष्म। स्थूल नापा जा सकता है, इस लिए मूर्त कहलाता है और सूक्ष्म नापा नहीं जा सकता इसलिए अमूर्त कहलाता है ॥ १० ॥

विज्ञान भाष्य—पहले प्रकारके कालकी कल्पना भी नहीं हो सकती, क्योंकि न तो यही मालूम है कि वह कबसे आरंभ हुआ और न यही मालूम होगा कि उसका अन्त कब होगा। यह अखंड और व्यापक है; परन्तु इसके बीचमें ही अथवा इसके उपस्थित रहते ही लोकका अन्त हो जाता है, ब्रह्मा उत्पन्न होते, सृष्टि रचते तथा लय करते हैं; परन्तु काल बना ही रहता है। इसलिए इसको लोकोंका अन्त कर देनेवाला, नाश कर देनेवाला कहते हैं। इसीलिए मृत्युको भी काल कहते हैं।

कालका जो थोड़ा सा मध्य भाग जाना जा सकता है; उसमें भी जो बहुत छोटा है वह नापा नहीं जा सकता है और अमूर्त कहलाता है। नापनेमें जितनी ही सूक्ष्मता होगी अमूर्त कालकी परिभाषा भी नयी होती जायगी; जैसा कि अगले श्लोक की व्याख्यामें दिखाया जायगा।

प्राणादिः कथितो मूर्त्तस्त्र्यद्यायोऽमूर्त सञ्ज्ञकः।
षड्भिः प्राणैर्विनाड़ी स्यात्तत् षष्ट्या नाड़िका स्मृता ॥ ११
नाड़ी षष्ट्यातु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम्।
तत् त्रिंशता भवेन्मासः सावनोर्कोदयैस्तथा ॥ १२ ॥
ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत्सङ्क्रान्त्या सौर उच्यते।
मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदह उच्यते ॥ १३ ॥

अनुवाद—प्राणसे लेकर ऊपरकी जितनी समय की इकाइयां हैं वह मूर्त कहलाती हैं और त्रुटिसे लेकर प्राणके नीचेकी इकाइयोंको अमूर्त कहते हैं। ६ प्राणोंकी एक विनाड़ी (पल) तथा ६० विनाड़ियोंकी एक नाड़ी (घड़ी) होती है ॥ ११ ॥

६० नाड़ियोंका एक नाक्षत्र अहोरात्र (दिन रातका एक जोड़ा) तथा ३० नाक्षत्र अहोरात्रोंका एक नाक्षत्र मास होता है। इसी प्रकार ३० सावन दिनोंका एक सावन मास होता है ॥ १२ ॥ उसी प्रकार ३० चान्द्र तिथियोंका एक चान्द्र मास तथा एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्ति तकके समयको सौरमास कहते हैं। १२ मासोंका एक वर्ष होता है; जिसको* दिव्य दिन अथवा देवताओंका दिन कहते हैं।

विज्ञान भाष्य—

स्वस्थ मनुष्य सुखसे बैठा हुआ हो तो जितने समयमें वह सहज ही हवा (प्राण वायु) भीतर खींचता और बाहर निकालता है उस समयको प्राण कहते हैं। यही सबसे छोटी इकाई है, जो उस समय नापी जा सकती थी। इससे कम समयके नापनेका कोई साधन उस समय नहीं था; इसलिए उसको अमूर्त कहते थे। अब ऐसी घड़ियां बनायी जाती हैं जिनसे उस इकाईका भी नापना सहज है जो अमूर्त कही गई हैं। एक नाक्षत्र दिनमें ६० घड़ी=६० × ६० पल=६० × ६० × ६ प्राण अथवा २१६०० प्राण होते हैं। इसी तरह १ दिन में २४ घंटे=२४ × ६० मिनट=२४ × ६० × ६० सेकंड अथवा ८६४०० सेकंड होते हैं। इसलिए १ प्राणमें ४ सेकंड होते हैं। जिस घड़ीमें सेकंड जाननेकी सुई लगी रहती है उससे सेकंडका नापना कितना सहज है यह सबको विदित है। ऐसी घड़ियां भी हैं जिनसे १ सेकंडका पांचवा अथवा दसवां भाग सहज ही जाना जा सकता है। परन्तु १ सेकंड का दसवां भाग १ प्राणके चालीसवें भागके समान है। इस-लिए आज कल प्राणके नीचेकी इकाइयां भी मूर्त कही जा सकती हैं।

* इस शब्दसे यह प्रकट होता है कि जिन १२ मासों-का वर्ष होता है वह सौर मास हैं। चांद्र, नाक्षत्र अथवा सावन मासोंका वर्ष नहीं होता है।

प्राणको असु भी कहते हैं। प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य जी सिद्धान्तशिरोमणिमें प्राणकी दूसरी परिभाषा छन्द शास्त्रके शब्दोंमें यों देते हैं—एक गुरु अक्षरके उच्चारण करनेमें जितना समय लगता है उसके दस गुने समयको प्राण कहते हैं। सानुस्वार, विसर्गान्त, दीर्घ और जिस लघु अक्षरके पीछे कोई संयुक्ताक्षर हो उसको गुरु अक्षर कहते हैं।

पल तोलनेकी एक इकाईका भी नाम है, जो चार तोलेके समान होता है। जितने समयमें १ पल अथवा ४ तोला जल एक विशेष नापके छिद्र द्वारा घटिका[1] यंत्रमें चढ़ता है उस समयको पल कहते हैं।

त्रुटिकी कल्पना भास्कराचार्य जीने[2] इस प्रकार की है। जितने समयमें पलक गिरती है उस-को निमेष कहते हैं। १ निमेषके तीसवें भागको तत्पर तथा १ तत्परके सौवें भागको त्रुटि कहते हैं। निमेष के ऊपरकी इकाइयोंका सम्बन्ध यह है:—

१८ निमेष=१ काष्ठा

३० काष्ठा=१ कला

३० कला=१ घटिका

२ घटिका=१ मुहूर्त

३० मुहूर्त=१ दिन (नाक्षत्र)

इस प्रकार १ नाक्षत्र दिन=३० × २ × ३० × ३० × १८ निमेष

=६७२००० निमेष

पहले दिखलाया गया है कि १ दिनमें २१६०० प्राण अथवा ८६४०० सेकंड होते हैं इसलिए १ प्राणमें $\frac{६७२०००}{२१६००}$ निमेष अथवा ४५ निमेष और १ सेकंडमें ११$\frac{१}{४}$ निमेष होते हैं।

१ इसका विशेष विवरण ज्योतिषोपनिषत नामक १३वें अध्याय में किया जायगा।

२ सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय मध्यमाधिकार, काल मानाध्याय श्लोक १६,१७।

नाक्षत्र अहोरात्र—नक्षत्रका अर्थ है तारा, तारा समूह तथा उस चक्रका २७वां भाग जिस पर सूर्य एक वर्षमें एक परिक्रमा करता हुआ देख पड़ता है। पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण आकाशके सब तारे पूरब में उदय हो कर ऊपर उठते, पच्छिमकी ओर बढ़ते, पच्छिममें अस्त होते और फिर पूरबमें उदय होते हैं। किसी तारेके उदयका समय घड़ीमें देख कर लिख लीजिये और देखो कि वह तारा फिर कब उदय होता है। यदि घड़ी ठीक हो तो इन दोनों उदयोंके बीचका समय २३ घंटा ५६ मिनट और ४ सेकंडके लगभग होता है। इसीको नाक्षत्र अहोरात्र या केवल नाक्षत्र दिन कहते हैं। यह सदा एकसा होता है, घटता बढ़ता नहीं, यदि तारोंको बहुत सूक्ष्म गतिका बिचार न किया जाय। इसलिए ज्योतिषी लोग इसीसे समयका हिसाब लगाते हैं।

सावन दिन—सूर्यके एक उदयसे लेकर दूसरे उदय तकके समयको सावन दिन कहते हैं। यह नाक्षत्र दिनसे कोई ४ मिनट बड़ा होता है। सावन दिनका मान समान नहीं होता। इसलिए मध्यम सावन दिनका जो मान होता है वही समय घड़ियोंके द्वारा जाना जाता है।

ऐन्दव तिथि या चान्द्र तिथि—चन्द्रमा आकाशमें चक्कर लगाता हुआ जिस समय सूर्यके बहुत पास पहुँचता है उस समय अमावास्या होती है। एक अमावास्यासे दूसरी अमावास्या तकके समयको चान्द्रमास कहते हैं। इसका मध्यम मान २९.५३०५८७९४६ मध्यम सावन दिनका होता है। अमावास्याके बाद चन्द्रमा सूर्यसे आगे पूर्वकी ओर बढ़ता जाता है और जब १२ अंश आगे हो जाता है तब पहली तिथि (परिवा) बीतती है, १२ अंशसे २४ अंश तकका जब अंतर रहता है तब दूइज रहती है। २४ अंशसे ३६ अंश तक जब चन्द्रमा सूर्यसे आगे रहता है तब तीज रहती है। जब अन्तर १६८ से १८० अंश तक होता है तब पूर्णिमा होती है, १८० अंशसे १९२ अंश तक जब चन्द्रमा आगे रहता है तब १६वीं तिथि अथवा परिवा (प्रतिपदा) होती है, १९२° से २०४° तक दूइज इत्यादि होती है। पूर्णिमाके बाद चन्द्रमा सूर्यास्तसे प्रति दिन कोई २ घड़ी (४८ मिनट) पीछे निकलता है। पूर्णिमासे अमावास्या तकके १४, १५ दिनको कृष्णपक्ष कहते हैं। अमावास्याको ३०वीं तिथि भी कहते हैं; इसीलिए पंचांगोंमें अमावास्याके लिए ३० लिखते हैं।

सौरमास—सूर्य जिस मार्गसे चलता हुआ आकाशमें परिक्रमा करता है उसको क्रांतिवृत्त कहते हैं। इसके बारहवें भागको राशि कहते हैं। सूर्यमंडलका केन्द्र जिस समय एक राशिसे दूसरी राशिमें प्रवेश करता है उस समय दूसरी राशिकी संक्रान्ति होती है। एक संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्ति तकके समयको सौरमास कहते हैं। १२ सौरमास परिमाणमें भिन्न भिन्न होते हैं; इसका कारण यह है कि सूर्यकी गति सर्वदा समान नहीं होती। जब सूर्यकी गति तीव्र होती है तब वह एक राशिको जल्दी पूरा कर लेता है और वह सौरमास छोटा होता है। इसके प्रतिकूल जब सूर्यकी गति मन्द होती है तब सौरमास बड़ा होता है।

वर्ष—जितने प्रकारके महीने होते हैं उतने ही प्रकारसे वर्ष होते हैं, बारह चान्द्रमासोंका एक चान्द्रवर्ष, १२ सावन मासोंका एक सावनवर्ष तथा बारह सौरमासोंका एक सौरवर्ष होता है। हमारे ज्योतिषी परंपरासे यही मानते आये हैं। परन्तु १३वें श्लोकमें दूसरे पदका सीधा अर्थ यह है कि १२ मासोंका वर्ष होता है जिसको दिव्य दिन कहते हैं। इसलिए जिन बारह मासोंका वर्ष कहा गया है वह अन्य मास नहीं हैं; केवल सौर-मास हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर्य सिद्धान्तमें केवल सौर वर्षकी चर्चा है और सौर वर्षको ही वर्ष माना गया है; अन्य को नहीं।

[illegible]—पृथ्वीके उत्तरी ध्रुव पर देवताओंके रहनेका तथा दक्षिणी ध्रुव पर राक्षसोंके रहनेका स्थान बतलाया गया है। इसलिए उत्तरी ध्रुवको

देवलोक तथा दक्षिणी ध्रुवको असुरलोक कहते हैं। जिस समय सूर्य विषुववृत्त पर आता है उस समय दिन और रात समान होते हैं यह घटना वर्षमें केवल दो बार होती है। ६ महीने तक सूर्य विषुववृत्त के उत्तर तथा ६ महीने तक दक्षिण रहता है। पहली छमाहीमें उत्तर गोलमें दिन बड़ा और रात छोटी तथा दक्षिण गोलमें दिन छोटा और रात बड़ी होती है। दूसरी छमाहीमें ठीक इसका उलटा होता है। परन्तु जब सूर्य विषुव-वृत्तके उत्तर रहता है तब वह उत्तरी ध्रुव पर (सुमेरु पर्वत पर) ६ महीने तक सदा दिखाई देता है और दक्षिणी ध्रुवपर इस समयमें नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए इस छमाहीको देवताओंका दिन तथा राक्षसोंकी रात कहते हैं। जब सूर्य ६ महीने तक विषुववृत्तके दक्खिन रहता है तब उत्तरी ध्रुव पर देवताओंको नहीं देख पड़ता और राक्षसोंको ६ महीने तक दक्षिणी ध्रुवपर बराबर देख पड़ता है। इसलिए इस छमाहीको देवताओंकी रात और असुरोंका दिन कहा गया है। इसलिए हमारे १२ महीने देवताओं अथवा राक्षसोंके एक अहोरात्रके समान होते हैं।

सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्र विपर्ययात।
तत् षष्ठिः षड् गुणा दिव्यं वर्षमासुरमेवच ॥ १४ ॥

अनुवाद—जो देवताओंका दिन होता है वही असुरोंकी रात होती है और जो देवताओंकी रात होती है वह असुरोंका दिन कहलाता है। यही देवता या असुरके अहोरात्रका ६० × ६ गुना दिव्य या असुर वर्ष कहलाता है।

विज्ञान भाष्य—जैसे ३६० सावन दिनके एक सावन वर्षकी कल्पना की गयी है उसी प्रकार ३६० दिव्य दिनका एक दिव्य वर्ष माना गया है। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि हमारे ३६० वर्षों-का देवताओंका एक वर्ष होता है। (क्रमशः)

—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

विचारका संगठन

गत लेखमें हमने बतलाया है कि छापेका आविष्कार हो जानेसे विचारके संगठनमें बहुत कुछ सुगमता हो गई। जहां पहले अपने विचारको दूसरेके मनमें अङ्कित करनेके लिए एक व्यक्तिको दूसरे व्यक्तिके पास स्वयं जाना पड़ता था, अथवा पत्र लिख कर किसी हरकारे-के हाथ भेजना पड़ता था वहां छापे खानेकी सहा-यतासे एक व्यक्ति अन्य हज़ारों ऐसे आदमियोंपर भी अपने विचारका प्रभाव डालने लगा, जिन्हें वह स्वयं न जानता ही था और न व्यष्टि रूपसे प्रभा-वित करनेकी इच्छा ही रखता था; साथ ही समय-में भी किफायत हो गई। भिन्न भिन्न मनुष्योंके आपसमें मिलने जुलनेके साधन भी बढ़ते ही गये। रेल, जहाज़, हवाई जहाज़ आदि वाहन विभिन्न देशोंके निवासियोंको भिन्न भिन्न स्थानोंमें आने जानेके विशेष अवसर देने लगे। इनके अतिरिक्त तार टेलीफोन, बेतार, समुद्री तार आदि साधनों-से दूर दूर बैठे हुए बात चीतकी सुविधा हो गई। इन सबका यह फल हुआ है कि वर्त्तमान कालमें विचारका संगठन बहुत विशद होगया है, और उसका क्षेत्र भी खूब विस्तीर्ण हो गया है।

किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि साधन-सुविधाकी वृद्धि और क्षेत्र-विस्तारके साथ साथ ही दोषोंका सर्वथा लोप ही होता गया। वास्त-विक बात तो यह है कि उक्त दोनों बातोंके साथ तीसरी भी लगी ही रही; और केवल लगी ही न रही, उसी हिसाबसे प्रायः बढ़ती भी रही, जिस हिसाब-से अन्य दोनों बढ़ी हैं। किसीके पास स्वयं जाकर कुछ कहनेमें और पत्र भेजनेमें अन्तर है। जितना प्रभाव पहिली बातसे पड़ता है उतना दूसरीसे नहीं। एक लेखकका कहना है कि यदि आप पत्रमें

कोई साधारण व्यङ्ग भी डाल दें तो उसका प्रभाव विषैला हुए बिना न रहेगा, किन्तु यदि उसीके स्थानपर स्वयं उसके पास, जिसे पत्र भेजा जा रहा है, चले जायँ और व्यङ्ग ही नहीं एक ढङ्गसे गालियाँ भी दे आवें तो उसके चित्तमें कोई क्रोध भाव न उत्पन्न होगा। आज कल अकसर कितनी ही छोटी छोटी बातोंका और ही अर्थ निकालनेके कारण लड़ाई झगड़े हो जाते हैं। यदि आपसकी उस ना समझीको दूर करनेकी चेष्टा शीघ्र ही एक दूसरेसे मिलकर की तब तो ठीक रहता है, नहीं तो झगड़े बढ़ ही जाते हैं।

समाजका क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है, इससे अब यह सम्भव भी नहीं होता कि जिन लोगोंसे काम पड़ता है वह आपसमें मिल भी सकें, पत्र-व्यवहारसे ही सारा काम चलाया जाता है। उदाहरणके लिए अमेरिकामें बैठा हुआ एक व्यक्ति हमारे लिए कपड़े बना रहा है। वहाँ वह हमसे चाहे जितना कपट कर सकता है और कपट ही नहीं, कोई भी अत्याचार हमारे ऊपर कर सकता है, क्योंकि उसके लिए हम लकड़ी या लोहे आदिसे किसी प्रकार अधिक मूल्यवान् नहीं हैं, एकमात्र अन्तर, जो हममें और जड़ पदार्थोंमें वह समझ सकता है, यही हो सकता है कि हम कपड़ा पहनते हैं। हृदयकी सरसताके कारण मनुष्यके शरीरमें एक दिव्य स्फूर्त्ति होती है, बिजली होती है। जितना ही प्रेमी, निस्स्वार्थ, और सहृदय कोई व्यक्ति होता है उतना ही उसका प्रभाव दूसरे पर पड़ता है, उतनी ही प्रबल उसकी आकर्षण-शक्ति होती है। यह शक्ति आमने सामने बैठकर एक दूसरेसे बातचीत करनेवाले लोगोंपर अपना जादू डालती रहती है, और एक व्यक्तिकी आँखोंमेंसे धारा सी फूट कर दूसरे व्यक्तिकी आंखोंको बेबस करती है तथा इस कार्यके होनेमें सहायता देती है जो शायद अन्यथा न सम्भव होता। यही कारण है जो साधारण तौरसे यह कहा जाता है कि जिससे बातें करो, उसकी आंखोंकी ओर भी देखो।

वर्तमान समाजका रूप ऐसा फैल गया है कि उक्त व्यक्तिगत प्रभावडालनेके अवसर अब कठिनाईसे मिलते हैं। इस कठिनाईके कारण अब ऐसी दशा उपस्थित हो गयी है कि साधनोंके रहते हुए भी प्रायः हम दूरके लोगोंमें अपेक्षित परिज्ञान, अनुभूति तथा सचेष्टताके भाव अङ्कित नहीं कर सकते। उदाहरणके लिए लङ्काशायर और मैनचेस्टरके मिलवालोंमें यह परिज्ञान उत्पन्न करना कठिन है कि भारतकी औद्योगिक अवस्था ठीक नहीं है और उसकी उन्नतिके लिए यह आवश्यक है कि थोड़ा स्वार्थ-त्याग करें और भारत सरकारको मुक्त-व्यापारकी नीतिका अवलम्बन त्यागकर संरक्षण-नीति ग्रहण करने दें। अनुभूति उत्पन्न करना तो असम्भव ही है। साथ ही यदि कोई उन्हें भारतवर्षके विरुद्ध भड़काना चाहे, इसके द्वारा किये गये किसी अन्याय विशेषका उनको परिज्ञान कराना चाहे, तो दूरस्थ होनेके कारण यह कार्य अत्यन्त सरलतासे हो सकेगा; अनुभूति बड़ी सुगमतासे तीव्र रूपमें उत्पन्न की जा सकेगी। इस प्रकार अब यह प्रगट हो गया होगा कि जहाँ समाजके क्षेत्र-विस्तारसे विचार-संगठन किसी किसी रूपमें सुलभतासे साध्य हो गया, वहां किसी किसी रूपमें वह दोष-पूर्ण और वर्त्तमान कालके अनेक संकटोंका विधाता भी हो गया।

वर्तमान युगके दुखोंके एक बहुत बड़े अंशका कारण है विचार संगठनका, उपायों और साधनोंकी कृत्रिमताके कारण, जीवन-शून्य हो जाना। आप जिधर ही दृष्टि डालेंगे कृत्रिमताको मनुष्य-जीवनका शिकार करते हुए पावेंगे। पूंजीपतिकी ओर दृष्टिपात कीजियेगा तो, नौकर शाहीकी ओर देखियेगा तो, आपको एक ही बात दृष्टिगोचर होगी और वह यह कि यह सबके सब मशीनकी तरह जीवन-शून्य हो गये हैं और जिनसे इनका काम पड़ता है उन्हें भी मशीन की ही तरह समझते हैं। मालिकका अपने हज़ारों नौकरोंसे व्यक्तिरूपसे मिलना भी वैसा ही असम्भव है जैसा कि

नौकर शाहीका प्रजासे मिलना अथवा मिलनेकी चेष्टा करना। इस परिवर्त्तनका परिणाम बहुत बुरा हो रहा है।

अब यह प्रश्न उठता है कि इस अवस्थामें करना क्या चाहिये ? मनुष्यका अपने दिमागसे आधुनिक साधनोंका ढूँढ़ निकालना स्वाभाविक ही था। वह साधन भी ऐसे सुभीते देनेवाले हैं कि उसके चित्तको अपनेमें रखेंगे ही। अतएव जो कुछ हो सकता है वह यही है कि ऐसा कोई ढंग विचार-संगठनका काममें लाया जाय, जिसमें शासकको शासितसे, पूंजीपतिको मज़दूरसे, जमींदारको किसानसे, तथा लेखकको पाठकसे मिलनेके अधिकाधिक अवसर उपलब्ध हो सकें। एक निर्धारित सीमा तक अगर इस मिलने जुलनेपर विशेष ध्यान दिया जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि इससे दोनों पक्षोंको लाभ होगा। परन्तु भय केवल इस बातका है कि कहीं फिर सब कुछ छोड़के इस एक बातपर ही न लोगोंका सम्पूर्ण ध्यान जमा रहे। क्योंकि विचारकी सृष्टिके लिए विचार-कर्त्ताका एकान्तमें रहना भी आवश्यक है; साथ ही, विचारके प्रचारके निमित्त छापेखाने, तथा समाचार पत्रोंसे लाभ उठाना आवश्यक है। अगर इस उद्देश्यसे भी मिलने जुलनेकी बातचीत की जाय कि एक विचार-कर्त्ता अन्य विचार-कर्त्ताओंके साथ सभामें वाद-विवाद करके नवीन तथ्यका पता लगावे, तो भी इतना कहा जायगा कि सभामें अन्य लोग सोचनेका कार्य इतनी जल्दी नहीं कर सकते कि वह सन्तोष-जनक रीतिसे बहसमें भाग लेकर कोई लाभ पहुंचा सकें। उस तरह केवल एक बात की जा सकती है और वह यह है कि विचारकर्त्ता या तो अन्य साधनों द्वारा परिज्ञानका संगठन कर लेनेके बाद वक्तृत्व-कलाका आश्रय लेकर लोगोंमें अनुभूतिका सञ्चार करे, और उनकी इच्छाका संगठन करे अथवा अपनी ही सोची हुई बातोंका प्रचार करके परिज्ञानका संगठन करे।

जाड़ेके दिनोंमें अक्सर हाकिमोंके दौरे इधर उधर होते हैं। डिप्टी कलेक्टर, सदर कानूंगोसे लेकर बड़े बड़े पदाधिकारी तक ऐसा करते हैं। अभी पाठक भूले न होंगे कि असहयोगके जमानेमें इङ्गलैण्डसे ड्यूक आव कनाट तथा प्रिंस आववेल्स आये थे। प्रजाके असन्तोषके समय ऐसे उपायोंका अवलम्बन करना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु वर्त्तमान शासनमें फिर भी इतनी कमी तो है ही कि वह अपना हृदय नहीं खोलता। मिलने जुलनेका फल यह होना चाहिये कि राजाके प्रति हमारे सम्पूर्ण विरक्ति-भाव नष्ट हो जायँ।

म० गांधी और लोकमान्य तिलकका जितना प्रभाव जनतापर पड़ता था उतना ही अन्य राजनीतिक नेताओंके प्रभावको न पड़ते देखकर प्रकट होता है कि हमारे राजनीतिक क्षेत्रमें भी बहुत कुछ कृत्रिमता आ गई है। इस कृत्रिमताके ही कारण मेरी समझमें माडरेट दलके नेता अपनेको प्रजाका प्रेम-भाजन नहीं बना पाते हैं; बहुधा सच्ची दशासे वह अभिज्ञ भी नहीं होते। मेरा अनुभव है कि जिस समय किसानोंको भयङ्कर क्लेश मिल रहा था उस समय वह अर्थ-शास्त्रके भ्रान्ति-मूलक सिद्धान्तोंकी सहायतासे उन्हें सुखी और धनी समझ रहे थे। मुक्त व्यापार नीतिके अन्ध प्रेमी एक माडरेट महाशयका हाल मुझे मालूम है, जो देश-सेवाके ही नामपर अपने बालोंको सफ़ेद कर चुके हैं। आपका कथन है कि उक्त नीतिके अवलम्बनसे भारतवर्षको असीम लाभ हुआ है। मेरी रायमें यह भ्रान्त धारणा भारतवर्षके गांवोंमें रहनेवाली जनताके जीवनसे अपरिचित रहनेके कारण ही, उससे न मिलने जुलनेके कारण ही, वर्त्तमान सभ्यताके जीवन-शून्य साधनों द्वारा जीवित मनुष्योंका हाल जान सकनेके विश्वासके कारण ही, उत्पन्न हुई है।

ऊपर हम कह चुके हैं कि विचारके संगठनमें मौखिक कथनका उपयोग सभामें किया जा सकता है, किन्तु वह केवल या तो परिज्ञानके संगठनके नि-

मित, अर्थात लोगोंमें किसी नई सोची गई बातका प्रचार करनेकी दृष्टिसे, अथवा किसी ऐसे संबन्धमें लोगोंमें अनुभूति उत्पन्न करके उनको एक निश्चित मार्गपर समष्टि रूपसे प्रेरित करने और इस प्रकार उनकी इच्छाका संगठन करनेके ख्यालसे किया जा सकता है। हम बतला चुके हैं कि भीड़में, उत्तेजनाके समयमें, और जल्दीमें अच्छी तरह कोई सोच नहीं सकता। जिन लोगोंने कांग्रेस की कार्य्य-कारिणी सभाओंमें महात्मा गांधीको देखा होगा वह इस बातको शीघ्र ही समझ जायंगे। बहुधा तो ऐसा ही देखा जाता था कि महात्मा जीने जो प्रस्ताव पेश किये वही सभा द्वारा स्वीकृत हो गये। इसका रहस्य यही था कि महात्मा जी तो जो कार्य्य करते थे उसपर विचार खूब कर लेते थे। इसलिए समितियोंमें जब वह अपने परिपक्व विचारको प्रस्तावके रूपमें रखते थे तो औरोंके लिए, जिन्होंने पहले विचार यथेष्ट रूपसे नहीं किया था और उस समय करनेका मौका नहीं था, वह अपरिवर्त्तनीय ही जान पड़ता था। इससे एक बड़ी हानि हुई है। अन्य लोगोंमें स्वतन्त्र विचार करनेकी आदत नहीं रही और अब उनके कैद हो जानेपर सच्चा मार्ग ढूंढ़ निकालनेवाला कोई नहीं दिखाई पड़ रहा है। साथ ही पाठकोंने असहयोग आन्दोलन-कालमें ही एक बात और देखी होगी; वह बात है कार्य्य करनेवाले नेताओंमें वक्तृत्व चातुरीका अभाव और उनकी वक्तृत्व-कलाके प्रति उदासीनता। इस एक कमीके कारण सम्पूर्ण भारतीय जनतामें अनुभूति प्रबल न की जा सकी; जिसका यह फल हुआ कि सचेष्टताकी ओर वह उतने वेगसे न अग्रसर हुई, जितने वेगसे चलने पर कि स्वराज्य प्राप्त हो सकता था।

यहां यह बतला देना भी आवश्यक मालूम होता है कि उन लोगोंका विचार-सृष्टिमें तत्पर होना यहां कष्ट-साध्य बात ही समझना चाहिये, जिनका सम्बन्ध गवर्नमेन्टसे नहीं है। सबसे पहिले तो ऐसे सज्जनोंके सामने जीविकाका प्रश्न बड़े टेढ़े रूपमें आखड़ा होता है, उसका सुन्दर प्रबन्ध व्यवसाय या सरकारी नौकरीसे ही हो सकता है। व्यवसाय संसार और विचार संसारमें कितना अन्तर है यह कहनेकी आवश्यकता नहीं; सरकारी नौकरीमें और भी बुरा हाल है। जो आदमी सरकारी नौकर है वह हरदम डरता रहता है कि कहीं कोई कारण अधिकारियोंकी कोप-दृष्टिका भाजन न हो जाय। उसे स्वतंत्रतासे विचार करनेके मौके नहीं मिलते। कौन्सिलोंका सदस्य हो जानेसे कुछ काम करनेके अवसर तो मिल जाते हैं और कुछ भत्ता भी मिल ही जाता है, परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि उस भत्तेमें विचार-कर्त्ता साल भर अपना भरण-पोषण कर सकता है। निर्वाचनका व्यय इतना अधिक होता है कि ग़रीब आदमी कौन्सिलों तक पहुँच भी नहीं सकते। फिर यदि कौन्सिलोंमें पहुंच भी गये तो हमारे देशकी अवस्था ऐसी है कि कभी कभी ऐसे अवसर आ सकते हैं जब कि कौन्सिलका त्याग आवश्यक हो जाता है। कुशल इस देशमें इतनी ही है कि यहां आध्यात्मिक आदर्शोंके कारण कुछ लोगोंका झुकाव साधारण रहन सहन और स्वार्थ-त्यागकी ओर हो ही जाती है। म० गान्धी, लोकमान्य तिलक ऐसे लोग अपने मस्तिष्कसे उत्पन्न हुए विचारको औरों तक पहुंचानेमें कदापि न समर्थ हुए होते, यदि वह धार्मिक पुरुष न होते और उनमें अध्यात्मके कारण अलौकिक शक्ति न होती; क्योंकि विदेशी गवर्नमेन्ट ऐसे व्यक्तियोंको कष्ट देनेके किसी अवसरको हाथसे नहीं जाने देती।

तो अब यह विचारना चाहिये कि संसारमें मिलने जुलनेके कृत्रिम साधनोंके प्रचारसे जो जीवनहीनता और कठोरता समाजमें प्रवेश करती चली आ रही है और जिसके कारण शासक और शासित जातियोंमें घोर मनो-मालिन्य फैल रहा है उसको किस तरह दूर करना होगा? यह प्रश्न कठिन भी है और आसान भी। कठिन इसलिए कि शासक जातियोंमें एक प्रकारका गर्व रहता है,

और वह शासित से मिलना नहीं पसन्द करेगी, और आसान इसलिए कि अगर इतना करना वह स्वीकार कर लें तो यद्यपि समाजके विस्तारके ख़यालसे यह कार्य्य कठिन ही कहा जायगा तथापि जहां इच्छा है वहीं सिद्धि भी है, मिलने जुलनेका कोई न कोई ढंग निकल ही आवेगा। भारतवर्षमें इस विषयकी ओर ध्यान देनेकी विशेष आवश्यकता प्रतीत हो रही है। क्योंकि नये विचारोंकी सृष्टि ही जातिके जीवनका लक्षण है। यदि इस ओर समाजने शीघ्र ही ध्यान न दिया तो निःशक्ति तो वह है ही उसे मृत होते भी देर न लगेगी।

समाचार-पत्रोंके कारण विचारकी अदला-बदलीमें बहुत शीघ्रता और आसानी हो गयी है, परन्तु उनसे भी विचारोंकी मौलिकता और सुन्दरतामें कमी पड़ने लगी है। कितने ही विचार-कर्त्ता केवल यशकी भूखको बुझानेके लिए पृष्ठके पृष्ठ काले करके सम्पादकके पास पहुंच जाते हैं और अपने लेखको प्रकाशित करनेके लिए आग्रह करते हैं। मासिक-पत्रोंमें कविताका बुरा हाल हो गया है। इन पत्रोंकी चटक मटक तड़क भड़कके कारण अधिकांश एक ऐसी रुचि पैदा हो गई है जिससे वह हलका साहित्य पढ़नेके आदी हो गये हैं। बहुधा पाठक दिल बहलावके लिए मसाला ढूँढते हुए ही मिला करते हैं, सत्यकी खोजमें वह कम ही पाये जाते हैं।

लेखकके नामके विना लेख भी अक्सर निकला करते हैं। यदि इन लेखोंका आशय केवल मनोरञ्जन करना ही हो अथवा यदि लेख उत्तम हो, और नाम केवल इस कारण छिपाया जा रहा हो कि लेखक महाशय कीर्त्ति नहीं चाहते, तब तो ठीक है; परन्तु यदि लेखक अपना नाम न देकर आपत्ति-जनक लेख लिखनेका अवसर पा जाता है तब यह निन्दनीय है। ऐसी दशामें सम्पादकका यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह लेखकसे अपना नाम देनेके लिए कहे। पुस्तकोंके विषयमें भी यही बात कही जा सकती है। अकसर किताबें लिखी किसीकी होती हैं और छपती किसी औरके नामसे हैं। ऐसा होनेमें लेखक समझता है कि उत्तरदायित्व उसपर तो आनेवाला है ही नहीं।

हमारे देशमें इस समय सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि हम राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नोंपर निरपेक्ष भावसे विचार करें। देशकी साधारण स्थितिमें जब कि वह सम्पन्न हो और सुखी हो दल बन्दी आदिके कारण उत्पन्न होनेवाली सत्यके प्रति उदासीनता सहन की जा सकती है, परन्तु संकटके समयमें तो यह बात अल्पांशमें भी सही नहीं जा सकती है। आज कल हम जो विचार करें वह किसी प्रकार ऐसा न हो जिसपर हमारे वंश, दल, स्वार्थ आदिकी थोड़ी भी छाप लगी हो। असहयोग आन्दोलनमें ही मैंने यह बात भी देखी कि अमुक व्यक्ति उसका इस कारण विरोध कर रहा है कि वह जमींदार है, अथवा इस कारण कि उस मतसे उसके किसी स्वार्थपर धक्का पहुँचनेवाला है। आज कल हमारे जीवन मरणका प्रश्न हमारे सामने उपस्थित है। हमारे विचारकी शुद्धतापर भावी भारतीय सन्तानोंका कल्याण निर्भर है। हमारा धर्म्म है कि विचार-कर्त्ताका मार्ग परिष्कृत करें और स्वयं निस्स्वार्थ भावसे विचारकी सृष्टिमें तत्पर हों। विचार-संगठनके ठीक होनेपर ही भारतका भावी सुख निर्भर है।

—गिरिजादत्त शुक्ल।

चलनेमें कितनी पेशियां हिलती हैं ?

ज़मीन परसे पैर उठा कर फिर रखनेमें लग भग आधा सैकण्ड लगता है, परन्तु इस क्रियामें और इतने सूक्ष्म समयमें ५४ पेशियां, पट्ठे, गति करती हैं।
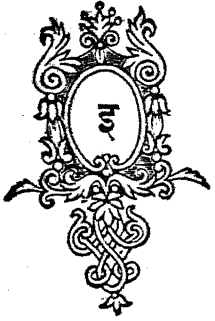
रेंड़ीका पेड़

इन प्रान्तोंमें रेंडीकी खेती अलग नहीं की जाती। ज्वार या बाजरा और अरहरके साथ रेंडी भी मिलाकर कहीं कहीं बो दी जाती है। ज्वार तो पहले काट ली जाती है और अरहर तथा रेंडीके पेड़ चैत बैशाख तक हरे रहते हैं। जब हरी घास मुश्किलसे मिलती है तब रेंडीके पत्ते गाय बैल बड़े चावसे खाते हैं। दूध देनेवाली गाय भैंस इसे खाकर अच्छा दूध देती हैं। रेंडीके पत्तेको गरम करके बांधनेसे बदनका दर्द और सूजन अच्छी हो जाती है। रेंडीको तोड़कर उसकी मींगी निकाल लेते हैं, फिर इसको पानीमें उबालते हैं, जिससे तेल ऊपर उठ आता है। यह तेल दिया जलानेके काममें आता है। इसके तेलमें धुआं कम होता है और बहुत मंद जलता है। कुछ लोग इसी तेलके प्रकाशमें पुस्तक पढ़ते हैं। रेंडीका उपयोग वैद्य लोग भी करते हैं। द्रव्य गुणमें रेंडीके इतने लाभ लिखे हुए हैं:—वात, उदावर्त, कफ, ज्वर, काश, उदर, शोथ, शूल, श्वास, आनाह, कुष्ठ, ब्रध्न, गुल्म, प्लीहा, आम, पित्त, प्रमेह, उष्णता, वातरक्त, मेदोदोष, अन्त्रवृद्धि, एवं कमर, वस्ति (पेडू) और शिरकी वेदना नाश करता है।

एरंडका पत्ता वायु, कफ, कृमि, और मूत्रकृच्छ्रको नाश करता तथा रक्त पित्तको उभाड़ता है। एरंडकी फुनगी (कोमलपत्ते) गुल्म, पेडूका दर्द, कफ, वायु, कृमि तथा सातों प्रकारके वृद्धि रोगको नाश करता है।

एरंडका फल अत्यन्त उष्णवीर्य, कटुरस, अग्नि दीपक और वायु, गुल्म, शूल, यकृत, प्लीहा, जठर और बवासीरके रोगको नाश करता है।

रेंडीकी मींगी मल भेदक और वायु, कफ और जठर रोगको नाश करती है। रेंडीका तेल देहाती आदमी जूता नरम करनेके लिए लगाते हैं।

आजकलके डाक्टरोंकी भी राय है कि रेंडीका शुद्ध तेल बहुत अच्छा रेचक है; परन्तु जो तेल साधारण रीतिसे देहातमें बनता है उसमें एक प्रकारका विष होनेके कारण दवाके काममें नहीं आ सकता। दवाके लिए तेलको शुद्ध करना पड़ता है, जिसकी रीति शायद यहांवाले नहीं जानते नहीं तो छटांक भर तेलकी शीशी बाजारमें ६ आनेको नहीं मिलती। रेंडीका तेल रेचक ही नहीं है। इसमें कई अद्भुत गुण हैं, जिनका वर्णन दिसम्बरके माडर्न रिव्यूके आधार पर यह है:—

रेंडीके तेलका परिचय प्रायः बहुत से लोगोंको है। वह जानते हैं कि यह अच्छा रेचक है; परन्तु इसमें एक प्रकारकी हीक आती है, जिससे लड़के इसको पीना पसंद नहीं करते। इस हीकको रोकने के लिए कई तरकीबें की गयीं। अमेरिकाके एक डाक्टर किंग कहते हैं कि इसको एक प्रकारका संस्कार देकर बहुत स्वादिष्ट बनाया जा सकता है। यदि इसकी खुराक आधपाव अच्छे दूधमें कई मिनट तक उबाल डाली जाय और उसमें थोड़ी मिश्री छोड़कर जरासा दारचीनीका इत्र या और कोई सुगन्धित इत्र छोड़ दिया जाय तो इसके खानेमें रेंडीके तेलकी हीक तनिक भी नहीं आती; पर गुण वैसा ही होता है, जिससे खानेवालेको जरा भी तकलीफ नहीं होती।

रेंडीका तेल उत्तम श्रेणीका तेल नहीं समझा जाता; परन्तु इसमें गुण ऐसे होते हैं कि यह सारे वानस्पतिक तेलोंसे एक प्रकारकी विशेषता रखता है। इसका व्यापारिक व्यवहार दिन दिन बढ़ता ही जाता है। यंत्रोंकी रगड़ कम करनेके लिए किसी न किसी तेलके चुपड़नेकी आवश्यकता पड़ती है और यह देखा गया है कि अन्य वानस्पतिक तथा खनिज तेलोंकी अपेक्षा रेंडीका तेल इतना लसदार होता है कि गरमी सरदीके घटने बढ़नेसे भी इसके लसमें बहुत अन्तर नहीं पड़ता, जिससे यह बहकर अलग नहीं हो सकता। इस कारण गरम देशोंमें भारी भारी यंत्रोंकी रगड़ कम

करनेके लिए यही तेल काममें लाया जाता है, यद्यपि खनिज तेल बड़ी उच्च कोटिके आजकल बनाये जाते हैं। गैस-एंजिनमें तो इसके विना काम ही नहीं चलता है। सब तरह के हवाई जहाजोंके एंजिनमें भी इसीका प्रयोग किया जाता है। इस तेलको सेलूलोज नाइट्रेटके साथ किसी उड़नेवाले घोलकमें घोलकर नकली चमड़ा बनाते हैं। जो चीज बनती है वह इस तेलसे नरम और लचीली हो जाती है, जिससे यह सहज ही कपड़े या किसी और चीज पर तहकी तह चुपड़ी जा सकती है। यह नकली चमड़ा आजकल बड़े काममें आता है। इससे कुरसी, सोफा इत्यादिके गद्दे, गाड़ियोंकी छतें, मोटरकारकी कई चीजें, ट्रंक, बूट, जूते, जिल्दबन्दी तथा कई अन्य प्रकारकी चीज़ें जो लेडियोंको अधिक पसंद होती हैं बनायी जाती हैं।

इतना ही नहीं चमड़ेके व्यापारी भी इस तेलका घोलककी तरह तथा चुपड़नेके लिए बहुत प्रयोग करते हैं। गंधकके साथ कुछ संस्कार करके इससे चमड़ेके व्यापारी वह पट्टियां बनाते हैं जो मशीनोंके घुमानेके काममें आती हैं। पैराफीन, वेसिलीन, मोम या चरवीके साथ मिला कर इससे एक तरहका रोगन तैयार करते हैं। मशीनकी जो पट्टियां नकली चमड़ेसे बनायी जाती हैं वह बहुत पायदार होती हैं। और जल्दी चटखती नहीं है। कहा जाता है कि यदि चमड़ेमें शुद्ध रेंड़ीका तेल चुपड़ दिया जाय; तो उसे चूहे नहीं काटते; जब कि असली चमड़ेकी बनी हुई चीजें वह बड़े चावसे कुतर देते हैं। यदि जूतोंमें (देहाती नहीं वरन अङ्गरेजी दूकानोंके बने हुए बूट और शू) नियमानुसार लगाया जाय तो साधारणतः जितना चलते हैं उससे दूने नहीं वरन और अधिक समय तक चलें और वाटर प्रूफ हो जांय। इससे एक फायदा और हो कि ऐसे जूतोंको कुत्ते या पिल्ले भी नहीं छूते।

रेंडीका तेल और भी कई प्रकारके व्यापारमें काम आता है। फर्श पर बिछानेके लिए अलसीके तेल, गंधक हरिद इत्यादिको कार्क नामक लकड़ीके बुरादेमें मिलाकर किरमिच पर फैला देते हैं जिसे लिनोलियम कहते हैं, यह फर्श पर बिछानेके काममें आता है। यदि इसमें रेंडीका तेल भी मिला दें तो लिनोलियम कड़ा और लचीला हो जाता है। गंधकके एक प्रकारके संस्कारसे रेंडीका तेल कई अन्य पदार्थोंके साथ मिलानेसे एक प्रकारका लाल रंग तैयार होता है। मोटरोंके टायरको जोड़ने और मरम्मत करनेमें एक प्रकारकी लाखकी वार्निश काममें आती है; जिसमें रेंडीका तेल भी पड़ता है। कपड़ा बनानेवाले भी 'लकड़ीका तेल' (Wood oil) के नामसे रेंडीका तेल ही प्रयोग करते हैं। इससे बने हुए साबुन भी बहुत काम देते हैं। इन दोनों चीजोंसे ऊनकी चर्बी साफ की जाती है। मक्खी मारनेके लिए जो कागज बाजारमें मिलता है (Fly paper) उसके बनानेमें भी इस तेलकी आवश्यकता पड़ती है।

लैम्प आइलके नामसे जो तेल बिकता है वह रेंडीसे ही तैयार किया जाता है। इससे बड़ी किफायत होती है, क्योंकि यह धीरे धीरे जलता है; स्वच्छ प्रकाश देता है और धुँआ कम देता है और चूँकि यह ऊँचे तापक्रम पर भभकता है इसलिए इससे इतनी गरमी नहीं उत्पन्न होती कि जानको जोखिम हो। किसी समय 'लैम्प आइल' का ही रेलगाड़ियोंमें प्रकाशके लिए प्रयोग किया जाता था और अब भी इस कामके लिए इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। बालको चिकना और नरम रखनेके लिए तथा बदनको खूबसूरत बनानेके लिए जितने रोगन बाजारमें बिकते हैं (Pomades and cometics) उन सबमें यह तेल पड़ता है। संक्षेपमें इसका प्रयोग कई प्रकारसे किया जाता है और अमूल्य लाभकी वस्तुएं बनती हैं।

हरी हरी पत्तियां गोरू बड़े चावसे खाते हैं। गायका दूध बढ़ता है।

इतनी उपयोगी चीज भारतवर्षमें बड़ी ही असावधानीसे बोयी जाती है। देहातमें इसका

प्रयोग कई प्रकारसे किया जाता है। शहरोंमें केवल दिया जलानेके काममें कुछ लोग लाते हैं। कारण इसका यह है कि भारतवासियोंने इसका तेल उत्तम रीतिसे निकालनेके लिए कोई यत्न नहीं किया। इससे कला कौशलकी जितनी वस्तुएं तैयारकी जाती हैं वह यहां तभी बन सकती हैं जब कि रासायनिक पदार्थोंका प्रयोग व्यापारिक ढंगसे किया जाय, जिसके लिए रसायन विज्ञानवेत्ताओं- को व्यापारिक रीतिसे काम करना होगा और व्यापारियोंको बाहरी चीजोंकी दलाली न करके यहां के कच्चे मालसे ही, विज्ञानवेत्ताओंकी सहा- यतासे, नयी नयी चीजोंकी खोज करानी होगी।

—महावीर प्रसाद श्री वास्तव

दीमक
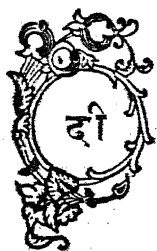
दीमक शिरालपक्ष वर्गका प्राणी है। शिराल-पक्ष वर्गके पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुए प्राणीके चार पंख होते हैं। पंख कुछ सकड़े होते हैं और उन पर नसें भी होती हैं। इस वर्गमें बहुत कम कीड़े हैं। परन्तु उनका आयुष्य-क्रम भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। इस वर्गके कुछ प्राणियोंका आयुष्य क्रम टिड्डीके आयुष्य क्रमसे मिलता जुलता है और कुछका आयुष्य क्रम पतंगके आयुष्यक्रमका सा होता है। इस वर्गके प्राणी भोजन चबाकर खाते हैं। हम इस वर्गके कुछ कीड़े दीमक, अजगर मक्खी, चोकीड़ा और मे-मक्खी, पर ही विचार करेंगे।

दीमकको सभी लोग जानते हैं। इसका अँगरेजी नाम 'ह्वाइट ऐंट' है। इस शब्दका अर्थ है सफेद चींटी। तथापि कीटक शास्त्र की दृष्टिसे दीमक और चींटी भिन्न भिन्न वर्गके प्राणी हैं और दोनोंके आयुष्य क्रममें कुछ भी साम्य नहीं है। शायद शरीरका रंग सफेद होनेसे ही इसे यह नाम दिया गया हो।

अफ्रीका और अमेरिकामें दीमक बहुत होती है। यूरोपके भी कुछ देशोंमें यह पाई जाती है। संभवतः अफ्रीका और अमेरिकासे ही यह प्राणी यूरोप गया हो। भारतवर्षमें भी दीमक बहुत पाई जाती है। कह नहीं सकते कि भारतवर्षमें भी दीमक अमेरिका और अफ्रीकासे ही आई है या नहीं।

दीमकके छत्तेमें तीन चार प्रकारके प्राणी पाये जाते हैं—नर, मादा और मजदूर। मज़दूर दीमकके दो भेद होते हैं। कुछ मज़दूरोंका आकार स्त्री जाति- की दीमकके समान होता है, किन्तु उनके सन्तति नहीं होती। इनके पंख भी नहीं होते। यही असली मज़दूर हैं। छत्तेकी दुरुस्ती करना, नवीन छत्ता बनाना और अंडोंकी व्यवस्था करनेका काम इनके ज़िम्मे रहता है। दूसरे प्रकारके मज़दूर नर दीमकसे मिलते जुलते होते हैं। इनका सर पहले प्रकारके मज़दूरोंके सरसे बड़ा होता है और यह हृष्ट पुष्ट भी होते हैं। छत्तेकी रक्षाका भार इन्हींके ज़िम्मे रहता है और यही कारण है कि इन्हें सैनिक कहते हैं। छत्तेको ज़रासा धक्का लगते ही सैनिक मुँह फाड़ कर बाहर दौड़ आते हैं। डर किसे कहते हैं यह तो वह जानते ही नहीं। वह साहस पूर्वक शत्रु- पर आक्रमण कर उसे नोच डालते हैं। छत्तेके टूट जाने पर वह मज़दूरोंको बुलाकर उसकी दुरुस्ती करवाते हैं और जब तक काम जारी रहता है, मज़दूरोंकी रक्षाके लिए वहीं डटे रहते हैं। मज़दूर और सैनिक दीमकके आंखें नहीं होतीं। बड़े आश्चर्यकी बात है कि वह बिना आंखोंके छत्तेके टूटे भागको किस प्रकार देख पाते हैं! इस प्रश्नका समाधान कारक उत्तर आजतक नहीं मिला है।

भारतवर्ष और अन्य देशोंकी दीमकका जीवन- क्रम करीब करीब एकसा है। और यही कारण है कि भारतीय दीमक पर यहां कुछ नहीं लिखा गया है। अफ्रीकामें दीमककी अनेक जातियां हैं। हर एक जातिमें कुछ न कुछ विशेषता रहती है। अफ्रीकाकी एक जातिकी दीमकका वृत्तान्त पाठकों- के मनोरंजनार्थ नीचे दिया जाता है।

मज़दूर दीमककी लम्बाई ½ इंच होती है। उसका शरीर बहुत नाज़ुक होता है, किन्तु मुख बड़ा मजबूत होता है। अतएव वह कठिन पदार्थों को भी चबा डालती हैं, सैनिक दीमक मज़दूरसे दूनी बड़ी होती हैं। एक सैनिकका वज़न १५ मज़दूरोंके वजनके बराबर होता है। सैनिकका मुख बहुत ही मज़बूत होता है। शरीरके मानसे उनका सर ज्यादा बड़ा होता है। इनके दो स्पर्शेन्द्रिय होती हैं। नर करीब ½ इञ्च लम्बा होता है। सैनिक और मज़दूरकी अपेक्षा नर अधिक बड़ा होता है। एक नरका वज़न दो सैनिकोंके वज़नके बराबर होता है। फिर भी मादाके आगे नर बहुत ही छोटा नज़र आता है। गर्भवती मादाका पेट शरीर के अन्य भागसे हज़ार गुना बड़ा होता है। मादा छः इञ्च तक लम्बी होती है।

रानी चींटीकी तरह रानी दीमक भी पूर्णावस्था प्राप्त होते ही हवामें उड़ जाती है। हवामें ही नरके संयोगसे वह गर्भवती होती है। गर्भाधान होते ही वह छत्तेमें लौट आती है और तब पंख उखाड़ कर फेंक देती है। ज्यों ज्यों गर्भ बड़ा होता जाता है रानीका पेट बढ़ने लगता है। पेटके बढ़ जानेपर मादा हिलडोल भी नहीं सकती। वह एक ही स्थान पर बैठकर अपना सब व्यवहार चलाती है। रानीको भोजन कराना, अण्डोंकी व्यवस्था करना, आदि छत्तेमेंका सब काम मज़दूरोंको ही करना पड़ता है। रानी एक ही स्थान पर पड़ी पड़ी अण्डे देती रहती है। अण्डे देनेके सिवा उसे दूसरा काम ही नहीं रहता। साधारणतया वह एक दिनमें ६०-८० हज़ार अण्डे देती है। यदि प्रकृतिमाताने साम्य बनाये रखनेकी व्यवस्था न की होती, तो सारा संसार दीमकसे भर जाता। दीमकके असंख्य शत्रु हैं। पक्षी उसे बड़े चावसे खाते हैं। अफ्रीकाके हवशी भी दीमक खाते हैं। वह लोग छत्तेके चारों ओर नाली खोद कर उसमें पानी भर देते हैं। और तब दूर खड़े होकर छत्ते पर लाठियाँ मारते हैं। दीमक छत्तेमें से निकल कर पानीमें गिर पड़ती हैं। हवशी इन्हें अंजुलि भर भर कर खाते हैं। दीमकको आटेमें मिला कर रोटी भी बनाते हैं। अफ्रीकामें जाने पर यूरोप-वासी भी दीमक खाना सीख गये हैं। कुछ देशोंके लोग दीमकको चिलममें भर कर तमाखू की तरह पीते हैं।

अफ्रीकामें दीमकका छत्ता कुछ तो जमीनके अन्दर होता है और कुछ बाहर। रानी जमीनके ऊपरके भागमें रहती है। रानी एक कमरेमें रखी जाती है। इस कमरेमें कई छोटे छोटे दरवाजे बने रहते हैं। दरवाजे इतने छोटे बनाये जाते हैं कि रानी बाहर न निकल सके। रानीके महलके चारों ओर छोटे छोटे कमरे बनाये जाते हैं। इनमें सैनिक रहते हैं। पास ही अण्डे रखनेके तहखाने भी होते हैं। अफ्रीकामें छत्ते १०-१२ फुट ऊंचे होते हैं। जानसन नामक एक प्रवासीने एक स्थान पर २० फुट ऊंचा छत्ता देखा था। दीमक के छत्ते बहुत मजबूत होते हैं। कहीं कहीं तो दीवारें १५ इञ्च तक चौड़ी होती हैं। वह चट्टानोंके समान कड़ी और मजबूत होती हैं। जंगली भैंसोंके ऊपर खड़े हो जाने पर भी छत्ता नहीं टूटता।

दीमक लकड़ीका सामान, पुस्तक आदि खा कर नष्ट कर डालती है। उसके खानेकी रीति भी बड़ी विचित्र है। वह लकड़ीके भीतर घुस जाती है और तब भीतर ही भीतर उसे खाती रहती है। बाहर से तो लकड़ी ज्योंकी त्यों नजर आती है, किन्तु जरा सा धक्का लगते ही सब चूर चूर हो जाती है। पुस्तकोंकी जिल्द भी वह इसी तरह से खाती है। आज तक अरबों रुपयेका सामान दीमक ने नष्ट कर डाला है। लाखों अमूल्य और दुर्लभ ग्रन्थ इसने खा डाले हैं। दीमकके कारण मानव समाजको प्रति वर्ष करोड़ों रुपयेका नुक़सान उठाना पड़ता है।

एक बार घरमें घुस जानेपर दीमकसे सामान की रक्षा करना असंभव हो जाता है। थोड़े ही दिनोंमें वह मकानको ज़मीं-दोज़ कर देती है। आज

तक हजारों उपाय काममें लाये गये हैं, किन्तु अभी तक एक भी कारगर नहीं हुआ। तारपीनका तेल और सोमलके साबुनसे दीमकका नाश किया जा सकता है, किन्तु यह पदार्थ सब जगह काममें नहीं लाये जा सकते। क्लोरीन गैससे भी दीमक मर जाती है। छत्तेमें क्लोरीन डालनेसे अधिकांश प्राणी मर जाते हैं। सबसे अच्छा उपाय तो यह है कि छत्ता खोदकर 'रानी' मारडाली जाय। जब तक रानी नष्ट न की जायगी मजदूरों और सैनिकों के मारनेसे कुछ भी लाभ न होगा। कभी कभी रानी जमीनके अन्दर बहुत गहराई पर रहती है। अतएव उसे ढूंढ निकालनेमें बड़ी दिक्कत उठानी पड़ती है। यदि मकानमें दीमक लग जाय तो फर्श बंदी कर देना चाहिये; क्योंकि मट्टीकी सहायताके बिना दीमक एक स्थानसे दूसरे स्थानको जा ही नहीं सकती। थोड़ो दूर जानेके लिए वह आस पासकी मट्टी इकट्ठीकर उसे चिपका देती है और तब मट्टीके अन्दर ही अन्दर आगे बढ़ती है। रोज़ झाड़ू देते रहनेसे मट्टी फर्श परसे निकल जाती है; जिससे उसका ज्यादा जोर नहीं चलता।

अजगर मक्खी (Dragon fly)

तालाबों और नदी तट पर बड़े पंख और लम्बे पेटवाले प्राणी उड़ा करते हैं। हमारे अधिकांश पाठकोंने इस प्राणीको अवश्य ही देखा होगा। हम नहीं जानते कि इस प्राणीको क्या नाम दिया गया है और यही कारण है कि हमने अंगरेजी नामके आधार पर ही यह नाम दिया है। अंगरेजीमें इसे हार्सस्टिंगर्स (घोड़ेको काटने वाली) भी कहते हैं। परन्तु यह नाम सार्थक नहीं; कारण कि इस कीड़ेके डंक ही नहीं होता, तब भला यह घोड़ेको ही क्या, किसी प्राणीको, कैसे काट सकती है!

यह प्राणी पानीके आस पास बहुत पाया जाता है। इसका पेट लम्बा होता है। पेटकी लम्बाई सिर और छातीकी लम्बाईसे पंचगुनी होती है। कीड़ेके चार लम्बे लम्बे पंख होते हैं। पंखों पर नसें भी रहती हैं। शांत बैठे रहने पर भी इसके पंख फैले रहते हैं। यह प्राणी उड़ते हुए भक्ष्यका पीछा कर उसे पकड़ लेता है।

अजगर मक्खी कई प्रकारकी होती हैं। भिन्न भिन्न जातिके प्राणीका स्वरूप भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। नारंगी रंगकी अजगर मक्खी बड़ी मनोहर मालूम होती है। इस प्राणीका रंग सजीवावस्थामें ही रहता है। मरने पर रंग बदल कर काला हो जाता है। एक और जातिकी अजगर मक्खी है, जिसके दो पंख हरे होते हैं। यह भी बहुत ही खूबसूरत दीखती है।

इस प्राणीकी कीटावस्था जलमें ही बीतती है। डांसकी तरह सर्प मक्खी भी अपने अण्डे जलमें रखती है। अण्डेमें से निकला हुआ कीड़ा भी पानीमें ही रहता है; इस कीड़ेका नीचेका ओष्ठ बहुत लम्बा होता है। भक्ष्य प्राप्त करनेमें यह ओष्ठ कीड़ेको बहुत मदद पहुँचाता है। कीड़ा अपनी इच्छानुसार ओष्ठको लम्बा कर सकता या सिकोड़ सकता है। कीड़ा जलाशयकी तलीमें कंकड़ पत्थर के पास दबकर बैठा रहता है। एक आध कीड़ेके पास आते ही यह यमराजकी तरह एक दम उस पर टूट पड़ता है। और तब अपने लम्बे ओंठसे उसे खींच कर हड़प कर जाता है। कीड़ेके इस लम्बे ओंठको अंगरेज़ीमें मास्क (mask) कहते हैं।

भक्ष्य प्राप्तिके लिए परमेश्वरने इस प्राणीको एक और साधन दिया है। इस साधनकी मददसे प्राणी तीन फुटकी दूरी पर जानेवाले कीड़ेको कूदकर पकड़ सकता है। कीड़ेके पेटमें कुछ भाग पोला होता है। जिसमें पानी भरा रहता है। इस प्राणीमें के आक्सीजनको कीड़ा अलग कर सकता है। इसी आक्सीजन वायु पर उसकी श्वासोच्छ्वासकी क्रिया चलती है। पेटमें भरे हुए पानी

का आक्सीजन वायु खतम हो जाने पर कीड़ा उसे बाहर फेंक कर नया भर लेता है। यह क्रिया हमेशा जारी रहती है। पेटमें के पोले भागमें भरे हुए पानीका मुख्य उपयोग श्वासोच्छ्वास ही है। किन्तु एक आध बार तीन फुटकी दूरी परका कीड़ा पकड़नेकी इच्छा होने पर प्राणी इस पोले भागमें भरे हुए पानीका उपयोग करता है। वह पेटमें का पानी शरीरके पीछेके द्वार द्वारा बड़े ज़ोर से बाहर फेंकता है। इसके प्रत्याघातसे इस प्राणी-का शरीर बड़े वेगसे विरुद्ध दिशामें, मुखकी ओर-को, फेंका जाता है। और वह एक दम शिकार की छाती पर जा बैठता है।

किन्तु कीड़ा इस साधनका उपयोग हमेशा नहीं करता। तीन चार दिन तक खानेको न मिलने पर ही कीड़ा इस युक्तिका उपयोग करता है। परन्तु ओठको वह हमेशा काममें लाता है।

यह कीड़े नदी और तालाबोंमें पाये जाते हैं। परन्तु किनारेके पास ही पास रहते हैं। किनारेके पासके जलमें जाल डालनेसे बहुत से कीड़े सहज-में ही पकड़े जा सकते हैं।

कीटावस्था समाप्त होने पर कीड़ेकी कोशावस्था का प्रारंभ होता है। कोशावस्थामें अजगरमक्खीके पंख निकल आते हैं। कोशावस्था समाप्त होने पर प्राणी जलके बाहर निकल आता है और तब उस-में से पूर्ण बाढ़को पहुँचा हुआ प्राणी निकल कर इधर उधर उड़ने लगता है।

चोर कीड़ा (Ant lion)

पूर्णावस्था प्राप्त कीड़ेके पंख नहीं होते। इसका पेट कुछ लम्बा होता है। पूर्ण बाढ़को पहुँचे हुए कीड़ेमें कुछ भी विशेष गुण नहीं होता। किन्तु कीटावस्थामें भक्ष्य प्राप्त करनेकी रीति बड़ी आश्चर्योत्पादक है। कीटावस्थामें इस प्राणीके सबसे पीछेके पैर बहुत ही छोटे होते हैं। अतएव वह आगे चल ही नहीं सकता। पीछेकी ओर सरकता हुआ पीछेको जाता है। और यही कारण है कि किसी प्राणीका पीछा करना इसके लिए एक दम असम्भव है।

यह प्राणी ऐसे स्थान पर रहता है जहां मनुष्य और पशुका आना जाना बहुत ही कम हो और जहां धूल बहुत ही ज्यादा हो। कीड़ा एक वर्तुला-कार घर बनाता है। इस घरका मुख ऊपरसे बहुत ही चौड़ा और नीचेकी ओरको बहुत ही सकड़ा होता है। घरके सकड़े भागमें कीड़ा दबकर बैठा रहता है। एक आध चींटी या अन्य कीड़े मकोड़े-के आनेकी खबर पाते ही यह ज़ोरसे धूल उड़ाता है। अचानक इस संकटमें आ फंसनेके कारण कीड़े आदि प्राणी घबरा कर घरके नीचेकी तरफ लुढ़क जाते हैं और सीधे चोर कीड़ेके मुंहमें चले जाते हैं। भक्ष्यको खाकर वह अपने छिद्रकी मरम्मत कर पुनः पूर्ववत् बैठ जाता है।

अधिकतर चींटियां ही इसके चंगुलमें फंसती है और इसीलिए इसे अंगरेजीमें ant lion चींटी-का शेर कहते हैं। भारतवर्षमें यह कीड़े बहुत पाये जाते हैं। चोरकी तरह छिपकर बैठनेके कारण ही इसे यह नाम दिया गया है।

मेफ्लाय (mayfly)

मई मासके लगभग इस प्राणी की उत्पत्ति होती है और इसीसे इसे 'मेफ्लाय' नाम दिया गया है। इसका रंग कुछ मैला सफेद होता है एवं पंख शुभ्र रंगके होते हैं। बर-सातके प्रारंभमें शामके वक्त यह कीड़े दीयेके पास बहुत इकट्ठे हो जाते हैं। जब तक पंख हिलते रहते हैं तब तक कीड़ा उड़ता रहता है। पंखका हिलना बन्द होते ही कीड़ा

जमीन पर गिर पड़ता है। इसका शरीर बहुत नाजुक होता है। जरा सा धक्का लगते ही पंख गिर पड़ते हैं। इस प्राणीके पेटके सिरे पर दो तीन बाल होते हैं, जो रेशमके समान नरम होते हैं। अभी तक यह पता नहीं लगा कि यह बाल कीड़के किस काम आते हैं।

पूर्णावस्था प्राप्त होने पर कीड़ा कुछ नहीं खाता। कोशमें से निकलते ही वह हवामें उड़ने लगते हैं। उसी रोज़ संयोग हो गर्भाधान हो जाता है। दूसरे रोज़ सूर्योदय होनेके पहले अण्डे रख कर मादा और नर मर भी जाते हैं। पूरे २४ घंटे भी बेचारे जिंदा नहीं रहते।

पूर्णावस्थामें कीड़ेकी उम्र बहुत ही थोड़ी होती है, तथापि कीटावस्थामें वह बहुत लम्बे समय तक जिंदा रहता है। मादा अण्डोंकी थैली रखती है। अण्डेमें से निकला हुआ प्राणी तीन वर्ष तक कीटावस्थामें रहता है। तीन वर्ष बाद कोशावस्था प्रारंभ होती है और क्षणिक विषय सुखोपभोगके लिए बेचारा प्राणी कोशसे बाहर निकलता है।

जुगनू

जुगनू कोश-पक्ष-वर्ग (Colioptera) का प्राणी है। पाश्चात्य देशोंके संग्रहालयोंमें कोश पक्ष वर्गकी करीब एक लाख जातियोंके प्राणी रखे हैं। अभी अनुसंधान किये जा रहे हैं। अतएव संभव है यह संख्या और भी बढ़ जाय।

कोश-पक्ष-वर्गके प्राणीके चार पंख होते हैं। आगेके पंख मोटे और निरुपयोगी होते हैं। उनका रंग भी जुदा जुदा होता है। पीछेके पंख उड़नेके काममें आते हैं। वह आगेके पंखके नीचे ढके रहते हैं। इस वर्गके कीड़ेका मुख मजबूत होता है और वह भोजन चबाकर खाते हैं। प्रत्येक स्थित्यन्तरमें कीड़ेके स्वरूपमें फर्क पड़ता है; इस वर्गके कीड़े कीटावस्थामें बहुत लम्बे समय तक रहते हैं। इस वर्गकी भिन्न भिन्न जातिके कीड़ोंका आहार व्यवहार जुदे जुदे प्रकारका होता है। यह प्राणी चींटीके समान बुद्धिमान तो नहीं होते किन्तु मानव जातिका इनसे बहुत भला होता है। इस वर्गके हजारों प्राणी सड़े गले पदार्थों पर जीवन निर्वाह करते हैं; अतएव मानव प्राणीकी रोगोंसे रक्षा होती है। इस वर्गमें ऐसे भी प्राणी हैं जो कोठारोंमें भरे हुए अनाज और खेतमें खड़ी फसल* को नष्ट कर डालते हैं।

इस पुस्तकमें इस वर्गके चार पाँच कीड़ोंपर ही विचार किया जायगा। सबसे पहले हम जुगनू पर विचार करेंगे।

मेघदूतमें जुगनूके सम्बन्धमें लिखा है—

खद्योतालो विलसित निभां विद्युदुन्मेष दृष्टिं।

जुगनूके पंख नाजुक होते हैं। पूर्ण बाढ़को पहुँचा हुआ प्राणी लतादि पर रहता है। इसके शरीरमें से एक प्रकारका प्रकाश निकलता है। जिससे अंधेरी रातमें वृक्ष ऐसे मनोहर मालूम होते हैं मानों हीरोंकी प्रभासे देदीप्यमान हो रहे हैं। यह प्राणी अपनी इच्छानुसार प्रकाश कम ज्यादा कर सकता है।

मादाके शरीरमें से ही प्रकाश निकलता है। भिन्न भिन्न जातिके जुगनूके शरीरके भिन्न भिन्न भागसे प्रकाश निकलता है। भारतीय खद्योतके प्रकाशका स्थान उसके गुदद्वारके पास है। अभी तक इस बातका पता नहीं चला है कि यह प्रकाश कैसे उत्पन्न होता है। कुछ विद्वानोंका अनुमान है कि प्राणीके शरीरमें से एक प्रकारकी गैस निकलती है जिसका वातावरणमें के आँक्सीजनसे संयोग होनेके कारण प्रकाश बन जाता है। परन्तु इस गैसके संबन्धमें अभी तक निश्चयात्मक कुछ

---

* 'फसलके शत्रु' नामक पुस्तकमें इन कीड़ों पर विचार किया गया है। —लेखक

नहीं कहा जा सकता। प्रयोगोंसे पता चला है कि जहां आक्सीजन ज्यादा होती है वहाँ प्रकाश भी ज़्यादा तेज़ होता है। जिस वायुमें दहन क्रिया बिलकुल नहीं होती—अर्थात् आक्सीजनका एक दम अभाव होता है, वहाँ प्रकाश भी नहीं होता। जुगनूका प्रकाश कुछ हरा होता है।

ऊपर लिख आये हैं कि मादाके शरीरमें से ही प्रकाश निकलता है। नर प्रकाश नहीं देता। इस प्रकाशसे ही नर मादाकी ओर आकर्षित होता है और तब उसे प्रसन्न करनेके लिए भाँति भांतिकी चेष्टाएं करता है।

यूरोप देशमें मादा जुगनूके पंख नहीं होते। कीटावस्थामें मादाके शरीरमें से कम प्रकाश निकलता है। पूर्ण बाढ़ हो जाने पर उसका शरीर बड़ा हो जाता है और प्रकाश भी अधिक निकलने लगता है। नरके पंख होते हैं और वह उड़ता है।

कुछ जातियोंमें मादाके समान नरके भी पंख होते हैं। परन्तु जुगनूकी कुछ जातियां ऐसी भी हैं, जिनमें नर और मादा दोनोंके ही पंख नहीं होते।

अधिकांश जातिके जुगनुओंका रंग पीली झाईं युत ऊदी होता है। वह अन्य कीड़ों पर निर्वाह करते हैं।

कुकुयो

मेरिकामें एक प्रकारके कीड़े निकलते हैं; जिनके शरीरमें से प्रकाश निकलता है। कीटक शास्त्रमें इस कीड़ेको पायरोफोरी (Pyrophori) कहते हैं। अमेरिकामें रहनेवाले स्पैनिश लोग इसे 'कुकुयो' कहते हैं। कुकुयोकी छातीके पास दो छोटी छोटी गांठें होती हैं। इन्हींमेंसे प्रकाश निकलता है। इसके पेटमेंसे भी प्रकाश निकलता है। किन्तु बहुत कम। संभवतः यह प्रकाश भी कीड़ेके शरीर में से निकलनेवाली गैसकी बदौलत ही प्राप्त होता होगा! अमेरिकाके ब्राज़िल, मेक्सिको, गायना आदि कुछ देशोंमें पाये जानेवाले कीड़ोंका प्रकाश इतना तेज होता है कि उसकी सहायतासे साधारण मोटे अक्षरोंमें लिखी हुई पुस्तक बांची जा सकती है। एक बार कुकुयोने स्पेनिश लोगोंको डरा दिया था। इस सम्बन्धमें एक स्थान पर लिखा हैः—

"एक बार स्पेनिश लोगोंने अमेरिकाके आदिम निवासियों पर चढ़ाई की। सेना शामके वक्त इंडियन लोगोंके (अमेरिकाके आदिम निवासी इसी नामसे पुकारे जाते हैं) निवास स्थानके पास पहुँची। उनका विचार रातको छापा मारनेका था। कुछ अँधेरा होते ही चारों ओर 'कुकुयो' उड़ने लगे। स्पेनिश लोगोंने 'कुकुयो' पहले कभी नहीं देखा था। प्रकाशमय प्राणीको इधर उधर उड़ते देखकर उन लोगोंको यह भ्रम होगया कि इण्डियन लोग बन्दूकके तोड़े सुलगा कर हमलेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह डरगये और रातको छापा मारनेकी उन्हें हिम्मत न हुई। दूसरे दिन उन्हें भयका सच्चा कारण विदित हुआ।

एम. मिचिलेट नामक एक अमेरिकन विद्वान कुकुयोके सम्बन्धमें लिखते हैंः—

"उन्हालेमें इस देशमें बहुत ज्याद गरमी पड़ती है। इसलिए लोग रातको ही प्रवास करते हैं। जंगल ज़्यादा होनेसे हिंस्र पशुओंकी भी कमी नहीं है। यदि कुकुयो न होते तो रातको प्रवास करना कठिन हो जाता। रास्तेमें चलते समय हज़ारों—'कुकुयो' इधर उधर उड़ते हुए पाये जाते हैं। रास्तेके दोनों ओरके वृक्षों पर भी यह बैठे रहते हैं। इनके प्रकाशसे रास्ता साफ नजर आता है। कई लोग प्रवासमें कुकुयो अपने साथ रखते हैं। वह उन्हें आलपीनसे अपने जूते पर लगा देते हैं, जिससे रास्ता दीख जाता है और सर्प आदि डर कर भाग जाते हैं। सवेरा होने पर कीड़ा छोड़ दिया जाता है। छुटकारा पाते ही वह उड़-

कर वृक्ष पर जा बैठता है। क्रियोली प्रान्तकी स्त्रियां कुकुयोसे अपना शरीर सुशोभित करती हैं इस रत्नसे उनका सौन्दर्य खूब बढ़ जाता है। यह रत्न सजीव हैं। अतएव निर्जीव रत्नकी तरह वह पेटीमें नहीं रखा जा सकता। इसे खानेको देना पड़ता है, न्हिलाना पड़ता है और जीवित रखनेके लिए उसे बड़ी सावधानीसे रखना पड़ता है उधरकी स्त्रियां इन्हें पकड़कर पिंजरोंमें रखती हैं। और गन्नेके छोटे छोटे टुकड़े खानेको देती हैं। मेक्सिको देशकी स्त्रियां बाहर जानेके समय टुले (tulle) नामक कपड़ेकी थैलियोंमें भरकर इन्हें अपने झंगे पर लटकाती हैं। यह अलंकार एक और रीतिसे भी धारण किया जा सकता है। कुकुयोकी छातीके नीचे महीन चमड़ा होता है। इस चमड़ेमें आलपीन लगाकर मेक्सिकोकी स्त्रियां इस कीड़ेको अपने बालोंमें खोंसती हैं। इन रत्नोंसे उनका केश कलाप बड़ा मनोहर दीखता है। कभी कभी कुकुयोकी मेखला बनाकर पहनी जाती है। प्रकाश कम होजाने पर कीड़ेको न्हिलाते हैं, जिससे प्रकाश पुनः पूर्ववत् हो जाता है।

ग्वालिन (gyrinidae)

इस कीड़ेको तो सभी लोग जानते होंगे। बरसातमें जब गढ़ोंमें बहुत सा पानी भर जाता है तब यह कीड़े गढ़ोंके पानीमें तैरते हुए पाये जाते हैं। यह कीड़ा छोटा और काले रंगका होता है। कुछ गदला पानी ही इन्हें ज्यादा पसंद है। यह कीड़े सीधे नहीं तैरते—सर्पगतिसे तैरते हुए चलते हैं। इसी लिए उन्हें अंगरेज़ीमें ह्विर्लिगिग (whirligis) कहते हैं। यह कीड़े अकेले नहीं रहते; पांच सात मिल कर रहते हैं। ईश्वरने इस कीड़ेकी आंखें इस ढंगसे बनाई हैं कि वह उनसे ऊपर और नीचेकी चीज़ भी भले प्रकार देख सकता है। नीचेकी ओरसे मछलीको आते हुए देखते ही कीड़ा चट ऊपर निकल आता है। ऊपर उड़नेवाले पक्षीको अपनी ओर झपटते हुए देखते ही वह पानीमें डुबकी लगाकर गायब हो जाता है। इसलिए इस कीड़ेको जलदी नहीं पकड़ा जा सकता।

मादा अण्डे देती है। अण्डोंका रंग कुछ कुछ सफेद होता है। कीटावस्था पूरी होने पर, गर्मीके अन्तमें कीड़ा आस पासके वृक्षों पर चढ़ कर कोश बनाता है। एक मास तक कोशावस्थामें रहनेके बाद पूर्ण बाढ़को प्राप्त हुआ कीड़ा बाहर निकल आता है और गढ़ोंमें भरे हुए पानीमें कूद पड़ता है।

ग्वालिनकी कई जातियां हैं। परन्तु किसी जातिका प्राणी क्यों न हो उसका शरीर $\frac{1}{2}$ इंचसे अधिक लम्बा नहीं होता। उष्ण कटिबंधमें कुछ जातिकी ग्वालिन $\frac{3}{4}$ इंच तक लम्बी होती हैं।

काक चैफर (cock chafer)

यह कीड़ा फ्रांस देशमें बहुत पाया जाता है। इनसे फसलको बहुत हानि पहुँचती है। पूर्ण बाढ़को पहुँचा हुआ कीड़ा वृक्षके पत्ते ही खाता है। कीटावस्थामें कीड़ेको बहुत ही ज़्यादा भोजनकी ज़रूरत होती है और इसी अवस्थामें वह खेतके खेत उजाड़ डालता है।

यह कीड़ा अप्रेल मईमें दिखाई देता है; परन्तु जूनमें इसकी संख्या बहुत बढ़ जाती है। पूर्णावस्था प्राप्त प्राणी करीब डेढ़ मास तक जीवित रहता है। तेज़ प्रकाशमें यह बहुत कम बाहर निकलता है। दोपहरमें यह पत्तोंमें छिपा रहता है। सवेरे और शामको ही यह बाहर निकलता है। यह खूब वेगसे उड़ता है। परन्तु यह ज़्यादा दूरी तक नहीं उड़ सकता। थोड़ी ही दूर तक उड़ कर ज़मीन पर आ गिरता है।

टिड्डी दलकी तरह काकचैफर भी कभी कभी एक गांवसे दूसरे गांवको जाते हैं। सन् १५७४, १६८८, १८०४, १८३२ और १८४१ में यूरोपके भिन्न भिन्न देशों पर इन कीड़ोंके दलने आक्रमण किया था, जिससे फसलें नष्ट हो गई थीं। बीसवीं सदीमें भी कुछ देशों पर इनका आक्रमण हुआ था।

नर मादाका संयोग मई मासमें होता है। संयोग होनेके बाद नर शीघ्र ही मर जाता है। मादा अण्डे रखने तक ज़िन्दा रहती है। एक मादा २५-३० अण्डे रखती है। मादा अपने आगेके पावोंसे ३-४ इंच गहरा गढ़ा खोदकर उसीमें अण्डे रखती है। अण्डा पीला पन लिये सफेद होता है और अम्बाड़ीके बीजसे ज़्यादा बड़ा नहीं होता। जोती हुई जमीनमें ही मादा अण्डे रखती है—पड़ती जमीनमें नहीं।

यह कीड़ा भारतवर्षमें बहुत कम पाया जाता है। अतएव इसकी कीटावस्था और कोशावस्था-के सम्बन्धमें यहां कुछ लिखनेकी ज़रूरत नहीं। अण्डे देनेके तीन वर्ष बाद कीड़ेकी पूर्ण बाढ़ होती है।

काक चैफरकी वृद्धि रोकनेके लिए फ्रांसके किसानोंने हज़ारों उपाय किये; किन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। पंद्रहवीं सदीमें भोले लोग एक उपाय काममें लाते थे; हम उसे पाठकोंके मनोरंज-नार्थ नीचे देते हैं।

सन् १४७९ में फ्रांसमें काक चैफर बहुत ही ज़्यादा हो गये थे। वहांके धर्माध्यक्षोंने विद्वान लो-गोंकी सभामें काकचैफर पर नालिश की। मामला चला। एक काकचैफर पकड़ कर जबर्दस्ती अदा-लतमें लाया गया। क्रिवर्ग नामक वकीलने काक चैफरका पक्ष लिया। वह एक नामी वकील था। उसने जी जानसे कोशिश की; परन्तु गुनाह साबित हो गया और काकचैफरको देश निकालेकी सज़ा देदी गयी। परन्तु अभियुक्तने इसकी कुछ भी पर वाह न की। वह कुछ दिनों तक वहीं डटा रहा। बादमें वह चल दिये। अपना मन समझानेके लिए कोर्टने यह समझ लिया कि उसने प्रवास की तैयारी करनेके लिए कुछ दिनोंकी रज़ा ले ली थी। मुद्दत खतम होते ही वह चले गये।

काकचैफरसे तेल निकाला जाता है। यह तेल औषध बनानेके काममें आता है। हम ऊपर लिख आये हैं कि भारतमें यह बहुत कम पाया जाता है। एक महाशयने एक बार एक भारतीय काक-चैफर इङ्गलैण्डके संग्रहालयको भेजा था; जिसकी लम्बाई २½ इंच थी।

गुलाबका कीड़ा (Rose Beetle)

यह कीड़ा गुलाबके फूलकी पंखुड़ियां खाता है। कीड़ा उड़ भी सकता है। यह रातको भक्ष्य प्राप्तिके लिए बाहर निकलता है। इस कीड़ेके गुदद्वारके पास एक प्रकारका विष रहता है इसी विषकी सहायतासे वह अपनी रक्षा करता है। कुत्तेके विषपर इस कीड़ेका अच्छा उपयोग होता है। कीड़ा सुखाकर शीशीमें रख लिया जाता है। आवश्य-कता पड़नेपर इसका चूर्ण रोटी और मक्खनके साथ रोगीको खिलाया जाता है। इस औषधिका सेवन करनेवाले रोगीको जहाँ तक हो सके पानी न देना चाहिये। बहुत ही ज्यादा ज़रूरत होने-पर थोड़ा सा पानी दिया गया तो कोई हर्ज नहीं। औषधिका सेवन करनेपर रोगीको नींद आने लगती है और वह ३६ घण्टे तक सोता है। रोगी-को सोने देना चाहिये। जब तक वह आप ही आप न उठ बैठे, उसे कदापि न जगाना चाहिये। सशक्त मनुष्यके लिए चार कीड़े काफ़ी हैं, परन्तु बालकोंको दो कीड़ोंसे ज्यादा कदापि न देने चाहियें।

निवेदन

ईश्वरकी दयासे आज यह लेख माला खतम हो गई। इस लेख मालामें उन्हीं कीड़ोंपर विचार किया गया है, जिन्हें सर्वसाधारण जानते हैं। यथा शक्ति भाषा भी सरल ही रखी गई है।

'फसलके शत्रु' खतम होनेपर कुछ मित्रोंने इस ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया। उन्हीं मित्रोंकी कृपासे इस लेखमालाका जन्म हुआ है। अतएव वह धन्यवादके पात्र हैं।

प्राणिविद्या हिंदी भाषाके लिए बिलकुल नई चीज़ है। इसके अलावा मुझसे व्यक्तिके लिए तो यह अनधिकार चेष्टा ही है। तथापि उस दयाधनकी कृपासे आज यह कार्य समाप्त हो गया।

हम यह बात स्वीकार करते हैं कि वैज्ञानिक विषय लिखनेमें पहला ही प्रसंग होनेसे विषय मनोरंजक नहीं हो पाया है। कई कीड़े छूट भी गये हैं। प्रारंभमें हमारा विचार था कि विदेशी कीड़ोंका भी समावेश कर लिया जाय। परन्तु तबादला हो जानेसे यह विचार कार्यरूपमें परिणत न कर सके। यदि विज्ञानके पाठकों-का, इस लेखमालासे कुछ भी मनोरंजन हुआ, तो लेखक अपनेको कृतार्थ मान लेगा।

नक्षत्र संसार*

[ले०—पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार]

रश्मिचित्र-दर्शक और आलोक चित्रण यन्त्रने इस दुविधामें वैज्ञानिकोंकी पूरी सहायता की है। रश्मिचित्रमें प्रकट होनेवाली काली धारियोंका नीले और लाल वर्णकी ओर विचलन होना प्रतीत होता है। इसीसे तारोंका अपनेसे परे हटना और अपनी तरफ आना अनुमान किया जाता है। इस विधि से भी बहुत से तारोंकी गतियोंका पूरा पूरा ज्ञान कर लिया गया है; जैसे हल्दीवरण (रोहिणी) ३० मील प्रति सेकण्डके वेगसे हमसे दूर हट रहा है। इसी प्रकार ब्रह्महृदय १७ मील प्रति सेकण्ड, मघा नक्षत्रोंमें से ख्याति (Regulas), पुनर्वसुओंमें से विष्णु (मिथुन मं०) (Coster), लगभग २५—५८ मील प्रति सेकण्ड, और काणराज (Rigal) ३८ मील प्रति सेकण्डके वेगसे हमसे दूर हट रहे हैं। इसी प्रकार बहुत से हमारे समीप भी चले आ रहे हैं। जैसे ध्रुव तारा १६ मील प्रति सेकंड, कन्याराशिका चित्रा १४ मील प्रति सेकंड, प्रभाष (Procyon-प्रश्वा) ७ मील प्रति सेकण्ड, मिथुन राशिका सोम (Pollux), वीणा मं० का अभिजित (Vega) और भूतेशका स्वाति (Arcturus) क्रमसे ३३, ३४, ३५ मील प्रति सेकण्डके वेगसे हमारी तरफ बढ़े चले आ रहे हैं। बहुत से तारे हमारी दृष्टि रेखाको समकोण पर काटती हुई दिशामें गति करते हैं। उनकी वास्तविक गति पहले जानी गयी गति से बहुत निकली; जैसे सोम (Pollux) ३३ मी० प्र० से० के वेगसे हमारी ओर आ रहा है तो भी उसकी तिर्यग् गति (Transverse motion) ३८ मील प्र० से० है। इसी प्रकार ब्रह्म हृदयकी दृष्टि रेखाके साथ साथकी गति १७ मील प्रति सेकंड और तिर्यग् गति १२ मील प्रति सेकण्ड है। इसी प्रकार प्रभाष ७ मील प्रति सेकण्डके वेगसे हमारी ओर बढ़ रहा है; परन्तु तिर्यग् गति भी १४ प्रति-सेकण्ड कर रहा है।

कई एक तारे इकट्ठे ही समान रूपसे और समान वेगसे आकाशमें विचलित या स्थान भ्रष्ट होते जाते गये हैं। ऐसे सहयोगी पथिकोंकी सहयोगी-गति (Common Proper motion) निश्चय से उनके परस्पर सम्बन्धी होनेका प्रमाण है। वह अवश्य किसी न किसी प्रकारसे सम्बद्ध हैं और किसी एक परिवारके घटक हैं। सहयोगी गति (Common Proper motion) का तात्पर्य दोनोंकी परस्पर परिक्रमा करना नहीं प्रत्युत समान दिशा-में गति करना है। जैसे पृथ्वी और शुक्र सौरजगत् से बाहर खड़े दर्शकको समान भावसे एक दिशा-में गति करते सहयोगी रूपसे जान पड़ेंगे। यही इनकी सहयोगी-गति है। युगलतारोंके वर्णनमें ऐसे कई दृष्टान्तोंका उल्लेख हुआ है। और उदाहरण

---

* विज्ञान भाग १६ के पृष्ठ २६ से सम्बद्ध।

भी यहां उद्धृत करते हैं। तुलामें दो छोटे तारे हैं। दोनों एक दूसरेसे ५ कलाकी दूरी पर हैं तो भी ४ विकला प्रतिवर्ष हटते हैं और दोनों सहयोगी हैं।

तारोंकी निजीगति (Proper motion) के सम्बन्धमें सबसे अधिक आवश्यक समस्या हमारे सूर्यकी ही है। संसारके संचालक नियमोंमें हमारा सूर्यभी उसी प्रकार बँधा है। यदि पृथ्वी स्थिर नहीं तो इधर सूर्य भी स्थिर नहीं है। पृथ्वी अपने पति सूर्यकी परिक्रमा मानों प्रेमसे, परस्पराकर्षण से, बद्ध होकर करती है, परन्तु सूर्य अपने सब कुटुम्ब भरको लिए हुए इस विशाल गगन विस्तार में यात्रा कर रहा है। इसकी गतिका ज्ञान करनेमें बहुत सी बाधाएँ होती हैं। प्रथम तो हम गतिमें हैं, फिर सूर्य भी हमको लेकर भाग रहा है। उधर शेष तारे भी अपनी अपनी गतिमें लगे हैं। यदि नक्षत्र स्थिर होते तो भी सूर्यकी गति जानना सुगम हो जाता। सूर्यकी गतिसे अन्य नक्षत्रोंका प्रतीयमान विचलन भी होना दृष्टिगोचर होता है। परन्तु हमें पता है कि अन्य तारे भी भिन्न भिन्न दिशाओंमें भिन्न भिन्न वेगसे अपनी अपनी गति कर रहे हैं। इतनी जटिलताके होते हुए भी सूर्यकी गतिकी दिशाका पता लग ही गया है।

सन् १८०५ में विद्वान् हर्षलने कतिपय उज्ज्वल तारोंकी गतिका भी ध्यान रखते हुए उनके क्रान्ति वृत्तोंको एक सुदूर स्थानपर मिलते पाया; जिससे उसने इसी योग विन्दुको सूर्यकी गतिकी दिशा बतलाया। यह योग विन्दु (meeting place) हरिकुलेश मण्डलमें पड़ता है। उसके पश्चात् विद्वान स्ट्रूवेने भी इस बातपर बड़ा आलोचन किया और सफलता पूर्वक बतलाया कि सूर्य हरिकुलेशकी वाम भुजाकी ओर बढ़ता चला जा रहा है। यद्यपि यह निश्चित है कि सूर्यका क्रान्ति-मार्ग भी सरल रेखा न होकर वृत्ताकार वक्र रेखा है, तो भी गणनानुसार कई लाख वर्षों तक अभी उसे इसी दिशामें चलना होगा। सूर्यके वेगके विषयमें विद्वानोंकी गणनाओंमें बड़ा मतभेद है। ५ मीलसे लेकर १५० मील प्रति सेकण्डके बीचमें कितने ही तखमीने हैं।

रश्मिचित्रदर्शक यन्त्रने इस कार्यमें बड़ी सहायता की है। उसके द्वारा तारोंका समीप आना और दूर हटना जान लिया गया है। सूर्यके गति करनेसे सामनेके तारे समीप आते प्रतीत होते हैं। और पीछे छूटे हुए तारे दूर हटते हुए दीखते हैं। इन दोनों परिणामोंके अन्तरका आधा कदाचित सूर्यकी निजी गति है। इस प्रकारकी गणना से बहुत ही प्रामाणिक परिणाम यही निकाला गया है कि सूर्यका वेग प्रति सेकण्ड ५० मील है।

तारोंकी दूरी

तारोंकी दूरताकी भी बड़ी जटिल समस्या है। इसपर भी बहुत कालसे ऊहापोह हो रहा है। प्राचीन ज्योतिषके जाननेवाले विद्वान् आकाशमें स्थित तारोंको विशेष दूरी पर खड़ा मानते हैं। वह परिधि आकाश कक्षा या व्योमकक्षा कहाती है। इस कक्षाका परिमाण १८, ७१२, ०६६, २००, ०००,००० (कोटिघ्नै र्नखनन्द षट्क नखभूभूभृद् भुजंगेन्दुभिः) है। अतएव उनके मतमें व्योमकक्षाका व्यासार्ध समीपतम तारेकी दूरी होगी। अब यह सब विचार तुच्छ हैं। अब सभी तारोंकी दूरी भिन्न भिन्न निकली है। दूरी निर्धारण करने का केवल एक ही उपाय है कि तारेका दृष्टि भ्रंश कोण (Parallax) माँप लिया जाय। कुपर्निकसके जमानेसे दृष्टिभ्रंश पर बहुत ही अधिक सावधानी से परीक्षण किये जारहे हैं। अपनी परिधिपर पृथ्वी निरन्तर गति करती है। इसी गतिके कारण उत्पन्न होनेवाले तारोंके प्रतीयमान स्थान भ्रंशका बहुत अनुशीलन किया गया है। इसी प्रतीयमान स्थान भ्रंशको दृष्टि भ्रंश कहते हैं। यदि तारोंके निरीक्षणमें भिन्न भिन्न स्थानोंसे देखनेपर स्थान भ्रंशका ज्ञान हो सके तो उसके आधारपर तारेकी दूरीका पता लगाना बहुत सुगम होजाय और इसके ज्ञान न होनेसे कोपर्निकसका सिद्धान्त अविश्वास्य हो जाय। आखिर तारोंका दृष्टिभ्रंश भी ठीक ठीक

मापा गया और बहुत से तारे ऐसे भी पाये गये हैं, जिनमें किसी प्रकारका भी स्थान भ्रंश नहीं होता।

दृष्टि भ्रंश क्या वस्तु है? किसी वस्तुको भिन्न भिन्न स्थानोंसे देखने पर उसके स्थानमें भ्रंश जो होता है वही दृष्टि भ्रंश कहाता है। यदि एक रुपया अपने हाथमें पकड़ कर एक आंख बन्द करके देखें और फिर दूसरी बन्द करके पहली खोल कर देखें तो रुपयेकी स्थितिमें भेद आता दीखेगा। इसी प्रकार पृथ्वी अपने क्रान्तिमार्ग पर जाती हैं। उसके क्रान्ति मार्गके दो भिन्न भिन्न स्थानोंसे एक ही तारेको देखते हैं तो उस तारेकी स्थितिमें भेद आता दीखता है। इसी प्रकार यदि रुपयेको कुछ पास ले आकर एक एक आंखसे बारी बारीसे देखें तो स्थितिमें अधिक भेद आता है। अर्थात् यदि पहली आंखसे वह खिड़कीके दूसरे सींखचेके सामने था तो अब वह कदाचित् दूसरी आंखसे ५ वें सींखचेके सामने देख पड़ेगा। इस भेदको हम कोणसूचक वृत्त रेखासे दर्शाते हैं। वस्तु जितनी अधिक समीप होगी उतना ही यह कोण बढ़ जायगा। यही कोण दृष्टि कृत स्थान भ्रंशकोण या संक्षेप दृष्टिमें भ्रंश कोण कहाता है। फलतः किसी तारेका दृष्टि भ्रंश कोण वह कोण है जो कि तारेकी दूरतासे सूर्य पृथ्वीकी मध्यम दूरतासे बना है।

इस कोणके ज्ञान होने पर हम तारेकी दूरता पर्याप्त सत्यता तक बता सकते हैं। १ विकला कोणके लिए ७३,०००,००० × २०३,२६५ मीलकी दूरता अपेक्षित है। महिष मण्डलका एल्फ़ा जयका स्थितिभ्रंश कोण ¾ विकला है। इसीसे इसकी दूरी ४¼ तेजो वर्ष गणी गयी है। इसी प्रकार सप्तर्षि मण्डलमें एक तारेका स्थिति भ्रंश कोण ½ विकला है; उसकी दूरी ६½ तेजो वर्ष है; ध्यान रहे कि प्रकाश एक सेकण्डमें १८६००० मील चलता है। अतः एक तेजो वर्ष=

१८६००० × ६० × ६० × २४ × ३६५

=२४६,४०४,०००,००० मील इसी प्रकारकी गणना एवं निरीक्षण परीक्षणसे जाना गया है कि प्रभावकी दूरी १२ तेजोवर्ष, व्याधकी ८ तेजोवर्ष, वासुदेव (Altair) (गरुड़ मण्डलका एल्फ़ा) की १६ तेजो वर्ष, रोहिणीकी २० तेजो वर्ष, ब्रह्म हृदय और सोम (Pollux) और अभिजित्की क्रमसे ३०,४८, और ४६ तेजो वर्ष है। यह सभी दूरियां इतनी अधिक हैं कि केवल मुखसे कहकर ही सन्तोष कर लिया जा सकता है और गणितज्ञोंके अंक ही इस दूरताका प्रकाश कर सकते हैं। साधारण मनुष्यकी बुद्धिमें इतनी बड़ी लम्बाईके विस्मयकारक अंक सुन कर कोई निश्चित भाव उदित नहीं होता। तिसपर भी इस विशालताका मनन करके विधाता जगत् स्रष्टाकी विशाल महिमाका ज्ञान होता है। इस अनिर्वचनीय अपरम्पार ब्रह्मकी अनन्त लीला-भावना जागृत हो जाती है और मानवीय तुच्छ बुद्धि भी केवल विशाल अनन्त आकाश—आभोगमें फैल कर स्वतः अनन्त रूपमें लीन हो जाती है।

गोताखोरीके चमत्कार

वतक गोताखोरोंकी जो पोशाक बनी थी उसे पहनकर १५० फुटकी गहराई तक जाना सम्भव था। प्रायः १२५ फुटपर ही काम करना मुश्किल हो जाता था। कारण यह था कि यह पोशाक लचीली होती थी। ५० फुटके बाद प्रत्येक २७ इञ्च उतरने से ½ सेर प्रति वर्ग इञ्चका दबाव बढ़ जाता है। इस दबाव से हृत्पिण्ड और रक्त परिभ्रमणके कार्यमें बाधा उपस्थित हो जाती है। इसी लिए पुराने ढङ्गकी पोशाक पहन कर जब गोताखोर गोता लगाता था, तो दबाव बढ़ने से पोशाक पिचक जाती थी और उसके शरीर पर दबाव बढ़ जाता था। इससे कभी कभी गोताखोरकी मृत्यु हो जाती थी और जान पर खेल कर ही १५० फुट तक उतरनेका कोई साहस करता था। परन्तु

अभी थोड़े दिन हुए हैं कि श्री० बेंजेमिन फ्रैंक-लिन लियेविटर (Mr. Benjamin Franklin Leavitt) ने मंगनीज़ कांसेकी न दबनेवाली गोताखोरीकी पोशाक बना डाली है। आपने उसे पहन कर ३६१ फुटकी गहराई पर काम किया है। आप लगभग ४५ मिनट तक इतने नीचे रहे। आपको कोई कष्ट नहीं हुआ। केवल पानीके ठंडे होने से आपको कुछ चलनेमें कठिनाई हुई। ४५ मिनट बाद आपने फोन किया, "यहां तापक्रम ४०° फा से भी कम है, इसलिए ठण्ड मालूम होती है, अब हमें खींच लो।"

ऊपर आते ही आपने अपनी पोशाक चीर
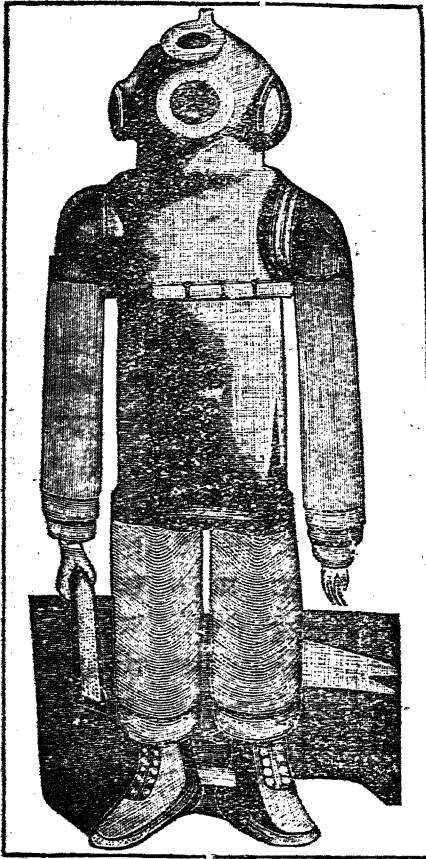
चित्र २५—लियेविट द्वारा आविष्कृत गोताखोरोंकी पोशाक।

कर फैंक दी। आपका कहना है कि जो बात १८ महीनेके मनन से मैं नहीं जान सका था, वह दो घण्टेके प्रत्यक्ष अनुभव से जान गया हूं; पहली पोशाक मैंने ८ महीनेकी मेहनत और २२५०० रु० की लागत से बनाई थी, पर अब मैं इससे ड्योढ़ी अच्छी पोशाक बहुत जल्द बना डालूँगा।

इस नयी पोशाकका प्रयोग आप जलमग्न लूसीटेनिया जहाज़का सामान निकालनेमें करेंगे। लूसीटेनियामें १५०००००० रु० का सोना और ३०००००० रु० का मुसाफिरोंका सामान पड़ा है। वह २८५ फुटकी गहराई पर ५ या ६ फुट मट्टीमें धंसा पड़ा है। इसके निकालनेमें ४५०००० रु० खर्च होंगे; पर माल १८०००००० रु० का निकल आयेगा।

गोताखोर पहले भारी से भारी कपड़े पहन लेगा, वह जूते न पहनेगा, और तदनन्तर ४½ मन वज़नकी यह पोशाक पहनेगा। पानीमें इस पोशाकका बोझ केवल ३७½ सेर ही रह जायगा। झुकनेके लिए १० सेरका दबाव पानी पर डालना होगा। गोताखोरको उतारने और खींचनेके लिए ⁷⁄₁₆ इञ्च व्यासका केबिल (तार) काम आयेगा। २८० मन बोझ तक इस केबिलसे खींचा जा सकता है। इसी केबिलके भीतर टेलीफोनका तार रहेगा। इसके बनानेमें भी लियेविटने ३ साल तक परिश्रम किया है।

श्वासके लिए ओषजन और प्रश्वासके शुद्ध करनेके लिए दाहक सोडा भी इसी पोशाकमें रहेगा। पुराने ढङ्गकी पोशाकमें हवा एक पैप होज़ द्वारा ऊपरसे गोतेखोर तक भेजी जाती थी, पर होज़-पैपके टूट जाने अथवा उसके छिद्रके बन्द हो जाने से अनेक दुर्घटनाएं हो चुकी हैं। टेलीफोनके तारसे भी गोताखोर अपना हाल बराबर ऊपर वालोंको बताता रहेगा। जब गोताखोर बात करना बन्द कर देगा, वह फौरन ऊपर खींच लिया जायगा। गोताखोरके साथ २५० केण्डिल पावरका एक लेम्प भी रहेगा; जो उसे ७ फुट तक देखनेमें सहायता देगा। इस नई पोशाकका चित्र यहां दिया जाता है। (चित्र २५)

—गङ्गाप्रसाद, बी. एस-सी.

अद्भुत पुलमैन बैलून

वायुयानोंके निर्माणमें नवीन विचारोंका बड़ा आदर होता है, अतएव इस नवीन आविष्कार की जैसी चर्चा आज कल हो रही है, उसमें आश्चर्य नहीं है। यह वायुयान कठोर प्रकार (Rigid) का गुब्बारा या बैलून है; परन्तु आज तक जितने वायुयान बनाये गये हैं, उनसे निराले ढङ्गका है। इसकी काट घोड़ेके नालकी सी है। एक तख्ता लेकर उस पर चटाई लटका दीजिये, बस फिर इसकी बनावटका ज्ञान आपको सहज ही हो जायगा। गैस थैलेके शिरो भाग और पार्श्व भागोंके बीचका खोखल ही हवाई पटरी है। इस खोखलमें छः प्रपेलक (propellers), तीन ऊपर और तीन नीचे, घूमते हैं। चूँकि यह यान तीन तरफ से बन्द है, अतएव प्रपेलकोंकी गतिसे पैदा हुई वायु धारा अंधड़के रूपमें बड़े वेगसे उसमें से निकलती है। इस रचनाकी विशेषता से यानमें बड़ी भारी संचालक शक्ति पैदा हो जाती है और आशा की जाती है कि यान १०० मील प्रति घंटेके वेगसे चल सकेगा। अतएव चलते समय ऐसा प्रतीत होगा कि यह हवाकी रेल, पटरी, पर चल रहा है। इसके आविष्कारक श्री० फिननेका कहना है कि न्यूयार्क से लन्दन तक यह यान ३० घण्टेमें पहुँच जायगा।
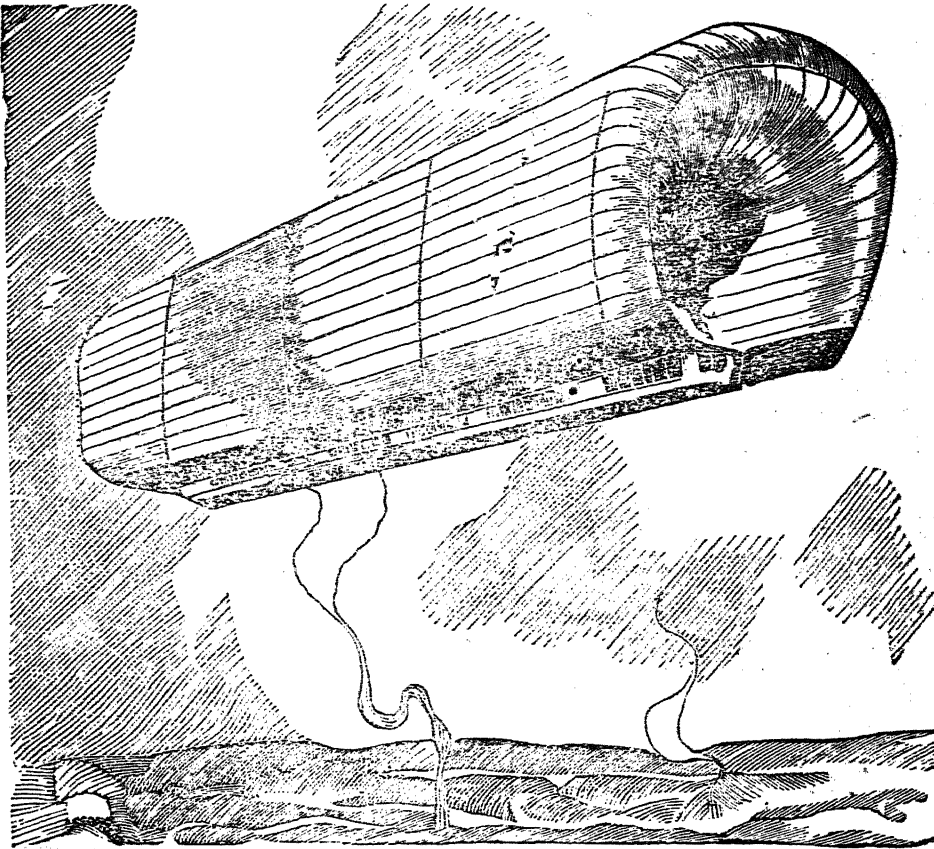
चित्र २६—पुलमैन गुब्बारा

बैलूनके नीचे ५०० फुट लम्बा कमरा होगा, जिसमें २५० आदमी बैठ सकेंगे। यह कमरा पुलमेन-कारके सदृश दिखाई देगा, जिसमें खाने, पीने, सोने, खेलने आदिका प्रबन्ध रहेगा। यानका ढांचा जेपेलिनकी नाईं धातु निर्मित न होगा। किन्तु तहदार लकड़ीका बना होगा, जो हलकी भी होगी और मजबूत भी ज्यादा होगी। गैस थैलेमें ३८००-००० घन फुट गैस भरी रहेगी। शायद उज्जन गैस का प्रयोग हो, परन्तु हीलियमका प्रयोग श्रेयस्कर है। हीलियम महँगा अवश्य पड़ेगा, किन्तु इसमें गैस बार बार निकालनेकी आवश्यकता होगी। मामूली बैलूनोंमें तो उतरनेका एक मात्र साधन गैसका निकाल देना है, परन्तु इस यन्त्रमें ऐसा प्रबन्ध रहेगा कि जब उतरना होगा तो गैस थैलेमें से गैस पम्पोंद्वारा निकाल कर पीपोंमें भर ली जायगी, जिनमें दवावके आधिक्य से गैस थोड़ी ही जगह में आ जायगी। जब चढ़ना होगा पीपोंमें से गैस थैलेमें भर दी जायगी।

इस रचना चातुर्य से गुब्बारेको उतारना व चढ़ाना बड़ा सुगम हो जायगा। तूफानसे अथवा पर्वत शृङ्गोंसे बच कर निकल जानेमें अथवा वायु के ऐसे भागमें पहुँचनेमें, जहाँ वायुकी धारा सब से अच्छी हो, इससे सम्भव हो जायगा।

गैस थैलेमें से पर्याप्त गैस निकाल लेने से यान वायु से भारी हो जायगा और सुगमता से पृथ्वी पर उतारा जा सकेगा। इसमें जल थल दोनोंपर उतरनेका प्रबन्ध रहेगा। (चित्र २६)

—मनोहरलाल भार्गव, एम. ए.

एक अत्यन्त प्राचीन मालटाका मन्दिर
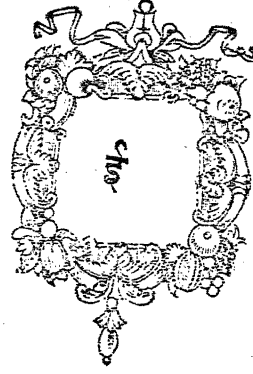
साइयोंके विख्यात महात्मा पाल भूमध्य सागरके मालटा द्वीपमें नौकाके जलमग्न हो जानेसे पहुँचे थे। वहाँ वह तीन मास तक रहे थे; बहुत से मौजिज़े उन्होंने दिखलाये और बहुतोंको उन्होंने ईसाई बनाया। अंजीलमें लिखा है कि उस समय मालटामें बर्बर लोग रहते थे। महात्मा पालको वहां एक सांपने काट लिया था; परन्तु उनको कोई हानि न पहुँचते देख मालटा निवासियोंने उन्हें देवता समझ लिया था। प्रायः लोगोंका ख़याल है कि उस समय रोमन लोग मालटामें रहते थे, परन्तु अंजीलके बर्बर शब्दसे प्रतीत होता है कि वहां कोई असभ्य जाति रहती थी।

उसी मालटा द्वीपमें हालमें ही प्रो० थिमिस्टोक्लिस ज़ेम्मिटने (Themistocles Zammit) एक प्राचीन मन्दिरका पता लगाया है। उस मन्दिरमें देव सिंहासनके पीछे एक गुप्त कमरा है, जिसमें
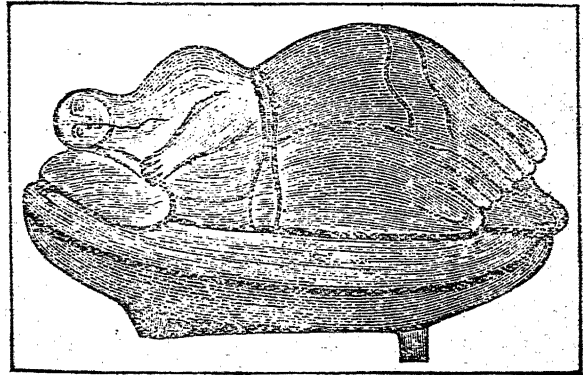
चित्र २७—प्राचीन आदर्श सुन्दरी।

छिपकर पुजारी लोग अद्भुत अद्भुत शब्द किया करते थे, जिससे अन्ध विश्वासी भक्त डर जाते थे। इसी मंदिरमें एक और कमरा है, जिसका मुँह पत्थरसे बंद था और जिसमें मानुष अस्थियाँ मिली हैं। शायद यह उन आदमियोंकी हों जो देवताके सामने बलि कर दिये गये हैं।

सम्भव है कि महात्मा पालने इन्हीं कुरीतियोंका विरोध किया हो; मन्दिरकी अच्छी अवस्था देखकर यह अनुमान होता है कि महा० पालके समयमें इसमें पूजा अवश्य होती होगी।

मन्दिरके तीन विभाग हैं, जो तीन भिन्न समयोंमें बनाये गये थे। यह तीनों एक दूसरेसे सम्बद्ध हैं। एकमें से दूसरोंमें जाना सम्भव है। मन्दिर ८ से २० फुट तक लम्बे और प्रायः इतने ही मोटे पत्थरोंसे बना है। पहले लोगोंका ख़याल था कि यह मन्दिर आदमियोंका बनाया नहीं हो सकता, देव या दानवों ने ही इसे बनाया होगा। परन्तु हमारा अनुमान है कि वह ऐसे मनुष्योंका बनाया हुआ है, जो यंत्र शास्त्रका अच्छा व्यवहारिक ज्ञान रखते थे।

मन्दिरकी लम्बाई २९० फुट है। इसके स्तम्भों और दीवारों पर बड़े अच्छे चित्र और मूर्तियां अंकित हैं। जो स्तम्भों पर सर्पिल बनी हैं वह हर जगह निराले ही ढंगकी हैं। जंगली बकरियोंकी भित्त-मूर्तियां भी देखने योग्य हैं। यहां एक स्त्रीकी अद्भुत मूर्ति भी है। इसे शायद पहले ज़मानेमें कपड़े भी पहनाये गये थे; दामनका कुछ भाग अब तक विद्यमान है। इसी प्रकार जितनी देव और देवियोंकी मूर्तियां वहां मिली हैं इन सबमें छाती से लेकर कूल्हों तकका भाग बड़ा मोटा है और ऊपर और नीचेका भाग बहुत पतला (देखिये चित्र २७)। देव और देवियोंकी मूर्तियां सदा मनुष्य अपने आदर्शके अनुसार बनाता है। इस लिए संभवतः सौन्दर्यका आदर्श उस कालमें ऐसा ही अद्भुत था।

इसी मन्दिरमें बानर जातिके मनुष्यके दांत मिले थे, जिनका चित्र पिछले अंकमें दिया जा चुका है (चित्र २२) —न० ला० भार्गव

हिसाब (सितम्बर-दिसम्बर २१)

सितम्बर

आय

चन्दा सभ्योंका	१६३)
श्री० जवाहरलाल	२०)
" प्रयाग नारायण	१५)
" बिक्री कागज	१५)
मैनेजर हिन्दी साहित्य प्रेस	५८)
श्री० राम भजनलाल	२०)
	२९१)
रोकड़ बाकी ३१ अगस्त	५७॥।≡)८
	३४८॥।≡)८

व्यय

सेविङ्ग बङ्कमें जमा किये	१५०)
किराया दफतर (अगस्त)	४॥)
क्लर्क (जुलाईका वेतन)	२०)
छपाई और कागज आहार	८८॥।)
मैनेजर हिन्दी साहित्य प्रेस	२)
मुत्फर्रिक	।)
	२६५॥)
रोकड़ बाक़ी ३० सि०	८३।≡)८
	३४८॥।≡)८

अक्तूबर

आय

चन्दा सभ्योंका	५२)
मैनेजर हिन्दी साहित्य प्रेस	१६६॥।)
	२१८॥।)
रोकड़ बाक़ी ३० सि० २१	८३।≡)८
	३०२≡)८

व्यय

स्टाम्प	११॥)
छपाई बैलटिंग लिस्ट	३।)
" पशुपक्षियोंका शृङ्गाररहस्य	१३॥)

ट्रेन	।=)
योग	२८॥=)
२१ अक्तूबरको रोकड़ बाकी	२७३॥-)८
	३०२≡)८

नवम्बर १९२१

आय

केश सर्टिफिकेटके आये	५८०)
चन्दा सभ्योंका	८४)
श्री० जवाहरलाल	१०)
सेविंग बैंकसे लिये	१५०)
पुस्तक विक्री	॥)
योग	८२४॥)
रोकड़ बाकी ३१ अक्तूबर २२	२७३॥-)८
	१०९८-)८

व्यय

सेविंग बैंकमें जमा किये	५८०)
हिन्दी साहित्य प्रेस	१५०)
पुस्तकें खरीदीं	८॥।=)
स्टाम्प	।)
मुत्फर्रिक	।)
योग	७३९।≡)
	३५८॥=)८
रोकड़ बाकी ३० नवम्बर	१०९८-)८

दिसम्बर

आय

सभ्योंका चन्दा	६०)
पुस्तकोंकी विक्री	४७-)
श्री० जवाहरलाल	१०)
श्री० प्रयाग नारायण चटर्जी	१५६।=)॥।
मैनेजर हिन्दी सा० प्रेस	३२७॥-)॥।
	६०१।-)॥
रोकड़ बाकी ३० नवम्बर २२	३५८॥=)८
	९६०)२
ओवरड्रान	४५॥≡)१०
	१००५॥।)

व्यय

क्लर्कको	१५)
किराया मकान (सि०, अक्तू०, दि० २२)	१३॥)
विज्ञानको सभ्योंका	३००)
” ” श्री० चटर्जीके खातेमें	१००)
” ” पं० सुदर्शनाचार्यके खातेमें	३०)
मैनेजर हिन्दी साहित्य प्रेस	२२)
मुत्फर्रिक	१०।-)
श्री० प्रयाग नारायण	२७५॥)
सेविंग बैंकमें जमा किये	१५०)
गंगा पुस्तक माला	४६।≡)
कंडेन्सर	७)
खरीद पुस्तक	१६)
स्लाइड	२०)
	१००५॥।)

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १६ } मकर, संवत् १९७९ । जनवरी, सन् १९२३ { संख्या ४

प्राणियोंके स्वत्व

कोषमें निर्दयतासे बढ़कर कोई भी भयंकर शब्द नहीं है। निर्दयताका अर्थ है दूसरोंके दुखोंमें सुखका अनुभव करना। निर्दयी वही है जो अन्य प्राणियोंको दुखमें देखकर फूला नहीं समाता। किन्तु यह बात नहीं है कि दयाभाव और अहिंसाकी कमी उसे इस पैशाचिक वृत्तिकी ओर खींच लाती है; बल्कि उसमें एक ऐसी कुप्रवृत्तिका बीज छिपा रहता है जो उसे इतना बड़ा भयंकर नरपिशाच बना देता है। यदि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर अत्याचार करता है तो यहीं अन्याय और अत्याचारकी हद हो जाती है; किन्तु यदि मानव जाति पशुओं पर अत्याचार करे तो यह उक्त अत्याचार और अन्याय की सीमाको भी लांघ जाता है। इतिहासका एक भी पृष्ठ ऐसा न होगा जो निर्दयताकी दुखमय कहानियोंसे न भरा हो। जिधर आंख उठाकर देखिये उधर ही इस पैशाचिक कार्यडकी लीला देखनेमें आती है। देशके गण्यमान्य सज्जन, जो समाजके स्तम्भ हैं, इस अहिंसाके नवयुगमें भी जानवरोंकी लड़ाई, एकका दूसरेसे फाड़ा जाना अथवा उनका प्राणसंहारी मल्लयुद्ध मनोरञ्जनकी एक उत्तम सामग्री समझते हैं। यह उनके लिए खेल है। इसे वह मनोविनोदके नामसे पुकारते हैं। किन्तु सच तो यह है कि हिंसा जैसे विषयकी आलोचना मात्र से ही मानव-जातिका मस्तक झुक जाता है।

अब प्रश्न यह है कि पशुओंके भी कुछ ईश्वर प्रदत्त स्वत्व हैं अथवा नहीं—उनके भी कुछ जन्मसिद्ध अधिकार हैं या नहीं? अपने स्वार्थके लिए

मानव जाति जो उनपर मनमाना अत्याचार करती है उससे उनके अधिकारोंकी कहांतक हत्या होती है? यही विषय हैं जिन पर विचार करना, जिनकी मीमांसा करना प्रत्येक सहृदय मनुष्यका कर्त्तव्य है।

सौ वर्ष पहले रिचार्ड मार्टिनके अदम्य उद्योगसे बृटिश पार्लियामेण्टमें उपर्युक्त विषयके सम्बन्धमें एक बिल पास हुआ था, जो पशु-संसारके लिए (महान् अधिकार पत्र) मैगना चार्टा (Magna charta) कहा जा सकता है। इससे पशुओंका दुःख समुद्रसे एक बारगी ही उद्धार तो न हो सका, फिर भी इससे उनके स्वत्वोंकी बहुत कुछ रक्षा हुई। इसी विषयको लेकर मि० एच० एस० साल्ट ने "Animal's rights" (पशुओं के स्वत्व) नामकी बड़ी उपयोगी पुस्तक लिखी है। उसमें अहिंसाके भावों पर बड़े महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये गये हैं। पुस्तक कितनी उपादेय है, इसके सम्बन्धमें एक प्रसिद्ध यूरोपियन विद्वानका कथन है कि यदि ऐसी कोई पुस्तक है जो समस्त संसारके विद्यालयोंमें पढ़ाई जा सके तो वह एम० एस० साल्टकी बनायी "एनिमलस्राईट" है। संसारकी सब प्रसिद्ध भाषाओंमें इसका अनुवाद हो चुका है।

१८०६ ई० में लार्ड अर्कसिन ने बृटिश पार्लियामेण्ट में पशुओंके अधिकारका प्रश्न छेड़ा था, किन्तु लोगोंने उन्हें बोलने न दिया। चारों ओरसे उनपर अपमान सूचक शब्दोंकी वर्षा होने लगी। निराश और हताश हो उन्हें बैठ जाना पड़ा। तेरह वर्ष बाद लोगोंके विचारोंमें परिवर्त्तन हुआ। अन्यायकी पराजय और सत्यकी जय हुई। जिस अहिंसाका नाम सुनकर लोगोंने नाक भौं सिकोड़ी थी तेरह वर्ष बाद उसीकी सत्यता पर विश्वास हुआ। आज तक जिन आत्माओंने अपनी तीव्र ज्योतिसे जगत्को प्रकाश मय किया है उन सबने अहिंसाको मानव जीवनमें प्रथम स्थान दिया है। इसीको मोक्ष प्राप्तिका मूलसाधन माना है। महात्मा ईसाने ईसाई-संसारकी मोहनिद्रा दूर की। उन्होंने बतला दिया कि आत्माके शुद्ध और उन्नत बनानेके लिए यदि कोई मार्ग है तो वह अहिंसाका मार्ग है। महात्मा ईसा अहिंसाके कितने बड़े पक्षपाती थे, इसका प्रमाण उनके जीवनकी हज़ारों घटनायें आज भी दे रही हैं। किन्तु शताब्दियोंसे मोहनिद्रामें पड़ी हुई ईसाई जातिको उनके यह वाक्य भी न जगा सके। आज भी कोट कोट नर नारी हिंसा भावसे प्रेरित होकर केवल जिह्वा-स्वादके लिए अनन्त पशुओंका प्राणसंहार कर रहे हैं। मुझे इस बातका विशेष अभिमान है कि ईसाके हज़ारों वर्ष पहले भारतने अहिंसाका महत्व समझा था और आज भी उस उच्च भावकी रक्षा कर रहा है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र और भगवान् कृष्णके बाद महात्मा बुद्ध ने इस सिद्धान्तका प्रचार किया। ईसाने कृष्णकी बांसुरीकी तान फिरसे जगायी। इस प्रकार इन महात्माओंने जगत्को सच्चा कर्म पथ बतला दिया। किन्तु इतना होने पर भी अभी हमें इस सिद्धान्तको कार्य्य रूपमें परिणत करनेकी बड़ी आवश्यकता है। ठीक मनुष्योंकी तरह पशुओंके भी अधिकार हैं। स्वतन्त्रताप्रिय जातिकी तरह उनके स्वत्वोंकी रक्षा करना हमारा धर्म है।

हम जानते हैं कि व्याघ्र और सिंह आदि जैसे हिंसक पशुओंको ऐसे अधिकार देना कि वह जो चाहे करें सम्भव नहीं है और न हम इसीमें सन्तुष्ट हो सकते हैं कि कुत्ते जिसे चाहे काट खायें। जिस तरह चोरों और डाकुओंको चोरी और डकैती करनेका अधिकार प्राप्त नहीं उसी तरह हम हिंसक पशुओंको भी उपर्युक्त अधिकार नहीं दे सकते। एक मनुष्य किसी दूसरे मनुष्यको कष्ट नहीं पहुँचा सकता। उसे कोई ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं है। संसारमें पूर्ण स्वतन्त्रता तो किसीको भी नहीं है। अपनी इच्छा शक्तिसे प्रेरित हो कर किसी अनिष्ट करनेका हमें कोई अधिकार नहीं है। अंग्रेज़ जाति स्वाधीनता देवीकी परम उपासक है। उसके विषयमें मि० इन्सटिन कहते हैं कि अंग्रेजोंकी स्वाधीनता उन्हें इस बातकी आज्ञा नहीं

देती कि वह कोई भी ऐसा कार्य्य करें जिससे लेशमात्र भी किसी अन्य मनुष्यका अनिष्ट हो। वैयक्तिक स्वतन्त्रता जितनी ही सीमाबद्ध होगी उतनी ही स्वाधीनताकी महत्ता बढ़ जायेगी। हमारी आंखोंमें दूसरोंके जीवनका मूल्य जितना ही अधिक होगा उतना ही जगत्‌का उपकार होगा।

इस तरह हम देखते हैं कि पशुओंके भी अधिकार वैसे ही रक्षित हैं जैसे मनुष्योंके। इसमें सन्देह नहीं कि उनके अधिकार सीमाबद्ध हैं, किन्तु अधिकार उनके भी हैं। मि० साल्ट ने भी इस बातका अपनी पुस्तकमें समर्थन किया है। पशु मनुष्योंसे भिन्न नहीं हैं। परम पिता परमेश्वरकी महान् सृष्टिके वह भी एक मुख्य अंग हैं। इसके अतिरिक्त उनकी शारीरिक रचना मनुष्योंकी शारीरिक रचनासे बहुत कुछ मिलती जुलती है। डारविनका यही सिद्धान्त है। मि० साल्ट अपनी पुस्तकमें लिखते हैं कि जो मनुष्य मुर्गोंको लड़ा कर, पक्षियोंको पिंजड़ेमें बन्दकर, तथा वाक्यहीन शक्तिहीन, निरीह पशुओं पर केवल आनन्दके हेतु इसी तरह अनेक प्रकारके अत्याचार करता है वह जगत्पिता परमेश्वरकी सृष्टिमें रहनेके योग्य नहीं है। अब वह समय नहीं रहा जब पशुओंको नाना प्रकारसे कष्ट पहुंचाया जाता था, अब समय आया है दया और प्रेमका। तो क्या हमें इस सुखमय नवयुगकी फिर एक बार कायापलट कर देनी चाहिये? क्या यह उचित है कि हम फिरसे निर्दयताका राज्य स्थापित करें और दुख और शोकके समुद्रमें संसारको डुबा दें? अथवा इस मार्गको त्यागकर भविष्यमें हम ऐसे समयके आनेकी आशा रखें जब पशुओंके खूनकी नदी न बहायी जायगी।

यही उनकी पुस्तकका सार है। मि० साल्ट भविष्यमें एक ऐसे युगकी स्थापना किया चाहते हैं जो वर्त्तमान् युगसे अधिक शान्ति और सुखका समय होगा—जो विश्वको अन्याय और अत्याचारसे रहित कर देगा। इस दशामें हमें विचार कर लेना चाहिये कि इन दोनों मार्गोंमेंसे कौन ग्राह्य है। यदि हम उस समयको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं जब कि तुर्क लोग अपने पालतू कुत्तोंको ऐसे द्वीपोंमें छोड़ देते थे जहां न जल रहता था और न कोई भोजनकी सामग्री तो हमें उक्त स्वर्गीय समयकी स्थापनाके लिए श्री गणेश कर ही देना चाहिये।

एक अंग्रेज़ महोदयने अपने जीवनकी एक घटनाका वर्णन बड़े मार्मिक शब्दोंमें किया है। उसे उन्हींके शब्दोंमें सुन लीजिये। "उस दिन डौरसेन्टमें मैं अपने एक मित्रके साथ एक उद्यानका निरीक्षण करने गया। नगर भरमें वैसा सुरम्य उद्यान और नहीं है। सुन्दरता तथा रमणीयताके कारण उसकी प्रसिद्धि दूर दूर तक फैल गयी है। उसकी चहार-दीवारी बहुत ही सुन्दर बनी हुई है। उद्यानके अन्दर प्रवेश करते ही नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्धिसे दिमाग बस जाता है। यह सब देख कर हम लोग मुग्ध हो गये। किन्तु ज्योंही हम लोग बाहर आये त्योंही जो दृश्य देखा उससे हृदय दहल उठा। एक छोटी चिड़िया पिंजड़ेमें बन्द छटपटा रही थी। अपने परोंको पिंजड़ेके तारोंसे तोड़ रही थी। सामनेके वृक्षोंकी हरी हरी पत्तियोंमें विचरते हुए पक्षियोंको देखकर उसके हृदय सागरमें वर्षोंकी दबी हुई स्वतन्त्रताकी लहरें एक बार फिर उमड़ पड़ीं। किन्तु वह विवश थी। मनुष्योंके अत्याचारने उससे उस वस्तुका अपहरण किया था, जो ईश्वरप्रदत्त है। खिन्न चित्त हो हम लोग घर लौट आये।"

ऐसी घटनायें नित्य हुआ करती हैं; किन्तु हमें उन पर विचार करनेका अवसर नहीं मिलता। हम उन्हें देख कर भी आंखें चुरा लेते हैं। किन्तु जो मनुष्य इन छोटी मोटी घटनाओं पर विचार करता है और ऐसे अत्याचारोंको रोकनेकी चेष्टा करता है वही उस परमपिता परमात्माकी आज्ञा पालन करता है वही सच्चा मनुष्य है।

प्राणी मात्रके प्रति दया और सहानुभूतिके भावोंका प्रचार ही वास्तविक उन्नतिका मूलसाधन है। और ऐसे भावोंके उत्पन्न होनेके कारण हमारे

विचार ही हैं। यदि हम दूसरोंके विषयमें भी विचार किया करें और यदि हमारे विचार सहृदयता और दयाभावके परिचायक हों तो एक ऐसे युगकी नींव पड़ जायगी जब हमें क्षुद्रसे क्षुद्र जीव पर अत्याचार करनेका साहस न होगा। पशुओं पर अत्याचार करना क्या है—उनके अधिकारोंकी उपेक्षा करना है। और ऐसी उपेक्षा ईश्वरेच्छाके विरुद्ध है। ईश्वरके प्रति कर्त्तव्य पालन करनेके लिए हमें उसकी सृष्टिके समस्त प्राणियोंके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करना होगा। यही संसारका धर्म है और यही संसारका कर्त्तव्य है।

—मुक्तेश्वरप्रसाद वर्मा।

नाककी छाप

संयुक्त प्रान्त अमेरिकाके मनीसोटा प्रान्तके कई स्थानोंमें हरेक पशुकी नाककी छाप रखी जाती है। ग्वाले पशुके शरीरपर गरम लोहेकी सींखसे दागनेके स्थान पर उसकी नाकपर स्याही लगाकर काग़ज़ पर ही छाप ले लेते हैं। गंवार लोगोंके अँगूठेकी छाप लेनेके समान यह नाककी छाप भी बड़ी लाभप्रद और सफल सिद्ध हुई है। यदि यह विधि प्रचलित हो जाय तो ग्वाले गोपरीक्षामें बड़े चतुर हो जांय और 'नाककी छाप' विषयकी पुस्तकोंके लिए भी स्थान स्थान पर पुस्तकालय स्थापित हो जांय।

पशु चिकित्सकोंकी सम्मतिमें यही विधि कुत्तों तकपर प्रयुक्त हो सकती है। कुत्तोंकी नाक भी एक दूसरेसे भिन्न होती हैं। पशुओंकी चोरी पकड़नेके लिए यह एक अच्छी विधि है।

नाक

बहुत से विद्वान् नाककी बनावट देखकर ही मनुष्यके शील और स्वभावका पता लगा लेते हैं उनका कथन है कि लम्बी नाक वाले आदमी बलवान और बुद्धिमान होते हैं। जो जातियां जितनी उन्नत और सभ्य होती हैं उन जातियोंके पुरुषोंकी नाक उतनी ही लम्बी और सुन्दर होती है। लम्बी और उभरी हुई नाकके लिए रोम और यूनानके निवासी बड़े प्रसिद्ध थे। इसी प्रकार उनका ज्ञान और सभ्यता भी बड़ी उन्नत थी। यूरोपमें एक जनश्रुति है कि "यदि क्लियोपेट्राकी नाक एक इञ्च छोटी होती तो इस दुनियाके कारोबारका ढंग ही कुछ दूसरा होता।" जिन्होंने क्लियोपेट्राकी तस्वीर देखी है वह उसकी नासिकाको कभी भूल नहीं सकते। यूरोपकी प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्त्रियोंकी नासिका ही विशेष रूप से लम्बी थी। प्रसिद्ध रोमन विद्वान सैनेकाने बुद्धिमान पुरुषके वर्णनमें एक विशेषण Homo nasutessi mus. अर्थात् सुदीर्घनास्य भी रखा है। हम प्रसिद्ध कवि दान्तेकी लम्बी नाककी उपेक्षा नहीं कर सकते। नेपोलियन बोनापार्ट कहा करता था कि "यदि हमारी सेनाका सेनापति उत्तम और लम्बी नाकवाला हो तो हम दुनिया भरको विजय कर सकते हैं।

भारतीय साहित्यमें नासिकाका तोतेकी चोंच के समान उभरा हुआ और आगे उसी प्रकार नोकीली होकर कुछ मुड़ा हुआ होना उत्तम समझा जाता है। सभी सौंदर्योपासक कवियोंने शुक नासिका, तिल पुष्प नासिका और पलश कुसुमनासिकाको सुन्दर कहा है।

राजाओंकी नाक तोतेकी होंटकी सी होती है। लम्बी नाकवाले विलासी होते हैं। सीधी नाकवाले धर्मात्मा और सदाचारी होते हैं।

कुछ सिकुड़ी हुई नाकवाले चोर होते हैं। चपटी नाकवाले प्रायः अपनी स्त्रियोंके कारण मरा करते हैं। नाकका अगला भाग कुछ मुड़ा हो तो पुरुष धनी होता है। जिनकी नाक दायीं तरफ मुड़ी हुई होती है वह दूसरोंका माल हजम कर जानेवाले बड़े पेटू और बड़े क्रूर होते हैं।

प्राचीन अंगविद्याके विद्वान राजा समुद्रने लिखा है-तिलके फूलके समान और शुककी चोंच-के समान नाकवाला पुरुष राजा होता है। क्रमसे जिसकी नाक लम्बी होती गयी है वह मनुष्य राज राजेश्वर होता है। जिसकी नाकका अगला भाग दो भागोंमें विभक्त प्रतीत हो या जिसकी नाक बहुत अधिक लम्बी या बहुत अधिक छोटी हो वह निर्धन होता है।

रेल और तारका प्रभाव

टर गाड़ियों तथा ट्राम गाड़ियोंने नगरोंकी दूरताको कम कर दिया; जहाज़ोंसे समुद्रोंका विस्तार तुच्छ जान पड़ने लगा और रेलगाड़ियोंसे स्थलीय दूरता नष्ट हो गयी। आदमी पैदल चले तो एक घण्टेमें २½, ३ कोस चल सकता है। दिन भरमें १० घण्टे चलकर भी २५, ३० मीलसे अधिक नहीं जा सकता। अब रेल बन जानेसे २४ घण्टेमें कलकत्तेसे बनारस और २४ घण्टेमें बनारससे हरद्वार पहुंच सकता है। गला फाड़ कर बोलें तो एक फर्लाङ्ग तक आवाज़ जा सकती है। आदमीके हाथ चिट्ठी भेजें तो पहुंचे, न पहुँचे; पर डाक द्वारा दो पैसेमें कलकत्तेसे पेशावरको २ दिनमें पत्र भेज सकते हैं। अर्जेण्ट, मोस्ट अर्जेण्ट तार देकर अपना हाल इष्टोंको और इष्टोंका स्वयम् कुछ घण्टोंमें जान सकते हैं।

इन सब सुविधाओंके होनेसे हमें क्या लाभ हुआ है? क्या रेलतारके होनेके पहले लोगोंको सुख ही न था? क्या वह जीते न थे? क्या तब समुद्रोंके पार नहीं जाते थे? क्या उस समय कलकत्तेसे पेशावर नहीं पहुंचते थे? सब कुछ था, पर भेद इतना ही था कि इतनी जल्दी नहीं पर धैर्यसे सभी काम आगे पीछे हो ही जाते थे। अब विचारणीय यह है कि इन साधनोंके मिलनेसे हमारी मानसिक तथा सामाजिक दशाओंपर क्या प्रभाव पड़ा है? एक तो हममें स्वार्थ परायणता बहुत आ गयी है। गाड़ीमें चढ़नेके लिए टिकट खरीद कर कुछ अधिकार सा पा लेते हैं और गाड़ीमें पसर कर बैठ जाते हैं। औरोंको बैठने नहीं देते। इस प्रकार क्षुद्र वस्तुओंके लिए स्वार्थकी मात्रा बहुत बढ़ गयी है। पहले सभी अपनी बहल गाड़ी ले लेकर या पैदल ही जाते थे और मार्गमें यात्री क्या छोटे क्या बड़े सभी एक दूसरेके संकटमें सहायक होते थे। अब एक एक डब्बेमें भी जूतम् पैज़ार, डांटडपट, और लट्ठमलट्ठा हुआ ही करती है।

पहले धनकी विषमता होनेपर भी मार्गके सङ्कटमें सहायक होकर एक दूसरेकी लक्ष्मीका लाभ उठाया करते थे; परन्तु अब अमीर सैकण्ड और फर्स्टमें जाते हैं और गरीब थर्डमें या मालके डब्बोंमें ठुंस ठुंस कर जाते हैं। ऊँचे दर्जेवाले अब अपनी लक्ष्मीका अन्यको उपयोग नहीं करने दे सकते; प्रत्युत ऐसा अवसर आ भी जावे तो अकड़ कर निचले दर्जेवालोंको घृणाकी नज़रसे देखते हैं। दर्जोंका विभाग भी भारतमें फूटका बड़ा कारण है।

पहले अपने साधारण साधनोंपर निर्भर रह कर बड़े सन्तोष और धैर्यसे लम्बे लम्बे रास्ते तय करते थे; पर अब वेगवान साधन पाकर थोड़ी थोड़ी बातोंपर अधीर हो जाते हैं। स्टेशनपर गाड़ीमें बैठनेके लिए अधीरतासे जाकर भाग कर गाड़ी पकड़नेका प्रयत्न करते हैं। जबतक बैठ न जांय तब तक हाय हाय लगी रहती है। न मार्गमें खानेका सुख, न पीनेका सुख। चमड़ोंसे बनी टंकि-

योंका पानी पीकर 'पथिकशूद्रवदाचरेत्' का आपद-धर्म पालन किया करते हैं। जब रेल जैसे साधन पाकर भी आपत्‌धर्म ही लगा रहा तो दशा बहुत शोचनीय है।

पहले तीर्थवासी पैदल भक्तिसे तीर्थोंकी यात्रा करते थे। अब क्या अमीर क्या गरीब सभी रेलके डब्बोंमें बन्द होकर चारों धाम हो आते हैं। अस्तु कुछ समय तो बीतता है तीर्थाटनमें और शेष समय सब माया बटोरनेमें लगा देते हैं। इससे तृष्णाका भाव बड़ा उग्र हो गया है।

यदि एक घण्टा भी किसी लुहार या बढ़ईकी दुकानमें खटाखटके शोरमें बैठा जाय तो दिमाग-में एक थकान सी मालूम होती है। बुद्धि लुप्त सी हो जाती है। ठीक इसी प्रकार रेलगाड़ियामें भी धकंधकाके साथ ठकाठक भी सुना करते हैं। इससे दिमाग प्रायः ऐसा बौरा जाता है कि लम्बे सफ़रके बाद कई दिन तक दिमाग़ पर लगे प्रहारोंकी पीड़ा नहीं जाती। इससे दिमाग़ जल्दी सड़ने लगता है। मनमें निराशाके भाव उगने लगते हैं। पहले यात्रा करते समय प्राकृतिक दृश्यों-का पूरा आनन्द लेते थे। अब सभी शस्यश्यामला मातृभूमिके प्यारे प्यारे दृश्य घण्टेमें ३०, ४० मील-की तेज़ीसे नज़रके आगेसे बायस्कोपके चित्रोंके समान लुप्त हो जाते हैं। इससे अपने देशकी शस्यश्यामला भूमिसे प्रेम ही नहीं रहा। अब गांव-के लोग और शहरी दिमाग़ भी स्टेशनकी चहक महक देखनेमें ही अपना मनोविनोद समझते हैं।

रेलों द्वारा सरकारने हमारे लिये कुछ नहीं किया; प्रत्युत अपनी सेनाएं स्थान स्थानसे बटोर कर शीघ्रतासे स्थानान्तर पर पहुँचानेके लिए रेलोंकी सुविधा की है। हमारे व्यापारकी वृद्धिके लिए नहीं प्रत्युत अपने देशकी बनी सब वस्तुओंको यथा शीघ्र देशमें फैला देनेका उत्तम साधन बनाया है। भारतीय व्यापारियोंका माल तो समय समय पर 'लदाई माल' बन्द करके रोक लिया जाता है। जब अपने काम से फुर्सत मिलती है तब भारतवासियोंका माल ढो ढो कर उनसे नकद झटका जाता है।

हमारे मस्तकों पर इन सब साधनोंसे ऐसा बुरा प्रभाव पड़ा है कि आरामके दुर्व्यसनमें फंस-कर श्रम करना सर्वथा भूल गये हैं। पाससे पासके स्थान पर भी पहुँचनेके लिए हम पराई टांगों पर भागने लगते हैं। बहुत से गांववाले लोग भी ६, ७ मील जानेके लिए गाड़ीके लिए स्टेशनों पर कई घण्टे पहले ही आ जमते हैं। और तिसपर भी धक्के खा खाकर सरकारकी गाड़ीकी बड़ी प्रशंसा किया करते हैं। फलतः आलस्यकी मात्रा हममें सीमासे अधिक आ गयी है। आत्माके तो सभी चरित्र और सद्गुण हमारे हाथसे निकल गये। यह सब आरामके साधन तभी अच्छे कहे जा सकते हैं जब कुछ अपनी हानि न करके लाभ-दायक हों।

इसके साथ साथ पहले यही कार्य बैलगाड़ियों तथा घोड़ागाड़ियोंसे चलता था। उनको इसी प्रयोजनसे बड़े श्रमसे पाला जाता था। इससे ईश्वरके बनाये कितने प्राणी इस भारत भूमिमें सुखसे पलते और स्वर्गके आनन्दका उपभोग करते थे। वह सब प्रकारके सुखोंका साधन होनेसे मनुष्योंके प्रेमपात्र होते थे। और मनुष्य उन्हें दया, करुणा और प्रेमसे पालकर जीवनको उच्च बनाते थे। पर अब सरकारी रेलगाड़ियोंसे सस्ता और आरामसे काम निकलता देख कर हमने उस पशु संसारके सुखों पर पानी फेर दिया। उन्हें व्यर्थ समझकर जिसके हाथ बन पड़ा बेच दिया। जिस गोवंशको हमने अपनाया था उसको हत्यारोंके हाथ बेचकर गो वंशके साथ कितना भारी विश्वासघात किया है। अब यही व्यवहार हम अपने दुखिया भाइयोंसे भी कर रहे हैं। अपनेमें लोभ तृष्णा और लालसाकी मात्रा बढ़ गयी है; बधिकोंके हाथ गो वंश बेच बेचकर अबतक हमने सिवाय गो हत्याके दूसरा कोई पुण्य नहीं कमाया। रेलोंसे व्यापार इतना बढ़ गया कि छोटे छोटे ग्राम भी बड़े बड़े

नगर बन गये; और नागरिक जीवनने आत्मिक जीवनका सत्यानाश कर डाला। स्वच्छ वायु, स्वच्छ भोजन स्वच्छ विचार, स्वच्छ दृश्य यह सब स्वप्न हो गये; और सारा जीवन आपत्तियोंका ढेर हो गया।

इसके अतिरिक्त एक सामाजिक अवनति और भी हुई है। वह यह कि और जो छल कपट था वह तो था ही; परन्तु बिना टिकट चोरीसे निकल जानेके लिए नाना छल कपट करने, सैकड़ों प्रकारसे रिश्वत लेने, और परदेसमें पड़े यात्रियोंको दवा कर उनसे रिश्वत दिलानेकी बुरी आदतें भी बहुत बढ़ गयी हैं। दूसरे मान छोड़कर ब्राह्मण ठाकुर आदि सभी कुलीगीरीमें लग गये हैं। इस उथल पुथलसे कुलीन घरोंकी सब तहज़ीब, सब सभ्य आचार विचार धूलमें मिल गये हैं।

—जयदेव शर्मा

सोनेका डला

शुद्ध सोनेका २½ सेरका एक डला अभी हालमें कैलिफोर्नियामें पाया गया है। इसकी खोज करनेवाले दो वृद्ध पुरुष हैं, जिन्होंने अपने जीवनका अधिक भाग इसी प्रकार खानोंमें बिताया है। इस अद्भुत सुवर्णखण्डका मूल्य बाज़ार दर से ३७५ पौ० है। पर इतना बड़ा एक टुकड़ा होनेसे इसका दाम १००० पौ० ही गिना जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामें अभी तक इतना बड़ा सुवर्ण खण्ड नहीं मिला था। बहुत दिन हुए आस्ट्रेलियामें एक पीले सुवर्णका इतना बड़ा टुकड़ा मिला था, जो दोनों हाथोंसे मुश्किलसे उठ सकता था। उसका वजन लगभग १० सेर था। इङ्गलेण्ड स्काटलैण्डादिकी खानोंमें अभी तक ३ तोलेसे अधिककी डली नहीं मिली है।

बच्चेकी परिभाषा

"अविवाहित, बन्दर स्वभाव वाला मांका रत्न, और घरका स्वच्छन्द राजा।"

"सवेरेके समय हांक लगानेवाला और दिनभर शोर मचानेवाला।"

"ऐसी अमूल्य सम्पत्ति, जिसे देखकर ईर्षा नहीं उत्पन्न होती।"

"मानव संसारका नया सदस्य, जिसे प्रत्येक दम्पति अपनी आदर्श मूर्ति समझती है।"

"सब देशोंका वासी जो कहीं की भाषा नहीं बोलता।"

"तोतली बोली बोलनेवाला और चीख लगानेवाला बाजा। कोमल कोमल मक्खन और दूध चखने और दुहनेवाली मशीन। घरके आय व्ययको नियमित कर लेनेके लिए स्वयंसिद्ध सूचक।"

"जब देखो तभी चित्त प्रसन्न कर दे और जिसे पुचकारनेको दिल करे।"

"हृदयके प्रेम मन्दिरमें बिना टिकटके प्रवेश करनेवाला।"

पुण्य और पापके ट्रेड मार्क

बल्गेरियाके महामन्त्रीने अभी हालमें यह प्रस्ताव किया है कि अपराधियोंके गालों पर जातीय सिंहका चिन्ह दाग देना चाहिये। आजसे पचास वर्ष पूर्व भी यही रीति वहां बरती जाती थी। १८२९ ई० के पहले प्रायः सभी अपराधी दागे जाते थे। जिप्सी, तथा खानाबदोश भी दाग दिये जाते थे। उसके बाद सैनिक और सिपाहियोंमेंसे दस नम्बरके बदमाशों पर ही दाग लगने लगा। १८७९ में यह रीति भी नाम शेष हो गयी। अपराधियोंके गाल, माथा,

छाती, कन्धा और सिर तक पर दाग लगाया जाता था। जिप्सी लोग तथा खानाबदोश लोगोंकी छाती पर दागा जाता था। बदमाशोंके छाती पर (M) डाकुओंकी छाती पर (T) और खानाबदोशों पर (V) दागा जाता था।

१४२४ ई० में स्कोटिश विधानके अनुसार खानाबदोशोंके गालों पर दागने लगे। १५७४ ई० में दायाँ कान लाल सींकसे एक इंच तक जला दिया जाता था।

फ्रांसमें दासोंके कन्धों पर (Fleur-de-lys) दागा जाता था; बादमें T. F. दगने लगा, जिसका तात्पर्य 'जबरन बेगार' था।

यूनान और रोममें भी अपराधियों और दासों को दागा जाता था। अमैका द्वीपमें ईखके खेतों पर नीग्रो दासोंको लगाते थे; उन पर भी उनके मालिक का नाम दागा जाता था। यह चान्दीकी सलाखके द्वारा तेजाबसे लिखा जाता था।

यह तो पापका ट्रेड मार्क हुआ और अब पुण्य देवका ट्रेड मार्क भी देखिये।

कनफटे जोगी अपना कान फाड़ लेते हैं। चक्रांकित वैष्णव अपने कन्धे पर वैष्णव चक्रका निशान दगवाते हैं। यह उनकी दीक्षाका चिन्ह है। उनका विश्वास है कि उसे देख कर वैकुण्ठके वैष्णवगण मरते दम ही उन्हें तुरन्त खोजकर वैकुण्ठके विमान पर चढ़ा कर सीधा वैकुण्ठ ले जायंगे। यह भी वैकुण्ठ जाने वाली स्पेशल ट्रेनका पास है। इसीको देखकर यमदूत उन्हें दूरसे ही छोड़ देंगे। बालकका तीसरे या पांचवें वर्षमें कान बेधा जाता है। यह भी धार्मिक रिवाज है।

चेचककी बीमारीसे बचनेके लिए बाहु पर अब सरकारी टीकेका भी रिवाज हो गया है। नाना प्रकारके लाल पीले चन्दन और सिन्दूरके टीके आदि भी धार्मिक पुण्य देवोंके ट्रेड मार्क हैं; जिनसे रुपये सीधे होते हैं और लोक व्यवहार चलता है। मुसलमानोंमें सुन्नतकी प्रथा भी मज़हबी ट्रेड मार्क ही है। सिर पर चोटी भी उसीका रूपान्तर है।

इसके अतिरिक्त बहुत से प्रेमके ट्रेड मार्क भी हैं, जिनमें सबसे प्रबल और रहस्यमय ट्रेड मार्क अंगूठी है।

—रा० प्र०

जीभके लक्षण

जीभके आकार और लम्बाई चौड़ाईसे मनुष्य के स्वभावोंके पता लगानेकी विद्या 'ग्लासोमैन्सी' कहाती है। यह विद्या अभी नयी ईजाद हुई है। इस विद्याके अनुसार जिनकी जीभ छोटी और चौड़ी होती है वह झूठे होते हैं। जिनकी जीभ लम्बाईमें छोटी और चौड़ाईमें कम होती है वह धूर्त्त और बदमिज़ाज होते हैं।

जिनकी जीभ लम्बी और चौड़ी होती है वह गप्पी और बातूनी होते हैं। जिसकी जीभ कम चौड़ी और अधिक लम्बी हो वह स्पष्टवादी और सरल स्वभाववाला होता है।

गोल बेरकी सी छोटी जीभवाली लड़कियाँ सच्ची, विश्वास योग्य और अनुरागवती होती हैं। परन्तु इसी प्रकारकी जीभवाले पुरुष अपनी बातके कच्चे होते हैं।

जिनकी जीभ वर्गाकार या आयताकार चौकोर सी हो वह बड़े कड़े स्वभावके, कर्मण्य और साहसी होते हैं। वर्गाकार जीभवाली स्त्रियाँ भी प्रायः "अपने मुंह मियाँ मिट्ठू" होती हैं।

विलायतमें कानूनकी कीमत

एक मुक़दमा ६ दिन चला; जिसमें ५ राजकीय कौंसिल और ६ जूनियर कौंसिल और दो सोलिसिटरोंकी समितियाँ बैठीं। इनका व्यय इस प्रकार हुआ—

कौंसिलोंकी फीस	२८०० पौं०
दैनिक नये रिफ्रेशर्स	२४०० "
सोलिसिटरोंकी फीस	१६० "
कोर्टफीस	२७ "
क्लर्कोंकी फीस	५० "
चतुर डाकृरकी फ़ीस	१२० "
साधारण डाकृरोंकी फ़ीस	१२० "
गवाहोंकी फ़ीस	१२० "
शार्टहैण्ड नोट और उनको छापनेका व्यय	३०० "
कुल व्यय	६०९७
जजका वेतन ६ दिनका	२००
जूरीका ६ पौं० प्रति व्यक्तिके हिसाबसे यदि ५ जूरर् हों तो ६ दिनका	४०५
योग	६७०२

कुल व्यय ६७०२ पौं० बैठता है; यह कमसे कम है।

सबसे पुराना जूता

[ले०—पं० जयदेव शर्म्मा विद्यालङ्कार]

प्युलर साइन्स सिफटिंग्स (५। १२। २२) में एक जूतेके तलेका बड़ा विस्मय जनक वर्णन प्रकाशित हुआ है। विद्वानोंने इसको कमसे कम ५००००० (५० लाख) वर्ष पुराना स्वीकार किया है। एक खानके इञ्जीनियर मि० जौन टी रीडने नेवेदा (संयुक्तप्रान्त अमेरिका) की खान खुदवाते और फोसिल ढूंढते हुए एक मनुष्यका चरण चिह्न पत्थरपर उपड़ा पाया। देखनेपर विस्मयसे उसकी परीक्षा की गयी। वह नंगे पैरका चिन्ह नहीं बल्कि वह एक जूतेका तला निकला; जो काल क्रमसे पत्थर बन चुका है। उसपर चरणका ¾ भाग स्पष्ट दिखाई देता है। चरण चिन्हके चारों ओर तागेकी सीवन दिखाई देती है।

यह अवश्य एक अद्भुत वस्तु है। जिस चट्टानमें यह जूतेका तल्ला पाया गया है उसकी आयु लगभग ५० लाख वर्ष कूती गयी है। यदि वास्तवमें यह जूतेका तल्ला है तो यह यहां आया कैसे? कदाचित जब यह चट्टान दल दल रूपमें होगी तभी कोई यात्री चलते चलते फंस गया होगा; उसके जूतेमें लगे टांके उखड़ गये होंगे और तला कीचड़में फंसा रह गया होगा।

डा० वेलू महोदयका विचार है कि इस जूतेके तलेने कमसे कम ४०, ५० लाख वर्ष पूर्व तक मनुष्य समाजकी सत्ता और उसकी वैज्ञानिक सभ्यताका पूरा प्रमाण दे दिया है। अभी तक वैज्ञानिकोंने मानव सभ्यताकी इतनी प्राचीनता स्वीकार करनेका साहस नहीं किया था। यदि यह जूता है तब तो यह फोसिल भी पुराने शिल्पकारोंकी अद्भुत शिल्पका नमूना है। प्रतीत होता है कि ५० लाख वर्ष पहले कोई ऐसी मानव जाति थी जो सभ्यतामें और शिल्पमें इतनी उन्नत और बढ़ी चढ़ी थी कि उनको यह भी पता था कि जूता, और वर्त्तमानमें प्रचलित ढंगका जूता, सीकर कैसे बनाया जाता है।

पाश्चात्य विज्ञान वेत्ताओंका अभीतक विश्वास था कि ५० हजार वर्ष पहले मानव जातिके पूर्व पुरुखाओंके देहपर बंदरोंके समान बाल होते थे और वह लाठी लेकर लड़ते थे। वह कामी, भयंकर, हिंसक और बन्दरके समान वनमानुस थे। अभी ज्ञानकी प्रथम सीढ़ीपर उन्होंने पैर ही रखा था। पर अब इन सब विचारों पर ५० लाख पुराने जूतेने बड़ा धक्का पहुँचाया है। विकासवादी अदूरदर्शी कल्पकोंको इस जूतेने जगा दिया है और अब उनके होश दुरुस्त हो गये हैं।

बड़े बड़े चतुर विद्वानोंने इस जूते पर दिमाग लगाया और उसकी परीक्षा की। उन्होंने पहले

समझा कि कदाचित् यह जूतेके आकारका नैसर्गिक पत्थर ही है। विद्वानोंका विचार है कि यह चट्टान मध्यारम्भ कल्प (triassic) की है; जिसमें पृथ्वी-तलकी लाल रेतकी तह तय्यार हो रही थी।

बूट बनानेवाले शिल्पियोंका कथन है कि यह जूतेका तला हाथका बनाया और सिया हुआ है।

डा० डब्लू० डी मैथ्यूका कथन है कि इसमें सब बातें जूतेकी मिलती हैं। इसमें वह सूत तक है, जिससे यह सिया गया था। वह समझते हैं कि यह एक अच्छा कुदरती नमूना है।

मि० रीडने उस जूतेके तलेके सब संदेह दूर करनेके लिए उसके सूत के भागपर खुर्दबीन लगा कर देखा। उन्होंने उसका फोटो भी लिया और रसायन द्वारा उसका विश्लेषण भी किया। विश्लेषणसे स्पष्ट सिद्ध हो गया कि यह जूतेका तला वस्तुतः ५० लाख वर्ष पुराना है। तीसरे कल्पकी चट्टानें प्रायः पचास लाखसे एक अरब तकके बीच की मानी जाती हैं। अब इससे यह बात तो स्पष्ट हो गयी कि ५० लाख बरस पहले इस भूमि तलपर जूता पहनकर अपनी शरीर रक्षा करनेवाले मनुष्य बसते थे।

क्या ५० लाख बरस पहले इतनी सभ्यता थी? क्या इतने पहले लोग जूता पहनते थे? ऐसे प्रश्न वैज्ञानिकों के पेटमें खलबली मचा देंगे। कमसे कम वैदिक सभ्यताको ३,४ हज़ार वर्ष पुराना मानते हुए यूरोपियन लोगोंके दिमाग चक्कर खाते थे। उनके लिए यह ५० लाख वर्ष पुराना जूता ही अकल सुधार देनेके लिए काफ़ी है।

खुर्दबीनसे देखनेसे यह भी स्पष्ट हो गया है कि सूत बटकर उससे जूतेकी सीवन की गयी है। दाहिनी ओरकी सीवन रह गयी है, बाकी सब नष्ट हो गयी है। थोड़े स्थानपर दोहरी सिलाई-की गयी है। क्षुद्र-आलोक चित्रको वस्तुसे २० गुना बड़ा किया गया है। उसमें उसका सब रहस्य साफ़ हो जाता है। उसमें सूत, सीवन, सूतकी बटाई, आदि सब साफ़ दीखते हैं। उसमें मनुष्यके हाथका शिल्प खूब साफ़ मालूम होता है। और मज़ा यह कि तलेमें सूईसे किये छेद भी साफ़ दीखते हैं। छिद्रोंमेंसे पारेका गन्धिद् उपलब्ध हुआ है; जिससे उसके तृतीय कल्पका होनेमें कोई सन्देह नहीं रह जाता। यह द्रव्य द्रव रूपमें मध्यारम्भ कल्पकी चूनेके शिलास्तरों मेंसे चूचू कर बहता है।

अस्तु इस प्राचीनतम वस्तुके पा जानेसे वैदिक सभ्यताका और भी प्राचीन होना सिद्ध हो जायगा। अभी तो ५० लाख पुराने जूतेसे ही विद्वानोंकी अकल ठिकाने आई है। यदि किसी ऋषि महर्षिका कमण्डलु हाथ आवेगा तब तो वह और भी चकरायेंगे।

तारा घड़ी

ह धन्य हैं जो समयका मूल्य जानते हैं और इसको व्यर्थ नहीं गंवाते। जो मनुष्य एक एक क्षणको अच्छे काममें लगाता है वही महापुरुषकी पदवी प्राप्त करता है। एक एक क्षणका हिसाब रखनेके लिए विद्वानोंने जल-घड़ी, बालूघड़ी, धूपघड़ी, तथा यंत्रघड़ी (आज कलकी घड़ी) का आविष्कार किया है। यह नाना प्रकारकी घड़ियां उस घड़ीकी नकल हैं जिसे परमेश्वरने स्वयम् अनादि कालसे रच रखा है और जो समय बतलानेमें तनिक भी कसर नहीं रखती। इस अनादि घड़ीसे दिनके घंटे मिनट सेकंड ही नहीं जाने जाते वरन् महीनों, वर्षों और युगोंकी जानकारी हो सकती है। इस विचित्र घड़ीकी सुइयां हैं—सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और तारे। जिस विद्यासे इन विचित्र सुइयोंको समझनेका ज्ञान होता है उसे ज्योतिषशास्त्र कहते हैं। आज "विज्ञान" के पाठकोंके मनोविनोदके लिए इस विचित्र घड़ीकी कुछ चर्चा की जायगी।

तारा घड़ीका वर्णन

इस घड़ीमें केवल उत्तर गोलके कुछ तारागण लिये गये हैं। चित्र ऐसा बनाया गया है कि केन्द्र-में आकाशका उत्तरी ध्रुव है। उत्तरी ध्रुवसे जितने अंतर पर तारे देख पड़ते हैं उसी हिसाबसे उनके स्थान दिखलाये गये हैं; जैसे प्रसिद्ध ध्रुवतारा आकाशके उत्तरी ध्रुवसे केवल एक अंश दूर है इस लिए इसका स्थान केन्द्रके पास ही दिखलाया गया है। यह लघु-सप्तर्षि नामक तारा-पुंजका अंतवाला तारा है। इसको लोग निश्चल समझते हैं क्योंकि उत्तरी ध्रुवके बिल्कुल पास होनेसे इसकी दैनिक गति स्थूल दृष्टिसे नहीं जान पड़ती। इसलिए यह सदैव उत्तर दिशामें देख पड़ता है। रातको ध्रुवतारेसे दिशाओंका ज्ञान सहज ही किया जा सकता है। इसके पास उत्तर दिशामें ऐसा चमकीला तारा दूसरा नहीं है। ध्रुवसे कोई १५° दूर एक तारा है, जो प्रायः इसी चमकका है और इसके पास ही एक और तारा है, जो इससे कुछ कम चमकका है। यह दोनों तारे सदा ध्रुवतारे-की परिक्रमा करते हुए देखे जाते हैं और उत्तरी तथा मध्यभारतमें कभी अस्त होते हुए नहीं दिखायी पड़ते। हां, दिनमें सूर्यके प्रकाशसे छिप अवश्य जाते हैं। ध्रुवतारे और इन दोनों तारोंके बीच ४ और तारे बहुत ही मन्द ज्योतिके हैं। इन्हीं सात तारोंको लघु सप्तर्षि कहते हैं। इसी प्रकार अन्य तारोंके स्थान भी निश्चय किये गये हैं।

केन्द्रसे, जो आकाशका उत्तरी ध्रुव है, पन्द्रह पन्द्रह अंशका कोण बनाती हुई २४ त्रिज्याएं खींची गयी हैं। जहां यह त्रिज्याएं चित्रकी सीमा बनाने-वाली भीतरी गोल रेखाको छूती हैं वहां १ से लेकर २४ तकके अंक क्रमसे लिखे हुए हैं। जहां १ लिखा हुआ है वहां १ घंटा, जहां २ लिखा है वहां २ घंटे, जहां ५ लिखा हुआ है वहां ५ घंटे इत्यादि समझने चाहियें। पास ही पासकी दो त्रिज्याओंके बीचके घंटेको चार समान भागोंमें बांट दिया गया है; इसलिए प्रत्येक भाग १५ मिनट का हुआ। १५ मिनटसे कम समयका निश्चय अनुमानसे कर लेना चाहिये। एक एक तारा-पुंज-में जितने तारे हैं वह सब कटी हुई पतली रेखाओं से जुड़े हुए हैं; जिससे जान पड़े कि कौन तारा किस पुंजमें है। किसी पुंजके प्रत्येक तारेके पास ही १, २, ३ इत्यादि अंक लिख दिये गये हैं, जिससे किसी विशेष तारेका नाम और पता सहज ही लगाया जा सकता है।

चित्रकी सीमा पर दो गोल रेखाएं पास पास खिंची हुई हैं, जिनका केन्द्र उत्तरी ध्रुव है। भीतरवाली गोल रेखासे घंटा मिनटका ज्ञान होता है, इसलिए इसको घंटा चक्र कह सकते हैं। बाहर-वाली गोल रेखा १२ असमान भागोंमें बटी हुई है। एक एक भागसे एक एक मासका बोध होता है। जो मास जहांसे आरंभ होता है वहीं उस राशिका नाम लिखा हुआ है, जिसकी संक्रान्तिसे उस मास का आरंभ होता है। जैसे मेष संक्रान्तिसे आरंभ होनेवाले वैशाख मासका नाम मेष राशिके साथ ही लिखा हुआ है। वृष संक्रान्तिसे आरंभ होनेवाले ज्येष्ठ मासका नाम वृष राशिके साथ दिया हुआ है। यह महीने सौर हैं और संक्रान्तिसे आरंभ होते हैं। मासकी तारीखोंके अंक चार चार दिनके अन्तरपर लिखे गये हैं। यदि किसी ऐसी तारीखका स्थान जानना हो जो चित्रमें नहीं लिखी हुई है तो अनु-मान से काम लेना चाहिये। जैसे कार्त्तिक मासकी १७ वीं तारीखका स्थान जानना हो तो उसे कार्त्तिक मास की १४ वीं और १८ वीं तारीखों के बीच ढूँढ़ना चाहिये। १४ और १८ अंकोंके बीचका स्थान १६ वीं तारीखका स्थान है। फिर इस स्थान और १८वीं तारीखके स्थानके बीचों बीच १७ वीं का स्थान है। इसी प्रकार अन्य तारीखोंका स्थान भी जाना जा सकता है। इसी प्रकार घन्टा चक्रमें जब ऐसे समयका स्थान जानना हो जो १५, ३०, ४५ मिनटोंके सिवा अन्य कोई हो तो अनुमान कर लेना चाहिये। यदि २२ मिनट हो तो वह १५ और ३० अंकोंके बीचमें होगा, २५ मिनट

हो तो ३० मिनट और ४५ मिनटके बीच उस विन्दुपर होगा जो ३० और ४५के बीचके अन्तरके तिहाई भाग पर है; इत्यादि।

इस लेख में कुछ पारिभाषिक शब्द आवेंगे इसलिए उनको भी स्पष्ट रूपसे जान लेना आवश्यक है। किसी स्थान पर खड़ा होनेसे ठीक सिर के ऊपरकी दिशामें जो विन्दु आकाशमें होता है उसे खस्वस्तिक कहते हैं। किसी मैदानमें खड़े होनेसे यह जान पड़ता है कि कुछ दूर चारों ओर पृथ्वी और आकाश मिले हुए हैं, जिस गोल रेखा पर आकाश पृथ्वीसे मिला हुआ जान पड़ता है उसको क्षितिज कहते हैं। क्षितिज के उत्तर विन्दु से खस्वस्तिक तक और फिर वहांसे दक्षिण विन्दु तक आकाशमें एक अर्द्धवृत खींच लीजिये तो यह वृत्त "याम्योत्तर वृत्त" कहलाता है। सूर्य ग्रह या तारा पूरबमें उदय होकर याम्योत्तरवृत्त तक चढ़ता हुआ जान पड़ता है, फिर ढलने लगता है। सूर्य जब यहां आता है तभी मध्याह्न होता है और किसी वस्तुकी छाया सबसे छोटी होती है। यों तो ऐसा कोई न होगा जिसे पूर्व, पच्छिम, उत्तर,
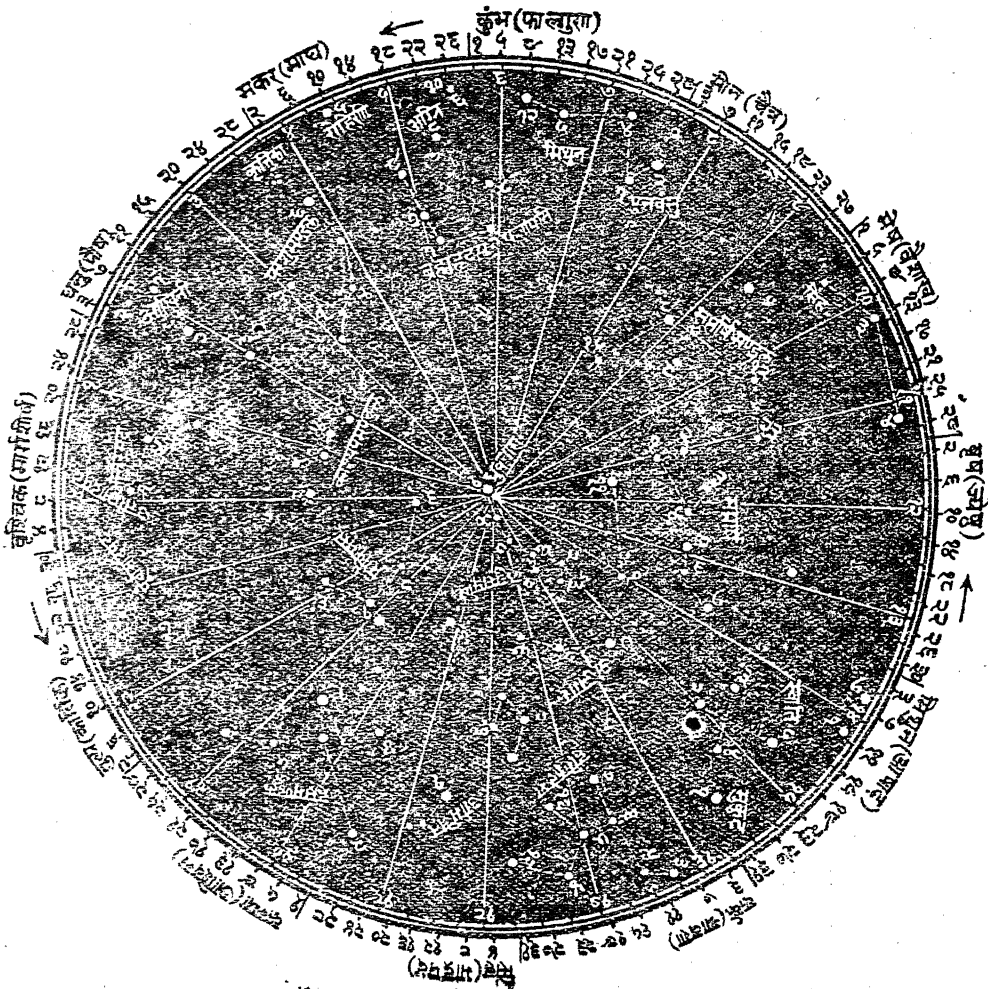
दक्खिन दिशाओंका स्थूल ज्ञान न हो परन्तु ठीक ठीक ज्ञान बहुत कम लोगोंको होगा। उनको चाहिये कि सबसे पहले वह ध्रुव तारेका स्थान जान लें। यह आकाशके उत्तरी ध्रुवके बिल्कुल पास है, इसीलिए स्थूल रीतिसे देखनेवालोंको अन्य तारोंकी भांति चलता हुआ नहीं जान पड़ता। यदि आप खस्वस्तिककी ओर देख कर अपनी आंखें क्षितिजके किसी बिन्दुकी ओर ले जाइये तो इतनी देरमें आपकी आखें ९० अंश(९०°) घूम जाती हैं। ध्रुवतारा क्षितिजके उत्तरी बिन्दुसे कलकत्तेमें २२½ अंश ऊपर है और दिल्लीमें २८½ अंश ऊपर है। कलकत्तेसे दिल्ली तक जानेमें बीचके स्थानोंसे वह क्रम क्रमसे ऊंचा देख पड़ता है जैसे काशी प्रयागसे २५° ऊंचा, लखनऊ से २७° ऊंचा, हरिद्वारसे ३०° ऊंचा। उत्तरी क्षितिजके पास इसके समान चमकीला तारा दूसरा नहीं है। हां, लघु सप्तर्षिका दूसरा तारा प्रायः इतनी ही चमकका है। परन्तु वह उत्तरी ध्रुवसे कोई १५½ अंश दूर है। इसलिए वह सदैव ध्रुव तारेकी परिक्रमा लगाता हुआ देख पड़ता है। दूसरे तारेके पास ही एक तीसरा तारा भी है जो चमकमें तो इससे कुछ कम है पर चान्दनी रातमें भी स्पष्ट देख पड़ता है। यह दोनों तारे ध्रुवतारेके चारों ओर घूमते रहते हैं और मध्य तथा उत्तरी भारतमें किसी समय क्षितिजके नीचे नहीं जाते। रातको चाहे आप सन्ध्याके समय देखिये चाहे प्रातःकाल यह सदैव दिखायी पड़ते हैं। कोई कोई आदमी इन दोनों तारोंके स्थानोंसे समयका पता लगा लेते हैं।

ध्रुवतारेको पहचाननेके लिए भूगोलकी पुस्तकोंमें बतलाया गया है कि सप्तर्षिके उन दोनों तारोंको मिलानेवाली दिशामें उत्तरकी ओर बढ़िये तो ध्रुवतारेके पास पहुंच जाइएगा, जो उत्तर पूरबकी क्षितिजमें सबसे पहले उदय होते हैं अथवा उत्तर पश्चिम क्षितिजमें सबसे पहले अस्त होते हैं। गरमीके महीनोंमें यह सातों तारे संध्या होते ही खस्वस्तिकसे कुछ ही उत्तर देख पड़ते हैं; इसलिए उन महीनोंमें इस रीतिसे ध्रुवतारेकी पहचान सहज ही हो सकती। परन्तु कुआर कार्तिक या अगहनके महीनोंमें सप्तर्षि संध्याके समय नहीं दिखायी पड़ता; इसलिए शरद या शीत ऋतुमें सप्तर्षिकी सहायतासे काम नहीं चलता। हां सप्तर्षिके भाई बंधु काश्यप मण्डलसे यह काम वैसा ही निकल सकता है। जैसे सप्तर्षिमें सात तारे ऐसी आकृति बनाते हैं कि उनको पहचान लेना कोई कठिन नहीं होता वैसे ही काश्यप मण्डलके ५ चमकीले तारे भी एक विशेष आकृति बनाते हैं। यह आकृति अंग्रेज़ीके डबलू (W) अक्षरके समान होती है। कार्त्तिक मासमें १० बजे रातके लगभग और मार्ग शीर्ष मासमें ८ बजेके लगभग काश्यप मण्डल यामोत्तर वृत्तपर आता है। उस समय इसकी आकृति M की तरह देख पड़ती है और यह खस्वस्तिकसे कोई ३०, ३५ अंश उत्तरकी ओर रहता है। मोटे हिसाबसे यों समझ लीजिये कि खस्वस्तिकसे जितना नीचे उत्तरकी ओर यह रहता है, इससे प्रायः उतना ही नीचे उसी दिशामें ध्रुवतारा रहता है। इस समय उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रके दोनों तारे (चित्रमें केवल उत्तरवाला तारा या अन्तरमदाका १ला तारा दिखलाया गया है।) काश्यप मण्डलका पच्छिमवाला तारा जिसको २ अंकसे सूचित किया गया है, सिफियसका तीसरा तारा तथा ध्रुवतारा पांचों प्रायः यामोत्तर वृत्त पर देख पड़ते हैं।

समय जाननेकी रीति

जिस महीनेकी जिस तारीखकी रातको समय जानना हो वह महीना और तारीख बाहरी गोल रेखा पर, जिसे मासचक्र कह सकते हैं, ढूंढ लीजिये। वहींसे केन्द्रकी ओर बढ़िये और देखिये कि पास ही घंटा चक्र पर कौन घंटा और मिनटका स्थान राहमें पड़ता है। इसको याद कर लीजिये और केन्द्रकी ओर बढ़ते ही जाइये और देखिये कि कौन तारा मार्गमें पड़ता है। उस दिन ८ बजे संध्याको

यही तारा यामोत्तर-वृत्त पर रहेगा। आठ बजेके पहले देखनेसे यामोत्तर-वृत्तसे पूरब और पीछे देखनेसे यामोत्तर-वृत्तसे पच्छिम होगा। उसी रातके किसी और समयका निश्चय करनेके लिए आकाशको देखिये कि कौन तारा यामोत्तरवृत्त पर या उसके पास है। इसकी पहचान करनेके लिए ध्रुवतारेको देख कर उसके ऊपर खस्वस्तिक की ओर आंख ले जाइये और देखिये कि सीधमें कोई तारा पड़ता है या नहीं। यदि कोई तारा यामोत्तर वृत्त पर न हो तो देखिये कि उससे कितना पूरब या पच्छिम है। फिर चित्रको देखिये कि वह तारा किस घंटा मिनट पर है। बस इस घंटा मिनटमें से ८ बजेवाला घंटा मिनट अर्थात् उसी तारीखके सामने वाला घंटा मिनट घटा दीजिये। जो शेष बचे वही समय ८ बजेके बाद बीता है। इस लिए यदि शेषको ८ में जोड़ दीजिये तो रातका समय मालूम हो जायगा। यदि पीछेवाला घंटा मिनट ८ बजे वाले घंटा मिनट से कम हो तो २४ जोड़ कर घटाइये। यदि आठ बजेके पहले समय जानना हो तो आठ बजेवाला घंटावृत्त यामोत्तरवृत्त पर नहीं आया रहेगा इसलिए उस समय जो आया हो उसे ८ बजे वालेमें से घटा दीजिए जो शेष बचे उतने ही समय पीछे आठ बजेगा। इसलिए शेषको आठमें से घटा दीजिये तो समय निकल आवेगा।

उदाहरण १—मान लीजिये सौर कार्त्तिककी १८वीं तारीखकी रातको समय जानना है। यह तारीख घंटा चक्रके २२ घंटा ३६ मिनटके पास है, केन्द्रकी ओर बढ़नेसे पूर्वा-भाद्रपद नक्षत्रका ७वां तारा राहमें पड़ता है और सिफियसका तीसरा तारा कुछ पूरब रह जाता है। इसलिए इस तारीखको जब आकाशमें पूर्वा-भाद्रपदका सातवां तारा यामोत्तरवृत्त पर आवेगा और सिफियसका तीसरा तारा कुछ पूरब रहेगा तब आठ बजेंगे। अब यदि इसी रातको किसी और समय आप देखते हैं कि काश्यप मण्डलका दूसरा तारा यामोत्तर वृत्त पर है तो समय इस प्रकार जानना चाहिये। चित्रमें ध्रुवतारेसे काश्यप मण्डलके दूसरे तारेको मिला कर उसे घंटाचक्र तक ले गये तो वह रेखा २४ घंटा और प्रायः ५ मिनटके स्थान पर पहुंचती है इसलिए इस समयका घंटाचक्र हुआ २४ घंटा ५ मिनट। परन्तु आठ बजे रातका घंटा चक्र था २२ घंटा ३६ मिनट इसलिए ८ बजेके बाद २४ घंटा ५ मिनट—२२ घंटा ३६ मिनट अर्थात् १ घंटा २९ मिनट वा डेढ़ घंटा रात बीती है। इसलिए इस तारीखको जिस समय काश्यप मण्डलका दूसरा तारा यामोत्तर वृत्त पर आवेगा उस समय ८ घं० + १घं० ३० मिनट वा साढ़े नौ बजे होंगे।

उदाहरण २—यदि इसी रातको परशु मण्डलका १ला तारा यामोत्तरवृत्त पर देख पड़े तो चित्रमें ध्रुवतारेसे परशु मण्डलके पहले तारे तक एक रेखा कल्पनामें खिंच लीजिये और उसको घंटा चक्र तक बढ़ा ले जाइये तो मालूम होगा कि यह घंटा चक्रके उस विन्दु पर पहुंचती है जहां ३ घंटा २० मिनट पड़ता है। परन्तु आठ बजे रातको घंटा चक्रका स्थान था २२ घंटा ३६ मिनट। यहां ३ घंटा २० मिनट, २२ घंटा ३६ मिनटसे कम है। इसलिए २४ जोड़ा तो हुआ २७ घंटा २० मिनट। इसमें से २२ घंटा ३६ मिनट घटाया तो शेष ४ घंटा ४४ मिनट। ८ बजेके बाद बस ४ घंटा ४४ मिनट रात बीती है, इसलिए १२ बजकर ४४ मिनट वा पौने एक बजेका समय है।

उदाहरण ३—यदि इसी रातको आप देखते हैं कि सिफियसका दूसरा तारा यामोत्तरवृत्त पर है तो चित्रके ध्रुव तारेसे सिफियसके दूसरे तारे तक एक काल्पनिक रेखा खींच दीजिये और इसको घंटा चक्र तक बढ़ा दीजिये तो मालूम होगा कि यह घंटा चक्रके २१ घण्टा २० मिनट पर पहुंचती है। परन्तु ८ बजे रातको घण्टा चक्रका २२ घण्टा ३६ मिनट यामोत्तरवृत्त पर आता है; इसलिए आठ बजनेमें अभी २२ घण्टा ३६ मि०—२१ घण्टा

२० मिनट अर्थात् १ घण्टा १६ मिनट बाकी है। इसलिए पौने सात बजेका समय है।

उदाहरण ४—पौष मासकी दसवीं तारीखको काश्यप मण्डलका ५वाँ तारा तथा सप्तर्षि मण्डलका १५वाँ तारा किस समय यामोत्तरवृत्तपर आवेगा?

तारा घड़ीमें पहले पौषकी दसवीं तारीखका स्थान निश्चय कीजिये। पौषकी सातवीं तारीख ठीक २ घण्टा पर है और ११वीं तारीख २ घण्टा १७ मिनटके लगभग है। इसलिए दसवीं तारीख २ घण्टा १२ मिनटके पास होगी। यही आठ बजे के घण्टा चक्रका स्थान है। काश्यप मण्डलका ५ वां तारा २ घण्टावाली त्रिज्यासे कुछ पच्छिम है इसलिए यदि ध्रुव तारा और इसको मिलाने-वाली रेखा घण्टा चक्र तक बढ़ायी जायगी तो वह प्रायः १ घण्टा ५० मिनट पर पहुंचेगी। इसलिए जिस समय यह तारा यामोत्तरवृत्त पर आवेगा घण्टा चक्रका १ घण्टा ५० मिनट यामोत्तरवृत्त पर रहेगा। परन्तु आठ बजेका घण्टा चक्र २ घण्टा १२ मिनट पर है, इसलिए आठ बजने से २ घण्टा १२ मिनट—१ घण्टा ५० मिनट अर्थात् २२ मिनट पहले ही यह तारा यामोत्तरवृत्त पर आवेगा। इस लिए उस समय ७ बज कर ३८ मिनट होगा।

इसी प्रकार देखने से जान पड़ेगा कि सप्तर्षि मंडलका १५वां तारा ८ घण्टा २५ मिनट पर है। इसलिए इसके यामोत्तरवृत्त पर आनेके समय आठ बजनेके बाद ८ घण्टा २५ मिनट—२ घण्टा १२ मिनट अथवा ६ घण्टा १३ मिनट बीत चुका रहेगा और ८ घण्टा + ६ घण्टा १३ मिनट अर्थात् १४ घण्टा १३ मिनट वा सवा २ बजेका समय होगा।

तारोंकी पहचान—इस चित्रसे कोई १०० उत्तर वाले तारोंकी पहचान सहज ही हो सकती है। ऊपरके उदाहरणोंसे यह बात सहज ही जानी जा सकती है कि कौन तारा या तारापुंज किस समय यामोत्तरवृत्त पर आवेगा। आकाशको उसी समय देखनेसे उन तारों या तारापुंजोंकी पहचान हो सकती है।

दो चार मास अभ्यास कर लेनेके बाद इस चित्रसे रातका समय तुरन्त ही जाना जा सकता है; परन्तु यह ध्यान रहे कि यह समय सूर्यका स्पष्ट काल है। इससे और रेलको मिली हुई घड़ियोंके समय से अंतर रहता है। जब ठीक मध्याह्न होता है तब किसी खड़ी वस्तुकी छाया सबसे छोटी होती है और सूर्य यामोत्तरवृत्त पर रहता है। यदि इस समय घड़ीमें १२ बजा लिया जाय तो इससे जो समय जाना जाता है उसको स्पष्ट काल कहते हैं। स्पष्ट काल और रेलके टाइममें जो अंतर होता है वह सदा समान नहीं होता। यह स्थान और मासके अनुसार बदलता है। यदि किसी दिन और किसी स्थानका अन्तर जानना हो तो यों जानना चाहियेः—

घड़ीको रेलके टाइमसे मिला लीजिये; फिर देखिये कि दूसरे दिन ज्योंही सूरज वा पूरा विम्ब क्षितिजके ऊपर निकल आवे त्योंहीं घड़ीमें क्या समय है। इसको लिख लीजिये। सूर्यास्तके समय देखिये कि सूरजका विम्ब कब क्षितिजको छूता है। इसको भी लिख लीजिये। सूर्योदयसे सूर्यास्त तकका जो समय हो उसका आधा कर लीजिये और इस आधेको सूर्योदयके समयमें जोड़ दीजिये। जोड़नेसे जो आवे उतनेही बजे सूरज ठीक यामोत्तरवृत्त पर होता है और इसी समय स्पष्ट मध्याह्न होता है। धूप घड़ीमें इसी समय १२ बजता है। रेलके टाइमसे मिली घड़ीके १२ बजे और सूर्यके ठीक यामोत्तर-वृत्त पर आनेके समयमें जो अंतर हो वही अंतर रेलवे टाइम और तारा घड़ीसे निकले हुए टाइममें उस दिन होता है। जैसे किसी दिन रेलके टाइम-से सूर्योदय ५ बज कर ४६ मिनट और सूर्यास्त ६ बजकर ३४ मिनटपर हुआ तो सूर्योदयसे सूर्यास्त तकका समय हुआ ६ घंटा ३४ मिनट + १२ घंटा —५ घंटा ४६ मिनट अर्थात १२ घंटा ४८ मिनट। इसका आधा हुआ ६ घंटा २४ मिनट। अब इसको सूर्योदयके समय ५ घंटा ४६ मिनटमें जोड़ा तो हुआ १२ घंटा १० मिनट। इस लिए जब रेलके

टाइमसे मिली हुई घड़ीमें १२ बजकर १० मिनट होगा तब सूर्य ठीक याम्योत्तरवृत्त पर आवेगा और धूप घड़ीमें १२ बजेगा। इसलिए इस दिन धूप घड़ी १० मिनट सुस्त रहेगी।

इस तारा घड़ीके द्वारा जो समय निकलेगा वह यथार्थ समयसे संभव है ६, ७ मिनट आगे पीछे हो। इससे अधिक अंतर नहीं पड़ सकता।

—महावीरप्रसाद श्रीवास्तव

१८ वर्षके बाबाका पोता

बेजलो (हालैण्डमें) स्थान पर एक ४५ वर्षकी विधवाने एक १८ वर्षके नवयुवकसे विवाह कर लिया है। औरतके पहले पतिसे कई लड़के थे, जिनमेंसे एक २२ वर्ष का है और उसके बच्चे भी हैं। इस प्रकार यह नव पति १८ वर्षकी अवस्थामें इस सम्बन्धसे कई बच्चोंका बाबा और अपने से ४ वर्ष बड़े पुरुषका बाप हो गया है। धन्य है यूरोपकी व्यवस्था।

देसी ग्रामोफ़ोनका बच्चा

डीसनने संसारमें एक बड़ा भारी आविष्कार किया कि ग्रामाफ़ोन और फोनोग्राफ़ बनाकर एक जड़ पदार्थको भी जीवोंके समान बोलनेकी शक्ति दे दी। मनुष्यकी वाणी तक मशीनमें भर दी। परन्तु यह बुद्धि केवल विलायतके दिमागोंमें ही नहीं है। परन्तु भारतीय शिल्पी भी यदि प्रयत्न करें तो नवीन मार्गसे इसपर पग रख सकते हैं।

फोनोग्राफ़में एक वेलनपर बनी रेखाओंमें विशेष समताओं और विषमताओंमें चलती हुई सूईके कम्पनसे मनुष्य वाणी उत्पन्न होती है। परन्तु प्रभुने इतने मनुष्य पुतले बनाये और एकमें भी न तो सिलैण्डर और न सूई, कुछ भी नहीं लगाया। केवल गलेका छिद्र, छातीकी हवा और मुखका छोटा बड़ा होना इतनेसे ही ६३ वर्णोंका उच्चारण हो जाता है।

इसी ईश्वरीय नियमके अनुसरण पर मैंने भी एक ग्रामाफ़ोनका बच्चा देखा है। पाठक आश्चर्य न करें। सुनिये, इसका दाम एक पैसा है। यह प्रायः काशीके मेलोंमें कभी कभी विकने आया करता है। इसका नाम है 'पीपनी'। इसकी लम्बाई एक अंगुली भर अर्थात् लगभग डेढ़ गिरह है। यह नरसलकी आधी पोरीकी बनायी जाती है।

एक स्थान पर (क) इस नलीको चीर दिया जाता है। यह साधारण बच्चोंका खेल है। यह नरसलकी सीटी है।

एक कारीगरने ३ सौ चार सौ पीपनियोंका ढेर अपने सामने एक कपड़े पर लगा रखा था और पैसेकी दो और पैसेकी एकके भावसे छोटी और बड़ी दो प्रकारकी बेच रहा था। परन्तु अपने विज्ञापनके लिए उसने एक विचित्र ढंग निकाला था। वह एकको हाथोंमें लेकर उसके क भागको मुखमें डालकर फूंक देता था। जब शब्द निकलता था तो हाथोंकी बनी अंजलीको कभी बन्द करता और कभी खोलता था। मैं कई घड़ी तक यह लीला देखता रहा। उसके हाथोंमेंसे यह शब्द स्पष्ट सुन पड़ते थे "हायरे' 'हायरे' 'हायरे मेरी मैय्या" वह इन्हीं शब्दोंको अञ्जलियोंकी तीव्र और मन्दगतिसे, कभी जल्दी और कभी विलम्बसे, लम्बा करके निकालता था कि सुन कर दर्शकोंका ध्यान खिंचता और दया आती थी। उसमेंसे बड़ी दमनीय आवाज़ निकलती थी, जिससे खिंचकर मेलेके यात्रियोंने पैसे पैसेमें उसकी पीपनियां बड़े चावसे लीं।

मैंने भी दो लीं और बजाने लगा। मैं भी हाथोंको उसी तरहसे हिलाता था। मैंने देखा कि सचमुच मनुष्यकी वाणीके और भी बहुतसे स्वर

और वर्ण उसमेंसे निकल सकते थे। फलतः यह एक अशिक्षित शिल्पीकी चतुरता है। यदि शब्द विज्ञानके भारतीय विद्वान इसपर ध्यान दें तो बड़ा उत्तम आविष्कार हो सकता है।

—जयदेव शर्मा

ज़हरका भोजन

जांच पड़ताल करनेसे पता लगा है कि हम अपने खानेके पदार्थोंके साथ कितना ही विष भी खा जाते हैं। एक डाकृरने दर्शाया है कि भेड़के मांस-में बहुत सा अंश शोरेका होता है। एक तोला शोरा फांक लेने पर आपको तुरन्त पता लग जायगा कि यदि आप मर न जांयगे तो भी अधमरे अवश्य हो जांयगे। एक औंस शोरा आदमीको दो घण्टेमें मार देता है। बहुत से लोग अन्य लवणोंके भ्रममें शोरा खा लेते हैं तो बड़ा दुःख भोगते हैं। ऐसे बहुत से दृष्टान्त सुने जाते हैं।

लवणसे मौत—चीनमें एक प्याला भर साधारण लवण भी खा कर आत्म हत्या कर लेनेका रिवाज है। लवणकी थोड़ी मात्रा, पाचन शक्तिको उत्तेजना देती है।

कई प्रकारके लवणोंमें ओक्ज़ेलिक एसिड होता है। पर्याप्त मात्रामें यही जीवनका अन्त कर देता है।

बोब्लो और किप्पर नामक मछ्लियां प्रायः धुएंमें भूनी जाती हैं। उनमें फार्मेलडिहाइडका अंश होता है। इसी कारण उनके भोजनसे प्रायः पेटमें दर्द और बड़ी दुविधा हो जाती है।

बर्फकी किस्मसकेकमें भी थोड़ी मात्रामें विष का योग होता है। इसीसे उसका बादामसा स्वाद बड़ा मनोहर हो जाता है। उसमें प्रुसिक एसिड होता है; जिसका आधा औंस कई आदमियोंको क्षणमें चौपट कर देता है। बहुत से सस्ते मुरब्बोंमें कुचले या संखियाका योग दिया जाता है।

इसी प्रकार लौंग, काली मिर्च, लाल मिर्च आदि एक प्रकार से विष हैं। अधिक मात्रामें इनको खा कर भी देहकी दुर्दशा हो जाती है।

काली मिर्चमें खारवाला जहर होता है। लाल मिर्च भी उसकी बड़ी बहन होती है। एक औरतने दुःखमें आधी छटांक लाल मिर्च खा कर ही समाधि ले ली।

सभी डाकृरोंकी सम्मति है कि चाय या काफी में विषका पर्याप्त अंश होता है। उनका अधिक पीना देहके लिए हानिकर है।

—जयदेव शर्मा

कास्टिक सोडा

का-स्टिक सोडा और सोडा-के नामोंकी समानता-से अनेक भ्रम पैदा हो जाते हैं। एक सज्जन, जिनको व्यवहारिक विज्ञानसे बड़ा प्रेम है, एक दिन एक मित्रको कास्टिक सोडा बनाने-की विधि बतला रहे थे। बेचारे अपने दि-मागपर बहुत ज़ोर देकर समझानेका प्रयत्न कर रहे थे; कहने लगे कि कास्टिक सोडाका कास्टिक अलग करनेसे सोडा बनता है। इसीलिए सोडामें चूनेके संस्कारसे कास्टिक मिला देने भरसे कास्टिक सोडा बन जाता है। यह अंग्रेज़ी शब्दोंका भ्रम जाल है। जब ज़िंक ओक्साइडका अर्थ है ज़िंक और ओषजनका यौगिक तो कास्टिक सोडाका अर्थ अनुमानसे कास्टिक और सोडाका यौगिक निकाल लेना स्वाभाविक है। इसी भ्रमको दूर करनेके उद्देश्यसे यह लेख लिखा जा रहा है।

कास्टिक सोडा और सोडा वस्तुतः उस प्राचीन समयके शब्द हैं जब इन दोनों पदार्थोंके

संगठनका ज्ञान नहीं था। दोनों पदार्थ एक ही समझे जाते थे। केवल उनके गुणोंमें अन्तर माना जाता था। कास्टिक किसी पदार्थका नाम नहीं है। वह एक विशेषण है, जिसका हिन्दी रूपान्तर है, 'दाहक'। अतएव कास्टिक गुण वाचक शब्द है, न कि संगठन सूचक।

कास्टिक सोडा ३०, ४० वर्ष पहले सोडाको चूनेके साथ उबाल कर बनाते थे। यदि उस विधिकी परीक्षा करनेकी इच्छा हो तो एक सेर सोडा २ सेर पानीमें डाल कर उसमें १ सेर खानेका बुझाया हुआ चूना अथवा तीन पाव कलीका चूना, बिना बुझा, मिलाकर उबालिये। थोड़े थोड़े समयके पश्चात् थोड़ा सा घोल लेकर नितार कर या छान कर (पांच चार बूंद काफ़ी होगा) उसमें अमचूरका साफ घोल मिलाइये। जब गैस निकलना बन्द हो जाय तब समझिये कि कास्टिक सोडा बन गया। उतार कर छान लीजिये। जो घोल मिले उसे पहले लोहेकी कढ़ाईमें गाढ़ा कर लीजिये और बादमें चांदी या निकिलकी कढ़ाईमें।
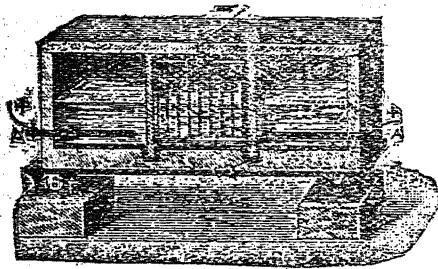
चित्र २६—कास्टिक सोडा बनानेका यन्त्र

सोडा (सो$_2$ क ओ$_3$) और बुझे हुए चूने (ख (उओ)$_2$) की क्रियासे दाहक सोडा (सो उ ओ) और खड़िया (ख$_2$ क ओ$_3$) बन जाती है:—

$$\text{सो}_2\ \text{क}\ \text{ओ}_3 + \text{ख}\ (\text{उ}\ \text{ओ})_2$$
$$= \text{ख}\ \text{क}\ \text{ओ}_3 + 2\ \text{सो}\ \text{उ}\ \text{ओ}$$
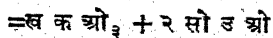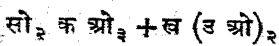
परन्तु इस सम्बधमें एक बात याद रखनी चाहिये। यह क्रिया दो मुंही है, अर्थात् सोडा और चूनेकी क्रियासे कास्टिक सोडा और खड़िया बन जाती है और कास्टिक सोडा और खड़ियाके संयोगसे सोडा और चूना बन जाता है। अतएव घोलोंको आरम्भमें पतला रखना पड़ता है। गाढ़ा दाहक सोडाका घोल खड़ियाको सहज ही घुला लेता है।

आजकल कास्टिक सोडा बिजलीसे बनाया जाता है। एक चौकोर बरतन लेकर उसके तीन खाने बना लिये जाते हैं। बरतनके पेंदेपर $\frac{1}{2}$ इञ्च मोटी पारेकी तह रहती है। बीचके परदे मसामदार नहीं होते; ऊपरसे लटके रहते हैं और उनके निचले सिरे सकड़ी नालियोंमें लटके रहते हैं। इन नालियोंमें पारा भरा रहता है।

यह परदे पेंदेका स्पर्श नहीं करते, इसी कारण जब इस बरतनको धीरे धीरे हिलाते हैं तो पारा एक खानेमेंसे पासवालेमें आता जाता रहता है। अगल बगलके खानोंमें नमकका घोल भर देते हैं; बीचवालेमें शुद्ध जल रहता है। बीचवाले खानेमें ही ऋण पट (Cathode) रहता है। यह कई धातुकी पटरियोंका समूह मात्र होता है और विद्युत यंत्रके ऋण छोरसे संबद्ध रहता है। दाएं बाएंके खानोंमें ग्रेफाइटके धन पट (anode) लगे रहते हैं, जिनका सम्बन्ध विद्युत यंत्रके धन छोरसे रहता है। जब बिजलीकी धारा जारी कर दी जाती है तो धन पटोंमेंसे प्रवेश कर पारे तक पहुंचती है। अतएव दोनों खानोंमें हरिन गैस पैदा होकर नलियों द्वारा बाहर निकलने लगती है। उधर सोडियमके वाहक कण धाराको लिये हुए पारेमें समा जाते हैं, उसमें घुल जाते हैं। अतएव दोनों छोरके खानोंमें पारा ऋण पटका काम करता है। जब बक्स हिलाया जाता है तो पारा बीचके खानेमें जाकर पानीके सम्पर्कमें आता है। पारेमें घुला सोडियम तब पानीमें घुल घुल कर का-

स्टिक सोडा और उज्जन गैस बनाता है। गैस तो पैप द्वारा बाहर निकल जाती है, कास्टिक सोडा घुला रह जाता है। बक्सके हिलानेके लिए केन्द्रच्युत पहिये से काम लेते हैं। जब यह घूमता है तो कभी बक्सके एक सिरेको, जो उसपर रखा रहता है, उठाता है और कभी नीचा कर देता है। सोडा कास्टिक बनाने की कास्टनर द्वारा आविष्कृत विधि यही है।

—करामत हुसेन कुरैशी

ऊँचा तापक्रम

साधारणतया शुद्ध जलसे बनी बरफ़ जिस दर्जेकी गरमीपर पिघलती है उस गरमीके दरजेको, तापक्रमको, शतांश पद्धतिमें शून्य मानकर चलते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें तापकी मात्रा शून्य है, केवल नापनेकी सुविधाकी दृष्टिसे यह बात मान ली गयी है। बरफमें भी गरमी है, उसकी गरमी क्रमशः निकालनेसे अधिकाधिक नीचे तापक्रम मिलते जाते हैं। पदार्थोंके अणुओंकी गतिका ही दूसरा नाम ताप है। सैद्धान्तिक दृष्टिसे अणु गतिहीन हो सकते हैं, यदि उनको शतांश ताप-मानके हिसाबसे—२७३° श तक ठंडा कर दिया जाय। अतएव—२७३° श को केवल शून्य (absolute zero), सरदीकी पराकाष्ठा अथवा तापके पूर्ण अभावका विन्दु मानते हैं।

शतांश पद्धतिके अनुसार मनुष्यके शरीरका तापक्रम ३६° श है। डाक्टर लोग फारनहैट पद्धतिका उपयोग करते हैं। इस दूसरी पद्धतिमें शुद्ध बरफके गलनेके तापक्रमको ३२° और पानीके खौलनेके तापक्रमको (यदि वायुका दबाव ७६० सहस्रांशमीटर हो और पानी भी शुद्ध हो) २१२° मानते हैं; अतएव जिस तापान्तरको शतांश पद्धतिमें १०० भागोंमें बांटा है उसे फारनहैट पद्धतिमें १८० भागोंमें विभक्त किया है। अतएव यदि फारनहैट डिग्रियोंको शतांशोंमें बदलना हो तो ३२ घटाकर $\frac{5}{9}$ से गुणा कर लेना चाहिये। और यदि शतांश डिग्रीको फा० डिग्रीमें बदलना हो तो $\frac{9}{5}$ से गुणाकर ३२ जोड़ देना चाहिये। मनुष्य आदि प्राणियोंके देहोंका तापक्रम प्रायः ३६° श होता है। इससे अधिक तापक्रम रोगका चिह्न होता है। यदि तापक्रम अधिक बढ़ जाता है तो मृत्यु तक हो जाती है।

अब देखना यह है कि तापक्रम बढ़ानेका पदार्थोंपर क्या प्रभाव पड़ता है। बरफका टुकड़ा एक गिलासमें रखकर उसके नीचे मन्दी मन्दी आंच दीजिये। क्रमशः वह पिघलेगा। जब सब पिघल चुकेगा तो पानीका तापक्रम ०° से अधिक होने लगेगा। जब तक बरफका छोटा सा भी कण पानीमें रहेगा, पानीका तापक्रम ०° श रहेगा। इसीलिए इस तापक्रमको बरफका द्रवण विन्दु मानते हैं। (किसी पदार्थका द्रवण विन्दु वह तापक्रम है, जिसपर कि ठोस और द्रव साम्यावस्थामें रह सकते हैं, अर्थात् न ठोस द्रवमें बदलेगा और न द्रव ठोसमें। यदि बाहरसे ताप दिया जायगा तो ठोस धीरे धीरे द्रवमें बदल जायगा, पर तापक्रम नहीं बदलेगा। जब सब ठोस गल जायगा, तब तापक्रम बढ़ेगा। इसी प्रकार यदि ताप निकाल दिया जाय तो द्रव ठोसमें परिणत हो जायगा; परन्तु जब तक सब द्रव ठोसमें न बदल जायगा तापक्रम नहीं बदलेगा। इसी प्रकार जब द्रवसे वाष्प बनती है या वाष्पसे द्रव तब भी तापक्रम नहीं बदलता।) जब तापक्रम १००° श हो जायगा पानी क्रमशः भापमें बदलने लगेगा। इसी प्रकार अन्य पदार्थोंके विषयमें समझना चाहिये।

यह स्पष्ट होगया कि तापक्रम बढ़ानेसे ठोस द्रवमें और द्रव वाष्पमें बदल जाता है। यदि वाष्पको ठंडा करलें तो वाष्पसे फिर द्रव बन जायगा।

जब पानीको साफ करना होता है, तो देगमें पानी गरम करते हैं और भपकेमें वाष्पको ठंडा करते हैं। पानीमें जो उड़नशील पदार्थ मिले रहते हैं वह इस प्रकार नहीं अलग किये जा सकते हैं, किन्तु अन्य ठोस घुले हुए पदार्थ अलग किये जा सकते हैं। उड़नशील पदार्थ भी थोड़े बहुत अलग हो ही जाते हैं; पर उनके साथ परिश्रम अधिक करना पड़ता है। उनको कई बार देगमें चढ़ाना पड़ता है और वाष्पको अलग अलग बरतनोंमें जुदे जुदे तापक्रमों पर इकट्ठा करना पड़ता है। ठोस न उड़नेवाले पदार्थोंको अलग कर देनेके लिए तो एक बार ही देगमें चढ़ाना पर्याप्त होता है, इस क्रियाको 'स्रवण' कहते हैं। पानीमें घुले नमक आदि पदार्थ देगमें बच रहते हैं, पानी वाष्प में परिणत होकर भपकेमें पहुंचता है और वहां फिर द्रव हो जाता है।

पारा, जस्ता, रांगा आदि धातुएं भी स्रवण द्वारा लोहे तांबे आदिसे अलग की जा सकती हैं।

तापक्रम बढ़ानेसे ठोस द्रवमें और द्रव वाष्पमें परिणत हो जाता है, किन्तु एक बात और होती है। परमाणुओंके बंधन, जिनमें जकड़ कर वह अणु बनाते हैं, तापक्रम बढ़नेसे ढीले हो जाते हैं। तापक्रम बढ़नेका अर्थ है अणुओंका वेग बढ़ जाना। जब अणुओंका वेग बढ़ जाता है, तो उनके अवयवी परमाणु भी अधिक वेगसे उनके भीतर ही चक्कर लगाने लगते हैं। परिणाम यह होता है कि उनका परस्पर आकर्षण कमजोर हो जाता है। यदि तापक्रम पर्याप्त बढ़ जाता है तो अणु टूटने लगते हैं। या तो उनसे अधिक सरल अणु बन जाते हैं या परमाणु अलग अलग होकर समस्त अवयवी मौलिक प्राप्त हो जाते हैं।

यदि किसी मौलिकको तपायें तो ठोससे द्रव और द्रवसे वाष्प बनती है और ठंडा होने पर फिर ठोसका ठोस रह जाता है; परन्तु कभी कभी वह अपना रूप और गुण दोनों बदल लेता है। ऐसे मौलिक बहुरूपिये कहलाते हैं। जैसे पीले फास्फोरसको गरम करें तो लाल फास्फोरस बन जाता है और यदि लाल फास्फोरसको अधिक गरम करें तो फिर पीला फास्फोरस बन जाता है। पीला फास्फोरस स्वतः ज्वलनार्ह और ज़हरीला पदार्थ है; लाल फास्फोरस न तो आप ही वायुमें जलनेकी शक्ति रखता है और न ज़हरीला ही होता है, प्रत्युत मस्तिष्कका बलबर्द्धक होता है।

जब यौगिकोंको तपाते हैं तो या तो वह ठोस अवस्थामें ही टूटने लगते हैं—उनका विघटन होने लगता है, या द्रवित होकर विघटित होने लगते हैं या वाष्पमें परिणत होकर फिर द्रवमें बदले जा सकते हैं। अन्तिम प्रकारके यौगिक ही स्रवण द्वारा शुद्ध किये जा सकते हैं। अन्योंका स्रवण करनेके लिए दबाव कम करना पड़ता है; भपकेको किसी वायु निकालनेके यंत्र, एयरपम्प, से लगा देते हैं। भपकेमेंसे वायु निकाल लेनेके बाद बहुतसे द्रवोंको स्रवण द्वारा शुद्ध कर सकते हैं। कभी कभी भापके साथ भी स्रवण कर लेते हैं। ऐसा करनेके लिए जिस चीज़को शुद्ध करना होता है उसे एक बर्तनमें रखते हैं और धीमी आंच देते हैं। एक और बर्तनमें पानी खौला कर भापको नली द्वारा पहले बरतनमें होकर निकालते हैं। वाष्प उस पदार्थको अपने साथ उड़ाकर भपकेमें पहुंचा देती है। भपकेमें उक्त पदार्थ तथा पानी ठंडे हो होकर बोतलोंमें भर जाते हैं। बादमें दोनोंको निकाल कर अलग अलग कर लेते हैं।

तापक्रम बढ़ानेसे, हम बतलाये हैं कि, अणु टूटने लगते हैं। अणुओंका टूटना या तो क्षणिक होता है या स्थायी रूपसे वह टूट जाते हैं। पहली क्रियाको पृथक्करण और दूसरीको विघटन कहते हैं। उदाहरणके लिए पटासको लीजिये। जब पटास (Potash chlorate) को गरम करते हैं तो वह पोटासियम हरिद और ओषजनमें विभक्त हो जाता है; पोटासियम हरिद और ओषजनका संयोग फिर नहीं होता। परन्तु यदि चूनेके पत्थरको गरम करें तो चूना और कर्बन द्विओषिद बन जाता

है, जिन दोनोंके संयोगसे फिर चूनेका पत्थर बन सकता है। यह क्रिया दो मुंही है:—

ख क ओ$_3$ = ख ओ + क ओ$_2$
(चूनेका पत्थर) (चूना) (कर्बन द्विओषिद)

और—

ख ओ + क ओ$_2$ = ख क ओ$_3$
(चूना) (कर्बन द्विओषिद) (चूनेका पत्थर)

इसी लिए इन दोनों परिवर्तनोंको इस प्रकार लिखते हैं:—

ख क ओ$_3$ $\rightleftharpoons$ ख ओ + क ओ$_2$
(चूनेका पत्थर) (चूना) (कर्बन द्विओषिद)

दो शर चिन्होंका अर्थ है परिवर्तनका दु मुंहा होना।

इसी प्रकार एक मुंहे परिवर्तनको केवल एक शर चिन्हसे प्रदर्शित करते हैं, जैसे—

२ पो ह ओ$_3$ $\rightarrow$ २ पो ह + ३ ओ$_2$
(पटास) (पटास हरिद) (ओषजन)

यहां पर इतना बतला देना पर्याप्त होगा कि यदि चूनेका पत्थर बन्द बरतनों या कमरोंमें तपाया जाय तो केवल अंशतः विघटित होगा। खुले भट्टोंमें तपानेसे कर्बन द्विओषिद निकल जाता है; इस लिए विपरीत प्रति क्रिया निर्बल हो जाती है।

ऊपर जो दो मुंही क्रियाका उदाहरण दिया गया है, उसमें दोनों क्रियाएं साथ साथ सब तापक्रमों पर होती हैं; केवल दबाव और तापक्रमके भेदसे पदार्थकी न्यूनाधिक मात्राका विघटन होता है। परन्तु एक बड़ा रोचक उदाहरण है; जिसमें एक क्रिया एक तापक्रम पर और दूसरी दूसरे तापक्रम पर होती है। चूनेका भाई बन्धु बेरियम ओषिद या बेरीटा होता है। यह वही पदार्थ है, जिसका नत्रेत हरी आतिशबाज़ीमें काम आता है। जब बेरीटाको ६००° श तक गरम करते हैं तो वह वायुका ओषजन ग्रहण कर लेता है और द्विओषिदमें बदल जाता है:—

$$२ भा ओ + ओ_2 = २ भा ओ_2$$

परन्तु जब उसे ८००° श तक गरम करते हैं तो द्विओषिद ओषजन और एक—ओषिदमें परिणत हो जाता है। यह ब्रिन महोदयकी ओषजन बनानेकी विधि है। आज कल तापक्रम न बढ़ाकर केवल दबाव ही कम कर देने से दोनों क्रियाएं उसी तापक्रम पर हो जाती हैं।

मामूली भट्टोंमें १८००° श तकका तापक्रम पहुंच जाता है। धौंकनीकी सहायतासे और ऊंचा तापक्रम पैदा हो सकता है। कोल गैसमें जब धौंकनीसे हवा पहुंचाते हैं, तो तापक्रम बहुत बढ़ जाता है। इसका कारण भी स्पष्ट ही है। वायु में १ हिस्सा ओषजन और ४ हिस्सा नत्रजन रहती है। नत्रजन जलनेमें अकर्मण्य और ओषजन सहायक होती है। इसीलिए धौंकनीसे हवा पहुंचाने से, ओषजनके आधिक्य से, जलनेकी क्रिया बड़े वेगसे होती है और तापक्रम बढ़ जाता है। वायुकी जगह यदि ओषजनका धौंकनीमें प्रयोग हो तो और भी ऊंचा तापक्रम हो जाता है। उधर कोल गैसकी जगह उज्जन जलायें और ओषजन लौ में पहुंचावें (ओषोज्जन लौ) तो तापक्रम बहुत ऊंचा हो जाता है।

प्लाटीनम धातुको गलानेमें अथवा लैमलाइटमें चूनेको तपानेमें ओषोज्जन लौका ही प्रयोग होता है। इसका तापक्रम लगभग २०००° श होता है; परन्तु जो तापक्रम आजकल बिजलीके भट्टोंमें प्राप्त हो सका है उसके सामने यह तापक्रम अत्यन्त तुच्छ है। (क्रमशः)

—रामानन्द त्रिपाठी

ज्ञान और विज्ञान

जो कुछ बुद्धि इन्द्रियोंकी सहायता से जान लेती है उसीको हम ज्ञान कह सकते हैं, किन्तु अत्यन्त प्राचीन कालसे ज्ञान और विज्ञान शब्दोंके अर्थोंमें अन्तर माना गया है। जो ज्ञान मोक्षका हेतु हो सकता है उसे ज्ञान कहते हैं, अन्य प्रकारका ज्ञान विज्ञान कहाता है। अमर कोषमें लिखा है:—

"मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्प शास्त्रयोः।"

इसी प्रकार हैमचन्द्रने भी विज्ञान शब्दके सम्बन्धमें लिखा है—"विज्ञानं कर्मणि ज्ञानं"। इन दो प्रमाणोंसे स्पष्ट होगया होगा कि शिल्प शास्त्र तथा अन्य कर्मोंका ज्ञान ही विज्ञान है; अतएव प्राचीन कालमें ज्ञान उच्च कोटिका और मोक्ष देनेवाला माना जाता था। विज्ञान केवल पेट भरनेका एक उपाय और सांसारिक सुखोंका एक साधन समझा जाता था। यद्यपि भगवान श्री कृष्णने आवाज़ उठाई और "योगः कर्मसु कौशलम्' का उपदेश देकर भारतको चेताया; परन्तु उनके बाद फिर भारत ज्ञानकी खोजमें ऐसा लिप्त होगया कि उसने आश्रम धर्मका तिरस्कार कर विज्ञानको छोड़ दिया। उसीका परिणाम आजकलके अकाल और दरिद्रता हैं।

आजकल हम "विज्ञान" शब्दका प्रयोग एक अधिक विस्तृत अर्थमें करते हैं। हम विज्ञानको उस ज्ञानका वाचक समझते हैं, जिसमें कुछ विशेषता हो। विशेषता उसके अनुशीलन तथा प्रतिपादन दोनोंमें होनी चाहिये। प्रयोगों द्वारा प्राप्त हुआ ज्ञान या वह ज्ञान जिसकी परख प्रयोग रूपी कसौटीपर हो सकती है वस्तुतः विज्ञान कहाता है। ऐसे प्रयोगात्मक ज्ञान अर्थात् विज्ञानके उदाहरण भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, यंत्र शास्त्र आदि हैं; परन्तु कुछ ऐसे विषय भी हैं, जिनकी जांच प्रयोगों द्वारा नहीं की जा सकती, जैसे ग्रह और तारे। अतएव उनके सम्बन्धमें गवेषणा करनेका एक मात्र उपाय यह है कि पहले प्रयोग करके अपनी बुद्धिका परिष्कार कर लिया जाय, निरीक्षण और यांत्रिक परीक्षणमें योग्यता प्राप्त करली जाय और सत्यासत्य निर्णय करनेकी शक्ति (विवेक) को बढ़ा लिया जाय और तदनन्तर जो कुछ बातें, घटनाएँ, निरीक्षणसे जानी जा सकें मालूम करली जायँ। अतएव विज्ञान दो प्रकारके माने जाते हैं—प्रयोगात्मक और निरीक्षणात्मक। प्रयोगात्मक विज्ञानोंके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं; ज्योतिष शास्त्र, भूगर्भ, ऋतुशास्त्र आदि निरीक्षणात्मक विज्ञान हैं। वस्तुतः विज्ञान एक ही है; जिसे भौतिक शास्त्र कहते हैं, और जिन नियमोंका प्रतिपादन यह करता है वह सार्वदेशिक और अटल हैं, किन्तु विषयकी विभिन्नताके अनुसार उसकी अनेक शाखाएँ और प्रशाखाएँ हो गयी हैं। उदाहरणके लिए गति सम्बन्धी नियम ले लीजिये। जो तीन नियम न्यूटनने पहले पहल बतलाये थे वह सर्वत्र लागू हैं; तथापि ग्रह, उपग्रह और तारोंकी गति ज्योतिषका प्रतिपाद्य विषय है और हृत्पिण्ड, आदिकी गति शारीर शास्त्रका विषय है।

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा मन एकाग्र करके ज्ञान प्राप्त करनेकी विधिको ही निरीक्षण कहते हैं। निरीक्षण ही अतएव हमारे ज्ञानकी जड़ है। निरीक्ष्य वस्तुको इच्छानुकूल परिस्थितिमें रखकर जब निरीक्षण किया जाता है तो इस कार्यको परीक्षण कहते हैं। परीक्षणके उद्देश्यसे जो अनुष्ठान किये जाते हैं वही प्रयोग कहाते हैं। अतएव स्मरण रखना चाहिये कि प्रयोग निरीक्षणके उद्देश्यसे ही किये जाते हैं। जहां प्रयोग करना असम्भव होता है प्राकृतिक परिस्थितियोंमें ही निरीक्षण कर जो कुछ जानना सम्भव होता है जान लेते हैं, और तदनन्तर उन बातोंको प्रयोगात्मक विज्ञानके नियमोंसे जांचते हैं।

अब तक विज्ञानके मुख्य और स्थायी अंगपर विचार किया है। निरीक्षण और परीक्षण द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है, वही विज्ञान कहलाता है, परन्तु विज्ञानका काम यहीं नहीं समाप्त हो जाता। तथ्योंको, जानी हुई बातोंको, क्रमबद्ध करके रखना; उनका परस्पर कार्य कारण सम्बन्ध जान लेना; फिर उनकी समझनेकी गरज़से एक ऐसे सिद्धान्त की रचना करना कि जिससे वह शृङ्खला बद्ध जान पड़ें और उनकी असम्बद्धता और असंगतताका लोप हो जाय। यह विज्ञानका दूसरा काम है। यह काम भी पहले कामसे कम महत्व का नहीं है, यद्यपि यह परिवर्तनशील और अस्थायी है। सिद्धान्त रचनाके बिना प्राकृतिक घटनाओं और तथ्योंका न केवल याद रखना और समझना ही कठिन है, वरन् उन्नति करना भी असम्भव है। यदि सिद्धान्तमें कुछ भी सच्चाई है तो वह आगेका रास्ता दिखला देगा। उससे बहुत सी बातें ऐसी मालूम होंगी जिनकी जांच प्रयोगात्मक विधिसे करना सम्भव और आवश्यक होगा। यदि इन प्रयोगोंके परिणाम सिद्धान्तानुकूल निकले तब तो ठीक नहीं तो सिद्धान्तोंमें यथोचित परिवर्तन और संशोधन कर लिये जाते हैं।

प्राचीन कालमें भी प्रयोगात्मक विधिका अनुसरण किया जाता था, किन्तु काम करनेवाले थोड़े थे और धीरे धीरे शिल्प कलाओंका सम्बन्ध उच्च कोटिके विचारकोंसे छूट कर नीची कोटिके मनुष्योंसे ही रह गया था; अतएव विज्ञानकी पर्याप्त उन्नति न हो सकी। आजकल विज्ञान कोई विशेष विषय नहीं समझा जाता, किन्तु एक विशेष कार्य प्रणाली अथवा अध्ययन विधि मानी जाती है। जिस विषयका इस परिपाटीके अनुसार अध्ययन किया जाता है वही विज्ञान कहलाने लगता है। आजकल इतिहास, सम्पत्ति शास्त्र समाज शास्त्र आदि विज्ञानोंमें शामिल होनेका बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं।

प्राचीन विचारक प्रायः प्रयोग करना अनुचित समझा करते थे। वह समझते थे कि उस चीज़को जान लेना बस होगा जिसके जान लेनेके बाद कोई चीज़ अनजानी नहीं रहती। इसीलिए प्रयोग न करके केवल कल्पनाके घोड़े दौड़ाया करते थे। इसका परिणाम यह होता था कि वह कभी कभी बड़ी हास्यास्पद बातें कह बैठते थे। भारतवर्षमें तो भी बहुत गनीमत था, यहां तो पहले यज्ञ करनेवालोंने और बादमें तान्त्रिकोंने प्रयोगात्मक विधिको जारी रखा।

सच पूछिये तो प्रयोगात्मक विज्ञानने जन्म यहीं लिया था, यद्यपि उचित परिस्थिति न पाकर वह यूरोपमें जा पहुँचा और वहीं इसकी वृद्धि हुई। यूरोपमें अवश्य दार्शनिकों और पादरियोंने बड़ा अन्धेर मचा रखा था। उस अंधेरको मिटानेके लिए विज्ञानका बाल रवि पूरबमें उदय होकर क्रमशः आग्योत्तर पर पहुँचा और अब उस मार्तण्ड प्रचण्डकी किरणें विश्वव्यापी हो रही हैं।

कल्पना कीजिये कि एक बड़ी भारी गुफा है। उसमें अनेक छोटी मोटी, लम्बी चौड़ी, सभी तरहकी कोठरियां हैं। कुछ आदमी आते हैं, पर श्रद्धा पूर्वक नमस्कार कर द्वार परसे ही लौट जाते हैं और अपने साथियोंको कल्पित वृत्तान्त सुनाते हैं। परन्तु कुछ समय व्यतीत होने पर कुछ कर्मशील मनुष्य पैदा होते हैं, वह फावड़े कुदाल आदि यंत्रले क्रमशः कोठरियोंकी जांच शुरू कर देते हैं। सैकड़ों कोठरियोंको नित्य खोला जाता है; उनके विषयमें नयी नयी बातें मालूम होती रहती हैं। कभी कभी कोई भाग्यवान और योग्य व्यक्ति अन्योंकी अपेक्षा बहुत आगे बढ़ जाता है, बड़े दूरका पता ले आता है और अमूल्य रत्न प्राप्त कर लेता है। उसका नाम सब जगह विख्यात हो जाता है, उस समय उसके बहुत से सहकारी उधर ही झुक पड़ते हैं और अनेक बातें जान लेते हैं।

ठीक यही दशा आधुनिक विज्ञान की है। ईश्वरकी सृष्टिमें अनेक रहस्य भरे पड़े हैं। यदि एक छोटेसे कोमल पुष्पको लेलें तो उसके रहस्यको भी जान लेनेके लिए अनेक जन्मोंका समय पर्याप्त न होगा।

प्राचीन कालमें लोग केवल ईश्वरकी महिमाको सराह कर रह जाया करते थे और आवश्यकता पड़ने पर कोरी कल्पनासे काम लेते थे और मन गढ़न्त बातें बतला देते थे। उदाहरणके लिए ऊपरसे गिरने वाली वस्तुओंके वेगको लीजिये। अरस्तूका मत था कि भारी वस्तु अधिक वेगसे और हल्की वस्तु कम वेगसे गिरती है। यदि दो वस्तुओं ऊपरसे छोड़ कर वह परीक्षा करते तो अपनी गलती उन्हें फौरन मालूम हो जाती। इसी प्रकार उन्होंने एक बार यह भी सिद्ध कर दिया था कि एक बर्तनमें, चाहें वह खाली हो और चाहें (राखसे) भरा, सदैव उतना ही पानी अमाता है।

आज कल लाखों आदमी भूमण्डलके सभी देशोंमें रात दिन खोजके काममें लगे हुए हैं। नित्य कुछ न कुछ नयी बातें मालूम होती हैं। इनमें कुछ जो अधिक भाग्यवान अथवा प्रतिभाशाली हैं, जैसे डा० वसु महोदय, वह बड़े मारकेकी बातें निकाल लेते हैं और दुनिया भरमें मशहूर हो जाते हैं। ऐसे ही विद्वानोंके बतलाये हुए मार्ग पर फिर अन्य विद्वान लग जाते हैं और नयी नयी खोज करते हैं।

ईश्वर अनन्त है, उसकी माया अनन्त है। उसकी मायाका रहस्य पूरा पूरा जान लेना असम्भव सा प्रतीत होता है; परन्तु उसकी मायाके द्वारा ही उसके रूपका कुछ अनुभव हो सकता है। चींटीके रेंगनेमें—नहीं नहीं जीवाणु और छन्ना पारग (Filter passers and Bacteria) के हिलने डोलनेमें भी—मनुष्यके चलनेमें, पक्षियोंके उड़नेमें, ग्रहों आदिकी परिक्रमामें, तारोंकी निरन्तर गतिमें जो वैज्ञानिक नियमोंकी अटलता और सर्व व्यापकता अनुभव करता है, वह अनुभव दार्शनिकको सहस्र जन्ममें भी प्राप्त नहीं हो सकता। अत्यन्त क्षुद्र जीवाणुओंसे लेकर असंख्य मील दूरवर्ती तारोंके पिण्डोंमें उन्हीं घटकोंको देखकर वैज्ञानिक एकताका अपूर्व अनुभव करता है। पदार्थको शक्तिका विकार मात्र समझ जिस असीम शक्तिका ज्ञान, जिस परमात्माके निराकार रूपका अनुभव वैज्ञानिकको प्राप्त होताहै, वह योगीश्वरोंको भी दुर्लभ है।

वैज्ञानिक सच्चा मनुष्य है, उसके लिए सब देश, सब समाज और सब काल बराबर हैं; उसके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश है, अतएव संकीर्णता और अनुदारता उससे स्पर्श भी नहीं कर पाती। मनुष्य मात्रके लिए क्या, सभी जीवोंके लिए उसके हृदयमें प्रेम है। वैज्ञानिक सच्चा योगी है; इस बातका फैसला तो श्री भगवान ने स्वयम् कुरुक्षेत्रमें सुना-दिया था—योगः कर्मसु कौशलं। न उसे काम क्रोध मोहसे भय है, न मदमत्सरसे खटका है। उसका ध्येय सत्यकी खोज है। उसी पर तन मन धन सब कुछ वार बैठता है। पाश्चर, डेवी, फेरेडे आदि यदि चाहते तो अपने आविष्कारोंका पेटेंट कराके करोड़पति बन बैठते, पर उन्होंने ऐसा करना अनुचित जान अस्वीकार कर दिया। भारतके सपूत वसु वीरने भी इसी प्रकार अपने यंत्रोंका पेटेन्ट बहुत कुछ लालच दिये जाने पर भी करनेकी सम्मति न दी। कलकी ही बात है कि दूसरे महात्माने (राय महोदय) पाँच वर्षका वेतन विश्वविद्यालयको ही दे डाला।

वैज्ञानिक सच्चा वीर और दृढ़ प्रतिज्ञ होता है। भय—मौतका, समाजका और राजका—उसे सत्यकी खोजसे नहीं हटा सकता। विषैले जीवाणुओंके आक्रमणसे, प्रबल एक्स किरणोंके प्रभावसे तन्तुओंके गल जानेसे, नवीन यंत्रोंकी चपेटमें आ जानेसे, रस शालाओंमें स्फोटन हो जानेसे अथवा अन्य ऐसी घटनाओंके हो जानेसे अनेक वैज्ञानिकोंकी मृत्यु हो चुकी है; परन्तु कभी ऐसा नहीं हुआ कि उन गवेषणाओंको समाप्त करनेके लिए धीर वैज्ञानिक आगे न बढ़े हों। सच्चे शूरवीरकी नाईं रणक्षेत्रसे मुंह मोड़ना वैज्ञानिकोंने नहीं सीखा।

यदि निराकार ब्रह्मका ज्ञान, यदि अणोऽणीयान् महतो महीयान्का सच्चा प्रत्यक्षानुभव और यदि जटिलतामें सरलता और सरलतामें जटिलताका पूर्ण बोध किसीको हो सकता है तो वह

वैज्ञानिकको ही होता है। परमात्माको अन्नपूर्णा और कालिका करालाके रूपमें वैज्ञानिक ही देख सकता है। प्रातः समय जब शीतल समीर अठलाती हुई चलकर कलियोंको गुदगुदा कर खिला देती है और नई नई कोंपलें अपने नन्हे नन्हे वक्षस्थलोंको सूर्य देवके स्वागतके लिए फैला देती हैं, उस समयकी घटनाओंका यदि कुछ रहस्य मालूम होता है तो वैज्ञानिक को। जो काम यह कोंपलें पलक भांजने में कर देती हैं, वह काम बड़े बड़े दहकते हुए भट्टोंसे भी नहीं हो सकता। यह नरम पत्तियां कर्बन द्विओषिदमें अणुओंको झपट कर वायुमें से खींच लेती हैं और उनका विघटन कर कर्बन स्वयम् ग्रहण कर लेती हैं और ओषजनको आपके उपकारार्थ वायुमें मिला देती हैं। उधर देखिये पानी और मट्टीमें घुले हुए कुछ सरल लवणोंको ग्रहणकर पौधेने फूल और उसके सौरभकी रचना किस कौशलसे की है। वैज्ञानिक दृष्टिसे देखिये कि वही काम (कर्बन द्विओषिद का विघटन) निर्जीव पत्थर और चट्टानें भी हर दम हर घड़ी किया करती हैं। यही काम यदि आप करना चाहें तो १८००° श के तापक्रम पर कर सकेंगे; इस तापक्रमपर जीवोंका जीता रहना असम्भव था।

वैज्ञानिक अणुओं और परमाणुओंके निरन्तर होनेवाले नृत्यका अनुभव करता रहता है। विद्युत्कणोंके अनेक बहरूपियोंके से तमाशोंका आनन्द लूटता रहता है। अतएव यह कहना अनुचित न होगा कि वैज्ञानिक ही सच्चा कवि है। सारांश यह कि आधुनिक विज्ञान काव्य, दर्शन, धर्म और ज्ञान सबका मूल है। इसका आश्रय लेनेसे ही मनुष्य जातिका कल्याण होगा।

विज्ञानके नियमों और तथ्योंका सदुपयोग कर मनुष्यने अपनी सभ्यताकी उन्नतिके अनेक मार्ग निकाल लिये हैं; उधर कुछ लोगोंने दुरुपयोग कर मनुष्यको पशुसे गया गुज़रा बनानेमें कुछ उठा नहीं रखा। यदि आप आज चाहें तो घंटे भरमें प्रयागके सब निवासियोंको प्लेग अथवा हैज़ेका शिकार बना सकते हैं या थोड़ेसे बम्ब गोले डाल कर मट्टीमें मिला सकते हैं। परन्तु सच्चे विज्ञानी न पहले प्रकारके साधनोंको गौरवकी दृष्टिसे देखते हैं और न दूसरे प्रकारके साधनों पर अभिमान करते हैं। उन्हें भले बुरेसे कुछ सरोकार नहीं है। सदुपयोगका पुण्य और दुरुपयोगका दोष और पाप दूसरेके सर है। वैज्ञानिक उनके ज़िम्मेदार नहीं हैं।

जुलाहे से प्रोफेसर

डाक्टर ओके कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटीमें इटालियन भाषाके प्रोफेसर हैं। वह पहले जुलाहेका काम करते थे। पहले उन्होंने फ्रेंचकी डिक्शनेरी ४ पैसमें खरीदी थी; रातको एक स्कूलमें जाते थे और घर पर डिक्शनेरीका खूब स्वाध्याय करते थे। इस प्रकार वह कई भाषाओंके विद्वान हो गये। उन्होंने एक इटालियन पुस्तकका अनुवाद प्रकाशित किया। विद्वानोंका ध्यान उस ओर खिंचा और उनको कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटीमें इटालियन भाषाके अध्यापकका आसन मिल गया।

मनुष्यकी दानवी शक्तिका खेल

१८७३ वि० में एक अमेरिकन पत्रने लिखा था कि एक ऊनके कारखानेमें भेड़ोंसे ऊन सवेरे काटी गयी, धोई गयी, छांटी गयी, धुनी गयी, काती गयी, बुनी गयी, रङ्गी गयी, सुखाई गयी, और २४ घण्टेके अन्दर अन्दर कोट तैयार किया गया।

कनाडाकी एक फर्मने ६ घण्टेके अन्दर यह सब करके दिखला दिया। वर्क शायरमें एक अमीर सदा सौ पौण्ड इसी बात पर खर्च करता है कि वह रोज उस ऊनकी नयी पोशाक पहने जो पहले दिन भेड़की पीठ पर लगी हो।

एक पूर्वीय रेलवे कम्पनीने ६ घण्टे ७ मिनटमें एक बार एक एंजिन तैयार करके खड़ा कर दिया।

कागजके कारखानोंने इससे भी अधिक आश्चर्यजनक कार्य किया है। ७ बजकर ३५ मिनट पर प्रातः ३ वृक्ष गिराये गये और तुरन्त कारखानेमें भेज दिये गये। उनकी लुगदी बनायी गयी और मशीनमें पहुंचायी गयी। ६ बजके ३४ मिनट पर कागजके तख्ते तैयार हो गये।

कागज तुरन्त छापेखानेमें गया। १० बजे तक वह वृक्ष ही समाचार पत्रोंके रूपमें लोगोंके हाथमें पहुंच गये।

मोची लोगोंने भी बड़ा कमाल कर दिया है। अमेरिकामें १६ मिनटमें जूता तैयार कर देते हैं और मिड्लैण्डमें २० मिनटमें। इन्सिंगटनमें एग्रिकल्चरल हालमें एक चमड़ा ५३ मशीनोंमें से गुजरता है और इस बीचमें ६३ मनुष्योंकी देख रेखमें रहता है तो भी ३५ मिनटमें जूता तैयार हो जाता है।

आयुर्वेदकी उत्पत्ति तथा भविष्य

अति प्राचीन कालमें जब मनुष्य जाति प्राकृतिक अवस्थामें वन्य जीवन निर्वाह करती थी, उस समय इतर जन्तुओंकी तरह वह रोगोंके आक्रमणसे बहुधा मुक्त रही होगी। उस समय न भेषज और न भिषक् की आवश्यकता थी। परन्तु प्राकृतिक दशामें भी शरीरको "व्याधि-मन्दिर" बनानेकी सामग्रियां मौजूद थीं। इसीलिए रोग उत्पन्न होते रहे।

स्वस्थ मनुष्यको सहसा ज्वर आदि रोगोंसे आपन्न देखकर आदिम मनुष्योंके हृदयोंमें बड़े विचित्र भाव उदय होते होंगे। सम्भवतः वह उसको भूत आदिसे ग्रसित दशा समझते होंगे। यही कारण है कि प्राचीन आर्य तथा यूनानी जातियोंमें भी अन्य आदिम जातियोंकी तरह रोगोंका निदान "कर्मज" माना जाता था, और उसकी चिकित्सा भी याग यज्ञ आदि दैविक अनुष्ठानोंसे की जाती थी। यहां तक कि भारतवर्षमें आज तक भी असाध्य रोगोंकी चिकित्साके लिए हिन्दू लोग श्रीजगन्नाथ (पुरी) के मन्दिर, और मुसलमान, सिद्ध दरवेशोंकी कबरों पर मन्नत आदि मानकर प्रार्थना करते हैं।

हकीम बुक़रातसे पूर्व यूनानमें भी चिकित्सा पद्धति इसी प्रकार दैविक उपायों पर अवलम्बित थी। परन्तु वहांके दैव चिकित्सक मन्दिरके पुजारियोंको रोगियोंके बारंबार देखते रहने से कुछ कुछ रोगोंके निदान तथा चिकित्साके भेषज्य उपायोंसे भी परिचय हो गया था। अतएव वह मन्त्र जन्त्र आदिके अतिरिक्त ओषधियोंसे भी चिकित्सा करने लग गये। वस्तुतः इन्हीं पुजारी लोगोंकी चिकित्सक जाति बन गयी थी। हकीम बुक़रात, जो प्रतीच्य चिकित्सा शास्त्रका मुख्याधिष्ठाता समझे जाते हैं, इन्हीं पुजारियोंमेंसे एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। इन्होंने चिकित्सा शास्त्रको "आदि दैविक" अनुष्ठानोंसे पृथक् करके "आधिभौतिक" साधनों पर स्थापित किया। उसी समयसे पश्चिमी जगतमें चिकित्सा शास्त्र वैज्ञानिक रीति पर प्रचलित हुआ। सम्भव है कि हकीम बुक़रातके सिद्धान्त, जो रोगोंको चार धातुओं पर निर्भर मानते थे, भारत के "त्रिदोषवाद" से कुछ सम्बन्ध रखता हो; कारण कि यहां भी महर्षि शुश्रुत ने वात, पित्त, कफ के अतिरिक्त, यूनानियोंकी तरह, रक्तको भी रोगका आधार बताया था। यूनानियोंके चार दोषोंमेंसे दो प्रकारके पित्त, परवर्ती कालमें एक ही बनकर, अर्थात् हकीमोंके "सौदा" (वात) "सफरा" (पित्त) और "बलगम" (कफ) बन गये।

हमारे देशमें भी अति प्राचीन कालसे अथर्ववेदके दैविक अनुष्ठानोंके पूर्वसे भी रोगोंकी मुक्तिके लिए भिन्न भिन्न प्रकारकी ओषधियोंका प्रयोग तथा सेवन किया जाता था। किन्तु परवर्ती दार्शनिक युगमें रोगोंके निदान सम्बन्धमें यह मत भेद उत्पन्न हुआ कि वह "कर्मज" के स्थानमें "दोषज" माने जाने लगे; अर्थात् उनको भूत-प्रेतादि देवयो-

नियोंके प्रभावसे उत्पन्न न मान कर, विद्वानोंने उनको शरीरके अन्दर विशेष भौतिक पदार्थोंकी (जो कि "दोष" कहलाते थे) विकृति पर अवलम्बित माना। परन्तु इस मतान्तरका विकाश सहसा न हुआ। इसलिए चरक, शुश्रुतादि वैज्ञानिक ग्रन्थोंमें भी रोगोंका निदान बहुधा "दोषज" माने जाने पर भी कितने ही स्थानों पर बहुत से रोगोंको "कर्मज" वा "उभयज" माना गया है। शोकसे कहना पड़ता है कि भारतमें कोई बुक़रात की तरह संस्कारक नहीं पैदा हुआ। सारांश यह है कि शुरू शुरूमें रोगका कारण "दैविक" माना गया था और उसके बाद विद्वान लोगोंने दैविक निदानको सन्तोषजनक न पाकर एक "भौतिक" निदानका अवतरण किया।

अब ज़रा चिकित्सा पद्धति पर भी ध्यान दीजिये। हम बता चुके हैं कि अथर्व वेदके ज़माने-में न केवल ओषधियोंका आभ्यन्तरिक सेवन ही होता था, बल्कि वह बहुधा मन्त्र जन्त्रादिके सहित धारण भी की जाती थीं। मिश्र निवासी आदि अन्य सभ्य जातियोंमें भी शुरू शुरूमें चिकित्सा प्रणाली इसी प्रकार आरम्भ हुई थी, परन्तु पीछे जाकर ओषधियोंका सेवन भी होने लगा। स्पष्ट है कि प्राचीन कालमें वानस्पतिक ओषधियोंका ही व्यवहार किया जाता था। सम्भवतः विचित्र पौधोंके रूप रस गन्ध-स्पर्शसे आदिम मनुष्योंका चित्त उनकी ओर आकर्षित हुआ होगा। यथा कमल-गुड़ल आदिका अनुपम सौन्दर्य, दाड़िम्ब अम्लवेतस आदिका अम्ल-मधुर रस, नीलोत्पल कदली आदि-के पत्तोंका शीतल-कोमल स्पर्श, केसर-बालछड़ आदिकी मनोहारिणी सुगन्धि, सेमल-बांस आदि-का सशब्द फटना, इत्यादि इत्यादि। ऐसी ऐसी अनेकानेक ओषधियोंको देख कर, अनुसन्धान करनेवाले हृदयोंमें उनके व्यवहारके लिए तीव्र इच्छा पैदा हुई होगी। फिर किसी किसीके विशेष लाभदायक होनेके कारण उनका ओषधिरूपसे व्यवहार होने लगा।

इसी तरह अनेक कालान्तरमें जब मनुष्य जाति सभ्यताके मार्गमें बहुत कुछ अग्रसर हो चुकी थी, तब किसी किसी प्रतिभाशाली व्यक्तिके मनमें बनौषधियोंके अतिरिक्त अन्य खनिज पदार्थ तथा धातुओंको भी भैषज्य रूपमें व्यवहार करनेकी इच्छा हुई। तमाम धातुओंमें पारदकी तरल-चंचलताने पूर्व और पश्चिमके "कीमियागरों" के दिल-में एक आश्चर्य जनक आवेग उत्पन्न किया था। इसके अन्दर सोना आदि धातुओंके पत्रे घुल जानेके कारण प्राचीनोंने ऐसी कल्पना की थी कि इसमें बनौषधियोंके गुण भी इसी तरह शोषित हो जाते हैं। जैसे यूरोप खण्डमें पैरासेलसस् आदि मनीषो सौवीराञ्जन (सुर्मा) आदि थोड़ेसे खनिज पदार्थोंके चमत्कारोंको देख कर एक प्रकार उन्मत्त प्राय हो उठे थे, इसी तरह हमारे देशके रस सिद्धोंने भी पारद, अभ्रक, गन्धक आदि खनिज पदार्थोंमें अलौकिक गुणोंकी कल्पना की थी। दोनों दिशाओंके कीमियागर एक 'अमृत" रूपी ओषधिके अनुसन्धानमें ऐसे मग्न रहे, कि वह मानों पथभ्रष्ट हो गये। पैरासेल्सस्ने तो अपनी नवाविष्कृत उग्र वीर्य खनिज ओषधियोंके घमण्डमें आकर हकीम जालीनूस जैसे प्रतिष्ठित व्यक्तिके प्रामाणिक ग्रन्थोंको भी सर्व सम्मुख राज-पथमें अग्निमें स्वाहा कर दिया था। बहुधा प्रतिभा उन्मत्तताका रूपान्तर ही होता है! परन्तु भारतमें ऐसे उन्मत्त पैरासेल्ससका भी अभाव रहा। किसीको भी प्रामाणिक श्रुति-स्मृति आदि उक्तियोंमें सन्देह तक करनेकी शक्ति न हुयी। हमारे देशमें यद्यपि रससिद्धोंके इतिहासमें कोई ऐसी धृष्टताका उदाहरण नहीं मिलता तथापि इसमें सन्देह नहीं कि मध्य युगमें रस चिकित्सा-के प्रादुर्भावके साथ ही साथ वनौषधियोंकी मर्यादा चिकित्सकोंके दिलसे घट गई थी।

आज भारतके सामने एक और युग उपस्थित है। अनेक कालकी गँभीर निद्राके अनन्तर भारत जागृत दशामें आरहा है। उसको एक तरफ़

प्राचीन कालके मधुर स्वप्न याद आ रहे हैं, और दूसरी तरफ जीवनके कठोर संग्राममें उसको नवीन जातियोंका सामना, गीताके अर्जुनकी तरह, उसके मनको विचलित कर रहा है। क्या यह सत्य है कि कलकी वर्बर जातियां आज हमें सदियां पिछाड़ कर आगे बढ़ गई हैं? मुमूर्षु रोगीकी तरह यमदूतको सामने देखते हुये भी वह अपने दिलको झूठे स्तोक वाक्योंसे मजबूत करनेका प्रयत्न कर रहा है। कभी तो वह विपक्ष दलके बलको देखकर अर्जुनकी तरह मुह्यमान हो जाता है और कभी उन्मत्तवत् दुर्योधनकी तरह आततायियोंकी शक्तिको तुच्छ अनुभव करता है। इस कम्पमान दशामें उसका क्या कर्तव्य है वह ठीक निश्चय नहीं कर सकता है। कभी तो पाश्चात्योंके बुद्धि बल, धन बल, बाहुबल-को देखकर वह अपनी प्राचीन मर्यादाको भी उनके चरणोंमें निछावर करनेको उद्यत होता है और फिर दूसरे क्षण अपनी प्राचीन विद्याओंके दम्भमें उनके साथ असहयोगको ही अपना परम धर्म समझता है!

हाय हाय! भारत अपनी क्षीणताको देख, प्राचीन अभ्युदयका घमण्ड मत कर। यह नवीन जातियां जिनको तू आततायी समझ कर डर रहा है तेरे ही बाल बच्चे हैं। उनकी सहायतासे तेरी अप्रतिष्ठा नहीं है; और भी पूर्वीय जातियों पर दृष्टि डाल; जापानकी ओर देख, जो उसने कर दिखाया है तू भी कर सकता है!

एक दिन संरक्षणशील भारतको भी समय के श्रोतके साथ आगे बढ़ना पड़ेगा। आधुनिक ऐनाटमी व फिजिया लोजी (शारीर) के साथ साथ जो वैद्यक जगतमें निर्विवाद आद्रित है, नवीन पैथोलोजी (निदान) भी सीखना पड़ेगा, जिससे नवीन चिकित्सा शास्त्र भी सुगम हो जायगा। सर्जरी (शल्य चिकित्सा)में तो किसीको आपत्ति ही नहीं। फिर नवीन और प्राचीनमें क्या भेद रह जायगा? कुछ भी नहीं—केवल हमारा अनन्त वनौषधियोंका भन्डार, जो वैज्ञानिक रीतिसे अनुसन्धित होकर जगत भरमें सुख और शान्ति लायेगा, हमारे चिकित्सा शास्त्रकी विशेषता दिखलाता रहेगा।

—वी० के० मित्र

भोजनकी वृष्टि

तुर्किस्तानी तवाशीर (मन्ना) बगदादमें बहुत होता है। यह जैतूनके पेड़के पत्तोंपर दानोंके रूपमें पाया जाता है। यह स्वादमें बहुत मीठा और गुणमें पुष्टिकारक होता है। यह जाड़ेके दिनोंमें आस्मानसे ओसके रूपमें पड़ता है और जैतूनके पत्तोंपर जमकर दानोंके रूपमें प्रगट होता है। लोगोंका कहना है कि इसराईलके वंशज जंगलोंमें भटकते हुये इसीपर जीवन निर्वाह करते थे। उधरके देशोंसे यह वस्तु दिसावरके लिए बहुत आती है। प्रातःकाल वृक्षके तले चादरें बिछा दी जाती हैं और वृक्षोंको हिला दिया जाता है। तवाशीर चादरपर बरस जाता है। जैतूनके पत्तोंपर ही यह वस्तु जमा होती है।

मुर्दे गाड़ना हानिकारक है

मुसलमान और ईसाई लोग अपने मुर्दे गाड़ा और हिन्दू लोग जलाया करते हैं। परन्तु मुर्दा गाड़नेकी प्रथा अब वैज्ञानिक युगमें बड़ी हानिकारक सिद्ध हुई है। पैरिसके कबरिस्तानमें मुर्दे इतने अधिक हो गये हैं कि उनसे अब सर्व साधारणके स्वास्थ्यपर भी हानिकारक प्रभाव पड़नेकी सम्भावना हो गयी है। गाड़नेकी विधिसे लोगोंको घृणा होती जाती है। वहांकी म्यूनिसिपेल कमेटी इसपर विचार कर रही है। उसने निर्णय किया है कि शहरसे १५ मीलकी दूरीपर ४ कबरिस्तान बनाये जांय और वहां तक मुर्दोंको ले जानेके लिए रेलवेका प्रबन्ध किया जाय।

सर्पोंकी रक्षा

भारतवर्षमें नाग देवता माने जाते हैं, उनको मारना पाप समझा जाता है। अमेरिकाके कान्सास प्रान्तके किसानोंकी भी सांपोंके मारनेके विषयमें यही सम्मति है। एक बड़ा सांप लगभग एक एकड़की रक्षा किया करता है। खेतके सब हानिकारक कीड़ोंको खा जाता है। वह खेतीके शत्रु चूहोंको भी साफ़ कर देता है। इसीसे खेतका सांप एक प्रकारसे क्षेत्रपाल देवता है; उसका मारना अपने खेतीके शत्रुओंकी वृद्धि करना है।

मनुष्य-निर्मित पौधे

मनुष्यका स्वभाव अनुकरण करनेका है। बालक हो वा वृद्ध, स्त्री हो वा पुरुष, प्रत्येक मनुष्य सदैव किसी न किसीकी नक़ल करनेमें लगा ही रहता है। कभी वृद्ध-पुरुषोंकी वाक्य-पटुताका अनुकरण करता है, तो कभी बच्चोंके तुतलानेका; कभी किसी ग्रामीणके रङ्ग ढङ्गका स्वाँग रचता है, तो कभी बीसवीं शताब्दिके बिल्कुल 'अप-टु-डेट जेन्टिलमैन' का; कभी स्वच्छन्द विहार करनेवाली चिड़ियोंका, तो कभी महाक्रूर वन्य-पशुओं का।

यही नहीं, प्रकृति माताकी अद्भुत रचनाओंकी छान बीन कर स्वयं वैसे ही पदार्थ बनानेमें भी उसे अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। सन्ध्याकालके अनुपम दृश्यको देख कर अस्त होते हुए सूर्यका, आकाश पर छिटके हुए सुनहरे बादलोंका और रक्त-रञ्जित पश्चिमके पर्वतोंका चित्र बनानेमें उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। कोमलाङ्गी कामिनीकी मनोहर मुस्कराहट, हृदय हरनेवाले हाव भाव और तीव्र कटाक्ष अङ्कित कर उसे जो उल्लास होता है वह वर्णनातीत है। वीर-पुरुषका वीरोचित्त भाव प्रकट करके तो वह कुछ विचित्र ही ढंगसे मस्त हो जाता है।

ऐसा ज्ञात होता है कि जब मनुष्यने पौदोंके चिकने चिकने हरे पत्ते, विशाल शाखा समूह और सुडौल तने देखे तो उसको इसके ही अनुकरण करनेकी प्रबल इच्छा हुई; वह स्वयं पौदे बनानेके लिए उत्कण्ठित हो उठा। यद्यपि 'विज्ञान' में असीम उन्नति हो चुकी है तो भी अभी तक वैज्ञानिक वैसा ही कृत्रिम (Artificial) पौदा नहीं बना सके, जैसा कि प्रकृतिमें मिलता है। हाँ, इस विषयमें भी अन्य विषयोंकी भाँति उन्नति अवश्य अधिक हुई है। सजीव (जीता जागता) पौदा न सही। सजीव पौदेसे समस्त बाह्य बातोंमें समता रखनेवाला पौदा आज निर्माण किया जा सकता है। ऐसे ही पौदोंके विषयमें अमेरिकाके प्रसिद्ध पत्र 'साइंटिफ़िक अमेरिकन' (Scientific American) में कुछ समय हुआ डाक्टर ई० बेड् (Dr. E. Bade) का एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें 'औस्मासिस्' (Osmosis) नामक क्रिया-विशेषका प्राकृतिक और अप्राकृतिक दशाओंमें बहुत अच्छा विवेचन किया गया था। आशा है उसके आधार पर लिखे हुए निम्न लेखसे पाठकोंका मनोरञ्जन होगा।

पेड़ोंकी जड़ोंमें एक प्रकारके पतले पतले रेशे होते हैं जो बालोंसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। इन्हें मूल-रोम (Root hairs) कहते हैं। इनका काम पृथ्वीमें से जलको, उसमें घुले हुए पदार्थों सहित उपर्युक्त 'औस्मासिस्' क्रियासे खींचनेका होता है। इन छोटे छोटे रेशोंमें उपस्थित 'सेल्स्' (cells) की अत्यन्त पतली दीवारोंमें होकर जब जल भीतर जाता है तो अन्दर एक प्रकारका दबाव (Pressure) उत्पन्न हो जाता है, जिसके कारण वृक्ष-रस (Sap) ऊपरको चढ़ने लगता है। यदि वृक्षके तनेको बीचमें से काट दिया जाय तो यह वृक्ष-रस निकलता हुआ देखा जा सकता है। कहीं कहीं ऐसे वृक्ष भी पाये जाते हैं, जिनमें कि वृक्ष-रसकी मात्रा बहुत अधिक होती है। जावा (Java) में पायी जाने वाली 'सिज़स' (Cissus) नामक वृक्ष-जातिमें कुछ ऐसे पर्ण हैं जो

रस आधिक्य होनेके कारण 'रस-कूप' (Vegetable wells) कहे जाते हैं। इन वृक्षोंका रस शीतल और आरोग्य-वर्धक होता है। 'अरैलियज़िया' (Araliazea) और कुछ अन्य वृक्षोंसे पीने योग्य रस प्राप्त होता है। यदि 'अगेव् अमेरिकाना' (Agave Americana) नामक वृक्ष आड़ा (horizontally) काटा जाय; तो २४ घंटेमें ३६५ ग्राम और एक सप्ताहमें २५०० ग्रामसे अधिक रस निकलेगा। जिस दबाव (Pressure) के कारण यह रस निकलता है उसे मूल-दबाव (Root pressure) कहते हैं। यह मूल-दबाव कटे हुए तने पर एक मुड़ी हुई नलकी जिसमें कि पारा भरा हो, जोड़ देनेसे ज्ञात हो सकता है।

वृक्षमें सैकड़ों सेल्स होती हैं और प्रत्येक सेलमें यह अभिसर्पणकी क्रिया होती रहती है।

ऐसे ही सेल्स् मनुष्य बना सकता है; परन्तु इन सेल्स्में प्राण नहीं आ सकते; तो भी रासायनिक और भौतिक क्रियाओंका प्रभाव इन पर वैसा ही होता है और विष देनेसे इनके बढ़नेमें वैसी ही बाधा होती है जैसी असली सेलोंमें। और भी अनेक क्रियाएँ इन कृत्रिम सेल्स्में जीवित सेल्स् जैसी ही होती हैं।

यहां पर यह उचित जान पड़ता है कि पाठकोंको "ऑस्मोसिस्" या अभिसर्पणका अर्थ बता दिया जाय। यदि शक्कर वा नमकके घोल (Solution) में निर्मल जलसे भरी हुई झिल्लीकी एक कुप्पी कुछ समय तक डूबी रहने दें, तो कुप्पीके जलकी परीक्षा करनेसे यह ज्ञात होता है कि उसमें शक्कर वा नमक घुला है। बात यह होती है कि झिल्लीमें होकर घोल अन्दर जाता और जल बाहर आता रहता है। इस क्रियाको अभिसर्पण कहते हैं। घोलके भीतर जानेको अन्तसर्पण (एन्डौस्मोसिस् Endosmosis) और जलके बाहर आनेको (एक्सौस्मोसिस् Exosmosis) बहिर्सर्पण कहते हैं।

ऑस्मोसिस्-जन्य प्रेशर वा दबावकी शक्तिको एक प्रयोगसे भली भांति दिखा सकते हैं। एक भाग जलमें २ भाग सोडियम शिलाकेत (Water glass, or Sodium silicate) घोल कर उसमें कोबाल्ट (Cobaltnitrate) नत्रेत, मैंगनीज़ गंधेत (Manganese sulphate), लौहिक हरिद (Ferric chloride), निकिल नत्रेत (Nickel nitrate) वा अल्यूमिनियम गंधेत (Aluminium Sulphate) का एक रवा (Crystal) रख दीजिये। रवेके ऊपर एक झिल्ली बन जायगी; और ज्यों ज्यों उसमें होकर जल भीतर जायगा, रवा घुलनेसे अन्दर दबाव उत्पन्न होगा और फलतः वह फूल जायगा। जिस समय पानीका भीतर जाना और बाहर आना एकही गतिसे होने लगेगा, 'ऑस्मोटिक प्रेशर' का काम समाप्त हो जायगा।

कई भांतिके कृत्रिम पौदे इस प्रकार बनाये जा सकते हैं। छः भाग जलमें एक भाग वाटर ग्लास घोल लीजिये और उसमें १५ भाग तूतिया (Copper Sulphate), ५ भाग कसीस (Ferrous Sulphate), ५ भाग कैल्शियम गंधेत (Calcium Sulphate) और ५ भाग जलके बने हुए (मटरके दाने जितने बड़े) बीजोंको रख दीजिये तो काई (Moss) जैसे हरे पौदे बन जायंगे। १५ भाग कसीस, ५ भाग तूतिया, ५ भाग कैल्शियम गंधेत और ५ भाग जलके बने हुए बीजोंका प्रयोग करनेसे अलगवे (Algae) जैसे भूरे वृक्ष बन जायंगे। वृक्ष (Tree) और झाड़ियों (Bushes) जैसे हरे तने और सफ़ेद शाखाओं वाले पौदे बनानेके लिए १० भाग मंगनीज़ गंधेत, १० भाग तूतिया, १ भाग कसीस, ५ भाग कैल्शियम गंधेत और २.५ भाग जल लेकर बीज बनाने चाहियें।

पौदे बनानेकी एक और भी रीति है। १ भाग तूतिया और १ भाग शक्कर (Sugar) लेकर बीज बना लीजिये और १०० भाग जलमें दस प्रतिशत वाले जिलेटिन घोल (Solution of gelatine) के १०—२० भाग, नमक (Sodium chloride) के ५—१० भाग और पोटासियम—फेरोसायनाइडके संपृक्तघोलके १०—१२ भाग मिलाकर उसमें उन्हें

रख दीजिये तो तापक्रम (Temperature) के अनुसार कुछ घण्टों वा दिनोंमें पेड़ उपजने आरम्भ हो जायंगे। सबसे पहिले कापर फेरोसायनाइड् (Copper ferrocyanide) की एक पतली झिल्ली बन जायगी, जिसमें होकर पानी तो अन्दर जा सकेगा, परन्तु शक्कर बाहिर न जा सकेगी। इस कारण पेड़ बढ़ने लगेगा। यदि शीशे (Glass plate) पर रखे हुए उपरोक्त घोलमें बीज रखें तो वृक्ष एक ओरको ही जमता रहता है। परन्तु यदि उसे किसी गहरे बर्तनमें रखें तो वह आड़ा और सीधा (Horizontally and vertically) सब ओरको उगता रहता है। कुछ समय बाद तने भी निकल आते हैं, जो पानीकी सतहसे बाहर निकल कर चपटे पत्तोंकी भाँति फैल जाते हैं। इन वृक्षोंके ऊपर वैसे ही दनदाने (Protuberances) पाये जाते हैं जैसे कि मशरूम (Mushroom) के पेड़में। क्या यह सब आश्चर्य जनक नहीं है।

"भ्रमर"

डंगरियोंपर मेरे विचार

[ले०—श्रीयुत गोपाल साह]

मई १९१८के विज्ञानमें पं० रुद्रदत्त भट्ट जी का एक लेख 'पहाड़ी प्रदेशोंके डंगरियोंके कर्तव' शीर्षक छपा था। अन्तमें सम्पादकीय नोट भी इस विषयमें विविधि प्रान्तोंका लोकमत संग्रह करनेके विचारसे छपा था। तबसे इस विषयका कोई भी लेख विज्ञानमें नहीं छपा। थाली, ढोल, आदि बजा कर मानुष शरीरमें देवताओंका प्रवेश कराना अवैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उक्त विधिसे मनुष्य नचाये तो अवश्य जा सकते हैं, परन्तु यह कहना ज़रा कठिन है कि सचमुच ही नाचनेवालेकी देहमें किसी खास देवताका आवेश हुआ है और उसके द्वारा वस्तुतः लाभ हुआ है। यदि किसी मनुष्यकी देहमें किसी आत्मा या देवताका प्रवेश होना ठीक ठीक सिद्ध हो जाय तब तो यह मनुष्य-विज्ञान-सम्बन्धी अपूर्व सिद्धान्त होगा। परन्तु कुमायूँ प्रान्तमें देवता-प्रवेशकी अधिकता और वहांके व्यवहारसे तो यही मालूम पड़ता है कि यह मानुष निर्बलताके सिवाय और कुछ भी नहीं है।

भट्टजीने उक्त लेखको बचा बचाकर तथा प्रभावोत्पादक भाषामें लिखा है। यथार्थमें देवता नचाने की चालको इस प्रदेशकी व्यापक कुप्रथा कहना अनुचित न होगा और यह प्रथा केवल देहाती भोले भाले आदमियोंमें ही नहीं वरन सभ्य सुशिक्षित नागरिक मनुष्योंमें भी प्रचलित है, परन्तु कुछ कम। केवल हैजा आदि रोगोंकी शान्तिके लिए ही जागर (दुर्गा पूजन) नहीं लगाये जाते, बल्कि दूसरे तीसरे वर्ष या कुछ वर्ष बाद (जिन गांवोंमें यह रीति होती है) जागर लगाना परम कर्तव्य समझा जाता है। यह पूजा देहातोंमें सामुदायिक ढङ्गसे मनायी जाती है। केवल आश्विन मासमें ही कुमायूँके गांवोंमें प्रतिवर्ष जागर लगाये जाते हैं। हजारों मनुष्योंके शरीरोंमें देवता चढ़ते हैं। नौ दिन तक रात्रिके समय डंगरियोंके शरीरमें देवताओं प्रवेश होता है। बहुधा अछूतोंके देहमें भी अच्छे अच्छे देवता आ जाते हैं। एक ऐसे ही व्यक्तिके देहमें जो मदिरा मांस भैंसादिका खानेवाला था। हनूमान जी आया करते थे पहिचान यह थी कि वह नाचते समय बहुधा बैठकर चूतड तथा अन्य अङ्ग खुजलाया करता था। पांचवीं रात्रिको रीत्यानुसार प्रधान डंगरिया अन्य डंगरियोंको शिकार खेलनेके लिये भेजता है। तब अन्य डंगरिये कूदते फांदते अलग दिशाओंको जाते हैं और किसी न किसीके खेत या बागसे फल फूल गन्ने आदि लेकर लौटते हैं और प्रधान डंगरियेको देते हैं। ऐसे ही एक डंगरियेसे रास्तेमें लौटते समय कुछ युवकोंने एक बार फल फूल छीन लिये थे। वह विनीत भावसे कहने लगा कि कुछ वहाँ ले जानेके लिए तो देदो।

नौरतोंमें धूनी भी जलाई जाती है, जिसके विषयमें ही भट्ट जीने लिखा है कि पांच पांचे

मिनट तक धधकती हुई धूनियोंमें डंगरिये हाथ रख देते हैं और लाल लाल लोहेके डन्डे मुँहमें रख लेते हैं। मैंने तो आजतक इतनी देर तक ऐसा होते कभी भी नहीं देखा है, न यह सम्भव ही है कि पांच पांच मिनट तक धधकती हुई आगमें हाथ डालें और वह जले नहीं। यदि ऐसा हो जाय तब तो त्रेता युगका प्रहलादवाला दृश्य ही सामने न आ जाय? हाँ! यह हो सकता है कि पांच मिनट-में जल्दी जल्दी पचीस तीस बार हाथ डाला और निकाला जाय। यही होता भी है; लाल लाल लोहेके डन्डे मुँहमें रख नहीं लिये जाते हैं। हां वे चार बार चाट अवश्य लिये जाते हैं और सम्भव है कि जीभमें थूक रहनेसे ही वह न जला सकते हों। यह काम भी केवल पुराने सिद्ध-हस्त विरले ही डंगरिये करते हैं।

एक प्रसिद्ध डंगरियेसे मेरी बातचीत हुई थी। उससे मैंने कहा था कि मैं खुद गर्म लोहा जिस वक्त देवता चढ़ेगा दूँगा, तुम स्थिर भावसे चाटना। शर्त ठहराई गई। पहले तो वह सम्मत हो गया, परन्तु पीछे कहने लगा कि अनायास ही यह हो सकेगा; शर्त ठहरानेसे मुँह जल जायगा। यदि मान लिया जाय कि पांच पांच मिनट तक लाल लाल लोहा मुँहमें रख लिया जा सकता है, तब क्या यह कठिन है कि १० मिनट, १५ मिनट, या ३० मिनट तक देवता होकर उसे धारण न कर सके। असल बात यह है कि यह काम जल्दी जल्दी किया जाता है, जैसे कि जलता हुआ कोयला कुछ देर तक हाथमें नचाया जा सकता है। यहांपर यह जान लेना भी आवश्यक है कि जिन लाल छड़ोंको डंगरिये चाटते हैं उनके दूसरे सिरे ठण्डे होते हैं। यह तो हुई देहातकी बात। अब हमें देखना है कि प्रायः नगरमें रहनेवाले और पढ़े लिखे मनुष्य भी किस तथ्यके कारण इस पर विश्वास करते जाते हैं?

जिन दशाओं या बीमारियोंमें अन्य जाति-योंमें इतर उपचारोंसे काम लिया जाता है बहुधा उन्हीं दशाओंमें यहां देवताओंका कोप समझ कर या भूतोंको दूर करनेके विचारसे जागर, बैसी आदिका विधान किया जाता है। परन्तु फल तो सदा वही होता है जैसा होना चाहिये। १० बीमारोंमेंसे ४ चार अच्छे हुये, चार मर गये, दो बीमार ही रहे; फिर कैसे कहा जाय कि देव-ताके प्रभावसे कुछ हुआ है? एक बात और धोखा देनेवाली होती है जो विश्वास पैदा करनेमें सहा-यता पहुंचाती है। वह है दिन रात घूंघटसे मुंह ढांपकर रखनेवाली बहू बेटियोंका देवता आनेके समय निर्लज्ज होकर नांचना और दूसरे नाचने-वालेकी ओर बांह पसार कर मित्र भावसे स्वागत-के लिए आलिंगन करनेको झुकना; चाहे वह कोई अपरिचित पुरुष ही क्यों न हो। इसी आड़में बेधड़क कहा जाता है कि देवता न आया होता तो इन्हें लज्जा मालूम होती।

यद्यपि यह हृदयकी निर्बलता, देवताके आने-का विश्वास, देवता प्रवेश करानेवालोंकी जोशीली आवाज और जुझाऊ बाजोंका प्रभाव मात्र है, जो ऊंचे ऊंचे शब्दोंसे ढोल व कांसेकी थाली बजाकर डंगरियों पर डाला जाता है; पर देखा गया है कि डंगरिये पूर्ण रूपसे देवता प्रवेश कराने-वालेके अधीन होते हैं; जैसा वह कहता है वैसा ही कृत्य नाचते हुये करने लगते हैं। वह भी अधिक-तर खूब ऊलजलूल बातोंसे उन्हें नचाते हैं। एक दिन एक तमाखू बेचनेवाले दुकानदारके ऊपर देवता-का आवेश हो रहा था; तब प्रवेश करानेवालेने कहा, 'तम्बाकूकी गोली कैसे बनाते हैं,' और बाजा बजाया। वह कूदता हुआ, दोनों हाथोंसे तम्बाकूकी गोली बनानेकी विधि दर्शाने लगा। ऐसे ऐसे वाक्यों द्वारा तथा कुमायूनी भाषामें बने गीतों द्वारा ही देवता नचाये जाते हैं। न शास्त्रोंमें हरु, शैम, गोलू आदि देवताओंके नाम ही हैं न पूजा पद्धतियोंमें पूजा प्रवेश आदिके मन्त्र ही हैं; फिर भी हजारों ललनाओं और लालोंको थाली बजा बजाकर नचाया जाता है और ढोल पीटे जाते हैं। क्या जानें कब तक इस कुप्रथासे कूर्माचलका पीछा छूटता है।

सभ्यताकी जन्मदात्री अवला

पुरुषोंमें पशुबलका आधिक्य सदासे रहा है। इसीलिए मेहनत मज़दूरी करना पुरुषों-के भाग्यमें विधाताने अनादि कालसे लिख दिया है। आजकल भी पुरुषोंका काम मेहनत मज़दूरी करके पेट भरना है—अपना, अपनी स्त्रीका और अपनी सन्तान-का। हां, आजकल साहित्य और विज्ञानके क्षेत्रमें पुरुष कुछ कर रहे हैं, किन्तु यह उनकी स्वार्थ परा-यणताका प्रमाण है, न कि स्त्रियोंकी अयोग्यताका।

यदि स्त्रियां शिक्षा और स्वतंत्रतासे वंचित न की जातीं तो वह भी ऐसे ही काम कर सकती थीं। अब भी मैरीकरैली, श्रीमती नायडू, मेडेम क्यूरी आदि स्त्रियां पुरुषोंसे बाजी मारनेको ईश्वर-की कृपासे विद्यमान हैं। परन्तु आजकल साहित्य और विज्ञानमें जो काम हो रहा है वह अधिकांश मज़दूरीकी कक्षामें रखेजानेके लायक है। नयी नयी ईजादें करने और नये नये यंत्रादि साधन निकालने-का उद्देश्य केवल पेट भरना मात्र है। इसी प्रकार दस पुस्तकोंको पढ़कर एक पुस्तक लिख मारना यद्यपि डाक्टरेटके लिए पर्याप्त समझा जाता है या उपन्यास लिख कर मनुष्य साहित्य सेवी गिना जाने लगता है किन्तु सच्ची गवेषणाका काम, जिस-से मनुष्यकी ज्ञान वृद्धि हो और जिसका प्रभाव सभ्यता पर पड़े, बहुत कम होता है। गवेषणा या रिसर्चका भूत बहुतोंके सिर पर सवार है। डी. एस-सी., पी. एच. डी., डी. लिट. पदवियां भी आज कल खूब मिल रही हैं, किन्तु विरले ही सपूत सच्ची गवेषणा करते हैं और सभ्यताकी सीमा बढ़ाते हैं। ऐसे सत्पुरुषोंके नाम उँगलियों पर गिने जा सकते हैं, जैसे भारतमें कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विज्ञानाचार्य रमन, बसु, साह, राय महोदय आदि।

किन्तु आविष्कारोंसे लाभ उठाना, उन्हें मानव समाजमें उचित स्थान प्रदान करना, समाज और धर्मकी मर्यादा बनाये रखना, जातियोंका जातित्व कायम रखना, सभ्यताका भविष्यके लिए मार्ग अंकित करना, जातियोंको बिगाड़ना और बनाना, देशोंके उत्थान और पतनका विधान करना स्त्रियों-के हाथमें ही है। बड़ी माओंके ही बड़े बेटे होते हैं; बड़े बापके बड़े बेटे शायद ही कहीं देखनेमें आते हैं।

अपने नित्यके जीवनमें देखिये; कुलकी कान, वंशकी मर्यादा, धर्मका जीवन यदि कोई स्थापित और रक्षित रखता है तो स्त्रियां ही।

मानवी सभ्यताके आरम्भ कालमें तो स्त्रियोंने ही सब कुछ किया था। मनुष्य या तो कुत्तों और बिल्लियोंकी तरह उच्छिष्ट मांस उठा लानेका अथवा भेड़ियेकी तरह छोटे छोटे प्राणियोंको मारनेका काम किया करता था। मनुष्य केवल एक "बायो-लोजिकल फेक्टर" अर्थात् प्रजोत्पादनका साधन मात्र था। थोड़े दिनों बाद जब स्त्रियां संभल जायंगी और अपना उचित स्थान प्राप्त कर लेंगी तब भी मनुष्य सृष्टिका एक साधन मात्र रह जायगा। स्त्रियां ही संसारका शासन और प्रबन्ध करेंगी।

प्राचीन गाथाओं, चित्रों और मूर्त्तियोंसे जो कुछ नतीजा निकाला जा सकता है, वह यही है कि जितने आविष्कार सुखकी वृद्धि और श्रमके बचानेके लिए किये गये थे वह सब स्त्रियोंने ही किये थे, न कि पुरुषोंने और इन्हीं आविष्कारोंसे सभ्य-ताका जन्म हुआ था।

गर्भ धारण करने और बालकोंके पालने पोसने-का काम प्रकृतिने स्त्रीको हो सौंपा है, पर उस प्राचीन कालमें न तो पुरुष अपने पितृत्वको सम-झते थे, न स्त्रियां ही अपनी सन्तानका पिता किसीको मानती थीं। प्रकृतिने जो मातृ प्रेमकी ज्योति स्त्रियोंके हृदयोंमें जगा दी थी, इसी ज्योति-ने उनके मार्गको आलोकित किया और उसने अपनी सन्तानके सुख, समृद्धि और रक्षाके अनेक साधन निकाल लिये।

डा० लेटिल्लीयन (Dr. Letillion) का मत है कि बच्चोंका बंधन मनुष्यको जकड़े न था, उसपर सन्तानकी रक्षाका उत्तरदायित्व न था; इसीलिए मनुष्य स्त्रियोंके बराबर उन्नति न कर सका। मनुष्यको तो बच्चोंकी इतनी भी परवाह न थी जितनी कि उस रीछके बच्चेकी होती थी, जिसे वह मार कर खा जाता था। उसका रात दिन उदरके भरनेमें ही बीत जाता था। भूखके अतिरिक्त ठण्ड और भयने भी उसे सता रखा था।

उसे मारनेकी नयी नयी तरकीबें निकालनेका अथवा एक बारके मारे हुए प्राणीका बचा हुआ मांस रख छोड़नेका खयाल ही नहीं आता था। वह यह जानता अवश्य था कि भूख फिर लगेगी, किन्तु वह यह भी समझता था कि फिर भी पशुओंको मार लूँगा। यही मनुष्यका जीवन था।

पर स्त्री इतनी स्वार्थ रत नहीं हो सकती थी। व्यक्ति गत स्वार्थ उसमें इतना प्रबल न था। उसके हृदयमें मातृप्रेम था, उसके मनमें उत्पन्न करने और रक्षा करनेकी प्रबल आकांक्षाएँ थीं, उतनी ही प्रबल जितनी मनुष्यकी वृत्तियां ध्वंसकी ओर जाती थीं। स्त्रीमें शारीरिक बल पुरुषोंसे कम होता था, इसी कारण उसे नये नये और अधिक उपयोगी साधनोंकी खोज करनी पड़ी। यदि ऐसा न करती तो उसका और उसकी प्यारी सन्तानका नाश होना अनिवार्य था। उदाहरणके लिए सोचिये कि पुरुष तो किसी भैंसे या रीछको घायल करके उसके पीछे पीछे कई दिन तक घूम सकता था और मरने पर उसका मांस खा सकता था; किन्तु अबलामें अपनी सन्तानको लिये लिये जंगल जंगल, पहाड़ों, नदियों और नालोंको पार करके फिरनेकी सामर्थ्य कहां थी? दूसरे पुरुष तो जहां रात होती थी वहीं पड़कर सो रहता था, स्त्री यदि अकेली होती तो वह भी ऐसा कर सकती थी, परन्तु सन्तानको गरम जगह और रक्षित स्थानकी आवश्यकता थी। इन्हीं सब कारणोंसे प्रेरित होकर स्त्रीने घर बनाया और ऐसे साधन निकाले जिनसे बिना हत्या किये वह अपनी और अपनी सन्तानकी रक्षा कर सकती थी।

गृह निर्माण और कृषि कर्मकी नींव स्त्रीकी ही डाली हुई है। यही नहीं बल्कि समयके ज्ञान और गणनाके लिए भी हम स्त्रियोंके आभारी हैं।

सूर्योदय, सूर्यास्त, रात दिनको देख कर मनुष्यको पहले पहल समय विभागका विचार उत्पन्न हुआ होगा। आदमियोंके पैदा होने और मरनेसे भी समय विभागका कुछ ज्ञान होना सम्भव है। किन्तु स्त्रियोंको ही स्पष्ट रीतिसे काल ज्ञान हुआ था। इसका कारण है नियत समय पर रजःस्राव होना। दूसरे प्रायः बच्चोंके पैदा होनेकी अवधि भी भिन्न भिन्न स्त्रियोंके लिए जुदी जुदी होती है। अतएव समय विभागका पहले पहल स्त्रीको ज्ञान होना अस्वाभाविक नहीं था। सन्तानके प्रेमने ही गरमियोंमें जाड़ोंका प्रबन्ध करना स्त्रियोंको सिखाया। कन्द मूल और फलका खानेके लिए प्रयोग करना और जाड़ेके लिए इकट्ठा करके रखना स्त्रीने ही पहले पहल सीखा था। किन्तु उस सुन्दर भूतकालमें स्त्रियां पुरुषोंको शिक्षा देनेका काम नहीं कर सकती थीं। क्योंकि उस समय तक भाषाकी रचना नहीं हुई थी।

धनका आविष्कार भी स्त्रियोंने ही किया था। स्त्रियोंमें आभूषणोंका प्रेम स्वाभाविक है। गुफाओंमें पड़ी भोजनके उपरान्त बची सीपियों, कौड़ियों और शंखोंको स्त्रियोंने देखा था और उनमें छेद करके माला बना कर पहनना स्त्रियोंने ही आरम्भ किया था।

सीपियोंसे ही पहले पहल स्त्रियोंने बरतनोंका काम लेना शुरू किया। मकड़ीके जालोंको देख मछली पकड़नेका जाल भी स्त्रियोंने ही बनाया। बिजली और सूर्यसे अग्निका सम्बन्ध जोड़ कर और अग्निकी उपयोगिता जान कर स्त्रियोंने ही सूर्य और अग्निकी पूजा चलाई। यही प्राचीनतम धर्म है, अग्निने ही घर और गृहस्थीकी नींव डाली। बादमें पवित्र अग्निका प्रज्वलित रखना औरतोंका

काम हो गया। इसीका रूप रोमकी कुमारियोंमें देखा गया था।

चित्र ३०—बीस हज़ार वर्ष पुराना एक सुन्दरीका चित्र। बालोंके बनानेका अजीब ढङ्ग था; जैसे भैंसके सींघ।

अग्नि पैदा करनेकी विधिके आविष्कारके बाद ही खाना पकाने, लोहेके सख्त करने, ताम्बा बनाने आदिकी तरकीबें औरतोंने ही निकाली थीं, पहले पहल मनुष्य खालसे अपना शरीर ढक लिया करते थे। या तो खाल वैसे ही डाल ली जाती थी या लताओंके तन्तुओंसे शरीर पर बांध ली जाती थी। किन्तु बच्चोंकी रक्षाके लिए स्त्रियोंने सीनेका आविष्कार किया था।

हिन्दू समाजके पौराणिक साहित्यमें भी इसी सिद्धान्तका अनेक स्थलों पर वर्णन, आता है। शाक्तमतमें परम शक्तिके रूपमें स्त्रीका ही पूजन होता है।

हालमें ही पेरिसके सौरबोन विश्वविद्यालयने एक कमीशन चतुर विशेषज्ञों और वैज्ञानिकोंका इस बातकी जाँच करनेके लिए बैठाया था कि पुरा-इतिहास कालमें स्त्रियोंकी क्या स्थिति थी और उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाता था। आज कल प्रायः समझा जाता है कि औरतका स्वभाव है कि जबरन प्रणय किये जानेमें उसे प्रसन्नता होती है। इसका कारण लोग यह बतलाते हैं कि गुफा-निवासी मनुष्य भी इसी प्रकार बल पूर्वक प्रणय

चित्र ३१—पचास हज़ार वर्ष पुरानी देवीकी प्रतिमा। सीढ़ीदार (marcelled) बालोंके गूँथनेकी विधि दर्शनीय है।

किया करते थे, उन्हींके संस्कार आधुनिक स्त्रियोंमें भी दृष्टिगोचर होते हैं। उक्त कमीशन अनेक प्रकारसे जांच कर उन परिणामों पर पहुँचा है, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

२०००० वर्ष पहलेका एक चित्र एक कन्दरामें अंकित मिला है। उसका ब्लाक यहां दिया जाता है। बाल संवारनेका अजीब फैशन, पतली कमर (Wasp waiste बर्रकी सी) और अनोखे ढंगकी

आस्तीन देखनेके लायक हैं। एक और मूर्ति लगभग ५०००० वर्ष पुरानी मिली है। यही प्रायः प्राचीनतम मूर्ति है। यदि यह मान लिया जाय कि मनुष्य अपने सर्वोच्च आदर्शके अनुसार ही देव मूर्तियोंका निर्माण करता है तो बाल संवारनेका फैशन और सौन्दर्यका आदर्श ५०००० वर्ष पहले बड़ा अजीब था (देखिये चित्र ३० तथा ३१)।

—मनोहरलाल, एम. ए.

पेटमेंसे पिन कैसे निकला ?

थोड़े दिनकी बात है कि एक छः महीनेका बच्चा एक सेफटी-पिन निगल गया। एक्स-किरणों द्वारा छाया चित्र लिया गया। उससे पता चला कि पिन आमाशयमें पहुंच गया है, खुला हुआ है, उसकी नोंक ऊपरको गलेकी तरफको है और मांसमें चुभ रही है।

बारह घण्टे बाद डाक्टर बफने खुले हुए पिनको पेटमें ही बन्द किया और गले और मुँहमें होकर निकाल लिया। खूनका एक कतरा भी नहीं गिरा, न नश्तरसे काम लिया गया। बालक अब अच्छी तरह है।

दूसरे डाक्टर तो हताश हो गये थे। वह आलपीन निकालना उचित नहीं समझते थे, क्योंकि उसमें मृत्यु हो जानेका अन्देशा था। न निकालनेमें यह जोखिम थी कि गलाओ वैठ जायगा और उसीके कारण बच्चेकी मृत्यु हो जायगी।

बच्चे न जानें क्या क्या हड़प जाते हैं। सूई, पिन, बटन, टैक, पाई, पैसे, कील आदि सभी चीज़ोंके सम्बन्धमें सुना गया है कि बालक निगल गये हैं। सेफटी पिन भी बालक पहले निगल चुके हैं। परन्तु खुला हुआ सेफटीपिनका निगलना बड़ा आश्चर्यजनक है। यह चीज़ें कभी पेटमेंसे विरेचेन द्वारा निकाल ली जाती है और कभी अन्य साधनोंसे भी; परन्तु कभी कभी बच्चा मर भी जाता है।
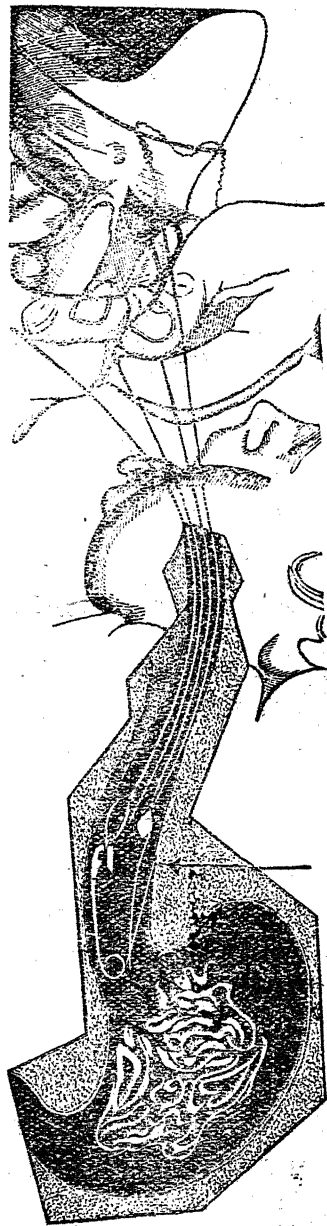
चित्र ३२—बालकके पेटमें से खुला सेफटी पिन निकालनेकी तरकीब।

इस बालकके आमाशयकी परीक्षा कई दिन तक एक्स किरणों से होती रही। आरम्भसे ही यह दीख पड़ता था कि पिनका बन्द सिरा नीचेको है और खुला हुआ ऊपरको है; परन्तु बादको वह कर्वटके बल पलटा और गलेकी तरफको चढ़ गया। शायद ऐसा खांसीके कारण हुआ हो।

इस अन्तिम स्थितिमें पिन पहलेसे भी अधिक कष्टदायक और घातक प्रतीत होता था। गलेमेंसे निकल आना या उलटा पेटमें वापिस चला जाना असम्भव था, क्योंकि उसकी नोक गुब गई थी; जिस कारण वह अटक गया था।

डा० बफने पिन निकालनेके लिए यह प्रबंध किया।

१—उन्होंने एक पलास इतनी छोटी ली कि बालकके गलेमेंसे नीचे उतारी जा सकती थी। पलासके एक हत्थेमें उन्होंने पतली तारकी रस्सी बांध दी, जिसमें वह नीचे उतारी जा सके।

पलासका मुँह खुला था ही, इस कारण उससे जिस चीज़को चाहते पकड़ सकते थे।

तारका ऊपरला सिरा डाक्टरकी उंगलीमें लिपटा हुआ था; इसीसे पलास पिनको पकड़नेके बाद खींची गयी थी।

२—अब प्रश्न यह था कि पलास पिनको पकड़ेगी कैसे ? उन्होंने एक दूसरा तार लेकर उसके छोरपर फंदा बनाया और पलासको नीचेसे पहना दिया। इस फंदेको ही ऊपर नीचे सरकानेसे पलासका मुँह खोला या बन्द किया जा सकता था। जब पलास पिनको पकड़ सकनेकी स्थितिमें पहुँची तभी फंदेको ऊपरको सरकाया। ऐसा करनेसे दोनों हत्थे भिचे; जिससे पलासका मुँह बन्द हो गया और पिन उसमें जकड़ गया।

३—अब एक कठिनाई और थी। पिन कैसे बन्द किया जाता ? इसकी तरकीब यह सोची गयी कि जब पिनको पलास जकड़ लेगी एक तीसरे तार पर फंदा बना कर पिन पर नीचेसे चढ़ा कर ऊपरको खींचा जायगा। ज्यों ज्यों फंदा ऊपरको चढ़ेगा पिन बन्द होता जायगा, यहां तक कि वह थामके नीचे आकर रुक जायगा।

४—एक छोटी सी बिजलीकी बत्ती तय्यार की गई; जो एक तार द्वारा गलेमें प्रकाश करनेके लिए उतारी जा सकती थी। इसीकी सहायतासे डाक्टर देख देख कर सब काम करते रहे।

जब सब समान तैयार हो गया तो बच्चेका सिर और हाथ थाम लिये गये। बिजलीकी बत्ती के तारसे एक तार बांध दिया गया, जिसका दूसरा छोर डाक्टरने अपने सिर पर बांध लिया और तब बत्तीको गलेमें उतारा।

बत्तीके प्रकाशमें पिन अन्न मार्गसे नीचे चमकता हुआ दिखाई पड़ा। पलाससे बँधा तार डाक्टरने दाहिने हाथमें और फंदेवाला तार बायेंमें लिया; दोनों तारोंको गलेमें उतारा। जब पलासके दोनों सिरे पिनकी दोनों तरफ पहुँच गये तो पलासको फंदा सरका कर बंद कर दिया, तदनन्तर दोनों तार उन्होंने बायें हाथमें थाम लिये। फिर दाहिने हाथसे दूसरा फंदेवाला तार नीचे उतार कर पिन पर सरकाना शिरू किया, पिनका खुला भाग धीरे धीरे बन्द होने लगा और अन्तमें थामके नीचे आकर अटक गया।

पिनके बन्द होते ही डाक्टरने पलासको खींचा, पिन भी आरामसे घिसटता हुआ चला आया।

—रतनलाल, एम. ए.

सोडा

लकड़ी जलाने पर जो राख बच रहती है उसमें प्रायः तिहाई भाग पोटास कर्बनेतका होता है। अतएव यदि नगर भर-की राख इकट्ठा करके कर्ब-नेत बनाया जाय तो लाभ हो सकता है। नाग दौन नामी पहाड़ी लकड़ीकी राख-में तो प्रायः ७० °/。 पोटास कर्बनेत होता है। अमेरिकामें किसी समय राखसे ही पोटास कर्बनेत बनाया करते थे। राखको पानी-में डाल कर खूब हिलाते थे; कुछ देर बाद जब स्वच्छ घोल ऊपर रह जाता था और तलछट नीचे बैठ जाती थी तो नितारकर घोलको लोहेके कढ़ावोंमें डाल लिया करते थे। पानीके जल चुकने पर, जो चूर्ण बचता था उसे भी खूब भूनते थे। ऐसा करने से अंगारक अंश जल जाता था और पोटास कर्बनेत बच रहता था। इसीको पौट-एश (बर्तनमें बची राख) कहते थे। इसीसे आजकल-का पोटास शब्द निकला है।
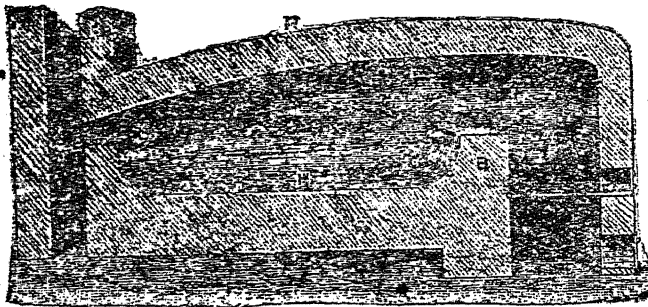
चित्र ३३—परावर्तक भठ्ठी (Reverberatory Furnace)। दाईं तरफ आग जलती है। आगकी लौ भठ्ठेकी छतसे टकराकर भठ्ठेके मध्यके भागमें रखे पदार्थोंको गरम करती है। अवशिष्ट गैस बाएं छोरपर बनी चिमनीसे निकल जाती हैं।

घोलको कढ़ावमें चढ़ा कर उसका पानी एक ही बारमें जला देनेसे यह अच्छा है कि पहले घोलको कुछ गाढ़ा करलें और जो कम घुलनशील पदार्थ उसमें मौजूद हैं, उन्हें रवोंके रूपमें जमकर निकल जाने दें और तब अवशिष्ट घोलको पूर्ववत सुखा दें और बचे चूर्णको भून लें। ऐसा करने से अधिक शुद्ध कर्बनेत मिलता है। इसीको पर्ल एश कहते हैं। इस पर्लएशके नामसे धोखा खाकर एक सज्जन ने अपने ग्रन्थमें मोतीकी भस्म या राख काममें लानेकी सलाह दी है। खेद है कि नुस्खों-की किताबें बनानेवाले बिना समझे बूझे शब्दार्थ पर ही जाकर ऐसी भ्रष्ट बातें लिख मारते हैं।

समुद्री पौधोंकी राखसे सोडा प्राप्त होता है। इसीलिए अरबोंने पोटास कर्बनेत तथा सोडाको एलकेली संज्ञा दी थी। जब अमोनियम कर्बनेत बनने लगा तो उसे (volatile alkali) उड़नशील क्षार कहने लगे और उपरोक्त दोनों क्षारोंको स्थिरक्षार नाम दिया गया। सं० १७९३ वि० में डुहेमल ने पोटास कर्बनेत को वानस्पतिक क्षार और सोडा-को खनिज क्षारका नाम देकर दोनोंको भिन्न भिन्न पदार्थ माना।

१८५२ वि० के पहले तक सोडा समुद्री पौदों-की राखसे और पोटास कर्बनेत मामूली लकड़ी-की राखसे बनाया जाता था। उस समय भी नमकसे सोडा बनानेकी कई विधि मालूम थीं; परन्तु काममें आती न थीं। इससे २३ वर्ष पहले शील महोदयने सीसेके ओषिदकी नमकके घोलके साथ प्रतिक्रिया कराई और घोलको छान कर उसमें होकर कर्बन द्विओषिद निकाली थी; इस विधिसे सोडा तय्या रहो गया था। फ्रांसके राज विप्लवके बाद जब नेपोलियन ने अंग्रेजी और अमे-रिकन जहाज़ोंका यूरोपियन बन्दरों-में आना बन्द कर दिया था तो

सोडाका बाहरसे आना भी बन्द हो गया था। नेपोलियनने १००००० फ्रैंकका इनाम उस व्यक्तिको देनेकी सूचना निकाली थी, जो नमकसे सोडा बनानेकी विधि निकालेगा।

मिलाकर एक परावर्तक भट्टेमें गरम किया जाता है। इस भट्टेको "ब्लेक ऐश फरनेस" कहते हैं। आजकल परावर्तक भट्टेको काममें न लाकर एक घूमनेवाले बेलनाकार बर्तनका प्रयोग करते हैं,
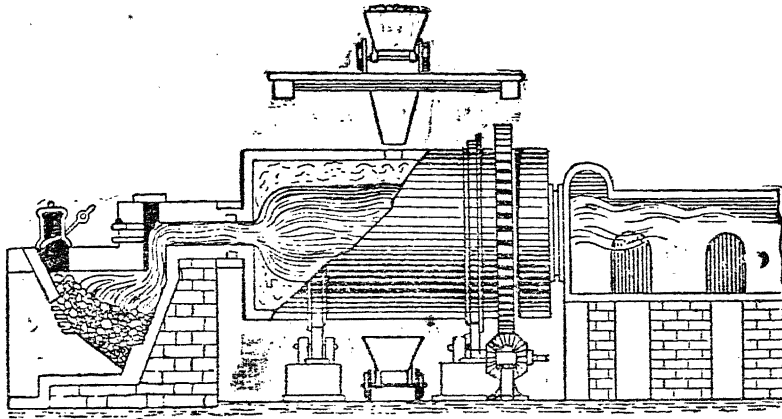
चित्र ३४—बेलनाकार ब्लेकएश फरनेस।

लीब्लैंक महोदयने एक विधि निकालकर १८५१ वि० में इनाम पानेका अधिकार प्राप्त कर लिया, किन्तु इनामके बदलेमें विप्लव कारियों ने उनको जेलमें डाल दिया और वह भग्नाशा हो मर गये।

लीब्लैंक विधिमें तीन क्रियाएं होती हैं।

पहली क्रिया है नमकको सोडा सल्फेटमें परिवर्तन करने की। नमकको लोहेकी कढ़ाइयों में गन्धकके तेज़ाबके साथ तपाते हैं। नीचेसे धीमी आंच दी जाती है। नमकका तेज़ाब तो उड़ कर चिमनी, धमाले, में से निकल जाता है और सोडियम अम्लगन्धेत बन जाता है। तब कढ़ाईमें से इसे एक परावर्तक भट्टेके गर्भमें पहुंचाकर गरम करते हैं। सोडियम अम्ल गंधेत और नमकके साथ मिलकर सोडियम गंधेत और लवणाम्ल बनाता है। लवणाम्ल तो पूर्ववत धमालेमें से निकल जाता है और सोडियम गंधेतको दूसरी क्रियाके लिए निकाल लेते हैं।

दूसरी क्रियामें सोडियम गंधेत, जिसे साल्टकेक कहते हैं; चूनेके पत्थर और कोयलेके साथ

जिसमें एक भट्टीसे गरम गरम गैसें आती रहती हैं। बरतनके घूमनेसे उसमेंका मसाला खूब मिल जाता है। पहले सोडियम गंधेतका सोडियम गंधिद ऋणद क्रिया द्वारा बन जाता है:—

$$सो_2 \, ग \, ओ_4 + २क = सो_2 \, ग + २क \, ओ_2$$
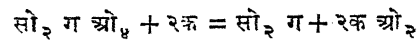
सोडियम गन्धिद तब चूनेके पत्थरके संयोगसे खटिक गंधिद और सोडेमें बदल जाता है—

$$सो_2 \, ग + ख \, क \, ओ_3 = सो_2 \, क \, ओ_3 + ख \, ग$$
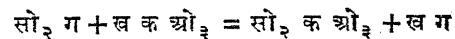
इन दोनों परिवर्तनोंके हो चुकने पर बेलनाकार बर्तनका मुंह खोल कर उसमें भरा पदार्थ छोटी छोटी गाड़ियोंमें भर लेते हैं। इस काले या मटैले पदार्थको ब्लेक ऐश कहते हैं। इसमें ४०-४५% सोडा, ३०—३२% खटिक गंधिद २—६% चूना; चूनेका पत्थर ६—१२% और कोक ४—७% रहता है। नमक, सोडियम गंधिद, लोह ओषिद आदि पदार्थ भी थोड़ी थोड़ी मात्रामें रहते हैं।

तृतीय क्रियामें ब्लेक ऐशसे सोड़ा निकाला जाता है। ब्लेक ऐशको गरम पानीमें खँगालते हैं; जिससे पानीकी न्यूनातिन्यून मात्रा काम आती है।

पानी कुटी हुई ब्लेक ऐशसे भी कई कुण्डोंमें होता हुआ बहता है। ताज़ा पानी उस कुण्डमें दिया जाता है जिसकी ऐशमें से सोडा प्रायः निकल चुका होता है और सोडासे संपृक्त पानी उस कुण्डमें से प्रायः निकलता है, जिसमें ताज़ा ब्लेक ऐश भरी होती है। कुण्डोंसे प्राप्त हुआ घोल एक कुण्डमें भर दिया जाता है। जब तलछट जम जाती है तो स्वच्छ घोलको निथारकर, उथली कढ़ाइयोंमें भर देते हैं। यह कढ़ाइयां ब्लेक ऐश फरनेसमें की निकली हुई उत्तप्त गैसोंसे गरम होती हैं। जो चूर्ण अन्तमें बच रहता है वह भूना जाता है, यही सोडा ऐश कहाता है।

—रतनलाल एम. ए.

सूर्य सिद्धान्त

(गतांकसे आगे)

[ले०—श्री० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी० एस-सी० एल० टी० विशारद]

तद्द्वादश सहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम् ।
सूर्याब्द सङ्ख्यया द्वित्रि सागरैरयुता हतैः ॥ १४ ॥
सन्ध्या सन्ध्यांश सहितं विज्ञेयं तच्चतुर्युगम् ।
कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपाद व्यवस्थया ॥ १६ ॥
युगस्य दशमो भागश्चतुस्त्रिद्व्येक संगुणः ।
क्रमात्कृत युगादीनां षष्ठांशः सन्ध्ययोः स्वकः ॥ १७ ॥

अनुवाद—इन बारह हजार दिव्य वर्षोंका एक चतुर्युग होता है, जिसका परिमाण सौर वर्षोंमें तेतालीस लाख बीस हजार (४३२००००) होता है। इसमें संध्या और संध्यांशके वर्ष भी मिले हुए हैं। एक चतुर्युगमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग चार युग होते हैं; जिनके मान धर्मके चरणोंके अनुसार होते हैं। चतुर्युगके दसवें भागका चार गुना सत्ययुग, तीन गुना त्रेता, दो गुना द्वापर और एक गुना कलियुग होता है। प्रत्येक युगके छठे भागके समान उसकी दोनों संध्याएं होती हैं ॥ १५-१७ ॥

विज्ञान भाष्य—१४वें श्लोकमें बतलाया गया है कि सुरों या असुरोंके ३६० दिनका एक दिव्य वर्ष होता है। तेरहवें श्लोकमें बतलाया गया है कि देवताओंका एक दिन एक सौर वर्षके समान होता है; इसलिए यह स्पष्ट है कि देवताओंका एक वर्ष ३६० सौर वर्षोंके समान हुआ। १५ वें श्लोकके अनुसार १२००० दिव्य वर्षोंका अथवा १२००० × ३६० (अर्थात् ४३२००००) सौर वर्षोंका एक चतुर्युग होता है। चतुर्युगको महायुग भी कहते हैं। एक महायुगमें चार युग सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग होते हैं; इसी लिए इसको चतुर्युग भी कहते हैं। सत्ययुगमें धर्म चार चरण होता है, त्रेतामें तीन चरण, द्वापरमें दो चरण और कलियुगमें एक चरण। इसी तरह एक महायुगमें सत्ययुग चार भाग, त्रेता तीन भाग, द्वापर दो भाग और कलियुग एक भाग होता है। इसलिए

	दिव्य वर्षोंमें	सौर वर्षोंमें
दोनों संध्याओं सहित सत्ययुगका मान हुआ	४८००	१७२८०००
” त्रेता ”	३६००	१२९६०००
” द्वापर ”	२४००	८६४०००
” कलियुग ”	१२००	४३२०००
महायुग	१२०००	४३२००००

प्रत्येक युगकी दोनों सन्ध्याएं उसके छठे भागके समान होती हैं; इसलिए एक संध्या (सन्धिकाल) बारहवें भागके समान हुई। युगके आदिमें जो संध्या होती है उसको आदि संध्या और अन्तमें जो संध्या होती है उसको संध्यांश कहते हैं। इनके मान यह हुए :—

	दिव्य वर्षोंमें	सौर वर्षोंमें
सत्ययुगकी आदि वा अन्त्य संध्या	४००	१४४०००
त्रेताकी ” ”	३००	१०८०००
द्वापरकी ” ”	२००	७२०००
कलियुगकी ” ”	१००	३६०००

जैसे एक, अहोरात्रमें प्रातः और सायं दो संध्याएँ होती हैं वैसे ही चतुर्युगके प्रत्येक युगमें

दो संध्याएँ होती हैं, एक आरम्भमें और एक अन्तमें।

जैसे एक अहोरात्रमें प्रातः और सायं दो संध्याएं होती हैं वैसे ही चतुर्युगके प्रत्येक युगमें दो सध्याएं होती हैं, एक आरंभमें और एक अंतमें।

युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते ।
कृताब्द संख्या तस्यान्ते संधि प्रोक्तो जल प्लवः ॥१८॥
स सन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतु दर्श ।
कृत प्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्चादशः स्मृतः ॥१९॥

अनुवाद—७१ महायुगोंका एक मन्वन्तर होता है, जिसके अंतमें सत्ययुगके समान संध्या होती है। इसी संध्यामें जल प्लव होता है। संधि सहित १४ मन्वन्तरोंका एक कल्प होता है, जिसके आदिमें भी सत्ययुगके समान एक संध्या होती है; इसलिए एक कल्पमें १४ मन्वन्तर और १५ सत्युगके समान सध्याएं हुई ॥१८-१९॥

विज्ञान भाष्य—चतुर्युगके प्रत्येक युगमें दो संध्याएं मानी गयी हैं; परन्तु मन्वन्तरके केवल अंतमें एक संध्या मानी गयी है; जिसका मान सत्ययुगके समान होता है। १ मन्वन्तर ७१ महायुगोंका अर्थात् ७१ × ४३२०००० = ३०६७२०००० सौरवर्षोंका होता है। प्रत्येक मन्वन्तरके अंतमें १७२८००० सौर वर्षों-की एक संध्या होती है तथा कल्पके आदिमें भी इसीके समान एक संध्या होती है इस प्रकार

१ कल्प = १४ मन्वन्तर + १५ सत्युगसे समान सध्याएं

= १४ × ७१ महायुग + १५ सत्ययुग

= ९९४ महायुग + $\frac{१५ \times ४}{१०}$ महायुग [क्योंकि सत्ययुग = महायुगका $\frac{४}{१०}$]

= ९९४ + ६ महायुग

= १००० महायुग

अथवा = १००० × १२००० = १२०००००० दिव्य वर्ष

अथवा १००० × ४३२०००० = ४३२०००००० सौर वर्ष

महायुग अथवा मन्वन्तरके यह मान मनुस्मृति इत्यादि धर्म शास्त्रोंसे मिलते हैं; परन्तु आर्य भटने अपने आर्यभटीयमें युगोंके मान कुछ भिन्न दिये हैं। इनके अनुसार १ कल्पमें १४ मनु और १ मनु-में ७२ चतुर्युगके प्रत्येक युग सत्ययुग त्रेता, द्वापर और कलियुग समान[1] होते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आर्यभटके अनुसार एक कल्पमें १४ × ७२ = १००८ चतुर्युग होते हैं।

इत्थं युग सहस्रेण भूत संहारकारकः ।
कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्त शर्वरी तस्यतावती ॥२०॥

अनुवाद—इस प्रकार एक हज़ार महायुगका एक कल्प होता है जो ब्रह्माके एक दिनके समान है। इतने ही समयकी ब्रह्माकी एक रात होती है, जिसमें सृष्टिका लय हो जाता है।

विज्ञान भाष्य—ब्रह्माके दिन और रातका बहुत ही अच्छा चित्र भगवान कृष्णने भी श्री मद्भगवत-गीताके आठवें अध्यायमें यों किया है:—

सहस्रयुग पर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युग सहस्रांतां तेऽहो रात्र विदो जनाः ॥१७॥
अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके ॥१८॥
भूत ग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥१९॥

अर्थात् (१७) अहो रात्रको तत्वतः जाननेवाले पुरुष समझते हैं, कि कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन चार युगोंका महायुग होता है और (ऐसे) हजार महायुगोंका समय ब्रह्म देवका एक दिन होता है और ऐसे ही हज़ार युगोंकी (उसकी) एक रात्रि होती है।

(१८) 'ब्रह्मदेवके दिनका आरंभ होनेपर अव्यक्त से सब व्यक्त (पदार्थ) निर्मित होते हैं और रात्रि होनेपर उसी पूर्वोक्त अव्यक्तमें लीन हो जाते हैं। (१९) हे पार्थ! भूतोंका वही सामुदाय (इस प्रकार) बार बार उत्पन्न होकर अवश होता हुआ, अर्थात् इच्छा हो या न हो रात होते ही लीन हो जाता है और दिन होनेपर (फिर) जन्म लेता है।"*

[1] देखिये २३ वें श्लोकका विज्ञानभाष्य।

* गीता रहस्य पृष्ठ ७३४, ७३५

परमायुः शतं तस्य तयाहोरात्र संख्यया ।
आयुषोर्धमितं तस्य शेष कल्पोयमादिमः ॥ २१ ॥
कल्पादस्माच्च मनवः षड् व्यतीताः स सन्धयः ।
वैवस्वतस्य च मनोर्युगानाँ त्रिघनो गतः ॥ २२ ॥
अष्टाविंशाद् युगादस्मायातमेतत्कृतं युगम् ।
अतः काल प्रसंख्याय संख्यामेकत्र पिंडयेत ॥ २३ ॥

अनुवाद—(२१) ब्रह्माकी आयु उन्हींके दिन मानसे सौ वर्षकी होती है। इस समय ब्रह्माकी आधी आयु बीत चुकी है, शेष आधी आयुका यह पहला कल्प है । (२२) इस कल्पके संधियों सहित ६ मनु बीत गये हैं और सातवें मनु वैवस्वतके २७ महायुग बीत गये हैं, तथा (२३) अट्ठाईसवें महायुगका सत्ययुग भी बीत गया है; इस लिए काल गणनाके लिए इतनी संख्याओंको एकत्र कर लेना चाहिये।

विज्ञान भाष्य—आयुका परिमाण सौ वर्षका माना गया है। मनुष्यकी परम आयु सौ सौर वर्षों की होती है, देवताकी आयु सौ दिव्य वर्षोंकी होती है और एक दिव्य वर्ष ३६० सौर वर्षोंका होता है। इसी तरह ब्रह्माकी आयु सौ ब्राह्म वर्षोंकी समझनी चाहिये। एक ब्राह्म वर्ष ३६० ब्राह्म दिनोंका और एक ब्राह्म दिन (अहोरात्र) दो कल्प अथवा २००० महायुगोंका होता है। इस गणनासे ब्रह्माके ५० वर्ष बीत गये हैं, इक्यावनवें वर्षका पहला दिन (कल्प) आरंभ हो गया है जिसके संधियों सहित ६ मनु, २७ महायुग और २८ वें महायुगका सत्ययुग बीत गया है। यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि यह बात सत्ययुग के अंतमें कही जा रही; जैसा कि दूसरे श्लोकके 'अल्पावशिष्टेतु कृते' इत्यादिसे प्रकट है। इस गणनासे वर्तमान कल्पके आरम्भसे २८ वें महायुगके सत्ययुगके अन्त तकका समय यों निकलता हैः—

कल्पकी आदि संध्या	१७,२८,०००	सौर वर्ष
६ मन्वन्तर=	६ × ३०,६७,२०,०००	सौर वर्ष*
	=१,८४,०३,२०,०००	”
६ मन्वन्तरोंकी ६ संध्याएं	=६ × १७,२८,०००	”
	=१,०३,६८,०००	”
२८ वें महायुगका सतयुग	=१७,२८,०००	”
सातवें मन्वन्तरके २७ महायुग=	२७ × ४३,२०,००० या ११,६६,४०,०००	”
कल्पके आरंभसे वर्तमान महायुगके सत्ययुगके अन्त तकका समय	=१,९७,०७,८४,०००	”

इस समय १९७९ वि० में कलियुगके ५०२३ वर्ष बीते हैं; इसलिए यदि कल्पके आरम्भसे अब तकका समय जानना हो तो ऊपर सत्ययुगके अन्त तकके सौर वर्षोंमें त्रेताके १२,९६,००० सौर वर्ष, द्वापरके ८, ६४,००० सौर वर्ष तथा कलियुगके ५०२३ वर्ष और जोड़ देने चाहियें। इस प्रकार कल्पके आरम्भसे अब तकका समय हुआ १, ९७, २९, ४९, ०२३ सौर वर्ष। संकल्पके मंत्रमें समयकी गणना इसी प्रकार की गई है; जिसका समय संबन्धी भाग यह हैः—

प्रवर्तमानस्याद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्धे श्री श्वेतवाराह कल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशति तमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे······बौद्धावतारे वर्तमानेऽस्मिन् वर्तमान् संवत्सरेऽमुकनाम वत्सरेऽमुकायने अमुक ऋतौ अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे संयुक्ते चन्द्रे··· तिथौ··· ।

आर्यभटके मतसे कल्पके आरम्भसे कलियुगके आरम्भ तकका समय—

$$=6 \text{ मनु} + 27 \text{ चतुर्युग} + \frac{3}{4} \text{ चतुर्युग}†$$

---

* देखिये १६ वें श्लोकका विज्ञान भाष्य

† काहो मनवोढ (१४) मनुयुग श्ख (७२) गतास्ते च (६) मनुग छ्ना (२७) च । कल्पादेर्युगपादा ग (३) च गुरु दिवसाच्च भारतात्पूर्वम् ॥ ३ ॥ आर्यभटीय प्रथम पाद !

=६ × ७२ + २७ + $\frac{3}{4}$ चतुर्युग
=४३२ + २७ + $\frac{3}{4}$ चतुर्युग
=४५९$\frac{3}{4}$ × ४३, २०,००० सौर वर्ष
=(४६० − $\frac{1}{4}$) × ४३, २०,००० ”
=१९,८७,२०,००,००० — १०८०,००० सौरवर्ष
=१,९८,६१,२०,००० सौर वर्ष ।

इसमें यदि ५०२३ वर्ष और जोड़ दिये जायं तो १९७९ वि० में कल्पके आरम्भसे जितने सौर वर्ष बीते हैं वह निकल आवेंगे। ब्रह्म गुप्त भास्कराचार्य इत्यादिने आर्य भटके इस मतको नहीं माना है। उनके मतसे कल्पके आरम्भसे अबतक की सौर वर्षोंकी संख्या यही आती है, जो सूर्य सिद्धान्तके अनुसार आती है।

बीते हुए ६ मन्वन्तरोंके नाम हैं—(१) स्वायम्भुव, (२) स्वारोचिष, (३) औत्तमि, (४) तामस, (५) रैवत और (६) चाक्षुष। वर्तमान मन्वन्तरका नाम वैवस्वत है। वर्तमान कल्पको श्वेत वाराह कल्प कहते हैं।

ग्रहर्क्ष देव दैत्यादि सृजतोस्य चराचरम् ।
कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसो गताः ॥ २४ ॥

अनुवाद—(२४) ग्रह, नक्षत्र, देव, दैत्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, पर्वत, वृक्ष इत्यादि चराचर जगत्के बनानेमें ब्रह्माको ४७४०० दिव्य वर्ष अथवा ४७४०० × ३६०=१७०,६४००० सौर वर्ष लग गये। (इसलिए कल्पके आदिसे इतने समयके बाद सारी सृष्टि तैयार हुई)।

विज्ञान भाष्य—सूर्य सिद्धान्तका यह मत है कि कल्पके आदिमें सृष्टिकी रचना नहीं थी। इसके लिए ब्रह्माको १,७०,६४,००० सौर वर्ष लगाने पड़े थे। दूसरे आर्य भटका भी यही मत है; परन्तु ब्रह्मगुप्त भास्कराचार्य इत्यादिके गणितसे जान पड़ता है कि इनको यह मत मान्य नहीं था, क्योंकि इन्होंने ग्रहोंका स्थान जाननेके लिए कल्पके आदि से गणना की है; परन्तु सूर्य सिद्धान्तने सृष्टिके तैयार होनेमें जितना समय लगा है उसको ग्रह गणितमें छोड़ दिया है।

पश्चाद् व्रजन्तो तिजवान् नक्षत्रैः सततं ग्रहाः ।
जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगाः ॥ २५ ॥
प्राग्गतित्व मतस्तेषां भगणैः प्रत्यहं गतिः ।
परिणाह वशाद्भिन्नाः तद्वशाद्भानि भुञ्जते ॥ २६ ॥
शीघ्रगस्तान्यथाल्पेन कालेन महताल्पगः ।
तेषांतु परिवर्तेन पौष्णान्ते भगणः स्मृतः ॥ २७ ॥

अनुवाद—(२५) शीघ्र गामी नक्षत्रोंके साथ सदैव पच्छिमकी ओर चलते हुए यह अपनी अपनी कक्षामें समान परिमाणमें हारकर पीछे रह जाते हैं; (२६) इसलिए वह पूर्वकी ओर चलते हुए देख पड़ते हैं और कक्षाओंकी परिधिके अनुसार उनकी दैनिक गति भी भिन्न देख पड़ती है; इसलिए नक्षत्र चक्रको भी यह भिन्न समयमें अर्थात् (२७) शीघ्र चलनेवाले थोड़े समयमें और कम चलनेवाले बहुत समयमें पूरा करते हैं। रेवतीके अंतमें पूरे होनेवाले चक्रको भगण कहते हैं।

विज्ञान भाष्य—इन तीन श्लोकोंमें ग्रहोंकी गतिका सिद्धान्त बतलाया है; इसलिए यह बड़े महत्वके श्लोक हैं। इनसे संक्षेपमें यह पता चलता है कि भारतके प्राचीन ज्योतिषी ग्रहोंके बारेमें क्या विचार रखते थे। २५वें श्लोकमें बतलाया गया है कि आकाशमें जितने तारे देख पड़ते हैं वह सब ग्रहोंके साथ पच्छिमकी ओर जा रहे हैं; परन्तु नक्षत्रोंके बहुत शीघ्र चलनेके कारण यह पीछे रह जाते हैं और इसीसे पूर्वकी ओर चलते हुए देख पड़ते हैं। इनकी पूरबकी ओर बढ़नेकी चाल है तो समान परन्तु इनकी कक्षाओंका विस्तार भिन्न होनेसे इनकी गति भी भिन्न देख पड़ती है। इसका रहस्य नीचेके चित्रसे प्रकट होगा—मान लीजिये कि दिये हुए चित्रमें भीतरी वृत्त १० इंचका और बाहरी १५ इंचका है और मान लीजिये कि ख और ग स्थानोंसे जो क केन्द्रकी सीधमें है दो चींटियां १ इंच प्रति सेकंडकी चालसे भीतरी और बाहरी वृत्तकी परिक्रमा करनेको चलती हैं; तो यह स्पष्ट है कि बाहरी वृत्त पर चलनेवाली चींटी एक परिक्रमा १५ सेकंड में और भीतरी वृत्तपर चलने वाली चींटी एक

परिक्रमा १० सेकंडमें कर डालेगी। इससे यह सिद्ध हुआ कि समान रेखात्मक गतिसे चलने पर भी भिन्न भिन्न आकारकी कक्षाका चक्कर भिन्न भिन्न समयमें होगा। परन्तु २७वें श्लोकमें कहा गया है कि शीघ्र चलनेवाले ग्रह अधिककालमें चक्कर पूरा करते हैं। यहां कुछ विरोध जान पड़ता है; परन्तु यह विरोध नहीं है; क्योंकि पहले श्लोकमें जो समान गति बतलायी गई है वह योजनात्मक गति है और इस श्लोकमें गतिका मान कोणात्मक (Anguler velocity) है। एक चक्कर ३६० अंशोंका होता है; इसलिए बाहरी वृत्तका एक इंच केन्द्र पर $\frac{३६०}{१५}$= २४° का कोण बनाता है और भीतरी वृत्तका एक इंच $\frac{३६०}{१०}$=३६° का कोण बनाता है। इसलिए यद्यपि ग्रहोंकी रेखात्मक (rectilinear) गति १ इंच प्रति सेकंड होनेसे समान है तथापि इनकी कोणात्मक गति प्रति सेकंड भिन्न है। बाहरी चींटी प्रति सेकंड २४° तथा भीतर ३६° चलती है। इसलिए यह स्पष्ट है कि शीघ्र चलनेवाली कम समयमें तथा मन्द चलनेवाली अधिक समयमें चक्कर पूरा करेगी।

२७वें श्लोकमें भगणकी परिभाषा भी दी गयी है। रेवती नक्षत्रके अंतसे आरंभ करके पूरबकी ओर बढ़ता हुआ जब ग्रह एक चक्कर लगाकर फिर वहीं रेवतीके अंतमें आ जाता है तब वह एक भगण (नक्षत्र गण जो २७ हैं) पूरा करता है। इसलिए भगणको चक्कर भी कहते हैं।

इस सिद्धान्तके अनुसार यह मानना पड़ेगा कि ग्रहोंकी दूरी और उनके भगण कालमें एक विशेष सम्बन्ध है। जो ग्रह जितना ही दूर है उसका भगण काल (चक्कर लगानेका समय) उतना ही अधिक है। यह संबन्ध यहां बहुत संक्षेपमें बतला दिया जाता है। इसकी पूरी व्याख्या भारतीय तथा पाश्चात्य ज्योतिषियोंके सिद्धान्तोंकी तुलना करते हुए भूगोलाध्याय नामक बारहवें अध्यायमें की जायगी।

जब सभी ग्रहोंकी रेखात्मक गतियां समान मान ली जायं तब यह सहज ही सिद्ध हो सकता है कि ग्रहोंकी दूरियोंका परस्पर संबंध क्या है; क्योंकि यह जानना तो कुछ कठिन नहीं है कि कौन ग्रह कितने दिनमें एक चक्कर लगा लेता है। जब यह मालूम हो गया कि शनि एक चक्कर स्थूल रीतिसे ३० वर्षमें लगाता है और सूर्य १ वर्षमें और दोनों-की रेखात्मक गतियां समान हैं तब यह स्वयंसिद्ध है कि सूर्यकी कक्षाकी ३० गुनी शनिकी कक्षा है; क्योंकि ३० वर्षमें सूर्य अपनी कक्षाका ३० गुना चलता है और शनि अपनी कक्षाको केवल एक ही बार पूरा कर पाता है। इसलिए शनिकी कक्षा= ३० × सूर्यकी कक्षा। अर्थात् पृथ्वीसे शनिकी दूरी, सूर्यकी दूरीका ३० गुना है। इसी प्रकार और ग्रहों-की दूरी भी जानी जा सकती है।

आज कलकी गवेषणाओंसे जाना गया है कि ग्रहोंकी परस्पर दूरियोंका सम्बन्ध इतना सरल नहीं है और न इनकी रेखात्मक गति ही समान है। इन गवेषणाओंसे जाना गया है कि पृथ्वीसे जितनी सूर्यकी दूरी है उससे लगभग १० गुना शनि पृथ्वीसे दूर है।

विकलानां कला षष्ट्या तत् षष्ट्या भाग उच्यते।
तत् त्रिंशता भवेद्राशि भगणो द्वादशैवते ॥ २८॥

अनुवाद—(२८) ६० विकलाओंकी एक कला, ६० कलाओंका एक भाग या अंश, ३० भागों या अंशोंकी एक राशि तथा १२ राशियोंका एक भगण होता है।

विज्ञान भाष्य—यह कोण नापनेकी इकाइयां हैं। पूरे नक्षत्र-चक्रको भगण कहते हैं। यदि इस चक्करके १२ समान भाग किये जायं तो प्रत्येक भागको राशि कहते हैं। राशिके तीसवें भागको अंश, अंशके साठवें भागको कला तथा कलाके साठवें भागको विकला कहते हैं। इनमेंसे भगण और राशिका प्रयोग तो केवल उस आकाश स्थित चक्रके लिए होता है जिसके तलमें (plane) सूर्य पृथ्वीकी परिक्रमा करता हुआ देख पड़ता है और अन्य ग्रह इधर उधर कुछ हटकर परिक्रमा करते हैं। परन्तु अंश, कला और विकलाका प्रयोग

अन्य कोणोंके नापनेमें भी किया जाता है। आज कल अंशको संक्षेपमें लिखनेकी रीति यह है कि अंशका परिमाण बतलानेवाले अंकके ऊपर तनिक सा दाहिने हटकर एक छोटासा वृत्त लिख देते हैं, कला लिखनेके लिए अंकके ऊपर कुछ दाहिने हटकर एक बायें हाथको झुकती हुई टेढ़ी रेखा छोटी सी खींच देते हैं और विकलाके लिए उसी प्रकारकी दो तिरछी रेखाएं खींच देते हैं; जैसे ५ अंश १६ कला और ५० विकला लिखना हो तो यों लिखते हैं:—५°१६'५०"।

कोण और समय नापनेकी इकाइयोंमें घनिष्ट सम्बन्ध है। सूर्य जितने समयमें एक भगण पूरा करता है वह एक वर्ष, जितने समयमें एक राशि चलता है वह एक मास, जितने समयमें एक अंश चलता है वह एक दिन, जितने समयमें एक कला चलता है वह एक घड़ी और जितने समयमें एक विकला चलता है वह एक पलके प्रायः समान होता है।

युगे सूर्यज्ञ शुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः ।
कुजार्कि गुरु शीघ्राणां भगणाः पूर्वयायिनाम् ॥२९॥
इन्दो रसाग्नि त्रित्रीषु सप्त भूधर मार्गणाः ।
दस्र त्र्यष्ट रसाङ्काक्षि लोचनानि कुजस्यतु ॥ ३० ॥
बुध शीघ्रस्य शून्यर्तुखाद्रित्र्यङ्क नगेन्दवः ।
बृहस्पतेः खदस्राक्षि वेद षड् वह्नयस्तथा ॥ ३१ ॥
सित शीघ्रस्य षट् सप्त त्रियमाश्वि खभूधरा ।
शनेर्भुजङ्ग षट्पञ्च रस वेद निशाकराः ॥ ३२ ॥
चन्द्रोचस्याग्नि शून्याश्वि वसु सर्पार्णवा युगे ।
वामं पातस्य वस्वग्नियमाश्वि शिखि दस्रकाः ॥ ३३ ॥

अनुवाद—(२९) एक (महा) युगमें पूर्वाभिमुख चलनेवाले सूर्य, बुध और शुक्रके ४३,२०,००० भगण; मंगल, शनि और बृहस्पतिके शीघ्रोंके भी उतने ही भगण; (३०) चन्द्रमाके ५,७७,५३,३३६ भगण, मंगलके २२,९६,८३२ भगण; (३१) बुधके शीघ्रके १७९,३७,०६० भगण, बृहस्पतिके ३,६४,२२० भगण, (३२) शुक्रके शीघ्रके ७०,२२,३७६ भगण; शनिके १,४६,५६८ भगण और (३३) चन्द्रोच्चके ४,८८,२०३ भगण तथा बायीं (पच्छिमकी) ओर चलने वाले चन्द्रमाके पातके २,३२,२३८ भगण होते हैं।

विज्ञान भाष्य—इस जगह यह बतला देना अच्छा होगा कि हमारे यहां संख्या लिखनेकी पुरानी परिपाटी क्या है। एक, दो तीन, चार इत्यादि अंकोंको पद्यमें लिखनेके लिए कुछ शब्द नियत कर लिये गये हैं। वही या उनके पर्याय पद्यमें 'अंकानां वामतो गतिः' नियमके अनुसार क्रमसे रख दिये जाते हैं अर्थात् इकाईके स्थानमें लिखे जानेवाले अंकका सूचक शब्द पहले, फिर दहाईके स्थानमें लिखे जानेवाले अंकका सूचक शब्द, फिर सैकड़ेके स्थानमें लिखे जानेवाले अंकका सूचक शब्द क्रमसे रख दिये जाते हैं। जैसे ३२५ कहना हुआ तो पहले ५ सूचक कोई शब्द पंच, इषु, मार्गण इत्यादि लिखकर उसके पीछे २ का सूचक कोई शब्द द्वि, अश्वि, यम इत्यादि लिखा जाता है, फिर ३ का सूचक त्रि, अग्नि, शिखि इत्यादि लिखा जाता है। इस तरह ३२५ को हम पंचाश्विशिखि या इषुयमाग्नि लिख सकते हैं। सूर्यसिद्धान्त, ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त तथा सिद्धान्त शिरोमणिमें संख्याओंके लिखनेकी यही परिपाटी है। प्रथम आर्य भटके आर्यभटीय तथा दूसरे आर्यभटके महा सिद्धान्तमें संख्या लिखनेकी रीतियां इससे भिन्न हैं।

एक महायुगमें ग्रहोंके जितने भगण होते हैं वह सूर्य सिद्धान्तके अनुसार ऊपर दिये गये हैं। आर्यभट तथा ब्रह्मगुप्तके सिद्धान्तोंके अनुसार महायुगीय भगणोंके मानोंमें कुछ अंतर है तथा आजकल सूक्ष्म यंत्रोंकी सहायतासे भगणोंके जो मान जाने गये हैं वह भी किसी सिद्धान्तके अनुसार नहीं मिलते वरन् थोड़ी सी भिन्नता रखते हैं। नीचे हम सूर्य सिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त तथा आधुनिक भगण-कालोंके मान तुलनात्मक दृष्टिसे देते हैं, जिनसे यह प्रकट होगा कि हमारे प्राचीन ज्योतिषियोंके निकाले हुए भगण कालमें और आजकलके सूक्ष्म यंत्रोंके द्वारा निकाले हुए भगण काल में कितना कम अंतर है। जितने समयमें किसी

ग्रहका एक भगण या चक्कर पूरा होता है उसको भगण काल कहते हैं। इसके निकालनेकी रीति सिद्धान्तके अनुसार यह है कि एक महायुगमें जितने भगण उस ग्रहके होते हैं उससे महायुगके सौर वर्षोंमें भाग दे दीजिये तो १ भगण काल (सौर वर्षोंमें) निकल आवेगा। अब इसको चाहे आप दशमलव भिन्नमें लिखिये और चाहे सावन दिनोंमें। सावन दिनोंमें भगणकाल निकालनेके लिए सबसे सुगम रीति यह है कि महायुगमें जितने सावन दिन हों उनमें महायुगीय भगणका भाग दे दीजिये, जितनी लब्धि आवे वह सावन दिन है, शेषकी घड़ी, पल, विपल इत्यादि बना लीजिये। जैसे १ घड़ीमें ६० पल होते हैं वैसे ही १ पलमें ६० विपलकी तथा १ विपलमें ६० प्रति विपलकी भी कल्पना की जा सकती है।

ग्रहोंके भगणकालका कोष्टक

ग्रह	सूर्यसिद्धान्तके अनुसार				ब्रह्मगुप्त सिद्धान्तके अनुसार				आधुनिक खोजके अनुसार			
	दिन	घड़ी	पल	विपल	दिन	घड़ी	पल	विपल	दिन	घड़ी	पल	विपल
रवि	३६५	१५	३१	३१·४	३६५	१५	३०	२२·५	३६५	१५	२२	५६·८७
चंद्र	२७	१९	१८	१·६	२७	१९	१८	०·२५	२७	१९	१७	५८·८६६
चंद्रोच्च	३२३२	५	३७	१३·६	३२३२	४४	२	४५	३२३२	३४	३१	१४·०८८
चन्द्रपात या राहु	६७९४	२३	५९	२३·५	६७९२	१५	१४	१४·७	६७९८	१६	४४	२४·०००
बुध	८७	५८	१०	५५·७	८७	५८	११	४३·७	८७	५८	९	२४·९९८
शुक्र	२२४	४१	५४	५०·६	२२४	४१	५२	३४·७	२२४	४२	२	४७·४८६
मंगल	६८६	५९	५०	५·८७	६८६	५२	५२	३३·७	६८६	५८	४६	२·५१८
गुरु	४३३२	१९	१४	२०·९	४३३२	१४	२४	१९·२	४३३२	३५	५	१७·४९
शनि	१०७६५	४६	२३	४·१	१०७६५	४८	५४	५१·२	१०७५९	१३	१०	५७·४९

—मराठीके भारतीय ज्योतिःशास्त्र पृ० २०३ से उद्धृत।

फैशनका हौआ—कूंचीसे मौत

पशुओंको तिल्लीका ज्वर बहुत सताया करता है। ऊन, बाल, तथा खाल आदिके द्वारा यह रोग मनुष्योंमें भी फैल जाता है। संयुक्त प्रान्त अमेरिकामें १९१९ सन्में ४६ मृत्युए इसी ज्वरसे हुईं। इनमेंसे अधिक संख्या उन लोगोंकी थी; जिनको यह रोग साबुनकी कूँचीसे हो गया था। दाढ़ी मूंछ मूंडनेके पहले जिस कूंचीसे साबुन गालोंपर चुपड़ा जाता है उसमें ही इस रोगके जीवाणु बैठ जाते हैं।

मक्खियोंकी भाषा

प्रोफ़ेसर कार्णवान फ्रिशने मधुमक्खियोंके परस्पर वार्तालाप करने या संदेश पहुँचानेकी नाना प्रकारकी विधियोंका विशेष वर्णन किया है। एक रकाबीमें थोड़ा सा मीठा रख कर उसे खिड़कीके पास रख दिया। थोड़ी देरके बाद एक मधुमक्खी आयी और उसपर बैठी और कुछ मीठा लेकर उड़ गयी। थोड़ी देरमें सारी रकाबीपर, लाल मधुमक्खियां आ बैठीं। चुपकेसे रकाबी वहां से उठा ली गयी और थोड़ी देरमें मक्खियां भी सब ग़ायब हो गयीं। पर फिर भी वहां एकाध मक्खी मटर गश्त लगा जाती थी। नयी मीठेकी रकाबी फिर रख दी गयी और वही हवाई लुटेरे फिर आ जमे। परीक्षक महोदयने जमा होनेवाली मक्खियोंकी पीठपर रंगका चिन्ह करना शुरू कर दिया।

कोई मक्खी जब अपनी लूट लेकर छत्तेपर पहुंचती थी तो वह सब माल अपने अन्य परिश्रमी साथियोंके हवाले कर देती थी। फिर एक अद्भुत नृत्य करने लगती और छत्तेकी विचित्र प्रकारसे प्रदक्षिणा करती थी और उसके साथी उस को बड़े विस्मयसे देखते और उसको छूनेका प्रयत्न करते थे। जब यह नृत्य लीला कर चुकती थी तो वह फिर नयी लूट लेनेके लिए रकाबीपर लौट आती थी। परीक्षकने यह बात देखी थी कि उस मक्खीके छत्तेके आस पास नाचते समय जब अन्य उसे छू चुकती थीं तब उनको उसके नृत्यमें कोई कौतुक या विस्मय नहीं रहता था अर्थात् उनका विशेष संकेत उसको छू लेनेमें ही था उसका नाच देखने या उसका गान सुननेमें नहीं था।

मक्खीकी संहारकशक्ति

गत वर्ष संयुक्त प्रान्त अमेरिकाके रूई बोनेवालोंको मक्खियोंके कारण ही १५२०००००० पौण्ड की हानि हुई है। अमेरिकामें इस कीड़ेसे खेतीका बड़ा संहार होता है। यह हानि तो सदासे होती आयी है; परन्तु सूक्ष्म रूपसे गणना अभी की गयी है।

वार्बल नामकी मक्खी चमड़ा और मांस बेचनेवाले लोगोंको बड़ी हानि पहुँचाती है। वह पशुओंके चर्मों पर अपना जाला सा लगा कर अपने अण्डे दे देती है। वह चमड़ेको स्वयं खाकर छिद्र कर देती हैं। सब चमड़ा चलनी बन जाता है। इस प्रकार लगभग २०००००० पौण्ड प्रति वर्षकी हानि कूती गयी है।

तेली मक्खियोंसे आस्ट्रेलियाके गड़रियोंकी ३ से ५ लाख पौण्ड तककी हानि होती है। वहांके ग्वालोंकी इससे भी अधिक हानि होती है। मक्खियोंकी करतूत से सब पशु चौपट होते जाते हैं और लगभग दो करोड़ पौण्डकी हानि हो जाती है।

लोकस्ट मक्खीने ट्रांसवालमें ५ लाखकी हानि गतवर्षमें की है।

इन सब संहारक कीटोंको नाश करनेका एक मात्र उपाय संखियाके घोलका प्रयोग ही है।

तेली मक्खी जैतूनके बागोंका इटलीमें सत्यानास कर देती है। दक्षिण इटलीमें यह हानि ७० लाख पौण्ड तक कूती गयी है।

भारतवर्षमें टिड्डी दल बड़ा संहारक है। इस से प्रति वर्ष लगभग ६० लाख पौण्डका माल नष्ट हो जाता है।
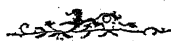
फुटबाल पर क़ानूनी रोक

फुटबालका खेल अङ्गरेज़ोंका जातीय खेल है। पर उन्हींके देशमें इस खेल पर बहुत बार क़ानूनी रोक लग चुकी है। एडवर्ड द्वितीयके समयमें लोग शहरकी सड़कों तक पर फुटबाल खेला करते थे। १३१४ में उसने डौंडी पिटवा दी थी कि कोई भी नगरमें फुटबाल खेलेगा तो जेलमें भेज दिया जायगा।

एडवर्ड तृतीय को इस खेलमें यही दोष देख पड़ा कि इस खेलसे धनुर्विद्याके अभ्यासमें बड़ी बाधा पड़ती थी। उस समयमें धनुषबाण ही सैनिकोंके शस्त्र थे। खेलके कारण सिपाही लंगड़े हो जाते थे और युद्धमें उनको बहाना मिल जाता था। राजाकी सम्मति थी कि खेलके कारण देशकी रक्षाकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसलिए फिर भी यह खेल रोक दिया गया। पर तो भी खेलका लोप न हुआ, बल्कि और भी ज़ोरसे प्रचार हुआ। १३८९ में रिचर्ड द्वितीय और १४०१ में हेनरी चतुर्थने फुटबालके साथ और भी ऐसे ही खेलोंको रोकनेकी घोषणा निकाली थी।

जेम्स प्रथम शिकार आदि वीरताके खेलोंका बड़ा प्रेमी था। तो भी उसने फुटबाल जैसे खेलोंपर प्रतिबन्ध लगा दिया था। उसकी सम्मतिमें इन खेलोंसे आदमीकी शारीरिक उन्नति और संगठन होनेकी अपेक्षा मुख और नाकपर चोट लगने तथा टांग टूट जानेसे लङ्गड़ा और कुरूप हो जानेका भय था। चार्ल्स द्वितीयके समय तक फुटबालके खेल पर बड़ी कड़ाई रही।

बड़े आदमियोंकी यादगारें

बहुतसे शब्द ऐसे भी हम बोला करते हैं जिनका नाम ही बहुत से बड़े बड़े आदमियोंकी स्मृतिकी रक्षा करते हैं; अंग्रेज़ी क्लोद्स (कपड़े) कपड़ेके आविष्कारकका नाम था। उसका नाम ही लेकर अबतक सब उसकी बुद्धिको सराहा करते हैं।

नाईफ़ (चाकू), राइफिल (बन्दूक) यह दोनों भी आदमियोंके नामोंपर हैं। तम्बाकूमें निकोटीन नामक विष होता है। यह विष निकोट नामक विद्वानने सबसे पहले बनाया था। यह वही फरांसीसी पुरुष है, जिसने तम्बाकूके पौधेका यूरोपमें सबसे पहले प्रचार किया था। इन्द्रजालमें हमारे देवराज इन्द्रका नाम अब तक भी भूलना कठिन है। भागीरथीमें भागीरथका नाम लुप्त नहीं हो सकता। बङ्गालका बसानेवाला महापुरुष वंग वैदिक कालके काशीके राजा बलिका क्षेत्रज पुत्र था। दुष्यन्तका पुत्र भरत भारतवर्ष देशके नामके साथ अमर है।

सूत और सीनेका सूत

यूरोपमें पहले लोग सीनेके लिए सूतका प्रयोग नहीं जानते थे। वह रेशम और सनका ही प्रयोग करते थे। यूरोपमें रेशमके व्यापारको नेपोलियनने बड़ा धक्का पहुँचाया। उसके युद्धोंने रेशमका व्यापार रसातलको पहुँचा दिया। फ्रांस और इङ्गलैण्डमें लड़ाई होनेसे वहांसे सीनेके लिए सूतका माल न मिलना बन्द हो गया था।

१८६९में पेसले नगरमें दो भाई रहते थे। उन्होंने सूत तय्यार करना शुरू किया। उस समय सूत कपड़े बुननेके लिए ही तय्यार होता था, सीनेके लिए नहीं। उस समय पेसलेमें वह भी बनने लगा। पहले सीनेके लिए तागेकी गोली ही बिका करती थी। रील पर लिपटी नहीं बिकती थी। रीलें निकल आने पर रीलके लिए दो पैसे और ऊपरसे देने पड़ते थे। यह नया व्यवसाय फिर खूब फैला। अब कोट्सकी कम्पनी एक सालमें इतना सूत तैयार करती है कि तानने पर सूर्य तक तन सकता है।

दैवकी गति देखिये कि नैपोलियनने यदि व्यापारमें धक्का पहुँचाया तो उसे कम करनेके लिए नहीं बल्कि उसे और आगे बढ़ानेके लिए।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १६ { कुम्भ, संवत् १९७९। फरवरी, सन् १९२३ { संख्या ५

प्रेम

हम अनेक मनुष्योंसे प्रेम करते हैं और अनेकको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। इसका कारण पूछे जाने पर व्यक्ति विशेषसे प्रायः जो उत्तर मिलता है वह यही है कि भाई अमुककी ओर मैं आकृष्ट हो गया हूं, उससे प्रकृति मिल गई है, तथा अमुकसे मेरी शत्रुता, प्रकृतिके न मिलनेके कारण, ठन गई है। परन्तु प्रकृति क्यों नहीं मिलती अथवा क्यों मिलती है, इस पर विचार करनेके लिए हम नहीं ठहरते। किसीसे प्रेम और किसीसे घृणा हम क्यों करते हैं, इसी विषय पर कुछ चर्चा करना इस लेखका उद्देश्य है।

जानवरोंकी ओर दृष्टि-पात करने पर यह ज्ञात होता है कि वह अधिक अंशोंमें प्रेमके वशीभूत नहीं होते। इतना तो अवश्य देखा गया है कि घोड़ों, कुत्तों आदिमें उस स्थान तथा उस मनुष्यके लिए कुछ प्रेम हो जाता है, जहां और जिसके साथ वह कुछ काल तक रह चुकते हैं। हां, यह प्रेम विशेष ज़ोरदार नहीं होता, पशुओंमें नर हाथी द्वारा हथनीके सुख-साधन-प्रयत्नका वर्णन उत्तर राम-चरित्रमें भवभूति ने किया है। परन्तु यह प्रेम और ही वस्तु है, यह यौवनका उन्माद है और सम्भोगेच्छाके अवसानके साथ ही उसका अन्त भी हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि जानवरोंमें भी मादाका प्रेम बच्चेके लिए उतना ही प्रगाढ़ होता है जितना कि मनुष्य जातिमें होता है और यह भी ठीक है कि उस प्रेमको किसी प्रकारके स्वार्थसे उत्पन्न भी नहीं बतला सकते। इस प्रकार यह देखा जायगा कि पशुजाति हो या मनुष्य जाति माताका

प्रेम सर्वत्र निर्म्मल, निस्स्वार्थ और स्वार्थ-त्याग-मूलक होता है। सबसे पहले हमें इसी प्रश्नका उत्तर ढूँढ़ना पड़ेगा कि मा अपने बच्चेको क्यों प्यार करती है।

मा अपने बच्चेको क्यों प्यार करती है, इसका उत्तर देना तो बड़ा कठिन है, परन्तु संसारमें मातृ-प्रेमका इतना उच्च रूप नित्य ही देखनेमें आता है कि उसकी सत्यतामें अब अविश्वास करना ही असम्भव है। यों तो जीवनके प्रत्येक समयमें प्रत्येक मातासे शोभित गृहमें यह प्रत्यक्ष ही होता रहता है, किन्तु यहां एक उदाहरण देनेका लोभ हम संवरण नहीं कर सकते। एक बार दो स्त्रियोंमें एक बच्चेके सम्बन्धमें झगड़ा हुआ; दोनों कहती थीं कि यह मेरा बच्चा है। यह झगड़ा इतना बढ़ा कि अदालत तक जानेकी नौबत आई। वहां सत्य बातका पता पानेमें अत्यन्त कठिनाई पड़ती देख कर न्यायाधीशने यह आज्ञा दी कि बच्चा चीर डाला जाय; उसका आधा भाग एक स्त्री ले और आधा भाग दूसरी ले। ऐसी अवस्थामें जो स्त्री सचमुच बच्चेकी मा थी, वह रो पड़ी और बोली कि यही स्त्री इस बच्चेको ले; किन्तु बच्चा चीरा न जाय; साथ ही दूसरी स्त्री न्यायाधीशके इस कहनेपर राजी हो गई। इसके अनन्तर न्यायाधीश ने बच्चा पहली स्त्रीको दे दिया और दूसरी स्त्रीको दण्डित किया। यह तो एक साधारण उदाहरण है; माताके दिव्य स्नेहके विषयमें जितना ही लिखा जाय उतना ही थोड़ा है।

बच्चे पर माताके ऐसे अपूर्व स्नेहका कारण कई विद्वानों ने यह बतलाया है कि अपनी सन्तान अपने ही अस्थि-मांसकी बनी होती है। शिशुका सम्पूर्ण शरीर और मन माताके व्यक्तित्वसे प्रभावित होता है, वह माके लिए वैसा ही हो जाता है जैसी कि उसके व्यक्तित्वसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्य कोई वस्तु। इस दशामें जब बच्चेको कोई क्लेश होगा तब वह उतनी ही दुखी होगी जितनी कि हृदयके पीड़ित होने अथवा अन्य किसी वेदनासे वह होती है।

माके प्रेमको स्वीकार कर लेने पर यह प्रश्न उठता है कि बच्चेके जन्मका उत्तरदायित्व तो पिता पर भी है, पिताका व्यक्तित्व भी तो शिशुके शरीर और मन पर प्रभाव डालता है, फिर क्यों माका प्रेम पिताके प्रेमसे अधिक हो जाता है। इसके उत्तरमें यह कहा जा सकता है कि जितना कष्ट माको बच्चेके कारण उठाना पड़ता है उतना पिताको नहीं उठाना पड़ता। नौ महीने गर्भमें रखनेके कारण तथा शैशव कालकी प्रधान पोषिका होनेसे माको बच्चेकी नस नसका जितना ज्ञान हो जाता है उतना पिताको होना सम्भव नहीं। मनुष्य जातिमें तो कमसे कम इतना होता है कि पिता भी बच्चेके कुशल-क्षेमके लिए बहुत उद्विग्न रहता है, परन्तु पशु-जातिमें तो पिताको यह पता तक नहीं रहता कि उसके वीर्य्यसे कहां कौन बच्चा पैदा हुआ।

किसी किसी पश्चिमी लेखकका तो कहना है कि संसारमें माताके प्रेमके सिवाय किसी दूसरेका प्रेम निस्स्वार्थ हो ही नहीं सकता। उनका कथन है कि गृह-जीवनमें जैसा प्रेम पिताका बच्चेके प्रति हम देखते हैं वह पूराका पूरा गृह-जीवनके कारण है। यदि मनुष्य भी पशुओंकी तरह रहने लगे तो पिता अपने बच्चेको पशु पिताकी अपेक्षा बहुत अधिक प्यार नहीं करेगा। कुछ अंशों तक यह कहना ठीक जान पड़ता है, परन्तु यह तो स्वीकार किया नहीं जा सकता कि संसारमें माताके स्नेहको छोड़ कर दूसरे किसीका प्रेम निस्स्वार्थ और निर्मल हो ही नहीं सकता। मनुष्य भी निस्सन्देह पशु है, परन्तु वह विवेकशील पशु है। अपनी जिस समझदारीके सहारे उसने गृह-जीवनमें प्रवेश किया तथा अन्य पशुओंसे सर्वथा विपरीत आचरण पिताके रूपमें उसने अपने शिशुका प्यार करके किया उसी बुद्धिके कारण वह उस अवस्थाको भी पहुंचता है, जिसमें कि वह अपने

ही बच्चेके लिए नहीं किन्तु किसी भी जीवके लिए अपने प्राणोंका बलिदान कर सकता है। भूखा और जीवन-संग्राममें मिली हुई क्रूर और निर्दय विजयको ही जीवनका सर्वोच्च उद्देश समझनेवाला पश्चिम ही ऐसे निराशात्मक सिद्धान्तोंकी पुष्टि करे, भारतवर्ष तो प्रेमका महत्व जानता है। इस देशके निवासी तो ४८ दिन उपवास रख कर भी अतिथि को अपने आगेकी थाली दे देते रहे हैं। निस्स्वार्थ भावसे—हां माताके जैसे ही स्नेह-भावसे—यहांके महर्षि औरोंकी रक्षाके निमित्त अपने शरीरकी हड्डी निकाल कर दे चुके हैं। आनन्दकी बात है कि ऐसे महानुभाव यहां अब भी विद्यमान हैं।

एक दूसरे पाश्चात्य लेखकने बहुत सच्ची बात कही है। उसका कथन है कि मनुष्यके लिए जितना स्वाभाविक अपने सुख साधनके लिए यत्न करना है, उतना ही स्वाभाविक उसके लिए यह भी है कि औरोंके सुख-साधनके उपायमें संलग्न हो। जिस लेखकके कथनके विषयमें हम पहले कुछ कह आये हैं, उसकी निराशाका कारण हमें यह जान पड़ता है कि उसकी आंखोंके सामने मनुष्य केवल उसी रूपमें प्रकट हुआ है जिसमें कि वह अपने पेटकी ज्वाला बुझानेके लिए नृशंससे नृशंस बन सकता है और किसीको भी धोखा देना, मार डालना अनुचित नहीं समझता। उसने शायद् यह नहीं देखा कि जिन महलोंमें खाने पीनेकी सम्पूर्ण सामग्री प्रस्तुत रहती है वहां भी एक न एक कमी अनुभव होती ही है और बहुधा वहां मनुष्य प्रेमकी भूखसे तड़पता हुआ देखा जाता है, क्योंकि उसके लिए जितना ही आवश्यक भोजनसे पेट भरना है, उतना आवश्यक प्रेम से ही हृदयको भी तृप्त करना है। निस्सन्देह जीवनमें यह देखा जाता है कि एक मित्र दूसरेका गला घोटता है, पुत्र पिताको कैद करके राजसिंहासन पर बैठता है, भाई अपने भाईके प्राण लेता है, परन्तु मानव जीवनकी उदरसे सम्बन्ध रखनेवाली कमीकी पूर्त्ति हो जाने दीजिये, उच्चपद-प्राप्ति तथा यशार्जनकी लालसाको अपनी लीला समाप्त कर लेने दीजिये, और फिर आप देखियेगा कि मनुष्य प्रेमके लिए, शुद्ध निस्स्वार्थ स्नेहके लिए कितना विकल होता है। भिखारी यदि अपने बच्चेको अपना सर्वस्व समझता है, कुलपति यदि अपने कुलके लिए चिन्तित रहता है, देशभक्त यदि अपने देशके बच्चे बच्चे पर क्या, नदी नाले और पर्वत तक पर न्यौछावर होता है तो सन्यासी अनन्त भगवानके मिलनके लिए लालायित होता है। संसारमें ऐसा कोई मानव-हृदय नहीं जिसमें कुछ न कुछ निर्मल और स्वार्थ-रहित प्रेम लहरें न मारता हो।

अब हमें यह देखना चाहिये कि यह निस्स्वार्थ प्रेम कहां और किस तरह अपनेको प्रकट करता है। गृह-जीवनकी चर्चा हम ऊपर कर ही चुके हैं। एक स्त्रीको सदाके लिए अपनी पत्नी बना कर रहने तथा दोनोंसे उत्पन्न होनेवाले बच्चोंका पालन पोषण भार अपने ऊपर लेने से मनुष्य ने अपने ऊपर एक बड़ा उत्तर-दायित्व ले लिया। स्त्रीके ऊपर विपत्ति आनेपर पुरुष अपने प्राणों पर खेलकर उसकी रक्षाका यत्न करने लगा, साथ ही स्त्रीके लिए पुरुष समस्त प्रेमका पात्र हो गया। बच्चोंको जिस बातसे सुख हो, इसकी चिन्तामें माता पिता अपना सर्वस्व तक न्यौछावर कर देनेको प्रस्तुत रहने लगे। हम कह आये हैं कि शुद्ध प्रेमको उदर-भरण की चिन्ता और मानयशकी तृष्णा बहुत कुछ मलिन कर देती हैं। परन्तु गृहजीवनका परिणाम यहां तक पहुँचा कि माता और पिता भूखे रहकर तथा सब तरहके कष्टोंको सहकर भी अपनी सन्तानको सुखी बनानेकी चेष्टा करने लगे।

वह दिन बड़ा ही अपूर्व रहा होगा जब क्रम क्रम से विकास करके मनुष्यने अपनी सुविधाके अनुसार विवाहकी प्रथा जारी की होगी तथा नदियोंके किनारे अथवा अन्य अच्छे स्थानों पर झोंपड़े बनाकर उसने निवास करन आरंभ किया

होगा। कई गृहोंके एक स्थान पर बन जानेसे ग्राम बन गया होगा और तब सामूहिक जीवनको सुखमय बनानेकी उसने खूब चेष्टा की होगी। जिस पड़ोसी से हमें किसी सहायता की आशा नहीं रहती, उसे भी, यह अनुभवकी बात है, हम चाहते हैं; जिसका कारण और कुछ नहीं, केवल यही है कि वह हमारे सन्निकट रहता है और मनुष्यका स्वभाव है कि वह हेलमेल करके रहना पसन्द करता है। सन्निकटताके भावसे उत्पन्न होनेवाले प्रेमने क्रमशः यहां तक ज़ोर पकड़ा है कि दूर रहनेवाला आदमी यदि पड़ोसीके ऊपर आक्रमण करना चाहता है तो उसके विरुद्ध अस्त्र उठानेके लिए मनुष्य तय्यार हो जाता है। एक जगह हिल मिल कर रहने में अद्भुत प्रेमका सञ्चार हो जाता है। अनुभव की बात है कि भिन्न भिन्न स्थानोंके भिन्न भिन्न पुरुषों और स्त्रियोंके एकत्र रहने पर उनमें इस तरहका प्रेम हो जाता है, जैसा दूर दूर रहनेवाले सम्बन्धियोंमें भी नहीं होता।

प्रिंस क्रोपाटकिन नामके एक पश्चिमी महानुभावने कितनी ही ऐसी बातोंका पता लगाया है जिनसे उन्होंने सिद्ध किया है कि मनुष्येतर पशुओंमें भी अपनी जाति, अपने समूह तथा अपने निकटवर्त्ती परिचित-मंडल को अवसर पड़ने पर सहायता देनेका भाव पाया जाता है। पाठकोंने इस बातको अपनी आंखों से ही देखा होगा कि किसी बाहरी कुत्तेके आ जानेपर ग्राम-विशेष अथवा स्थान-विशेषके प्रायः समस्त कुत्ते दल बांधकर उसपर आक्रमण करते हैं। जब साधारण पशुओंमें यह बात पाई जाती है तो पशु-जगतके राजा मनुष्य की इस प्रवृत्ति पर आश्चर्य्य न करना चाहिये। परन्तु यहां हमें एक बात और कह देनी है। सभी हालतोंमें यह नहीं होता कि मनुष्य अपने पड़ोसीको ही प्यार करे। कभी कभी तो यह भी देखनेमें आता है कि मनुष्य अपने पड़ोसीकी कौन कहे, खास अपनी स्त्रीसे अधिक किसी दूसरी ऐसी स्त्रीको चाहने लगता है जिसे उसने जीवनमें पहले कभी देखा भी न था। यह ठीक है कि अधिकांश अवस्थाओंमें यह प्रेम भी यौवनके उन्माद से उत्पन्न होता है और शुद्ध प्रेम, सच्चा स्नेह जिसकी चर्चा हम यहां कर रहे हैं, कहलाने का अधिकारी नहीं कहा जा सकता, परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि गृहस्थीके रूखे झंझटों से ऊबकर पुरुष कभी कभी अपनी स्त्रीसे घृणा करने लगता है, उसे सभी प्रकारके अवगुणों से पूर्ण समझकर उस सुन्दरी की सराहना करता है जो दूर से उसकी कल्पनाको उत्तेजित करती है, क्योंकि सुन्दर से सुन्दर वस्तु मिल जानेपर तथा बहुत कालतक साथ रहनेपर साधारण जान पड़ने लगती है और हृदय अप्राप्त वस्तुको पानेके लिए संसार भरमें दौड़ता है। स्कूलके लड़के अपने साथियोंसे नई नई दोस्ती करके अपूर्व आनन्द-सागरमें गोता खाने लगते हैं, नये अनुरागके बन्धनमें बँधकर वह अपने मित्रके लिए इतना स्वार्थ-त्याग करनेको तय्यार हो जाते हैं, जितना वे अपने माता और पिताके लिए स्वप्नमें भी नहीं करेंगे, इसे और कुछ नहीं प्रेम की भूख समझिये। घरमें लड़केकी कल्पनाको उत्तेजित करनेवाला कोई नहीं होता। माता उससे प्रेम करती है, वह भी उसे थोड़ा बहुत चाहता ही है। पिता उससे प्रेम करता है, वह भी पिताको थोड़ा बहुत चाहता है, परन्तु उसे आवश्यकता होती है इस बात की कि कोई उसे आकर्षित करे, अपने गुणों की छटा से उसे मुग्ध करे, और उसके स्वार्थ-त्याग का पात्र बने। पुरुष जब अपनी स्त्रीमें कोई ऐसी बात नहीं देखता जिससे वह उसकी ओर नये ढंगसे आकर्षित हो, जब घरमें नीरसता फैल जाती है, तब उसका भूखा हृदय सृष्टिमें कहीं औरको उड़ जानेकी इच्छा करता है। ऐसी दशामें चतुर स्त्री वह है जो अपने आपमें नित्य नये सौन्दर्य्य उत्पन्न करती रहे।

कल्पनाको उत्तेजित करनेवाले पदार्थोंकी आवश्यकताके अतिरिक्त एक अन्य बातकी ओर

भी हम पाठकोंका ध्यान खींचना चाहते हैं। मनुष्य में दो प्रवृत्तियां होती हैं। एक प्रवृत्ति तो उसे एकीकरणकी ओर ले चलती है तथा दूसरी उसे विभिन्नताकी ओर धक्का देती है। जब विपत्ति आती है, संग्राम छिड़ता है अथवा अन्य कोई दुःखका अवसर उपस्थित होता है तब मनुष्यकी यह प्रवृत्ति होती है कि वह अपनी सब शिकायतोंको भूलकर प्रेम करनेको दौड़े। इसके उदाहरण तो हम नित्य ही देखते रहते हैं। दूसरी प्रवृत्ति उस अवस्थामें जोर पकड़ती है जब मनुष्यकी भावुकताको जागृत करनेवाले साधनोंका अभाव हो जाता है। इसका उदाहरण वर्तमान भारतीय राजनीति क्षेत्रसे भी दिया जा सकता है। जब तक भावुकताका जोर था, जब तक कल्पनाको उत्तेजित करनेवाले साधनोंका प्राचुर्य था, तब तक देशमें विचित्र एकीकरण हुआ था, परन्तु अब चूँकि भारतीय मनुष्य निराश हो गया है, जिस मादक रागसे उसके कान कुछ ही समय हुआ गूँज रहे थे वह लुप्त हो गया है अब वह अपने ही दलमें विच्छेद उत्पन्न कर रहा है।

अंग्रेजीमें एक कहावत है Birds of the same feather flock togather अर्थात् एक ढंगके लोग बहुत शीघ्र आपसमें हिलमिल जाते हैं। उदाहरणके लिए गणितके विद्वानको गणितके विद्वानसे, दार्शनिकको दार्शनिकसे और कविको कविसे मिलनेकी उत्कण्ठा होती है, और मिलनेके पहिले तक कभी कभी प्रबल प्रेमका अनुभव होता है। परन्तु प्रायः यह देखा गया है कि ज्योंही यह उत्कण्ठा मिट जाती है, त्योंही वह एक दूसरेसे विरक्त हो जाते हैं और अपने अपने प्रेम-पात्रकी खोज कहीं और ही जगह करने लग जाते हैं इस प्रकार (Familiarity breeds contempt) बहुत साथ रहनेसे उदासीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है। हम ऊपर कह आये हैं कि मनुष्यकी दो प्रवृत्तियां होती हैं। जब एक व्यक्ति प्रेम-भावमें उन्मत्त होकर दूसरेसे मिलनेके लिए लालायित होता है, तब जिस प्रवृत्तिको हमने एकीकरण नामसे व्यक्त किया है उसीका प्राधान्य समझना चाहिये तथा जब उस व्यक्तिका मन अपने दूसरे साथीसे मिलकर ऊब जाता है, और यह सम्भावना दीखने लगती है कि दोनों लड़कर पृथक् हो जायँगे अथवा एक दूसरेसे उदासीन हो जायँगे तब हम कह सकते हैं कि उनमें ऊपर बतलाई हुई दूसरी प्रवृत्तिने जोर पकड़ लिया है। यह मनुष्यका स्वभाव है कि वह वस्तु-विशेष अथवा व्यक्ति-विशेषको तभी तक चाहता है जब तक उसमें सौन्दर्य्य है, नवीनता है, विचित्रता है। बचपनसे लेकर वृद्धावस्था तक निरन्तर मनुष्य प्रेमकी खोजमें रहता है। लड़कपनमें कभी उसका प्रेम-पात्र गुड़ियोंके रूपमें आता है, कभी जीवित मित्रोंके रूपमें; यौवनावस्थामें कभी उसका प्रेम-पात्र नारी और संतानके रूपमें दर्शन देता है और कभी अपार परिश्रमसे अर्जन किये हुए उसके धन और यशका उपभोग करने वाले किसी अन्य व्यक्तिके रूपमें। जब मनुष्य इनसे भी न सन्तुष्ट हुआ तब उसने नदी, पर्वत, पुष्प, लता, सूर्य, चन्द्र और तारोंको ही अपना प्रेम पात्र बनाया और अपने सर्वस्वको सर्वाधारके चरणोंमें भेंट-स्वरूप रखा। मनुष्यकी सम्पूर्ण जीवन लीला प्रेम-मार्गको समाप्त करनेके लिए ही हुई जान पड़ती है। शैशव जीवनसे लेकर मुक्ति-प्राप्तिकी अवस्था तक वह किसी न किसीसे प्रेम करता ही रहता है। जब समस्त सृष्टिका वह और समस्त सृष्टि उसकी हो जाती है तभी मनुष्यको जीवनका उद्देश्य सिद्ध होता है। इसीसे तो स्काटने कहा है "Love is Heaven & Heaven is Love" अर्थात् प्रेम ही स्वर्ग है और स्वर्ग ही प्रेम है।

—गिरजादत्त शुक्ल।

चाय और मोतीझिरा

एक डाक्टर महोदयने यह अनुभव किया है कि मोतोज्वरके अधिकांश जीवाणु चायके पानीमें चार घंटेमें मर जाते हैं और चौबीस घंटेमें तो उनमें से एक भी नहीं बचता। डाक्टर महोदय का मत है कि युद्धके समयमें सिपाहियों की कुप्पियोंमें पानीकी जगह चायका ही प्रयोग होना चाहिये। पानी खौलाकर जीवाणु-शून्य कर दिया जाता है, परन्तु ठंडा होने पर उसमें फिर जीवाणु पहुंचकर बढ़ सकते हैं। चायका प्रयोग करनेसे यह डर जाता रहता है।

जब कभी मोतीज्वर महामारीके रुपमें फैले तो चायका प्रयोग अवश्य करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्य मोतीज्वरसे बचा रहेगा।

सबसे भयानक विष

टिण्डफुडके शौकीनोंको चेतावनी

सिक एसिड बड़ा भयानक विष समझा जाता है। यदि इसकी बोतलकी काग खोलकर कोई सूंघ ले तो इतनी जलदी मर जायगा जितनी जलदी कि हृत्पिण्डमें गोली मारनेसे मृत्यु हो जाती है; किन्तु प्रुसिक एसिडसे भी एक अधिक घातक विष है, जिसे "बोटूलीनस" विष कहते हैं। इस विषका ·०००००००००००००००१ घन सतांश मीटर एक आदमीको मार देनेके लिए काफी है। इसकी एक बूंद सारे संसारके मनुष्योंके प्राण हरने को पर्याप्त है। यदि एक घन सतांश मीटर बोटूलीनस किसीके पास हो तो उसका सतांश विश्वभरके लिए काफी है।

यही भयानक विष कभी कभी डिब्बोंमें रक्षित फलादिमें पाया जाता है। बिगड़े हुए वानस्पतिक भोजन और मांसमें भी इसका अंश मिलता है। अतएव सड़े बुसे बिगड़े और बासी खानेसे सावधान रहना चाहिये। टिन्डफुडके खानेवालोंको भी इनसे अधिक सावधान रहनेकी आवश्यकता है। टिन्डफुड बिना भली भांति भूने कदापि न खानी चाहिये।

यह विष एक प्रकारके शलाकाकार जीवाणुओंसे पैदा होता है। यह जीवाणु कहीं कहीं धरतीमें पाये जाते हैं। जीवाणुओंके दाने (Spores) धरतीमें से हवाके झोंकोंके साथ उड़ कर सर्वत्र पहुंच जाते हैं, हम नित्य शायद सैकड़ों क्या हज़ारों दाने खाजाते होंगे, परन्तु पेटमें पहुंच कर यह हज़म हो जाते हैं। जब यह दाने खानेकी चीज़ोंमें पहुंच जाते हैं, तो उचित ठंडक पाकर कुछ समयमें जीवाणु पैदा होने लगते हैं। परमात्मा का शुक्र है कि इस जीवाणुके लिए वायु घातक है। वायुकी उपस्थितिमें यह पैदा नहीं हो सकता; किन्तु यदि खाद्य पदार्थ बोतल या डब्बोंमें बन्द कर दिया गया है, और बोतलमें से वायु निकाल दी गयी है तो इन जीवाणुओंकी खूब वृद्धि होती है और इनका विष खानेमें मिल जाता है। बोतल या डिब्बा खोले जाने पर यदि उसमेंका पदार्थ १००°श तक गरम कर लिया जाता है तो विषका नाश हो जाता है। यही कारण है कि अब तक टिन्डफुडके शौकीन बचे हुए हैं। फैशनके शौक़ीन हिन्दुस्तानी तो 'टिन्डफुड' को योंही उड़ा जाते हैं। उन्हें विशेष प्रकारसे सावधान रहना चाहिये।

बोतलमें बन्द करके फलोंकी रक्षा करनेसे तो हमारी पुरानी प्रथा अच्छी है। मुरब्बे या अचार बनाकर अथवा सुखाकर फल रखे जायं तो उपरोक्त जीवाणुकी गुज़र नहीं हो सकती।

स्वप्न

इस संसारमें ऐसे बहुत कम मनुष्य होंगे जो स्वप्न नहीं देखते होंगे। परन्तु कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं जो पूछने पर कहते हैं कि उन्होंने कभी स्वप्न नहीं देखा। इसका कारण यह है कि स्वप्न याद नहीं रहते; हम उन्हें बहुत जल्दी भूल जाते हैं। इसलिए रात भर स्वप्न देखनेके बाद सवेरे ऐसा जान पड़ता है कि कोई स्वप्न देखा ही नहीं है। कुछ ऐसे स्वप्न अवश्य होते हैं जिन्हें जल्दी नहीं भूलते। स्वप्न जगत्के साथ वास्तविक जगत्का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि प्रायः सभी स्वप्नमें देखी हुई घटनाओंके साथ दैनिक जीवनका कुछ सम्बंध निकालना स्वाभाविक हो जाता है। लोग यह जानना चाहते हैं कि हमने ऐसा स्वप्न क्यों देखा और इसका फल क्या होगा। असभ्य जातिके मनुष्य स्वप्नमें जो बात देखते हैं वैसा ही काम करते हैं। इतिहासको स्वप्नके विषयमें बहुत कुछ कहना है। जब रामका बनवास तथा दसरथकी मृत्यु हुई थी उस समय भरतने अपने ननिहालमें बुरे बुरे सपने देखे थे। स्वप्नमें देवीकी आज्ञा पा चित्तौरके महाराणा लक्ष्मण सिंहने अलाउद्दीनके विरुद्ध शस्त्र उठाया था। बादशाह जहांगीरने स्वप्नमें पिताकी आज्ञा पा अज़ीज कोकाका गुरुतर अपराध क्षमा कर दिया था। आजकल भी लोग स्वप्नमें नाना प्रकार की घटनाएं देखते हैं और उसीके अनुसार चलते हैं। कहा जाता है कि सुबहका देखा हुआ सपना बहुत कुछ सच्चा होता है; किन्तु यह कहना कठिन है कि यह बात कहां तक ठीक है। मुकदमे बाज़ स्वप्न देख कर हार जीतका पता लगा लेते हैं। व्यवसायी स्वप्नमें बाजार-भावकी तेजी मन्दी देखते हैं।

बहुतोंकी धारणा है कि स्वप्न अमूलक नहीं होते; उनमें अवश्य रहस्य भरे रहते हैं। इसीलिए हमारे यहां सुस्वप्न और दुःस्वप्नका इतना विचार किया जाता है। यद्यपि हम लोग वैज्ञानिक शिक्षा का आश्रय ले स्वप्नको 'कुछ नहीं है' कह कर उड़ा देनेकी चेष्टा करते हैं तथापि यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि स्वप्न हमारे हृदयके भावों को आन्दोलित कर देते हैं। सुसभ्य पाश्चात्य देश में भी स्वप्न विषयक बहुत से ग्रन्थ हैं; इनमें नाना प्रकारके स्वप्न तथा उनके फलाफल लिखे हुए हैं। सांपको स्वप्नमें देखनेसे लड़का पैदा होता है; हाथीको स्वप्नमें देखना किसी बुरी घटनाकी पूर्व सूचना है; जल पूर्ण पात्र देखनेसे धन लाभ होता है; लाल फूल कष्ट भोगनेकी निशानी है—स्वप्न सम्बन्धी ऐसी ही बातें हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें भी पायी जाती हैं।

स्वप्न-तत्वका अध्ययन करने से जान पड़ता है कि स्वप्नके कारणके निर्दिष्ट करनेमें आधुनिक वैज्ञानिकोंने दो पंथोंका अवलम्बन किया है। एक दल स्वप्नके (Physiological) शारीरिक कारण खोजनेमें व्यस्त है और दूसरा दल समझता है कि स्वप्नका कारण मनके भीतर ही है। सोते हुए किसी मनुष्यके शरीरपर एक बूँद पानी पड़ा, उसने स्वप्न देखा कि वृष्टि हो रही है अथवा वह स्नान कर रहा है। इस विषयमें प्रथम दलके वैज्ञानिकोंका कहना है कि शरीर पर जल पड़नेसे जो शारीरिक अनुभूति हुई उसीसे उसने स्वप्न देखा दूसरे दलके मनुष्य कहते हैं कि जलका गिरना यद्यपि स्वप्नका कारण है तथापि वृष्टि या स्नान करनेका स्वप्न देखना इस प्रकारकी अनुभूति द्वारा निर्धारित नहीं हो सकता। इसका कारण खोजनेके लिए मानसिक घटनाओंकी ही छान बीन करनी पड़ेगी। दिनको अच्छा काम किया और रातमें भयदायक स्वप्न देखा, ऐसा मानसिक संस्कारोंके कारण ही होता है। इसीसे शारीरिक घटनाओंके अनुसन्धान करनेकी अपेक्षा मानसिक शक्तियोंके अनुशीलनसे अधिक लाभ होनेकी सम्भावना है।

कुछ शारीर शास्त्री (Physiologist) समझते हैं कि हमारे मस्तिष्कके कोषों (Cells) के अभ्यान्तरिक परिवर्त्तनका फल मानसिक चिन्ताकी उत्पत्ति है। जागृतावस्थामें भिन्न भिन्न कोष परस्पर संयुक्त और संबद्ध रहते हैं। निद्राकालमें वह एक दूसरेसे अलग हो जाते हैं; इसलिए चिन्ताधाराकी श्रृङ्खला नष्ट होकर स्वप्नकी सृष्टि करती है। आश्चर्यकी बात यह है कि एक दूसरा दल (Physiologists) ठीक इसके विपरीत मत रखता है। उनकी रायमें निद्रा कालमें कोष अलग अलग न होकर और घनिष्ठ हो जाते हैं। इनका एक गुट्ट होजाने से स्वाभाविक चिन्ताकी श्रृंखला नष्ट हो जाती है और हम लोग स्वप्न देखने लगते हैं। कोई कोई कहते हैं कि निद्रा कालमें शरीरके भीतर विषाक्त पदार्थ जम कर कोषोंकी क्रियामें बाधा डालते हैं; इसीसे हम लोग स्वप्न देखते हैं। स्वप्न कारण-निर्णयके लिए न मालूम कितने शरीर-क्रिया-मूलक सिद्धान्त चलाये जा रहे हैं। किन्तु उनमें से एक भी सत्य या प्रकृत सिद्ध नहीं हुआ है। इन सिद्धान्तोंके रहते हुए भी हम लोगोंका स्वप्न सम्बन्धी ज्ञान कुछ भी उन्नत नहीं हुआ है।

संस्कृत साहित्यमें भी नाना प्रकारके मत वर्णित हैं। बृहदारण्यक उपनिषद्में स्वप्न सम्बन्धी दो मत लिखे हुए मिलते हैं:—(१) बाह्य जगत्के देखे हुए पदार्थोंका अनुकरण कर आत्मा स्वप्नमें नई दुनिया बनाता है। (२) आत्मा शरीरसे निकल कर अपनी इच्छानुसार संसारमें घूमता फिरता है। स्वप्नको चरकने सात भागोंमें बांटा है—दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित, भावित (भविष्यत्-निर्देशक) और दोषज। वेदान्त का कहना है कि स्वप्नमें हम लोग कोई अज्ञात (नहीं जानी हुई) घटनाको नहीं देखते। किन्तु इनमें से किसीको वैज्ञानिक मत नहीं कहा जा सकता।

स्वप्न तत्वके विषयमें जाननेके लिए सभी मनुष्य उत्सुक रहते हैं, किन्तु बहुत कम वैज्ञानिक इसकी आलोचना करते हैं। वैज्ञानिकोंका काम दृश्य पदार्थोंके साथ है; इसीलिए शायद वह अवास्तव, अद्भुत, अजनबी स्वप्न-राज्यमें जाना नहीं चाहते। मनस्तत्वविदोंने अन्यान्य मानसिक क्रियाका जिस प्रकार विश्लेषण किया है या उनके लिए जितनी शक्ति अथवा समयका व्यय किया है उसकी तुलनामें स्वप्न विषयक खोजमें उन्होंने कुछ भी नहीं किया है। इसीलिए कुछ दिन पीछे तक हम लोगोंको इस विषयका कुछ भी ज्ञान नहीं था। प्रायः पच्चीस वर्ष हुए कि प्रो० सिगमुन्ड फ्रियुड (Prof. Sigmund Freud) ने विशेष अध्यवसाय तथा अद्भुत बुद्धि बलसे स्वप्नके तत्वको उद्‌घाटित किया। उन्हींका पदानुसरण कर कई मनस्तत्वविद् स्वप्न सम्बन्धी निगूढ़ तत्वोंका आविष्कार करनेमें समर्थ हुए हैं। किन्तु इस समय भी कहना पड़ता है कि हमारा स्वप्न सम्बन्धी ज्ञान असम्पूर्ण है। किन्तु हम लोग स्वप्नके रहस्यको क्रमशः अधिक समझने लगे हैं; इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। मैं इस लेखमें फ्रियुड तथा अन्यान्य मनस्तत्वविदोंके विचारोंकी आलोचना करूंगा।

स्वप्न तत्वकी आलोचना करनेके समय हमारे मनमें कई प्रकारके प्रश्न उठते हैं। स्वप्न क्या है? क्यों होता है? इसका अर्थ क्या है? स्वप्न सच होता है या झूठ? क्या यह हमारी भविष्य घटनाओंका सूचक होता है? क्या स्वप्नकी सहायतासे हम लोग दूसरे लोकको बातें जान सकते हैं? क्या स्वप्नमें मृत आत्मीय बन्धु-बान्धवोंका आत्मा दीख पड़ती है? कभी हम लोग स्वप्नमें किसी की मृत्युकी सूचना पा जाते हैं—यह कैसे होता है? स्वप्नमें अभी अपरिचित जगह या विषय देखकर पीछे उसे प्रत्यक्ष देखते हैं—इसका क्या कारण है? ऐसे प्रश्न कभी कभी स्वयं उठ खड़े होते हैं। इसका सन्तोष जनक उत्तर देना सदा सम्भव नहीं है; किन्तु यथासाध्य उनकी व्याख्या करनेकी चेष्टा करूंगा।

स्वप्न क्या है ?

सोते समय हमारी मानसिक वृत्तियां एक दम निस्तेज नहीं हो जातीं; जाग्रत अवस्थामें मानसिक वृत्तियां शृंखला बद्ध रहती हैं परन्तु सोते समय शृङ्खला नष्ट हो जाती है और नाना प्रकारकी अद्भुत चिन्ता मनमें उठती हैं। इसी घटनाको स्वप्न कहते हैं। शास्त्रकार जिसे सुषुप्ति कहते हैं, निद्राकी उस गाढ़ अवस्थामें स्वप्न नहीं होते। अन्ततः हम लोग अपने मनमें ऐसा ही सोचते हैं। स्वप्नकी एक विशेषता है। जाग्रत अवस्थामें दर्शन (Visual), श्रवण (Auditory) और स्पर्शेन्द्रिय (tactual) आदि प्रत्यक्षके प्रतिरूप (image) वर्त्तमान रहते हैं; किन्तु स्वप्नमें दर्शन प्रति रूप (Visual imagery) की ही प्रधानता रहती है। स्वप्नमें सुननेकी अपेक्षा देखना ही अधिक रहता है इसलिए हम लोग कहते हैं "स्वप्न-देखना"। स्वप्नमें यह विशेषता क्यों है उसका अर्थ क्या है—इसका उत्तर पीछे दूंगा।

जाग्रत और सुप्त अवस्थाके बीचमें कोई निर्दिष्ट सीमा नहीं है। इसीलिए जाग्रत और निद्रित समय की चिन्ताओंमें सब समय विशेष कोई पार्थक्य नहीं देखा जाता। कभी कभी यह समझना मुश्किल हो जाता है कि जाग्रत अवस्थामें कुछ सोच रहा हूं या स्वप्न देखता हूं। पूर्ण जाग्रतावस्थामें भी कभी कभी चिन्ताधारा लक्षित होती है; जिसे हम लोग 'दिवा स्वप्न' कहते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि जाग्रत अवस्थामें हम लोग अपनी चिन्ताको नियन्त्रित करते हैं; किन्तु स्वप्नके समयमें चिन्ता हमारी इच्छाके अनुसार नहीं होती—यही स्वप्नकी एक विशेषता है। दिवा-स्वप्नमें भी चिन्ता हमारी इच्छाका पालन नहीं करती—अपने ही मनमें विभिन्नभाव या चिन्ताकी उत्पत्ति होती है। अपने स्वप्नको अच्छी तरहसे लक्ष्य करनेसे देखा जा सकता है कि समय समय पर हम लोग उसे अपने इच्छाके मुताबिक बदल सकते हैं। कुछ लोग अपने इच्छानुसार स्वप्नको भिन्न भिन्न रूप देनेमें सामर्थ हुए हैं। इसे जानकर स्वप्न देखना कहते हैं। अनुभूतिके अतिरिक्त इस अवस्थाकी धारणा करना कठिन है। ऊपर जो कुछ कह आया हूं उससे ज्ञान पड़ेगा कि साधारणतः स्वप्न तथा जाग्रत अवस्थाकी चिन्ताओंमें भिन्नता होने पर भी ऐसी बहुत सी अवस्थाएं हैं जहां जागरण या स्वप्न है यह जानना बड़ा मुश्किल है। स्वप्नमें दर्शन (Visual) के अतिरिक्त अन्य प्रतिरूप (Imagery) का अभाव होनेपर भी सुख दुःख अनुभव करने की शक्ति (Feelings) का लोप नहीं होता। स्वप्नमें शोक, दुःख, क्रोध, भय इत्यादि सब प्रकार के राग-विकार पाये जाते हैं; किन्तु अधिकतर वह असंगत होते हैं। ऐसा भी देखा गया है कि स्वप्न में बाघको आलिङ्गन करते हैं और अपने घनिष्ठ मित्रको देखकर भयका संचार होता है। इन दोनों हालतोंमें आलिङ्गन तथा भय असंगत हैं। स्वप्नमें बातें करते, घूमते, दौड़ते अथवा चलते भी देखा जाता है। ऐसी कोई बात नहीं कि स्वप्न के समयकी सभी घटनाएं विशृंखल होती हैं। स्वप्नके समय एक मनुष्यको कठिन सवाल सिद्ध करते सुना है; एक जज साहबने स्वप्नमें ही अपना फैसला लिखा था। कौलेरिज (Coleridge) ने स्वप्नमें ही अपनी विख्यात कविता कुबला खान (Kubla Khan) लिखी थी; किन्तु वह असम्पूर्ण है। रवीन्द्र नाथ बाबूने भी अपनी कई कविताओंको स्वप्नमें लिखा है। किम्वदन्ती है कि मिल्टनको स्वप्नमें कोई स्वर्गीय दूत आकर (Paradise Lost) की प्रत्येक पंक्ति बता (Dictate) देता था। यदि वह अन्धे नहीं होते तो शायद स्वप्नमें ही (Paradise Lost) लिख देते। अनेक वैज्ञानिक आविष्कार भी स्वप्नमें ही प्रकाशित हुए हैं।

स्वप्नको साधारणतः हम लोग तीन भागमें बांट सकते हैं। (१) ऐसे स्वप्न जिनमें किसी प्रकारकी अस्वाभाविकता नहीं होती। साधारण जाग्रत चिन्ताओं तथा इस श्रेणीके स्वप्नके साथ बाहरी कोई पृथक्त्व नहीं देखा जाता। जैसे स्वप्नमें देखा

कि मैं एक बागीचेमें घूमने गया हूं। इसमें कोई अस्वाभाविक या असम्भव भाव नहीं है। (२) जिन स्वप्नोंमें भावकी असंलग्नता नहीं रहने पर भी वास्तविक जीवनके साथ कुछ भी सम्पर्क नहीं रहता। जैसे स्वप्नमें देखा कि मैं मर गया हूं। (३) जो स्वप्न एकदम अस्वाभाविक तथा अद्भुत होते हैं। जैसे देखा कि एक छ पैर वाला हाथी हमसे बातें कर रहा है। इस प्रकारके स्वप्न देखने के समय प्रायः अस्वाभाविक नहीं जान पड़ते; किन्तु नींद टूटने पर अद्भुत जान पड़ते हैं। छोटे लड़कोंके स्वप्न प्रायः प्रथम प्रकारके होते हैं। अस्तु, साधारणतः हम लोग स्वप्नको निद्रावस्थाका चिन्ताश्रोत कह सकते हैं। इस चिन्ताश्रोत और जाग्रत अवस्थाके चिन्ताश्रोतमें क्या प्रभेद है यह आगे चलकर कहूंगा।

स्वप्न क्यों होता है ?

वैज्ञानिक जगत्में 'क्यों' का कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। जब मैं कालेजमें पढ़ता था उस समय एक दिन भौतिक विज्ञानके प्रोफ़ेसर साहब ने कहा कि हमारी आंखके ताल (Lens) इस प्रकारके हैं कि जिस वस्तुको हम देखेंगे उसका उलटा प्रतिरूप (Image) वह बना देंगे किन्तु ऐसा होने पर भी हम लोग वस्तुओंके प्रतिरूपको ठीक ही देखते हैं। इस पर एकने पूछा—"Why Sir" उत्तर मिला "There is no answer to why in Science"। अस्तु, मैं पीछे लिख आया हूं कि स्वप्न निद्रावस्थाकी चिन्ता मात्र है। निद्रितावस्थामें हम लोग क्यों चिन्ता करते हैं, यह जाननेके लिए जाग्रतावस्थाकी चिन्ताके कारण को भी ढूंढ़ना पड़ेगा। किन्तु इस प्रश्नका कोई सन्तोषजनक उत्तर हमें ज्ञात नहीं है। साधारण लोगोंका विश्वास है कि स्वप्नमें हम लोग भूत-भविष्यत्का आभास पाते हैं और यह आभास हमारे व्यवहारिक जीवनमें कार्यकारी होता है! किन्तु शिक्षित मनुष्य इस बातको मानना नहीं चाहते। उनके मतमें स्वप्न अमूलक चिन्ता मात्र है। इसका कोई भी कारण नहीं हो सकता। स्वप्न की इस अमूलकताके ही लिए बहुत से मनस्तत्वविद् इसके कोई कारण माननेके लिए तैयार नहीं हैं। स्वप्न देखनेके संगत कारणको केवल फ्रियुड ही बतलानेमें समर्थ हुए हैं। उनकी राय है कि प्रतिदिन हमें बहुतसे काम रहते हैं; इसलिए बहुत से चिन्ता श्रोतोंको सम्पूर्णता प्राप्त नहीं होती; यह असम्पूर्ण चिन्ताश्रोत निद्रावस्थामें पूर्णता लाभ करनेकी चेष्टा करते हैं। हमारी जो इच्छाएं पूरी नहीं हुईं या जिनके पूर्ण होनेमें बाधा है वही इच्छाएं स्वप्नमें काल्पनिक भावसे परितृप्त होती हैं। किसी इच्छा अथवा लालसाके अपरितृप्त रह जानेके कारण जो अशान्ति होती है वही स्वप्नमें काल्पनिक उपायों द्वारा मिट जाती है। मनकी अशान्तिको दूर करता है, इसलिए स्वप्न निद्रामें सहायता करता है। इसीसे फ्रियुड स्वप्नको निद्राका संरक्षक guardian of sleep कहते हैं। साधारण लोगोंकी धारणा है कि स्वप्न देखनेसे निद्रामें बाधा होती है; किन्तु फ्रियुडका मत ठीक इससे उलटा है। वह कहते हैं कि नीन्दमें बाधा होने के ही कारण स्वप्न होता है और स्वप्न देखनेकी वजहसे ही सुनिद्रा सम्भव हो सकती है। मान लीजिये कि 'क' किसी आफिसमें काम करते हैं। बहुत से काम (arrear) करनेको पड़े हुए हैं; इसलिए अफसरने आज उनकी ताड़ना की है। जब जब वह सोनेकी चेष्टा करते हैं तब तब आफिसके कामोंकी चिन्ता तथा अफसरकी झिड़की उनकी निद्रामें व्याघात देती है। इस समय उन्होंने स्वप्न देखा कि आफिसके सब कामोंको कर डाला है साहबने प्रसन्न होकर उनका वेतन बढ़ा दिया है। ऐसा स्वप्न देखनेसे 'क' का मन शान्त हुआ और साथ साथ निद्राने भी आ घेरा। यहां हम लोग देखते हैं कि स्वप्न निद्रा बुलानेमें सहायक हुआ।

एक और उदाहरण लीजिये। दारुण ग्रीष्म कालमें सो रहा हूं, निद्रितावस्थामें प्यास लगी।

इससे नींद टूट जानेकी सम्भावना है। किन्तु स्वप्नमें देखा, ठंडा शरबत पी रहा हूं। इससे जो काल्पनिक तृप्ति हुई उससे नींद टूटनेका डर जाता रहा। हां, यह काल्पनिक तृप्ति अधिक स्थायी नहीं हो सकती। इस प्रकारके स्वप्नोंसे स्पष्ट जान पड़ता है कि स्वप्न निद्राका सहायक होता है। कुछ लोग कहेंगे कि ऐसे भी स्वप्न होते हैं जिन्हें देखने से डरके मारे नीन्द टूट जाती है। ऐसे स्वप्नोंको तो लोग निद्राका बाधक ही समझेंगे; किन्तु इस विषयकी मैं स्वतन्त्र आलोचना भययुक्त स्वप्नोंके साथ करूंगा। कभी कभी स्वप्न द्वारा अतृप्त अवस्थाकी शान्ति स्पष्ट रीतिसे नहीं होती—गुप्त भावसे परितृप्ति होती है। जैसे रेलयात्राका स्वप्न देखनेके पूर्व स्टेशन पर जानेका स्वप्न देखा। बिना विश्लेषण किये इस प्रकारके स्वप्नसे क्या इच्छा पूर्ण होती है; यह नहीं कहा जा सकता। फ्रियुड कहते हैं कि हमारा प्रत्येक स्वप्न किसी न किसी इच्छाके पूरे करनेकी चेष्टा कर रहा है। उनके मतमें स्वप्न देखनेके दो फल हैं—(१) मनकी असम्पूर्ण इच्छा काल्पनिक भावसे परितृप्त होकर मनको शान्ति देती है, और (२) निद्राकी बाधा दूर हो जाती है।

स्वप्नका अर्थ क्या है ?

स्वप्नके कई प्रकारके अर्थ हैं। पीछे कह आया हूं कि किसी किसीके मतमें स्वप्न नितान्त निरर्थक हैं। हमारे देशमें यदि कोई आदमी स्वप्न देखता है तो गणकके पास जाकर उसका अर्थ पूछता है। संस्कृत ग्रन्थोंमें स्वप्नके फलाफल तथा अर्थ निर्णय सम्बन्धी श्लोक पाये जाते हैं। ऋगवेद, अथर्ववेद, और सामवेदके कुछ मंत्रोंमें स्वप्नके फलादेश मिलते हैं। आयुर्वेदके अनुसार बहुत से स्वप्नोंको निरर्थक कह सकते हैं; पर कुछका शुभाशुभ फल भी बतलाया गया है। शास्त्रकारोंका कहना है कि शुभ स्वप्न देखनेके बाद सोना ठीक नहीं है। ऐसा करनेसे शुभ स्वप्नका फल प्राप्त नहीं होता। अशुभ स्वप्न देखनेसे यदि नीन्द टूट जाय तो भी पुनः नहीं सोना चाहिये। घोड़ा हाथी या पहाड़ पर चढ़नेका स्वप्न देखनेका फल अर्थ-लाभ है। मनुष्यका मांस खानेका स्वप्न देखनेसे मनुष्यकी उच्चाकांक्षा फलवती होती है। स्वप्नमें भरा हुआ जलपात्र देखनेसे धन तथा पुत्र लाभ होता है। स्वप्नमें हंसनेसे दुख भोगना पड़ता है। भैंसे पर चढ़कर दक्षिण दिशामें जानेका स्वप्न मृत्युका चिन्ह है। दांत टूटनेका स्वप्न अर्थनाशको सूचित करता है; इत्यादि।

स्वप्नकी इस प्रकारकी व्याख्या पाश्चात्य देशों में भी प्रचलित है। यूरोपमें भी स्वप्न सम्बन्धी बहुत सी पुस्तकोंकी रचना हुई है। इन पुस्तकोंमें स्वप्नका अर्थ लिखा हुआ है। कहना व्यर्थ है कि इस प्रकारकी व्याख्याका वैज्ञानिक मूल्य कुछ भी नहीं है।

फ्रियुडने सबसे पहले स्वप्न सम्बन्धी संगत व्याख्या करनेके पथका आविष्कार किया। वैज्ञानिक तथा मनस्तत्वविद् लोग स्वप्न-व्याख्याके इस उपायको अब आदरकी दृष्टिसे देखने लगे हैं। इस उपायका नाम Free Association Method है। स्वप्न देखनेवाला स्वप्न देखनेके बाद यथा सम्भव शीघ्रतासे स्वप्नको लिख रखते हैं। स्वप्नकी विशेषता यह है कि हम उसे बहुत जल्दी भूल जाते है, इसीसे लिखनेकी आवश्यकता होती है। इसके बाद स्वप्न द्रष्टाको एक निर्जन घरमें बिछौनेपर सुलाया जाता है। व्याख्याकारी उसके सिरके पास कागज़ पेन्सिल लेकर बैठता है। द्रष्टा स्वप्न सम्बन्धी जो हाल कह सकता है उसे पहले लिख लिया जाता है। इस प्रकार यह मालूम होजाता है कि स्वप्न संक्रान्त कोई घटना घटी थी या नहीं, स्वप्न क्यों हुआ स्वप्नमें देखे हुए, व्यक्ति कौन कौन हैं और उनके साथ द्रष्टाका क्या सम्बन्ध है। इसके बाद स्वप्न द्रष्टाको आंख मूंद कर निश्चेष्ट भावसे सोनेको कहा जाता है। यदि स्वप्न बड़ा हुआ तो उसको छोटे छोटे हिस्सोंमें बांट लेना पड़ता है। द्रष्टाको एकके बाद दूसरा हिस्सा सुनाया जाता है। प्रत्येक अंशको

सुन लेनेके बाद उसके मनमें कैसा भाव पैदा हुआ या क्या क्या बात याद आयी; यह सब उसे कहना पड़ता है। द्रष्टाको विशेष प्रकारसे इस बातकी चेतावनी दे दी जाती है कि वह किसी बातको बना कर या बढ़ा कर न कहे; श्लील, अश्लील, उचित अनुचित, आवश्यक अनावश्यक जो जो बातें उसके मनमें आवें उसे निष्कपट हो कहना चाहिये। व्याख्याकारी सभी बातोंको लिख लेते हैं। कभी कभी द्रष्टाके मनमें ऐसे भाव उदय होते हैं जिनका स्वप्नके साथ कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ता। विशेष अभ्यासके नहीं रहनेसे मनको इस प्रकार निश्चेष्ट अवस्थामें लाना कठिन है। प्रयत्न करनेसे द्रष्टा स्वचेष्टासे बात न सोचेगा और जो मनमें उदय होगा वह उसे ही कहेगा, मनकी लगाम एक दम छोड़ देना आवश्यक है। पाठक परीक्षा कर जान सकते हैं कि मनको इस प्रकार छोड़ देना कितना कठिन काम है। मनकी निश्चेष्टता बिना स्वप्नकी व्याख्या नहीं हो सकती। स्वप्न द्रष्टाके जीवनकी सभी घटनाओंको जाने बिना स्वप्नका वास्तविक अर्थ निकालना कठिन हो जाता है। स्वप्नकी व्याख्या सहज नहीं है। द्रष्टा सम्बन्धी सब हाल तथा उसके स्वप्नका पूरा विवरण लेकर अबाध भावानुबन्ध (Free Association Method) की सहायतासे विश्लेषण करना होगा। इस क्रियामें विशेष धैर्य्य तथा समयकी आवश्यकता होती है।

पाठकोंकी धारणा हो सकती है कि संकेत जान लेनेसे ही स्वप्नका अर्थ किया जा सकता है। और साधारणतः वह इस प्रकारकी प्रक्रियाको करना नहीं चाहेंगे। किन्तु धीरताके साथ कुछ दिन मित्रोंके स्वप्नोंका विश्लेषण करनेसे वह मनुष्यके मनके बहुत से नये नये तत्वोंको जान सकेंगे। स्वप्न विश्लेषणमें अभ्यस्त होनेसे, इस कठिन प्रक्रियाकी सहायता न लेकर भी, कभी कभी स्वप्नका अर्थ समझा जा सकता है। किन्तु इसमें भूल ही करनेकी अधिक सम्भावना रहती है। दो भिन्न भिन्न मनुष्योंके एक ही प्रकारके स्वप्न के दो अर्थ निकल सकते हैं।

फ्रियुड़का कहना है कि अबंधभावानुबंध-विधि की सहायतासे हमारे मनके बहुत से छिपे हुए भाव जागृत हो जाते हैं और उससे अभिज्ञ व्यक्ति मनके भाव तथा स्वप्नका अर्थ सहजमें समझ सकते हैं। स्वप्न छोटा होने पर भी उसके साथ मनकी अनेक चिन्ता जुड़ी हुई रहती हैं। उन्हें इसी विधि द्वारा जान सकते हैं। स्वप्नमें जो देखा जाता है उसको फ्रियुडने Manifest Content व्यक्तांश नाम दिया है। और स्वप्नके साथ मनकी चिन्ता या गुप्त भावका पता मिलता है उसे Latent Content अव्यक्तांश नाम दिया है। इस अव्यक्त अंश का पता मिलनेसे स्वप्नका अर्थ जानना असम्भव है।

फ्रियुड़के मतमें हम लोगोंके हृदयोंमें अनेक असामाजिक तथा अन्यायपूर्ण इच्छाएँ हैं। यह इच्छाएँ रुद्ध अवस्थामें रहनेके कारण आत्म प्रकाश नहीं कर सकतीं। इसलिए उनके अस्तित्वका भी हमें ज्ञान नहीं रहता। यह रुद्ध इच्छाएँ स्वप्नमें काल्पनिक परितृप्ति लाभ करनेकी चेष्टा करती हैं। जिस प्रकार हमारे मनमें पिताके प्रति भक्ति तथा प्रेम रहता है उसी प्रकार उनके विरुद्ध कभी कभी घृणा भावकी भी उत्पत्ति होती है। धनी लोगोंके लड़कोंमें ऐसा भाव भी देखा जाता है कि यदि उनके पिता मरें तो वह सम्पत्तिके मालिक बनें। पिताकी हत्या कर सिंहासन लाभ करनेवाले मनुष्योंके अनेक उदाहरण इतिहासमें पाये जाते हैं। बाप-बेटेका यह झगड़ा स्वभाविक है। आदिम समयसे मनुष्यमें यह विरोध भाव पाया जाता है। किन्तु अनुकूल अवस्था नहीं होनेसे यह भाव आत्मप्रकाश नहीं कर सकता। यह विरोध भाव मनमें दबा रहता है। इसका अस्तित्व हम आसानीसे समझ नहीं सकते और किसीके समझाने पर भी हम उसे नहीं मानते। किन्तु इसके अस्तित्वका परोक्षात्मक प्रमाण पाना भी कठिन नहीं है। पिताके प्रति यथेष्ट प्रेम रहनेपर

भी उनके प्रति मनमें अज्ञात शत्रु भाव छिपा हुआ है यह 'ख' के स्वप्नसे जाना गया। स्वप्नमें वह पिताकी मृत्यु-कामना करते हैं। स्वप्नका इस प्रकार गूढ़ अर्थ होगा; इसका बहुत से लोग विश्वास करना नहीं चाहेंगे। किन्तु भिन्न भिन्न स्वप्न द्वारा चिन्ता श्रोतको बारबार मनसे निकालते रहने पर स्वप्न के इस प्रकारके फल पर अविश्वास करना कठिन हो जायगा। 'ख' ने अपने स्वप्नका ऐसा अर्थ सुनकर घोर प्रतिवाद किया। उन्होंने कहा—'यह कभी सच नहीं हो सकता।' पीछे उनको समझाया गया कि ऐसी चिन्ता ज्ञात रूपसे नहीं किन्तु अज्ञात रूपसे उनके मनमें उठ रही है। 'ख' ने कुछ देर चुप रहकर कहा—'हा' मैंने एक बार अपने पिता की मृत्युका स्वप्न देखा था। सोचकर देखनेसे पाठकोंको जान पड़ेगा कि जो भाव पहले नितान्त असंलग्न जान पड़ते थे अबाध भाव प्रभावसे वे एक ही चिन्ता द्वारा चालित होते हैं। किन्तु पाठक ऐसा कह सकते हैं कि ऐसा होना एक आकस्मिक घटना है। किन्तु यदि वह कई स्वप्नोंका इस प्रकार विश्लेषण करें तो उन्हें प्रत्येक स्थानमें इस प्रकारकी आश्चर्य्य घटनाका पता लगेगा। तब वह स्वप्नके अर्थको निर्मूल नहीं कह सकेंगे। हमारे मनमें जो वृत्तियां रुद्ध हैं उनके सम्बन्धमें कुछ हाल मालूम रहनेसे स्वप्न विश्लेषणमें सुविधा हो सकती है; सुप्त चिन्ताका कुछ आभास नहीं होनेसे स्वप्नका अर्थ निकालना बड़ा कठिन है।

अबाध-भावानुबन्ध प्रणाली (Free Association Method) के विषयमें मैं कुछ और लिखना चाहता हूं यद्यपि वह विषयसे कुछ दूरकी बातें होंगी। पहले पहल इस बात पर विश्वास करनेको जी नहीं चाहता कि मनके अनेक अज्ञातभाव इस प्रकार जाने जा सकते हैं; किन्तु कोई भी मनुष्य इसके सत्यासत्यकी जांच कर सकता है। किसी विषय या घटनाके भूल जानेसे उसे अबाध-भावानुबन्ध प्रणालीसे याद किया जा सकता है; उस समय इस प्रक्रियाकी कार्यकारणतामें कुछ भी सन्देह नहीं रहता। अबाध चिन्तामें जो भाव एक के बाद एक उठते हैं वह किसी संगत कारणके बिना नहीं उठते। इसका कोई आकस्मिक कारण नहीं जान पड़ता; क्योंकि यदि बारबार इसी प्रकार घटते देखा जाय और यदि बहुत से लोग इस विषयकी यथार्थताकी साक्षी दें तो कहना पड़ेगा कि स्वप्नके अर्थको कल्पना कह कर उड़ा देना ठीक नहीं है। इसी कारणसे स्वप्नके अर्थ जाननेके लिए अबाध भावानुबन्धकी आवश्यकता होती है। कभी कभी देखा जाता है कि एक बार ऐसी चिन्तामें लीन हो जाने पर चिन्ताका श्रोत नहीं रुकता। ऐसी दशामें चिन्ताके श्रोतको रोकना पड़ता है; किन्तु किस अवस्थामें रोकना पड़ेगा यह अभिज्ञताके बिना नहीं कहा जा सकता। साधारणतः जब परीक्षाधीन व्यक्तिकी चिन्ता पारिपार्श्वक अवस्थाकी ओर घूमती है उसी समय उसको रोकना चाहिये।

अबाध-भावानुबन्धके समय अवान्तर विषयके उठते ही अभिज्ञ व्यक्ति उसका पता लगा लेता है। नये मनुष्य पहले अबाध चिन्तामें विशेष कार्य कुशल नहीं हो सकते। उस अवस्थामें कोई प्रश्न पूछे जाने पर वह प्रश्नके उत्तरके अतिरिक्त अनेक ऐसी बातें कहेंगे जिनका प्रश्नके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। इसलिए कुछ दिन अभ्यास करनेके बाद इस प्रक्रिया द्वारा मनके अन्तःस्थलके अनेक सुप्तचिन्ता श्रोतोंका सन्धान लगाया जा सकता है।

अब पुनः 'ख' के स्वप्नकी ओर आता हूं। हमने उनके स्वप्नके विश्लेषण करके देखा कि वह अपने पिताकी मृत्युकामना करते हैं। अन्यान्य स्वप्न-विश्लेषणके फल स्वरूप भी हम लोग देख सकते हैं कि उसमें कोई न कोई रुद्ध इच्छाके पूर्ण होनेकी चेष्टा है। अवश्य यह परितृप्ति काल्पनिक है; फ्रियुड कहते हैं कि सभी स्वप्नोंमें किसी न किसी इच्छाकी काल्पनिक परितृप्ति देखी जाती है।

स्वप्नका अर्थ क्या है? इस प्रश्नका कुछ कुछ अब आभास मिला। गरीब राज महलमें सोनेका स्वप्न देख सकता है। तृषातुर पानी पीनेका, अजीर्ण रोगी भोज खानेका स्वप्न देखता है। किन्तु सब समय इस रुद्ध इच्छाकी काल्पनिक तृप्ति नहीं होती। 'ख' ने यद्यपि एक बार अपने पिताकी मृत्युका स्वप्न देखा था तथापि हमारे आलोच्य उदाहरणमें वह इच्छा विकृत भावसे प्रकाशित हुई है। यह विकृति क्यों होती है, किस प्रकार होती है—फ्रियुड़ने इसकी भी आलोचना की है। समय मिलने पर उसकी चर्चा करूंगा।

—श्रीरमेशप्रसाद

प्लाटीनमका बदल

प्लाटीनम धातु सोनेसे अधिक क़ीमती है और रासायनिक दृष्टिसे गुणोंमें भी उससे बढ़ी हुई है, यद्यपि उसका रंगरूप, चमक दमक सोनेके पासंग भी नहीं है। अतएव सदासे एक ऐसे पदार्थकी खोज होती रही है जो सस्ता हो पर प्लाटीनमके समान गुणवाला हो। हालमें ही इलिनोइस विश्वविद्यालयके रसायन विभागने एक पदार्थ बनाया है जिसमें प्लाटीनमके गुण मौजूद हैं। प्रोफेसर एस. डबलू. पार ने इस पदार्थका नाम इल्लियम रखा है।

प्लाटीनमका भाव ६००० रुपये प्रति पौण्ड है, परन्तु इल्लियम (Illium) का केवल ।॥) प्रतिपौण्ड है। यही कारण है कि इल्लियम अब प्लाटीनमके स्थानपर काममें लाया जाता है। उसके गुणोंकी जांच अभी जारी है।

शकरसे बेज़ार

शकर खानेमें कितनी अच्छी और स्वादिष्ट लगती है। परन्तु कभी कभी इससे भी लोग परेशान हो जाते हैं। शकरसे लदे जहाज जब उष्ण प्रदेशमें यात्रा करते हैं तो मल्लाह और मांझी परेशान हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि शकरके बोरोंमेंसे अद्भुत मीठी गंध आती है, जो उनके नथनों और मुंहमें घुस कर उनका स्वाद बिगाड़ देती है और भूखबन्द कर देती है। उस समय मल्लाहोंको लैमजूस, नीबू, अम्ल आदि पदार्थ खिलाने पड़ते हैं।

समुद्रोंका रंग

नार्थसी हरा है, क्योंकि उसका जल निर्मल है और उसकी तलैटी रेतीली है। रेडसीमें एक लाल रंगकी घास उगती है, जिसके कारण पानीका रंग लाल सा दिखाई पड़ता है। चीनके पीत समुद्रमें एक प्रकारके अत्यन्त क्षुद्र जीव होते हैं, जिनके कारण पानी पीला दिखाई देता है। (P.S.S.1627)

डाइबिटीज़का एक नया इलाज
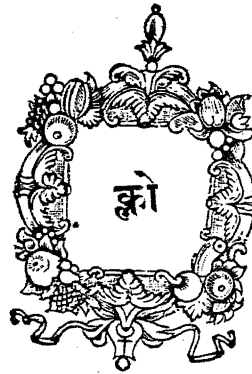
मसें दो प्रकारके रस बनते हैं, एक रस तो साधारण पाचन क्रियामें सहायता देता है और दूसरा शकरके पाचनमें सहायक होता है। डाक्टर बेंटिङ्गको खयाल हुआ कि यदि क्लोमसे एक काम न लिया जाय तो उसका दूसरा काम अधिक पूर्णतासे होने लगेगा। डाइबिटीज़के रोगीके क्लोममें शर्करा पाचक रस कम बनता है या उसका बनना बिलकुल ही बंद हो जाता है; यही कारण है कि शकर पचती नहीं और मूत्रके साथ बाहर निकलने लगती है।

"यदि किसी जानवरकी वह नली बन्द कर दी जाय जो क्लोमको आंतोंसे मिलाती है तो क्लोममें

पाचक रस बनना बन्द हो जायगा और शर्करा-पाचक-रस अधिक मात्रामें बनने लगेगा। इस रसका डाइबिटीज़के रोगीके शरीरमें त्वक्-छेदन (Injection) द्वारा प्रवेश करानेसे रोगी शक्करको पचाने लगेगा।" यह बातें डा० बेंटिङ्गने सोचीं और प्रयोग करनेका निश्चय कर लिया। डाइबिटीज़के विषयमें गवेषणा करनेवाले उन कुत्तोंपर जिनका क्लोम निकाल लिया जाता है, प्रयोग किया करते हैं। क्लोमको निकाल लेनेके बाद कुत्ता प्रायः १४ दिन जीता है; परन्तु इन्सुलिनका प्रयोग करने पर बेस्ट और बेंटिङ्ग क्लोम-विहीन कुत्तोंको ७० दिन तक ज़िंदा रख सके।

कुत्तोंसे ही शर्करा पाचक रस अर्थात् इन्सुलिन प्राप्त हुआ और क्लोम विहीन कुत्तोंपर ही उसका प्रयोग किया गया; प्रयोग सफल भी हुआ। अब देखना यह था कि इन्सुलिन मनुष्यके लिए विष तो नहीं है। दोनों सहकारियोंने आपसमें ही फैसला करना निश्चय कर लिया। बेस्टने बेंटिङ्गके शरीरमें इन्सुलिनका प्रवेश कराया। बेंटिङ्गने भी 'दोजका बायंना तीज' वाली कहावत चरितार्थ की। इस बार जिस इन्सुलिनका प्रयोग हुआ वह बैलसे प्राप्त की गयी थी। दोनोंमेंसे किसीको हानि नहीं पहुँची। फिर तो वह रोगियों पर परीक्षा निर्भय करने लगे। तीन मासके परीक्षणोंका परिणाम यह निकला है कि इन्सुलिनके प्रयोगसे—

(१) रुधिरमें शर्कराकी मात्रा स्वाभाविक हो जाती है।

(२) मूत्रमें शक्करका आना बन्द हो जाता है।

(३) मूत्रमें एसीटोनका आना बंद हो जाता है।

(४) कर्बोजोंका पाचन अधिक होने लगता है।

(५) रोगीका स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो जाता है।

रोगीको दिनमें एक या दो बार त्वक प्रवेश कराना पड़ता है। कुछ रोगियोंने तो १०० बार तक त्वक-प्रवेश कराया है; परन्तु उन्हें किसी प्रकारकी हानि नहीं हुई है। आशा है कि यह नयी चिकित्सा बड़ी लाभदायक निकलेगी।

अद्भुत विवाहोपहार

मेलिकुल (New Hebrides) द्वीपमें विवाहिता स्त्रियोंके सामनेके दो दांत देखनेमें नहीं आते। बात यह है कि विवाह के समय बूढ़ी स्त्रियां बधूके दो दांत तोड़ दिया करती हैं।

इसी द्वीपमें एक और रिवाज है। लड़कीके पैदा होने पर उसके सिर पर चटाई रख कर रस्सी से कसकर बांध देते हैं। ऐसा करनेसे सिरकी आकृति बदल जाती है। सूच्याकार, कुलाहके समान, ऊपरको उभरा हुआ सिर वहां बड़ा सुन्दर समझा जाता है। जितना उठा हुआ सिर होगा उतने ही अच्छे घरानेमें लड़कीका विवाह होगा। जिन लड़कियोंका सिर माता पिताकी असावधानी से गोल रह जाता है उनका विवाह नहीं होता।

आधुनिक दिनचर्या

१—प्रातरुत्थान

यथा सम्भव बहुत सवेरे उठना चाहिये, परन्तु सबके लिए एक ही नियम नहीं हो सकता; जैसे बहुत से छात्रावासके निरीक्षक गण अपनी सुगमताके लिए छोटे बड़े सब ब्रह्मचारियोंको जाड़ोंमें भी प्रातःकाल एक ही बार जागनेकी घंटी लगा देते हैं। व्यक्ति विशेषके लिए भी नींदके समयमें कमी वेशीकी जरूरत होती है, यथाः—बाल्यावस्थामें ६-१० घंटे की नींद, प्रौढावस्थामें ८ घण्टे और वृद्धावस्थामें ६—७ घंटे भी पर्याप्त होता है। अतएव यह बात जरूरी है कि देर तक रातको न जागे। प्रातरुत्थानका लाभ स्पष्ट ही है कि सारे दिन शरीर फुर्तीला रहता है। इसके अतिरिक्त यदि कतर कर देखा जाय, तो १ घंटा प्रतिदिन निद्रा कम करनेसे

वर्ष भरमें करीब ३६० घंटे अथवा ३० "कार्य-दिवस" बढ़ जाते हैं, और इस हिसाबसे सारे जीवनमें ४—५ "कार्य-वर्ष" अधिक मिल जाते हैं। क्या यह लाभ कम है ?

२—मुख प्रक्षालन

उठते ही मुंह धोना तथा मंजन करना चाहिये। इसके लिए ब्रुषके मुकाबले दांतन बहुत स्वास्थ्य कर है। इसके साथ ही यदि किसी मञ्जनका भी व्यवहार किया जाय तो और भी अच्छा हो। मञ्जनका सबसे सस्ता नुसखा निम्न लिखित है:—

बहेड़ेकी छाल	६ भाग
सेंधा नमक	२ "
सोंठ वा काली मिर्च	२ "

इन सबको कूट छानकर रख छोड़ें। यह न केवल दांतोंको साफ़ करनेवाला ही है, बल्कि ग्राहि (संकोचक), लाला निस्सारक तथा मुखरोग नाशक भी है। बदहज़मी आदिमें ३ माशेकी मात्रामें सेवन करनेसे उपकारी और निर्दोष औषध है।

३—शौचादि

सवेरे ही शौचादिसे निबट जाना चाहिये। कारण कि यही इसका प्राकृतिक समय है। परन्तु देरतक बिस्तरमें पड़े रहनेसे प्राकृतिक वेग घट जाता है, जिसके लिए किसी उत्तेजककी आवश्यकता होती है। सबसे अच्छा उत्तेजक शीतल जल है। परन्तु किसी किसीके लिए उष्णपानीय (चाय आदि) की भी आवश्यकता होती है। प्रौढ अवस्था के लोगोंको धूम्रपान (तमाखू) भी सहायता करता है। परन्तु तमाखू एक विष है और ऐसी विषैली चीज वा अन्य ओषधियोंका केवल कोष्ठ बद्धताके लिए सेवन करना अनुचित मालूम होता है। केवल "आपद्-धर्म" के नाते निम्न लिखित चीजोंका व्यवहार कर सकते हैं:—

(१) लिक्विड् पैराफिन् वा अरंडीका तेल ४—६ माशे रातको दूधके साथ।

(२) सनाय	२ भाग
मुलेठी	२ "
सौंफ	१ "
शोधित गन्धक (सल्फर सब्लिमेट्)	१ "
बूरा	६ "

इन सबको मिला, चूर्ण बनाकर रखलें। इसकी मात्रा ४ से ८ माशे तक है। यह स्वादिष्ट सारक चूर्ण है और दूध वा जलमें मिलाकर रातको सेवन करने से सवेरे १ वा २ वार पाखाना खुलके हो जाता है। बवासीरवालोंके लिए यह विशेष लाभ दायक है।

शौचादिके लिए कई संस्थायें बालकोंको शीत कालमें भी बहुत ठंडकके समय जंगलमें भेज देती हैं; यह ठीक नहीं। इसके लिए एक निर्दिष्ट स्थान होना चाहिये, जो वायु, वृष्टि आदिसे बचा हो और यदि आधुनिक पाखाने आदिका बन्दोबस्त न हो, तो जंगलके एक प्रान्तमें फौजी कायदेके मुताबिक एक एक हाथ गहरी नालियां खुदवा दी जांय; जिसमें बैठनेके बाद थोड़ी सी सूखी मिट्टीसे मैला ढांक दिया जाय। जहां तहां मैदानमें बैठजाना न केवल असभ्यताका परिचय देता है, बल्कि इसके द्वारा रोग भी फैलते हैं, जैसे कि हरिद्वार आदिमें।

शौच पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये। इसके लिए साधारणतः एक लुटिया पानी पर्याप्त नहीं होता। लेखक इस कायदेको जियादा पसन्द करता है कि पहिले पुराना कपड़ा, कागज, पत्ता आदिका व्यवहार किया जाय; उसके बाद शरीरको जलसे धो लिया जाय; फिर इसके बाद हाथको मिट्टीसे धोनेके अनन्तर साबुनसे भी धोया जाय।

शौचके बाद ही उसी हाथसे लुटियाको मांजना और फिर मिट्टी लगे हुए वर्त्तनको कुंएमें डाल देना इतना हानिकर है कि इसके विरुद्ध कौन्सिलों में कानून पास कराना चाहिये। विसूचिका (हैजा); प्रवाहिका (पेचिश); आन्त्रिकज्वर (टाइफ़ौइड्) आदि के जीवाणु आराम होनेके बाद भी अनेक काल तक

मलके साथ निकलते रहते हैं, जो ऐसी लुटियाके ज़रिये कुओंके जलमें सम्मिलित होकर महामारी (Epidemic) फैला सकते हैं। लोटेके विषयमें एक और भी वक्तव्य है कि वह न केवल बड़ा होना चाहिये, बल्कि वह बिन चिता हुआ अन्दर बाहरसे मुरादाबादी कलईवाला होना चाहिये, जो मैला कम होता है और जल्दी धुल जाता है।

४—स्नान

इसको भी प्रातःकृत्य शौचके अन्तर्गत समझना चाहिये, पर शीतकालमें दुर्बल मनुष्योंके लिए रोज़ नहाना आवश्यक नहीं है। ताज़ा पानीसे नहाना ही अच्छा है; पर शिशु, दुर्बल तथा वृद्धोंको ईष-दुष्ण जलका व्यवहार करना चाहिये। नहानेसे पूर्व यदि सारे शरीर पर अच्छी तरहसे तेल मल लिया जाय, तो जलकी शीतलता नुकसान नहीं करती और खुद तेल मलनेमें कुछ अँगचालन (कसरत) भी हो जाता है। मलनेके लिए तेलोंमें ताज़ा खोपरे का तेल अच्छा है, कारण यह तिल्लीके तेलकी तरह चिकटता नहीं और सरसोंके तेलकी तरह दुर्गन्धित भी नहीं होता। यह तेल बालोंके लिए भी लाभ दायक है। आजकलके सुगन्धित "मिट्टी-के-तेल"; जो शिर पर लगाये जाते हैं, खोपरे आदिकी तरह गुणकारी नहीं होते। तेल नहानेसे पहिले ही मलना चाहिये न कि पीछे। नहाते समय फालतू तेलको साबुनसे धोकर उतार देना चाहिये, नहिं तो चमड़ेपर पीछे धूल जम जाती है। साबुन अधिक खारवाले न होना चाहिये, नहीं तो त्वचा और बालोंको नुकसान करता है। सस्ते साबुनोंमें लेखक "लाइफब्वोय" (Life buoy) को बहुत अच्छा समझता है, और उसका २५ वर्षसे व्यवहार कर रहा है।

५—प्रातराश

यदि सुबह ही उठना हो तो शामका भोजन ६—७ बजे तक समाप्त कर लेना चाहिये। अतएव ऐसी दशामें प्रातःकाल कुछ लघु भोजनकी आवश्यकता होती है। इसके लिए हमारे नवसभ्य चाय, बिस्कुट तथा अण्डा आदि खाते हैं, जो अधिक खर्चीला और आचार विरुद्ध भी है। यही कार्य अहिंसाके साथ थोड़े खर्चमें सुगमतासे हो सकता है, जैसे बिस्कुटके स्थानमें चने और मुरमुरेका घीमें सेक कर और चायके स्थानमें निम्नलिखित पानीयका व्यवहार किया जा सकता है। फी गिलास छुहारा १ दाना, दालचीनी ४ रत्ती, कूटकर पर्याप्त पानीके साथ उबाल लें और छान कर दूध व बूरा मिलाकर व्यवहार करें। यह पानीय स्वादिष्ट और पौष्टिक है, पर चायकी तरह हानिकारक नहीं है। एक और अच्छा पानीय कोको है, जिससे दूधमें एक विशेष स्वाद पैदा हो जाता है, पर वह चायकी तरह उत्तेजक नहीं है। अण्डे आदिके स्थानमें, जिनका चायके साथ व्यवहार होता है, बादाम आदि मेवे खा सकते हैं; जो अण्डेसे अधिक पौष्टिक तथा विशुद्ध होनेके अतिरिक्त अण्डेसे सस्ते भी हैं। गर्मी और बर्सातमें गरम पानीयके स्थानमें शीतल जल वा शर्बत आदि का व्यवहार किया जा सकता है। परन्तु शर्बतका अधिक सेवन अच्छा नहीं। खानेके साथ बहुत सा बरफका जल सेवन करना पाचनशक्तिको घटाता है।

६—भोजन

आजकल अधिकतर लोग ९—१० बजे ही भोजन कर लेते हैं। इसलिए "प्रातराश" अतिलघु होना चाहिये। दो भोजनोंके बीचमें कमसे कम ३—४ घण्टेका अन्तर होना चाहिये। भोजनके समय मन शान्त और निश्चिन्त होना चाहिये और भोजन स्वच्छन्दतासे धीरे धीरे खूब चबाकर प्रियजनोंके साथ वार्तालाप करते हुए करना ही अच्छा है। यमदूत स्वरूप स्कूल वा ऑफिसके मास्टरकी मूर्तिका मनन करते हुए, ज्यों त्यों करके गस्सोंको निगल कर भोजनके बाद ही कार्य क्षेत्रमें दौड़ पड़ना स्वास्थ्यके लिए अत्यन्त हानिकर है। अतएव लेखकके मतमें ऐसे लोगोंके लिए "प्रातराश" के बदले प्रथम भोजन स्नानानन्तर

८—६ बजेके अन्दर ही कर लेना उचित है। तीसरे पहर "प्रातराश" की तरह कुछ लघु भोजन होना चाहिये और सायंकाल प्रथम भोजनसे भी सारवान भोजन होना चाहिये; जिसमें रोटीके स्थान-में पूरी पराठे आदि गुरुपाक रखे जा सकते हैं।

७—व्यायाम

व्यायाम भी दिनचर्याका एक आवश्यक विषय है। सुबह शाम एक एक घण्टा खुली हवा-में टहलना वा सायंकाल घंटाभर टेनिस आदि खेलना साधारण मनुष्योंके लिए पर्याप्त है। टह-लनेका समय मुख प्रक्षालनादि तथा प्रातराशके अनन्तर सबसे अच्छा है; कारण इस समय जिन्हें सारे दिन और और कामोंके कारण फुर्सत न मिलती हो वह भी स्वच्छन्दतासे टहल सकते हैं। इससे न सिर्फ शरीर ही दृढ होता है, बल्कि मस्तिष्ककी भी उन्नति होती है। स्वच्छ वायु सेवनसे शारीरिक धातुओंकी शुद्धि होती है, पर याद रखना चाहिये कि वायु नासिकासे लिया जाय न कि मुखसे, कारण मुखसे सांस लेना अत्यन्त हानिकर है।

—वी. के. मित्र।

बेतारके चमत्कार

एक दिन शामको न्यूयार्कसे बेतार द्वारा संसार भरसे प्रश्न किया गया—"मौसम कैसा है"। ४५ सेकण्डमें ही लन्दनसे जवाब आया—"धीमी धीमी वर्षा हो रही है"। इसके दस मिनट बाद नौरवेसे जवाब आया—"अच्छा है, पर अब हो रहा है।" फिर फ्रांसका उत्तर आया—"अति रमणीक"। जर्मनीका जवाब २ मिनट ४० सैकण्ड-में आया, "बुरा, ठंडा; शुभेच्छा"। उसी दिन हार्ट-फोर्डसे हवायीको एक पैगाम भेजा गया और ४ मिनट १८ सैकण्डमें जवाब आगया, दोनों स्थानों में ५२०० मीलका अन्तर है।

रबरकी सड़क

सड़कोंपर डामर फैला देनेसे सड़क बहुत दिन तक काम देती है, परन्तु सड़कों पर रबर फैला देनेसे सड़कोंकी आयु और भी बढ़ जाती है। लंका द्वीपमें यह प्रयोग किये जा रहे हैं। छिलका और खराब रबरको कूटकर गरम करते हैं और सड़क पर फैला देते हैं। तदनन्तर कंकड़ डालकर बेलन फेर देते हैं।

घास घातक वायु

अफ्रीकाके मध्य भागसे अतलांतिक महासागर की ओरको दिसम्बर, जनवरी और फरवरीमें गरम हवा चला करती है। इसे "हरमेटन" (harmattan) कहते हैं। जब यह हवा चलती है तो प्रायः १ घंटेमें हरी घास सूखकर जलने योग्य हो जाती है। (1926)

ऊंट

रेलके जारी होनेके पहले सबसे तेज सवारी ऊंटकी ही थी। दिन भरमें साधारणतया ऊंट १०० कोस तक चल लेते थे। साँडनी सवार हर एक रियासतमें रहते थे। यही ज़रूरतके वक्त काम आते थे।

ऊंटमें और भी बहुत से गुण हैं। ऊंटका कूब उसके खानेका भण्डार है। चरबीके इकट्ठे होने से यह बनता है; अतएव कूबकी ऊंचाईसे ऊंटके स्वास्थ्यका अंदाज़ा लगाया जा सकता है। जब ऊंटको खाना नहीं मिलता तो वह इसी कूबको काममें लाता है। धीरे धीरे चर्बी निकल कर सारे शरीरको पुष्ट करती रहती है; अतएव बहुत दिनों तक खाने बिना ऊंट गुज़र कर सकता है। इसी प्रकार बिना पानीके भी ऊंट कई दिन तक गुज़र कर सकता है। पानी भी उसके पेटमें विशेष

स्थानों पर जमा रहता है और वक्त ज़रूरतके काम आता है।

ऊंटका चमड़ा भी अद्भुत है। उसपर गरमीका बहुत कम प्रभाव पड़ा है। जाड़ेमें खालपर बाल उग आते हैं, जिससे ऊंट ठंडसे बचा रहता है।

ऊंट ही एक ऐसा जानवर है, जो काली पीली आंधीमें घंटों रह सकता है। जब बाद-सिमूम चलती है तो ऊंट अपने नथने रेतमें गाड़कर दम साध कर बैठ जाता है। प्राणायाम करनेमें वह योगियोंको भी मात कर देता है।

इसका गोश्त स्वादिष्ट होता है। ऊंटनीका दूध भी बड़ा अच्छा होता है। ऊँट सत्रह या अठारह वर्षकी उम्रमें जवान होता है और तभी लादनेके काम आता है। इसकी आयु ४० या ५० वर्षकी होती है। यह दस मन बोझ आसानीसे ले जा सकता है। जब उसपर इतना बोझ लाद दिया जाता है कि उससे नहीं चल सकता तो वह उठता ही नहीं है। बोझ लिये हुए विना दाना पानीके तीस मील प्रतिदिनके हिसाबसे यह कई दिन चल सकता है। हलका बोझ हो तो एक दिनमें ४० मील सहज ही चल सकता है। अच्छे ऊंट १०० से लेकर २०० मीलतक प्रतिदिन चल सकते हैं। इसके खिलानेमें भी कुछ व्यय नहीं होता है।

सूर्य सिद्धान्त

(गतांकसे आगे)

इन श्लोकोंमें जिन नये शब्दोंका प्रयोग हुआ है वह हैं ग्रह-शीघ्र, चन्द्रोच्च और पात। इन शब्दोंको समझनेके लिए पहले हमको अपने ऋषियोंकी उन कल्पनाओंका ज्ञान होना चाहिये जिन्हें उन्होंने ग्रहोंकी चालके सम्बन्धमें मान रखी थीं। उन्होंने पृथ्वीको अचल समझा था और सूर्य चन्द्रमा, ग्रहों और नक्षत्रोंको पृथ्वीकी परिक्रमा करते हुए समझा था। परन्तु इतनेसे ही ग्रहोंकी गतियोंका हिसाब ठीक ठीक नहीं निकलता था; इसलिए उन्होंने ग्रहशीघ्रोंकी कल्पना की थी। वह यह तो देखते ही थे कि दो ग्रह बुध और शुक्र सूर्यके आस पास ही रहते हैं; इसलिए इनका स्थान जाननेके लिए सबसे पहले यह जानना चाहिये कि सूर्य कहां है। सूर्यका स्थान जान लेने पर यह निश्चय हो जाता है कि बुध सूर्यसे या तो २८[1] अंशके लगभग आगे होगा या पीछे और शुक्र सूर्यसे या तो ४७[2] अंशके लगभग आगे होगा या पीछे। इसीलिए २९ वें श्लोकमें सूर्य बुध और शुक्रका महायुगीय भगण समान बतलाया गया है। परन्तु यह जाननेके लिए कि बुध या शुक्र सूर्यसे कितना आगे या पीछे है विना इनके शीघ्रों या शीघ्रोच्चोंके स्थानोंके जाने काम नहीं चल सकता। इनके शीघ्रोच्चोंके भगणकाल उस समयके समान हैं जितने समयमें आजकलके मतानुसार बुध या शुक्र सूर्यकी परिक्रमा करते हैं। इसलिए बुध या शुक्रके शीघ्रोच्चके भगणकालसे उस समयको समझना चाहिये जितने समयमें यह नक्षत्र चक्रकी परिक्रमा नहीं, वरन सूर्यकी परिक्रमा करते हैं। मंगल गुरु और शनिके शीघ्रोच्चोंकी बात उपर्युक्त दो ग्रहोंके शीघ्रोच्चोंसे न्यारी है। इनके शीघ्रोंका भगणकाल वही माना गया है जो सूर्यका है। इसका अर्थ यह हुआ कि मंगल, गुरु और शनिके शीघ्रोच्च वह विन्दु हैं जो १ वर्षमें पूरे नक्षत्र चक्रकी परिक्रमा कर आते हैं। किन्तु सूर्य भी १ वर्षमें नक्षत्र चक्रकी एक

१—बुधका सूर्यसे महत्तम अन्तर १६° १२′ और २८° ४८′ के बीच होता है।

२—शुक्रका सूर्यसे महत्तम अन्तर ४७° से अधिक नहीं होता।

(Outlines of Astronomy by Herschel pp 281 and 291)

परिक्रमा कर लेता है; इसलिए मंगल, गुरु और शनिके शीघ्रोच्च सूर्यके पास ही रहते हैं। इन शीघ्रोच्चोंके संबंधमें दूसरे अध्यायमें विशेष चर्चा की जायगी।

मन्दोच्च अथवा उच्च—ऊपर बतलाया गया है कि चन्द्रमाका उच्च एक महायुगमें ४,८८,२०३ भगण करता है; इसलिए एक भगणकाल सूर्य सिद्धान्तके मतसे ३२३२ सावन दिन, ५ घड़ी, ३७ पल और १'३६ विपल होता है। चन्द्रमाका उच्च चन्द्र कक्षाका वह विन्दु है जो पृथ्वीसे चन्द्र कक्षाके अन्य विन्दुओंकी अपेक्षा सबसे अधिक दूरीपर है। जब चन्द्रमा इस विन्दुपर रहता है तब बहुत दूर होनेके कारण आकारमें अत्यन्त छोटा देख पड़ता है और गति भी बहुत मंद होती है। चंद्रकक्षामें चन्द्रोच्चसे १८०° पर एक विन्दु ऐसा भी है जो पृथ्वीके बहुत पास है। जब चन्द्रमा इस विन्दुपर आता है तब उसकी गति सबसे तीव्र हो जाती है और बहुत पास होनेके कारण आकार भी बहुत बड़ा देख पड़ता है। चन्द्रमाकी इस विषम गतिके कारण यह सहज ही नहीं बतलाया जा सकता कि किसी समय उसका स्थान क्या होगा। ऊपर यह भी बतलाया गया है कि चन्द्रमाका भगण काल २७·३२१६७ मध्यम सावन दिनका होता है। इससे चन्द्रमाका जो स्थान निकलता है वह मध्यम स्थान कहलाता है। इस मध्यम स्थानसे चन्द्रमा कभी कुछ आगे और कभी कुछ पीछे देख पड़ता है। चन्द्रमा प्रत्यक्ष जिस स्थान पर देखा जाता है उसको स्पष्ट स्थान कहते हैं। मध्यम स्थानसे स्पष्ट स्थानका सबसे अधिक अंतर ५°२' ३०" होता है। इतने कोणकी जो ज्या (sine) होती है उसीके समान अन्तरपर पृथ्वीसे चन्द्र कक्षाका केन्द्र माना गया है और चन्द्रमा इसी केन्द्रकी परिक्रमा करता हुआ पृथ्वीके चारों ओर घूमता हुआ देख पड़ता है। चित्र ३५ में प पृथ्वीका केन्द्र है, च चन्द्र कक्षाका केन्द्र है और प च ५°२' ३०" की ज्या है। चन्द्रमा उ चा नी वृत्त-पर घूमता हुआ पृथ्वीकी परिक्रमा करता है। यह स्पष्ट है कि जब चन्द्रमा उ पर होता है तब वह प से अत्यन्त अधिक दूरीपर रहता है और जब नी पर रहता है तब अत्यन्त निकट रहता है। उ को चन्द्रोच्च (apogee) तथा नी को नीच (perigee) कहते हैं। यह उ विन्दु आकाशमें एक ही जगह स्थिर नहीं रहता वरन् मन्दगतिसे पूरबकी ओर बढ़ता रहता है। चन्द्रमाका उच्च १ चक्कर प्रायः ३२३२ सावन दिनमें कर लेता है। अन्य ग्रहोंके उच्च या मन्दोच्च और भी मंदगतिसे पूरब की ओर बढ़ते हैं। आजकल इस कल्पनासे काम नहीं लिया जाता। गणितसे यह सिद्ध किया है कि चन्द्रमा पृथ्वीकी और पृथ्वी तथा अन्यग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हैं और परिक्रमा करनेका मार्ग वृत्ताकार नहीं वरन् दीर्घ वृत्ताकार है। इस सम्बन्धमें कुछ कहनेके पहिले दीर्घ वृत्तके कुछ गुणोंका बतला देना आवश्यक है। उ चा नी एक दीर्घ वृत्तका चित्र है (चित्र ३६)। उ नी को दीर्घ अक्ष तथा चा ची को लघु अक्ष कहते हैं और इन दोनों अक्षों-के मिलनेके विन्दु क को दीर्घ वृत्तका केन्द्र कहते हैं। केन्द्रपर लघु अक्ष तथा दीर्घ अक्षके दो समान भाग हो जाते हैं। दीर्घ अक्ष पर केन्द्रसे समान दूरीपर न ना दो ऐसे विन्दु होते हैं जिनको यदि दीर्घ वृत्तके किसी विन्दु प, पा या पि से मिला दिया जाय तो प न + पना=पान + पाना=पिन + पिना। न, ना विन्दुओंको दीर्घवृत्तकी नाभि कहते हैं। यदि उ चा नि चन्द्र कक्षा मान लिया जाय तो पृथ्वीका स्थान न होगा। न से चन्द्र कक्षाकी दूरी उ विन्दु पर सबसे अधिक तथा नी विन्दुपर सबसे कम है; इसलिए उ विन्दु चन्द्रमा का उच्च या मन्दोच्च कहलायेगा और नी विन्दु चन्द्रमाका नीच। यदि मन्दोच्चका स्थान ज्ञात हो तो नीचका स्थान सहज ही जाना जा सकता है; क्योंकि यह सदैव उच्चसे १८०° पर रहता है।

इसी प्रकार पृथ्वी, मङ्गल, बुध, शुक्र इत्यादि भी दीर्घवृत्तमें सूर्यकी परिक्रमा करते हैं। और

सूर्य इन कक्षा वृत्तोंकी नाभि पर रहता है। उच्च स्थान पर गति बहुत मंद और नीच स्थान पर बहुत तीव्र क्यों होती है, इसका कारण आकर्षण शक्तिकी घटती बढ़ती है। जब ग्रह उच्च पर रहता है तब उसका अंतर अत्यन्त अधिक होनेके कारण आकर्षण शक्ति अत्यन्त कम होती है; जिससे ग्रहकी गति मंद पड़ जाती है और जब वह नीच पर होता है तब अंतर अत्यन्त कम होनेसे आकर्षण शक्ति अत्यन्त अधिक होती है; जिससे ग्रहकी गति बहुत तीव्र हो जाती है। इसके सम्बन्धमें कई नियम जाने गये हैं, जो केपलरके सिद्धान्तके नामसे प्रसिद्ध हैं; जिनकी चर्चा स्पष्टाधिकार नामक दूसरे अध्यायमें उचित स्थान पर की जायगी।

पात—सूर्य जिस मार्ग पर चलता हुआ १ वर्ष में आकाशका चक्कर लगाता हुआ जान पड़ता है, उसको क्रान्ति वृत्त कहते हैं। इसी तरह चन्द्रमा, जिस मार्ग पर चलता हुआ पृथ्वीकी परिक्रमा लगाता है उसको चन्द्र कक्षा कहते हैं। क्रान्ति वृत्त और चन्द्र कक्षा एक ही तल पर नहीं हैं और सामानान्तर भी नहीं हैं; इसलिए यह दोनों कक्षाएँ एक दूसरे से दो विन्दुओं पर मिलती हुई जान पड़ती हैं; जैसे दो उड़ती हुई पतंगोंकी डोरियां एक दूसरीसे बहुत दूर रहती हुई भी एक विन्दु पर मिलती हुई जान पड़ती हैं और उन पतंगोंकी गतियोंमें भिन्नता होनेसे यह विन्दु एक ही दिशामें नहीं देख पड़ता। इन्हीं विन्दुओंको चन्द्रमाके पात कहते हैं। चन्द्रमा अपनी कक्षामें चलता हुआ आधे भ्रमण काल तक क्रान्तिवृत्तके उत्तर और आधे भ्रमण काल तक क्रान्तिवृत्तके दक्खिन रहता है। जब वह अपने पात पर पहुँचता है तब या तो वह क्रान्तिवृत्तसे उत्तरकी ओर बढ़ता है और या दक्खिनकी ओर। जिस पात पर पहुंच कर वह उत्तरकी ओर जाता है उसे उत्तर पात (Ascending node) और जिस पात पर पहुंचें कर वह दक्खिनकी ओर जाता है उसे दक्खिन पात (Descending node) कहते हैं। उत्तर पातको राहु तथा दक्खिन पातको केतु भी कहते हैं। जब चन्द्रमा पूर्णमासी या अमावास्याके समय इन्हीं पातोंके पास होता है तब चन्द्र ग्रहण या सूर्य ग्रहण लगता है; इसीलिए यह कल्पना हो गयी कि राहु और केतु राक्षस हैं; जो ग्रहणके कारण होते हैं। कुछ लोग पृथ्वीकी छायाकी नोकको राहु और चन्द्रमाकी छायाकी नोकको केतु मानते हैं; परन्तु यह भ्रम है।

इन पातोंके स्थान भी स्थिर नहीं हैं; वरन् पच्छिमकी ओर खसकते हुए जान पड़ते हैं। जितने समयमें यह पच्छिमकी ओर खसकते हुए एक परिक्रमा कर लेते हैं उतने समयको इनका भगण-काल कहते हैं। इसी तरह अन्य ग्रहोंके पातोंके बारेमें समझ लेना चाहिये। यह पच्छिमकी ओर क्यों खसकते हैं, इसका कारण भौतिक ज्योतिर्विज्ञानमें (Physical Astronomy) बहुत ही सूक्ष्म गणितके द्वारा समझाया गया है, जो उचित स्थान पर इस विज्ञान भाष्यमें भी समझाया जायगा। चित्र ३७ में यदि स र सा क को सूर्यका मार्ग अर्थात् क्रान्तिवृत्त समझा जाय और च र चा क को चन्द्रकक्षा तो र और क विन्दु चन्द्रमाके पात कहलाते हैं। चन्द्रमा तीरकी दिशामें भ्रमण करता हुआ जब र पातसे आगे बढ़ता है तब क्रान्तिवृत्त से उत्तर हो जाता है और र चा क भाग तक उत्तर रहता है; इसलिए र पातको उत्तर पात कहते हैं। क विन्दु पर पहुंच कर चन्द्रमा क्रान्तिवृत्तसे दक्खिन जाता है, इसलिए क दक्खिन पात कहा जाता है। भारतीय ज्योतिषी चंद्रमाके उत्तर पातको राहु तथा दक्खिन पातको केतु कहते हैं। चा र सा कोण क्रान्तिवृत्त और चन्द्रकक्षाके तलोंके बीचका कोण है; जिसका मान ५° के लगभग है। इसी कोणको चंद्रमाका विक्षेप कहते हैं, जिसकी चर्चा इसी अध्यायके ६८वें श्लोकमें की गयी है।

यहां यह प्रश्न किया जा सकता है कि ऊपर जो भगण काल दिये हुए हैं वह कैसे जाने गये और भिन्न भिन्न मतोंमें अंतर क्यों है। इसका उत्तर भास्कराचार्य जी के मतानुसार यों है:—

सा तु तत्तद्भाषा कुशलेन तत्तद् क्षेत्र संस्थानज्ञेन श्रुत गोलेनैव श्रोतुं शक्यते, नान्येन । ग्रह मन्द शीघ्रोच्च पाताः स्व स्वमार्गेषु गच्छन्तः एतावतः पर्य्ययान् कल्पे कुर्व्वन्तीत्य-आगम एव प्रमाणम् । स चागमो महता कालेन लेखकाध्या-पकाध्येतृ दोषैर्बहुधा जातः; तदा कतमस्य प्रामाण्यम् ? अथ यद्येव मुच्यते गणितस्कन्ध उपपत्तिमानेवागमः प्रमाणम् । उपपत्त्या ये सिध्यन्ति भगणास्ते ग्राह्याः । तदपि न। यतोऽति प्राज्ञेन पुरुषेणोपपत्तिर्ज्ञातुमेव शक्यते । न तया तेषां भगणा-नामियत्ता कर्त्तुं शक्यते; पुरुषायुषोऽल्पत्वात् । उपपत्तौ तु ग्रहः प्रत्यहं यन्त्रेण वेध्यः, भगणान्तं यावत् । एवं शनैश्च-रस्य तावद्वर्षाणां त्रिंशता भगणः पूर्य्यते । मन्दोच्चानान्तुवर्ष शतैरनेकैः । अतो नायमर्थः पुरुष साध्य इति । अत एवाति प्राज्ञा गणकाः साम्प्रतोपलब्ध्यनुसारिणं प्रौढ़ गणक स्वीकृतं कमप्यागममङ्गी कृत्य ग्रहगणित आत्मनो गणितगोलयोर्निर-तिशयं कौशलं दर्शयितुं तथाऽन्यैर्भ्रान्ति ज्ञानेनान्यथोदिता-नर्थांश्च निराकर्त्तुमन्यान् ग्रन्थान् रचयन्ति । ग्रह गणित इति कर्तव्यतायामस्माभिः कौशलं दर्शनीयं भवत्वागमो योऽपि को ऽप्ययमाशयस्तेषाम् ।

अर्थ—किन्तु यह रीति केवल वही जान सकता है जिसने (ज्योतिःशास्त्रकी) विशेष भाषामें कुशलता प्राप्त की हो, नक्षत्रादिके स्थानोंको जानता हो, और जिसने भूगोल खगोलके बारेमें अच्छी तरह सुना हो । अपने अपने मार्गोंमें जाते हुए ग्रह मन्दोच्च, शीघ्रोच्च तथा पात एक कल्पमें इतने भगण करते हैं, इसका प्रमाण आगम अर्थात् परम्परागत ज्ञान ही है । किन्तु अधिक समय बीतनेके कारण लेखकों, अध्यापकों तथा पढ़नेवालोंकी भूलसे आगम अनेक हो गये हैं ! इसलिए प्रश्न होता है कि कौनसा आगम प्रमाण माना जाय । यदि ऐसा कहा जाय कि जो आगम गणितके अनुसार खरा सिद्ध हो उसीको प्रमाण मानकर जो भगण निकले वही माने जायँ तो यह भी ठीक नहीं है । क्योंकि अत्यन्त ज्ञानी पुरुष भी केवल रीतिके ही जाननेमें समर्थ हो सकता है; परन्तु रीतिसे ग्रहोंके भगणकी संख्या नहीं निकाल सकता । कारण यह है कि मनुष्यकी आयु बहुत थोड़ी होती है और उपपत्ति जाननेके लिए ग्रहको प्रतिदिन वेध करना होता है, जब तक कि भगण पूरा न हो । इस तरह शनिश्चरका एक भगण ३० वर्षोंमें पूरा होता है । मन्दोच्चोंके भगण तो अनेक शताब्दियोंमें पूरे होते हैं । इसलिए यह कार्य पुरुष साध्य नहीं है । इसलिए बुद्धिमान गणक किसी ऐसे आगमको मानकर जो उस समय ठीक समझा जाता हो और जिसको प्रतिष्ठा प्राप्त गणकने स्वीकार कर लिया हो, अपनी गणित तथा गोल सम्बन्धी ग्रहोंकी गणनाकी कुशलता दिखानेके लिए तथा भ्रमवश जो कुछ अनर्थकारी दोष आ गये हैं उनके दूर करनेके लिए, दूसरे ग्रंथ बनाते हैं । उनका यह अभिप्राय है कि हमको ग्रहोंकी ठीक गणना करनेमें कुशलता दिखानी चाहिये, आगम चाहे जो हो । सूर्य, बुध और शुक्रके भगणके सम्बन्धमें भास्कराचार्य जी कहते हैं कि कल्पमें जितने वर्ष होते हैं उतने ही सूर्यके भगण होते हैं । इसलिए सूर्यका भगण काल ही वर्ष है । बुध और शुक्र रविके पास कभी कुछ आगे और कभी कुछ पीछे सदा अनुचरकी तरह रहते हैं । इसलिए इनके भगण भी रवि भगणके समान हुए ।

सूर्यका भगण काल जाननेके लिए यह युक्ति बतलायी गयी है—

समतल भूमिमें एक वृत्त खींचकर उसमें दिशाओंके चिह्न लगा लो । जब सूर्य उत्तरायण हो तब जिस दिन वह पूर्व दिशासे कुछ ही दक्खिन होकर उदय हो उस दिन वृत्तके मध्यमें गड़ी हुई कीलके द्वारा उदय होते हुए सूर्यको वेध लो । इसके बाद एक वर्ष तक सूर्यके उदयकी गणना करनी चाहिये । एक वर्षमें ३६५ बार उदय होगा । अन्तिम उदय पहले दिनके उदय-स्थानसे कुछ दक्खिन होगा । इन दोनोंमें जो अंतर हो वह

* सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृ० १६-१७ (कलकत्तेका छपा । द्वितीय संस्करण)

लिख लो। दूसरे दिन फिर उदय होते हुए सूर्यको बेध करो। इस दिन यह पूर्व दिशासे कुछ उत्तर हो कर उदय होगा। पिछले दिनके उदय स्थानसे कितना उत्तर होकर उदय होता है इसको भी जान लो। फिर अनुपातके द्वारा यह जानलो कि जब ६० घड़ीमें इतना उत्तर बढ़ता है तब पहला अन्तर कितने समयमें हुआ होगा। इस प्रकार १५ घड़ी ३० पल २२ विपल ३० प्रति विपल और ३६५ सावन दिनमें सूर्यका उदय उसी स्थानपर होता है जिस स्थानपर वर्षके आरंभमें हुआ था। इसलिए यही समय सूर्यका भगण काल हुआ। फिर अनुपातके द्वारा यह जानलो कि जब १ वर्षमें उतने सावन दिन होते हैं तब १ कल्प वर्षोंमें कितने सावन दिन होते हैं। इत्यादि

आजकल वसंत सम्पात जाननेके लिए जो रीति काममें लायी जाती है उससे भास्कराचार्य जी की बतलायी हुई रीति बहुत कुछ मिलती है अंतर यह है कि भास्कराचार्यजीने क्षितिज वृत्तपर बेध करनेको कहा है और आजकल याम्योत्तर वृत्त पर वेध किया जाता है; जिससे लम्बन और प्रकाश-वक्रीभवनके कारण कोई भूल नहीं हो सकती और दूसरा अंतर यह पड़ता है कि आजकलके यंत्र बहुत सूक्ष्म हैं पर भास्कराचार्यकी बतलायी हुई रीतिमें कोरी आंखसे ही काम लिया गया है।

चन्द्र भगणकी उत्पत्ति भी गोलयंत्रके द्वारा जिसमें नक्षत्र चक्र, क्रान्तिवृत्त, विषुवद्वृत्त, चंद्र-कक्षा, ग्रह कक्षा इत्यादि बने रहते हैं बेध करके जानना चाहिये। इसका वर्णन बहुत विस्तारके साथ करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। यह केवल इसलिए लिखा गया है कि प्राचीन ज्योतिषी भी वेधके द्वारा ग्रन्थमें दी हुई बातोंकी परीक्षा करते थे और जो ठीक निकलता था उसीको मानते थे।

चन्द्रोच्चका भगणकाल इस प्रकार जानते थे—

प्रतिदिन गोलयंत्रके द्वारा चंद्रमाका बेध करके स्पष्ट गति निकालनी चाहिये। जिस दिन गति सबसे कम हो उस दिन मध्यम और स्पष्ट चन्द्रमाके स्थानोंमें अंतर नहीं होता। यही चंद्रमा के उच्चका स्थान है। इसी प्रकार प्रतिदिन बेध करते करते जब चन्द्रमाकी गति फिर परम अल्प हो तब उसी स्थानको उच्च समझना चाहिये। यह स्थान पहले स्थानसे कुछ आगे रहता है। कितना आगे हो जाता है यह जानकर अनुपातके द्वारा यह गणित कर लेना चाहिये कि उच्चकी दैनिक गति कितनी होती है तथा एक भगणकाल कितने दिनमें पूरा होता है।

चन्द्रपात का भगणकाल जाननेकी रीति—प्रति दिन चन्द्रमाका वेध करते हुए यह देखना चाहिये कि किस दिन चन्द्रमाका दक्षिण विक्षेप कम होते होते शून्य हो जाता है। जिस दिन या समय विक्षेप शून्य हो उस समय चन्द्रमा पात स्थान पर है। इसी प्रकार जब दूसरे चक्करमें चंद्रमाका दक्षिण विक्षेप कम होते होते शून्य हो जाय तब समझना चाहिये कि वह अपने पातपर पहुंच गया। दूसरी बार पातका स्थान पहले स्थानसे कुछ पच्छिम होता है, इसीलिए यह कहा जाता है कि पातकी गति विलोम होती है अर्थात् पच्छिमकी ओर होती है। फिर अनुपातके द्वारा जानना चाहिये कि जब इतने दिनमें पात इतना चलता है तो एक दिनमें कितना चलेगा। यही पातकी दैनिक गति समझनी चाहिये। इसी प्रकार यह भी जानना चाहिये कि एक कल्पमें कितने भगण होते हैं।

मंगल, गुरु और शनिके शीघ्रोचोंके सम्बन्धमें—जब सूर्य, शनि, गुरु या मंगलसे आगे रहता है तब ग्रह मध्यम स्थानसे कुछ आगे रहते हैं और जब सूर्य पीछे रहता है तब ग्रह मध्यम स्थानसे पीछे रहते हैं; इसलिए विद्वानोंने यह कल्पनाकी कि इन तीनोंके शीघ्रोच्च सूर्यके साथ ही रहते हैं और ग्रहोंको अपनी ओर अर्थात् सूर्यकी ओर आकर्षित करते हैं; इसलिए इनके शीघ्रोच्चोंके भगण सूर्यके समान होते हैं।

भानामष्टाचि वस्वद्रित्रिद्विद्वियष्ट शरेन्दवः।
भोदया भगणैः स्वैः स्वैरूनाः स्वस्वोदया युगे ॥१४॥

अनुवाद—१ महायुगमें नक्षत्रोंके १,५८,२२,३७,८२८ भगण होते हैं। किसी ग्रहके महायुगीय भगणको नक्षत्रके महायुगीय भगणमेंसे घटा देनेसे जो बचता है उतने ही बार एक महायुगमें वह ग्रह पूर्व क्षितिजमें उदय होता है।

विज्ञान भाष्य—१२ वें श्लोकके विज्ञान भाष्यमें नाक्षत्र अहोरात्रकी परिभाषा दी गयी है। एक नाक्षत्र अहोरात्रमें तारे पच्छिमकी ओर चलते हुए एक परिक्रमा कर लेते हैं। इसी परिक्रमाको नाक्षत्र भगण कहते हैं। इसलिए एक महायुगमें जितने नाक्षत्र भगण होते हैं उतने ही नाक्षत्र अहोरात्र होते हैं।

ऊपरके श्लोकके पिछले भागमें यह जाननेकी रीति बतलायी गयी है कि एक महायुगमें कौन ग्रह कितने बार पूर्व-क्षितिजमें उदय होता है। एक महायुगमें ग्रहके जितने भगण होते हों उसको एक महायुगके नाक्षत्र भगणकी संख्यासे घटा दो; शेष जो संख्या होगी उतने ही बार वह ग्रह एक महायुगमें पूर्व-क्षितिजमें उदय होगा। मानलो कि यह जानना है कि सूर्य पूर्व क्षितिजमें एक महायुगमें कितनी बार उदय होता है। २६ वें श्लोकमें बतलाया गया है कि सूर्य एक महायुगमें ४३,२०,००० भगण करता है। इसको यदि महायुगीय नाक्षत्र भगण १,५८,२२,३७,८२८ में से घटा दिया जाय तो शेष १,५७,७६,१७,८२८ होता है। इतने ही बार सूर्य पूर्व क्षितिजमें एक महायुगमें उदय होता है। परन्तु १२वें श्लोकके विज्ञान भाष्यमें यह बतलाया गया है कि सूर्यके एक उदयसे दूसरे उदय तकके समयको सावन दिन कहते हैं। इसलिए ३४वें श्लोकके अनुसार १ महायुगमें १,५७,७६,१७,८२८ सावन दिन होते हैं।

इसी तरह और ग्रहोंके उदयकी संख्या भी जानी जा सकती है। इसकी उपपत्ति यह है:—यदि किसी दिन सूर्य किसी तारेके साथ उदय हो तो दूसरे दिन वह तारा सूर्यसे कोई ३ मिनट ५६ सेकंड पहले उदय होता है। क्योंकि इतने समयमें सूर्य कोई एक अंश पूर्वकी ओर चला जाता है। तीसरे दिन वह तारा सूर्यसे ३ मिनट ५६ सेकंडके दूने समय अर्थात् ७ मिनट ५२ सेकंड पहले उदय होगा, चौथे दिन उसके तिगुने समय पहले और १६वें दिन उसके १५ गुने समय पहले अर्थात् ५६ मिनट अर्थात् १ मिनट कम १ घंटा पहले वह तारा उदय होगा। इस तरह पिछड़ते पिछड़ते ३६१ वें दिन अर्थात् ३६० नाक्षत्र दिन बाद वह तारा सूर्य से २४ मिनट कम २४ घंटे पहले और ३६६ नाक्षत्र दिन बाद पूरे २४ घण्टे अर्थात् १ दिन पहले उदय होगा जब कि सूर्य और वह तारा फिर साथ हो जावेंगे। इसलिए जितने समयमें नक्षत्र ३६६ भगण करता है उतने समयमें सूर्य १ बार कम उदय होता है और एक भगण पूरा करता है। इसलिए सूर्य एक भगण कालमें (१ सौर वर्षमें) ३६६ – १ बार उदय होता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहोंके उदयके बारेमें समझना चाहिये।

भवन्ति शशिनो मासाः सूर्येन्दु भगणान्तरम्।
रविमासो नितास्ते तु शेषाः स्युरधिमासकाः॥ ३५॥

अनुवाद—सूर्य और चन्द्रमाके महायुगीय भगणोंका जो अंतर होता है उतने ही चान्द्रमास एक महायुगमें होते हैं। एक महायुगमें जितने सौर मास होते हैं उनकी संख्याको महायुगीय चान्द्रमासोंकी संख्यासे घटा देने पर शेष अधिमासोंकी संख्या होती है।

विज्ञान भाष्य—जिस समय सूर्य और चन्द्रमाकी युति होती है उस समयको अमावस्या कहते हैं। इस समय चन्द्रमा और सूर्य बहुत पास होते हैं। एक अमावास्यासे दूसरी अमावास्याके तक के समयको चान्द्र मास कहते हैं। इसलिए यदि यह जानना हो कि एक महायुगमें कितने चान्द्र मास होते हैं तो पहले यह जानना चाहिये कि एक महायुगमें सूर्य और चंद्रमाकी युति कितने बार होती है। इसके लिए सूर्य और चंद्रमाके महायुगीय भगणोंका अंतर निकाल लेना पर्याप्त है; क्योंकि यह बात सहज ही जानी जा सकती है कि यदि

दो लड़के किसी गोल मैदानका चक्कर लगाने लगें और यदि एक लड़का घन्टेमें ५ चक्कर लगाता हो और दूसरा ३ तो दोनों यदि एकही स्थानसे एकही समय दौड़ना आरंभ करें तो घन्टे भरमें दोनों लड़के ५—३=२ बार एक दूसरे से मिलेंगे। इसके लिए घड़ीकी घण्टा और मिनट बतलाने वाली सुइयोंकी चालका उदाहरण बहुत उपयुक्त है। बारह बजे दोनों सुइयां एक दूसरे से मिली रहती हैं अर्थात् दोनोंकी युति रहती है। इसके बाद दोनों चक्कर लगाना आरम्भ करती हैं और १ बज कर ५$\frac{५}{११}$ मिनट पर पहले पहल मिलती हैं। दूसरी बार वे २ बज कर १०$\frac{१०}{११}$ मिनट पर, तीसरी बार ३ बज कर १६$\frac{४}{११}$ मिनट पर, चौथी बार ४ बज कर २१$\frac{९}{११}$ मिनट पर, पांचवीं बार ५ बज कर २७$\frac{३}{११}$ मिनट पर, छठवीं बार ६ बज कर ३२$\frac{८}{११}$ मिनट पर, सातवीं बार ७ बज कर ३८$\frac{२}{११}$ मिनट पर, आठवीं बार ८ बज कर ४३$\frac{७}{११}$ मिनट पर, ९ वीं बार ९ बज कर ४९$\frac{१}{११}$ मिनट पर दसवीं बार १० बज कर ५४$\frac{६}{११}$ मिनट परऔर ११ वीं बार ठीक बारह बजे मिलेंगी। इन ग्यारह युतियोंके लिए मिनट वाली सुईको १२ चक्कर और घण्टेवाली सुईका १ चक्कर लगाना पड़ा। इसलिए युतियोंकी संख्या दोनोंके चक्करोंका अंतर (१२ – १) हुई। इसी प्रकार

महायुगीय चांद्र-मासोंकी संख्या=

महायुगीय चन्द्र भगण – महायुगीय सूर्य भगण

=५,७७,५३,३३६—४३२०,०००

=५,३४,३३,३३६

अधिमास—मासोंकी गणना चान्द्रमास से और वर्षोंकी गणना सौर वर्षसे होती है। एक सौर वर्ष में १२ सौर मास तथा ३६५·२५८७५ मध्यम सावन दिन होते हैं परन्तु १२ चांद्रमास ३५४·३६७०५ मध्यम सावन दिनका होता है; इसलिए १२ चान्द्र-मासोंका वर्ष सौर वर्षसे १०·८९१७० मध्यम सावन दिन छोटा होता है; इसलिए कोई तैंतीस महीनेमें यह अंतर एक चान्द्रमासके समान हो जाता है। जिस सौर वर्षमें यह अंतर १ चांद्रमास के समान हो जाता है उस सौर वर्षमें १३ चांद्र-मास होते हैं। तब एक चान्द्रमास अधिमास या मलमासके नामसे छोड़ दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो चांद्रमासके अनुसार मनाये जाने-वाले त्यौहार पर्व इत्यादि भिन्न भिन्न ऋतुओंमें मुसलमानी त्यौहारोंकी तरह पड़ने लगें। ऊपरके श्लोकमें यह बतलाया गया है कि एक महायुगमें जितने सौरमास होते हैं उनसे चांद्रमासोंकी संख्या जितनी अधिक हो उतने ही चांद्रमास अधिमासके नामसे छोड़ दिये जायंगे। इसलिए एक महायुगमें अधिमासोंकी संख्या

=महायुगीय चांद्रमास – महा-युगीय सौर मास

=५,३४,३३,३३६ – ४३,२०,००० × १२

=१५, ९३,३३६

सावनाहानि चान्द्रेभ्यो बभ्यः प्रोज्झ्य तिथिक्षयाः ।
उदयादुदयं भानोर्भूमि सावन वासराः ॥ ३६ ॥

अनुवाद—एक महायुगमें जितनी चान्द्र तिथियां होती हैं उस संख्यामें से महायुगके सावन दिनोंकी संख्या घटाने से उन तिथियोंकी संख्या निकल आती है जो क्षय होती है अर्थात् जिनकी गणना नहीं की जाती। सूर्यके एक उदयसे दूसरे उदयके बीचके समयको भूमि सावन दिन कहते हैं।

विज्ञानभाष्य—एक चांद्रमासमें ३० तिथियाँ होती हैं। इसलिए यदि महायुगीय चांद्रमासोंकी संख्या-को ३० से गुणा कर दिया जाय तो एक महायुगमें कितनी तिथियां होती हैं यह मालूम हो जाय। यह पहले ही बतलाया गया है कि एक महायुगमें कितने सावन दिन होते हैं और एक सावन दिनमें एक ही तिथिकी गणना होती है; इसलिए सावन दिनोंकी संख्या से तिथियों की संख्या जितनी अधिक होती हैं उतनी तिथियोंकी गणना नहीं की जाती; इसलिए यह क्षय या अवम तिथियां कहलाती हैं।

इस श्लोकके उत्तरार्द्धकी व्याख्या कई बार की जा चुकी है। यहां केवल यह अधिक बतलाया गया है कि सावन दिनको भूमिसावन दिन भी कहते हैं।

वृक्षोंकी आंख

यदि बहुत से फ़ोटोके कैमरे खोलकर सामने रख दिये जांय तो देखनेवाले पुरुषको सामनेसे प्रत्येक लैंस या तालमें अपना रूप दिखाई देगा। वस्तुतः उसकी प्रतिकृति भी कैमरेके पीछेके पर्दे पर बनती हैं। लेकिन कैमरा एक जड़ पदार्थ है। वह पीछेके धुंधले शीशे पर पड़ी तसवीरका अनुभव नहीं कर सकता। मनुष्यकी आंखकी रचना भी सर्वथा कैमरेकी रचनाके समान ही है। आंखके तालसे प्रकाशकी किरणें गुज़र कर रेटिना पर पड़ कर चित्र बनाती हैं और उनको मनुष्य ज्ञान तन्तुओं द्वारा अनुभव कर लेता है। खुर्दबीनसे वृक्षके पत्तोंको भी ध्यानपूर्वक देखा गया है। उनका भी प्रत्येक सैल सर्वथा उसी समान काचके से तालों से जड़ा हुआ पाया गया है। उसमें भी वैसी ही छोटी छोटी मूर्त्तियां प्रतिबिम्बित होती पायी गयी हैं। (चित्र ३८) में अणुवीक्षण द्वारा देखा गया रहस्य स्पष्ट हो जाता है। (चित्र ३९) वृक्षकी एक आंखको काट करके दिखाया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि

चित्र ३८ चित्र ३९

वृक्षोंकी आंख

ईश्वरने पौधोंके शरीर पर भी प्रकाश ग्रहण करनेकी इन्द्रियकी रचना कैसी चतुरतासे की है। वह रचना भी सर्वथा मनुष्यकी आंखके समान ही है। इस इन्द्रियसे वह सचमुच रूप देखते हैं या नहीं यह तो अभी संदिग्ध है। परन्तु हां इस प्रकाशके ग्रहण करनेसे उनके हरित रंगकी वृद्धि और पुष्टि होती है। पूर्वीय दर्शनोंकी परिभाषासे वृक्ष शरीर पर प्रकाशको ग्रहण करनेवाले ऐसे कोष्ठोंको वृक्षोंकी आंख ही कहा जायगा, क्योंकि चक्षुकी परिभाषा यही है "तेजो ग्राहकं करणं चक्षुः।" तेज—प्रकाश—को ग्रहण करने वाला इन्द्रिय चक्षु कहाती है। वृक्ष भी तो इनसे प्रकाश ग्रहण करते हैं।

प्रेमी उक़ाब

प्रायः समझा जाता है कि उक़ाब एक निर्दयी, उदासीन और हृदय शून्य जीव है; किन्तु इतिहासमें एक बड़ी रोचक कथा मिलती है। प्लिनी ने लिखा है कि सेस्टोस (Sestos) नगरकी एक कन्या ने एक उक़ाब पाल रखा था। उक़ाब उस लड़कीसे बहुत हिला हुआ था और मार मार कर उसके लिए शिकार लाया करता था। लड़कीकी जब मृत्यु हुई और उसका शव जलाया जा रहा था, उक्त उक़ाब भी वहां पहुँच गया और जलती हुई आगमें गिर कर उसने अपनी जान देदी।

ग्रामो फोनकी वानस्पतिक सूई

औजर्क पर्वत राशिमें एक पौदा मिलता है जिसके कांटे ग्रामो फोनकी सुइयोंके स्थान पर काम आ सकते हैं। धातु-निर्मित नलियोंमें कांटोंको रखकर ग्रामो फोनमें लगा देते हैं। ३० रिकार्ड बजानेके लिए एक कांटा काफी होता है।

रिकशा गाड़ीका जन्मस्थान

रिकशा शब्द 'जिन रिकशा' का सूक्ष्म रूप है। यह शब्द जापानी है; अतएव समझा जाता है कि रिकशाका जन्मस्थान जापान है। परन्तु एक विद्वानका मत है कि पहले पहल रिकशा एक फिलेडेलफियाके पादरी ने लगभग सौ वर्ष पहले बनायी थी। यही पादरी कमान्डर पेरी (Perry) के जहाज़ी बेड़ेके साथ जब जापान गये तो इन्होंने एक रिकशा मिकाड़ोको राजकीय उद्यानमें सैर करनेके लिए नज़र की। उसीके बाद जापान, चीन, स्ट्रेट-सेटिलमेंट और भारतमें रिकशा काममें आने लगीं।

टर्कीका अर्द्ध चन्द्राकार निशान

टर्कीका अर्द्ध चन्द्राकार निशान सं० १३५६ वि० में सुलतान उसमानने पहले पहल अपने झण्डों पर लगाया था।

क्या मुलायम मोम इस्पातसे अधिक कठोर हो सकता है ?

हो सकता है। कब ? जब उसपर ऊपरसे दबाव पड़ता है। दबावका यह अद्भुत प्रभाव है; अत्याचारका यह अन्तिम परिणाम है।

जो पदार्थ साधारणतया मुलायम तथा लचीले होते हैं वह दबाव डालनेसे कठोर हो जाते हैं। नरम मोम २०००० वायु मण्डलके दबाव पर इस्पातसे कठोर हो जाता है। यदि मोमकी एक चौकोर चकतीके भीतर इस्पातका टुकड़ा जमते समय डाल दें और दबाव डालें तो मोमकी रगड़से वह विकृत हो जायगा।

रबरपर दबावका प्रभाव

बहुत दबाव पड़नेपर रबर भी रङ्ग बदल देती है। लचीली रबर दबावसे काँचके समान चटखीली हो जाती है और इस्पातसे ज्यादा कठोर।

सफेद और काला फास्फारस

पीत और रक्त दो प्रकारके फास्फोरस तो बहुत दिनोंसे मालूम हैं, किन्तु सफेद और काला फास्फोरस दबावके प्रतापसे पैदा होते हैं। सफेद फास्फोरस मध्यम तापमें ऊँचे दबावसे बनता है। दबाव हटा लेने पर वह फिर पीलेका पीला हो जाता है। ऊँचे तापक्रम और अधिक दबाव पर काला फास्फोरस बनता है। दबाव घटाने पर काला फास्फोरस बदलता नहीं है। काले फास्फोरस का घनत्व २.६९१ है, पीलेका १.८३ है। काला फास्फोरस बिजलीका सुवाहक है; सफेद लाल और पीले फास्फोरस कुवाहक हैं।

आचार्य जगदीशचन्द्र बसुके आविष्कार

१—आचार्य जगदीशचन्द्र बसु

भारतके सपूत आचार्य जगदीश चन्द्र (जे० सी०) बसुका नाम आज दिन विश्वमें विख्यात है। आपके अद्भुत आविष्कारोंका वर्णन पढ़कर और उनकी सत्यताका प्रत्यक्ष प्रमाण पाकर विद्याभिमानी पाश्चात्य पण्डित लोग आश्चर्यान्वित हैं। सौ बातकी बात यह है कि अध्यापक बसुने अपने आविष्कारों द्वारा वैज्ञानिक गवेषणाके प्रचलित स्रोत—ढर्रे—को बदल दिया है। बसु महोदयके आविष्कारोंका प्रसार इतना अधिक है और उनमें से प्रत्येकमें इतना सत्य रक्षित है कि उनका परिचय संक्षिप्त रूपमें देने पर भी आविष्कार-विवरणका आकार बहुत बढ़ जाता है। अतएव प्रस्तुत लेखमालामें बसु महोदयके स्थूल आविष्कारोंका आभास पाकर ही पाठक-पाठिकाओंको सन्तोष करना पड़ेगा।

स्वर्गीय राजा राजेन्द्रलाल मित्र और न्याय मूर्ति काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्ग महोदय आदि कुछ भारतवासियोंने पुरातत्व और गवेषणाके द्वारा यूरोपमें ख्याति यद्यपि प्राप्तकी थी किन्तु वैज्ञानिक खोज-सम्बन्धी पाश्चात्य प्रति पत्ति समूचे भारतवर्षमें एक जगदीशचन्द्रको ही प्राप्त हुई है। विज्ञानके केन्द्रस्थान फ्रान्स, इङ्गलैण्ड और अमेरिका प्रभृति देशोंके विस्मयाविष्ट विद्वत्समाजके सन्मुख उच्च आसन ग्रहण करके प्रचलित वैज्ञानिक मतों में भूलें दिखलाने और परिषदोंके किये हुए कूट तर्कोंकी चिन्धियां उड़ाने से एक जगदीशचन्द्रका ही नाम नहीं हुआ, वल्कि उक्त घटनासे सारे भारतवर्षका मस्तक उन्नत हुआ है। जगदीश्वरसे प्रार्थना है कि अध्यापक बसुका विजय-समाचार भारतमें पाश्चात्य विज्ञानकी प्रतिष्ठा होनेमें शकुन का काम करे।

सन् १८५८ ईसवीकी ३० वीं नवम्बरको ढाका के समीप एक गांवमें आचार्य जगदीशचन्द्रका जन्म हुआ था। इन्हें विज्ञानकी प्राथमिक शिक्षा कलकत्तेके सेंट जेवियर्स कालिजमें प्राप्त हुई। इस विद्यालयसे सुख्यातिके साथ बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो कर उच्च शिक्षा प्राप्त करनेको आप विलायत गये। वहाँ केम्ब्रिज विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध क्राईस्ट कालेजमें आपने सन् १८८१ ईसवी में पदार्थ विद्याका अध्ययन करना आरम्भ किया। इस समय वहां आप सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक लार्ड रैलेकी देख रेखमें, प्रसिद्ध केवेंडिश परीक्षालयमें, कई जटिल अक्षय कौशल-साध्य परीक्षाओंमें लगे रहते थे। इस सुशिक्षाका फल यह हुआ कि अध्यापक बसु यन्त्रोंकी रचना करनेमें सिद्ध हस्त हो गये हैं। इङ्गलैंड जानेके तीन वर्ष पश्चात् आप लन्दनकी बी० एस्-सी० और केम्ब्रिजकी ट्राईपस परीक्षाओंमें एक साथ उत्तीर्ण हो गये। इसके पश्चात् सन् १८८५ में आप स्वदेशमें लौट कर कलकत्तेके प्रेसीडेंसी कालेजमें अध्यापन-कार्य करने लगे।

उस समय प्रेसीडेंसी कालेजके परीक्षागारकी दशा आजकल जैसी समुन्नत न थी। उपयुक्त यन्त्र आदि न रहनेके कारण बसु महाशय तुरन्त, इच्छानुसार न तो परीक्षा आदि कर सकते थे और न अपनी पसन्दकी मौलिक गवेषणाओंमें ही हाथ लगा सकते थे। कुछ दिनोंमें, आपके ही प्रयत्नसे, वह असुविधा किसी अंशमें दूर हो गई थी। प्रेसिडेंसी कालेजका वर्तमान उन्नत परीक्षागार कई बातोंके लिए बसु महाशयके निकट कृतज्ञ है। आपने अथक परिश्रम करके, शिल्प-ज्ञानसे अपरिचित देशी कारीगरोंके हाथों, कितने ही मूल्यवान् सूक्ष्म यन्त्र कालेजके लिए बनवाये हैं।

सन् १८९५ ईसवीमें बसु महोदयने एशियाटिक सोसाइटीके भवनमें वह प्रबन्ध पढ़ा जिसमें कि उनकी मौलिक गवेषणाके फलका प्रथम विवरण था। उनकी उस प्रथम गवेषणाका विषय था, बिजली उत्पन्न करनेवाली ईथरतरङ्गोंके कम्पनका वर्तन (Refraction of Electric Rays.) उपयुक्त यन्त्र न रहनेके कारण इस कार्यमें आपको बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। अन्तमें वैद्युतिक किरणोंके वर्तन होनेके मूल कारणका आविष्कार करके आपने एक ऐसा सुन्दर यन्त्र भी बना दिया जिससे कि वर्तन दृग्गोचर हो जाय। नियोलाईट और सर्पेनटाईन प्रभृति पत्थरोंमें विद्युत्-तरङ्गोंके वर्तन करनेकी शक्ति है, इसका आविष्कार इसी समय हुआ था। इसके अनन्तर, इङ्गलैंडके प्रसिद्ध वैज्ञानिक सामयिक पत्र 'इलेक्ट्रिसियन' में आपके दो बड़े बड़े प्रबन्ध प्रकाशित हुए। इनमें वैद्युतिक रश्मि सम्बन्धी मौलिक गवेषणाका विवरण था।

विशिष्ट पदार्थके भीतर हो कर जाते समय वैद्युतिक किरणें जो मार्ग बदल देती हैं उसका निर्धारण करना (The Determination of the Indices of Refraction of various Subs tances for the Electric rays) इस समय अध्यापक बसुकी एक गवेषणाका विषय था। अभीष्ट फल प्राप्त हो

जाने पर बसु महोदयने इस आविष्कारका विवरण दिसम्बर सन् १८९५ ईसवीमें रायल सोसाइटीके एक अधिवेशनमें पढ़ कर सुनाया और अगले वर्ष जून महीनेमें, उसी सभामें, आपके द्वारा आविष्कृत तरङ्ग-परिमापक यन्त्रके सम्बन्धमें बहुत कुछ आलोचना हुई।

पाण्डित्य और मौलिक गवेषणाकी कुशलताका ख़ासा निदर्शन पाकर, इसी समय, लन्दन विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने अध्यापक बसुको डी. एस-सी. की उपाधि प्रदान कर दी। इधर भारत-सरकार भी आपकी ओरसे उदासीन न थी। आविष्कार-कार्यके सुभीतेके लिए आप सरकारी खर्चसे, सन् १८९६ ईसवीमें, इङ्गलैण्ड भेजे गये। उसी साल लिवरपुल ब्रिटिश एसोसिएशनके एक विशेष अधिवेशनमें वैज्ञानिक-मण्डलीको वैद्युतिक रश्मि-सम्बन्धी अपने कुल यन्त्र और परीक्षा आदि दिखलाकर बसु महाशयने चौंका दिया। प्रसिद्ध विद्युद्वेत्ता हार्ट्ज़ साहबको और उनके शिष्योंको जिन परीक्षाओंके दिखलानेका सुयोग नहीं मिला था उन्हीं सूक्ष्म परीक्षाओंको निःसहाय जगदीशचन्द्रने, अपने हाथसे बनाये हुए साधारण यन्त्रों द्वारा सहज ही सुसम्पन्नकर दिया था। अगले साल आचार्य बसुने वैद्युतिक रश्मियोंके सम्बन्धमें और भी दो निबन्ध रायल सोसाइटीके अधिवेशनमें पढ़े। इनपर वैज्ञानिक पण्डितोंके बीच खासी आलोचना हुई थी।

विज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाली इस यात्रामें आचार्य बसु यूरोपके प्रधान प्रधान परीक्षागारोंको भी देख आये। फ्रांस और जर्मनी प्रभृति सभी देशोंमें यहाँके प्रमुख विज्ञानियोंने आपका अभिनन्दन किया और प्रत्यक्ष आविष्कर्ताके मुंहसे तथ्योंका विशेष विवरण सुनकर सभी लोग सन्तुष्ट हुए। इसीके पश्चात् सन् १८९७ के एप्रिल महीनेमें आचार्य बसु स्वदेशको लौट आये।

यहां कालेजके अध्यापन-कार्यमें लगे रहनेपर भी आप खोजका काम किया करते थे। आपने उसी साल, नवम्बर महीनेमें "काँच और वायुकी किरण-पथ-परिवर्तन शक्ति" अर्थात् वर्तनशक्ति (Refraction) पर सार गर्भित दो प्रबन्ध रायल सोसाइटीमें भेजे और उसके थोड़े ही दिन बाद आपके और भी दो प्रबन्ध उक्त सभामें पढ़े गये। किसी ग्रन्थियुक्त पदार्थके भीतर होकर विद्युत किरणोंके जानेसे किरण-तरङ्गोंके तलमें जो परिवर्तन होता है (Rotation of Polarisation of Electric Waves by Twisted Structure) उसीकी आलोचना इनमेंसे एक निबंधमें की गई थी। पाट (सन) में गाँठ लगाकर अथवा गाँठ गठीली लकड़ी आदि लेकर अनेक प्रकारकी सहज परीक्षाओंके द्वारा बसु महाशयने अपने आविष्कृत तथ्यको भली भाँति समझाया था।

आपकी एक और गवेषणाका विषय था विद्युत् रश्मियोंके उस प्रभावको बतलाना जो कि नाना प्रकारके धातु चूर्णोंपर होता है। (Systematic Study of the cohering action of Different Metals) किसी धातु-चूर्णपर विद्युत्-रश्मि डालनेसे विद्युत्-परिचालन शक्ति एकाएक घट जाती है,—इस कार्यको अब तक विज्ञान शास्त्री लोग धातु मात्रका एक विशेष धर्म मानते आते थे। अब अध्यापक बसुने अपनी इस जाँच-पड़तालके अन्तमें प्रत्यक्ष दिखला दिया कि बहुतेरी धातुएँ ऐसी हैं जिनमें वैद्युतिक किरणें डालनेसे अधिकतर विद्युत-परिचालन-क्षमता आ जाती है। इन परीक्षाओंका फल प्रचलित विश्वासोंके विपरीत देखकर वैज्ञानिक लोगोंको विस्मित होना पड़ा।

इस आविष्कारके पश्चात् बसु महाशय यह जांच करने लगे कि पदार्थ विशेषकी विद्युत-परिचालन-शक्तिमें जो (पूर्वोक्त) घटा बढ़ी होती है, उसका कारण क्या है। इस गवेषणाके फलकी आलोचना फरवरी सन् १९०० ईसवीमें रायल सोसाइटीमें हुई थी। इस आविष्कारके द्वारा आपने प्रत्यक्ष दिखला दिया कि विद्युत्-परिचालन

धर्ममें जो परिवर्तन होता है वह असलमें पदार्थ की आणविक अवस्थाका फल है।

सन् १६०० ईसवीमें पेरिसमें एक विख्यात महा प्रदर्शिनी हुई थी। उसके अन्तर्गत जो वैज्ञानिक महासम्मेलन हुआ था उसमें सम्मिलित होनेका वसु महोदयको निमन्त्रण मिला। तब भारत-सरकारने फिर आपको यूरोपके लिए प्रस्थानित किया। फ्रांसमें उक्त विद्वान मण्डलीके बीच अपने अपने आविष्कारों पर व्याख्यान दिया था। फिर प्रदर्शिनी हो चुकने पर आप इँगलैण्ड पहुंचे। वहां ब्रैडफर्ड ब्रिटिश एसोसिएशनके एक अधिवेशनमें आपने एक निबन्ध पढ़ा, जिसमें यह प्रतिपादन किया गया था कि क्या सजीव और क्या निर्जीव, दोनों ही प्रकारके पदार्थों पर विद्युत् किरणोंका एकसा असर होता है (Similarity of Effects of Electric Stimulus on Inorganic and Living Substnces.)। इस निबन्धमें जीव विद्या और जड़विद्या सम्बन्धी अनेक अभिनव तथ्य ओत प्रोत भरे हुए थे। वसु महाशयने संवेदनात्मक लिपि अङ्कित करके इस समय स्पष्ट दिखला दिया था कि जड़ और सजीव पदार्थोंको वैद्युतिक उत्तेजनासे एक ही सा संवेदन होता है। इस समय आपने यहभी घोषित कर दिया कि पूर्वोक्त संवेदन-का कारण पदार्थमें आणविक विकार होना है। अध्यापक बसुने चतुराईसे आँखका नकली परदा बनाकर, ब्रिटिश एसोसिएशनमें उपस्थित पण्डित मण्डलीको दिखला दिया कि इस नक़ली परदे पर दृश्य और अदृश्य किरणोंका कार्य बिलकुल वैसा ही होता है जैसा कि किसी प्राणीकी आँखों पर।

इसके पश्चात् इंगलैण्डमें अवस्थान करते समय, आचार्य बसुने फ़ोटोग्राफ़ तत्वको प्रकट किया और यह भी दिखला दिया कि सजीव तथा निर्जीव पदार्थोंमें आघात या उत्तेजनाका फल विभिन्न नहीं होता। ऐसे ऐसे विचित्र कार्योंसे आपने वहाँ वैज्ञानिक जगतमें ग़जबका आन्दोलन मचा दिया था। उसका कुछ न कुछ स्मरण पाठकोंको होगा ही वैज्ञानिक समाजमें इस समय भी उन आविष्कारोंके सम्बन्धमें बहुत कुछ चर्चा हुआ करती है। लिनियन सोसाइटीके विशेष अधिवेशन में अनेक परीक्षाओंके साथ निबन्ध पढ़ कर नामी ग्रामी वैज्ञानिकोंके मनमें आपने जिस विस्मयको उत्पन्न कर दिया था वह अब तक विद्यमान है। जगद्विख्यात अंगरेज़ दार्शनिक हरबर्ट स्पेन्सर उन दिनों मृत्युशय्या पर पड़े हुए थे। उस दशामें होने पर भी वह बसु महाशयके आविष्का-रोंकी आलोचना करनेके लोभसे न बच सके। मृत्युसे कुछ दिन पहले स्पेन्सर साहबने आचार्य बसु पर प्रकट कर दिया था कि यदि मेरी तबीअत ठीक होती और शरीरमें सामर्थ्य होती, तो इन अद्भुत आविष्कारोंकी छान बीन मैं विशद रूपसे करता।

विज्ञानकी इस दूसरी चढ़ाईको समाप्त करके और अमेरिकाकी भी सैर करके जगदीशचन्द्र भारतको लौट आये। लगातार मुद्दत तक अथवा परिश्रम करने और अनेक विषयोंकी मौलिक गवेषणा पूर्ण कर चुकने पर भी आचार्य बसुकी अनुसन्धित्सा चरितार्थ नहीं हुई। वह इस समय भी अनेक विषयोंकी गवेषणा करनेमें निरत हैं।

मुद्दत तक अमेरिका और इँगलैण्डमें रहनेसे आचार्य वसुको अपने आविष्कारोंकी साधनाका ख़ासा अवसर मिला होगा, यह आरम्भमें जँचता है; किन्तु सच बात तो यह है कि उल्लिखित देशोंमें आपको सुसज्जित परीक्षागारोंके सिवा और कुछ भी सुभीता प्राप्त नहीं हुआ। वहाँ पर उन्हें कुछ दिक्क़तोंसे अवश्य सामना पड़ा। उत्तम परामर्श देना तो अलग रहा; कुछ लोगोंने भर पूर ऐसी चेष्टा की थी; जिसमें आपके आविष्कारोंका किसी को पता भी न लगे। एक विख्यात जीवतत्ववेत्ता को बसु महाशयके एक आविष्कारका विवरण, किसी तरकीबसे, मालूम हो गया; इससे उन्होंने उक्त कार्यको अपना आविष्कार बतलाना आरम्भ कर दिया था। जगतका अखण्डनीय नियम है

कि सच्चेका बोलबाला और झूठेका मुँह काला होता है,—इसीसे अनेक बाधा-विघ्नोंको पार करके बसु महाशयका मस्तक आज उन्नत है। सौम्यमूर्ति और प्रतिमाके दीप्त-वह्नि रूप आचार्य बसुके व्यक्तिगत जीवनकी बातोंका विशेष रूपसे वर्णन करनेका यह स्थान नहीं है। उनकी स्वाभाविक नम्रता, सुजनता, आडम्बर हीनता और निरभिमानिता हमको अपने पूर्व पुरुषोंके प्रकृत हिन्दुत्वका चित्र दिखला देती है* ।

२—वैद्युतिक तरङ्ग अथवा अदृश्य आलोककी प्रकृति

यदि लोहेके तारके एक टुकड़ेके दोनों छोर दो कीलोंसे इस तरह बाँधे जायँ कि तार ढीला बना रहे और फिर उसे खींचकर छोड़ दिया जाय तो वह थोड़ी देर तक दोनों ओर हिल डुल कर स्थिर हो जावेगा,—ढीले तारके कम्पनसे किसी प्रकारका शब्द नहीं उत्पन्न होता। किन्तु यदि उसे खींच कर खूब कस कर बाँधा जाय तो फिर उँगलीके इशारेसे ही तार स्पन्दित होता और मधुर ध्वनि उत्पन्न कर देता है। इसकी परीक्षा जो चाहे कोई सहज ही कर सकता है। इसका अनुभव भी सब को है। अब सोचिये कि ढीला तार क्यों आवाज़ नहीं देता और कस देने पर क्यों बजने लगता है।

विज्ञानवेत्ता लोग इसका उत्तर यों देते हैं,—किसी प्रकारका तन्तु ज्योंही हिलता-डुलता है त्योंही उसके अगल बग़लकी वायुराशि भी उस तन्तुके स्पर्शसे बिलकुल उसी प्रकार स्पन्दित होने लगती है; इसके अनन्तर उक्त वायु-राशिका कम्पन ज्योंही सुननेवालेके कानमें पहुँचता है त्योंही शब्दज्ञान उत्पन्न हो जाता है। किन्तु मनुष्यकी श्रवणेन्द्रियकी शक्ति बहुत हो सङ्कीर्ण है, इस कारण वायुके हर प्रकारके कम्पन कानोंमें पहुंचने पर भी शब्द ज्ञान नहीं उत्पन्न होता है; क्योंकि उनकी स्पन्दन संख्या प्रायः कम होती है। वह हमारे कानोंमें प्रवेश करके भी, असमर्थ श्रवणेन्द्रियको उत्तेजित नहीं कर सकते। यही कारण है कि ढीले तारका शब्द हमको कभी सुनाई ही नहीं देता। इसके सिवा हम उस उच्च सुरको भी नहीं सुन सकते जो कि वायुराशिके अत्यन्त द्रुत स्पन्दनोंसे उपजता है,—अत्यन्त ऊँचे और अत्यन्त धीमे दोनों प्रकारके शब्दोंके ग्रहण करनेमें हमारे कान असमर्थ हैं,—इन दोनों सीमाओंके भीतर जो ग्यारह 'ग्राम' के 'परदे' हैं उनसे निकले हुए शब्दोंको ही मनुष्यकी श्रवणेन्द्रिय ग्रहण कर सकती है।*

वायुके स्पन्दनसे जिस प्रकार शब्द उत्पन्न होता है उसी प्रकार ईथर या 'आकाश' नामक ब्रह्माण्डव्यापी एक अत्यन्त सूक्ष्म और स्वच्छ पदार्थके कम्पनसे प्रकाश उत्पन्न होता है। ईथरकी हिलोरें, वायुतरङ्गोंकी भाँति, दर्शनेन्द्रियमें प्रवेश करके हमें देखनेकी शक्ति देती हैं, किन्तु यहाँ पर भी श्रवणेन्द्रियकी पूर्वोल्लिखित अशक्तताकी भाँति, हमें मानवी आँखोंकी दृष्टिशक्तिकी भी एक सीमा देख पड़ती है। यह सीमा उतनी भी नहीं जितनी कि कानोंकी श्रवण-शक्तिकी है।

यह लिखा जा चुका है कि अत्यन्त ऊँचे और अत्यन्त धीमे सुरके मध्यवर्ती ग्यारह 'ग्राम' के शब्द मनुष्यकी श्रवणेन्द्रियकी पहुंचके भीतर हैं, किन्तु मनुष्यकी आँख—आकाश-कम्पनसे उत्पन्न लाल पीले आदि रङ्गोंसे युक्त—केवल एक 'ग्राम' के प्रकाशको देख सकती है। प्रति सेकेण्डमें चार सौ लाख करोड़ (४० नील) बार† ईथरका स्पन्दन

* १९१३ तथा १४ ई० में जो बसुमहोदयने दिग्विजयकी यात्रा की थी, उसका वर्णन "गुरुदेवके साथ यात्रा" नामक लेख मालामें निकल चुका है, जो पुस्तक रूपमें भी अलग छप चुकी है। सं०

* जाँच करने पर मालूम हुआ है कि प्रति सेकेण्डमें तीस बारसे कम वायुका कम्पन होने पर जो शब्द उत्पन्न होता है उसे हम नहीं सुन सकते,—सेकेण्डमें ३४८०० बारसे ऊपर स्पन्दन होनेसे उपजे हुए ऊंचे शब्दका भी हमें अनुभव नहीं होता।

† Four handred billions

होने पर, उसके द्वारा हमारी आँखोंको दृश्यमान प्राथमिक-आलोकका (लाल रङ्गका) ज्ञान होता है, इसके पश्चात् स्पन्दन संख्या और भी बढ़ने पर पीले, हरे और वायोलेट् इत्यादि आलोकका ज्ञान होना आरम्भ होता है। किन्तु स्पन्दन मात्रा धीरे धीरे जब पूर्वोक्त संख्यासे दुगुनी हो जाती है तब मनुष्यकी आँखको फिर उस स्पन्दन-सम्भूत आलोकका अनुभव नहीं होता।

स्थूल रीति पर यों कहा जा सकता है कि लाल रङ्गको पैदा करनेवाले स्पन्दनसे तो धीमे और वायोलेट् आलोकके उत्पादक कम्पनकी अपेक्षा तेज़ ईथर-कम्पन द्वारा जो जो रङ्ग या आलोक उत्पन्न होते हैं उनका दर्शन हमारी आंखोंको नहीं होता। एक 'सप्तक'-युक्त हारमोनियम मिलने पर चतुर बजाने वालेको छोटेसे बाजेके थोड़ेसे पर्दोंपर उँगलियाँ चलाकर जिस प्रकार अपनी सङ्गीत लालसा तृप्त करनी पड़ती है, उसी प्रकार हम लोगोंको भी विधाताकी इच्छासे क्षुद्र शक्ति विशिष्ट आंखोंके सहारे सिर्फ लाल इत्यादि कुछ मौलिक रङ्ग और उनके मेलसे बने हुए रङ्ग देखकर रह जाना पड़ता है।

पूर्वोक्त धीर ईथर कम्पनसे उत्पन्न आलोक हमारी आंखोंकी या किसी अन्य इन्द्रियकी पहुँचके भीतर नहीं इस कारणसे हो अथवा अन्य कारणोंसे अदृश्य आलोकका प्रकृतिगत कोई भी तथ्य अभी तक आविष्कृत नहीं हुआ, केवल इतना ही ज्ञात था कि लाल रंगके आलोक-उत्पादक ईथर-स्पन्दनकी अपेक्षा कुछ हलके स्पन्दन द्वारा ताप उत्पन्न होता है। विख्यात विज्ञानी आचार्य हर्ट्ज़ (Hertz) ने और उनके शिष्योंने उक्त इन्द्रिया-ग्राह्य धीर ईथर-स्पन्दनका नाम "वैद्युतिक तरङ्ग" रख कर उसके सम्बन्धमें अनेक गवेषणाएँ आरम्भ की थीं, और एक ऐसा उपाय भी ढंढ़ निकाला था जिससे कि वैद्युतिक प्रक्रिया द्वारा इच्छानुरूप धीर ईथर-स्पन्दन उत्पन्न किये जा सकें। किन्तु अचिन्तनीय विघ्नने बीचमें कूदकर उनके महान् आविष्कार-साधनके मार्गमें रोड़ा अटका दिया—गवेषणा अधिक अग्रसर भी न हुई थी कि हर्ट्ज़ साहबकी आकस्मिक शोचनीय मृत्यु होजानेसे सारा गुड़ मिट्टी हो गया; निश्चित रूपसे वैद्युतिक तरङ्ग उत्पन्न करना और यन्त्र द्वारा उसे इन्द्रिय गोचर करना अत्यन्त दुःसाध्य था, इसी कारण मुद्दतसे पूर्वोक्त अदृश्य आलोक या "वैद्युतिक तरङ्ग" सम्बन्धी गवेषणामें उल्लेख करने योग्य उन्नति नहीं हुई। अब कुछ वर्ष हुए, भारतके सुपुत्र प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्तेके अध्यापक डाक्टर जगदीशचन्द्र बसुने अपने हाथसे तैयार किये हुए यन्त्रकी सहायतासे, इस सम्बन्धकी कितनी ही ज्ञातव्य बातोंका पता लगाकर संसार भरको चौंका दिया है। अनेक प्रतिकूल अवस्थाओंमें पड़कर और कलकत्ते जैसे स्थानमें रहकर एक महान आविष्कार कर दिखलाना सचमुच अचरजकी बात है और इससे आविष्कर्ताके अदम्य उत्साह तथा असाधारण प्रतिभाका परिचय निस्सन्देह मिलता है।

अध्यापक बसुका यन्त्र साधारणतया तीन भागोंमें विभक्त है और इसमेंसे प्रत्येक ही उद्भावककी असाधारण सूक्ष्म दृष्टि तथा शिल्प कुशलताका चरम आदर्श है। यन्त्रके प्रथम अंश द्वारा, वैद्युतिक प्रक्रियासे पूर्वोल्लिखित इन्द्रियाग्राह्य ईथर तरंगें या वैद्युतिक तरंगें उत्पन्न होती हैं और इसके दूसरे तथा तीसरे अंशमें उक्त तरङ्गोंके अस्तित्व-परिज्ञापन एवं तत्सम्बन्धी परीक्षा आदिके प्रदर्शनको सुसम्पन्न करनेकी व्यवस्था है।

तरङ्गोंको उत्पन्न करनेवाला पहला अंश इस प्रकार चतुराईसे बनाया गया है कि मामूली दबाव डालकर यन्त्रस्थित एक 'स्प्रिंग' को ज़रा सा दबाते ही दर्शकोंके अलक्ष्यमें अदृश्य आलोककी "वैद्युतिक तरंगें" सारे परीक्षागारमें भर जाती हैं।

साधारण आलोकमें, अत्यन्त मृदु ईथर-कम्पनसे लेकर वायोलेट् रङ्गको उत्पन्न करने वाली तर-

ङ्गोंसे भी तेज़ अनेक श्रेणियोंके स्पन्दन सदा वर्तमान रहते हैं; उनमेंसे निरे अदृश्य-आलोकको उपजानेवाली धीर तरङ्गोंका निर्वाचन कर लेनेमें बड़ी कठिनाई होती है। अध्यापक बसुने यह यन्त्र बनाकर केवल अदृश्य-आलोकको उत्पन्न करनेवाली "वैद्युतिक तरंगें" उत्पादन करनेका सुन्दर उपाय कर दिया है।

इस यन्त्रके दूसरे अंशका गठन-नैपुण्य तथा कार्य और भी आश्चर्यजनक है।

पहले लिखा जा चुका है कि "दर्शनेन्द्रियकी बनावटमें कमी रहनेके कारण हम वैद्युतिक तरङ्गोंके अस्तित्वका अनुभव नहीं कर सकते,—धीर वैद्युतिक तरङ्गसे उत्पन्न आलोकके सम्बन्धमें मनुष्यकी आँखें सदासे अन्धी हैं। "वैद्युतिक तरङ्गों" के अलावा और भी कई तरहका अदृश्य आलोक है, किन्तु असीम आलोक-सागरमें निमज्जित रहने पर भी हम लोगोंकी अन्धेकी जैसी दशा है। "अध्यापक बसुने एक "नकली आँख" बनाकर उसी असीम अथच अदृष्ट पूर्व आलोक राशिको इन्द्रियकी पहुँचके भीतर कर दिया है।"

कदाचित् पाठकोंको ज्ञात होगा कि—हमारी आँखकी पुतलीके पीछे एक परदा रहता है। बाहरकी चीज़का आलोकमय चित्र उस परदे पर पतित होनेसे उसकी अवस्था तनिक परिवर्तित हो जाती है, और साथ ही साथ उक्त परदेसे व्याप्त स्नायु-जाल उत्तेजित होकर (सम्भवतः) किसी वैद्युतिक प्रक्रिया द्वारा मस्तिष्कके एक विशिष्ट अंशमें आघात किया करता है,—मस्तिष्कके एक निर्दिष्ट अंशकी इस प्रकारकी उत्तेजना हीसे हमें दृष्टि-ज्ञान होता है। अध्यापक बसुके दूसरे यन्त्रका कार्य अक्षि-तिरस्करणी (Retina) में पतित आलोक जैसा है। आँखकी पुतलीके पीछे जुड़े हुए परदेकी तरह, इसमें भी रासायनिक द्रव्य-गठित एक परदा लगा रहता है। उसमें अदृश्य आलोक उत्पन्न करनेवाली वैद्युतिक तरङ्गके पड़ते ही दो तारोंके द्वारा विद्युत् प्रवाहित होकर यन्त्रमें लगे हुए तडि द्वीक्षण (Gava nometer) यन्त्रको अन्दोलित करने लगती है। किन्तु यह आन्दोलन इतना हलका होता है कि एकाएक दर्शकको देख नहीं पड़ता। इसके लिए तडिद्वीक्षण यन्त्रमें एक छोटा सा दर्पण लगाया गया है। उसीकी बगलमें एक दिया तैयार किया रखा गया है। परीक्षा आरम्भ होनेके पहले स्थिर-दर्पणसे दिएकी आलोक-किरणें प्रतिफलित होकर सामनेकी दीवाल या परदे पर अचञ्चल अवस्थामें गिरती हैं। इसके पश्चात् परीक्षाकालीन पूर्वोक्त रीति पर तडिद्वीक्षणके साथ दर्पणको हिलाते ही, दीवाल पर डाला गया प्रतिफलित आलोक भी दर्शकोंके आगे इधर उधर सञ्चालित हुआ करता है।

विज्ञान वेत्ता लोग अब तक इन्द्रियाग्राह्य ईथर-तरङ्गकी जो कल्पना किया करते थे उसका अस्तित्व अध्यापक बसुने पूर्वोक्त रीतिसे दर्शक मात्रके लिए प्रत्यक्ष सुलभ कर दिया है।

अब यहां पर प्रश्न हो सकता है कि "इसका क्या प्रमाण है कि यन्त्रसे उत्पन्न तरङ्गें सचमुच वही धीर तरङ्गें हैं जो कि ईथर-कम्पनसे उत्पन्न अदृश्य आलोककी होती हैं। क्या यह रहस्यमयी प्रकृतिका अनन्त रहस्य भाण्डार-विच्छिन्न कोई अपरिज्ञात और अदृष्टपूर्व कार्य नहीं हो सकता?" कितनी ही परीक्षाओं द्वारा साधारण आलोक-तरङ्गके साथ वैद्युतिक स्पन्दनका सोलहों आना सादृश्य इस यन्त्रकी सहायतासे प्रमाणित हो गया है। वैद्युतिक तरङ्ग और आलोक-तरङ्गकी सदृशताका प्रमाण अगले लेखमें दिया जायगा।*

—लक्ष्मी प्रसाद पाण्डे

सोहागेसे मृत्यु

एक ६६ वर्षके बुड्ढेने भूलसे ६० ग्रेन सुहागा खा लिया। तीन घण्टेमें उसकी मृत्यु हो गई। इस घटनासे सिद्ध होता है कि सुहागा भी एक प्रकारका विष है; अतएव खाद्य पदार्थोंकी रक्षाके लिए उसका व्यवहार करना हानिकर है।

* बङ्गला पुस्तकका अनुवाद।

क्या शुक्र मंडलसे बेतारके संदेसे आरहे हैं ?

सौर मण्डलके आठ ग्रहोंमें से पृथ्वीको छोड़कर किसी अन्य पिण्डपर बुद्धिमान जीव रहते हैं या नहीं, यह प्रश्न बहुत कालसे वैज्ञानिकोंके मस्तिष्कोंको चक्करमें डाल रहा है। पहले वैज्ञानिकोंका अनुमान था कि मंगल ग्रहमें बुद्धिमान प्राणी रहते होंगे, परन्तु अब यह खयाल हो चला है कि शुक्र (Venus) में बुद्धिमान प्राणी रहते हैं, जो बेतारके पैगाम भूमण्डलको भेजते रहते हैं।

बेतारको चलानेवाले महाशय मारकोनीको पहले यह दृढ निश्चय हो गया था कि उन्होंने मंगल ग्रहसे आनेवाले बेतारके पैगामोंको जान लिया है। बेतारके यंत्रोंमें अज्ञात स्थानसे आये हुए विद्युत तरंग हलचल पैदा करते रहते थे। वैज्ञानिकोंने पहले यह सोचा था कि अनेक बेतारघरोंसे आने वाले "ओवर टोन्स" के "इन्टरफियरेन्स" के कारण यह खट खट सुनाई देती है; किन्तु मारकौनी महोदयने यह मत नहीं माना। उनका कहना था कि यह पैगाम निश्चित कालक्रमसे आते हैं और उनके तरंगान्तर हमारे यंत्रों द्वारा भेजे गये तरंगोंके तरंगान्तरोंसे दसगुने से भी अधिक हैं, अतएव मंगल ग्रह निवासी ही बेतार द्वारा यह तरंगें भूमण्डलको भेज रहे हैं।

अब सोचना यह है कि क्या मंगलके अतिरिक्त किसी अन्य पिण्डसे भी बेतारके तरंग आ सकते हैं। सबसे नज़दीक चन्द्रमा है, परन्तु चन्द्रमण्डल जलशून्य और वायुशून्य पर्वतीय बियाबान है; जहां प्राणियोंका जीता रहना असम्भव है। सूर्यका पिण्ड इतनाउत्तप्त है कि उसपर कोई प्राणी जीवित नहीं रहसकता। यूरेनस, नेपच्यून, शनि और बृहस्पति (jupiter) के पिण्ड इतने ठण्डे हैं कि वहां भी प्राणियोंका पाया जाना असम्भव है। आर्टिक प्रदेशमें एस्कीमो जातिके लोगोंको प्रकृतिसे कितना घोर युद्ध करना पड़ता है, पर एस्कीमो सूर्यसे ९३,०००,००० मीलकी दूरीपर हैं; फिर सोचिये कि जो पिण्ड ४८३,०००,००० (बृहस्पति), ८८६०००००० (शनि), १७८००००००० (यूरेनस), २७९०००००००० (नेपच्यून) मील दूर हों उनकी अवस्था क्या हो सकती है ? उपर्युक्त पिण्डोंकी मात्रा और आयतनपर विचार करनेसे यह प्रतीत होता है कि बृहस्पतिको छोड़कर किसीमें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि ताप पैदा कर सके और सूर्यसे आनेवाले तापकी कमी पूरी कर सके।

अब रहे पृथ्वीके क्रान्तिवृत्त और सूर्यके बीचके दो ग्रह बुध और शुक्र और भूक्रान्तिवृत्तके बाहरका निकटतम ग्रह मङ्गल। बुध सूर्यसे निकटतम है। उसकी दूरी ३६०००००० मील है। उसके पिण्डपर पृथ्वीकी अपेक्षा १२ गुना अधिक ताप और प्रकाश मिलता है। इस गरमीसे तथा वायुशून्य और जलशून्य होनेसे (जैसा कि उसकी परावर्तनकी शक्तिसे सिद्ध होता है) यह स्पष्ट है कि वहां जीवोंके जीनेकी गुंजाइश नहीं है। मङ्गल सूर्यसे १४०००००००० मील दूर है; पृथ्वीसे ५००००००० मील परे है; पृथ्वीके व्यासका उसका व्यास आधा ही है। अन्य बाहरी ग्रहोंसे भी उसका पिण्ड बहुत छोटा है, अतएव वह बहुत ही जल्दी ठंडा हो गया होगा। यदि पृथ्वीकी किशोरावस्था है तो मङ्गल ८० वर्षका बुड्ढा है।

मङ्गलका वायुमण्डल अत्यन्त विरल है; अतएव मङ्गल निवासियोंके फेफड़ेका आयतन बहुत बड़ा होता होगा अर्थात् वहांके निवासी दानवोंके सदृश बड़े आकारके होते होंगे। मङ्गल ग्रहमें बुद्धिमान प्राणियों द्वारा बनायी हुई नहरें सी दिखाई पड़ती हैं। यह बड़ी चतुराईसे बनाई गई हैं।

इसीलिए लोवेल महोदयने मङ्गलमें बड़े चतुर और बुद्धिमान निवासियोंकी कल्पना की थी।

परन्तु हालमें ही एबट महोदयने इस सिद्धान्तकी बड़ी कड़ी आलोचना की है। उनका कहना है कि मङ्गल ग्रहपर पृथ्वीकी अपेक्षा प्रायः आधा प्रकाश पहुंचता है, दूसरे पृथ्वीकी नाईं तापकी रक्षा करनेको-जल-वाष्प मय वायुमण्डल भी मङ्गल ग्रह पर नहीं है; इन दोनों कारणोंसे मङ्गल निवासियोंका तापक्रम –६०° फ होना चाहिये। मङ्गल ग्रहपर बादल नहीं दीखते; रही नहरें सो उनके विषयमें भी निश्चय रूपसे नहीं कहा जा सकता कि वह वस्तुतः क्या हैं; क्योंकि दूरवीक्षणकी सीमापर ही वह स्थित हैं और उनकी आकृति कल्पनानुसार बदलती है। सम्भव है कि जो हमें नहर प्रतीत होती हैं वह मङ्गलके पिण्डकी प्राकृतिक विशेषताएं हों।

अब केवल शुक्र रह जाता है। शुक्रके पिण्डको स्पष्ट देखना अत्यन्त कठिन है। उसका पिण्ड सदा पीले बादलोंसे ढका रहता है; यद्यपि कभी कभी मङ्गलके से चिन्ह भी दिखाई दे जाते हैं। पृथ्वी और शुक्रकी बनावट, भ्रमण और क्रान्तिपथोंमें इतनी समानता है कि प्रतीत होता है कि या तो पृथ्वी शुक्रकी माता है अथवा बेटी। मङ्गल पृथ्वीसे शुक्रकी अपेक्षा दुगना दूर है। शुक्र भूमण्डलसे केवल २५०००००० मील दूर है।

शुक्र और पृथ्वीका आकार प्रायः एक समान है। शुक्रका व्यास पृथ्वीके व्याससे केवल २०० मील छोटा है। शुक्रका वर्ष हमारे २२५ दिनका होता है और शुक्रका दिन २३ घंटे और २५ मिनटका उसका भार पृथ्वीके भारका चार-पंचमांश ($\frac{4}{5}$) है और उसका घनत्व पृथ्वीके बराबर। यदि कोई पृथ्वी निवासी शुक्र पर पहुँच जाय तो वह झुलस जायगा; वहां तापक्रम अधिक है, जिस कारण वहाँ पर गरम देशमें पैदा होनेवाली वनस्पति बहुतायतसे पैदा होती हैं। सम्भवतः शुक्रके कटिबन्ध पर बड़े घने जङ्गल विद्यमान हैं, जिनमें बड़े बड़े भयानक भीमकाय पशु शायद फिरते रहते हैं।

बेतार द्वारा वीनस (शुक्र) से समागम होना अधिक संभव है, क्योंकि वीनस सूर्यके वैद्युतिक (Electric field) क्षेत्रमें स्थित है। शुक्र पर विद्युत् और चुम्बकत्वकी शक्तियाँ अधिक प्रबल होंगी। जो बादल शुक्र पिण्डको घेरे हुए हैं वह संग्राहक (Condenser) का काम देते होंगे और उनकी प्रतिक्रिया शुक्र पिण्ड पर होती होगी।

वातमंडलीय शक्ति, मानसिक शक्ति और मस्तिष्ककी शक्ति शुक्र मण्डलके निवासियोंमें अधिक होगी। शायद वह विद्युत्को इस प्रकार देखते हों जैसे हम वायुको देखते हैं और उसका अनुभव करते हैं।

जिस प्रकार हमको मङ्गल ग्रह ठंडा, सूना, और भयानक हिमाच्छादित पिण्ड प्रतीत होता है, उसी प्रकार शुक्र निवासियोंको पृथ्वी भी ठंडा, नीलिमायुक्त और प्रकाशमान पिण्ड सी प्रतीत होती होगी।

बहुत दिनोंसे लोग यह समझते रहे हैं कि चन्द्रमाकी नाईं वीनस भी सदैव एक ही रुख दिखाता है, क्योंकि उसका अपनी अक्षपर घूमनेका समय क्रान्ति कालके बराबर ही है। किन्तु आज कल इस बातका विश्वास उठ चला है।

अब रही अज्ञात स्थानसे आनेवाले बेतारके संकेतोंकी बात; सो इस विषयमें यह भी कह सकते हैं कि शायद यह सौर मण्डलीय अथवा भू मण्डलीय अज्ञात घटनाओंके कारण होते हों। यह शायद केवल कोरी कल्पना ही हो कि प्रतिभावान जीवोंके भेजे हुए यह बेतारके सन्देसे हैं। परन्तु भूमण्डलसे अन्य ग्रहों तक बेतारके सन्देसे भेजना अथवा वहाँसे सन्देसे मिलना असम्भव नहीं है।

—रामानन्द त्रिपाठी, एम. ए.

नट रवे

नट आदमी होते हैं, न कि रवे। रवे तो निर्जीव होते हैं, तथापि जिमनेस्टिक करनेमें रवों से बाज़ी ले जाना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है—रौशिले साल्टके रवे इस बातमें सिद्धहस्त हैं।

जब उक्त लवणके रवे मोड़े या दबाये जाते हैं तो उनमें से विद्युत्धारा निकलने लगती है, मानों उनमें की बिजली निचुड़ आती है। इसके विपरीत जब विद्युत्धारा इन रवोंमें प्रवेश करती है तो रवे अद्भुत रीतिसे ऐंठते और मटकते हैं और अनेक प्रकारकी कुलांट खाते हैं।

पानीमें पिघलनेवाली धातु

खौलते हुए पानीका तापक्रम २१२ फा अथवा १००°श होता है। इस दर्जेकी गरमीसे या और भी कम दरजेकी गरमीसे पिघलनेवाली धातु मौजूद हैं। इनके अवयव तथा द्रवणविन्दु इस प्रकार हैं।

सीसा	रांगा	बिस्मथ	पारा	द्रवणविन्दु
२	१	४	०	२१२ फा
४	३	८	०	१८३° "
२	२	४	१	१४८° "
४	३	५	२	१२७५ "

लोहे और रुईकी प्रतिद्वंद्विता

रुईसे दो प्रकारके पदार्थ आजकल बनाये जाते हैं, जो लोहेका काम देते हैं। इनके नाम हैं फेवरोयल (Febroil) और टेक्सटोयल (Textoil)। फेवरोयल बनानेके लिए तेलसे भीगी हुई रूई खूब दबाई जाती है। दबाव प्रतिवर्ग इंचपर कई टन (१ टन=२८ मन) तकका डाला जाता है। फेवरोयल कास्ट आयरन—ढलवां लोहा—के समान कठोर और उपयोगी होता है। फेवरोयल पर वायुका और ठंडे या गरम तेलका प्रभाव नहीं पड़ता; न इसमें दीमक लगती है। यह जियर्स और पिनियन्स बनानेके काम आता है, जो तेज़ काम करने वाली मशीनोंमें काम देते हैं।

टेक्सटोयल बेकेलैट अथवा संपृक्त केनवास (किर्मिज) को दबाकर तैयार किया जाता है। इसकी सतह चमकदार होती है। इसके एक गज़ लम्बे, एक गज़ चौड़े और तीन इंच तक मोटे टुकड़े आते हैं। यह पदार्थ फेवरोयलसे तो कम मज़बूत होता है; किन्तु हल्का चलता है और अधिक टिकाऊ है। अतएव जिन कामोंमें ज्यादा मज़बूतीकी आवश्यकता नहीं होती तहां टेक्सटोयल ही काम आता है।

मनुष्य शरीरमें विद्युत् धारा

दिलकी प्रत्येक धड़कनमें $\frac{1}{1000}$ वोल्टका वैद्युतिक दबाव उंगलियोंके पोरवों पर पैदा हो जाता है। प्रतीत होता है कि व्यक्ति गत चुम्बकत्व और विद्युत् कोरी कल्पना मात्र नहीं है।

चीनकी दीवारका बनानेवाला

चीनकी जगत् विख्यात दीवार (डंडा अथवा कोट) शिन (Shin) नामी राजाने बनवायी थी। यह ईसासे लगभग २०० वर्ष पहले राज्य करता था। इसी राजाने भारत, मध्य एशिया, मेसोपोटेमिया आदि देश जानेके रास्ते खोले थे। परन्तु एक घोर अनर्थ किया था। उसने यह आज्ञा निकाली थी कि प्राचीन समयके सब कलाके नमूने और स्मारक तथा साहित्यका निशान तक मिटा दिया जाय। शिनके पहले चीनी सभ्यता किस ऊँचे दर्जे तक पहुँच चुकी थी; यह बात इसीसे स्पष्ट हो जायगी कि कनफ्यूसियसको मरे दो तीन सौ वर्ष हो चुके थे।

मक्खियोंकी कर्तव्य परायणता

कुछ प्राणी तो शीतकालमें समाधि ले जाते हैं; उनका खाना पीना, हिलना डोलना, अंगचालन आदि सब क्रियाएं रुक जाती हैं; परन्तु मधु मक्षिका ऐसा नहीं करतीं। वह तो गरमीमें परिश्रम कर जो शहद इकट्ठा कर लेती हैं उसीको खाकर जाड़ा बिताती हैं। शीत देशोंमें जब तापक्रम ५७° फासे कम हो जाता है तो मक्खियां छत्तेको छोड़ एक गुच्छक सा बना लेती हैं। गुच्छककी मक्खियां ऊपरसे नितान्त निश्चेष्ट रहती हैं; परन्तु भीतरकी मक्खियां बड़ी फुरतीली और कार्य कुशल हो जाती हैं। उनके हिलने, डोलने और पर फट फटानेसे जो गरमी पैदा होती है उसीसे अन्य ऊपरकी मक्खियां गरम रहती हैं।

जब वायुमण्डलका तापक्रम ३०° फा होता है, गुच्छकके भीतरका तापक्रम ८५° से ६५° फा तक रहता है।

गणना करनेसे पता चला है कि मज़दूर अपने शरीरके भारके अनुपातमें मनुष्यसे अधिक काम करता है।

रसायन

युत रामलाल बड़े महनती लेखक हैं। वह सदैव अपना काम बड़ी सावधानीसे मन लगाकर किया करते हैं, किन्तु आज बड़ी बेचैनीसे बार बार औफिसकी घड़ीकी तरफ़ देखते हैं। घड़ीकी छोटी सुई क्लर्कोंके हृदयको आज़ादीसे भरनेवाले ५ के अंक पर पहुंच चुकी थी, परन्तु बड़ी सुई न जाने किस जन्मका बदला चुका रही थी। रामलालजीको प्रतीत होता था कि आज इसकी चाल विशेषतः धीमी है; अन्तमें बड़ी सुई ने १२ पर पदार्पण किया ही; रामलाल भी फुर्तीसे खड़े हो गये और लेजरको वेगसे बन्द कर झपट कर औफिसके बाहर निकल आये।

आइये हम भी इनके साथ चलें और आजकी बेचैनीका कारण जान लेनेका प्रयत्न करें। प्रयागके प्रशस्त चौकसे होते हुए यह दारागंज पहुंचे और वहां एक उजड़े हुए हिस्सेमें एक मकानके दर्वाज़ेकी सांकली खट खटाई। दर्वाज़े पर एक तखती लगी हुई थी; जिसपर लिखा था "प्रोफेसर विन्दु शेखर भट्टाचार्य।" दो मिनटमें ही एक षोडशवर्षीया कन्याने आ कर दर्वाज़ा खोल दिया और रामलालका प्रेम भरी चितवनसे स्वागत कर अन्दर आनेको कहा।

विमला प्रो० भट्टाचार्यकी एक मात्र सन्तान है। जब वह ५ वर्षकी थी तभी उसकी माताका देहान्त हो गया था। प्रो० महोदय अपनी धुनमें इतने मस्त रहते थे कि उन्हें घर बाहरकी खबर न थी, इसीलिए उन्होंने अपनी (ब्राह्मो) समाजके एक छात्रावासमें विमलाके रहने और पढ़नेका प्रबन्ध कर दिया था। आपको रसायनकी धुन थी। जरा-व्याधि विनाशक रसायनकी खोजमें रातदिन व्यस्त रहते थे। जैसे तैसे उन्होंने कलकत्तेके विद्यासागर कालेजमें दस वर्ष तक और काम चलाया, किन्तु अपनी धुनके कारण आपको पद त्याग करना पड़ा। जो थोड़ा बहुत धन इकट्ठा किया था उसे ले वह अपनी कन्या सहित प्रयाग चले आये और एक निर्जन स्थानमें मकान ले रसायनकी खोजमें लग गये।

रामलाल भी ब्राह्मो हैं, इसीसे उनकी मुलाकात प्रोफेसर महोदयसे शीघ्र हो गयी और प्रायः उनके पास आने जाने लगे। विमलाको भी शनैः शनैः इनसे प्रेम हो गया और आज उसके आदेशानुसार रामलालजी विवाहके लिए भट्टाचार्यजीकी अनुमति लेने आये थे। रामलालजीको पूरा विश्वास था कि प्रोफेसर महोदयको कोई आपत्ति न होगी, क्योंकि विमला उन्हें चाहने लगी थी। विमलाकी अवस्था विवाह योग्य थी और रामलालजी भी १००) मासिक वेतन पाते थे। उधर प्रोफेसर महोदयके पास अब ५००) से अधिक नहीं बचे थे।

रामलालके मकानमें प्रवेश करने पर, विमलाने बाहरका दर्वाज़ा बन्द कर लिया और उनमें इस प्रकार वार्तालाप होने लगी।

विमला—प्यारे; हमारे रहस्यको जान कर पिताजीको बड़ा आश्चर्य होगा।

राम०—चलो; उनके पास अभी चले चलें और सब बातें स्पष्ट कह कर उनका आशीर्वाद पावें।

विमला—नहीं नहीं; अभी उनके पास जानेका उचित समय नहीं है। यदि इस समय उनके काममें बाधा डालेंगे तो वह हमारे जीवनके मार्गमें सदाके लिए बाधा डालदेंगे। वह उस सीली हुई अँधेरी कोठरीमें घुसे प्रयोग कर रहे हैं। वह दुर्गंधमय रस और ओषधियां उनका पीछा ही नहीं छोड़तीं। आओ पहले थोड़ा सा भोजन करलें और तब उनका इन्तज़ार करें। मैं दोपहरसे अबतक तीन बार उनके पास जा चुकी हूं, अन्तिम बार तो उन्होंने मुझे धक्का देकर बाहर कर दिया और भीतरसे ताला डाल दिया।

राम०—शायद आज कोई नई बात उन्होंने मालूम करली है।

विमला—"हां पिछले दिनोंके व्यवहारसे तो ऐसा ही प्रतीत होता है।" इतना कह विमला रसोईकी तरफ उन्हें ले गई और वहां आसन बिछा कर बिठाल दिया। उसने बहुत जल्द कुछ पूरियां उतारीं और दो थाली परोस कर दोनों प्रेमी खानेको बैठ गये। थोड़ासा ही खाना खाया होगा कि प्रयोगशालाकी तरफ किसीके दौड़ कर आनेकी आहट सुनाई दी। देखा तो पता चला कि वृद्ध प्रोफेसर जवानोंसे भी ज्यादा तेज़ीसे दौड़े चले आ रहे हैं। आते ही प्रोफेसर साहब बोले—

"वाह रामलालजी, खूब मौकेसे आये; तुम दोनों मेरे साथ प्रयोगशालामें आओ; देखो कि अन्तमें मैंने बना ही लिया है।"

विमला—"आइये पिताजी कुछ खा लीजिये, नहीं तो आप बीमार पड़ जायंगे। जो बन गया है वह कहीं भाग तो जायगा नहीं; आप पहले ब्यालू करलें।"

यह सुन कर भट्टाचार्यजीका कुछ उत्साह भग्न हुआ और कहने लगे—"पुत्रि, ब्यालू फिर भी कर सकते हैं, परन्तु ऐसी महत्व पूर्ण वस्तु तुम्हें बिना बतलाये मैं एक मिनट भी नहीं रह सकता। मैं रसायन बनानेमें सफल हुआ हूं।

रामलाल और विमला अनमनेसे हो उठकर भट्टाचार्यजीके साथ हो लिये। प्रयोगशालामें जाकर उन्होंने देखा कि मेजके एक कोने पर एक बूढ़ी बिल्ली सो रही है। उसी मेजके दूसरे हिस्से पर एक नलियोंका रेक रखा था, जिनमेंसे एकमें एक हरा सा द्रव भरा था।

मेज़के पास पड़ी हुई दो कुर्सियों पर विमला और रामलालको बैठाल कर भट्टाचार्यजीने हरे द्रवसे भरी नलिका हाथमें उठा ली और दिखा कर बोले; "विमला जानती है कि उसकी मांके देहान्तके बाद मैंने तन मन धन रसायनकी खोजमें लगा दिया; लोगोंने मेरा बड़ा मज़ाक उड़ाया; विद्वानों ने मिल कर प्रयत्न किया और मुझे अपना पद त्यागना पड़ा। परन्तु आज मेरा परिश्रम सफल हुआ है, जिसका सबूत इस नलिकामें है। इसका चमत्कार अभी मैं तुमको दिखला दूंगा। देखो यह लटी दूबरी बूढ़ी बिल्ली यहां सो रही है; यह केवल अस्थियोंका संग्रह मात्र दिखाई देती है; अनुमानतः यह १० वर्षकी होगी। किसी द्वन्द्व युद्धमें यह अपना एक कान और पूंछका कुछ अंश खो चुकी है; मेरी औषधका यह गुण है कि जो उसकी एक बून्द पी लेता है वह अपने को ५ वर्ष पहलेका सा स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट पाता है। यदि इस बिल्लीको २ बूंद पिला दें तो यह वैसी हो जायगी जैसी दस वर्ष पहले थी।"

रामलाल जी के मुंहसे सहसा निकल पड़ा "असम्भव।"

भट्टा०—क्यों तुमने कैसे जाना! प्रयोगशालामें खड़े होकर प्रयोग सिद्ध तथ्यके सम्बन्धमें ऐसा बल पूर्वक कहना सर्वथा अनुचित है।" रामलाल जी ने सिटपिटा कर कहा, 'मेरा आशय केवल यह है कि यह असम्भव प्रतीत होता है।

भट्टा०—"नवयुवक, यह असम्भव अवश्य प्रतीत होता है, परन्तु तुम यह भूल जाते हो कि मैंने अपना सारा जीवन विद्याध्ययन और रसायनशास्त्रके अनुशीलनमें बिताया है और तुमने क्लर्कीमें। जीवनके रहस्यों के उद्घाटनमें मेरा सब समय व्यतीत होता है, पर तुम केवल संख्याओंका जोड़ ही लगाया करते हो। मैं अभी प्रत्यक्ष प्रमाणसे अपना कथन सिद्ध कर दूंगा।" इतना कह कर प्रोफेसर महोदय ने एक गिलास दूध मंगाया और बड़ी सावधानी से दो बूंद रसायन उसमें डाली और मिलानेके बाद एक तश्तरीमें दूध डाल कर बिल्लीके सामने रख दिया।

बिल्लीको जगानेकी देर थी कि वह उसे चाटने लगी। तीनों व्यक्ति बड़ी उत्सुकतासे उसकी ओर टकटकी लगा

कर देख रहे थे। दूध पी चुकने के तीन चार मिनट बाद तक कुछ नहीं हुआ। तब तो रामलालने विमलाकी तरफ कनखियोंसे देखा और मुसकराये। परन्तु सहसा विमला चिल्ला उठी, "यह देखो इस बिल्ली को क्या हुआ।" प्रोफेसर महोदयने कहा "चुप" और ओठों पर उँगली रख कर चुप चाप परिवर्तनके निरीक्षण करनेका आदेश दिया। उनकी आंखोंके सामने एक बड़ा भारी चमत्कार हो रहा था। बिल्ली का आकार छोटा हो रहा था, कटा हुआ कान गायब हो गया और उसके स्थानपर एक नया छोटा सा कान उग आया। थोड़ी ही देरमें वह बिल्ली एक मासकी सी दिखाई पड़ने लगी। अब तो विमलासे न रहा गया; उसने झपट कर उस पूसीको गोदमें उठाकर उसका मुंह चूम लिया।

भट्टाचार्य—कहिये अब आपका क्या विचार है ?

राम०—वस्तुतः यह एक किरिश्मा है; पर क्या जाने मनुष्य पर इसका क्या प्रभाव होगा ?

भट्टा०—मैंने अभी तक परीक्षा नहीं की है, परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऐसा ही प्रभाव होगा।

राम०—पर इससे लाभ क्या होगा।

भट्टा०—यह भी मैं तुम्हें बतलानेवाला ही था। सुनो, इससे बड़ा उपकार संसारका क्या हो सकता है। मान लो कि तुम्हारी इतनी ज्यादा उम्र हो गयी है कि तुम न अपने कामके हो न दुनिया के कामके। अब तुमको अपने पक्व अनुभव से यह प्रतीत होता है कि तुमने बड़ी भारी भूलें अपने जीवनमें की हैं, यदि तुम उन्हें न करते तो तुम बड़े सुखी होते और संसार भी अधिक सुखमय होता। परन्तु अब उस पक्व अनुभवसे तुम कैसे लाभ उठा सकते हो ? बस पांच छः बून्द रसायनकी पीलो; तुम वैसे हो जाओगे जैसे ३० वर्ष पहले थे; परन्तु तुम्हारे परिपक्व विचार और प्रौढ़ मस्तिष्क तद्वत बना रहेगा; फिर तुम काम करने लगोगे और पहलेसे बहुत ज्यादा सफलता प्राप्त कर सकोगे। इस प्रकार रसायनके सेवनसे मनुष्य सदैव किशोरावस्थामें बना रहेगा; परन्तु उसका अनुभव बढ़ता जायगा, और अन्तमें देवताओंकी समान बुद्धि और विद्यामें होकर इस पृथ्वी पर स्वर्गका सुख मिलना सम्भव हो जायगा।"

इधर तो प्रोफेसर महोदय यह लेकचर झाड़ रहे थे, किन्तु उधर पूसी "म्याऊं" "म्याऊं" करती हुई इधर उधर मेज़ पर दौड़ लगा रही थी।

विमला ने पूछा—यह इतनी बेचैन क्यों है ?

प्रो०—प्रतीत होता है कि यह भूखी है।

विमला०—यह तो सम्भव नहीं जान पड़ता। अभी तो इसने आध सेर दूध उड़ाया है।

प्रो०—विमला, यह ठीक कहा। परन्तु मेरे हिसाबसे तो यह बात अब १० वर्ष पुरानी हुई।

विमला ने थोड़ासा दूध फिर प्यालेमें डाल कर उसके सामने रख दिया। पूसी उसे झट पी गयी। रामलाल जी ने अब उचित समय जान कर कहा; "प्रोफेसर साहब, आपने बड़े महत्वका आविष्कार किया है। मैं आपको बधाई देता हूं। आपके वर्षोंके अनवरत परिश्रमके सफल होने पर सारा जगत आपको शीघ्र ही बधाई देगा। मुझे आपसे कुछ आवश्यक निवेदन करना है।" इतना कह रामलालने विमला की तरफ देखा; उसने लज्जासे आंखें नीची करलीं; तब रामलाल जी ने फिर कहना आरम्भ किया, "विमला मुझे बहुत दिन से प्रेम करती है। मैं भी उसे प्राणोंसे अधिक चाहता हूं। उसकी उम्र १६ वर्ष है और मेरी २१ वर्ष। मैं आज आपसे यही प्रार्थना करने आया था कि आप हमारे विवाहकी अनुमति दे दें।"

यह सुनकर प्रोफेसर साहब चौंके; विमलाने उनके हाथसे रसायनकी नलिका लेली और रैक पर रख दी। प्रोफेसर साहब बोले—"तुम मेरी बेटीसे विवाह करना चाहते हो ? मुझे तो अभी तक यह खयाल भी नहीं आया था कि वह ब्याहने लायक हो गई है। खैर, तुम भी योग्य व्यक्ति हो, परन्तु यह तो बताओ कि तुम्हारे पास कितना रुपया है और तुम्हें अब क्या वेतन मिलता है ?"

रामलाल—लगभग दो हज़ार रुपये तो बेंकमें जमा हैं, १००) मासिक मुझे मिलता है और शीघ्र ही १५०) माहवार मिलने लगेगा।

प्रो०—अच्छा तो जब तुम्हारी वेतन वृद्धि हो जाय, मुझे बतलाना, सम्भवतः मैं इस सम्बन्धकी स्वीकृति दे दूंगा।

यह आशा जनक उत्तर पा रामलाल जी अपने घरकी तरफ लौटे और वेतन वृद्धि तथा विमलासे विवाह होनेकी दृढ़ सम्भावना पर विचार करते करते सो गये।

(२)

उपरोक्त घटनाको एक माससे अधिक हो गया है। रामलाल जी बड़ी योग्यता और परिश्रमसे अपना काम कर रहे हैं। उनके मालिक उनसे बड़े खुश हैं। आज ही उन्होंने आकर रामलालजीके वेतन बढ़ानेकी आज्ञा दी है। रामलालजीको आज फिर एक एक घड़ी युगके समान जान पड़ती है। बार बार घड़ीकी ओर उत्सुकतासे देखते हैं; पांच बजनेका इन्तज़ार कर रहे हैं। पांच बजते ही, वह अपने स्थानसे उठ घरकी तरफ चल पड़े; वहां पहुंचकर उन्होंने स्नान किया; अपनी केशराशिका केशरञ्जनसे सिंचन कर ब्रुश और कंघीका आश्रय लिया। तदनन्तर कोट पतलून पहन और हेट लगा एक गाड़ीमें जा बैठे और गाड़ी वालेको भट्टाचार्यजीके घर तक पहुंचानेका आदेश किया।

विमला सुसमाचार सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई और रामलालजीको प्रयोगशालामें अपने पिताके पास ले गयी। वहां पर धनकुबेर श्रीनलकुमार चट्टोपाध्याय पहलेसे ही विराजमान थे। प्रो० महोदयने रामलालजीका चट्टोपाध्यायजीसे परिचय कराया। चट्टोपाध्यायजीकी आयु ६० वर्षकी होगी। आपके शरीरमें मांस और रुधिरका तो लेश मात्र भी नहीं दृष्टिगोचर होता था। ऐसा मालूम होता था कि कोई भूत मरघटसे उठ कर अभी चला आया है। आपने अपना हाथ बढ़ा कर रामलाल जी से मिलाया और बोले, "मुझे आज आपसे भेंट करके बड़ा आनन्द हुआ। मैं प्रोफेसर साहबसे कई घंटोंसे बहस कर रहा हूं। मैं यह चाहता हूं कि यह मुझे थोड़ासा रसायन दे दें; परन्तु इन्हें बड़ा भय लग रहा है।"

रामलाल—भय किस बातका ?

प्रो०—रामलालजी; मेरा जी नहीं करता कि मैं किसी मनुष्यपर उसे आजमाऊं।

चट्टो०—आपकी क्या हानि होगी ?

प्रो०—सम्भव है कि आपकी मृत्यु हो जाय।

चट्टो०—यदि मैं मर भी गया तो क्या ? मेरी तो वैसे ही मरघट बाट देख रहे हैं। बहुत जिया तो वर्ष दो वर्ष, सो जीना मरना मेरे लिए समान है। यदि आपका प्रयोग असफल हुआ तो मेरी मृत्युसे किसीकी कुछ हानि नहीं। यदि सफल हुआ तो मुझे बड़ा लाभ होगा। यह देखिये, यह उस समयका चित्र है जब मैं २१ वर्षका था। यदि मैं एक बार फिर वैसाही हो जाऊं तो आपको ३०००००) दूं। मेरी कैसीउत्कट इच्छा है कि एक बार फिर जवानीकी उमंगें मेरे हृदयमें भर जायं और वैसे ही बल और जीवनका अङ्ग प्रत्यङ्गमें अनुभव हो। आप एक बार प्रयोग कीजिये, आपको ४५००००) रुपया दूंगा।"

इतनी बातें करनेकी ताकत चट्टोपाध्यायजी में कहां थी। वह हांफने लगगये और बेहोशसे हो आराम कुर्सी पर लेट गये। उनके हाथ से चित्र भी छूट कर गिर पड़ा। विमलाने चित्र उठा कर देखा और बोल उठी—"यह तो बड़ा सुन्दर चित्र है! क्या यह वास्तवमें इतने सुन्दर थे; असम्भव है।" चट्टोपाध्यायजी ने यह बात सुनी तो कहने लगे; "विमला ठीक है; जवानीमें मैं भी ऐसा ही सोचा करता था; किन्तु बुढ़ापा कैसी अजब चीज़ है। सौन्दर्यको वह कुरूपतामें परिणत कर देता है, परन्तु हमको पता भी नहीं चलता।"

विमला—पिताजी इन्हें अवश्य रसायन खिलाइये।

भट्टा०—विमला, मुझसे यह न हो सकेगा।

राम०—चट्टोपाध्यायजी; आप ज़रा सब्र कीजिये। मैं सब ठीक किये देता हूं

चट्टो०—आप मेरी सहायता कीजिये। मैं आपको भी इनाम दूंगा।

रामलाल—"प्रोफेसर बाबू; मैं आपसे एकान्तमें दो चार बात करना चाहता हूं।" यह सुन प्रोफेसर महोदय रामलालके साथ बाहर चले गये। रामलाल बोले—"महाशय, आज मेरे वेतनमें वृद्धि हो गयी है। मैं आपको प्रतिज्ञाका स्मरण दिलानेके लिए आया था, परन्तु यहां दूसरा मामला ही छिड़ गया, यह भी अच्छा ही हुआ। आप मुझे ४५००००) रु० में इतनी रसायन देदें कि चट्टोपाध्यायजी उसके सेवनसे युवा हो जायं। आप मुझे नियमानुसार रसीद देंगे। जितने रुपयेमें चाहूंगा उक्त द्रव चट्टोपाध्यायजीके हाथ बेच दूंगा। ऐसा करनेसे आपका उत्तरदायित्व कुछ न रहेगा।"

भट्टाचार्य—"बात तो ठीक है, किन्तु मुझे जीवन भर इस बातका पश्चात्ताप रहेगा कि मुझे अपने आविष्कार पर स्वयम् विश्वास न था। खैर चलो; यह बात मैं चट्टोपाध्यायजीसे कह दूं।" इतना कह भट्टाचार्यजी फिर प्रयोगशालामें चले गये और चट्टोपाध्यायको सब बातें बतला दीं।

चट्टो०—धन्यवाद, अबतो मुझे कुछ आशा हो गयी।

राम०—महाशय; प्रयोग करनेका उत्तरदायित्व अब मेरे ऊपर है; किन्तु मेरी शर्तें सुन लीजिये। आपको ६०००००) का चेक अभी लिख देना होगा। और यह भी एक कागज पर लिख देना होगा कि आपके साथ कोई धोखे या दगाबाज़ी का काम नहीं किया गया है।

चट्टो०—मुझे स्वीकार है। दवात कलम लाइये; अभी चेक, और चिट्ठी लिख दूं।

बेंकके नाम चेक और अपने उत्तराधिकारियोंके नाम चिट्ठी लिख चुकनेके बाद चट्टोपाध्याय जी बोले—"अब क्या विलम्ब है। लाइये दवा पिलाइये।" प्रोफेसर साहबने एक गिलासमें पानी भरा और उसमें १५ बून्द रसायनकी डाल दीं; रामलालजीने आबखोरा लेकर चट्टोपाध्याय जीको दे दिया। उन्होंने भी दो घूंटमें ही उसे खाली कर दिया। दो मिनट बाद उनमें अद्भुत परिवर्तन होने लगा। कमर सीधी होने लगी; खालकी झुर्रियां मिटने लगीं; मांस भी बढ़ने लगा; आंखोंमें ज्योति आने लगी और पट्ठोंमें शक्ति। ५ मिनटमें ही चट्टोपाध्यायजी वैसे ही दीखने लगे जैसे कि ७० वर्ष पहले थे। (असमाप्त)

—गंगाप्रसाद, बी०-एस-सी०

बन्दर-सर्राफ़

सियाम देशमें सर्राफ़ोंका काम बन्दरोंसे लिया जाता है। बन्दर रुपयेके खरे खोटेकी पहचान करता है। सियामी लोग बन्दर पालनेके बड़े शौकीन हैं। बन्दर आदमीके सहवाससे बड़ा बुद्धिमान हो जाता है। वह सचमुच बड़ा कौतुकजनक कार्य करने लगता है; जिनमें रुपयेको परख करना बड़ा ही विस्मयजनक है। प्रायः हरेक दुकान पर वहां एक बन्दर अवश्य रखा जाता है, वह दुकानदारके पास ही बैठा रहता है। हरेक सिक्का बन्दरके हाथमें रख दिया जाता है। वह उसकी परख दांतोंमें रख कर करता है। खरे रुपयेको बन्दर कैश-पेटीमें डाल देता है; खोटेको बाहर पटक देता है और घृणा सूचक चड़ चड़की आवाज़ करता है। वह कभी इस परीक्षामें ग़लती नहीं करता। कितनी ही जालसाज़ी करके क्यों न रुपया घड़ा गया हो खोटेको वह तुरंत पकड़ लेता है। बन्दरकी इस परीक्षाका रहस्य अभी तक किसी यूरोपियनको मालूम नहीं हुआ। वहांके देशवासी बन्दर साधनेका रहस्य किसीको नहीं बताते।

पक्षियोंकी विजय

मनुष्योंकी ईजाद की हुई कोई भी मशीन क़ुदरती उड़नेकी मशीनोंका मुकाबला नहीं कर सकती। चील, गीध, समुद्री बगुला, अबाबील, उकाब बाज़ आदि पक्षी वस्तुतः उनके यन्त्रोंसे अच्छे हैं। उनके उड़नेमें उनको कुछ भी श्रम नहीं होता है; अनायास उनकी आकाशमें गति होती है। पंखोंको मारकर जब यह पक्षी अपनी देह पर लगे परोंमें खूब हवा भर लेते हैं तो यह स्वभावतः ऊपर और आगेको बढ़ते हैं। बहुत ऊंचे पहुँच कर वह बिना किसी विशेष प्रयत्नके कितना ही रास्ता योंही, फिसल कर तय कर लेते हैं। उतरते समय यह सीधे नीचे उतर सकते हैं और अपने पंखों और पैरोंसे ऐसा कर लेते हैं मानों मार्गमें साधनेकी रोक लगा ली हो। झपटती चीलें, किस सफाईसे उतरती हैं और फिर किस सफ़ाईसे ऊपर चढ़ जाती हैं।

भूमि पर उतरते समय कैसे यह अपने पंखोंको फैला कर अपनेको साधते हैं और जिस स्थान पर चाहते हैं पैर जमा लेते हैं।

सेवका सहोदर प्याज़

आलु, सेव और प्याज़की गन्ध निकाल दें तो तीनोंकी मधुरता समान हो जाय। डा. जे. ए. हैडफ़ीलडने "भोजन—मनो विज्ञान" पर व्याख्यान देते हुए यह बात सिद्ध की थी। आपके विचारमें स्वादका भेद उनकी गन्धके कारण

है। इस बातकी पुष्टिमें आपने एक विशेष बात और कही कि वास्तवमें क्लोरोफार्मको हम सूंघते नहीं बल्कि उसका स्वाद लेते हैं। फलतः गन्ध और स्वादमें बड़ा भारी सम्बन्ध है।

दरवाजेकी घड़ी

घड़ीको चाबी देनेके कष्टसे बचनेका यह एक अच्छा उपाय निकाला गया है। ऐसी घड़ी बनायी गयी है, जिसमें चाबी आपसे आप लग जाया करे। हैम्बर्गकी एक कम्पनीने ऐसी घड़ी निकाली है। घड़ीको दरवाजे पर लटका कर उसकी चाबीका सम्बन्ध किवाड़ोंसे कर दिया गया है। जब किवाड़ खुलते और बन्द होते हैं तो तारसे जुड़ा एक छोटा सा लिवर बार बार हिलता है, जिससे घड़ीकी चाबी का पेच चलता है और घड़ीमें चाबी लग जाती है। घड़ीमें ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि आवश्यकतासे अधिक चाबी न लग सके। यदि दिन भरमें ३ बार भी किवाड़ खुलें और बन्द हों तो घड़ीमें एक दिनके चलनेके निमित्त पर्याप्त चाबी लग जाती है। यह ऐसा प्रबन्ध है कि सैकड़ों बरसों तक घड़ी बिना हाथ लगाये चल सकती है।

कांचकी घड़ी

एक बोहेमियाके कांच पालिश करनेवालेने बड़े कड़े परिश्रमसे एक अद्भुत वस्तु बनाई है। उसने एक ऐसी घड़ी बनाई है, जिसमें स्प्रिंगको छोड़कर शेष सब कांचके भाग हैं। इसमें सब कल पुर्जे भी शीसेके पेचोंसे जोड़कर बनाये गये हैं। ऊपरका मुख, कुंजियां आदि सब कांचकी बनी हैं। कांचकी कीलें और फांसे लगाकर पुर्जोंको कसा गया है। जैसे पीतलके पुर्जे ठीक अनुमापमें होते हैं उसी प्रकार कांचके पुर्जे भी बनाये गये हैं। अन्दरके चक्करोंके दनदाने भी बड़ी ही सफ़ाईसे ठीक एक दूसरेमें बैठनेवाले बनाये गये हैं। बैलें-सह्वील ही कुछ अधिक मोटा है।

इसके बहुत से पुर्जे बार बार बनाने पड़े थे। कोई कोई पुर्जा ४० बार घड़ा गया था; तब कहीं घड़ी समय बताने लगी।

झूठ सच जाननेका यंत्र
अर्थात्
रक्त दबाव मापक

[ले०—प्रो० ब्रजराज, एम. ए., बी. एस-सी., एल-एल. बी.]

सभी जानते हैं कि अदालतके फैसले सदा न्यायानुकूल नहीं होते। अधिकांश मुकद्दमोंमें झूठको सच और सचको झूठ साबित होता हुआ देखकर जनसाधारणकी यह धारणा हो गयी है कि शुद्ध न्यायके लिए और सत्यको स्थापित करनेके लिए न्यायालय उचित स्थान नहीं है। ईश्वर अवश्य ही झूठको झूठ और सचको सच जानता है और दैवी नियमके अनुसार प्रत्येक मनुष्यको अपने कर्मका ठीक ठीक फल मिलता रहता है। पर मनुष्यमें यह क्षमता नहीं कि अपने न्यायालयोंमें शुद्ध न्याय कर सके। उसमें न्याया-धीशका कोई कसूर नहीं। सचको मालूम करके निस्पृह और न्यायानुकूल फैसला देनेके लिए तत्पर जज गवाहों और वकीलोंके हाथकी कठपुतली मात्र हैं। बेचारा जज कैसे जान सकता है कि गवाह सच कह रहे हैं या झूठ।

जिस गवाहमें बेखटके झूठ बोलनेकी जितनी पुरानी आदत होती है उतनी ही आसानीसे वह जजको धोखेमें डाल सकता है। वकील अपनी जिरहसे गवाहोंको उखाड़नेका, उन्हें भुलावा देकर उल्टी सीधी कहलानेका, प्रयत्न करते हैं। सच्चा, पर सीधा सादा, मनुष्य तेज़ तर्रार वकीलके हाथमें पड़ कर ज़रूर गड़बड़ा जायगा और जज

पर तुरन्त प्रभाव पड़ेगा कि यह मनुष्य झूठा है, पर सिखाया पढ़ाया चण्ट चाइयाँ गवाह वकीलकी जिरहको सह जायगा और जजकी आँखोंमें धूल झोंक कर ताल ठोकता मूछों पर ताव देता अपनेको सच्चा क्या सच्चेका बाप और बाबा सिद्ध कर देगा। न्यायके गलेको घुटते हुए ज़माना बीत गया और बीत रहा है। क्या पूरब, क्या पच्छिम, क्या भारत क्या अमेरिका सब जगह यही हाल है—जहां मनुष्य हैं वहां बनावट है।

क्या करना चाहिये? क्या हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाना ही हमारा कर्त्तव्य है? क्या न्याय का हनन देखकर हाथ मल कर रंज कर लेना और हताश हो रहनेसे हम अपने धर्मका पालन कर चुकेंगे? कठिनाई है बड़ी भारी अवश्य, पर अकर्मण्यता मनुष्यको शोभा नहीं देती। इन्द्रके इन्द्रासन पर दांत लगा कर हमारे कितने ही पूर्वजोंने बेचारे इन्द्रके दिलको दहला दिया था। जहां कठिनाई नहीं वहांपर सफलता प्राप्त कर लेनेमें कौन तारीफ, मनुष्यका असली जौहर तो कठिनाईका सामना करनेमें ही खुलता है। इस समय पाश्चात्य सभ्यताका निरन्तर विकाश हो रहा है। यूरोप और अमेरिका निवासी निरन्तर उद्योग रत हैं। इसीलिए समस्त भूमण्डलपर उनकी तूती बोल रही है। दिन प्रति दिन वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा मनुष्यके जीवनको अधिकाधिक सुखी तथा सर्वाङ्ग पूर्ण बनानेके प्रयत्नमें हमारे अमेरिका और यूरोपके भाई सफल होते जा रहे हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने खोजके घोड़े सब ओर दौड़ा दिये हैं। न्यायकी पुकार भी उनके कानोंमें पड़ती रही, उनका उत्साही हृदय कब शान्त रह सकता था। तरकीबें सोची जाने लगीं। नए नए विधि-विधानोंकी व्यवस्था की गयी, पर मनुष्य सच बोल रहा है या झूठ यह जान लेना अधिकाधिक कठिन प्रतीत होता गया। बुद्धिके विकास से मनोभावोंको छिपाकर झूठको सच प्रदर्शित करनेकी शक्ति भी मनुष्यमें उन्नति पाती गयी। नियमोपनियम और विधि-विधानोंका जाल जैसे जैसे जटिल होता गया सत्यान्वेषण उतना ही दुरूह होता गया।

भला वैज्ञानिक मस्तिष्क ऐसी अवस्थामें कैसे शान्त और निरुद्यम रह सकता था। तरह तरहके वैज्ञानिक प्रयोग किये जाने लगे। मस्तिष्क, मन और देहका परस्पर सम्बन्ध जाँचा जाने लगा। मनोभावोंका मनुष्य देह पर कैसे और क्या प्रभाव पड़ता है। यह प्रश्न पहले ही मनोविज्ञान (psychology) शास्त्रवेत्ता गण बड़ी परिश्रमसे जाननेका प्रयत्न कर रहे थे। अब आधुनिक वैज्ञानिक रीतियोंके सहारे प्रयोग किये जाने लगे। क्या वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा मनुष्यके मनोभाव जाने जा सकते हैं? क्या मस्तिष्कके विचारों और मनके भावोंका कोई प्रभाव मनुष्य कृत किसी यंत्रपर प्रत्यक्ष और प्रदर्शित हो सकता है। चेतन विचारों और जड़ यंत्रोंमें कोई परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है? मनुष्य जिस समय सच बोलता है और जब झूठ बोलता है तो उसके शरीर पर कुछ असर ज़रूर पड़ता है। मानसिक विचारों और भावोंका मनुष्य देहपर तत्काल प्रभाव अवश्य पड़ता है। पर क्या और कैसे, यह खोज आवश्यक प्रतीत हुई। हार मान लेना सच्चे वैज्ञानिकके धर्मके विरुद्ध है। जीत जितनी ही दूर हो उतना अधिक उद्योग करना विज्ञानके सच्चे प्रेमीका प्रथम कर्त्तव्य है।

ईश्वर बड़ा न्यायकारी है, मेहनतका फल अवश्य देता है। वैज्ञानिकोंके उद्योग और परिश्रमका फल न्यायालयमें जजकी सहायता करेगा। आशा की जाती है कि थोड़े ही दिनोंमें सत्यासत्य निर्णायक यंत्र न्यायालयोंका आवश्यक अंग हो जायगा। अभी कुछ ही दिन हुए अमेरिकाके एक न्यायालयमें सत्यासत्य निर्णायक यंत्रकी परीक्षा हुई थी। फ़ौजदारी कचहरीका एक विशाल कमरा है—अदालतका दृश्य है। न्यायाधीश न्यायकी कुरसी पर आसन जमाये दिखलाई देता है। सरकारी वकील ज़ोरोंमें है, हाथ फटकार कर

जोशदार बहस कर रहा है। मुजरिमका वकील बीच बीचमें बात काट कर बोल उठता है। अभी बहस इस प्रश्न पर नहीं है कि मुजरिम दोषी है या निर्दोष। प्रश्न यह है कि मनोविज्ञान शास्त्र वेत्ता डाकृर विलियम मार्स्टनको सच्ची शहादत एकत्र करनेमें, अदालतको सहायता देनेका अधिकार दिया जाय या नहीं। डाकृर मार्स्टनके पास एक यंत्र है। वह इस यंत्रको दोषीकी बांहमें लगाना चाहते हैं। वह कहते हैं कि उनका सत्यासत्य निर्णायक यंत्र यह निश्चय पूर्वक बतला देगा कि दोषी सच बोल रहा है या झूठ। ज्यूरी और अदालतकी आंखोंके सामने ही वह यह परीक्षा करना चाहते हैं।

जजने वकीलोंकी शाब्दिक मुठ भेड़का अन्त कर दिया। जजने इस यंत्रके प्रयोगका अधिकार न दिया। जजने दृढता पूर्वक यह निश्चय किया कि अदालत केवल एक ही प्रकारका सत्यासत्य निर्णायक यंत्र जानती है। ज्यूरीके बारह प्रतिष्ठित व्यक्ति सत्यासत्यका अचूक निर्णय कर देंगे, इससे अच्छी कोई विधि नहीं हो सकती। जजकी राय है कि अभी तक वैज्ञानिक रीतिसे यह निश्चय पूर्वक सिद्ध नहीं हुआ है कि सत्यासत्य निर्णायक यंत्र बिना ग़लती किये सत्य और झूठको सदा ही बतला सकेगा। जजकी यह राय अनुचित नहीं प्रतीत होती, क्योंकि यह पहला ही अवसर है जब ऐसे किसी यन्त्रके प्रयोग करनेका अधिकार किसी अदालतमें मांगा गया हो।

क्या सत्यासत्य निर्णायक यंत्र सचमुच तुरन्त ही झूठको पकड़ सकता है? डाकृर जजेफ़ एच-क्रौसकी राय है कि यह यंत्र सदा झूठको पकड़ लेगा। वैज्ञानिक किसी बातको बिना प्रयोगों द्वारा सिद्ध किये प्रमाण नहीं मानते। प्रयोग किये गये हैं, जिनसे यह बात सिद्ध हुई है कि झूठ बोलनेसे तत्काल ही प्रत्यक्ष प्रभाव रक्तके दबाव (Blood Pressure) तथा नाड़ीकी (नब्ज़की) चाल पर पड़ता है। रक्त-दबाव-मापक (स्फाइग्मोमेनोमीटर Sphygmomanometer) नामक यंत्र बरसोंसे डाकृर लोग खूनकी गतिके वेग अथवा रक्तके दबाव नापनेके लिए काममें लाते रहे हैं।

रक्त दबाव (Blood Pressure) का क्या मतलब है? धमनियों (Arterial vessels) में बहता हुआ रक्त जो दबाव उन पर डालता है उसीको रक्त दबाव कहते हैं। यह दबाव हृदयके स्पन्दनके कारण उत्पन्न होता है और धमनियोंकी दीवारों (Vessel walls) की स्थितिस्थापकता अर्थात् लचीलेपन (Elasticity) और केशिकाओंकी (Capillaries) संकीर्णताके कारण सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। हृदयका बांया क्षेपक कोष्ठ (Ventricle) संकुचित होते ही धमनियों (Arteries) में रक्तको पहुँचा देता है। जैसे ही दबावके कारण रक्त धमनियोंके किसी भागमें होकर आगे बढ़ता है, स्थिति स्थापक दीवारें (Elastic walls) फैलती और रक्तके निकल जानेके बाद फिर सिकुड़ती हैं। इसी सङ्कोच और प्रसारका फल नाड़ी-स्पन्दन है। और यही सङ्कोच (Recoil) छोटी रक्त वाहिकाओं (Blood vessels) में रक्तको प्रवाहित करता है। सत्यासत्य निर्णायक यन्त्र असलमें सत्यासत्य निर्णय करनेका यन्त्र नहीं है, पर रक्तदबाव नापनेका साधारण साधन है।

मिथ्यालाप (झूठ बोलना) से तुरन्त रक्त-दबाव बढ़ जाता है। रक्तदबाव नापनेवाला यन्त्र सत्यासत्य निर्णयमें सहायक हो सकता है।

रक्तदबाव ठीक ठीक नापनेके लिए संकुचन दबाव (Systolic pressure) की जांच करनी चाहिये। मनुष्य की समस्त हृत्पिण्डकी स्पन्दनशक्ति (beat energy) का प्रधान अंश संकुचन दबाव (Systolic pressure) है और यही धमनियों (Arteries) में रक्तके प्रवाहको स्थापित करता है। साथ ही साथ प्रसरण दबाव (Diastolic pressure) का भी हिसाब लगाना चाहिये। हृदयके साधारण स्पन्दनके बीचमें स्थिरताकी अवस्थामें जो दबाव विद्यमान रहता है वही प्रसरण दबाव (Diastolic pressure) है। इसलिए रक्त-धारामें न्यूनातिन्यून प्रवाह शक्ति (Diastolic pressure) प्रसरण दबाव होगी। जब प्रसरण दबाव

विद्यमान होता है तो शिराओंमें रक्तका प्रवाह उलटी गति धारण करनेकी चेष्टा करता है।

संकुचन और प्रसरण दबाव जान लेनेके बाद (Pulse pressure) नाड़ीका दबाव नापना चाहिये। हृदयकी कर्मण्यताका उचित प्रदर्शक यही नाड़ीका दबाव है, क्योंकि यही संकुचन (Systolic) और प्रसरण दबाव (Diastolic pressure) की बीचकी औसतको बतलाता है। वस्तुतः नाड़ी दबाव ही वह सार्थक शक्ति है जो हृत्पिण्ड रक्त-प्रवाहमें व्यय करता है।

थैली लगाई जाती है; यह दबाव वस्त्र (Compression Sleeve) होती है। रबड़की थैलीके साथ दो लचीली नलियां रहती हैं। उनमेंसे एक नलीके साथ दबाव मापक (Pressure Guage) लगा रहता है। दबाव मनुष्यकी बाँह पर लगा दिया जाता है। इस यंत्रकी सहायतासे संकुचन दबाव (Systolic Pressure) मालूम हो जाता है।

जब किसी मनुष्यसे जिरह की जाती है तो जैसे ही वह मनुष्य झूठ बोलता है उसके रक्तका प्रवाहवेग तुरन्त बढ़ जाता। यह बढ़ती जितनी
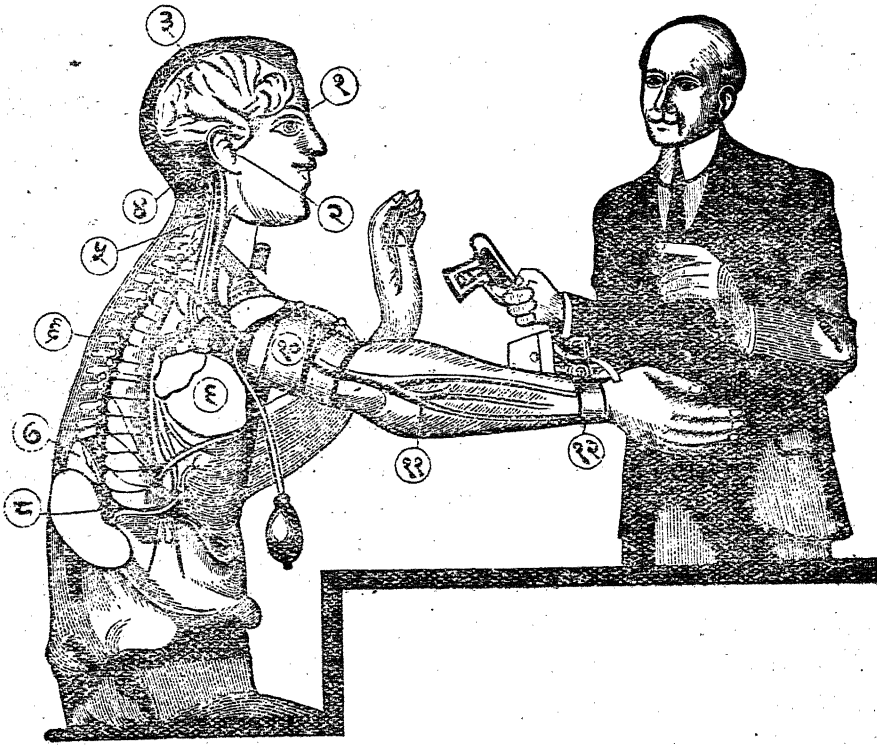
चित्र ४०

सत्यासत्य निर्णायक यन्त्र (स्फाइग्मोमेनोमीटर) का सूक्ष्म वर्णन यहां दिया जाता है। इसके प्रधान अंग हैं एक दबाव वस्त्र (Compression Sleeve); प्रदर्शक डायल (Dial) और एक छोटासा वायुपंप। कपड़ेकी एक लम्बी पट्टीके एक सिरे पर रबड़की

अधिक और स्पष्ट होती है, उसका कारण साधारण घबड़ाहट नहीं कही जा सकती। डाक्टर क्रौसने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया है कि कुछ मनुष्योंकी बाँहमें जैसे ही यंत्र लगाया जाता है वह तुरन्त घबरा जाते हैं। पर इस घबड़ाहटका असर उपेक्षा

की दृष्टिसे देखा जा सकता है; क्योंकि जैसे ही कोई झूठ बात कही जाती है रक्त दबावमें बहुत वृद्धि हो जाती है। केवल इतनेसे ही सन्तुष्ट न होकर परीक्षित मनुष्यकी कलाई पर स्फाइग्मोग्राफ़ (नाड़ी गति निरीक्षक यंत्र) लगाया गया और नाड़ी स्पन्दन देखा गया। मालूम हुआ कि जब परीक्षित मनुष्य सच बोलता था तो नाडीका स्पन्दन सम अवस्थामें रहता था। लेकिन जैसे ही कोई झूठ बात मनुष्यके मुँहसे निकलती थी रक्त वेग बढ़ जाता था और नाड़ी अधिक वेगसे और अनियमित रूपसे चलने लगती थी। इन दो यंत्रोंकी सहायतासे सत्यासत्य निर्णय सुलभ है। डाक्टर क्रौसकी राय है कि कुछ दिनोंमें यह सत्यासत्य निर्णयमें सहायक यंत्र अदालतोंमें प्रयुक्त होंगे और इनकी सहायतासे सच्चा न्याय सुलभ हो जायगा।

अब प्रश्न यह हो सकता है कि जिस प्रभाव की परख करनेकी विधि ऊपर वर्णन कर आये हैं, वह क्यों पैदा होते हैं। इसका उत्तर समझनेके लिये (चित्र ४०) को देखिये। जब कोई प्रश्न किया जाता है तो प्रष्टाके शब्द और आकृतिका प्रभाव श्रोतापर पड़ता है। शब्द करणविवर (२) में प्रवेशकर ड्रमसे टकराते हैं। ड्रम पर जो अघात होता है उसकी सूचना अर्थात् प्रभाव नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क(३) तक पहुंचता है। उधर आंखोंपर (१) प्रष्टाके हाव भाव और आकृतिका जो प्रभाव होता है वह भी आंखके परदेसे सम्बन्ध रखनेवाली नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क तक पहुंचता है। अन्य नाड़ियों द्वारा इन आघातोंका प्रभाव मेरुदण्ड (४) पर पड़ता है, जो कुछ तन्तुओं (Additional Fibres) द्वारा सहानुभूतिक नाड़ियों (Sympathetic nerves) को संचालित कर देता है। अन्तिम संस्थानका प्रभाव (७) एड्रिनल ग्रन्थिपर (Adrenal Gland) पड़ता है। अतएव उक्त ग्रन्थिका उद्गार; जिसे एड्रिनेलिन कहते हैं अधिक मात्रामें धमनियोंमें (८) पहुंचकर हृत्पिण्ड (९) को उत्तेजित कर देता है। इसीसे रक्त-दबाव बढ़ जाता है, जो १०वें स्थानपर नापा जा सकता है। नाड़ी वेगकी वृद्धि ११वें स्थानपर नापी जा सकती है, जो शिराओंमें (१२) बहते रुधिरके कारण होती है।

एड्रेनेलिन शिराओंकी दीवालोंमें अधिक संकोच पैदाकर देती है; जिससे रक्तदबाव बढ़ जाता है; और साथही हृत्पिण्डको उत्तेजित कर देती है, जिससे वह संकुचित शिराओंमें रुधिर प्रवाहित रखनेमें समर्थ होता है।

घबड़ाहटका प्रभाव हृत्पिण्डको उत्तेजित कर रक्त दबावका बढ़ा देना है। किन्तु प्रकृतिने यह भी प्रबंध रखा है कि हृत्पिण्ड आवश्यकतासे अधिक उत्तेजित न होने पावे। यह काम वेगस नामकी नाड़ी करती है।

गैसकी रोशनी

घरों दुकानों या दफतरों में गैस जलाकर रोशनी करनेकी चर्चा पहले पहल विलियम मुर्डोक (William Murdock) ने की थी। मुर्डोक एक ग़रीब कारीगर थे, जो वेल्स प्रान्तमें रिड्रुथ नामक स्थानमें रहते थे। उन्होंने कोलगेस बनाई और अपने घरमें प्रकाशार्थ जलानेका प्रबंध किया। उनके पड़ोसी समझे कि इन्होंने भूत अथवा प्रेतों से मैत्री करके प्रकाश कराया है। परन्तु कुछ पूंजी पतियोंकी सहायतासे मामला पारलियामेंट तक पहुंच गया।

पारलियामेंटने एक कमेटी गैसकी रोशनी की जांच करने के लिए बनायी। उस कमेटीके एक सदस्यने मुर्डोकसे पूछा, "क्या तुम यह कहना चाहते हो कि बिना बत्तीके प्रकाश हो जायगा।" मुर्डोकने उत्तर दिया, "हां"। तबतो उक्त सज्जनने सिर हिलाकर बड़ी हमदर्दीके साथ कहा, "प्रियमित्र, तब तो तुम असम्भवको सम्भव कर दिखानेका प्रयत्न कर रहे हो।"

मुरडोकका लोगोंने बड़ा मज़ाक उड़ाया, जनता समझने लगी कि पैपोंमें ही गैस जल जायगी और सब नगर जल कर भस्म हो जायगा। सं० १८६६ वि०में लेडी लुइसा मोली न्यू (Lady Louisa Molyneux) ने अपने एक मित्रको एक

पत्रमें लिखा था, "हौस ऑव कामंसमें अभी एक बड़े जोखिमका प्रयोग किया गया है। गैस पैपोंके हज़ारों छिद्रोंमेंसे चौंधियानेवाला प्रकाश निकल रहा था। इतना प्रकाश हौसमें हो रहा था कि सूक्ष्माति सूक्ष्म छपे हुए अक्षर भी सुगमतासे पढ़े जा सकते थे। आग बुझानेके इंजन बुला लिये गये थे और हौज़ पैप गैस पैपके बराबर बराबर सब जगह लगा दी गयी थीं[1]। परन्तु मुझे आशा है कि ऐसा भयानक प्रयोग दुबारा करनेका कोई साहस न करेगा।"

गैसकी रोशनी उस जमानेमें जब जाली भी काममें न आती थी, कितनी तेज़ समझी जाती थी !

परमाद्भुत मनुष्य

अपना सिर दाएं बाएं घुमा कर देखिये। बहुत प्रयत्न करने पर भी आप सिरको इतना घुमा सकते हैं कि टोढ़ी कंधेसे स्पर्श कर जाती है; किन्तु संसारमें एक मनुष्य है कि जो अपने सिरको घुमा कर बिलकुल पीछेकी तरफ कर सकता है। इस व्यक्तिका नाम लौरेल्लो है और यह जर्मनी का रहने वाला है। लौरेल्लोका मत है कि अभ्यास करनेसे सबको यह शक्ति प्राप्त हो सकती है।
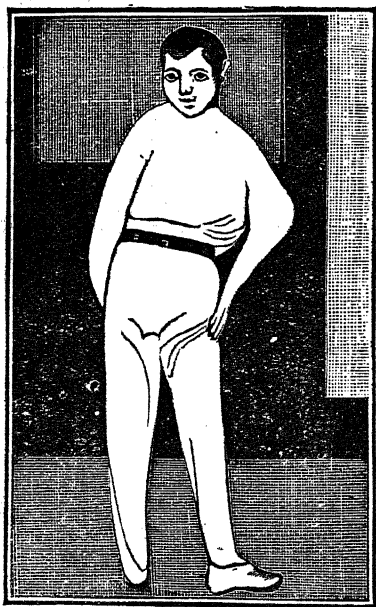
चित्र ४१

लौरेल्लो ने तीन साल तक अभ्यास किया था, तब उसे यह शक्ति प्राप्त हुई थी। परन्तु डाक्टरोंका कहना है कि साधारण मनुष्य यदि अभ्यास करेगा तो किसी दिन या तो वह दमघुट कर मर जायगा या उसकी गरदनके कसेरु स्थानच्युत हो कर रीढ़को हानि पहुंचावेंगे और सम्भवतः इस कारण मृत्यु भी हो जायगी (देखिये चित्र ४१)

कलेवर वृद्धि

अधिकांश मनुष्योंकी लम्बाई ५ और ६ फुट के बीचमें होती है। बहुत कम आदमी ६ फुटसे अधिक और ५ फुटसे कम ऊंचे होते हैं। १९६० वि० के देहली दर्बारमें कश्मीरसे कुछ जवान आये थे, जो लगभग ८ फुट लम्बे थे। संसारमें सबसे लम्बा आदमी उस्टस मेकनौ (Ustas Machnow) है, जो प्रायः १० फुट ऊंचा है। इसी प्रकार जर्मनीमें एक छोटा सा कसबा है जिसमें लगभग ७० बौने रहते हैं। पर बौने अथवा दानवाकार होनेका कारण क्या है ?

मनुष्यके मस्तिष्कके बाहरी भागके बीचोंबीच एक ग्रन्थि हैं, जो एक प्रकारके अस्थिनिर्मित कोष्ठके भीतर सुरक्षित है। वस्तुतः यह कोष्ठ भेजेके भीतर दूसरा भेजा है। इसीसे मालूम होता है कि प्रकृतिको इस ग्रन्थि (pituitary gland) की रक्षाकी कितनी चिन्ता थी। इस ग्रन्थिके भी मस्तिष्ककी नाईं दो विभाग हैं, एक उत्तर (anterior) और दूसरा दक्षिण (posterior)

गरदनमें भी दो ग्रन्थि हैं एक तो थाइरोयड जिसका धर्म है मज्जा निर्माणका नियन्त्रण; दूसरी है थैमस जो अस्थि निर्माणका नियन्त्रण करती है। तीसरे या चौथे वर्ष

---

[1] यह आगके बुझानेका प्रबंध था।

में थैमस ग्रन्थि छीजने लगती है, यहां तक कि उसके स्थान पर केवल एक बंधक तन्तु बच रहता है और उसका कार्य अन्य ग्रन्थि करने लगती हैं, मुख्यतः पिटुइटेरी ग्रन्थि।

पिटुइटेरी ग्रन्थिके उत्तर भागमें एक पदार्थ बनता है, (उद्गार), जिसे टिथीलिन (tethelin) कहते हैं और जो अस्थि पिंजर और बंधक तन्तुओंकी वृद्धका भाग्य विधायक है। इस ग्रन्थिके दक्षिण भागका उद्गार पिटुइट्रिन कहाता है, जो वातरज्जुओंके कोषों, अनैच्छिक मांसपेशियों (Involuntary muscle) मस्तिष्क और लिङ्ग भेद विषयक भावोंको प्रभावित करता है। दोनों विभाग मिलकर शक्तिके व्ययकी व्यवस्था करते हैं। जिन व्यक्तियोंके बाल्यकालमें पिटुइटेरी ग्रन्थिका कार्य सम्यक् रूपसे होता है, उनकी वृद्धि भी सम्यक् रूपसे होती है। इसके कार्यमें त्रुटि अथवा उत्तेजन होनेसे बच्चोंका आकार आयुके अनुसार अधिक छोटा या बड़ा होता है। यदि इसका कार्य २५ या ३० वर्ष तक अधिक जोरसे होता रहता है तो मनुष्यका आकार दानवोंका सा होता है।

दानवाकार, प्रकृत अथवा मुन्हन्ही होना पिटुइटेरी ग्रन्थि के टिथीलिन उद्गार पर निर्भर है। क्षुद्राकार और बौनेमें बड़ा भेद है। बौनेके शरीरका मध्य भाग पूर्ण होता है। केवल हाथ और पैर छोटे होते हैं। यह कमी उपर्युक्त थाइमस ग्रन्थि के उद्गारके कारण होती है।

क्षुद्राकार वालोंका इलाज है पिटुइटेरी ग्रन्थिका सत्त खिलाना।

कलेवर वृद्धि रोग

पाठको, अब आपको प्रतीत होगया होगा कि अतिशय कलेवर वृद्धि भी एक रोग है। क्षुद्राकारका तो इलाज है भी, पर कलेवर वृद्धिका इलाज लुकमान को ही मालूम है। बौनों-के मुख्य अंग तो पूर्ण होते हैं, केवल टागें हीं छोटी होती हैं, जिसका कारण उक्त थाइमस ग्रन्थिकी कमजोरी है।

हिन्दी साहित्य क्षेत्रमें कलेवर वृद्धि रोग

होलीके अवसर पर हिन्दी साहित्य क्षेत्रकी चिकित्सा करना अनुचित न होगा। कलेवर वृद्धि रोग आजकल जोर पकड़ रहा है। प्रतीत होता है कि यह रोग भी छूतका है; तभी तो यह "माधुरी"के शरीरमें पैदा हो, "सरस्वती"को जा लगा; अब इसने बेचारी "श्री शारदा"को जा सताया है और सदाकी सुस्त "गृहलक्ष्मी"को जा गुदगुदाया है। यह सब किरिश्मे पिटुइटेरी ग्रन्थिके एक अंगके हैं। एक अंग जब बलवान हो जाता है तो दूसरा दुर्बल हो जाता है; पिटुइटेरी ग्रन्थिके दूसरे विभागका काम है—वात कोष्ठ, अनैच्छिक पेशी, मस्तिष्क और लिङ्गभेद और शक्ति व्ययका नियंत्रण। हमें धोखा यह है कि कहीं कलेवरवृद्धि रोगके बढ़ने से अन्तिम बातोंमें गड़बड़ न हो जाय। "माधुरी" बहुत बढ़ चढ़कर बोलती है; स्त्री जातिकी प्राकृतिक नम्रता; तथा लज्जा शीलता जो "सरस्वतीका" स्वाभाविक भूषण है, उसको संभाले रखना ही "माधुरी" की मधुरता अथवा माधुर्यको दुगना कर देगा। होलीके अवसरपर तथा बसन्त ऋतुमें स्त्रियोंकी बाचालता अथवा उच्छृङ्खलता क्षन्तव्य हो सकती है; किन्तु बारहों महीने नहीं।

पाठक शायद साफ साफ लफजोंमें साहित्य क्षेत्रमें पिटुइटेरी ग्रन्थि तथा थाइमस ग्रन्थिका अर्थ पूछना चाहते होंगे। "थाइमस" ग्रन्थि है रुपयोंकी थैली, जिसकी कमीसे "बौने" बनते हैं। पिटुइटेरी ग्रन्थिके विकृत उत्तर भागका धर्म है ईर्षा अथवा प्रतिद्वंद्विता और विकृत दक्षिण भाग का अशिष्टा और अश्लीलता। हम दिखला चुके हैं कि साहित्य क्षेत्रके एक विभागमें पिटुइटेरी ग्रन्थिका उत्तरांश विकृत हो गया है। साथ ही साथ दक्षिणांशके बिगड़नेका भय भी हो रहा है। दूसरी तरफ देखते हैं तो पता चलता है कि दक्षिणांशकी कार्यशीलता कुछ प्रतापीवीरों तथा पुरुष स्वभावा स्त्रियोंका पारा चढ़ा रही है। अशिष्टता, अश्लीलता जोरों पर है। उत्तरदायित्वका भाव भागा जा रहा है। अनुभवशील नेताओंके आसन पर अपरिणामदर्शी नवयुवक आडटे हैं, जिन्हें "प्रसाद" से "आनंद" निकालनेका "पुरस्कार" अवश्य मिलना चाहिये।

———

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १६ { मीन, संवत् १९७९ । मार्च, सन् १९२३ } संख्या ६

अपनी चर्चा

परमात्माकी अनुकम्पासे आज विज्ञानका आठवां वर्ष समाप्त हुआ। गत आठवर्षोंमें विज्ञान ने क्या किया है, यह हमारे सहृदय पाठक भली भाँति जानते हैं। जिस अभावको दूर करनेका, हिन्दी साहित्य शरीरके जिस अंगकी पूर्त्ति करनेका बीड़ा "विज्ञान"ने उठाया है, उसमें "विज्ञान"को कितनी सफलता हुई, यह विज्ञानके प्रेमी अच्छी तरह बतला सकते हैं। विज्ञानके जटिलसे जटिल सिद्धान्तोंकी सरल भाषामें सरल विधिसे व्याख्या करनेमें "विज्ञान"ने जो प्रयत्न किया है उससे हिन्दी संसारकी कुछ सेवा हुई है या नहीं, इसका भी हमारे पाठक वृन्द ही भली भाँति निर्णय कर सकते हैं। विज्ञानके दुरूहसे दुरूह विषयोंको सुबोध बनानेका उद्देश्य "विज्ञान" कहाँ तक पूरा कर सका है, इस बातका विवेचन भी हिन्दी प्रेमी ही कर सकते हैं।

हम केवल इतना कह सकते हैं कि जो कुछ हमने किया है वह मातृभाषाकी समुन्नतिकी दृष्टिसे किया है। इस एक सेवाके भावके नाते हम अपने दोषों और त्रुटियोंके लिए सदैव क्षन्तव्य हैं।

विज्ञानकी सच्ची स्थितिका ज्ञान पाठकों-को करा देना हम अपना परम कर्तव्य समझते हैं। इसीलिए यदि स्पष्ट कहनेमें कुछ अप्रिय शब्दों-का प्रयोग हो जाय तो पाठक क्षमा करेंगे। यद्यपि विज्ञानको निकलते हुए आठ वर्ष हो चुके हैं तदपि जितनी सफलताकी आशा हमको थी उससे आधी भी प्राप्त नहीं हुई है। अभीतक विज्ञानके १००० ग्राहक भी नहीं हुए हैं।

जिस भाषाके बोलने और समझनेवाले ६० करोड़ हों उस भाषामें एक भी वैज्ञानिक पत्र न चल सके, यह कितने खेदका विषय है। उस भाषाके बोलने वालोंकी कितनी बुरी दशा—आर्थिक और मानसिक—होनी चाहिये, जिसमें विज्ञानके प्रेमी उंगलियों पर गिने जा सकते हैं। इङ्गलैण्ड जैसे छोटेसे देशमें दर्जनों वैज्ञानिक पत्र निकलते हैं, जिनकी सज धज देखकर दिल फड़क उठता है, जिनकी ग्राहक संख्या देखकर आश्चर्य होता है और जिनके संचालक माला माल हो गये हैं। परन्तु कैसी लज्जाकी बात है कि २० करोड़ आर्य सन्तानकी भाषामें केवल एक वैज्ञानिक पत्र है और उसकी भी ऐसी दुर्दशा है। ग्राहक १००० से कम, पृष्ठ संख्या ५० से कम, चित्र संख्या १५ से कम; दफ़्तर, चपरासी और क्लर्क ला पता।

इसमें दोष किसका है ?

विज्ञान परिषद्‌ने इस पत्रको आठ वर्ष तक चलाया है, इसको घाटा सहकर चलाया है, इसको अपने दफ़्तरमें आश्रय दिया है, अपने क्लर्कसे इसका काम कराया है और इसके लिए भिक्षा तक मांगी है। विज्ञान परिषद्‌ने इसका आठ वर्ष तक संपादन अवैतनिक रूपसे किया है, किन्तु

किस आशा से ?

परिषद्‌को पूर्ण विश्वास था कि हिन्दी भाषा भाषी अब शृङ्गार रस पूर्ण कविता और सस्ते उपन्यासोंके जादू से मुक्त हो गये हैं और उन्हें अब अपनी, अपने समाज और देशकी उन्नतिकी चिन्ता है, अतएव विज्ञान जैसे पत्रकी वह क़द्र करेंगे। यदि यह भी मान लिया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति दिन भर काम धन्धेमें फंसा रहकर जब शामको घर लौटता है तो उसे मनोरञ्जनकी आवश्यकता होती है, उस समय वह "विज्ञान" को पढ़कर क्या लाभ उठा सकता है, जो अंशतः ठीक है, तो भी क्या पुस्तकालयोंका यह कर्त्तव्य नहीं है कि विज्ञान जैसे पत्रको मंगावें ? खेद है कि पुस्तकालय भी अपने कर्त्तव्यकी ओर ध्यान नहीं देते। वही दशा हमारे धनकुवेरोंकी भी है।

हिन्दी भाषा भाषियों की उदासीनता यद्यपि असहनीय है तथापि परिषद् केवल कर्त्तव्यको दृष्टिमें रखती हुई इस पत्रको चलाती रहेगी !

मूत्रपरीक्षा

(ले०—प्रो० फूलदेव सहाय वर्म्मा, एम. एस-सी., एफ. सी. एस.)

वैद्यक-ग्रन्थोंमें मूत्रपरीक्षाको बहुत महत्व दिया गया है। प्राच्य और पाश्चात्य वैद्यक ग्रन्थोंमें इसकी जांचकी भिन्न भिन्न विधियां और उससे रोगके विषयमें जो परिणाम निकाला जा सकता है उसकी पूरी व्याख्या दी हुई है। यहां पर पाश्चात्य मूत्रपरीक्षाकी विधियोंका संक्षिप्त वर्णन करनेकी चेष्टा की जायगी। यह विषय अवश्य ही गहन है, इसपर अनेक स्वतंत्र पुस्तकें अंग्रेजी, जर्मन फ्रैंच आदि भाषाओंमें लिखी गई हैं, किन्तु साथ ही साथ यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण भी है। केवल वैद्योंको ही नहीं वरन् प्रत्येक शिक्षित मनुष्यको इसका थोड़ा बहुत ज्ञान अवश्य रखना चाहिये। इस ज्ञानसे वह अनेक रोगोंको प्रारम्भमें ही पहचान सकता है और इससे समय पर सावधान हो अनेक कष्टों और व्याधियोंसे छुटकारा पा सकता है।

मूत्रकी मात्रा

चौबीस घण्टेमें एक स्वस्थ मनुष्य प्रायः डेढ़ सेर मूत्र निकालता है। किन्तु यह मात्रा बिलकुल निश्चित नहीं है। मनुष्यके भोजन और व्यवसायके अनुसार यह घटती बढ़ती रहती है। जो मद्यसेवी हैं उनकी मूत्रकी मात्रा साधारणतः अधिक

होती है। बहुत अधिक मूत्रका होना प्रमेहका लक्षण है। मूत्र परीक्षाके लिए किसी विशेष समयका मूत्र लेना उचित नहीं है। यदि सम्भव हो तो २४ घण्टेमें जितना मूत्र निकला हो उस सबको मिलाकर उसके कुछ अंशकी परीक्षा करनी चाहिये। मूत्रकी अम्लता, विशिष्ट गुरुत्व, रंग एवं और और गुण दिनके भिन्न भिन्न समयोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके होते हैं। प्रमेहकी पहली अवस्थाके रोगीके प्रातःकालके मूत्रमें शर्कराका प्रायः पूर्ण रूपसे अभाव रहता है; किन्तु भोजन करनेके कुछ घण्टेके बाद शर्करा पाई जाती है। २४ घण्टेके मूत्र को इकट्ठा रखनेमें सावधानी करनी चाहिये; जिसमें किण्व क्रिया fermentation शुरू न हो जाय; क्योंकि ऐसा होनेसे मूत्रमें अनेक ऐसे परिवर्तन हो सकते हैं, जिनसे उसमें उपस्थित पदार्थोंकी मात्राका ठीक ठीक ज्ञान नहीं हो सकता।

मूत्रका रंग

स्वस्थ मनुष्यके मूत्रका रंग हलका पीला अथवा कहरुबाके (amber) रंगका सा होता है। प्रमेहवालोंके मूत्रका और भी हलका होता है। किसी किसीके मूत्रका रङ्ग गदला होता है। मूत्रमें रक्त होनेसे रंग लाल भी हो जाता है। साधारणतः मनुष्यका मूत्र स्वच्छ होता है, किन्तु कुछ समय तक रख छोड़नेसे उसमें गदलापन पैदा हो जाता है। कुछ दिनों तक रख छोड़नेसे उसमेंसे एक ठोस पदार्थ यूरिकाम्ल (Uric acid) निकल आता है।

मूत्रकी गंध

मूत्रकी गंध एक विशेष प्रकारकी किन्तु बुरी नहीं होती। लोगों का अनुमान है कि यह गंध कार्बोलिकाम्ल (carbolic acid) तथा उसी प्रकारके और पदार्थोंके रहने से आती है। प्रमेहवालोंका मूत्र सूखी घासका स्मरण दिलाता है; किन्तु प्रमेह की पिछली अवस्थामें बहुधा एसीटोन (acetone) की भी गन्ध पायी जाती है। बहुत लोगोंके मूत्रसे दुर्गन्ध भी आती है। चन्दनका तेल सरीखे सुगन्धित तेलोंके भीतरी व्यवहारसे उनकी गन्ध मूत्रमें भी पायी जाती है। कुछ समय तक रख छोड़नेसे अथवा डंडीमें भी किण्वक्रियाके होनेसे मूत्र अमोनिया सदृश गंध देता है। जिस मूत्रमें रक्त अथवा पीप (pus) रहती है वह सड़ी हुई गन्ध देता है और उससे कभी कभी उज्जन गन्धिद (Sulphuretted Hydrogen) निकलता है।

मूत्रका स्वाद

मूत्रका स्वाद साधारणतः कडुआ और नमकीन होता है। प्रमेहवालेका मूत्र स्वादमें मीठा होता है। साधारणतः क्रियामें मूत्र आम्लिक (acidic) होता है; किन्तु कभी कभी क्षारिक (basic) भी पाया जाता है। प्रमेहवालोंका मूत्र विशेषतः आम्लिक होता है।

मूत्रका आपेक्षिक घनत्व

स्वस्थ मनुष्यके मूत्रका घनत्व १·०१५ से १·०२५ तक बदलता रहता है। औसत घनत्व १·०२० लिया जा सकता है; किन्तु बहुत शारीरिक परिश्रम करने और पसीना होनेसे १·०३५ तक पहुंच जाता है। प्रमेहवालोंके मूत्रका घनत्व बहुत अधिक होता है। साधारणतः १·०३० से ऊपर और कभी कभी १·०७४ तक पहुंच जाता है। हाइड्रोमीटर (Hydrometer) नामक यन्त्र द्वारा यह आपेक्षिक घनत्व बहुत सरलतासे निकाला जा सकता है। आपेक्षिक घनत्वसे मूत्रमें ठोस पदार्थोंके अंशके विद्यमान होनेका कुछ कुछ ज्ञान होता है।

मूत्रमें ठोस पदार्थ

ठोस पदार्थोंकी ठीक ठीक मात्रा जाननेके लिए मूत्रको चौड़े पेंदेकी चीनी अथवा प्लाटिनमकी घरियामें (Crucible) पहले जल-कुण्डी (waterbath) और फिर वायु-कुण्डी (airbath) पर गरम कर सब जलको उड़ा देना चाहिये। घरियाकी पहली और अन्तिम तोलके अन्तरसे ठोस पदार्थकी मात्रा निकल आवेगी।

प्रमेहवालेके मूत्रमें शर्कराका भाग विशेष होता है। अनेक रासायनिक विधि हैं, जिनसे शर्कराकी

उपस्थिति और उसकी मात्रा जानी जा सकती है। उनमें एकका यहां उल्लेख किया जाता है।

ताम्रिक ओषिद्का (cupric oxide) घोल जब शर्कराके साथ गरम किया जाता है तब वह ताम्रस ओषिद नामक (cuprous oxide) अनघुल पदार्थमें बदल कर घोलसे अलग हो जाता है। ताम्रस ओषिद्का लाल रङ्ग होनेके कारण इसकी उपस्थिति सरलतासे जानी जा सकती है और उसे अलग करके सुखाने और तोल लेनेसे उसकी मात्रा भी निकाल सकते हैं।*

स्वस्थ मनुष्यके मूत्रमें प्रायः अलब्युमिन (albumen) नहीं होता; किन्तु थकावटकी हालत अथवा रुग्नावस्थामें अलब्युमिन चला आता है। मसाने (kidney) पर रक्त दबावके कारण भी अलब्युमिन मूत्रमें पाया जाता है। रक्तज्वर, न्यूमोनिया विषम ज्वर और डिफथीरिया (diphtheria) के रोगीके मूत्रमें अलब्युमिन होता है। प्रमेहवालोंके मूत्रमें भी अलब्युमिन हो सकता है; किन्तु ऐसा होना रोगीके लिए बहुत ही भयङ्कर है। भिन्न भिन्न रोगोंमें अलब्युमिनकी मात्रा घटती बढ़ती रहती है। किसी किसी रोगमें इतना अधिक अलब्युमिन होता है कि केवल गरम करनेसे अण्डेके श्वेत भागकी नाईं जम जाता है। किन्तु साधारणतः इतनी अधिक मात्रा अलब्युमिनकी नहीं पाई जाती। यह आवश्यक है कि रोगियोंके मूत्रकी समय समयपर अलब्युमिनकी उपस्थिति मालूम करनेके लिए जांच की जाय।

मूत्रमें अलब्युमिन निकालनेकी विधि

अलब्युमिन अनेक प्रकारके होते हैं और उनकी व्यक्तिगत क्रियाएँ भिन्न भिन्न प्रकारकी होती हैं; किन्तु वैद्यक दृष्टिसे मूत्रमें अलब्युमिनके रहनेकी जांच सरल एवं सूक्ष्म (Delicate) होनी चाहिये। इसके लिए अनेक विधि प्रतिपादित हुई हैं, किन्तु अनुभवसे सिद्ध हुआ है कि निम्नलिखित विधि बहुत विश्वसनीय है। २४ घंटेके मूत्रको मिलाकर, उसमेंसे कुछ अंश निकालकर, उसकी परीक्षा करनी चाहिये। परीक्षा करनेके पहले उसे छानलेना चाहिये। ऐसा छाना हुआ मूत्र १० घन श० मी० लेकर हलका सिरकाम्ल डालकर उसे आम्लिक बना लेना चाहिये। तब उसे एक परख नलीमें अथवा और किसी कांचके बर्तनमें एक मिनट तक गरम करना चाहिये। यदि अलब्युमिन उपस्थित है तो उबलनेका [illegible] क्रम पहुंचते पहुंचते श्वेत अपारदर्शी थक्का (Precipitate) अधिक अथवा न्यून मात्रामें निकल आयेगा। थोड़ी देर रख छोड़नेसे यह थक्का एकत्रित हो बड़े बड़े टुकड़ोंके रूपमें नलीके पेंदे में धीरे धीरे [illegible]ठ जायगा और ऊपर स्वच्छ तरल पदार्थ रह ज[illegible]यगा। २४ घण्टे तक रख छोड़ने पर अलब्युमि[illegible]का अधिकांश निकल आवेगा। जिस मूत्रमें [illegible]ब्युमिन बहुत अधिक होता है उसमें इतना थ[illegible] निकल आता है कि सारा मूत्र जमनर ठोस हो[illegible]ता है।

अल[illegible] दूसरी सरी[illegible] किन्तु सू[illegible]क्ष्म विधि नत्रिकाम्ल (शोरेका तेज़ाब [illegible] सहायता पर निर्भर है। गाढ़े [illegible] जाम्लको मूत्रमें इस प्रकार डालनेसे कि दोनों तरल [illegible] मिल न जायँ नत्रिकाम्लके संसर्गसे अ[illegible]ब्युमि[illegible] मूत्रसे अलग हो जाता है और इस [illegible]र उसकी उपस्थिति सरलतासे जानी जा सकती है।

मनुष्य जो भोजन करता है उसमें नत्रजन का अंश अवश्य वर्तमान रहता है। इस नत्रजनका अधिक भाग यूरिया (Urea) के रूपमें मूत्रद्वारा बाहर निकल आता है। सदैव मूत्रमें यूरिया वर्तमान रहता है। यूरिया-मापक यन्त्र द्वारा इसकी मात्रा मापी जाती है। यूरिकाम्लके रूपमें भी नत्रजनका कुछ अंश निकलता है; किन्तु यह गंठिया और वात रोगसे पीड़ित मनुष्यके मूत्रमें ही विशेषतः पाया जाता है।

---

* इसका विशेष विवरण किसी अंग्रेज़ीके विश्लेषण-ग्रन्थसे जाना जा सकता है।

स्वस्तिक

प्रत्येक शुभ कार्यमें स्वस्तिकका चिन्ह बनाया जाता है। मंगल कार्योंमें स्वस्तिक घरके दर्वाजे पर भी बनाया जाता है, इसी कामका नाम "सथिये रखना" है। विचार पूर्वक देखनेसे ज्ञात होगा कि "ॐ" शब्दका यह रूपान्तर है अर्थात् स्वस्तिकका चिन्ह (卐) "ॐ" के लिखनेका एक दूसरा ढंग है। सातवीं शताब्दीमें स्वस्तिकका चिन्ह मवेशियों पर दाग़ दिया जाता था। विक्रमसे २०० वर्ष पहलेके बने हुए एक सुवर्ण पात्रके ऊपर भी स्वस्तिक बना हुआ मिला है। इस पात्रमें बुद्धदेवके "फूल" (अस्थि) रखे मिले थे। २६०० वर्ष पुराने यूनानी बर्तनों पर भी स्वस्तिक बना मिला है। सबसे पुराना स्वस्तिकका चिन्ह एक चर्खे पर बना मिला है, जो ट्रोयके तीसरे नगरसे प्राप्त हुआ है और जो लगभग ३८०० वर्ष पुराना है (१८२० वि० पू०)

हिन्दुस्तानी नमक अर्थात् शकर

मध्यकाल (Middle Ages) में यूरोपमें शकरका साधारण नाम था 'हिन्दुस्तानी नमक'। शकरका प्रयोग या तो हकीम लोग किया करते थे या बड़े बड़े अमीर आदमी।

फुदकनेवाली लकड़ी

पैरिसकी विज्ञानपरिषद् (Academy of Sciences) से यह खबर मिली है कि पारा (Para) से एक फुदकने वाली लकड़ी प्राप्त हुई है। यह एक (Walnut) अखरोटके पेड़की सूखी हुई टहनी है, जो तीन फुट लम्बी और आध इञ्च मोटी है। नेन्टीज़ (Nantes) के एक स्कूलके सहनके एक किनारेसे चलकर यह दूसरे किनारेकी तरफ बढ़ने लगी थी। मालूम ऐसा होता था कि हवाके वेगसे यह चल रही थी, परन्तु उस समय हवा बिलकुल बंद थी। थोड़ी दूर पर पहुँच कर यह लकड़ी रुकी और कई फुट उछलकर फिर यह ज़मीनपर चलने लगी, फिर दुबारा उछली और दूसरी तरफको चलने लगी। एक घंटे तक यह लकड़ी यही तमाशा करती रही। जब यह ठहरी तो अपने पूर्व स्थानसे २० फुट पर थी। लकड़ीकी बहुत जांच की गई; परन्तु उसमें किसी प्रकारकी चालाकी या शौबदेबाज़ीका पता न लगा। विज्ञान परिषद्के सदस्य इस विषयकी जांच कर रहे हैं (Sc. A., sep, 22)

कुम्भकरणका दीपक

जिस घरमें कुम्भकरण सोता था, उसमें कभी दीपक भी जलाया जाता था या नहीं। पुराणकारोंने यह बात न जाने क्यों न लिखी। यदि पुराणोंमें क्षेपक जोड़नेका काम अब भी जारी रहता तो उपयुक्त लेम्प, हम बतला देते। स्वेंप्सकोट (Swampscotts Mass.) की एक इंजीनियरिंग सोसाइटीके (Illuminatnig Engineernig Society) एक हालके अधिवेशनमें एक बड़ा भारी बिजलीका लेम्प दिखाया गया था। यह लेम्प क्लीवलेंड की एक फर्मने बनाया है (National Lamp Works of the General Electric Company at Cleveland, Ohio)। इस लेम्पका व्यास एक फुट है और ऊंचाई १८½ इंच। २४०० साधारण बिजलीकी बत्तियोंके बराबर यह प्रकाश देता है। इसके भीतरका तार ६३ इंच लम्बा और $\frac{1}{10}$ इंच मोटा है, जिसकी ४ बेठनें (Coils) बना दी गयी हैं। इतना तार मामूली ५५००० लम्पोंमें होता है। इस प्रकारके तीन लम्पोंमें उतनी बिजली खर्च होगी जितनी कि एक ट्राम गाड़ी में खर्च होती है। ऐसे एक लेम्पका प्रकाश ६०००० बत्तीके बराबर होगा (मामूली डीज़ लालटेन ६ बत्तीकी होती है)। एक घंटे तक जलानेमें लगभग ६) खर्च बैठेगा।

कृषि सम्बन्धी कहावतें

१—दूरकी खेती सदा डूब जाया करती है।

"बण्डा बैल विलौंजा पाही एक जन मरल आवे जाही"

पूंछ कटे बैलका मालिक उस पर चढ़ कर दूर ग्राम (विलौंजा) में अपनी खेती देखने जाता और सांझको लौट कर अकेला आता है। कभी न कभी वह संकटमें पड़कर मारा ही जाता है। और वैसे भी आने जानेमें ही बहुत सा समय खो देता है।

जो मनुष्य पर्याप्त सामग्री बिना लिये दूर गांवमें खेती करता है, उसकी मूर्खतासे उसका सब नष्ट हो जाता है। अकेले लुण्डे बैलसे वह अपना और अपने बैलका जीवन व्यर्थ गंवा देता है।

२—खेती किसानके घरके जितने पास होगी उतनी ही उत्तम होगी।

"अरियाके गरिया भला पाही के ना डूब"

'गरिया' उस भूमिको कहते हैं जो थोड़ा सा पानी पाते ही गारा गारा हो जाती है। वह तुरन्त सूख कर ऊसर भी हो जाती है। इस कारण ऐसी भूमि खेतीके लिए उपयुक्त नहीं होती।

'डूब' या 'डाब' उस भूमिको कहते हैं, जो सालमें कुछ समय तक पानीमें डूबी रहे और कुछ काल धूप सहे। उसमें खेती खूब उत्तम होती है।

(अरिया) समीपकी गरिया भूमि ही (पाही) दूरकी डूब भूमिकी अपेक्षा भली है, क्योंकि उसपर किसान भली प्रकार देख रेख कर सकता है।

३—दरिद्र किसानी—

"खेती कैसीं जियेला, बैल बिकैला बीयेला"

जब उद्देश्य तक पहुंचनेके लिए, साधन तक हाथसे निकल जांय और कुछ हाथमें न रहे तभी इस कहावतका प्रयोग किया जाता है।

खेती अपने जीवन निर्वाहके लिए की जाती है; पर यदि बीजोंके खरीदनेके लिए बैल बेचने पड़ें, तो किसान का इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है।

प्रायः सूखा पड़ने पर किसानों पर ऐसी नौबत भी आ जाती है।

४—सच्चा किसान वही है जो खेतमें अपने आप हल लेकर आवे।

"खेत चढ़े किसान"

५—आलसीको किसानकी चिन्ताका अनुभव नहीं हो सकता।

"करैं न खेती परैं न फन्द, पर घर नाचैं मूसरचन्द"

६—जब थोड़ेसे काम चले तो अधिक शक्तिका उपयोग न करे।

"छेरी भेंड़ी हल चले बरध बिसाहीं काहे"

यदि भेड़ बकरियोंसे ही हल चल जाय तो बैल क्यों खरीदा जाय।

७—किसानोंमें यह चाल होती है कि आपसमें वस्तुओंका विनिमय कर लिया करते हैं। परन्तु इस विनिमयमें वह एक प्रकारका सूद भी दिया या लिया करते हैं। मान लीजिये कि एक किसानके पास बैल हैं और दूसरेके पास हल है, परन्तु ज़मीन दोनोंको जोतनी है तो वह दोनों वस्तुओंका प्रयोग कर बारी बारीसे खेत जोत लेते हैं और इस प्रकार दोनोंका काम चल जाता है। परन्तु यदि एकके पास केवल बैल नहीं हैं, बाकी सब चीज़ें हैं और दूसरेको किसी चीज की भी आवश्यकता नहीं है तो पहला किसान बैल उधार मांग लेता है और दूसरेकी जमीन बिना धन लिये जोत देनेकी बात कहता है, यही बैलोंका किराया हुआ। ऐसे याचकको अंगवार कहते हैं। यह कितनी उद्धतताकी बात है कि यदि याचक दूसरेका अंगवार होकर काम करे और अपनेको फिर भी बराबरीका सहयोगी कहे। इसीपर कहावत है—

"आपन बरधा हमको दह, तोहरा अङ्गवार सहेला"

८—जब बादलके छोटे छोटे टुकड़े बहुत संख्यामें आकाशमें बिथुरे दीखते हैं तो उन्हें तीतर पंखी कहते हैं। तीतर पंखी बादल वर्षाके आनेके चिन्ह हैं। भड्डर नामका एक बड़ा प्रसिद्ध ज्योतिषी होगया है। उसने बहुत सी ज्ञानकी बातें ग्रामीण भाषामें ही प्रकट की हैं। उसके वचन प्रायः ग्रामीण

किसानोंके लोक व्यवहारमें शास्त्र वाक्यके समान माने जाते हैं। वह कहता है—

"तीतर पंखी बदरी रांड फुलेल लगाय।
कह भड्डर सुन भड्डरी वह आवे वह जाय॥"

९—"शनि अढ़ाई मङ्गल तीन रवि गुरु बरसे आठों दिन"

यदि शनिवार, मंगल, रविवार और बृहस्पति वारको वर्षा शुरू हो तो क्रमसे २½, ३ और ८ दिन तक वर्षा होती रहेगी।

१०—यदि इन्द्र धनुष वर्षाके प्रारम्भमें ही दीख पड़े तो समझ लो वर्षा बहुत अधिक पड़ेगी। यदि वर्षाकी समाप्तिमें दीखे तो यह वर्षाकी समाप्ति का ही चिन्ह है।

'ऊगत ऊगे मही भरे बिसरत ऊगे जाय"।

११—चांद और सूर्यपर मण्डल या चक्र या घेरा सा पड़ जाया करता है। उसे परिवेष कहते हैं। उसको देखकर भी किसान वर्षाका अनुमान करते हैं उनके अनुसार

रवि गुरु मंगल जौं चन्दा परिवेष।
दिन चौथे गंडु महि भरन विशेष॥

यदि चांदपर रविवारकी रातको परिवेष पड़े तो अगले दिन ही मूसलाधार वर्षा होती है। बृहस्पति और मंगलवारको यदि परिवेष दिखाई दे तो चौथे और आठवें दिन खूब बरसता है।

१२—वर्षाकी फ़िकिर जमींदारों और किसानों को ही विशेषतः होती है। परन्तु घरवालीके सजल नयनों की झड़ीका आदर तो नागरिकों को और प्रायः सभी गृहस्थियों को करना पड़ता है। भड्डर ज्योतिषी ने कैसे मर्मकी बात कही है

आवत आदर ना दिये जात ना दिये हस्त।
कहे भड्डर दोऊ गये बनिता और गिरहस्त॥

यदि वर्षाके प्रारम्भमें आर्द्रामें वर्षा न हो और इसी प्रकार समाप्तिके अवसर पर हस्त नक्षत्रमें भी न हो तो भड्डरका कथन है कि गिरहस्ती (किसानी) डूब जाती है।

साथ ही दूसरी तरफ़ यदि नव बधूके आगमन के समय उसका आदर न किया जाय और बिदाई के समय पतिने कोई भेंट उसके हाथ कुछ नदी तो वह भी पतिके हाथसे गयी ही समझिये। इसीलिए मनुने नव बधुओंकी पूजा करनेके लिए लिखा है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वाः सीदति तत्कुलम्॥"

१३—किसान भी कितनी उत्तमतासे अपने देशका वायु विज्ञान जानते हैं—

"मघा लगावे घग्घा, सिवाती लावस टाटी।
कहतारी हाथी रानी हमहूं आवत बाटी॥"

मघाका (अगस्तका पिछला भाग) योग वर्षाके तूफ़ान लाता है। स्वातीका योग (अक्तूबरका अन्तिम भाग) वर्षा पर रुकावट लगा देता है। और हस्त नक्षत्रका योग (सितम्बर और अकतूबर) मेघोंकी गर्जनसे वर्षाकी पहले ही सूचना दिया करता है।

यहां हथियाको रानी कहा है मानों वह अपने आते समय गड़गड़ाते मेघों द्वारा अपने आगमन की सूचना दिया करती है।

१४—भिन्न भिन्न समयोंपर हुई वर्षाका भिन्न भिन्न फसलों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

"फागु कराई चैत चुक, कौर्तिक नट्टहि तार
स्वाती नट्टहि माख तिल कहि गये डाक गवार"

फाल्गुनकी वर्षा से उड़दका सत्यानाश हो जाता है। चैतमें वर्षा होनेसे नींबू, कार्तिकमें ताड़ और स्वातीमें दालें और घीकुंवार नष्ट होजाते हैं।

१५—"जो बरसे बैसखवा राऊ एक धानमें दो बरचाऊ।"

यदि वैशाख बरस जाय तो एक एक धानसे दो दो पौधे पैदा हों अर्थात् दुगनी फ़सल हो। इसीसे वैशाख को राजा कहा है।

१६—कृत्तिका चूए चौले मूए; जोरोहनी नहीं का दो

जो कृत्तिका बरस जाय तो अगले चार नक्षत्र क्या करें? फिर वृष्टि न होगी। यदि रोहिणीकी लगनमें ही पानी न बरसे तो आगेके दो नक्षत्र क्या करेंगे। इसके समान एक और भी कहावत है जो इसकी कही बातमें कुछ विशेषता दर्शाती है।

"कृत्तिका चूए तीन ले मूए राहर रेंड कपास
जो रोहिन दधि कादों (?) करे हरे दोष उंचास ।"

यदि कृत्तिकामें पानी बरस जाय तो अरहर रेंडी और कपास तीनोंकी फसल अच्छी होती है। यदि रोहिणीमें भी बरसे तो उनचासों शरीर-की व्याधियां दूर हो जाती हैं।

१७—तिरहुतकी तरफ यह प्रसिद्ध है कि
"जब जनिहः खरचाके हीन किितिकामें तू बोइह चीन ।"

यदि खर्चके लिए तुम तंग हो तो कृत्तिका (मैमासके अन्त) में चीना बोदेना।

१८—सुभिक्ष—
मिरगसिरा तपए रोहिनी बरसे अरदरा जाय बुदबुदाय।
कहैं डाक सुन भिल्लरी कुत्ता भात न खाय ॥"

मृगशिरा (जून) में गर्मी पड़े, रोहिणी (जूनका प्रारम्भ) में बरस पड़े और आर्द्रा (जूनके अन्त) में कुछ बून्दा बांदी ही हो तो डाक महाराज कहते हैं—हे भिल्लरि, सुन, उस वार इतना चावल होगा कि कुत्ता भी खा खाकर धाप जायगा और फिर नाक सिकोड़ेगा और न खायगा।

१३ से १८ तककी कहावतोंके ठीक ठीक समझ लेनेके लिए पाठक इस बातका स्मरण रखें कि खेती जेठमें शुरू होती है। तभी रोहिनीका योग होता है। तभी किसान बीज बोते और खेत जोतते हैं। मंगसिरकी वर्षा अच्छी नहीं होती। जब आर्द्राका योग होता है उसी समय पछेतीकी फसल अर्थात् सर्दीकी फसलका बोना जोतना शुरू होता है। इस फसलको 'अघनी' कहते हैं। यदि इस अवसरपर वर्षा पड़नेमें कुछ देर हो तो जुताई बुआई पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र तक भी होती रहती है। मघा और पूर्वा फाल्गुनीके योगमें वर्षाका बड़ा मूल्य है। उसी समय रबी या गर्मियोंकी फसलके लिए बुआई जुताई शुरू होती है।

किसानोंका कथन है कि पहले दिनोंमें स्वाति के योगमें वर्षा समाप्त हो जाया करती थी। इससे फसलोंको बड़ा लाभ होता था; पर अब हथिया (हस्त) में ही समाप्त हो जाती है। स्वातीकी वर्षा-की क्या महिमा कहें।

भर्तृहरि कहते हैं।
"स्वात्यां सागर शुक्ति मध्य पतितं तन्मौक्तिकं जायते।"

स्वातीकी वर्षाकी एक बून्द भी सागरकी सीप में पड़ जाती है तो मोती बन जाता है। इसके विपरीत चित्राकी वर्षा किसानोंका सर्वस्व नाश किया करती है।

१९—किसानोंका सारा ज़ोर आर्द्राके योगमें ही रहता है। अर्थात् उसी अवसर पर श्रम करें तो सुभिक्ष हो जाता है।
"अरदरा मास जे बोये साठी दुःखके मार निकाले लाठी"

आर्द्रामें यदि साठी चावल बो दे तो दुःख दरि-द्रताको वह डण्डा मारकर निकाल भगा देगा।

२०—दूसरी तरफ दौर्भाग्य भी होता है
आदि न बरसे अरदरा हस्त न बरसे निदान
कहहिं डाक सुनु भिल्लरि भये पिसान किसान।

यदि प्रारम्भमें आर्द्रा न बरसे और हस्त या हथिया योगके अन्तमें न बरसे तो डाक कहते हैं कि हे भिल्लरि! सुन, विचारे किसान पिसकर मलीदा हो जाते हैं।

२१—आर्द्राकी वर्षा सचमुच अमृत है। किसानोंके लिए तो धन बरसाती है।

"चढ़त बरसे अरदरा उतरत बरसे हस्त ॥
कतएक राजा दांडे रहे आनन्द गिरहस्त।"

आर्द्रा पहलेसे ही बरस जाय और हस्त (हथिया) पीछेसे बरसे तो राजा अपने हाथपर हाथ दिये खड़े ताका करते हैं; परन्तु किसानोंका आनंद हो जाता है।

२२—अरदरा बरसे सब कुछ भा, हां एक जवास पतर बिन भा।

आर्द्राकी वर्षासे सब पैदावार हो जाती है; पर केवल एक जवासेके पत्ते झड़ जाते हैं।

—जयदेवशर्मा।

जीवाणु नाशक पदार्थ

बहुधा रोग जीवाणुओंसे पैदा होते हैं। विशेष करके व्रण (घाव) जीवाणुओंके द्वारा बिगड़ कर दूषित हो जाते हैं। महर्षि सुश्रुत इस घटनाको देखते हुए भी इसके असली निदान-को निश्चय न कर सके। इसका गौरव आधुनिक समयके पाश्च्यूर और लिस्टर आदि मनीषियों-को प्राप्त हुआ है।

जीवाणु नन्हे नन्हे उद्भिज हैं, जो अणुवीक्षण यन्त्रके द्वारा सुगमतासे देखे जा सकते हैं। इनमें से कुछ जन्तु जातीय भी हैं। यह पृथ्वी, जल और वायुमें मौजूद रहते हैं, और अन्य जीवोंकी तरह अपनी वंशवृद्धि करते हैं। इनके लिए भी खुराककी आवश्यकता है, जोकि यह अन्य जीव जन्तुओंकी देहसे वा सड़ने गलनेवाली चीजोंसे प्राप्त करते हैं। इनमेंसे सभी जीवाणु मनुष्योंके लिए हानि-कारक नहीं हैं, प्रत्युत् बहुत सारे लाभदायक ही हैं। जो थोड़ेसे हानिकर हैं उन्हींका उच्छेद करना चिकित्सा शास्त्रका ध्येय है।

जीवाणु नाश करनेके साधन अनेक हैं। यहां पर उनमेंसे कुछ थोड़ेसे लिखे जाते हैं। नीचे सबसे पहिले संक्षेपसे कुछ प्राकृतिक उपायोंका वर्णन किया जाता है।

प्राकृतिक साधन

सूर्य-रश्मि—धूप सबसे बड़ी जीवाणु-नाशक शक्ति है। विसूचिका (हैज़ा), प्लेग (ताऊन) आदि भयानक रोगोंके जीवाणु एक दिनकी धूप में—यदि रोगीके बिस्तर आदिको गरम छत वा रेतपर फैला दिया जाय—नष्ट हो जाते हैं। जन साधारणका ध्यान इस ओर लाना शिक्षित मात्रका कर्तव्य है।

वायु—हवा भी, विशेषतः उसकी आक्सि-जन (ओषजन), जीवाणुनाशक शक्ति रखती है। इसीलिए रोगी गृहके दर्वाजे वा खिड़कियोंको यथा सम्भव खुला रखना चाहिये। यक्ष्माके रोगीके लिए विशुद्ध वायु ही प्रधान औषध समझनी चाहिये।

जल—जल यद्यपि साक्षात् जीवाणुओंको नहीं मारता, परन्तु धोनेसे विशेषकर यदि साबुनका व्यवहार किया जाय तो हाथ और रोगीके कपड़े, जीवाणुओंके घुलकर बह जानेसे, स्वच्छ हो जाते हैं। स्पष्ट है कि धोने वा पीनेका पानी पहिले ही दूषित न होना चाहिये।

अग्नि—यह सबसे उपयोगी और सुलभ जीवाणुनाशक साधन है। रोगीके मलमूत्रमें लकड़ी आदिका बुरादा मिला कर आगमें डाल देना अच्छा है। यक्ष्माके रोगीके लिए लेखक मामूली लुटिया वा कुल्हियाके अन्दर मिट्टीके तेल मिले हुए बुरादे पर थूकना उचित समझता है, जो थांसके साथ उड़ने नहीं पाता और आसानीसे जल जाता है। जलके सहयोगसे अग्नि (उबलता हुआ पानी) एक अत्युपकारी जीवाणुनाशक साधन है। बहुधा जीवाणु इससे नष्ट हो जाते हैं। हैजेके दिनोंमें जल उबालकर पीना चाहिये और कोई भी चीज बिना उबाले न खानी चाहिये। उन दिनों पान, हरे फल और चटनी आदि न खानी चाहिये, जिनका बिना उबाले ही व्यवहार किया जाता है। स्पष्ट है कि कच्चे दूधकी लस्सी शर्बत आदि भी व्यवहारके योग्य नहीं हैं।

१—बोरिक एसिड और सुहागा

बोरिक एसिड सुहागेसे निकाला हुआ श्वेत रंगका चिकना निर्दोष जीवाणु नाशक पदार्थ है, पर इसकी जीवाणुनाशक-शक्ति कम है, इसका तेज़ घोल (फी छटांक २ माशे) बच्चोंके "फीडिंग बौटल्" और "चटनी" आदि धोनेमें काम आता है। यही घोल साधारणतया आँख दुखनेमें चक्षु-धौत रूपसे दिनमें कई बार टपकाया जा सकता है।

गरम तेज घोलमें दो तीन तह साफ कपड़ा डाल कर और उसको निचोड़ कर नये फोड़ेके ऊपर रखकर उपरसे रुईका गाला और केले आदिका पत्ता रखकर बांध देनेसे फोड़ा तहलील हो जाता है, नहीं तो यही पुलटिसकी तरह फोड़ेको पकाकर उसकी पीड़ा कम कर देता है। साधारण आटेमें आठवां भाग वा कुछ जियादा बोरिक ऐसिड मिलाकर और पानीके साथ पका लेनेसे भी बहुत अच्छी पुलटिस बनती है। इसमें पकते समय थाड़ीसी चिकनाई डाल देना भी अच्छा है, जिससे वह चिपटती नहीं। इसका हल्का गरम लोशन (१ सेर पानीमें १ तो०) "वस्तियन्त्र" (Douche) द्वारा स्त्रियोंके लिए धौत रूपसे व्यवहार किया जाता है।

चूर्णके रूपसे यह व्रणके चारों ओर छिड़का जाता है और दूषित व्रणोंमें समान भाग आइडोफार्मके साथ मिलाकर उनपर छिड़का जाता है। त्वचापर कार्बोलिक लोशन लगाकर बोरिक पाउडर लगा देनेसे वह त्वचाके रोम कूपोंके अन्दर उतर कर उनको शुद्ध करता है। तिगुने जिंक औक्साइड और फ्रेंचचौक (सेलखड़ी) के साथ मिलाकर साधारण मरोरी आदि फुन्सियों पर लगा सकते हैं।

सादे मरहम वा "मोम रौग़न" (मोम १: घी ३) वेसलीन, दशवां भाग बोरिक ऐसिड मिलाकर एक निर्दोष और उपयोगी मरहम बनाया जा सकता है, जो सब प्रकारके व्रणोंको लाभदायक है।

आधे माशेकी मात्रामें इसका वस्तिशोधकके रूपमें खानेमें व्यवहार हो सकता है।

सुहागा—जो गुण बोरिक ऐसिडके हैं वही सुहागेके भी हैं, पर इसके अतिरिक्त यह खारी होनेके कारण त्वचाके मैलको साबुनकी तरह साफ़ कर सकता है। लेखक ज़च्चाके बांधनेके कपड़ोंको पहिले सुहागेके घोलमें उबाल कर धूपमें सुखा लेना पसन्द करता है, और अन्य जीवाणुनाशक ओषधिके अभावमें सुहागेके घोलका जच्चा खानेमें व्यवहार करना पसन्द करता है।

सुहागेकी खील शहदमें मिलाकर लगानेसे मुखके घावोंको लाभ पहुँचता है। आधेसे १ माशे तककी मात्रामें सुहागेका आवश्यकता होनेपर अम्ल शूलके लिए तथा बदहज़्मी आदिमें व्यवहार हो सकता है। परन्तु क्षार होनेके कारण इसका अधिक मात्रामें व्यवहार आमाशयकी क्रियाको व्याघात पहुँचाता है। खाली पेट दूधके साथ कुछ काल तक सेवन करनेसे मृगी रोगके लिए यह लाभदायक है।

२—परमेनगनेट औव पोटास।

यह भी पूर्वोक्त ओषधकी तरह एक निर्दोष जीवाणुनाशक पदार्थ है, जिसके घोलका, प्रायः तीन पाव शुद्ध जलमें १ माशा ओषधि मिलाकर (जिसमें स्वच्छ गहरा फलसई रंग आजाय) घरेलू तौर पर व्यवहार होता है। मैलेबर्तन वा जलमें घोलनेसे इसका रंग गदला मटीला बन जाता है, जिसको कि निश्क्रय समझना चाहिये। हैज़ेके दिनोंमें पर्याप्त मात्रा (१ छटांक) औषध १ डोल पानीमें घोलकर कुंएके अन्दर डाल देना चाहिये। यदि आध घण्टे पीछे भी हल्का फलसई रंग दिखाई दे, तो पर्याप्त समझना चाहिये, नहीं तो फिर थोड़ा बहुत और डालना चाहिये। चौबीस घण्टेमें उसका रंग बिल्कुल जाता रहता है और जल बिल्कुल शुद्ध हो जाता है।

घरेलू तौर पर इसका वस्तियन्त्र (douche) के द्वारा विशेष कर स्त्रियोंके रोगोंमें धौत रूपसे व्यहार होता है। पुरुषोंके लिए भी अज्ञाता स्त्री सहवासके अनन्तर इसका धौत मूत्र नालीके अन्दर तथा बाहरसे व्यवहार करना उष्णवात (सुज़ाक) का निवारक है। अतएव जनतामें इसका प्रचार वांछनीय है। इसमें एक मात्र दोष यह है कि इससे कपड़े और हाथोंमें धब्बे पड़ जाते हैं, जो औगज़ैलिक ऐसिड (Oxalic acid) और उसके अनन्तर हैफो सल्फाइट औव सोडा (Hypo sul-

phite of Soda) के घोलसे धोकर साफ किये जा सकते हैं, और इस रूपमें यह त्वचाको जीवाणु रहित करता है।

आभ्यन्तरिक रूपसे विसूचिका रोगमें इसका अन्त्रोंके शोधनके लिए व्यवहार होता है, जिसके लिए पार्क डेविस कम्पनी की १ रत्ती (२ ग्रेन) की "आन्त्रिक गोलियां" आध आध घण्टे के अन्तरसे १२ या २४ घण्टे तक दी जा सकती हैं—जब तक कि दस्तका रंग हरा नहीं हो जाय। यह आमाशय से निकल कर अपना प्रभाव आंतोंके अन्दर करती हैं। सबसे पहले इस घटनाका अस्मद्देशीय डा० पन्तने आविष्कार किया था। यही चिकित्सा अब डा० रौजर्सके नामसे प्रसिद्ध है। यही गोलियां रजोनिस्सारक रूपसे भी दिनमें ३ बार दी जा सकती हैं। यह अफीमके जहरको भी नष्ट करता है, जिसके लिए घोलका व्यवहार होना चाहिये। साधारणतः जितनी अफीम खाई गई हो, उतने ही अनुमानिक (१ माशा) औषधि घोल रूपमें पिलाकर पीछे कै करा देनी चाहिये। सांप, विच्छूके काटनेमें भी यह लाभदायक है। इसके लिए काटे स्थानसे ऊपर बंधन बांधकर तेज़ चाकू वा नश्तर से डंसे हुए स्थानको खोलकर रक्त निकाल देना चाहिये और खुले घावके अन्दर पोटासियम परमेंगनेटके दानोंको रगड़ देना चाहिये। इसके अनन्तर बंधन खोल देना चाहिये।

३—कार्बोलिक ऐसिड

यह तारकोलसे निकाला हुआ एक विष है, जो जीवाणु नाशक होनेके कारण शल्य चिकित्सामें व्यवहृत होता है। साधारण अवस्थामें यह बुकनीदार होता है, पर बोतलको गरम जलमें रखने से अथवा एक पौण्ड कार्बोलिक ऐसिडकी बोतलमें करीब एक औन्स शुद्ध जल मिला देनेसे यह पिघल कर तरल बन जाता है; इसको शीशेकी डाटदार गहरे नारँगी रंगकी बोतलमें रखना चाहिये।

अधिकतर इसका बाहरी तौर पर व्यवहार होता है। फुरैरीसे लेकर यदि त्वचापर यह छुआया जाय तो अन्य तेज़ाबोंकी तरह दाह पैदा करता है, पर त्वचाकी नाड़ियां सुन्न पड़ जानेके कारण तुरन्त ही ठण्डक पड़ जाती है। इसलिए छोटी शल्य क्रियाओं (operation) में चीरा लगानेसे पहिले ही इसको लगा देते हैं, जिससे तकलीफ कम होती है। इसी तरह पर तरल कार्बोलिक ऐसिड कुत्ते आदिके काटे जख्म पर लगा देनेसे लाभ होता है।

छोटे जख्मोंको धोनेके लिए तीनपाव (२४ औन्स) पानीमें ३ ड्राम (१२ माशे) कार्बोलिक घोल कर व्यवहार करते है, परन्तु कभी कभी ऐसा घोल शरीरके प्रान्त (उँगली आदि) पर बांधे रखनेसे जहर चढ़ कर जाता है और चार हफ्ते पीछे स्थानीय मृत्यु (gangrene) की सम्भावना रहती है।

जले जख्मों पर ६ माशे (३० मिनिम) कार्बोलिक ऐसिडको १ पाव तिल्लीके तेलमें (जो पहिले गरम करके ठंडा कर लिया जाय) मिलाकर लगानेसे दाह कम हो जाता है। अन्य प्रकारकी त्वचाकी खुजलाहट (जैसी कि कामला, पित्ती उछलने आदिमें होती है) के लिए इससे ताक़तवर तेल (१० भाग तेलमें १ भाग एसिड) व्यवहार किया जा सकता है। कार्बोलिक ऐसिडमें समान भाग ग्लिसरीन तथा उससे अठगुना जल मिलाकर जो तेज घोल बनता है उसको भी उपर्युक्त दशामें शरीर पर लगाया जा सकता है। याद रखना चाहिये कि मध्य शरीर पर कार्बोलिक ऐसिड के घोलसे वैसी स्थानीय मृत्यु नहीं होती जैसी उँगली आदि प्रान्तों में हो सकती है।

कार्बोलिक ऐसिडका मरहमके रूपमें भी (१ माशा ढाई तोले साधारण मरहममें मिलाकर) गुदा आदि स्थानोंकी खुजलीमें व्यवहार होता है।

इसका एक बहुत उपकारी योग निम्न लिखित है:—१ भाग कार्बोलिक ऐसिड, ३ भाग काफ़ूर मिलाकर एक शीशेकी डाटवाली बोतलमें रखलो; चौबीस घण्टेके अन्दर यह पिघल कर तेलसा बन जायगा। इस योगमें कण्डू (खाज) नाशक गुण

रहने पर भी यह दाहक नहीं है, और मैले वा ताज़ा जख्मोंमें फुरैरी लगानेसे उनको शुद्ध करता है। छोटी फुरैरी दांतकी खोखलमें रखनेसे तुरन्त ही दर्द मिट जाता है। तीन चार गुने तेलमें मिलाकर यह कानके दर्दमें भी डाला जा सकता है तथा कण्डू निवारणके रूपसे भी व्यवहृत हो सकता है।

१ मिनिम मात्रामें बिस्मथ सब नाइट्रेट १५ ग्रेनके साथ सेवन करनेसे दस्त और कै को फायदा करता है।

नोटः—तारकोल गणके और कई जीवाणु नाशक पदार्थ घरेलू तौर पर काममें आते हैं, जैसे "लाइसोल," "साइलिन," "फिलीन" इत्यादि। यह कार्बोलिक एसिडकी तरह ज़हरीले नहीं होते, और इनके व्यवहारका तरीका बोतल पर लिखा होता है।

४—आयोडीन और आयडोफार्म

आयोडीनके दाने परमेंगनेट ऑफ पोटासके रंगके से होते हैं, पर इसकी बू विचित्र होती है और जल तथा एल्कोहोलके साथ मिलानेसे रसौतकी घोलकी तरहका रंग पैदा हो जाता है। याद रखना चाहिये कि ठोस आयोडीन त्वचापर लगानेसे त्वचामें जलन पैदा करता है और धातकी चीजोंपर भी प्रभाव करता है। अतएव सावधानीसे कांचके पलड़ों पर इसे तोलना चाहिये।

जीवाणु नाशक रूपसे आयोडीनका साधारण टिंचर आयोडीन अथवा रेक्टिफाइड स्पिरिटमें दो प्रतिशत (१० ग्रेन फ़ी औन्स) घोल व्यवहार होता है। इसको फुरैरीके द्वारा जख्मों पर बिना धोये ही लगाना चाहिये; कारण पानी इसके शरीरके अन्दर प्रवेश करनेमें बाधक होता है। यद्यपि जख्मपर लगानेसे बड़ी जलन होती है तथापि इससे मैले जख्म भी शुद्ध हो जाते हैं। ऑपरेशनोंसे पूर्व सूखी त्वचापर पूर्वोक्त आयोडीनका घोल लगाना ऐसा लाभदायक सिद्ध हुआ है कि कार्बोलिक लोशनकी गद्दी बांधना अब प्रायः उठ गया है। १ ड्राम टिंचर आयोडीन १ गिलास (पावभर) पानीमें मिलाकर दांतोंकी जड़में पीव पड़ जानेपर कुल्लीकी तौरपर व्यवहृत होता है।

फूली हुई गिल्टी वा अन्य प्रदाह युक्त अवयवोंके ऊपर साधारण टिंचर आयोडीनका बारम्बार लगाना वा तेज टिंचर आयोडीन (जो चौगुनी ताकतका होता है) एक दो दफे लगाना प्रति-प्रदाह उत्पन्न करके (त्वचाके ऊपर प्रदाह कर भीतरी प्रदाहको) लाभ पहुंचाता है। अधिक बार लगानेसे त्वचा उधड़ जाती है, और पुनर्बार उस पर आयोडीन लगानेसे बड़ी ही तकलीफ होती है। ऐसी दशामें त्वचाको स्पिरिटसे धोकर आटेकी पुलटिस बांध देनी चाहिये।

कभी कभी सीनेके दर्दके लिए टिंचरकी जगह आयोडीनका मरहम काम आता है। आयोडीनका ताजा मरहम यदि बराबर हिस्सा मोमरोगन (मोम एक भाग घी तीन भाग) के साथ मिलाकर बिवाइयोंमें लगाया जाय, तो बड़ा ही लाभ होता है।

टिंचर आयोडीन शुरू जुखाममें सूँघनेसे भी लाभ होता है, और पुराने यक्ष्मा रोगमें इसका भपारा (गरम पानीकी बोतलमें आधाड्राम टिंचर डालकर) सुबह शाम सुंघानेसे फायदा करता है।

आयडोफार्म—यह एक पीले रंगका बदबूदार चूर्ण है, जो पीव पड़े हुए जख्मों पर छिड़का जाता है। इसको प्रायः बोरिक एसिडके साथ मिला लेते हैं। यक्ष्मा जनित व्रणोंमें यह विशेष कर उपकारी है। अतएव इसको दश गुने तैल वा गिलसिरीनमें मिलाकर पकी हुई गिल्टी वा ठण्डे फोड़े अथवा बहते कानोंके अन्दर डालना लाभदायक है। टिंचर आयोडीन और आयडोफार्म छोटी मात्राओंमें भिन्न भिन्न रोगोंमें खाया भी जाता है।

५—क्लोरीन

यह एक वायु है जो आयोडीनकी तरह जीवाणु नाशक शक्ति रखती है। गत युद्धमें जलकी शुद्धि तथा घावोंके धोनेमें क्लोरीन बहुत काम आती थी। पहले इसका पाखानोंकी सफाईके लिए व्यवहार

होता था जिनमें क्लोरीनेटेड लाइम) हरिण युक्त चूना) का घोल डाल दिया जाता था। पर यह पदार्थ खुला रखे रहनेसे कुछ दिनोंमें वीर्यहीन हो जाता है, अर्थात् उसमेंसे क्लोरीन निकल जाती है।

आजकल क्लोरीनका एक तेज़ घोल 'क्लोरोजन' के नामसे बिकता है। इस पदार्थकी पाँच बूँद दश सेर पानीके लिए, और साधारण कुओंके लिए आधेसे एक छटांक तक पर्याप्त होती है। इसमें पोटासियमपरमैंगनेट की तरह कोई रङ्ग नहीं, पर थोड़ी सी बू होती है। इससे तुरन्त ही मोतीझिरा और हैज़ेके जीवाणु मर जाते हैं। इसके तेज़ घोल में हरेफल वा पान पोदीना आदिको हैज़ेके दिनोंमें आध घण्टे तक भिगो रखना चाहिये कि जिससे वह निर्दोष हो जायें।

शल्य क्रियाके लिए 'युसोल' और 'यूपैड' नामके दो क्लोरीनके योग व्यवहार होते हैं। युपैड पूर्वोक्त ताज़ा क्लोरीनेटेडलाइम और समान भाग बोरिक एसिडका मिश्रण है, जो कि साफ उबाले हुये कपड़ेके टुकड़ोंके बीचमें रखकर तर करके ज़ख़म पर बाँधा जाता है। यूसोल उसीका घोल है (एक सेरमें २ तोले); परन्तु लेखक क्लोरोजन के द्वारा यूसोल बनाना पसन्द करता है, जिसकी विधि बोतल पर लिखी रहती है। यूसोलमें कोई विषैला प्रभाव नहीं होता; अतएव घरेलू तौर पर व्यवहार किया जा सकता है। पूय दन्त (पयोरियाएल्भिओलेरिस) रोगमें कुल्लीके लिए यह बहुत अच्छा और सस्ता योग है, यद्यपि हैड्रोजन पर औक्लाइड उससे भी अच्छी चीज़ है।

यूसोलकी तरह एक और निम्नलिखित घोल है जो कि 'डेकिन् साहबका घोल' कहलाता है। दस सेर (लीटर) पानीमें ३२तोले (८०० ग्राम) बुकनीदार सोडा कार्बोनेट (न कि बाई कार्बोनेट) घोलकर उसमें १६ तोले (२०० ग्राम) ताजा क्लोरीनेटेडलाइम डालकर खूब हिलायें और आध घण्टे तक रखदें। इसके बाद निथार कर छान लें और साफ घोलके अन्दर तीन तोले (४० ग्राम) बोरिक एसिड डालकर घोल लें। यह बहुत ही सस्ता है और इसका बनाना भी आसान है। 'क्लोरोजन' भी इसी प्रकारका एक तेज़ घोल है।

(६) हैड्रोजनपर औक्साइड

इसकी क्रिया औक्सिजन (ओषजन) वायुपर निर्भर है। यह भी रखे रहनेसे वीर्यहीन हो जाता है। इसका कर्णपूय, दन्तपूय, और नाड़ीव्रण (नासूर) आदिमें व्यवहार होता है। नासूरके अन्दर, जिसका मुँह चौड़ा हो, दस बीस बूँद वा अधिक, खालिस वा अधिक पानी मिलाकर हैड्रोजन-पर-औक्लाइडको पिचकारीके द्वारा डालनेसे उसमेंसे निकली हुयी औक्सिजनके द्वारा न केवल व्रण शुद्धि ही होती है बल्कि बहुत सी पीब भी निकल जाती है। इसके व्यवहार करनेसे प्रायः कानमें पिचकारी देनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

(७) सुगन्धित द्रव्य

अक्सर सुगन्धित द्रव्य, जैसे कि काफूर, पोदीना तथा अजवायनका फूल (सत) जीवाणु नाशक प्रभाव भी रखते हैं। इन तीनोंको आपसमें मिलाकर रखदेनेसे तेलसा बनजाता है, जो बाजारोंमें भिन्न भिन्न नामसे देशी औषधि स्वरूप बिकता है। लेखक इनको यथाक्रम ३: २: १ के अनुपातमें मिलाना पसन्द करता है। इसकी मात्रा ३—६ बूंद है, जो चीनी पर डालकर पेटकादर्द बदहज़मी यहां तक कि हैज़ेमें भी लाभदायक होता है। दांतकी खोखलमें छोटी फुरैरी रखनेसे तुरन्त दर्द मिट जाता है। तिगुना तेल मिलाकर कानके दर्दमें डाला जा सकता है और सीने तथा जोड़ोंके दर्दमें मलकर बांध देनेसे लाभदायक होता है। उठती हुई छोटी फुन्सीपर चुपड़ देनेसे वह बगैर पकेही पटक जाती हैं। अतएव मधुमेह (डाइबिटीज़) वालोंके लिए बहुत ही उपकारी है, जिनके फोड़े अक्सर कार्बङ्किल बन जाते हैं। इसकी दो चार बूंद रूमाल पर डालकर सूंघना जुकाम, इन्फ्लुएंज़ा आदि श्वासपथके रोगोंके लिए लाभदायक है।

अन्य प्रकारके तरल द्रव्यभी जैसे यूकेलिप्टस्, विन्टरग्रीन, टर्पिन्टाइन् आदिके तेल भी जीवाणु नाशक प्रभाव रखते हैं, जो तेल मिलाकर दर्द-की जगह पर मल दिये जाते हैं। घाव पर जीवाणु नाशक रूपमें भी इनका व्यवहार हो सकता है।

(८) धातुज घोल

पारेका रस कर्पूर; ताँबेका तूतिया; जस्तसे बना जिंकक्लोराइड वा सल्फोकार्बोनेट; चांदीका सिल्वर-नाइट्रेट वा प्रोटार्गल यथेष्ट जीवाणु नाशक शक्ति रखते हैं। इनमेंसे पोटार्गलका व्यवहार चिकित्सक मात्रको जानना चाहिये, जिसका घोल १ माशा फी औंस आँखोंके पूय जनक रोगके लिए अत्युपकारी है। जस्तकेसूखेयोग जैसे कि जिंक औक्साइड् वा ओलियो स्टियोरेट् वा 'जिंकपरहाइड्रोल' (मर्कका) मरहमके साथ लगानेसे व्रण जल्दी अच्छे हो जाते हैं।

—वी० के० मित्र

घृणा

गताङ्कमें हम प्रेमके विषयमें कुछ निवेदन कर चुके हैं। अब घृणाके विषयमें कुछ कहेंगे।

जिस तरह प्रेमके विषयमें यह बात कही जा सकती है कि जिनके संस्कार एकसे हैं उनमें प्रेम प्रथम दर्शनके साथ ही जागृत हो जाता वैसे ही घृणाके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये। हमें एक ऐसा उदाहरण मालूम है जिसमें एक महाशय एक अन्य महाशयके प्रति पहली भेंटके होने पर ही घोर घृणाके भाव रखने लगे। यह घृणा कम न हुई, बराबर बढ़ती ही गई। न उसके उत्पन्न होनेका कोई कारण था और न किसी उपायके अवलम्बनसे वह हृदयसे पृथक् की जा सकी। ऐसी घृणाकी धाराके पथके विषयमें कोई बात निश्चित रूपसे नहीं कही जा सकती, परन्तु साथ ही यह बात भी सत्य है कि उसके उत्पन्न होनेका यही एक ढङ्ग नहीं है। जैसा ही मनमाना उसका मार्ग है, वैसा ही बेढंगा उसका उद्गम भी है; अनेक भिन्न भिन्न पहाड़ोंसे यह नदी निकलती है और सौभाग्यसे, प्रथमोक्त उद्गम-स्थलके विपरीत वह मानव बुद्धि-चक्षुसे देखे जा सकते हैं। वह क्या हैं ? अब उन्हें हम एक एक करके बतलायेंगे।

एक प्रधान कारण, जिससे दो व्यक्तियोंके हृदयमें एक दूसरेके प्रति घृणा उत्पन्न होती है यह है कि उनके व्यक्ति-गत स्वार्थों पर धक्का लगता है। चाहे जैसे दो आदमियोंको ले लीजिये, इतना अवश्य ख़याल रखना पड़ेगा कि उनमें एक दूसरेके विरुद्ध भाव उत्पन्न करनेवाले जन्म और व्यक्तित्वसे सम्बन्ध रखनेवाले कोई संस्कार न हों, तो आप देखेंगे कि साधारण तौरसे वह आपस-में भलमनसाहतसे पेश आते हैं और तब तक एक दूसरेको कोई क्षति पहुँचानेकी चेष्टा नहीं करते जब तक कि उनमें प्रतिस्पर्द्धाका भाव उदित नहीं होता। हमने 'साधारण तौरसे' नामक शब्द-समूह-का प्रयोग गत वाक्यमें मतलबसे किया है; क्योंकि पक्षपात-मूलक सहज संस्कारोंकी अनुपस्थितिमें भी कितनी ही ऐसी बातें, जिनका उल्लेख हम आगे करेंगे, उत्पन्न हो सकती हैं, जो यदि उसके बराबर नहीं तो उससे थोड़ा ही कम महत्व रखती हैं और जिनका क्रियाशील न होना इसके लिए अत्यन्त आवश्यक है कि वह भलमनसीका बर्त्ताव, जिसकी चर्चा हम ऊपर कर आये हैं, अपनी जड़ जमा सके।

जिन स्वार्थोंके संघर्षसे झगड़ोंका खड़ा होना, घृणाका उत्पन्न होना, सम्भव है, वह क्या हैं, अब यह विचारणीय है। इस प्रश्नका उत्तर पानेके लिए हमें मनुष्यके इच्छा-जगतमें, लालसा-संसारमें, प्रवेश करना होगा। जिन्हें किसी वस्तु-की इच्छा ही नहीं है, उनका कोई स्वार्थ नहीं हो सकता, किन्तु ऐसे इने गिने ही योगी पुरुष हैं जो

इस प्रकार लालसासे परे और जीवनसे मुक्त होते हैं। संसारमें बाहुल्य है ऐसे ही व्यक्तियोंका, ऐसे ही प्राणियोंका, जिनके हृदयमें कोई न कोई स्वार्थ रहता ही है। यह स्वार्थ दो तरहका होता है। एकका सम्बन्ध तो रोटीसे है और दूसरेका सम्बन्ध हृदय अथवा मस्तिष्ककी उपज मानापमानादि भावों से है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि पशुओंमें दोनों प्रकारके स्वार्थ मनुष्यके स्वार्थकी अपेक्षा अधिक क्रियाशील होते हैं कि नहीं, परन्तु इतना तो सत्य है कि उनमें भी रोटीके लिए, पेटके लिए लड़ाई हो जाती है, तथा जब किसी पशु विशेषका कुछ अपमान होता है, दूसरा पशु उसको ऐंड़ दिखाता है; तब यदि वह बलवान् हुआ तो लड़नेको उद्यत हो जाता है।

मनुष्य आराम चाहता है, भोजनकी सामग्रीमें सुविधा चाहता है, इसलिए ज़ब कोई उसके मार्गमें कांटे बखेरता है, तब उसको बुरा मालूम होता है। मनुष्य अभिमानी जीव है, आत्म-गौरव और स्वाभिमानके भाव उसे उन्मत्त कर देते हैं, अतएव इस सम्बन्धमें भी यदि कोई उसे क्षति पहुंचाना चाहता है तो वह उसका क्रोध-पात्र होता है। फिर मनुष्य अपने हृदयकी सन्तुष्टिके लिए प्रेमका भूखा भी होता है, और जब उसकी प्रेयसीको कोई अपना बनाना चाहता है, तब उसकी कोप-ज्वाला धधक उठती है। गत यूरोपीय युद्ध भिन्न भिन्न राष्ट्रोंकी रोटीके कारण उत्पन्न होनेवाली लड़ाई थी। भारतवर्षका महाभारत युद्ध मानापमानके कारण ठना था; द्रौपदीका अपमान उसका मुख्य हेतु था और रामायणका समर कामुक रावण द्वारा श्री रामचन्द्रकी प्रेम-पात्री सीताके अपहरणके कारण हुआ था। यहां हमें एक बात बतला देनी आवश्यक जान पड़ती है। जिस समय हमारे स्वार्थ पर आघात होता है, उसी समय हमारी नस नसमें प्रतिद्वन्द्वीके प्रति घृणाका भाव भर जाता है। यही घृणा उद्दाम होनेपर क्रोधका रूप धारण कर लेती है।

घृणाके उत्पन्न होनेके जिन कारणोंकी चर्चा ऊपर की गई है वह बहुत साधारण हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि जो हमारा अनभल सोचेगा उसके प्रति हमारे हृदयमें घोर घृणा जागृत होगी ही, परन्तु जहां स्वार्थोंका कोई प्रश्न ही नहीं उठता, वहां घृणा कैसे उत्तेजित होती है, इसका उत्तर विचारणीय है। उदाहरणके लिए गोविन्द बड़ा सदाचारी युवक है, हम उसकी प्रशंसा करते हैं, उसे चाहते हैं; परन्तु हम ज्योंही सुनते हैं कि उसने एक निरपराध बच्चेको गला दबाकर मार डाला, या किसी बालिकाको झूठे प्रेमका प्रलोभन देकर उसकी हत्या कर डाली, तब क्यों उक्त व्यक्तिके प्रति हमारे हृदयमें प्रचण्ड घृणा जग जाती है और हम उसे 'नृशंस' 'अधम' आदिशब्दों की उपाधि देकर 'हरे! हरे!' 'शिव! शिव!' कहने लग जाते हैं?

मनुष्यमें सबसे विचित्र बात यह है कि वह ग़लतियां करता हुआ भी, पाप-मार्गमें प्रविष्ट होता हुआ भी, सत्य और धर्मके प्रति अपनी श्रद्धाको नहीं त्यागता। हमें ऐसे कई उदाहरण मालूम हैं जिनमें घोरसे घोर दुराचारमें प्रवृत्त हो सकने वाले व्यक्तियोंने दूसरोंकी अनाचार-शीलताके प्रति हार्दिक घृणा दिखलाई है, यह और कुछ नहीं मनुष्यकी सत्य-धर्म रुचि विषयक प्रवृत्तिका प्रत्यक्ष प्रमाण है। हमारा कहनेका मतलब यह है कि क्षुद्रता, मर्य्यादोल्लङ्घन-शीलता आदिके साथ ही साथ मनुष्यमें गम्भीरता भी है, और यही कारण है कि जब वह किसीको ऐसे कार्य्यमें संलग्न देखता है जो नैतिक दृष्टिसे आपत्ति-जनक होता है, तब वह रुष्ट और दुखी होता है। विशेष करके तब तो वह और भी अप्रसन्न होता है जब किसी सच्चरित्र, आदर्श जीवन बितानेवाले व्यक्तिको, जिसको पहले वह श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता था और जिसमें उसने देवत्वकी कल्पना कर रखी थी अनुचित कर्म्ममें रत देखता है। यह ठीक है कि स्वयं उसमें भी वैसे ही अवगुण और

दूषण विद्यमान हो सकते हैं, और उसका यह अधिकार कदापि नहीं कहा जा सकता कि वह अपने दुष्कर्म्मोंके रहते हुए भी औरों की गलतियों पर आंख डाले, परन्तु मनुष्यने उस आदर्श-चरित्र व्यक्तिकी पूजा किस लिए की थी? इसी लिए तो कि उसमें उसकी अपेक्षा विशिष्ट गुण विद्यमान हैं। जब साधारण मनुष्य अपनी ही कमज़ोरी उसमें भी पाता है, तब उसका हृदय निराश हो जाता है और उसमें विरक्ति उत्पन्न होती है। उक्त दुर्बलताके अतिरिक्त जब वह उसमें एक और ऐब यह पाता है कि वह समाजके सामने तो साधु महात्मा बननेका दम भरता है, किन्तु छिप छिप कर निन्दित कर्ममें निरत होता है, तब उसके मनमें उस आडम्बर-प्रिय ढोंगीके प्रति घृणाके भावका उदय होना स्वाभाविक ही है।

घृणा उत्पन्न होनेका दूसरा कारण तब आ उपस्थित होता है जब हम किसी समर्थ पुरुषको किसी दुर्बलता-विशेषका शिकार होते देखते हैं। उदाहरणके लिए मान लीजिये कि भगवानदास नामक व्यक्ति बड़ा धनवान है। लाखोंकी सम्पत्ति उसके पास है। अब यदि वह इतना कृपण है कि वह न स्वयम् उस धनका उपभोग करता है, न औरोंको करने देता है; कालके मुँहमें जानेवाले दुखी माता-पिताको औषधि इस कारण नहीं देता कि उसमें उसके टके खर्च होंगे, तब उसके प्रति हमारे हृदयमें घृणा उत्पन्न होगी ही। मनुष्य स्वार्थी होता हुआ भी अपने अन्य सम-जातीय व्यक्तियोंको निस्वार्थ देखना चाहता है और जब थोड़ा बहुत निस्वार्थ-भाव दिखा सकनेकी योग्यता रखता हुआ भी वह स्वार्थियोंमें भी अपनेको इतनी नीच श्रेणीका स्वार्थी प्रमाणित करता है कि अपने ही कुटुम्बियोंको खानेके लिए तरसाता है तब कौन ऐसा व्यक्ति है जो उसे चाहेगा। संसार अनित्य है, सम्पत्ति अपने साथ जायगी नहीं, फिर भी उसके साथ सेठ जीका इतना अनुराग है, इस दुर्बलताके कारण उनके ऊपर हमें तरस आता है, और यदि हम सहृदय कवि अथवा चरित्र-चित्रणके लिए मसाला जुटानेवाले नाटक-कार न हुए, तो हमें ऐसे व्यक्तिके ऊपर घृणा हुए बिना न रहेगी।

ऊपर हमने जो कुछ कथन किया है, सम्भव है उससे बहुत से लोग सहमत न हों। वह हमारी उक्त सम्मतिके विरुद्ध गोस्वामी तुलसीदास जीकी यह चौपाई पेश कर सकते हैं—

"समरथको नहिं दोष गुसाईं,
रवि, पावक, सुरसरिकी नाईं।"

परन्तु जो उदाहरण हमने ऊपर दिया है, उसमें और रवि, पावक, तथा सुरसरिमें बहुत अन्तर है। हम कह आये हैं कि मनुष्य सत्य और धर्मका विशिष्ट रूप देखनेके लिए सदैव लालायित रहता है। गङ्गामें जो दिव्य स्वरूप है, सूर्य्यमें जो असाधारण शक्ति है, अग्निमें जो उपकारिता है उसकी तुलनामें उनमें दोष बहुत कम हैं, उनका अवगुण-भाग गुणभागकी अपेक्षा बहुत न्यून हो जाता है और मनुष्य की आँखें सौन्दर्यकी इतनी भूखी रहती हैं कि वह उनकी दुर्बलताओंकी ओर आँख उठानेका बहुधा अवसर ही नहीं पाते। उक्त भगवानदास ही यदि मौका पड़नेपर परोपकारार्थ समुचित स्वार्थ-त्याग कर सकता, समय आनेपर यदि वह यह प्रमाणित कर सकता कि उसमें उदारता भी है, तो उसका दोष बहुत कुछ ढक जाता और वह साधारण तौरसे घृणाका पात्र न होता। यहां एक आपत्ति फिर खड़ी की जा सकती है और वह यह है कि मनुष्य इतना सहृदय नहीं है, वह अन्यके गुणोंको ग्रहण करनेके लिए, उनका आदर करनेके लिए इतना अधीर नहीं रहता जैसा कि हम बतला रहे हैं। यह कहा जा सकता है कि साधारणतया मनुष्यकी दृष्टि बुराइयोंकी ओर ही जाती है, गुणकी ओर आँख तो बहुत देरके बाद वह डालता है और कभी कभी तो डालता ही नहीं। यह कहना ठीक है; परन्तु दूषणोंकी ओर दृष्टि पहले डालनेका क्या यह मतलब नहीं है कि वह एक भी दूषण

नहीं देखना चाहता ? क्या उसकी इस प्रवृत्तिका यह आशय नहीं कि वह वर्त्तमान सौन्दर्यसे सन्तुष्ट नहीं है। उसे पूर्ण सुन्दरता चाहिये, अपूर्ण नहीं ? जो हो, इतना तो निर्विवाद है कि यदि गुणका अंश अवगुणके बराबर भी हुआ तो भी मनुष्य उससे घृणा नहीं करता, छिद्रान्वेषण वह भले ही करे।

सौन्दर्य्य भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न रूपोंमें प्रकट होता है, इतना ही नहीं देखनेवालेकी मनस्थिति कभी उसको कई गुना करके दिखलाती है, और कभी उसे विकृत करती है। सूर्य्य किसीको भगवानकी अनन्त विभूतिका ज्वलन्त स्वरूप समझ पड़ते हैं और किसीको केवल प्रचण्ड आगका गोला; गङ्गा किसीको देवीके रूपमें दिखाई पड़ती हैं और किसीके लिए केवल जलकी राशि जान पड़ती हैं; आग किसीके लिए आराध्य है और किसीके लिए केवल भोजन बनानेका साधन मात्र; सँसारका यह नियम है ही। इस रुचि-वैचित्र्यके फल-स्वरूप हमें ऐसे अनेक अवसर देखनेमें आते हैं जब बुरेसे बुरे आदमीको भी कोई न कोई सहानुभूति-प्रदर्शक मिल सकनेकी बात पर हम विस्मय प्रगट करते हैं। अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि एक वस्तु-विशेष सभीको प्रिय होगी अथवा सभी उससे घृणा करेंगे। इतना अवश्य सत्य है कि हमारी आदत वस्तु जब हमें निराश करेगी; जब वह सत्य, धर्म्म, और जीवनके अटल अनन्त सौन्दर्य्यकी ओर ले चलनेमें न समर्थ होगी; यही नहीं, जब वह पग पग पर हमारे मार्गमें कांटे डालेगी; तब हमें उससे घृणा हुए विना न रहेगी।

उदाहरणके लिए मान लीजिये कि राम कमलाके ऊपर अनुरक्त हुआ। पहले तो वह कमलामें ही विश्व-सौन्दर्य्य और संसार-यौवनोन्मादके सम्पूर्ण सारकी विद्यमानताका अनुभव करने लगा। यह भी मान लीजिये कि रामका हृदय विकास-शील है और वह नित्य नव नव सौन्दर्यका दर्शन करनेके लिए भूखा रहता है। अब यदि राम केवल अपने कुटुम्बियोंकी सेवा करके तृप्त नहीं होता और चाहता है कि दुखी देशका दैन्य दूर करनेके लिए सयत्न हो, जिससे सम्भवतः कमलाको थोड़ा क्लेश हो सकता है। सरलताके लिए कल्पना कर लीजिये कि राम लड़ाईमें जाना चाहता है और सारे जीवनकी सामग्रियोंके रहते हुए भी, जिनका प्रबन्ध रामने कर दिया है, कमलाकी विलासिता-पूर्ण रहन सहनमें बाधा पड़ती है, और कमला रामके शुभ कार्य्यमें कँटीली बेल बन कर तरह तरहसे उससे घर पर ही रहनेका आग्रह करती है, तो इसमें सन्देह नहीं कि रामकी सहानुभूति धीरे धीरे कमलाके ऊपरसे हट जायगी।

यदि रामकी स्वदेशभक्तिका वेग प्रबल होगा और वह कमलासे जी छुड़ाना चाहेगा तो वह उससे कहेगा कि तुम अपने प्रेमको और भी उदार, निर्मल और सुन्दर बनाओ और अपने प्यारकी सबलताके प्रमाणमें ही मुझे रण-क्षेत्रमें जाने दो। इसपर भी यदि कमला आग्रह करती ही जायगी, तो थोड़ी देर तक तो राम यही समझेगा कि कमलाके हृदयमें अवलोचित दुर्बलता है; परन्तु ज्यों ही उसे यह ज्ञात होगा कि कमलाके समस्त आग्रहका कारण विलासप्रियता है, न कि स्वच्छ प्रेम, तब उसके हृदयमें घृणाका संचार होगा और स्नेह-बन्धन टूट जायगा। कमला कितनी भी सुन्दरी क्यों न हो, राम उसको नहीं चाह सकेगा, क्योंकि जिस सौन्दर्यकी चाह रामको अब है, वह उसमें इस समय विद्यमान नहीं है। इस प्रकार पाठक देखेंगे कि दो व्यक्तियोंमें प्रेम जीवन भर तभी निभ सकता है जब दोनों एक दूसरेको उस सौन्दर्य्यका दर्शन कराते रहें जिसकी उन्हें भूख है। प्रायः ऐसा होता है कि जिसे एक व्यक्ति आज प्राणसे भी अधिक चाहता है उसे ही वह थोड़े दिनोंके बाद छोड़ कर जङ्गलको भाग जाता है और सन्यासी बनता है। प्रेमकी

परिवर्त्तन-शीलताका यही कारण है। नव नव सौन्दर्य्य-रसास्वादनकी यह बुभुक्षा अनेक प्रेमियों-के मनमें घृणा भरनेकी उत्तरदायिनी है। सभीको इससे सावधान रहना चाहिये। (अपूर्ण)

—गिरिजादत्त शुक्ल

युवाओंके प्रौढ़ मस्तिष्क

यः कहा जाता है कि युवकोंके मस्तिष्क प्रौढ़ नहीं होते, इसी कारण उनके विचार भी उतने आदरणीय और परिपक्व नहीं होते जितने वृद्धोंके; परन्तु यह कथन बहुत ठीक नहीं जान पड़ता। नीचे इस बातके कई प्रमाण दिये जाते हैं।

(१) हालमें ही डाकृर नील्स बोहर (Dr. Nils Bohr) को नोबेल पारितोषक मिला है। भौतिक शास्त्रमें सबसे बड़े आविष्कार करनेके उपलक्ष्यमें यह परितोषक उन्हें दिया गया है। अब उनकी उम्र ३७ वर्षकी है। जब वह २८ वर्षके थे तभी उन्होंने परमाणुओंकी रचनाके विषयमें एक साहस पूर्ण कल्पना की थी। उन्होंने बतलाया था कि परमाणुओंको भी एक प्रकारका सौर मंडल समझना चाहिये। इस सौर मंडलका सूर्य तो धन विद्युत्‌की केन्द्रस्थ मात्रा है और ग्रह ऋण विद्युत्‌के कण हैं, जो उसकी निरन्तर परिक्रमा करते रहते हैं।

(२) हेनरी मोज़ले (Henry Moseley) एक अंग्रेज़ सज्जन हैं, जिन्होंने सं० १६७० वि० में एक्स किरणोंके परावर्तन द्वारा रासायनिक विश्लेषणकी एक नवीन विधि निकाली थी और यह बतलाया था कि उज्जन और यूरेनियमके बीचमें ९२ मौलिक होने चाहियें, जिनमें से प्रायः ८८ मालूम हो चुके हैं। सं० १६७२ वि० में ही मोज़ले महोदयका देहान्त गैलीपोलीमें हुआ। उस समय वह केवल २८ वर्ष के थे।

(३) स्वान्त अरेन्यूस केवल २४ वर्षके थे जब उन्होंने अणु-विश्लेषणवाद (Ionic Theory) के सिद्धान्तकी कल्पना की थी। यह स्वीडिनके रहनेवाले थे।

(४) जर्मनी निवासी केक्यूल केवल २८ वर्ष के थे, जब उन्होंने "टैप" (Theory of Types) सिद्धान्त निकाला था और बादमें बेंज़ीनके छल्ले-दार अणु-सूत्रको कल्पना की थी।

(५) चौबीस वर्षकी उम्रमें बरथेलो महोदयने निर्माणात्मक रसायनकी नींव डाली और बेंज़ीन के यौगिकोंका संश्लेषण किया।

(६) उनत्तीस वर्षकी उम्रमें सर विलियम क्रुक्सने एक नवीन धातुका एक नवीन विधिसे आविष्कार किया था अर्थात् थैलियम धातुका उन्होंने रश्मि चित्रदर्शक यंत्रसे आविष्कार किया था।

(७) जर्मन एमिल फिशरने हैड्रेज़ीन प्रतिक्रियाका आविष्कार २३ वर्षकी उम्रमें ही किया था, जिससे शर्कराओंके संश्लेषण और विश्लेषण-का मार्ग खुल गया।

(८) अपने जीवनके १८वें वर्षमें परकिनने पहला कृत्रिम रंग "मौव" (mauve) बनाकर बड़े भारी व्यवसायका मार्ग प्रदर्शित किया।

(९) फ्रांसीसी पाश्चर २० वर्षके ही थे जब उन्हें टारटेरिक अम्लके दक्षिण-मुखी और उत्तर-मुखी रवे मिले, जिनको घुलाकर उन्होंने निष्क्रिय अम्ल बनाया।

(१०) उपरोक्त तीन प्रकारका टारटेरिक अम्ल क्योंकर उन्हीं अवयवोंसे संघटित हो जाता है, इस विषयमें नये सिद्धान्तकी कल्पना एक ही समयमें फ्रांसीसी लीबेल और डच वांट हाफने की। लीबेलकी अवस्था उस समय २७ वर्ष की थी और वांट हौफकी २२ वर्ष की। वांटहौफ उस समय विद्यार्थी थे। उनके वयोवृद्ध अध्यापकोंने उनके "पागलपन" का बड़ा मज़ाक उड़ाया था,

र पीछेसे उन्हें इस "पागल" के सामने सिर झुकाना पड़ा।

(११) आयंस्टीन महोदय १८ वर्षके ही थे जब उन्होंने "अपेक्षता वाद" की रचनाकी थी।

—मङ्गलानन्द

खद्दर और अर्थ शास्त्र

र्थ शास्त्रकी दुहाई देदेकर भारतके अनेक शुभेच्छुक खद्दरके विरुद्ध आवाज़ उठा रहे थे और चेतावनी दे रहे थे। कैथोलिक हीरेल्ड औव इण्डिया इस विषयमें लिखता है :—

"यह घटना कई बार हो चुकी है। अर्थ शास्त्रकी यह व्यवस्था थी कि खद्दर प्रचार निराशा पूर्ण है और असफल होगा। हमें यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य होता था। जो किसान वर्षमें ६ महीने गप्पें लड़ाया करते हैं, हुका पीने सोने और मुक़दमे बाज़ीमें सालके नौ महीने बिता देते हैं उनके लिए कातना और बुनना किस प्रकार हानिकारक हो सकता है। मेनचेस्टर गार्जियनने स्वीकार किया है कि अर्थ शास्त्रकी यह व्यवस्था गलत थी। खद्दर प्रचारका प्रभाव बड़ा गहरा पड़ा है और यह आन्दोलन मिटता नज़र नहीं आता। खद्दर बहुत ही सस्ता और उपयोगी कपड़ा है और भारत वासियोंके उपयुक्त भी है। आजकल भारतमें खद्दर पहनना एक फैशन भी हो गया है। सम्भवतः खद्दरका सस्तापन उसका सबसे बड़ा हिमायती है; कपड़ोंका खर्च प्रायः हर घरमें खद्दरके प्रयोग से ½ हो सकता है। खद्दर सस्ता ही नहीं होता किन्तु खूब चलता है और धोनेमें फटता भी कम है।"

भारतके विज्ञ अर्थशास्त्रियोंके लिए मेंचेस्टर के एक व्यवसायिक पत्रका इतना कहना काफी है।

मद्रासमें बालरक्षाका कार्य

द्रासकी कोरपोरेशन "जच्चा और बच्चा रक्षक विभाग" के कार्यका यदि गर्व करे तो अनुचित नहीं है। आजकल इस विभागका व्यय ४००००) प्रति वर्ष है, जो शीघ्र ही बढ़ जायगा। १९७४ वि० के पहले मद्रास नगरमें १००० पीछे ३०० बच्चे मर जाते थे। तदनन्तर उक्त विभागने कार्य प्रारम्भ किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि ३ वर्षमें ही मृत्यु संख्या ३०० प्रति हज़ारसे १७२ होगई। कारपोरेशनकी तरफसे शिक्षित दाइयां नियुक्त हैं, जो बिना फीस लिये काम करती हैं और नगरमें कई केन्द्र खोल दिये गये हैं, जिनमें बिना मूल्य शुद्ध दूध बांटा जाता है। दूध बांटनेका अच्छा प्रबंध करनेके लिए कोरपोरेशन एक गौशाला भी खोलनेवाला है।

प्रयागकी म्युनिसिपेलिटी अपने ओछे व्यक्तिगत झगड़ोंको छोड़कर कब ऐसे शुभकार्योंमें हाथ लगायेगी ?

क्या एक समयमें एक ही काम कर सकते हैं ?

जर्मनीमें एक लड़की है जिसकी अवस्था २१ वर्षकी है और जिसकी स्मरण शक्ति बड़ी चमत्कारिक है। वह एक ही समयमें कई काम कर सकती है। उदाहरणतया जर्मन गीत गाते हुए दायें हाथसे अंग्रेज़ी वाक्य और बायें हाथसे फ्रांसीसी वाक्य लिख सकती है। इसी प्रकार जो आप बोलते जायँगे वह एक हाथसे लिखती जायगी और दूसरे हाथसे गणितके प्रश्न निकालती जायगी। इसी प्रकार किसी वाक्यको दो तरफसे दोनों हाथोंसे वह लिखती जाती है और बीचमें लाकर समाप्त कर देती है।

घरेलू मक्खीकी शरीर-रचना

ठी हुई मक्खी यदि देखी जाय तो मालूम होता है कि उसके शरीरके तीन भाग हैं, जो अलग अलग दिखाई देते हैं। पहले भागमें शिर तथा मुंह हैं, दूसरा बीचका धड़ है और तीसरा शरीरका पिछला हिस्सा है। चित्र ४२ में यह भाग स्पष्ट रूपसे दीख पड़ते हैं।

पहला भाग

यह भाग मक्खीके शरीरसे लगभग बिलकुल अलहदा होता है। यह शरीरसे गर्दन द्वारा जुड़ा हुआ है। मक्खीकी गर्दन बहुत ही पतली और छोटी होती है। जब तक मक्खी अपना सिर नहीं हिलाती गरदन दिखाई भी नहीं पड़ती। परन्तु शरीरकी बनावट शरीरके शेष भागोंसे इतनी भिन्न और विशेष प्रकारकी होती है कि गर्दनके न दिखाई
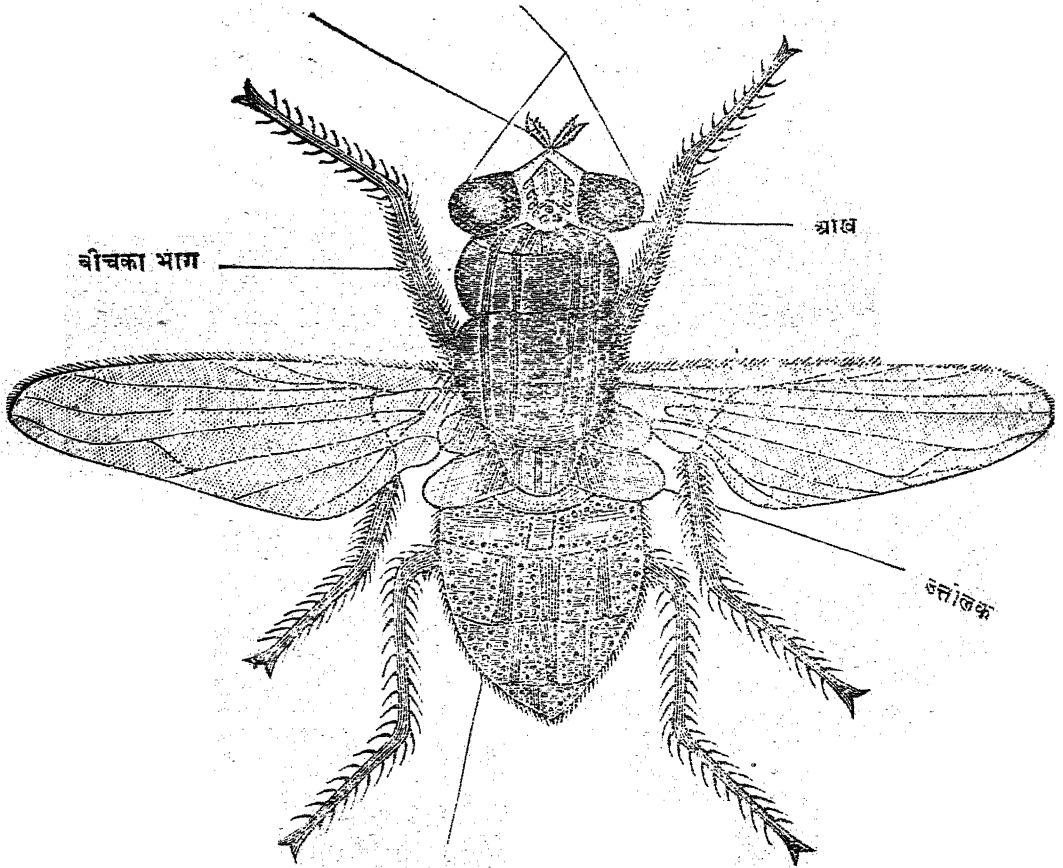
गंध ग्रहणी इन्द्रिय
नेत्र
आंख
बीचका भाग
संतोलक
पिछला भाग

चित्र ४२—मक्खी

देनेपर भी वह अलग एक घुन्डीके समान दिखाई देती है। इस घुन्डी रूपी शिरमें जो चीज पहले दृष्टिगोचर होती है वह दोनों ओर जड़े हुए दो लाल नग हैं। यही दोनों मक्खीकी आखें हैं। शिर तथा मुहंमें दूसरी विचित्र चीज़ उसकी थूथनी है। मक्खी जब बैठी होती है उस समय भी वह कुछ करती ही रहती है। वह इस थूथनीको बार बार निकालकर वस्तुओंपर लगाती रहती है और उसे फिर सिकोड़ लेती है। मक्खीका यह काम सहजमें देखा जा सकता है। मक्खी अपने शिरके नीचेके भागसे एक पतली सी जिह्वा जैसी कोई चीज़ निकालती है; जिस वस्तु पर बैठी होती है उस पर उसे लगाती है और पुनः भीतर को खींच लेती है। यही थूथनी है। यह बहुत ही महत्वका अंग विशेष है।

सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा देखा जाय तो पता चलता है कि इनकी रचना बड़ी विचित्र है और यही मक्खीकी गन्ध ग्राहक इन्द्रियां हैं। (चित्र ४२) इसी तरह शिर तथा मुँहको सूक्ष्मयन्त्र द्वारा देखनेसे पता चलता है कि मक्खीके शिरकी ऊपर की तरफ दोनों आंखोंके बीचमें जो थोड़ी सी जगह है उसमें तीन गोलाकार नेत्र (Ocelli) विद्यमान हैं। यह तीनों एक प्रकारका समकोण त्रिभुज (Equilateral Triangle) बनाती हैं और मक्खीकी वास्तविक आंखें यही हैं। इन आंखों तथा दोनों बड़े नेत्रोंमें, जो लाल नगसे दूर से ही दिखाई देते हैं, क्या पारस्परिक सम्बन्ध है, यह बताना कठिन है। सम्भव है इन पांचों नेत्रों द्वारा जो वस्तुओंकी छाया या प्रतिबिम्ब बनता हो उसका ज्ञान दृष्टि संस्थान (visual centre) को एक साथ

चित्र ४३
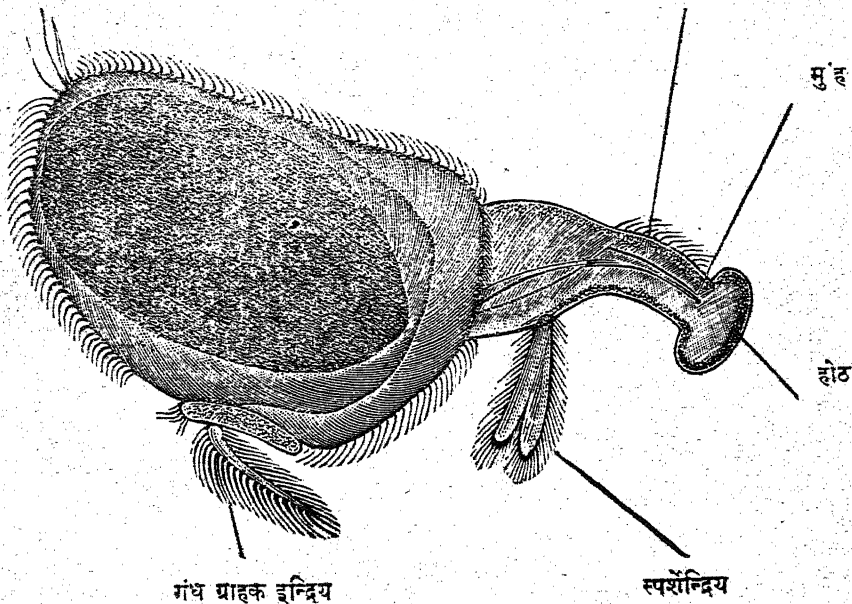
मक्खीके सिरमें तीसरी चीज़ जो दिखाई देती है वह शिरके सामनेकी तरफ निकले हुए तीन चार बाल होते हैं। परन्तु इन्हीं बालोंको

ही होता हो और इस तरह पांचों वस्तुओं से एक ही तसवीर (picture) वहां बनती हो। परन्तु यह भी सम्भव है कि यह तीन गोलाकार नेत्र दूरकी

चीज़ देखनेका काम देते हों। इस विचारकी पुष्टि इस बातसे भी होती है कि शहदकी मक्खियोंको

मधुकी खोजमें दूर दूर जाना पड़ता है, परन्तु वह अपने छत्तेको कभी नहीं भूलतीं। दूरसे फूलों तथा छत्तेका ध्यान रखकर उस तरफ इसी तरह बेधड़क चली जाती हैं जैसे कोई देखनेवाला पुरुष; जिससे यह समझा जाता है कि उसकी दूरकी दृष्टि बड़ी प्रबल है। शहदकी मक्खियोंके यह गोलाकार नेत्र बड़े प्रबल होते हैं। इसके विपरीत खून चूसनेवाली मक्खियां (Blood sucking Breeze flies of the family of Tabanido) के यह गोलाकार नेत्र नहीं होते। उनकी दृष्टि बहुत ही कम होती है। मक्खीकी भी यही हालत है। उसकी पासकी दृष्टि (Near sight) बड़ी बड़ी चीज़ोंके देखनेके लिए तो प्रबल है, परन्तु बारीक चीज़ोंके लिए बहुत ही कम ज़ोर है। हाथके हिलानेसे मक्खी उड़ जाती है, परन्तु बारीक लम्बी सूईकी नोकसे सम्भव है कि रोशनाईकी बून्द भी उसके ऊपर रख दी जाय तो भी उसे पता न चले।

मक्खीकी बड़ी बड़ी आंखोंकी बनावट भी विचित्र है। यह दोनों आंखें शिरके दोनों ओर शिरसे उभरी हुई अलग अलग स्थित हैं। उनकी विशेषता यह है कि इनके द्वारा मक्खी आगे पीछे इधर उधर सब तरफ सहज ही में देख सकती है। इसके लिए उसको बिलकुल भी परिश्रम नहीं करना पड़ता। एक जगह बैठी अपने चारों ओर की चीज़ोंको देख लेती है। ऐसी विचित्र आंखों-

की मक्खीको बड़ी जरूरत है, क्योंकि उसकी गर्दन घूम नहीं सकती और न उसका शरीर ही मुड़ सकता है। यदि मक्खीकी आंखें ऐसी न होतीं तो वह एक क्षणको भी निचली न बैठ सकती। अपने चारों ओरकी वस्तुओंको देखनेके लिये नाचा करती। इस कारण उसकी आंखोंकी रचना ऐसी चतुरतासे की गई है कि यदि उसे सहस्राक्ष कहा जाय तो अनुचित न होगा। उसकी हर एक आंखमें चार चार सहस्र नग (facets) होते हैं। अर्थात् उसकी आंखकी बनावट बिलकुल ऐसी ही होती है जैसी चार हज़ार तालोंको जोड़नेसे होती, यदि वह आपसमें इस भांति जोड़े जाते कि चारों ओरकी चीज़ोंका प्रतिबिम्ब उनके द्वारा एक साथ आंखके परदे पर पड़ता रहता। इसीसे उसको चारों ओरकी चीज़ समान दिखाई दे जाती हैं।

परन्तु शिर और मुँहमें सबसे विचित्र चीज़ उसकी थूथनी है। (चित्र ४४) साधारणतया देखनेमें यह उसकी जिह्वा मालूम होती है, जिसको वह बराबर बाहर निकाला और हरएक चीज़पर लगाया करती है। परन्तु सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखनेसे, पता चलता है कि वास्तवमें वह एक खोखली नली है, जो बड़े महत्वकी चीज़ है। उसको थूथनी कहना ही ठीक होगा। यह थूथनी यदि साधारण आंखों से भी ध्यान देकर देखो जाय तो नीचेसे फैली हुई मालूम होती है और इस फैले हुए हिस्सेके ऊपर उसमें दो मुड़े हुए बालसे खड़े दीखते हैं। सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र द्वारा देखनेसे पता चलता है कि थूथनीका यह फैला हुआ हिस्सा मक्खीका मुंह है, जिसमें दो ओष्ठ हैं और उनके बीचमें मुंहकी नाली है। जो बालसे खड़े हुए हैं वह उसके दो विशेष यन्त्र (organs) हैं जो स्पर्शक (feelers) कहलाते हैं। इनके द्वारा स्पर्श करके वस्तुओंका ज्ञान मक्खीको प्राप्त होता है। सम्भव है गंधका ज्ञान भी इन्हींके द्वारा होता हो।

चित्र ४३ और ४५ से थूथनी तथा स्पर्शक (feelers) की बनावट भले प्रकार समझमें आ सकती है। इन चित्रोंमें थूथनीको बीच से चीर कर दिखलाया गया है। नीचेका चौड़ा हिस्सा होठ है और दोनों होठोंके बीचमें मुंहकी नाली है। जब मक्खी होठोंको किसी चीज़के पकड़नेके लिए फैलाती है तो मुंह खुल जाता है और उसके द्वारा थूथनीकी नालीमें भोजन पहुंच जाता है। मक्खी काट नहीं सकती; वह केवल द्रव्य पदार्थोंको चूस सकती है। मक्खीको जब किसी चीज़को खाना होता है तो मक्खी अपने होठोंको फैलाकर उसमें गाड़ देती है और उसका द्रव्यांश चूस लेती है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि मक्खी स्थूल पदार्थोंको खा नहीं सकती। स्थूल पदार्थोंमें से वह अपने लिए भोजन बड़ी चतुरतासे प्राप्त करती है। वह उस पदार्थमें अपने होठ लगा देती है और तब पेटमें से जलांश उस पदार्थपर उगल देती है। उस सख्त पदार्थका कुछ अंश उस पानीमें घुल जाता है। इस घोलको वह चूस लेती है। घोलको चूसनेके पश्चात् वह फिर कुछ जलांश उस पदार्थपर उगल देती है और उसका घोल बनाकर चूस जाती है। इस युक्ति द्वारा वह सूखेसे सूखे पदार्थमें से अपने लिए भोजन प्राप्त कर लेती है। बहुधा देखनेमें आता है कि ज़मीनपर गिर कर श्लेष्मा सूख जाता है पर तो भी मक्खी उससे चिपटी रहती है। दूध उबालनेमें दूधके बर्तनपर दूधका कुछ अंश जलकर लगा रह जाता है, जो ऐसा सख्त हो जाता है कि मांजते समय भी उसे खुरचना पड़ता है तब जाकर कहीं वह छुट पाता है। परन्तु मक्खियोंको यदि उसका पता लग जाता है तो उनके झुंडके झुंड वहां आ डटते हैं और इसी युक्तिसे चूस चूस कर वह उसे साफ कर देती हैं।

यह थूथनी केवल इतना ही काम नहीं देती। मक्खी जहां बैठती है वहांकी समस्त वस्तुओंपर अपनी इस थूथनीको लगा लगा कर यह टटोल

लिया करती है कि उस वस्तुमें से कुछ भोजन मिल सकता है या नहीं। और जहां भी कुछ भोजन मिल जाता है उसे खाने लगती है। यद्यपि यह ठीक है कि इस थूथनी द्वारा मक्खी केवल द्रव्य पदार्थ ही चूस सकती है तो भी इससे यह न समझना चाहिये कि स्थूलांश बिलकुल भी उसकी थूथनी द्वारा भीतर, पेटमें, नहीं पहुंच सकता। स्थूलांशके कण जो थूथनीकी नलीमें जा सकते हैं वह चूसनेके प्रवाहमें खिचे चले जाते हैं और आमाशयमें ही नहीं पहुंच जाते वरन विष्टामें बाहर भी निकल आते हैं। मक्खी इस थूथनीको मोड़ भी सकती है और दुहरी करके शिरके नीचेके भागमें जो स्थान बना होता है उसमें रख लेती है। वास्तवमें थूथनी जो निकलती और भीतर जाती दिखलाई पड़ती है, भीतर कहीं नहीं जाती; दुहरी करके रखली जाती है।

बीचका भाग

इसके ऊपरकी ओर पंख लगे होते हैं और नीचेकी ओर टांगें होती हैं। इसके और पिछले भाग के बीचमें अर्थात् पंखोंके पीछे दो छोटे छोटे पंखसे उपाहित भाग (Appendages) निकले होते हैं इनको साम्य रक्षक अथवा उत्तोलक (Balancers) कहते हैं; क्योंकि अनुमान यह है कि इन्हींके द्वारा मक्खी अपनेको उडते समय साधती है। कुछ विद्वानोंका मत है कि यह पिछले पांव हैं; जिनके अतीत कालसे काममें न आनेसे अब केवल ठूंठ रह गये हैं।

मक्खीके शरीरके इस भागमें वह मांस पेशियां लगी हुई हैं, जिनके द्वारा वह पंखों, टांगों तथा साम्य रक्षकोंसे काम लेती है. उड़ती और चलती फिरती है। यद्यपि मक्खीको श्वांस इन्द्रियोंका मुख्य स्थान यह भाग नहीं है और हृतपिंड भी शरीरके पिछले भागमें रहता है। तो भी यह भाग मक्खीके शरीरका मर्म भाग (Vital) है यदि इसको जोरसे दबा दिया जाय तो मक्खी मर जाती है। परन्तु दूसरे भागोंको इस तरह दबानेसे प्राण नष्ट नहीं होते। यदि मक्खीके सामने कोई प्रिय भोज्य पदार्थ, जैसे मधु, खानेको रख दिया जाय तो उसका पिछला भाग काट लेने पर भी वह मधुको पीती रहती।

इस बीचके भागमें मुख्य अंश आमाशय है। इसका सम्बन्ध गले द्वारा थूथनीसे होता है और आमाशयका पिछला हिस्सा मक्खीके शरीरके पिछले भागमें होता है, जहाँ इसका सम्बन्ध अन्तड़ियोंसे होता है (चित्र ४४)। मक्खीका गला भी विचित्र प्रकारका होता है। अर्थात् जहां साधारणतया गलेका सम्बन्ध एक ओर थूथनीसे और दूसरी ओर आमाशयसे होना चाहिये, वह मक्खीके गलेका सम्बन्ध एक ओर थूथनीसे और दूसरी ओर एक पतली लम्बी नली द्वारा भोजन की थैलीसे होता है। यह थैली मक्खीके शरीरके पिछले भागमें होती है और उसकी सम्बन्धक (Connecting) नली मक्खीके शरीरके दूसरे भागमें आमाशयके नीचे रखी होती है। इस नली और आमाशयका सम्बन्ध एक दूसरी छोटी नली द्वारा होता है और इसी दूसरी नली द्वारा भोजन आमाशयमें पहुँचता है। चित्र ४४ में सम्बन्ध स्पष्ट करके दिखलाया गया है। यह दोनों नली इतनी मोटी होती हैं कि थूथनी द्वारा चूसे हुए भोज्य पदार्थके स्थूल कण सहजमें ही उनमें होकर आमाशय तथा भोजनकी थैलीमें पहुंच जाते हैं। इसीसे तो मलमें रहनेवाले जीवाणु मक्खीके आमाशय तथा भोजनकी थैलीमें पहुँच जाते हैं और अनेक रोगोंको फैलाते हैं।

मक्खीके पंख

कीटविद्या (Entomology)में यह बड़े महत्वकी चीज़ हैं; क्योंकि उन पर जो जाल बना होता है उसके द्वारा मक्खियोंका श्रेणी विभाग (Classification) किया जाता है।

मक्खीकी टांग तथा पैर

मक्खीके छः टांग होती हैं—दो अगली, दो पिछली और दो बीचकी। इनमें से तीन एक तरफ

होती हैं और तीन दूसरी तरफ। यह टांगें इस तरह बनी होती हैं कि मक्खी बीचकी टांगोंपर बैठ कर अगली अथवा पिछली दोनों टांगोंको उठाकर निःशंक अपना शिर, पीठ, पंख तथा पिछला भाग साफ़ कर सकती है और बहुधा बैठी हुई वह इन टांगोंसे यही काम लिया करती है। इन टांगोंमें चार चार जोड़ होते हैं और जब मक्खी दत्तचित्त बैठती है तो जहाँ बैठी होती है उस जगह जोड़ों तक टांगों-को जमा कर बैठ जाती है; मानों मनुष्योंकी तरह आरामसे बैठते वक्त पांवोंकी जगह टांगोंपर बैठ

चित्र ४५—मक्खीकी टांग

जाती है। परन्तु साधारणतया उसको बैठनेमें इस बातकी ज़रूरत नहीं होती, क्योंकि मक्खीके पैरोंमें भी पांच पांच जोड़ होते हैं (चित्र ४५) और पैर टांगोंके सिरोंसे चौड़े होते हैं। उन पर बाल होते हैं। तलवोंमें गद्दियां लगी होती हैं और यह गद्दियां रुएंदार होती हैं। रुएंमें बालोंके छोटे छोटे गुच्छे होते हैं और इन गुच्छोंकी जड़ोंमें से एक चिपकना द्रव पदार्थ निकला करता है; जिसके कारण मक्खीके पैरोंमें एक चिपकनापन (Adhesive-ness) पैदा हो जाता है और जहां मक्खी बैठती है वहीं चिपक जाती है अर्थात् उस वस्तुको जिस-पर मक्खी बैठी होती है यदि उल्टा भी कर दिया जाय तो भी वह नहीं गिरती।

इन गद्दियोंके अतिरिक्त उसके पांवोंमें पक्षि-योंके पंजोंके सदृश मुड़े हुए हुक (Claw like hooks) होते हैं। इसीलिए जिस वस्तु पर वह बैठती है उसे कसकर पकड़ लेती है और गिरती नहीं। टांगों और पांवोंकी इस रचनाकी बदौलत मक्खी चिकनीसे चिकनी और छोटीसे छोटी वस्तुके ऊपर बड़ी सुगमतासे चल फिर सकती है। मक्खीकी चाल भी निराली ही होती है। वह एक दफेमें एक तरफकी अगली पिछली और दूसरी तरफकी बीचकी टांगको आगे बढ़ाती है और फिर दूसरी तरफकी अगली पिछली और पहली तरफकी बीचकी टांगको सरकाती है। इस तरह तीन टांगों पर अपने शरीरको साधे हुए और उल्टी लटकती हुई तार रस्सी, अलंगनी बरतनोंके किनारे सब ही जगहोंपर निस्संकोच फिरा करती है। यदि चलती फिरती मक्खीको ध्यान लगा कर देखा जाय तो
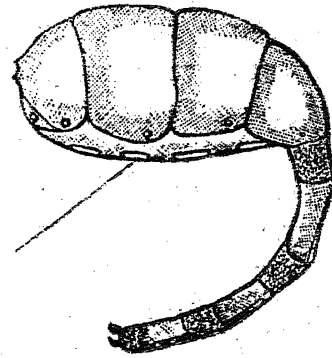
चित्र ४६—उत्पादक संस्थान

ऐसा प्रतीत होता है कि वह विचार पूर्वक सोच समझ कर चलती है।

इन टांगों तथा पांवोंकी रचना जहां मक्खीके लिए ऐसी सुविधाजनक है तहाँ मक्खी द्वारा रोगोंके फैलनेमें भी यह बड़ा काम करती है। जीवाणु उसकी टांगोंके बालों तथा पांवोंकी गद्दि-योंमें चिपके चले आते हैं और मक्खी जब किसी खाने अथवा पीनेके पदार्थ पर बैठती है तो यह जीवाणु सहजमें ही उक्त पदार्थमें पहुँच जाते हैं।

पिछला भाग

मक्खीके शरीरके इस भागमें आमाशयका पिछला हिस्सा, अँतड़ियां, भोजन-थैली तथा जननेन्द्रिय होती हैं। अंतड़ियोंमें कोई विशेषता

नहीं है; वह आमाशयके अन्तिम भागसे आरम्भ होकर गुदामें खतम हो जाती हैं (चित्र ४४)

भोजनकी थैली

यह थैली मक्खीके शरीरके पिछले भागमें होती है और एक पतली नलिका द्वारा उसका सम्बंध गले तथा थूथनीसे होता है। यदि कोई रङ्गीन तरल चीज़ मक्खीको खिलाई जाय तो इस थैलीमें रंग भर जानेके कारण यह थैली सहजमें ही दिखाई दे जाती है। यह थैली मक्खीका भण्डार है, जिसमें मक्खी अपने लिए खाना जमा करके रख लेती है और समय कुसमय भोजन न मिलने पर उसमेंसे निकाल निकाल कर खाया करती है। इस तरह यदि मक्खीको कुछ कालके लिए भोजन न भी मिले तो भी वह भूकी नहीं मर सकती। जैसा ऊपर कहा गया है इस थैलीका सम्बंध उसी नली द्वारा आमाशयसे भी होता है जिसके द्वारा कि उसका सम्बंध गलेसे होता है। भोजन न मिलनेकी हालतमें मक्खीकी इस भोजन थैलीमेंसे भोजन सामग्री उसी नाली द्वारा आमाशयमें पहुंच जाती है। जिस तरह गाय भैंस, जुगाली करनेमें पेटकी थैलीमेंसे भोजन सामग्री-को उगल उगल कर मुंहमें भर लेतीं और जुगाली करके फिर निगल जाती हैं, उसी तरहकी एक क्रिया द्वारा मक्खी भी भोजन सामग्रीको थैलीमेंसे उगल कर नलीमें और नलीसे आमाशयमें पहुचा देती है। आमाशयमें पहुंचकर इस भोजनका पाचन हो जाता है और उसका आत्मीकरण हो जाता है तथा उसके शेष भागका उत्सर्ग (Excrete) हो जाता है। जब मक्खीकी भोजन थैली खाली होती है; तब मक्खीको उसके भरनेकी फिक्र पड़ी रहती है। चाहे वह भूकी ही क्यों न हो, भोजन मिलने पर मक्खी यथासम्भव उसको भरनेका उद्योग पहले करती है। जब यह थैली भरी होती है तब भोजन मिलने पर उसे पेट भरनेकी पड़ती है। भोजन मिलता रहनेपर कई कई दिन तक वह इस थैलीके भोजनको हाथ नहीं लगाती। यह थैली जहां मक्खीके बड़े कामकी और उपयोगी है वहां रोगोंके फैलानेमें यह बड़ी भयानक वस्तु सिद्ध हुई है; क्योंकि रोगके जीवाणु यदि उस भोजन सामग्रीमें मौजूद हों जिसको उसने थैलीमें भर कर रख लिया है तो कई कई दिन पश्चात् भी उससे रोग पैदा हो जाते हैं।

उत्पादक संस्थान (Generative Organs)

यह भी मक्खीके शरीरके पिछले भागमें रखा होता है। मादाका उत्पादक संस्थान बहुत बड़ा होता है। अंडे देते समय मादा इसको बाहर निकाल लेती है और जिस वस्तुपर अंडे रखनेको होती है उसमें समूची अन्दर घुसेड कर तब अंडे रखती है। यह प्रबंध प्रकृतिने इसलिए किया है कि जिसमें मक्खीके अण्डे सुरक्षित रह सकें और अंडोंको खाजानेवाले जन्तुओंको सहजमें ही उनका पता न लग जाय।

—दयानिधान

स्वास्थ्य और स्वभावका सामञ्जस्य

(ले०—श्री० नारायण गोस्वामी)

मद्भगवद्गीता रूपमें वर्णित मोक्षदायक कर्म-मार्गमें भगवान योगीन्द्रने मनुष्य जीवनो-पयोगी सभी व्यवहारोंका उपदेश किया है। मुझे भगवान्के इस अमृत रूप प्रसाद्के अन्य अङ्गोंकी व्याख्या नहीं करनी; केवल उसी आदर्शका मुझे दिग्दर्शन कराना है, जो स्वास्थ्य और उससे पैदा हुए स्वभाव; आरोग्य और उससे बने हुए मनोविकार तथा शरीर और प्रकृतिसे सम्बन्ध रखता है। उसीका विज्ञान मय विवेचन करना है। तीनों प्रकारकी प्रकृतियोंका वर्णन करते समय योगिराज कृष्णने वैसी प्रकृतिवाले मनुष्योंकी भोजन-रुचि-का भी वर्णन किया है और बतलाया है कि किस

प्रकृतिवालेको कैसा भोजन रुचता है । गीता अध्याय १७ के श्लोक ७-८ और ९ में यह भेद भली भांति वर्णित है ।

अन्य धार्मिक आदर्शोंकी भांति गीताका यह उपदेश भी रूढिवादके रगड़ेसे न बच सका। गीतावाक्य होनेपर भी हम उसे व्यवहारिक जीवनमें नहीं लाना चाहते । यों तो अन्य धर्मोंमें भी प्रकृति विरुद्ध भोजनकी निन्दा की गई है, लेकिन आधुनिक विज्ञानमय युगमें जब तक कोई बात सायन्ससे सिद्ध कर न दिखाई जाय, नवीन-शिक्षा-मण्डित लोग उसपर दृष्टि तक नहीं देते । इसी लिए इस प्रश्नपर हम वैज्ञानिक विधिसे विचार करेंगे ।

महापुरुषोंका कथन है कि हम स्वयं अपने अपने भाग्य के विधायक हैं । हमारे स्वास्थ्यके सम्बन्धमें भी यह अक्षरशः सत्य है । शारीरिक कष्ट हमें केवल अपनी लापरवाहीके कारण उठाने पड़ते हैं । शरीरकी व्याधियोंके मूल हम ही हैं । कैसे ? इस प्रकार कि हम अपने जीवनको जिस ढङ्गसे नियमित कर लेते हैं, भविष्यमें उसीका परिणाम हमें भोगना पड़ता है । जैसा खाते हैं, वैसा ही हमें बनना पड़ता है । भोजनानुसार ही शरीर-धर्म बनता है । सात्विक भोजीको उतनी व्याधियोंका सामना नहीं करना पड़ता, जितनी कि राजसी और तामसी भोजन करनेवालेको भोगनी पड़ती हैं। सात्त्विकाहारीको बहुत कम रोग होते हैं, लेकिन राजसी और तामसी भोजन करनेवालेको रोज़ डाक्टर साहबके मिक्स्चर और वैद्यजीकी गोलियोंका आश्रय लेना पड़ता है । प्रत्यक्ष ही देखिये कि हमारा देश क्यों रोगोंकी खानि हो रहा है ? इसीलिए न कि हमारा आहार-विहार नियमित और शुद्ध-सात्विक नहीं है ? अन्य बातोंकी तरह भोजनमें भी हमें आडम्बर-प्रियताने घेर रखा है । चरपरा, खट्टा, कषैला, तीखा, नमकीन और अधिक मीठा भोजन हमें खूब भाता है । मसालोंकी भर-मार और ऊपरी मिलावटसे हम भोजनकी प्राकृतिकताका नाश कर देते हैं, अतः वह भी भीतर जाकर हमारी जड़ काटता है । कुछ शरीरविज्ञानी मानते हैं कि मसालोंसे खाना हज़म होता है । इनका कथन इस अंशमें सत्य है कि मसाला अत्यन्त थोड़ी मात्रामें यदि इस्तेमाल किया जाय तो पाचन अच्छा होता है; किन्तु उसके द्वारा अपनी जठराग्निको इतना कमज़ोर न कर देना चाहिये कि बिना मसालेके भोजन रुचे या पचे ही नहीं । ऐसा करनेसे हम अपनी जीभ और जठराग्नि दोनोंके गुलाम बने रहते हैं ।

लेकिन खेद है कि आज कल हमारे यहां ऐसे ही भोजनकी भरमार है । घरमें यही हाल है; बाहर का तो पूछते ही क्या हैं ! ज़रा ज़रासे क़स्बों तक-में पाइयेगा कि शामके वक्त चाटके खोमचेवाले किस बुरी तरहसे जनताका स्वास्थ्य चाटते हैं । सड़े हुए तेलमें सिके हुए बताशे, पकौड़ियां, बड़े, आदि और हलाहल मिर्चोंसे सुर्ख़ किया हुआ जल जीरा, गली सड़ी खटाईकी सोंठ—सबकी तफ़सीलकी ज़रूरत नहीं—बहुत कम भाग्यशाली इस चाटसे बचे होंगे । कहिये, अब भी आप तन्दु-रुस्त रहनेकी इच्छा करते हैं ? आपका, आपके बच्चोंका स्वास्थ्य बरकरार रहे तो कैसे ? अनेक वैज्ञानिकोंने सिद्ध किया है कि नमक, खटाई और मिर्चमें एक प्रकारका विष होता है, जो मनुष्यकी प्राण शक्ति (energy) का ह्रास करता है । तभी तो हमारे हकीमजी भी बात बातमें तेल, गुड़, खटाई, मिर्चका परहेज़ पहिले बता देते हैं । अगर इसका कुछ अर्थ न होता तो हमारे स्वास्थ्यकी कामना करनेवाले ऋषि लोग क्यों इसे अपने ग्रन्थोंमें लिख जाते ? लेकिन हमें इसकी परवाह नहीं । प्रकृतिपर हम ध्यान नहीं देते । एलोपेथी, होमियोपेथी, तिब, आयुर्वेद आदिसे तङ्ग आकर अब संसार हित-चिन्तक वैज्ञानिकोंने कुदरती इलाजकी क्रियाओंका अन्वेषण किया है । वह मनुष्यको इस दासतासे छुड़ाना चाहते हैं कि वह नित्य अत्तारों और पंसारियोंकी दुकान पर

खड़ा रहे। इन वैद्य, हकीम, डाक्टरोंकी पुड़ियों और शीशियोंमें स्वास्थ्य नहीं है। वह कहते हैं कि प्रकृतिके अनुकूल चलो और प्रसन्न रहो। सो होता नहीं। पेटमें तकलीफ है, दौड़े गये डाक्टर या वैद्यके पास। डाक्टरी मैगनीशिया और हकीमजी का हिङ्गाष्टक फांक डाला और फिर डट कर खाना खाया। यह प्रकृतिका द्वेष करना है; अतएव, अपने पैर कुल्हाड़ी मारना नहीं तो क्या है? इतनी दौड़ धूप करेंगे, पैसा ख़रच करें, लेकिन यह न करेंगे कि उस दिन व्रत करलें। फ़ाक़ा भला कौन करे?

परिणाम क्या है? हमारा स्वास्थ्य भी दो कौड़ी का, मस्तिष्क भी कमज़ोर, मन भी दुर्बल, आत्मा भी हीन। तबीयतमें उत्साह नहीं, भूखका नाम नहीं। अगड़म-बगड़म खाना और खूब खाना—इन दोषोंने हमारे आरोग्यका नाश कर दिया है। अपने शरीरके बुखार खुद तो हम हैं, पर फिर भी हकीम डाक्टरोंके यहां ज्वरांकुश और फ़ीवर मिक्सचर ढूंढ़ने पहुँचते हैं! इसलिए ज़रूरत है कि इस मामलेमें हम अपनी ग़लतीको महसूस करें।

स्वास्थ्यके सम्बन्धमें कुछ सिद्धान्त इस प्रकार हैं.—

(१) भर पेट या डट कर भोजन कभी मत करो। वैद्यक सिद्धान्तानुसार आधापेट खाना खाओ; चौथाई पानीसे भर कर चौथाई वायुसंचारार्थ छोड़ दो। जो लोग डट कर खाते हैं, उन्हें प्रमेह रोग शीघ्र घेर लेता है। दुःस्वप्न होते हैं और मस्तिष्कके ज्ञानतन्तुओंमें दुर्बलता आती है। शरीरमें पित्त रूपी विषकी वृद्धि होती है। जिन्हें प्रमेह या स्वप्नदोषका रोग हो, इस नियमका पालन करें, शीघ्र रोग मुक्त होंगे।

(२) मिर्च, खटाई, तेल जैसी तीखी चीज़ोंसे परहेज करो। सोडा लैमजूस, काफी, चाय कभी न पियो। दिमाग़के स्नायुओंपर इनका बहुत बुरा असर होता है। दूध भी बहुत गर्म मत पियो, मेदेको गर्मी पहुँचाता है। शराब तो ख़राब ही है। यह सब चीजें शरीरमें एक प्रकारका ज़हर पैदा करती हैं। गुड़, पान, प्याज, लहसन और अरहड़की दाल भी ऐसी ही चीजें हैं। इन वस्तुओंका इस्तेमाल करनेवाले लोग अकसर अर्श, मूत्र रोग, स्वप्नदोष और हृदय कम्प रोगोंसे पीड़ित देखे गये हैं। देशके ज़रा ज़रासे बच्चोंकी आंखों पर ऐनकें भी इन्हीं चीज़ोंने चढ़वाई हैं।

(३) अपनी स्वास्थ्य कामनाके नामपर महीनेमें एक दिन उपवास करो; दिन रातके २४ घन्टोंमें कुछ न खाना चाहिये। इससे बड़ा लाभ होते देखा गया है। अखाद्य भोजनके कारण शरीरमें पैदा हुआ विष, अजीर्ण द्वारा संचित हुई रतूबत या ख़राब माद्दा—इन सबके जल जानेसे शरीर फूल जैसा हलका हो जाता है। इस साधनसे आप अपने शरीरको निरन्तर स्वस्थ रख सकते हैं। मैलेरियाके मौसममें हर १५ वें दिन ऐसा करनेसे व्याधि पास नहीं आती।

(४) रोज़ थोड़ा हलका व्यायाम करना हज़ार मर्ज़ोंकी एक दवा है। थोड़ा पौष्टिक भोजन करते हुए इसको अभ्याससे आप अपनी तन्दुरुस्ती बहुत अच्छी रख सकते हैं।

(५) अगर हो सके तो नित्य किसी पार्क या जङ्गलमें जाकर १०,१५ मिनट प्राणायाम करना भी मस्तिष्क और हृदयको बहुत बल देता है। दिन भर पढ़ने लिखनेमें जो शक्ति आपने व्यय की है, उसे आप इन मिनटोंमें वापस ले सकते हैं।

अगर आपने इतना कर लिया तो फिर देखियेगा कि आपका स्वभाव भी कितना उदार, परोपकारी, महान् और उत्तम बनता है। संसारके महान पुरुषोंका यही कथन है और उन्होंने इसे अपने जीवनमें सिद्ध करके दिखला दिया है। गीतामें क्या, बाइबिल और कुरानमें भी इस घातक आडम्बरकी बुराई की गई है। सुकरात की ज़िन्दगी निहायत सादा और पाक थी। रूसके ऋषि मोशियो टाल्स्टायने इस सात्विकता की भूरि भूरि प्रशंसा की है। आत्मदर्शी स्वामी राम तीर्थने इसे आत्मदर्शका

एक अङ्ग बतलाया है। अपने विद्यार्थी जीवनमें उन्होंने एक बार अपने एक मित्रको स्वल्पाहार-को प्रशंसामें बहुत लिखा था। 'हाथ कङ्गनको आरसी क्या।' वर्त्तमान संसारके सबसे बड़े महान् पुरुष महात्मा गाँधीको ही देख लिया जाय। ६ पैसे रोज़की खुराकके बदलेमें लाखों रुपये रोजका काम करते रहे हैं। पहले वर्षों हरी तरकारीपर ही गुजारा किया; पीछे बकरीके दूधके साथ डबल रोटी खाकर कितना काम करते रहे। उनके साथ रहे हुए एक सज्जनसे ज्ञात हुआ है कि पिछले दिनों महात्मा जीके कामके घन्टोंका औसत दिन रातमें २० घन्टे था। इतने पर भी न थके, न मांदे हुए! कई रुपये रोज़की लज़ीज़ खुराक खानेवाला नौ जवान भी इतना काम कर सकता है? निवेदन यह है कि संयमित सात्विक जीवन ही स्वास्थ्यको सहायता देनेवाला है और इसीसे हमारा स्वभाव उच्च होता है।

अंधेरेकी आग

यह तो हर कोई जानता है कि आतिशी शीशेके द्वारा सूर्यकी किरणोंको एक बिन्दुपर एकत्रित करके उसके तापसे सब वस्तुएं जलाई जा सकती हैं। पर क्या किसी विधिसे अन्धकारको भी एक बिन्दुपर एकत्र करके आग जलाई जा सकती है? जहां जहां प्रकाश है ताप भी वहां अवश्य होता है। परन्तु तोभी प्रकाश और ताप दोनों बहुत भिन्न भिन्न चीज़ें हैं। वस्तुतः बड़े से बड़े तापकी राशिमें भी कोई प्रकाश नहीं है। तापका कोई रूप नहीं; वह घोर अन्धकार स्वरूप है। हम सूर्यकी किरणोंको छानकर उनके प्रकाशसे तापको अलगकर सकते हैं। एक चपटीसी बोतलमें आयोडीन और कर्बन-द्विगन्धिद्का घोल डालकर उसमेंसे प्रकाशको गुज़ारें तो कुछ भी प्रकाश बोतलके पार न जायगा। परन्तु ताप ज्योंका त्यों पार जाता रहेगा। उस बोतलके पीछे आतिशी शीशा लगाकर उस तापको एक स्थानपर एकत्रित कर सकते हैं और वहां कोई वस्तु भी रखकर जला सकते हैं। यही अंधेरेकी आग है।

गिरवी रखकर धनी होना

हेनोवर (जर्मनी) में एक स्त्रीने गिरवी रखकर भी धनी होनेकी एक बड़ी अच्छी युक्ति निकाली है। वह मँहगीके कारण अपनी स्वल्प आय-पर गुज़ारा न कर सकती थी। उसने अपना मोतियोंका हार गिरवी रखकर कुछ रुपया उधार लेना चाहा। बर्लिनमें आकर उसने वह हार एक महाजनके पास आधे मूल्यपर गिरवी रख दिया और ३०००० मार्कका ऋण ले लिया।

तीन मासके बाद उसके एक दूसरे धनाढ्य मित्रने उसे ३०००० मार्क इसी निमित्त दिये कि वह हार छुड़ाले। उसने हार बन्धकसे निकालकर दूसरे महाजनके पास रख दिया। उसने उसका २२५००० मार्क मूल्य लगाया और हार बन्धकमें रखकर स्त्रीको ११०००० मार्क उधार दे दिये। उसने उनमें से अपने मित्रके ३०००० मार्क भी चुका दिये और आनन्दसे रहने लगी। ६ महीने बाद मार्कोंका मूल्य और भी घट गया। उसने बन्धकमें रखे हुए हारको ११०००० मार्क देकर छुड़ा लिया और तीसरे महाजनको हार दिखाकर उसका मूल्य कुतवाया। उसका मूल्य २५००,०,०० लगाया गया। उसे गिरवी रखकर इस बार महिलाने १५,००,००० मार्क उधार लिये। और मित्रका ऋण चुका कर अब वह आनन्दसे गुज़र कर रही है।
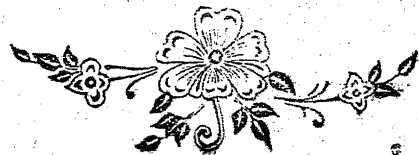
तिब्बतवासियोंमें शरीरकी अन्त्येष्टि

ब्बत वासियोंकी सभी बातें अजीब हैं। उनकी प्रत्येक बातमें कुछ न कुछ विचित्रता दिखाई देती है। इस देशमें अन्त्येष्टि क्रिया भी बड़ी विचित्र होती है। इस क्रियाका 'विज्ञान' में उल्लेख करनेका हमारा एक विशेष प्रयोजन यह है कि इस क्रियाके आलोचनसे प्रायः सभी संसारके वासियोंके एक विशेष उद्गमका पता चलता है। स्वामी दयानन्द सरस्वतीका यह कथन कि "त्रिविष्टप (तिब्बत) में आदि सृष्टि हुई; वहांसे ही चल कर सब मानव अन्य देशोंमें बस गये हैं" बहुत कुछ सत्य प्रतीत होता है। अस्तु इस विवादमें न पड़ कर हम प्रकृत विषयपर आते हैं। तिब्बतमें जैसी विचित्र अन्त्येष्टि की जाती है वैसी किसी अन्य देशमें देखी नहीं जाती।

यहां दो लम्बे डण्डोंकी अरथी बनाकर उसको चारपाईकी तरह बुन लिया जाता है। उस पर चादर बिछा कर मुर्दा लिटा दिया जाता है और ऊपरसे भी उस पर एक सफेद चादर उढ़ा दी जाती है। इसी अरथीको दो मनुष्य आगे पीछेसे उठाकर श्मशानमें ले जाते हैं।

अन्त्येष्टि कर्म करनेकी इस देशमें चार विधि हैं। पहली पानीमें बहाना, दूसरी अग्निमें जलाना, तीसरी धरतीमें गाड़ना और चौथी पक्षियोंको खिलाना। इन चार विधियोंमें से अन्तिम अर्थात् पक्षियोंका खिला देना ही सबसे उत्तम समझा जाता है। इसको 'चागापो' कहते हैं। इससे उतर कर अग्निमें जलानेकी रीतिका स्थान है। तीसरा स्थान जल समाधिका है और चौथा धरतीमें गाड़नेका है। इस चौथी रीतिको भूसमाधि कहना बहुत ही उपयुक्त होगा। यह अन्तिम विधि प्रायः तभी काममें लायी जाती है जब कि शरीर चेचकरोगसे पीड़ित रहा हो। इस विषयमें तिब्बतवासी खूब समझते हैं कि चेचकसे मरे हुए मुर्देका पक्षियोंको खिला देना या नदीमें बहा देना अन्य गांवोंमें रोग फैल जानेका कारण हो जाता है। इसलिए उस मुर्देको वह भूमिमें ही दफ़ना देते हैं। मुर्देको जलादेना भी इस देशमें बड़े आदरसे देखा जाता है। परन्तु ईंधनकी तिब्बतमें बहुत कमी है; इसलिए याक नामक पहाड़ी बैलके गोबरकी पाथियोंसे ही शव जला दिया जाता है। प्रायः अमीर लोग ही इस रीतिको बर्ता करते हैं। जल समाधि देनेकी रीति प्रायः सर्वत्र प्रचलित है। यह रीति प्रायः महानदियोंके तटपर मुर्देको ले जा कर की जाती है। जलमें समाधि देनेके पहले शवका एक एक अंग काट कर छोटे छोटे टुकड़े कर लिये जाते हैं और एक एक टुकड़ा पानीमें डाला जाता है। यह काम इसलिए किया जाता है कि यदि पूराका पूरा शरीर पानीमें या नदीकी धारामें फेंक दिया जाय तो वह आंखोंके आगे बहुत देर तक अटका रहता है। दूसरे उसके शीघ्र ही जल तत्वमें मिलनेमें बाधा होती है।

उक्त चारों विधि भारतवर्षके शास्त्रीय सिद्धान्तोंके आधार पर की जाती हैं। वह कहते हैं कि मानव शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार तत्वोंका बना हुआ है। वह समझते हैं कि यह शरीरके चारों तत्व क्रमसे पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुमें ही मिल जाने चाहियें। इसी आधार पर मुर्देको पृथ्वीमें गाड़ना पृथ्वीमें मिला देनेके समान है, अग्निमें जला देना अग्निमें मिला देनेके समान है, जल समाधि देना जल तत्वमें मिला देनेके समान है और पक्षियोंको खिला देना वायु तत्वमें मिला देनेके समान है। लामा लोगों (तिब्बतके सन्यासी) के शरीर पक्षियोंको ही खिलाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त उच्चपदाधिकारियों तथा अन्य बहुत मान्यगण्य व्यक्तियोंको विशेष रूपसे

समाधि दी जाती है। उनको बोधिसत्वका अवतार समझा जाता है।

तिब्बतके प्रसिद्ध चीनी यात्री जापानी इकाई-कावागुचीने अपने यात्रा वृत्तान्त—"तिब्बतमें तीन वर्ष"—में वायु समाधिका एक बहुत उत्तम वृत्तान्त लिखा है। हम विषयको स्पष्ट करनेके लिए उसका ज्योंका त्यों यहां उल्लेख करते हैं। आप लिखते हैं कि—

"मेरे जान पहचानवाले लामाके लिए वायु-समाधि ही पसन्द की गयी; जिसका वर्णन मैं संक्षेपसे देता हूं। हम लोग उसका शव ले कर एक नदीके किनारे पहुँचे। इस नदी तट पर एक ऊंची पहाड़ी थी। उसपर सहस्रों गीध बैठे हुए थे। शव-को लेजा कर एक बारह गज़ ऊंची बड़ी चट्टानी शिला पर रख दिया। यह शिला ऊपरसे समतल लगभग १५ गज़ चौड़ी थी। लासामें एक यही स्थान था जहां इस प्रकारकी अन्त्येष्टि की जाती थी। शवको चट्टानपर रखकर उसपरसे शीघ्रता-से चादर हटाली। लामा लोग धर्म पुस्तकें पढ़ने लगे और बाजे गाजे बजने लगे। इस समय एक मनुष्य चौड़ी सी तलवार हाथमें लेकर शवके पास आया। उसने उसका पेट फाड़ कर अन्दरसे आंतें निकाल लीं। और बादमें सब अंग काट काट कर अलग अलग कर दिये। उसके बाद एक पुरोहित लामा और कुछ मनुष्य आये; उन्होंने हड्डियों परसे मांस सूंत सूंत कर उसी प्रकार अलग किया जैसे डोमड़े लोग किया करते हैं। इतनेमें गिरि-शिखर-पर बैठे गीध भी उतर कर आस पास इकट्ठे होने लगे। मांसके फेंकनेकी देर थी कि गीधोंने उन लोथड़ोंको बड़ी वीभत्सतासे खा लिया। अब हड्डियोंकी बारी आयी। परन्तु हड्डियां इस तरहसे नहीं फेंकी गयीं। उस चट्टान पर छोटे छोटे दस छेद बने हुए थे। उनमेंसे एकमें हड्डियां डाल कर एक भारी पत्थरसे कूट कूट कर चूर कर दिया गया। जब वह सब पिस कुटकर आटेके समान हो गयीं तो उनमें थोड़ा सा भुना हुआ आटा या सत्तू मिला कर वह भी गिद्धोंकी भेंट किया गया। यदि कोई वस्तु मुर्देकी बची थी तो वह उसके बाल थे।

"वास्तवमें तिब्बत वासी एक प्रकारके नर-भक्षक हैं। मैं इस रीतिको देखकर अचम्भेमें रह-गया। कफ़नका कपड़ा यमदूतोंको दे दिया गया। इन यमदूतोंका काम मुर्देका मांस काटना और हड्डियां पीसना है। पुरोहित लोग भी उनके इस काममें उन्हें सहायता दिया करते हैं, क्योंकि हड्डियोंका पीसना भी कोई सहज काम नहीं है। जब हड्डी पीसनेवाले पीसते पीसते थक जाते हैं और कुछ विश्राम के लिए चाय पीने लगते हैं तो उतने समय तक उपरोक्त कार्य पुरोहित लोग किया करते हैं। चाय तय्यार करनेसे पहले वह रक्त आदिसे भरे हाथोंको भी नहीं धोते। हाथोंमें मांस और रक्तके छिछड़े लगे ही रहते हैं। उन्हीं हाथोंसे वह चाय पका डालते हैं और वहां ही रोटियां भी पका लेते हैं। अधिकसे अधिक वह अपने हाथोंको झाड़ लेते हैं, जिससे बड़े बड़े रक्त और मांसके टुकड़े गिर जाते हैं। इस प्रकार वह अपने भोजन और चायके साथ मांस हड्डियों और नर कपालके भेजे-का भाग भी पकाकर खा ही जाते हैं। उन्हें इस कार्यमें कुछ भी वीभत्सता या घृणा मालूम नहीं होती। उनको इसका अभ्यास हो जाता है।

"मैंने उनसे कहा कि चाय बनानेसे पहले हाथ धो लेने चाहियें। वह यह सुनकर बड़े चकित हुए। उन्होंने मेरा परिहास करते हुए कहा कि इन्हीं हाथोंसे चाय बहुत सुस्वादु मालूम पड़ती है। इसके अतिरिक्त यदि मुर्देका कुछ अंश हम लोगों-के पेटमें चला जावे तो वह आत्मा भी बहुत प्रसन्न होती है। यह मैंने पहले भी सुना था कि तिब्बत-वासी राक्षसके वंशके हैं। परन्तु जब मैंने यह दृश्य देखा तो विश्वास हो गया कि अवश्य ही यह लोग नर भक्षक हैं। वह अब भी अपनी आदतको नहीं छोड़ते। जितनी देर तक यह काम होता रहा, धर्म ग्रन्थका पाठ भी होता रहा।

पाचवीं विशेष विधि

"जब कोई उच्च पदाधिकारी मर जाता है तो उसके शवको एक सन्दूकमें रख उसके ऊपर इतना नमक डाल देते हैं कि वह चारों ओरसे नमकसे ढक जाता है। जब तक यह काम होता है तब तक बाजे ढोल आदि बजते रहते हैं और धर्म ग्रन्थका पाठ होता रहता है। इसके अनन्तर वह सन्दूक उसी दशामें तीन मास तक एक मन्दिर-में रखा रहता है। इस अवसर पर भी उसपर वैसे ही भेट पूजा आती है जैसे जीवित समयमें उस-पर चढ़ा करती थी। उसके शिष्य लोग उस पर पहरा दिया करते हैं। सोने चांदीके पात्रोंमें घीके दीपक जलते रहते हैं। सन्दूकके सामने सात पात्रों-में अभिमन्त्रित जल रखा रहता है। इन्हीं पात्रोंका जल और फूल उस सन्दूकपर भी चढ़ाये जाते हैं। इस संदूककी हर कोई पूजा कर सकता है। पूजा करनेवाला उस पर रुपये भेंट रूपमें चढ़ा सकता है। तीन महीनेमें शवका सब पानी नमक खेंच लेता है और मुर्दा सूख कर सख़्त हो जाता है। प्रतीत होता है कि वह सोडा आदि कोई और खार भी नमकमें मिलाते हैं।

"सन्दूकसे बाहर निकालनेके अवसर पर शव बिलकुल सिकुड़ा हुआ होता है। आंखें नीचे बैठी होती हैं। पर तिब्बतमें एक प्रकारकी मिट्टीमें चन्द-नका बुरादा और कुछ औषध मिलाकर शव पर लेप करते हैं; इस प्रयोगसे शवकी त्वचा फिर ज्योंकी त्यों हो जाती है। उसका असली रंग निकल आता है; उसमें सूखापन और रूखापन भी नहीं रहता। तब शवको उस संदूकमें फिर रखकर एक छोटेसे मकानमें रख देते हैं। यह समाधि मन्दिर शिगात्ज़ेमें बहुत देखे जाते हैं। उनकी छतों पर सोने और चन्दीका काम किया जाता है।

"चीन वासियोंका विश्वास है कि मुर्देको गाड़नेसे आत्मा नरकको चला जाता है। इस कारण वह लामाओंके शवोंकी उक्त प्रकारसे नमक मिट्टीमें रखनेकी विधिपर भी आक्षेप करते हैं।"

हमने पाठकोंके समक्ष यह तिब्बत वासियोंकी अद्भुत रूपकी अन्त्येष्टि विधियोंका उल्लेख कर दिया है, हम अब पाठकोंका ध्यान इसकी विशेष आलोचना पर खेंचना चाहते हैं।

तिब्बती लोगोंमें ५ प्रकारकी शव समाधि बतलायी गयी है। १ पृथ्वीमें दफनाना, २ जलमें बहाना, ३ वायुमें मिला देना, अर्थात् पक्षियोंको खिलाना, ४ अग्निमें जला देना और ५ शवरक्षा।

तिब्बती इनमेंसे प्रत्येक विधिका विशेष अव-सर पर प्रयोग करते हैं। रोगादिसे मरे शवको वह पृथ्वीमें दफ़नाते हैं। साधारण शव काट काट कर जलमें बहा देते हैं। अमीर लोगोंके शव अग्निमें जला देते हैं और मान्यगणोंके शव देवताके समान सुरक्षित रख लिये जाते हैं। यही पांचों विधियां प्रायः सारी दुनियामें किसी न किसी रूपमें सभी देशोंमें पायी जाती हैं। हम आर्य लोग आर्यसन्तान मुर्दोंको जलाते हैं। परन्तु हमारे ही धर्म शास्त्रोंकी व्यवस्थासे सन्यासीके देहको जलसमाधि या नारायण समाधि दी जाती है। बालकके शरीरको भूसमाधि दी जाती है। मुसल-मान लोग मुर्देको दफ़ना देते हैं। ईसाई लोग मुर्देको संदूकमें बंद करके क़ब्रमें गाड़ देते हैं। श्री रामचन्द्रजीके ज़मानेके बहुत से राक्षसवंशी लोगोंमें भी मुर्दा गाड़नेकी ही विधि थी। राम लक्ष्मणने विराध राक्षसको मारनेके उपरान्त उसको उसकी प्रार्थनाके अनुसार गढ़ा खोद कर गाड़ दिया था। परन्तु सब राक्षसोंमें यह रीति न थी। रावणका शव वेद विधिसे अग्निमें जलाया गया था। बालिका शव भी अग्निमें जलाया गया था। राजा युधिष्ठिरने महाभारत युद्धके बाद सब शवोंको अग्निमें भस्म किया था।

पारसी लोग शवको पक्षियोंको खिला दिया करते हैं। यह पवन समाधिका ही रूपान्तर है। ईजिप्टके राजा महाराजा लोग जो बड़े यशके भागी होते थे उनके शव औषधिआदिसे 'मम्मी' बनाकर सुरक्षित रख दिये जाते थे, जो उसी दशामें

अभी तक उनकी सहस्रों वर्षकी पहिलेकी सत्ताका प्रमाण देते हैं। यह सब विधियां जो अन्यदेशोंमें प्रचलित थीं और हैं, अब भी बराबर तिब्बतमें प्रचलित हैं।

अतएव यह कहना सर्वथा ठीक है कि तिब्बत वस्तुतः सब विधियोंका उत्पत्ति स्थल है। भिन्न भिन्न पदवी, मान और मर्यादाके पुरुषोंके विधानोंमें भेद होना स्वाभाविक है। जब यह भिन्न भिन्न जनसंघ अपने मूल स्थान से फैलकर देश देशान्तरोंमें जा बसे, वह अपनी रीतियां अपने साथ लेगये और अब तक उन रीतियोंको वर्तते चले आ रहे हैं। यह माना कि कालक्रमसे तथा नाना प्रकारके परिवर्त्तनोंसे वह अपनी अपनी रीतियोंमें भी बहुत से छोटे मोटे परिवर्त्तन कर बैठे हैं तो भी अपनी मूल प्रथाका मूल नाश नहीं कर सके।

इस प्रसङ्गमें हम इतना अवश्य कहेंगे कि यह तिब्बतका स्थान या त्रिविष्टप दैशिक सीमामें प्राचीन त्रिविष्टपकी अपेक्षा बहुत छोटा हो गया है। यदि संक्षेपतः कहा जाय तो कुल हिमालय पर्वत श्रेणी त्रिविष्टप या स्वर्गभूमि या देवभूमि कहाती थी। इसकी स्पष्टताके लिए यदि हम दुनिया का नकशा खोलकर अपने सामने रखें तो हिमालय से आरम्भ होनेवाली एक बड़ी भारी विस्तृत पर्वत मालाका साक्षात्कार होगा। यूनानके तोमेरस (सुमेरु) पर्वत, काकेशसके पर्वत (मुसलमानोंका स्वर्ग) या हरिस्थान (सुरस्थान) कराकरम (सुराश्रम), कश्मीर मण्डल (काशपोइला), धवलीधर, हिमालय, कामरूप, तिब्बत, यह सब पर्वतीय प्रान्त एक ही शृंखलामें पूर्व समुद्रसे लेकर पश्चिम समुद्र तक पूर्वीय गोलार्द्धकी सम्पूर्ण भूमि पर ऐसे पड़ा है मानों इस भूमण्डलकी नाप लेनेके लिए यह सर्वे करनेवालोंका मापक दण्ड रखा हो। इसीको देख कर कालिदासने कहा है कि—

अस्त्युत्तरस्यांदिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्यामिवमानदण्डः॥

उत्तर दिशामें देवताओंके आत्माके समान प्रिय (निवास भूमि) हिमालय नामका सब पर्वतोंका राजा (महापर्वत) है, जो पूर्व और पश्चिमके समुद्रोंको स्पर्श करता हुआ पृथ्वीपर मानदण्डकी तरह पड़ा है।

तात्पर्य यह है कि प्राचीन कालमें इतना भारी प्रदेश त्रिविष्टप कहाता था। मेरी सम्मतिमें इसको त्रिविष्टप इसलिए कहते थे कि इसमें भी तीन बड़े भाग थे, जिनका दूसरा नाम त्रिदिव था। इसमें एक भाग काश्मीर था। वर्त्तमान काश्मीर पहले काकेशस और कास्पीयन तक फैला था। कास्पीयन ही उसकी उस समय पश्चिम अवधि थी। पामीरकी चोटियां एक द्योलोक, काश्मीरकी भूमि दूसरा द्योलोक और मौण्ट एवेरेस्ट काञ्चनजंघा या तिब्बतका भाग यह तीसरा द्योलोक कहाता होगा। इन्हीं तीन केन्द्रोंसे नदियोंकी धारायें भिन्न भिन्न रूपसे बही हैं। नदियोंके भी तीन ही मुख्य वर्ग हैं। एक वर्ग ब्रह्मपुत्रा वर्ग है; दूसरा गंगा-जमुना-सिन्धुवर्ग; तीसरा फ्रात-दजला वर्ग है। यह सभी हिमालयके भिन्न भिन्न उच्च तटोंसे बहे हैं। जब संसार भर समुद्रके नीचे था; तब शनैः शनैः जलके भीतरसे भूमिके निकलनेमें सबसे पूर्व हिमाचल और उसके उत्तरीय उच्च तट प्रथमबाहर आये होंगे। और उस दशामें समुद्र तल तथा समुद्र तलकी अपेक्षा निकलते हुए भूतलकी उच्चता भी अधिक होनेसे अवश्य वहां ही जीवनका विकास तथा ब्रह्माकी नव प्रकारकी आदि सृष्टि हुई होगी। और सब प्राणियोंके रहनेके लिए वही बहुत उत्तम स्वर्ग भूमि होगी; इसमें सन्देह नहीं। उस भूमिकी स्वर्गतामें तो अब भी सन्देह नहीं है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि भौगोलिक दशा भी जिसकी साक्षी देती है उसी तिब्बतकी रीति रिवाज भी उसी देशको सब जातियोंका मूल स्थान प्रमाणित करती हैं। यात्री कावागुचीका यह अनुमान कि वह नर भक्षक राक्षस होंगे कोई बहुत

पक्के आधार पर स्थित नहीं है तो भी इतना इस प्रसंगमें कह देना आवश्यक है कि राक्षस जाति जो त्रेतामें अर्थात् श्रीरामके ज़मानेमें लंका तथा पाताल तक पहुंची हुई थी वह यक्षोंकी औलाद थी। ताड़का स्वयं यक्षी थी। जो किसी अपराधपर दण्ड पाकर स्वर्ग देश तिब्बतसे निकाली जाकर भारतवर्षके जंगलोंमें रहने लगी। विराध आदि भी उसी जातिके थे। वह भी इसी प्रकार अपने दुष्ट स्वभावोंके कारण अपने देशसे निकाले जाकर राक्षसका पेशा करते थे। कुबेर यक्षराज उनके राजा थे जो विश्रवा ऋषिके पुत्र थे। यह ही राम के घोर शत्रु रावणके एक प्रकारसे भाई थे। उस समयके यक्षों और राक्षसोंमें केवल पेशेके कारण नाम भेद था। आचार व्यवहारोंमें बहुत भेद न था। इसमें सन्देह नहीं कि त्रिविष्टप या स्वर्गके मुख्यवासी तो देव ही कहाते थे; परन्तु शेष जातियों में यक्ष, राक्षस, नाग, सिद्ध, गुह्यक, चारण, किन्नर आदि जातियां भी देव वीर्यसे ही थीं; इसी कारण यह देव योनियां कहाती थीं। यह भी देव जातिके साथ ही बसती थीं। उनके आचार विचार रहन सहन भी उनसे बहुत भिन्न होंगे।

विज्ञानके पूर्वके कुछ अंकोंमें राक्षस जाति और दैत्य वंशके उदय और अस्तकी कथाका हम उल्लेख कर आये हैं। हम किसी अंकमें यथावसर यक्ष जातिकी विशेषता भी दर्शायेंगे। अस्तु। एक बात यह भी देखनेमें आती है कि वर्त्तमानमें भी तिब्बत दार्जिलिङ्ग नेपाल भूटान आदि इलाकोंमें बहुत सी जातियां (castes) ऐसी हैं जिनकी आलोचनासे देव योनियों तथा यक्षोंके प्राचीन रहन सहन पर भी बड़ा प्रकाश पड़ता है। इन सब बातोंसे हम इसी परिणामपर पहुँचते हैं कि तिब्बतके वर्त्तमानकी रीतिरिवाज भी इस बातकी पोषक है कि यह स्थान मानव जातिका मूल निवास था। यहांकी भी बहुत सी जातियां सब दिशाओंमें फैली हैं। किस प्रकार फैलीं इसका अनुसन्धान भविष्यमें कभी प्रगट करेंगे। इस लेखको समाप्त करनेके पहले पाठकोंका ध्यान हम यमदूतोंके प्रति और खेंचना चाहते हैं। जल समाधि या पवन-समाधिके समय जो लोग शवका खण्ड खण्ड करते हैं वह यमदूत ही कहे जाते हैं। उनका यही पेशा है। यम शब्द हमारे प्राचीन ऋषियोंके वैदिक कालमें भी एक मृत्युका देवता है। फलतः यह शब्द भी हमें उसी परिणाम तक पहुँचाता है। पारसी लोग जो पवन समाधि देते हैं उनकी अन्त्येष्टि क्रियाका विस्तृत विवरण हमें प्राप्त हुआ है। हम वह भी पाठकोंको अगले अंकमें भेंट करेंगे। तब जातीय समानता देख कर और भी विस्मय होगा।

इसी प्रकार और जातियोंका भी यदि विस्तृत कार्य विवरण प्राप्त हो जाय तो इस प्रकार रीति रिवाजों तथा अन्य भावोंकी समानता मिलनेसे बहुत सी ऐतिहासिक ग्रंथियां खुल सकेंगी।

—जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार

एक अद्भुत औषध

स स्थान पर जनता जितनी भोली है पुरोहितों या धर्मके ठेकेदारों ने उसे लूटनेका उतनाही गहरा जाल रचा है। उसका एक बड़ा नमूना तिब्बतमें भी मिला है।

इकाईकावागूची (जापानी यात्री) ने अपने भ्रमण वृत्तान्तमें लिखा है कि दलाईलामा आदि प्रधान प्रधान व्यक्तियोंका शव जिस नमककी ढेरीमें रख कर सुखाया जाता है वह नमक भी बड़ा पवित्र गिना जाता है। इसका भोग करनेका अधिकार प्रायः अमीरोंको ही मिलता है। सर्व साधारण इतना व्यय नहीं सह सकते। मुर्दोंके रसवाला नमक बहुत ही महँगा और बहुत ही सिफ़ारिशों से मिलता है। यह सब रोगों पर एक अच्छी दवा मानी जाती है। उनका विश्वास है कि इसको जलमें घोल कर खाने या

पीनेसे संसारका कोई रोग शरीरमें नहीं रह सकता। यह हज़ारों रोग अच्छा करता है या नहीं, इस बातमें यद्यपि संदेह है तो भी अशिक्षित व्यक्तियोंके सब रोग अवश्य दूर हो जाते होंगे। और नहीं तो हृदय तो शान्त हो जाता होगा।

इसीके समान एक और भी बड़ी नाचूक अमोघ ओषधिका तिब्बतमें बड़ा मान है। उसे यदि तिब्बतीय अमृत वटी कहें या तिब्बती मकरध्वज कहें तो कदाचित् उपयुक्त होगा। इससे रोग तो क्या दूर होते होंगे; पर यदि उसकी वास्तविकता सुन लें तो नीरोग भी रोगी ही हो जांय। यह औषध दलाईलामा और उच्च पदाधिकारियोंके मल-मूत्रसे तय्यार की जाती है। उनके मलमूत्रमें ही कुछ और पदार्थका योग देकर गोली बना कर सुखा लेते हैं और उनको लाल रंगमें रंग लेते हैं। यह औषध बाज़ारोंमें नहीं मिलती। यदि किसीको ज़रूरत हो तो उसको बड़े बड़े आदमियोंकी सिफ़ारिशसे मिल सकती है! और दाम भी बहुत खर्च करने पड़ते हैं। तिब्बत वासी इस गोलीको बहुत रुपया खर्च करके अपने पास रखनेकी इच्छा करते हैं। इसका नाम बहुमूल्य वटी "रत्नाचेनारपू" कहते हैं। यह भी एक मृत्युंजय मणि समझी जाती है। जब रोगीके ऊपर सब ओषधियां निष्फल हो जाती हैं तब यह गोली दी जाती है। बहुधा विश्वासके कारण ही रोगी चंगा हो जाता है। यदि न भी चंगा हुआ हो तो गोलीमें कोई दोष न जानकर रोगीका ही दौर्भाग्य तथा मृत्युका प्राबल्य समझा जाता है। इन गोलियोंका सब रहस्य गुप्त रखा जाता है। इसका गुप्त नुसख़ा दलाईलामाके केवल अन्तरंग सेवक ही जाना करते हैं। जय महामाया की।

—जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार

सभ्यों और असभ्योंका भोजन

पाप्युलर सायंस सिफ्टिंग (२।४।२३) में एक छोटीसी पंक्ति लिखकर असभ्य जंगली जातियों पर एक चुटकी ली है कि "आस्ट्रेलियामें तितली बहुत अधिक होती हैं। वहांके जंगली लोग उनको लाखोंकी तादादमें मारकर उनके पंख उखाड़ डालते हैं और उनको दबाकर छोटी छोटी रोटियां बनाकर खा जाते हैं।" प्रश्न होता है कि सभ्य जातियोंने क्या किया है? सुनिये।

१—इङ्गलैण्डवासी लाखों मछलियां पकड़कर नमकमें भूनकर खा जाते हैं।

२—वह गाय भैंस बैलोंको लाखोंकी तादादमें कतल करके उनका मांस पकाकर थालीमें रख छुरी कांटेसे काटकर हड़प जाते हैं।

३—वह गाय भैंस जैसे गरीब जानवरोंकी खालें उधेड़ उधेड़ कर उनका व्यापार करते हैं।

४—यूरोप लोग सूअर खूब उड़ाते हैं। इत्यादि

भेद इतना ही है कि सभ्य कहानेवाले कमज़ोर हैं इस कारण वह कच्चा नहीं खा सकते। वह पकाकर और भूनकर खाते हैं। असभ्य लोग कच्चा भी खा लेते हैं।

सबसे पहले जिसने मांसको शूल या सींख पर चढ़ाकर भूननेकी रीति या हांडियों कड़ाहों और देगोंमें डालकर पकानेकी रीति निकाली थी वह सभ्यताका भाव बढ़ानेके लिए नहीं निकाली थी; बल्कि प्रथममानव बुद्धिने अपने शत्रुको और भी कष्ट देनेके अभिप्रायसे उसको आगमें झोंककर, लटकाकर, बांसोंमें टांगकर भूना या देगोंमें डाल कर पकाया होगा; तिस पर भी दिल शान्त न होने पर उसको खाया होगा। उसमें जब रस विशेष पाया होगा तब रसनाके लोभसे खाना आरम्भ किया होगा। तो भी यह सभ्यता मानी गयी है! वस्तुतः देखा जाय तो यह क्रूरताका भाव ही यूरोपकी सभ्यताका प्रवर्त्तक है।

—रामानन्द

रसायन

[लेखक—श्रीयुत गंगाप्रसाद, बी. एस-सी.]

जिस घटनाका उल्लेख पिछले अध्यायमें कर चुके हैं, उसको घटित हुए दो सप्ताह बीत चुके हैं। रामलालजी ने इस समयमें चेकको भुना कर ४५००००) रु० तो भट्टाचार्यजी को दे दिये और शेष १५००००) अपने हिसाबमें जमा कर दिये। उन्होंने नौकरी छोड़ दी है और रात दिन ऐसे वयोवृद्ध धन कुबेरोंकी तलाशमें लगे रहते हैं, जो धन व्यय कर यौवन लाभ करना चाहते हैं, परन्तु आजकल उन्हें अपने विवाहके दिनकी फिक्र सता रही है। विवाह सोमवारके दिन होना निश्चय हुआ था, आज इतवारका दिन है, किन्तु अभी तक पूरा प्रबन्ध नहीं हो पाया है।

आइये-अब ज़रा चल कर देखें कि विमला और भट्टाचार्यजीका क्या हाल है। चट्टोपाध्यायजी अब सुबहसे शाम तक दसबार प्रोफेसर महोदयसे मिलने आया करते हैं। वह भी विमलाको जी जानसे चाहने लगे हैं और समय समय पर पेशकदमी करनेका प्रयास भी करते हैं, किन्तु विमला उनको ऐसी बातें करनेका अवसर ही नहीं देती। वह सदैव उनको कतरा कर इधर उधर हो जाती है। दो तीन दिन पहले रामलाल जीने भी इस बातको देखा था और विमलासे इस विषयमें पूछा था। विमलाका उन्हें पूरा पूरा भरोसा था, विमलाने भी उनसे स्पष्ट कह दिया कि चट्टोपाध्यायजी यद्यपि अब सुन्दर युवकसे दिखाई देने लगे हैं तथापि मैं तो उन्हें वही ६० वर्षका बुड्ढा समझती हूं।

इतवारकी रातको आठ बजे रामलाल जी पलंग पर लेटे लेटे एक उपन्यास पढ़ रहे थे। साथ ही सोमवारको होनेवाले शुभ संस्कार से होनेवाले आनन्दकी कल्पना भी करते जाते थे कि इतनेमें ही उनकी टेलीफोन बोली, "टन टन टन टन" यह फौरन कूद कर टेलीफोनके पास पहुंचे और रिसीवरको उठा कानसे लगा लिया और ट्रान्समिटरमें बोले "कौन है ?" जवाब मिला, "मैं हूं विमला, मेरी सहायता करो, शीघ्र आओ, बात करनेका समय नहीं है।"

रामलालजीने फौरन कपड़े पहने और एक इक्केमें बैठ १५ मिनटमें ही विमलाके घर जा पहुंचे। उन्होंने देखा कि चट्टोपाध्यायजी वहां पहलेसे विराजमान हैं।

विमलाने आगे बढ़ कर कहा, "महाशय; आप जानते हैं कि पिता जी अभी क्या करनेवाले हैं ?"

रामलालजी—मैं क्या बता सकता हूं कि वह क्या करनेवाले हैं ?

विमला—वह रसायन पीकर फिर किशोरावस्था प्राप्त करना चाहते हैं। पर मैं नहीं चाहती कि वह ऐसा करें; इसी काममें मुझे आपकी सहायता चाहिये।

भट्टा०—विमला; यदि मैं फिर जवान हो जाऊँ तो तुम्हारी क्या हानि होगी।

विमला—पिताजी, श्रद्धेय पिता जी, आपके इस वृद्ध शरीरमें जो मेरी श्रद्धा, भक्ति, प्रेम आदि हैं उनका सहसा लोप हो जायगा। मुझे तो आपका यही स्वरूप परम पवित्र और पूजनीय प्रतीत होता है।

भट्टा०—विमला, तुम बड़ी स्वार्थिनी हो।

विमला—पिताजी यह दोष मुझ पर न लगाइये। महाशय, आप इन्हें समझाइये।

भट्टा०—रामलालजी, मुझको समझानेका प्रयत्न निष्फल होगा। आप अपना समय और शक्तिका दुरुपयोग न कीजिये। यह देखिये इस गिलासमें मैं १० बूंद रसायनकी डाल चुका हूं और यह देखिये यह मेरे गलेसे उतर गयीं ?

किसीको उन्हें रोकनेका समय भी न मिला, वह उस गिलासका पानी पी ही गये। और एक शीशेके सामने जा अपने रूपमें होनेवाले परिवर्तनको गौरसे देखने लगे। दो मिनट बाद वह पुकार उठे; "अहा हा ! आओ, आजका यह शुभ दिन, जब हम चारों युवा हैं बड़ी धूम धामसे मनायें।" चट्टोपाध्यायजीने चट उठ कर प्रोफेसर महोदयके दोनों हाथ थाम लिये और कहा, "निस्संदेह आज बड़ी खुशी मनानेका दिन है। बुढ़ापेका अनुभव करनेके बाद फिर जवान हो जाना बहुत बड़ी बात है। आज रामलालजी और विमलाके विवाहके उपलक्ष्यमें भी गुलछर्रे उड़ालें। रामलालजी, ज़रा बाहरसे मेरी "कार" में से टोकरा तो उठवा लाइये।" रामलालजी फौरन बाहर गये और नौकरसे टोकरा उठवा लाये। टोकरा चट्टोपाध्यायजी के सामने जब रखा गया तो उन्होंने उसे उठा कर मेज़ पर रख दिया। उसमें खानेका सब सामान था और

शिक्षितोंके सुखकी निधि, मदिरा, भी कई बोतलोंमें भरी हुई अपना निखरा रंग बोतल रूपी घूंघटमें से छान छान कर दिखला रही थी।

चट्टोपाध्यायजी ने उसमें से निकाल कर सब सामान मेज पर रखा और बोले; "हम खायेंगे, पियेंगे और मजा उड़ायेंगे; क्योंकि कलकी कौन जाने कि क्या होगा। रामलाल जी यह देखिये इस बोतलमें कैसा पवित्र और पुराना गङ्गाजल है; यह आपके विवाहकी खुशी मनानेके लिए मैं साथ लेता आया हूं। अतएव इसे तो आप ही पीजिये। और बोतलोंमें-से हम सब पियेंगे।" और गिलासों में भी शराब भर दी गयी और चारों व्यक्ति साथ साथ पीने लगे।

"कहिये महाशय आपकी तबियत कैसी है, क्या आपको यह मदिरा रुचि कर न लगी।" यह बातें विमलाने रामलाल जी को मुंह बनाते देख कर कही थीं, परन्तु वह उपर्युक्त बात पूरी भी नहीं कर पाई थी कि वह चौंक उठी और पुकार उठी; "हा परमेश्वर! महाशय यह आपको क्या हुआ? चट्टोपाध्यायजी यह आपने इनके साथ क्या अनर्थ किया।" इतना कह वह मूर्च्छित हो फर्श पर गिर पड़ी। उधर रामलालजीका क़द छोटा होता जा रहा था; हाथ पैर सिकुड़ कर छः वर्षके बालकके से होते जा रहे थे और उनके कपड़े भी सिमट कर उनके ऊपर इकट्ठे हो रहे थे। इससे उनकी सूरत और भी हास्यजनक हो गयी। अपनेको बच्चा बना हुआ देख राम लाल जी को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कहा, "चट्टोपाध्यायजी आप बड़े धूर्त हैं; आप ने मुझे उस शराब में रसायन मिला कर पिला दी। मैं..."

चट्टोपाध्यायजी बात काटकर बोले; "देखो उस प्यारी बिल्लीको पकड़ लो। उसे ले जाओ और खेलो। अपने बड़ों-के बीचमें आकर बातें न बनाओ। जाओ घर जाओ, मा का दूध पियो; मा इन्तजारमें बैठी होगी।"

उधर विमलाको कुछ होश आया और उसने आखें खोली किन्तु अपने सामने फिर वही दृश्य देखकर फिर बन्द कर लीं। चट्टोपाध्यायजी झुके और उन्हों ने विमलाको उठाकर मेजपर लिटा दिया। भट्टाचार्यजी तो आश्चर्यवत खड़े देख रहे थे; परन्तु रामलालजीको क्रोध आगया। उन्होंने छोटी छोटी मुट्ठियोंसे चट्टोपाध्यायजीके मुके लगाते हुए कहा, "हटो, हटो, मेरी मंगतेरको तुम क्यों छूते हो? उसका अंग स्पर्श न करो।" चट्टोपाध्यायजीने रामलालजीको धक्का देकर अलग कर दिया और बोले; "वाहरे मियां टेटू; जमीनमें से उगे नहीं कि इतनी बड़ी औरतको अपनी मंगतेर बनाने लगे। क्या मज़ाक है? वह तुम्हारा क्या करेगी? क्या तुम्हें दूध पिलाया करेगी या गोदमें खिलाया करेगी?"

चट्टोपाध्यायजीने एक गिलास उठाकर उसमें कुछ शराब उंडेली और विमलाको पिलानेके लिए हाथ बढ़ाया। यह देख रामलाल जी डपट कर बोले, "हैं, यह क्या अनर्थ कर रहे हो; क्या उसको भी बच्चा बनानेकी जी में है?

चट्टोपाध्यायजी—रामलालजी, आप क्या समझते हैं कि मैं पागल हूं। विमलाका तो ऐसा ही बना रहना अच्छा है। मेरा इसीमें लाभ है।

विमलाने मदिरा पीली। वह उठकर एक कुर्सी पर बैठ गयी। और बोली, "महाशय, चट्टोपाध्यायजीकी घातकी बातें मैं सब समझती हूं। आपको इस प्रकार हटा कर वह मुझे वरना चाहते हैं। यह उनकी कल्पना मात्र है; जो कभी फलवती न होगी। आप निश्चन्त हो अपने घर जांय। मैं आपके फिर युवा हो जानेकी प्रतीक्षा करूंगी।

चट्टो०—विमले, १५ वर्ष तक इस छोकड़ेके लिए कुमारी बनी रहोगी? देखना वर्ष छः महीनेमें ही तुम्हें अपना विचार त्यागना पड़ेगा।

विमला—आपका इन सब बातोंसे सरोकार नहीं है। आप यहांसे चले जाइये और मुझे कदापि मेरा नाम लेकर सम्बोधन न कीजिये। अशिष्टता पूर्ण व्यवहार न कीजिये। आपने पशुवत व्यवहार किया है और मुझे आपसे अत्यन्त घृणा है। पिता जी आप इस मामलेमें जरा भी नहीं बोलते, इस पाशविक अत्याचारको आप कैसे देख रहे हैं?

भट्टा०—विमले, यह सब घटनाएं बड़ी आश्चर्य-जनक हैं। अच्छा, मैं विचार करूंगा।

ऐसा प्रतीत होता था कि भट्टाचार्यजी बड़े गहन विचार-में मग्न हैं या चिन्तामें डूबे हुए हैं। वह "अच्छा, अच्छा" कहते हुए प्रयोग शालासे बाहर चले गये। विमला से न रहा गया, वह चट्टोपाध्याय जी से बोली; "आप बड़े दुष्टात्मा हैं; आपने शायद पिताजीको भी कोई ओषधि खिलादी है। मुझे कभी यह आशा न थी कि आप ऐसे नीच काम भी कर सकते हैं। चट्टोपाध्याय जी ने कहा, "शायद प्रोफेसर बाबू

का मस्तिष्क कुछ गरम होगया है। उसे ठंडा हो जाने दो; किसी बातका डर न करो।" इतना कहकर उन्होंने अपना टोप उठा लिया और चल दिये।

४

रामलालजीका दिमाग भी चक्कर खा रहा था, उन्हें आगा पीछा कुछ नहीं सूझता था। वह भी अपने कपड़ोंको सम्हाल अँधेरेकी चादरमें छिपते हुए घरकी ओर चल दिये और वहां पहुंचकर सो गये। उनकी बड़ी विचित्र अवस्था थी; शरीर छः वर्षके बालकका सा था, किन्तु मस्तिष्क २१ वर्ष के युवा कासा; इस कारण उन्हें बड़ी मानसिक पीड़ा हो रही थी। अपनी बेबसी पर हाथ मल रहे थे और प्रतीकारके लिए छट पटा रहे थे। वह सोच रहे थे कि विमला जैसी नारी रत्न अब मुझे न मिल सकेगी; क्योंकि जब तक में २० वर्षका फिर हूंगा वह ३१ वर्षकी हो जायगी; इस बीच में न मालूम उसे कितने प्रलोभन दिलाये जायंगे, क्या क्या ऊंच नीच समझाया जायगा और वह किसकी आश्रित होकर रहेगी। अतएव इस भरोसे बैठा रहना बड़ी भूल होगी। मुझे अपनी बुद्धि से काम लेकर चट्टोपाध्याय जी से बदला चुकाना चाहिये। यद्यपि मेरा मस्तिष्क ठीक काम कर रहा है, किन्तु इस शिशु देह से पग पग पर मुझे कठिनाइयां पड़ेंगी। खैर जो कुछ हो, प्रयत्न करना मेरा कर्तव्य है, फल परमात्मा के अधीन है।"

उपरोक्त बातें सोचते हुए दुखों को भुला देने वाली, थकावटको दूर करनेवाली, देह और मस्तिष्कको आराम देनेवाली निद्रादेवी ने उन्हें अपनी गोद में ले थपकियाँ दे दे कर सुला दिया। जब प्रातःकाल हुआ तो यह घबड़ा कर उठे और कपड़ों के लिए हाथ बढ़ाया। तब फिर उन्हें उसी चिन्ता ने आघेरा; उनका शरीर तो छोटा हो गया था; पहले के कपड़े उनके कैसे आते। अन्ततः उन्होंने यह विचार किया कि मकानवालीको बुलायें। इसी अभिप्राय से उन्होंने घंटी बजायी; तुरन्त ही मकान वाली ने इनके कमरे के दर्वाजे पर आवाज दी और पूछा, "रामलाल जी, आपको क्या चाहिये; आपने कैसे मुझे बुलाया।"

रामलाल—"माई ज़रा भीतर आओ!" यह कहकर वह कपड़ोंमें लिपट कर सो गये। मकानवाली जब कमरेमें घुसी तो उसे रामलाल जी नज़र न आये। पलंग पर भी कोई २१ वर्ष का जवान होता तो दूरसे ही दिखाई पड़ता। उसे यह भी आशा न थी कि रामलाल जी जैसे शिक्षित व्यक्ति उससे मज़ाक करेंगे। अतएव यह समझ कि रामलाल जी शायद पलंग के नीचे छिप गये हों या कुछ चाल उन्होंने की है, वह पलंग की तरफ बढ़ी और क्रोध करके बोली—"रामलाल जी कहाँ छिप गये यह क्या असद्व्यवहार है।" यह सुन रामलाल जी ने मुंह उघाड़ा और कहा, "माई मेरा दुर्भाग्य है; मेरी तरफ देखो; मैं ही रामलाल या रामलाल का अवशेष हूं।"

यह सुनकर तो बुढ़िया को बड़ा तैश आगया और डांट कर बोली; "कल के छोकरे मेरे साथ हंसी न करो। रामलाल जी को क्या मैं नहीं जानती, वह पांच वर्ष से मेरे मकानमें रह रहे हैं और भोजन कर रहे हैं; क्या मैं पहचाननेमें गलती कर सकती हूं।"

रामलाल—माई क्रोध न करो, शान्ति पूर्वक मेरी बातें सुनो। कल जो कपड़े रामलालजी पहने थे, उन्हें पहचानती हो? कल ब्यालूके समय जो बातें आपने उनसे की थीं याद हैं? देखो वह कपड़े कुर्सी पर पड़े हैं; कल शामकी सब बातें मुझसे सुनलो; मेरे माथे परका निशान देखकर पहचानो; यह अंगूठी देखो और पहचानो।"

सरला देवी—ईश्वर ईश्वर यदि तुम्हीं रामलाल हो तो यह आश्चर्य जनक परिवर्तन हो कैसे गया?

रामलाल—"कल एक मनुष्यने मुझे धोखा देकर एक दवा पिला दी; जिसका परिणाम यह देख रही हो। खैर अब आश्चर्य करने और घबड़ाने की कोई बात नहीं है। किसीको यह भेद न बतलाना। मेरे कोटकी जेबमें से रुपये निकाल कर मेरे लायक कपड़े बाजार से लादो।" विमला देवी रुपये निकाल अनिष्टकारीको कोसती हुई बाजारकी तरफ चली गई।

५

उधर विमलाकी दशा भी बड़ी शोचनीय हो रही थी। उसे गत रात्रिकी घटनासे बड़ा मानसिक दुःख हुआ था। उसने अपने कमरेमें जाकर भीतरसे कुन्डी चढ़ाली थी। दो तीन बार उसके पिता ने आकर आवाज दी, दर्वाजा खट खटाया, पर विमलाने दरवाजा न खोला। गत रात्रिसे वह अपने पिताकी तरफ निगाह उठाकर देखनेका साहस नहीं कर

सकती थी। अब उसे यह सोचते भी डर लगता था कि यह अठारह वर्षका युवा पुरुष मेरा बाप है। प्रोफेसरके वृद्ध शरीर में परिवर्तनके साथ साथ विमलाके प्रेम और श्रद्धामें भी परिवर्तन हो गया था। रामलालजी का जब खयाल आता था तो उसे अपने पितापर और भी क्रोध आता था, "यह उन्हींकी बनायी रसायनकी करामात है कि मेरा प्रेम पात्र आज छः वर्षका बालक बन गया है और चट्टोपाध्याय जैसा स्वार्थी और अधर्मी मेरे पीछे पड़ा हुआ है। जो कठोरता, निष्ठुरता और स्वार्थपरता चट्टोपाध्यायजीने प्रेम-क्षेत्रमें दिखलाई है उसीके कारण वह व्यवसाय क्षेत्रमें सफल हुए होंगे। मैं भी प्रयत्न करूंगी..." वह यह सोच ही रही थी कि दर्वाजा किसी ने बड़े जोर से खट खटाया। विमलाने पूछा; "कौन है।" "मैं हूं तुम्हारा पिता; रामलाल जी आये हैं। तुमसे मिलना चाहते हैं।" विमला ने कहा, "मैं अभी आती हूं।"

थोड़ी देर बाद विमला बैठकमें गयी, तो छः वर्षके बालक को देख हँसी भी आई और दुख भी हुआ। विमलाने कहा, "महाशय; आपको देखकर विश्वास नहीं होता कि कल ही आपमें परिवर्तन हुआ था; पर क्या अब इसका कोई प्रति शोध भी है या नहीं।" "प्रियतमे, यहाँ आकर मेरे पास बैठ जाओ, तब हम बात करेंगे।" दोनों प्रेमियोंमें लगभग दो घण्टे तक बातें होती रहीं, तदनन्तर रामलालजी उसी पूसीको जिसको रसायन खिलाई गयी थी, बगल में दबाकर चले गये।

एक मास तक फिर रामलाल जी नजर न आये। विमलाको उनकी बड़ी याद आती थी, परन्तु उसे यह सोचकर संतोष हो जाता था कि रामलालजी उपाय ढूंढ़ निकालने में व्यस्त हैं। चट्टोपाध्यायजी ने प्रोफेसर बाबूके घर पर ही डेरा डाल दिया था। एक दिन संध्या समय प्रोफेसर साहब ने विमला को बुलाया और कहने लगे; "विमला, अब उस छः वर्षके बालकको भूल जाओ। अब थोड़ा सा समय चट्टोपाध्यायजी को भी दिया करो। इन्होंने विवाहका प्रस्ताव कर हमारे कुल का मान बढ़ानेका संकल्प कर लिया है। हमें कृतज्ञ होना चाहिये। मैंने भी उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। विमला यह सुनकर चौंकी और पुकार उठी, "यह असम्भव है, मैं कदापि इनसे विवाह नहीं कर सकती।"

भट्टा०—नहीं विमला इनसे विवाह करना होगा। चट्टोपाध्याय जी मुझे प्रयोगोंके लिए बहुत सा धन देंगे। मैं रसायनकी खोज और परीक्षा जारी रखूंगा। रसायनकी बदौलत मैं इस संसारमें सुख सुलभ कर सकूंगा।

विमला—पर पिता जी, मैं तो चट्टोपाध्यायजी से कभी प्रेम नहीं कर सकती।

भट्टाचार्यजी—"कुछ हर्ज नहीं है। उनका शिष्टाचार और उनकी असीम सम्पत्ति तुम्हें शीघ्र ही प्रेम करना सिखा देगी; ज़रा सोचो तो कि इस सम्बन्ध से मुझे और तुम्हें दोनोंको सुख मिलेगा।"

विमलाको इस समय रामलालजीकी बातें याद आगयीं। वह कह गये थे कि इन लोगोंकी हाँ में हाँ मिलाती रहना और बात टालती रहना। विमलाको अब यह मालूम होने लगा कि मेरे पिता में अब बड़ा परिवर्तन हो गया है। वह चट्टोपाध्याय के वश में हैं। जो चट्टोपाध्यायजी कहते हैं वही वह करते हैं। प्रोफेसर बाबू ने फिर विमला से पूछा—"कहो; क्या निश्चय किया?"

विमला—मैं विवाह तो न कर सकूंगी। प्रोफेसर बाबूने चट्टोपाध्यायजीकी तरफ देखा तो उन्होंने इनकी तरफ आंखसे कुछ इशारा किया, तब तो प्रोफेसर विमलाको डाट कर बोले—"तुम मेरी अवज्ञा करना चाहती हो। सुनो तुम्हारा विवाह आगामी रविवारको यहीं, इसी बैठक में, ९ बजे सवेरे होगा। इस बातको सुन लो और समझ रखो।

विमला—अ...च्छा...

भट्टा०—तुम बड़ी अच्छी लड़की हो। मुझे तुम्हारी स्वीकृति सुन कर बड़ा हर्ष हुआ है।

चट्टोपाध्याय जीने यह सुन कर विमलाकी तरफ हाथ मिलानेको बढ़ाया, पर विमला पीछे हटगई और बोली; "महाशय; मैं अपने पिताकी आज्ञा मानूंगी। परन्तु मुझसे न बोलिये।" यह कह विमला जी मसोसकर सिसकती और बिसूरती अपने कमरे की तरफ चली गई। वहां वह अपनी माता का स्मरण करती रही और सोचती रही कि यदि आज वह जिंदा होती तो ऐसा असद्व्यवहार मेरे साथ न होता।

६

रविवार आ पहुंचा। जिस व्यक्ति को विमला न चाहती थी, बल्कि जिससे उसे बड़ी घृणा थी, उसीसे आज उसका विवाह होगा। अभी तक रामलालजीका कुछ पता नहीं है। अन्तिम घटना की सूचना विमला उन्हें दे चुकी थी और उन्होंने रविवारके पहले ही पहुंचनेकी बात कही थी; पर अब तक उनके न आनेसे विमला घबड़ा रही थी। ८ बजेके लगभग सेविका आई, उसने विमलाका श्रृंगार किया और विवाहका बहुमूल्य जोड़ा विमला को पहनाया। विमलाने कपड़े पहनते समय एक दुःख भरी ठंडी सांस ली और जी मसोसकर रह गयी। ८॥ बजे वह बैठकमें गई; वहां पर चट्टोपाध्यायजी को देख ठिठकी; पर लाचार थी करती क्या। प्रोफेसर महोदय भी बड़े दुखी दिखलाई देते थे। मालूम होता था कि वह कुछ कहना चाहते हैं, पर कह नहीं सकते थे। उपदेशक आ गये; पर रामलालजी का अब भी कुछ पता न था। क्या अब वह न आयेंगे। ९ बजने में ५ मिनट बाकी थे; विमला घबड़ा रही थी; इतने में प्रोफेसर साहब बोले "विमले, अब समय हो गया; आओ, आगे बढ़कर चट्टोपाध्यायजी के बराबर खड़ी हो" चट्टोपाध्याय जी आगे बढ़े और विमलाका हाथ पकड़ उपदेशकके पास ले आये। विमला इस समय कठपुतलीकी नाईं हतचेष्टा प्रतीत होती थी। उपदेशक बोले—"यदि यहां कोई व्यक्ति है जिसे इस विवाहके होनेमें कोई आपत्ति हो तो आकर कारण बतलाये या सदाके लिए इस विषयमें मौन धारण करले।" बाहरसे आवाज़ आयी, "हां, मैं आता हूं। इस विवाहके होनेमें मुझे आपत्ति है।" विमलाने जब यह सुना तो ज़रा आंख खोल कर बाहरको देखा और रामलालजी को अपने पूर्व रूपमें आते देख बेहोश होकर गिर पड़ी। चट्टोपाध्याय जी विमलाको उठानेको बढ़े ही थे कि रामलालजी ने उन्हें धक्का देकर अलग हटा दिया और कहा, "बाबा अलग हटो।" फिर इन्होंने विमलाको उठाकर आराम कुर्सीपर लिटा दिया।

चट्टोपाध्यायजीको बड़ा क्रोध आया, इन्होंने बढ़कर रामलालजी की नाक पर एक घूंसा मारना चाहा; परन्तु सहसा वह मुंहके बल गिर पड़े और २ मिनटमें फिर ६० वर्ष के बढ़ूढे हो गये। वह पुकार उठे, "रामलाल जी यह आपने क्या किया। मैं तो फिर बुड्ढा और दुर्बल हो गया।"

रामलाल—अब समझे कि मैंने आप से क्यों कहा था कि बाबा हट जाओ। जब मैं पूसीको लेकर यहांसे चला गया तो मैंने देखा कि तीसरे ही दिन वह फिर बुड्ढी हो गयी और ५ मिनटमें मर गयी। इसका कारण यह था कि जवान बने रहने के लिए प्रति सप्ताह रसायनका सेवन करना चाहिये। तब मैं विमला से मिला और रसायनकी शीशियोंमें-से रसायन तो निकलवाकर फिकवादी और हरा पानी भरवा दिया। पिछले दस दिनमें जो आपने दो बार रसायन खाई थी, वह निरा हरा पानी था। दूसरे मैंने उसका तोड़ भी निकाल लिया है। उसी तोड़का घोल आप १५ मिनट पहले यहां पी चुके हैं, जिसका फल आप स्वयम् अनुभव कर रहे हैं। नमस्कार अब आप घर जाइये।

जब तक रामलालजी चट्टोपाध्यायजी से बातें कर रहे थे, प्रोफेसर बाबू भी बुड्ढे हो गये। रामलालजी ने उनको नमस्कार किया और विवाहकी अनुमति मांगी।

विमला और रामलालजी का उसी समय विवाह हो गया, क्योंकि वह लैसन्स पहलेसे ही ले आये थे।

प्रोफेसर महोदयने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा; "मुझे चट्टोपाध्यायजी ने अपने इच्छा-धीन कर रखा था; इसी कारण विमले तुम्हें मैंने दुःख दिया। अब मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि विश्वके नियमोंको उलटनेका कभी प्रयत्न न करूंगा।"

समय की अद्भुत नाप

समय नापनेकी इकाइयां कल्प, युग, वर्ष, मास, पक्ष, सप्ताह, दिन, घण्टा, घड़ी, पल, विपल आदि आपने सुनी होंगी, परन्तु आज आप एक और नई इकाई याद कर लीजिये। इसका नाम है "पतीली" या "देगची"। यह इकाई साइबेरिया की ओस्टियेक (Ostiaks) जातिके लोगोंमें प्रचलित है। जिस प्रकार यहां किसी गांव या स्थान की दूरी बतलानेके लिए कहा जाता है कि दो घंटे का रास्ता है, उसी प्रकार वहां कहते हैं कि ५ पतीली का रास्ता है; जिसका आशय यह है कि यदि एक एक करके पांच पतीली चूल्हे पर चढ़ायी जायं तो जितनी देरमें उनमेंका पानी उड़ जायगा। उतनी ही देर उस दूरीको तय करनेमें लगेगी।

सूर्यसिद्धान्त

(गताङ्कसे आगे)

[ले०—श्री० महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी. एल.टी., विशारद]

वसुद्व्यष्टाद्रिरूपांकसप्ताद्रितिथयो युगे ।
चान्द्राः खाष्टखखव्योमखाग्नि खर्तनिशाकराः ॥३७॥
षड्वह्नित्रिहुताशाङ्कतिथयश्चाधिमासकाः ।
तिथिक्षया यमार्थाश्विद्व्यष्टव्योम शराश्विनः ॥३८॥
खचतुष्कसमुद्राष्टकुपञ्च रविमासकाः ।
भवन्ति भोदया भानुभगणैरूनिताः क्वहाः ॥३९॥

अनुवाद—(३७) एक महायुगमें १,५७,७९,१७,८२८ सावनदिन; १,६०,३०,००,०८० चान्द्र दिन अर्थात् तिथियां; (३८) १५,९३,३३६ अधिमास; २,५०,८२,२५२ क्षय तिथियां तथा (३९) ५,१८,४०,००० सौर मास होते हैं। नक्षत्रके उदयोंमेंसे सूर्यके भगणकी संख्या घटानेसे भूमिसावन दिन होते हैं ॥३७-३९॥

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंमें जो संख्याएं दी गयी हैं वह इनसे पहलेके तीन श्लोकोंके उदाहरण हैं।

ऊपर जो महायुगीय अंक दिये गये हैं वह सब सिद्धान्तोंमें एकसे नहीं हैं। थोड़ा बहुत अंतर पाया जाता है। एक महायुगमें सावन दिनोंकी संख्या भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंमें जैसी मिलती है वह नीचे की सारिणीसे सहज ही जानी जा सकती है:—

प्रचलित सूर्य सिद्धान्त के मतसे १,५७,७९,१७,८२८
पंचसिद्धान्तिके सूर्यसिद्धान्तके मतसे १,५७,७९,१७,८००
आर्यभटीयके मतसे १,५७,७९,१७,५००
ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणिके मतसे १,५७,७९,१६,४५०
महासिद्धान्तके मतसे १,५७,७९,१७,५४२

अधिमासोनरात्र्यृक्ष चान्द्र सावन वासराः ।
एते सहस्रगुणिताः कल्पे स्युर्भगणादयः ॥ ४१ ॥

अनुवाद—अधिमासों, अवम तिथियों, नाक्षत्र, चान्द्र और सावन दिनों तथा ग्रहोंके भगणोंकी जो संख्याएं (बतलायी गयी) हैं उनका एक हजार गुना कर देनेसे कल्पकी संख्याएं निकल आती हैं ॥४०॥

विज्ञान भाष्य—१००० महायुगोंका एक कल्प होता है; इसलिए महायुगीय भगण इत्यादिकी संख्याओंको १००० से गुणा कर देनेपर कल्पकी संख्याएं जानी जा सकती हैं।

प्राग्गतेः सूर्यमन्दस्य कल्पे सप्ताष्टवह्नयः ।
कौजस्य वेदखयमा बौधस्याष्टर्तुवह्नयः ॥४१॥
खखरन्ध्राणि जैवस्य शौकस्यार्थगुणेषवः ।
गोऽग्नयः शनि मन्दस्य पातानामथ वामतः ॥४२॥
मनुदस्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्ट सागराः ।
कृताद्रिचन्द्रा जैवस्य त्रिखाङ्काश्च भृगोस्तथा ॥४३॥
शनि पातस्य भगणाः कल्पे यम रसर्तवः ।
भगणाः पूर्वमेवात्र प्रोक्ताश्चन्द्रोच पातयोः ॥४४॥

अनुवाद—(४१) पूर्व की ओर चलते हुए एक कल्पमें सूर्यका मन्दोच्च ३८७ भगण, मङ्गलका मन्दोच्च २०४ भगण, बुधका मन्दोच्च ३६८ भगण, (४२) बृहस्पति का मन्दोच्च ९०० भगण, शुक्रका मन्दोच्च ५३५ भगण और शनिका मन्दोच्च ३९ भगण करता है। पातोंकी गति पच्छिमकी ओर को होती है। एक कल्प में मङ्गल का पात २१४ भगण, बुधका पात ४८८ भगण, बृहस्पतिका पात १७४ भगण, शुक्रका पात ९०३ भगण और (४४) शनिका पात ६६२ भगण करता है। चन्द्रमाके उच्च और पातके भगणोंकी संख्या पहले (३३वें श्लोकमें) बतलायी जा चुकी है।

विज्ञान भाष्य—ग्रहोंके भगणों और पातोंकी गति बहुत सूक्ष्म होती है। इनमेंसे कोई भी १ महायुगमें १ पूरा चक्कर नहीं कर पाते, इसलिए इनकी संख्या कल्पके अनुसार दी गयी है।

मन्दोच्च और पात किसे कहते हैं इसका विवेचन चन्द्रमाके उच्च और पातके साथ किया गया है। यह संख्याएँ कैसे जानी गयीं, इसका स्पष्ट प्रमाण कहीं नहीं मिलता; परंतु इसमें संदेह नहीं कि इसकी जानकारी बहुत कालके पर्यवेक्षणसे की गयी होगी। कुछ पाश्चात्य विद्वान कहते हैं कि

इसका ज्ञान भारतीय ज्योतिषियोंको यूनानियोंसे हुआ होगा; परंतु यह उनका भ्रम है जैसा कि नीचे-की सारिणीसे जान पड़ेगा। यहां यह बतला देना आवश्यक है कि इन भगणोंकी संख्या आज-कलके सूक्ष्म यंत्रोंसे जाने गये अंकोंसे बहुत भिन्न है।

आधुनिक ग्रन्थोंमें इन मन्दोच्चों और पातोंकी वार्षिक गति दी हुई है; इसलिए सूर्यसिद्धान्तके कल्पीय भगणोंसे वार्षिक गतिका मान निकाल कर तुलना की जा सकती है। वार्षिक गति इस प्रकार निकाली गयीः—कल्पमें जितने भगण होते हैं उसको कल्पके सौर वर्षसे भाग दे दिया गया तो भगणकी एक भिन्न संख्या प्राप्त हुई। इसको ३६० से गुणा करने पर अंश, अंशको ६० से गुणा करने पर कला और कलाको ६० से गुणा करने पर विकलामें वार्षिक गति निकल आयी। जैसे सूर्य मन्दोच्च एक कल्पमें ३८७ भगण करता है तो १ वर्षमें वह $\frac{३८७ \times ३६० \times ६० \times ६०}{४३२००००००}$ विकला अर्थात् $\frac{११६१}{१००००}$ विकला अर्थात ११६१ विकला चलेगा।

इसी प्रकार अन्य ग्रहोंके मन्दोच्चों तथा पातों-की वार्षिक गति विकलामें जानी जा सकती है।

इस सारिणीके जिन अंकोंके पहले धनका चिह्न (+) है उससे यह प्रकट होता है कि गति पूर्व की ओर है और जिन अङ्कोंके पहले ऋणका चिह्न (—) है उससे प्रकट होता है कि गति पच्छिमकी ओर है।

दूसरे स्तम्भमें जो अंक दिये गये हैं वह सायन मेषके विचारसे दिये गये हैं अर्थात् उनसे यह प्रकट होता है कि सायन मेषसे, (वसंत सम्पातसे) ग्रहोंके मन्दोच्चों और पातोंका अन्तर प्रति वर्ष कितना होता जाता है।

परन्तु सायनमेष चल है। यह प्रति वर्ष ५०.२६ विकला पच्छिमकी ओर हटता जाता है; इस लिए यदि निरयनमेषसे जो स्थिर है मन्दोच्चों और पातोंका वार्षिक अन्तर जानना हो तो दूसरे स्तम्भके अंकोंसे ५०.२६ विकला घटा देना चाहिये। ऐसा करनेसे जो अन्तर आवेंगे वह निरयनमेषसे मन्दोच्चों और पातोंके वार्षिक अन्तर होंगे। ऐसा करनेसे देखा जाता है कि शुक्रके मन्दोच्चकी गति पच्छिमकी ओर है अर्थात् शुक्रका मन्दोच्च तारोंके मध्य पूर्व न जाकर पच्छिमकी ओर खसक रहा है। हमारे व्यावहारिक ज्योतिष ग्रन्थोंमें अयन चलन ६० विकला माना गया है। क्योंकि हमारा वर्षमान वास्तविक नाक्षत्र वर्षसे ८॥ विकला अधिक है; इस-लिए यदि वसंत सम्पातकी वार्षिक गति ६० वि-कला मानी जाय और दूसरे स्तम्भमें जो अंक दिये गये हैं उनमें से ६० विकला घटायी जाय तो जो अन्तर आता है वही चौथे स्तम्भमें लिखा गया है। इस स्तम्भमें जो अंक आये हैं उनकी तुलना सूर्य-सिद्धान्तीय अङ्कोंसे करनी चाहिये।

मन्दोच्चों और पातों की वार्षिक गति

ग्रह	आधुनिक सूक्ष्म *वेधोंके अनुसार सायन मेष या वसंत संपातसे	वास्तविक निरयन मेषसे	हमारे सिद्धान्तोंके अनुसार निरयन मेषसे	सूर्यसिद्धान्तके अनुसार
१	२	३	४	५
मन्दोच्च	विकला	विकला	विकला	विकला
रवि	+६१.५	+११.२४	+१.५	+०.११६१
मंगल	+६५.७	+१५.४६	+५.७	+०.०६१२
बुध	+५६.१	+५.८१	—३.६	+.११०४
गुरु	+५६.६	+६.६५	—३.१	+.२७
शुक्र	+४७.०	—३.२४	—१३.०	+.१६०५
शनि	+६६.६	+१६.३१	+६.६	+.०११७
मंगलका पात	+२५.०	—२५.२२	—३५.०	—०.०६४१
बुध "	+४०.२	—१०.०७	—१६.८	—.१४६४
गुरु "	+३४.३	—१५.६०	—२५.७	—.०५२२
शुक्र "	+२६.७	—२०.५०	—३०.३	—.२७०६
शनि "	+३०.७	—१६.५४	—२६.३	—.१६८६

*Loomis की Practical astronomy से लिया गया

भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृष्ठ २०७

ऐसा करने पर जान पड़ता है कि ४ थे और ५ वें स्तम्भोंमें बहुत अन्तर है। परन्तु यहां यह ध्यान रखना चाहिये कि ५ वें स्तम्भमें जो कुछ लिखा गया है वह कोरी आंखसे और स्थूल यंत्रोंसे जाना गया है।

यदि इन सिद्धान्तोंके मानोंकी तुलना यूनानियों-के मानोंसे की जाय तो जान पड़ेगा कि हमारे सिद्धान्तकार कितनी सूक्ष्म परीक्षा करते थे।

४ थे और सातवें स्तम्भोंके अंकोंको मिलानेसे जान पड़ेगा कि हमारे सिद्धान्तकार वास्तविक स्थितिसे कितना निकट थे और टालमी कितनी दूर। केरोपन्तने जो गणना की है वह आधुनिक मानोंके अनुसार है, इसलिए इनकी गणनासे मन्दोचों और पातोंकी वास्तविक स्थितिका पता लगता है। इस तुलनासे यह भी प्रकट है कि हमारे सिद्धान्तकारोंने स्वतंत्र अनुभवसे इन सब भगण मानोंको जाना था न कि यूनानियों या अन्य देशवालोंसे लिया था जैसा कि कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका मत है।

षण्मनूनांतु सम्पिण्ड्य कालंतत्संधिभिः सह।
कल्पादि सन्धिना सार्धं वैवस्वत मनोस्तथा ॥४५॥
युगानां त्रिघनं यातं तथा कृत युगं त्विदम्।
प्रोज्झ्य सृष्टेस्ततः कालं पूर्वोक्तं दिव्य संख्यया ॥४६॥
सूर्याब्द संख्ययाज्ञेयाः कृतस्यान्ते गता अमी।
खचतुष्क यमाद्र्यग्नि शर रन्ध्र निशाकराः ॥४७॥

अनुवाद—(४५) छः मनुओं, उनकी छः सन्धियों और कल्पकी आदि संधिके कालको जोड़कर योग फलमें वैवस्वत मनुके (४६) २७ युगोंको तथा इस (अट्ठाईसवें) सत्ययुगको जोड़ दो और उसमें से सृष्टिके रचनेमें (२४ वें श्लोकमें) पहले कहेके अनुसार जितना समय लगा है उसको घटा दो। (४७) जो शेष बचे वही (वर्तमान) सत्य युगके अन्त तक सौर वर्षोंमें संख्या हुई जो १,९५,३७,२०,००० है।

१	सम्वत ५५६ वि०में मन्दोचों और पातोंके स्थान २ निरयन	३	४		सम्वद् २०५ वि० मन्दोचों और पातोंके स्थान (सायन) ५	६		७
	केरोपंतकी गणनाके अनुसार	सूर्य सिद्धान्तके अनुसार		अन्तर	केरो पंतकी गणनासे	टालमीकी गणनासे		अन्तर
	राशि अंश कला	रा० अं० क०		अं० क०	रा० अं० कला	रा० अं० क०		अं० क०
रविका उच्च	२ १७ ७	२ १७ १५	+	० ८	२ ११ ५	२ ५ ३०	—	५ ३५
मंगल "	४ ८ ११	४ १० १	+	१ ५०	४ १ ३९	३ २५ ३०	—	६ ९
बुध "	७ २४ १	७ १० २६	—	१३ ३५	७ १८ ३२	६ १० ०	—	३८ ३२
गुरु "	५ २० ३८	५ २१ १६	+	० ३८	५ १५ ७	५ ११ ०	—	४ ७
शुक्र "	९ २१ ३	२ १९ ४९	—	२११ १४	९ १६ १८	१ २५ ०	—	२२१ १८
शनि "	८ ५ १२	७ २६ ३७	—	८ ३५	७ २८ ४५	७ २३ ०	—	५ ४५
मंगलका पात	१ ८ ९	१ १० ५	+	१ ५६	१ ५ २९	० २५ ३०	—	९ ५९
बुध "	१ ० १८	० २० ४४	—	९ ३४	० २६ ५	० १० ०	—	१६ ५
गुरु "	२ २५ ३०	२ १९ ४१	—	५ ४९	२ २२ १	१ २१ ०	—	३१ १
शुक्र "	२ ३ ४०	१ २९ ४६	—	३ ५४	२ ० ३९	१ २५ ०	—	५ ३९
शनि "	३ १० १३	३ १० २५	+	० १२	३ ७ २८	६ ३० ०	+	८५ ३

भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृ० २०५,२०६

विज्ञान भाष्य—पिछले २२ वें और २३ वें श्लोकों में जो कुछ कहा गया है वही यहां फिर दुहराया गया है। इन श्लोकोंके विज्ञान भाष्यमें कल्पके आरम्भसे वर्तमान महायुगके सत्ययुगके अन्त तकके सौर वर्षोंकी संख्या जाननेकी रीति बतलायी गयी है जो १,९७,०७,८४,००० होती है। इसमेंसे सृष्टिके रचनेके १,७०,६४,००० सौरवर्ष घटा दिये जाँय तो शेष १,९५,३७,२०,००० होता है। इतने ही सौरवर्ष सृष्टिके आदिसे सत्ययुगके अन्त तक बीते हैं।

> अत ऊर्ध्वममी युक्ता गत कालाब्द संख्यया।
> मासीकृता युता मासैर्मधु शुक्लादिभिर्गतैः ॥ ४८ ॥
> पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्नाः सूर्यमासविभाजिता।
> लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विता ॥ ४९ ॥
> द्विष्ठास्तिथि क्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजितः।
> लब्धोन रात्रि रहिता लङ्कायामर्ध रात्रिकः ॥ ५० ॥

अनुवाद—(४८) ऊपर बतलाये गये (सृष्टिके आदिसे सत्ययुगके अंत तकके) सौरवर्षोंमें सत्य-युगके उपरान्त जितने सौर वर्ष बीते हों उनको जोड़ लो। योग फल इष्टकाल तकके सौर वर्षोंकी संख्या होगी। इसके मास बनालो अर्थात् १२से गुणा कर दो। मासोंकी संख्यामें चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे इष्टकाल तक जितने मास बीते हों उनको भी जोड़ दो। (४९) इस संख्याको दो स्थानोंपर रखो, एक-को महायुगके अधिमासोंकी संख्यासे गुणाकर महायुगके सौर वर्षोंकी संख्यासे भाग देदो, जो लब्धि आवे वही सृष्टिके आदिसे इष्ट काल तकके अधिमासोंकी संख्या होगी। इस लब्धिके दूसरे स्थानमें रखे हुए मासोंमें जोड़ दो। योगफल सृष्टिके आदिसे इष्टकाल तकके चांद्र मासोंकी संख्या है। इसको ३० से गुणाकर (चान्द्र) दिन अर्थात् तिथियां बना लो और इष्टकाल तक वर्तमान मासकी जितनी तिथियां बीती हों उनको जोड़लो तो सृष्टिके आदि से इष्टकाल तक जितनी तिथियां बीती हैं वह मालूम हो जायँगी। (५०) इन तिथियोंकी संख्याको भी दो स्थानोंपर रखो। एक को महायुगीय क्षय तिथियोंकी संख्यासे गुणा दो और गुणनफलको महायुगीय तिथियोंकी संख्यासे भाग दे दो जो लब्धि आवे वही सृष्टिके आदिसे इष्टकाल तककी क्षय-तिथियोंकी संख्या हुई। इसको दूसरे स्थानमें रखी हुई तिथियोंकी संख्या में से घटा दो, जो शेष हो वही एक कम लङ्काकी अर्द्ध रात्रि तक सावन दिनोंकी संख्या हुई।

विज्ञान भाष्य—जब यह जानना होता है कि किसी इष्ट समय ग्रहोंके स्थान क्या हैं तब सबसे पहले यह जानना चाहिये कि सृष्टिके आदिसे उस इष्ट समय तक कितने सावन दिन बीते। जब सावन दिनोंकी संख्या मालूम हो गयी तब त्रैरा-शिकके द्वारा ग्रहोंका स्थान जान लेना सुगम होता है; क्योंकि सृष्टिके आदिमें सब ग्रह एक साथ थे और एक महायुगमें वह कितने भगण करते हैं तथा कितने सावन दिन होते हैं, यह भी बतला दिया गया है। इसलिए जब महायुगीय सावन दिनोंमें अमुक भगण होते हैं तब इष्ट काल तकके सावन दिनोंमें कितने भगण होंगे, यह जान लेनेसे ही ग्रहका स्थान निकल आता है। इष्टकाल तकके सावन दिनोंकी संख्या जिसे अहर्गण कहते हैं जानने की रीति ऊपरके तीन श्लोकोंमें बतलायी गई है।

उदाहरण—१९७९ विक्रमीय की वसंत पंचमी (माघ सुदी ५) तक सृष्टिसे कितने दिन बीते?

सृष्टिके आदिसे सत्ययुगके
अंत तक = १,९५,३७,२०,००० सौर वर्ष

सृष्टिके आदिसे त्रेताके
अंत तक = १२,९६,००० सौर वर्ष

सृष्टिके आदिसे द्वापरके
अंत तक = ८,६४,००० ”

१९७९ वि० की चैत्र
शुक्ल १ के आरम्भ तक = ५,०२३* ”

*—१९७९ वि० में जिस समय मेष संक्रान्ति लगेगी उस समय सौर वर्ष पूरा होगा, इसलिए चैत्र शु० १ तक ५०२३ सौर वर्ष यथार्थमें नहीं होते।

इसलिए सृष्टिके आदिसे १९७९वि० के

चैत्र शुक्ल १ के आरम्भ तक= १,९५,५८,८५,०२३ वर्ष

= २३,४७,०६,२०,२७६ सौरमास†

चै० शु० १ से

माघ शु० १ के आरंभ तक १० चांद्रमास

इस लिए सृष्टिके आदिसे

१९७९ के मा०शु०१ तक २३,४७,०६,२०,२८६ मध्यम मा०

जब एक महायुगमें ५,१८,४०,००० सौर मास होते हैं तब १५,९३,३३६ अधिमास होते हैं; इस लिए २३,४७,०६, २०,२८६ मध्यम मासोंमें अधिमासोंकी संख्या

$$\frac{२३,४७,०६२०,२८६ \times १५,९३,३३६}{५,१८,४०,०००} = ७२,१३,८४,७२६ \text{ अधिमास}$$

इस लिए सृष्टिके आदिसे १९७९ वि० की

माघ शु० १ तक हुए २४,१९,२०,०५,०१२ चांद्रमास =७,२५,७६,०१,५०,३६० ति०

∴ माघ सुदी ५ तक हुई=७,२५,७६,०१,५०,३६५ ति०

परन्तु एक महायुगमें ५३४३३३३६ चान्द्रमास तथा २,५०,८२,२५२ क्षय तिथियां होती हैं; इसलिए २४,१९,२० ०५,०१२ चान्द्र*मासोंमें क्षय तिथियोंकी संख्या=

$$\frac{२४,१९,२०,०५,०१२ \times २,५०,८२,२५२}{५३४३३३३६} = ११,३५,९०,१८,७६१$$

∴ माघ सुदी ५, तक सृष्टिके आदिसे

सावन दिनोंकी संख्या= ७,१४,४०,४१,९०४

माघ सुदी ५ के पहलेकी अर्द्धरात्रि

तकके अहर्गण = ७,१४,४०,४१,३१,९०३

किसी समय तकके सावन दिनोंकी संख्या जाननेका यह नियम बहुत कष्टप्रद है और तनिक सी भी भूल हो जानेसे घंटोंका परिश्रम व्यर्थ जाता है। इसलिए व्यवहारमें इतने बड़े समयकी गणना नहीं की जाती वरन् करण ग्रन्थ और सारणियां बनी हुई हैं जिनके द्वारा यह गणना सहज ही हो जाती है। आगे चलकर इस पुस्तकमें भी सत्ययुगके अंतसे अहर्गण बनानेका उपदेश दिया गया है। यदि स्वतन्त्र गणना सुगम रीतिसे करना हो तो नीचे लिखी रीति काम दे सकती है:—

यह बतलाया जा चुका है कि एक महायुगमें ४३,२०,००० सौरवर्ष तथा, १, ५७, ७९, १७, ८२८ सावन दिन होते हैं। इसलिए एक सौरवर्ष में $\frac{१,५७,९९,१७,८२८}{४३,२०,०००}$ सावन दिन अर्थात् ३६७ २५८, ७५६४८१५ सावन दिन होते हैं। जिस समय तकके अहर्गणकी संख्या जाननी हो वह जिस सम्वत में हो उसके आरम्भके मेष संक्रान्तिके दिनका अहर्गण निकाल लो। ऐसा करनेके लिए एक वर्षके सावन दिनोंकी संख्याको सृष्टिके आदिसे इष्ट सम्वत तकके सौर वर्षोंसे गुणा कर दो। उपर्युक्त उदाहरणमें १९७८ वि० के मेष संक्रांतिके दिन सृष्टिके आदिसे १, ९५, ५८,८५,०२३ सौरवर्ष बीते हैं; इसलिए इस सम्वत्के मध्यम मेष संक्रान्तिके समय तक ३६५·२५८७५६४८१५ × १,९५,५८, ८५, ०२३ सावन दिन अर्थात् ७,१४,४०,४१,३१,३२१· ७७००२९०७४५ सावन दिन बीते। परन्तु स्पष्ट मेष संक्रांति मध्यम संक्रान्ति से २·१७०६९४४ सावन दिन पहले ही हो जाती है। इसलिए यदि मध्यम मेषसंक्रान्ति तकके अहर्गणमेंसे २·१७०६९४४ सावन दिन घटा दिये जांय तो स्पष्ट मेष संक्रांतिके समय तक ७,१४,४०,४१,३१,३१९·५९९३३१६७४५ सावन दिन बीते। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि सृष्टिके आदिसे इतने मध्यम सावन दिन बीतने पर १९७८ वि० की मेष संक्रांति लंकामें हुई।

इसलिए जिसदिन मेष संक्रांति थी उस दिनकी आधीरात तकके अहर्गण हुए ७,१४,४०,४१,

---

†—१९७९ की मेष संक्रान्ति तक इतने सौर मास पूरे होंगे, इसलिए चै० शु० १ तक इतने सौरमास यथार्थमें नहीं हुए।

* पुस्तकमें चन्द्रमासोंकी जगह तिथियां कही गयी हैं जिससे गणना शुद्ध होती हैं; परन्तु गुणा भाग अधिक करना होता है इसलिए चन्द्रमास लिये गये हैं। इससे सम्भव है कि एक दिनकी भूल पड़े, जो वार निकालनेसे शुद्ध हो सकती है।

३१,३२०। अब देखना चाहिये कि मेषकी संक्रांतिसे कितने दिनपर बसंत पंचमी पड़ी।

इसके लिए पहले यह जानना चाहिये कि मेष संक्रांतिके दिन कौन तिथि थी।

१ चान्द्रमास २६·५३०५८७९४६०७ सावन दिनों का होता है। इसलिए यदि मेष संक्रांतिके अहर्गण को इतने सावन दिनोंसे भाग दे दिया जाय तोजो लब्धि आवेगी वह सृष्टिके आदिसे मेष संक्रांति तकके बीते हुए चान्द्रमासोंकी संख्या होगी और जो शेष बचा है वह चालू चान्द्रमासके सावन दिन होंगे। इस शेषको यदि ३० से गुणा करके गुणन फलको चान्द्रमासके सावन दिनोंसे फिर भाग दिया जाय तो जो लब्धि आवेगी वह तिथियों की संख्या होगी।

ऐसा करनेसे मेष संक्रांतिके समय तिथिकी संख्या १६,५२,५७६ आती है,जो पूर्णिमान्त गणना-से वैशाख बदी २ और अमान्त गणनासे चैत बदी २, होती है।

अब यह जानना चाहिये कि वैशाख बदी २ से माघ सुदी ५ तक कितने सावन दिन बीते। इसलिए पहले यह देखना चाहिये कि इस समय में कितनी तिथियां बीतीं। वैशाख बदी ३ से माघ बदी २ तक ९ चान्द्र मास होते हैं, क्योंकि इस वर्ष कोई मलमास नहीं पड़ा, तथा माघ बदी ३ से माघ सुदी ५ के आरम्भ तक अर्थात् चौथके अन्त तक १७ तिथियां होती हैं। इसलिए मेष संक्रांति से माघ सुदी ४ के अन्त तक ९×३०+१७ तिथियां अर्थात् २८७ तिथियां बीतीं

परन्तु १ तिथि=२६·५३०५८७९४६०७ मध्यम सावन दिन; इसलिए २८७ तिथियाँ

= २८७ × २६·५३०५८७९४६०७

= २८२·५०६२६१३५०७३६=

= २८२·५१ सावन दिन स्थूल रूपसे

परन्तु मेष संक्रांतिकी अर्द्धरात्रिकी अहर्गण=
७,१४,४०,४१,३१,३२० ”

इसलिए सृष्टिसे माघ सुदी ५ के क्रमके अहर्गण=
७,१४,४०,४१,३१,६०२·५१ ”

अर्थात् माघ सुदी ५ की पहली अर्द्ध रात्रि तक ७,१४,४०,४१,३१,६०३ सावन दिन बीते; जो पहली रीतिसे निकाले गये अहर्गणसे मिलता है। इस गणनाके लिए दशमलवके ग्यारहवें स्थान तक के अंकोंको लेना पड़ता है; क्योंकि गुणक (सृष्टिसे अब तकके सौर वर्षोंकी संख्या) अरबोंमें है। यदि त्रेता या कलियुगके आदिसे अहर्गण निका-लना हो; जिसके लिए आगे आदेश है, तो चान्द्रमास और सौर वर्षके सावन दिनोंकी संख्या सात दश-मलव स्थानों तक लेना पर्याप्त होगा।

अब यह परीक्षा करना रह गया कि यह संख्या शुद्ध है या नहीं। इसके लिए केवल यह जांचना पर्याप्त होगा कि सृष्टिसे इतने दिनोंके बाद कौन वार आरम्भ होगा। यदि वार ठीक निकल आवे या १ दिनका अंतर पड़े तो समझना चाहिये कि अहर्गण ठीक है।

समालोचना

हिन्दी पुस्तकोंके प्रकाशनका कार्य ज़ोरोंके साथ जारी है। कई एक पुस्तक-प्रकाशक प्रायः सुन्दर तथा उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित करते रहनेके कारण हिन्दी-प्रेमियोंके आदर-भाजन ही नहीं हुए हैं, किन्तु श्रीसम्पन्न भी हो गये हैं। यह बात हिन्दीकी उन्नतिका सूचक है। परन्तु इसके साथ ही यह भी सत्य है कि नव प्रकाशित पुस्तकोंमें अधिकांश पुस्तकें बिलकुल साधारण ही होती हैं। और यह बात सम्भव भी तो नहीं है कि प्रत्येक समयकी प्रत्येक पुस्तक साहित्यकी शोभा बर्द्धक ही हो। ऐसी दशामें हमें यह देखकर धैर्यच्युत नहीं होना चाहिये कि हिन्दीमें प्रायः साधारण श्रेणीकी ही पुस्तकें निकला करती हैं। यह एक स्वाभाविक बात है और ऐसा ही सदा हुआ भी है। अस्तु,

हालमें ही प्रकाशित कुछ नई पुस्तकोंका परिचय दिया जाता है:—

(१) राईका पर्वत—(नाटक)—रूपान्तरकार पण्डित गिरिधर शर्मा; प्रकाशक राजपूताना हिन्दी साहित्य सभा, झालरापाटन; आकार छोटा; पृष्ठ संख्या १६२ और मूल्य १॥।) है।

गुजराती भाषाका यह एक प्रसिद्ध नाटक है। इसकी कथा सरल और स्पष्ट है। कनकपुरकी भूतपूर्व रानीने अपने पतिके बैरी पर्वतरायसे अपने स्वामीका राज्य छीन लेनेके लिए, जो षडयन्त्र रचा था, उसका क्या परिणाम हुआ और उसके पुत्रको उसका पैतृक राज्य किस प्रकार मिल गया यही बातें ढँगसे लिखे जानेसे इस नाटकमें विशेषता आ गई है। प्रत्येक पात्रका चरित्र चित्रण स्वभाविक हुआ है। जब तक हिन्दीमें ऐसे सुन्दर नाटक नहीं लिखे जाते तब तक गुजराती आदि दूसरी प्रान्तिक भाषाओंके श्रेष्ठ नाटकोंका हिन्दीमें भाषान्तरित होना सर्वथा वांछनीय है। पर इन अनुवादोंकी भाषा ऐसी न हो जैसी 'राईका पर्वत' की है। इस रूपान्तरकी हिन्दी आजसे पन्द्रह वर्ष पहलेकी मालूम पड़ती है। इसका गद्य भाग व्याकरणकी भूलों और अप्रयुक्त शब्दोंके प्रयोगसे दोषपूर्ण हो गया है। उसमें जहाँ तहाँ जो छन्द दिये गये हैं उनमें भी कवि-स्वातन्त्र्यका पूरा रङ्ग है। इतने पर भी इस सुन्दर नाटकका रसास्वादन करनेमें कोई बाधा नहीं पड़ती। पुस्तककी छपाई सुन्दर और काग़ज़ बढ़िया है। उपर्युक्त सभाके पतेपर उसके मन्त्रीको लिखनेसे यह मिल सकती है।

(२) सोना रानी (नाटक)—लेखक लाला भगवानदीन; प्रकाशक दामोदर पुस्तक माला कार्यालय कप्तान गंज, बस्ती; आकार छोटा पृष्ठ संख्या ७२ और मूल्य ॥) है।

यह नाटक दामोदर-पुस्तक-मालाका पहला पुष्प है। इसके वक्तव्यमें लिखा है कि सूक्ष्मतः नाटककी वस्तु सोना रानीकी पातिव्रत-परीक्षा है। पर यह बात पुस्तक भर ढूँढ डालने पर भी न मिली। हाँ उसे व्यभिचारिणी सिद्ध करने के लिए प्रमाण-संग्रह करनेका कौशल अवश्य दिखलाया गया है। जिस घटना चक्रमें डाल कर सोनारानी निर्दोष सिद्ध की गई है वह इस देशके वायुमण्डलके विपरीत है। यह विदेशी आदर्शोंकी छाया है और उसकी पुष्टि अन्तिम कथासे हो जाती है। इसकी कथा सरस है। उर्दू शब्दोंके अधिक प्रयोगसे इसकी भाषा चटपटी हो गई है। प्रकाशकको लिखनेसे यह पुस्तक मिल सकती है।

(३) शाहजादा और फकीर तथा उमराकी बेटी—लेखक रायसाहेब पण्डित रघुवर प्रसाद जी द्विवेदी बी० ए०; प्रकाशक मिश्र-बन्धु कार्यालय, दीक्षित पुरा, जबलपुर; छोटाआकार पृष्ठ-संख्या ७ + १०६ और मूल्य ।।।) है।

यह किताब ऐतिहासिक कथा-मालाका पहला पुष्प है। इस मालामें भारतीय इतिहाससे सम्बन्ध रखने वाली इसी तरहकी कहानियाँ पुस्तक रूपमें प्रकाशित होंगी। ये किताबें विशेषकर विद्यार्थियोंके लिए लिखी जा रही हैं। राय साहब हिन्दीके नामी लेखक हैं। आपका यह प्रयत्न स्तुत्य है। इस किताब में जो कहानियाँ हैं वे मनोरञ्जक हैं। राय साहबने इन्हें विशुद्ध हिन्दीमें नहीं लिखा है। आपका यह कथन है कि 'उर्दू भी तो एक प्रकारकी हिन्दी ही है। अतएव उससे अनभिज्ञ रहनेवाले हिन्दीके पूर्ण ज्ञाता नहीं बन सकते।' क्या उर्दूके ज्ञाताओंको उसमें पूर्णता प्राप्त करनेके लिए हिन्दीके ज्ञानकी आवश्यकता पड़ती है? यदि हम आपके कथनको स्वीकार भी कर लें तो भी उससे उर्दूके प्रति हिन्दी वालोंका अनावश्यक झुकाव श्रेयस्कर नहीं सिद्ध होता है।

(४) विराम-चिन्ह—लेखक, श्रीयुत शालिग्राम द्विवेदी, मूल्य =)॥, पता—रामप्रसाद मिश्र, दीक्षित पुरा, जबलपुर है।

इस किताबको निकले पांच वर्ष हो गये। इसकी रचना विद्यार्थियोंके लिए की गई है, पर इससे दूसरे लोग भी लाभ उठा सकते हैं। अङ्गरेज़ी

भाषाके प्रायः सारे विराम चिन्होंकी विवेचना इसमेंकी गई है। परन्तु हिन्दीमें सारे अङ्गरेज़ी विराम चिन्होंके उपयोगके लिए कहाँ तक स्थान प्राप्त है, इसकी ओर लेखकने ध्यान नहीं दिया है। इस सम्बन्धमें जो नीति काशी नागरी प्रचारिणी सभाकी है उसके अनुसार इस पुस्तक पर विचार करने से यही कहना पड़ेगा कि इस पुस्तकमें दिये हुए विराम चिन्होंके पाठ विद्यार्थियोंके लिए सर्वथा अनुपयोगी हैं। यदि लेखकका यह विचार हो कि हिन्दीको अङ्गरेज़ीके विराम चिन्ह ग्रहण करने पड़ेंगे तब तो यह पुस्तक बड़े मतलबकी है। आज कलके विद्यार्थी इससे बेशक फ़ायदा उठा सकते हैं।

(५) आलम-केलि—सम्पादक लाला भगवानदीन। आकार छोटा, पृष्ठ संख्या ६ + १४२, और मूल्य १) है।

आलम और सेख हिन्दीके प्रसिद्ध कवियोंमें से हैं। आलम औरङ्गजेबके पुत्र शाहज़ादा मुअज्ज़मके दरबारमें रहते थे। उन्हींकी यह रचना है। अभी तक यह अप्रकाशित थी। इसमें सेखकी भी रचना शामिल है। सारी पुस्तकके छन्दोंकी संख्या ३९८ है। उसका मुख्य विषय शृङ्गार रस है। पुराने कवियोंकी रचनाके प्रेमियोंको इस पुस्तकका संग्रह करना चाहिये। पता—प्रकाशक, श्रीयुत् उमाशङ्कर मेहता, रामघाट, काशी।

पद्य-संग्रह—इस पुस्तकमें मीरा बाई, सहजो बाई और दयाबाईकी रचनाओंका संग्रह है। इसके सम्पादक श्री युत ब्रजराज, एम० ए०, बी० एस्-सी०; एल-एल्० बी० तथा श्री वियोगी हरि हैं। प्रकाशक साहित्य-भवन लिमिटेड, प्रयाग और मूल्य ।-) है

यह प्रयाग महिला-विद्यापीठकी विद्या-विनोदिनी-परीक्षाकी पाठ्य पुस्तक है। आधुनिक ढङ्गकी पाठ्य पुस्तकोंके साथ पुराने कवियोंकी रचनाओंके ऐसे ही छोटे छोटे संग्रह अत्यधिक उपयोगी होते हैं। यदि इस संग्रहमें कुछ और स्त्री कवियोंकी रचनाओंका संग्रह कर दिया जाता तो यह छात्राणियोंको अधिक मनोरञ्जक हो जाता। इससे इस संग्रहकी विषय-भिन्नताके अभावकी पूर्ति कमसे कम कवियोंकी ही विभिन्नतासे हो जाती है।

(८) श्री छद्मयोगिनी (नाटिका)—लेखक श्री वियोगी हरि; प्रकाशक साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग और मूल्य ।) है।

यह नाटिका लेखककी भक्ति भावनाका फल है। इसमें लीलाधाम कृष्णकी एक लीलाको नाटकका रूप दिया गया है। रचना सुन्दर हुई है। राधा जीकी प्रेम प्रतीतिका चित्रण स्वाभाविक और सरस है। नाटिका विशुद्ध हिन्दीमें लिखी गई है। सारी पुस्तकमें तीन ही चार ऐसे प्रयोग मिल सकते हैं, जिन पर एतराज किया जा सकता है। इसका पद्यभाग भी प्रसाद गुण सम्पन्न है। नाटकके और और नियमोंके पालन करनेमें चाहे उतना ध्यान न रखा गया हो पर अपनी आत्म-प्रशंसाकी तो लेखकने इसमें हद कर दी है। हिन्दी साहित्यिकोंसे जो आपकी शिकायतें हैं उनमें एक यह भी है कि पुराने ज़मानेकी तरह प्रेम विषयक कृष्ण-राधा परक रचनायें लोग अब नहीं करते, परन्तु यह काम तो वही कर सकता है जिसकी प्रवृत्ति इस ओर हो; ऐसी दशामें जो लोग विदेशी आदर्शोंको आगे कर साहित्यिक रचना करते हैं वे यदि आपकी शिकायतके कायल हों तो उन्हें यातो अपना काम बन्द कर देना पड़ेगा या प्रेम अनुभूतिके लिए वृन्दावनकी रज छाननी पड़ेगी। बात यह है कि सभी बातोंके लिए अपना एक समय होता है। अब हिन्दीकी गति सर्वतोमुखी हुई है, जिसकी देशको आवश्यकता भी है। राम तथा कृष्ण परक अद्भुत रचनायें हमारे साहित्यमें विद्यमान हैं। उनसे हमारी पर्याप्त मनस्तुष्टि हो सकती है। अतएव शिकायत ठीक नहीं है।

—समालोचक